RNI/MPHIN/2013/61414

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
UGC Care Listed

ISSN 2278-0327
Peer Reviewed
Refereed Journal

ज्योतिर्वेद - प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका - संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

एकादश वर्ष, प्रथम अंक

मार्च - अप्रैल 2022

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

₹ 30

Bharatiya Jyotisham
पश्यंति भावयन् लोकान्
भारतीय ज्योतिषम्

ISSN 2278 - 0327

RNI/MPHIN/2013/61414
UGC Care Listed

Bi - Monthly
Peer Reviewed
Refereed Journal

Bharatiya Jyotisham
पर्येति भावयन् लोकान्

ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका-संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

प्रधान सम्पादक

प्रो. पी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम्

कार्यकारी सम्पादक

अविनाश उपाध्याय

सम्पादक

डॉ. रोहित पचौरी

डॉ. रविन्द्र प्रसाद उनियाल

ज्ञान सहयोग

पिडपर्ति पूर्णय्या विज्ञान ट्रष्ट चैन्नै

Jyotirveda-Prasthanam is printed & published by

Smt P V N B Srilakshmi

on behalf of

Bharatiya jyotisham

L-108, Sant Asharam Nagar Phase - 3, Laharpur, Bhopal - 462043

Editor - DR. ROHIT PACHORI*

पुनरीक्षण समिति

प्रो. विद्यानन्द झा
पूर्वप्राचार्य-केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
भोपाल परिसर, भोपाल

प्रो. क्षेत्रवासी पण्डा
अध्यक्ष-तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. भारतभूषण मिश्र
निदेशक- केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
क.जे.सौमेया विद्यापीठ, मुम्बई

प्रो. हंसधर झा
अध्यक्ष - ज्योतिषविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. सनन्दन कुमार त्रिपाठी
अध्यक्ष - साहित्यविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. श्रीगोविन्द पाण्डेय
आचार्य- शिक्षाशास्त्रविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

डॉ. अशोक थपलियाल
अध्यक्ष - वास्तुविभाग
श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रकाशक

भारतीय ज्योतिषम्
एल - 108, **संत आशाराम नगर,**
फेज - 3, **लहारपुर,**
भोपाल - 462043, **मध्यप्रदेश**
Web : www.bharatiyajyotisham.com
E.mail : bharatiyajyotisham@gmail.com
Mob : 9752529724, 9039804102

सम्पादकीय

'*योगः कर्मसु कौशलम्*', '*योगस्थः कुरु कर्माणि*' इत्यादि वचन भारतीय जीवन पद्धति में जीने वाले सभी बाल्यावस्था से ही सुनते आते हैं। भारतवर्ष योगियों का स्थान है। योग की महत्ता को योगसूत्र नामक ग्रन्थ का निर्माण कर महर्षि पतञ्जलि ने और उन्नत शिखरों पर ले गये। वर्तमान में उस योग शब्द का आम जनता भी प्रयोग करती है। कुछ वर्ष पहले तक योग का वैशिष्ट्य व विशेषताओं से सम्बन्धित कथाओं का श्रवण ही अधिकतया होता था। अब भारत ही नहीं बल्कि पूरा विश्व योगवैशिष्ट्य श्रवणमात्र से सन्तुष्ट न होकर उसके अभ्यास की ओर चलने लगा है। समस्याओं का निदान मानव के अधिकार क्षेत्र से शनैः शनैः बाहर चले जाना भी इस प्रवृत्ति के उदय का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। यद्यपि समस्या का जनक मानव है किन्तु भस्मासुर वृत्तान्त के सदृश्य मानव के द्वारा निर्मित वह समस्या उसी को निगलने में तुली हुई है।

संस्कृत की भी स्थिति कुछ ऐसी ही है। दैव-मानव सम्बन्ध निर्माता के रूप में संस्कृत की जो महत्ता वाङ्मय में सर्वव्याप्त है, वह आज एक बोली के रूप में प्रचार-प्रसार में है। स्वतन्त्रता संग्राम के समय में भी इस वाङ्मय को समझने के लिये लोग इसका अध्ययन करते थे। केवल इस देश के ही नहीं बल्कि वैदेशिक भी इस वाङ्मय की प्रति सदा आकृष्ट रहें। विदेशों में तो दृष्टि में कोई परिवर्तन नहीं दिख रहा है। जिस स्थान में किसी समय वाङ्मय सर्वव्याप्त था वहाँ पर सरल शब्द व्यवहार में देखने को मिल रहा है। यह सरलता किस ओर ले चलेगी यह किसी को पता नहीं है।

वास्तविक स्वरूप जटिल समझना, स्वरूप परिवर्तन को समयानुकूल परिवर्धन कहना भी घातक ही लगता है। महाभाष्य के अध्ययन के स्थान में महाभाष्यस्थ वर्णित विषय की जानकारी रखना आज के समय के अनुसार आवश्यक कह रहे हैं आज के सरलवादी। इस पन्था के अनुसरण से महाभाष्य का अध्ययन जो सीमित मात्रा में हो रहा है वह भी नहीं हो पायेगा। विद्यालयों में तो अतिसीमित मात्रा में ही सब कुछ चल रहा है। सरकारी मानकों को प्राप्त करने के लिये किये जाने वाले दिखावे के प्रयास निरन्तर अध्ययन से ही सम्भव संस्कृतशास्त्रों को बहुत पहले ही अन्धेरे में डाल चुका है। यदि सिलसिला यही रहा तो शास्त्र परम्परा व शास्त्राध्ययन इतिहास के पन्नों में अतीतवैशिष्ट्य कथाश्रवण मात्र ही रह जायेगा।

पत्रिका से सम्बन्धित सभी पद अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक को सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान भोपाल न्यायालय से ही स्वीकार्य है। शोधलेख आमन्त्रित है। पूर्वप्रकाशित लेख अनुमत नहीं है। लेख से सम्बन्धित विवादों का दायित्व लेखक का ही होगा। लेख को स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार प्रकाशक को है।

विषय-सूची

क्र.	लेख विषय	लेखक	पृ.सं.
01.	'मेघदूतम्' में वर्णित ज्योतिषशास्त्रीय विधान : एक अनुशीलन	प्रो. रञ्जन कुमार त्रिपाठी	05
02.	आधुनिक शिक्षा के निकष पर औपनिषदिक शिक्षण-विधियाँ	डॉ. रश्मि यादव	10
03.	श्रीमद्भागवतमहापुराण में भगवत् चेतना के विभिन्न स्तर-प्रासंगिक तुलना के आधार पर	डॉ. अक्षय कुमार मिश्र	16
04.	भारत में प्राकृतिक आपदाओं की समस्या : एक अनुशीलन	डॉ. अखिलेश कुमार	21
05.	संत चरणदास की अष्टांग योग में 'नियम साधना'	डॉ. कुलदीप	24
06.	सोशल मीडिया : महिला अधिकारों की प्राप्ति का नया अभियान	डॉ. सुनीता पारीक, डॉ. संजय कुमार	28
07.	श्रीमद्भागवत-महापुराण में वर्णित राजधर्म एवं राजा के गुण तथा इनकी प्रासंगिकता	डॉ. प्रणव कुमार	33
08.	आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की रचनाओं में वर्तमान सामाजिक समस्याओं का अवलोकन	डॉ. उष्मा यादव	38
09.	उपनिषदों में ऊंकार वर्णन	डॉ. हेमलता जोशी	43
10.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मधुमेह प्रबन्धन में यौगिक अभ्यास की उपयोगिता	अर्जुन सिंह जंघेला, डॉ. भावना श्रीवास्तव	47
11.	व्यावहारिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में योग दर्शन में वर्णित संतोष का महत्व	डॉ. भावना श्रीवास्तव, विश्व दीपक चंद्रोल	51
12.	श्री नरेन्द्र मोदी कार्यकाल में 15 अगस्त की नई योजनाओं और नीतियों में भूमिका (2014-2019)	डॉ. संजय कुमार, डॉ. सुनीता पारीक	54
13.	वैदिक वाङ्मय में नारी का स्वरूप	मधुस्मिता डेका	60
14.	वैदिकसाहित्य में सैन्य संगठन का स्वरूप	डॉ. मुनेश देवी, सीमा	63
15.	रामचरित मानस में मानव मूल्य	डॉ. मनोज उपर्ति, सुदेश कुमारी	66
16.	वैदिक साहित्य में वर्णित व्यापारिक एवं आर्थिक व्यवस्था	डॉ. संदीपा कालभोर	70
17.	संस्कृतसाहित्य में पाश्चात्य कवियों की भूमिका	डॉ. राजकुमार	73
18.	ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर को पहचानने की प्रक्रिया : एक गुणात्मक अध्ययन	उज़मा एजाज, डॉ. मुकेश कुमार चंद्राकर	76
19.	दूधनाथ सिंह के साहित्य में समाज में चित्रित जीवन मूल्य	डॉ. कविता चौधरी, वीनस	82
20.	चित्तशुद्धि में आर्य अष्टांगिक मार्ग की उपादेयता : एक दृष्टिकोण	नीलू विश्वकर्मा, डॉ. उपेन्द्रबाबू खत्री	84
21.	गांधी के विचारों में समावेशी विकास की अवधारणा : वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता	महेश जगोठा, कु० प्रीति	90
22.	न्यायमञ्जरी के अनुसार शब्द का गुणत्व साधन	डॉ. सन्तु सिंह	93
23.	ध्वनिकल्लोलिनी के आलोक में ध्वनिविरोधी मतों का अनुशीलन	सतीश नौटियाल	95
24.	रीतिकालीन कवि ठाकुर के काव्य में प्रेम का स्वरूप	डॉ. आशुतोष शर्मा	100
25.	वैदिक साहित्य में आत्म तत्व का स्वरूप	शुभम कुमार पाण्डेय	103
26.	आधुनिक समय में खिलाड़ियों के समग्र स्वास्थ्य में अष्टांगयोग की उपयोगिता	सतीश कुमार पंवार, डॉ. दीपक पाण्डेय	107
27.	योगकुण्डलिनी उपनिषद् एवं हठप्रदीपिका में वर्णित कुण्डलिनी जागरण के सहायक योगांग	रंजीत सिंह	111
28.	योग वासिष्ठ में ज्ञानयोग साधना	मनमोहन सिंह, प्रोफेसर (डॉ) सरस्वती काला	116
29.	दशम गुरु साहिबान पर प्रणीत संस्कृत काव्यों का सामान्य परिचय	दिशा	119
30.	महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान	डॉ. अनीता सिंह, लता शर्मा	124
31.	समकालीन भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में गाँधी दर्शन	कल्पना	128
32.	एक सांस्कृतिक पड़ताल : नाटककार भारतेन्दु	डॉ. पूनम शर्मा	132
33.	उर्वशी का कथालोक	डॉ. अर्चना गौड़	136
34.	वर्तमान शिक्षा में जैनदर्शन शिक्षणविधियों का प्रभाव	डॉ. डम्बरुधर पति	142
35.	नारी सह-शक्तिकरण : मानवीय मूल्य	डॉ. मुनेश देवी, डीम्पल	144
36.	योग दर्शन में प्राणायाम की उपयोगिता	डॉ. सुभाष चन्द सैनी, सुमन	147
37.	मीमांसाभाष्यानुमत कारकतत्त्वविमर्श	राहुल आर्य	149

38. भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ	अनुराधा शर्मा	152
39. कोविड – 19 से बचाव तथा उपचार में योगाभ्यास की भूमिका	निधि शुक्ला	156
40. भारत के पड़ौसी देशों से सम्बन्ध (1920–30 अभ्युदय के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. आशा यादव	159
41. कुण्डलिनी शक्ति का हठयोगिक ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन	रिंकू, अंजू बाला	164
42. स्वामी श्रद्धानंद जी व आर्य समाज के पारस्परिक संबंधों का ऐतिहासिक वर्णन	अर्चना, डॉ. आशा यादव	169
43. शाब्दबोध तथा उसकी प्रक्रिया : एक अध्ययन	भास्कर उप्रेती	174
44. प्रयोगवाद तथा नयी कविता	डॉ. ब्रह्मानन्द मिश्र	176
45. राष्ट्रीय एकता का प्रतीक : संगीत	दर्शना, डॉ. जितेंद्र मलिक	179
46. पर्यावरण संरक्षण के ज्योतिषीय व राजनीतिक उपाय	डॉ. अर्चना चौहान	183
47. पाठ्यचर्या का भारतीय स्वरूप और शिक्षा पद्धति	डॉ.अनूप कुमार पाण्डेय	187
48. राजस्थानीय संस्कृत कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री विवेचन	श्यामलाल उदेनिया	192
49. बागवानी क्षेत्र का महत्व	किरण कुमारी	197
50. वेदों में जल विज्ञान	डॉ. सुमन रानी	201
51. गङ्गा चिन्तन – 'रक्षत – गङ्गाम्' महाकाव्य के आलोक में	डॉ. ऋचा	205
52. उपनिषदों में वर्णित प्रणव (ओ3म्) की उपयोगिता	डॉ. सपना यादव	209
53. स्वातंत्र्योत्तर भारत के हिन्दी उपन्यास : स्त्री विमर्श के संदर्भ में	सरिता पारीक	211
54. आधुनिक जीवन में 'श्रीरामचरितमानस' की भूमिका	ममता रयाल, प्रो. कंचन जोशी	215
55. संत साहित्य में सामाजिक विकृतियों के विरोध की सार्थकता	मोनिका	219
56. राजगढ़ जिले के छात्रों की समायोजन क्षमता एवं बुद्धिलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन	अश्वनी कुमार, डॉ. ऋतु शेखर	223
57. म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों का अध्ययन	नीतू जैन, डॉ. वीरेन्द्र जैन	228
58. 'योगवासिष्ठ' में योग साधना की आधार भूमि 'कर्मयोग'	महेन्द्र कुमार शर्मा, प्रो. गणेश शंकर	234
59. सत्यपाल शर्मा विरचित लौहपुरुषवल्लभचरितम् में वल्लभ भाई पटेल का चारित्रिक विश्लेषण	डॉ. सुनीता सैनी, सुरुचि	238
60. डॉ. उषा यादव रचित कहानी संग्रह 'वह एक पल' की भाषिक संरचना	डॉ. कृष्णा देवी, जितेंद्र शर्मा	242
61. सविनय अवज्ञा आंदोलन में प्रमुख मस्लिम महिलाएं	सविता, डॉ. आशा यादव	246
62. हिन्दी कहानी और आन्दोलन	डॉ. कविता चौधरी, उषा	250
63. भास एवं कालिदास–कालीन समाज में नारी की स्थिति	डॉ. श्री भगवान, सरतुल कुमारी	253
64. चम्पूभारतम् में सादृश्यमूलक अर्थालङ्कार विमर्श	राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा	256
65. छत्रपति शाहू की दृष्टि में शिक्षा ही प्रगति का आधार	डॉ. ज्योति सिंह गौतम	260
66. योग दर्शन में मनोरोगों का अवधारणा : एक परिचय	दिलिप कुमार रजक, श्रीकान्त,डॉ. नीबू आर. कृष्णा, डॉ. मोरध्वज सिंह	266
67. शाम्भवी मुद्रा का विद्यार्थियों के तनाव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन	आकाश प्रसाद कोटनाला, डॉ. मोनिका रानी	270
68. टोडरशाह : गोंड रियासत मकड़ाई के अंतिम शासक	डॉ. बी.सी. जोशी, श्रीमति दीपशिखा चौधरी	275
69. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 'यज्ञ द्वारा' पर्यावरण समीक्षा	मिथलेश झा	277
70. आधुनिक जीवन में कर्म योग की उपयोगिता	पूजा, डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद रयाल	281
71. इक्कीसवीं सदी : दाम्पत्य और बदलता पारिवारिक परिवेश	रीना	285
72. संत गरीबदास के साहित्य में भक्ति भावना	पुष्पा	288
73. पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक विचारों का एक अध्ययन	सुशील दत, डॉ. सोनिका	291
74. इतिहास में गोंड रियासत मकड़ाई (1535–1948)	श्रीमति दीपशिखा चौधरी, डॉ. बी.सी. जोशी	297
75. बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य : भारत–पाकिस्तान संबंधों का अध्ययन	प्रदीप कुमार, डॉ. शर्मिला लोचब	300
76. हिंदी साहित्य में आदिवासी लेखन	पूजा	303
77. भारत में घरेलू कामगार महिलाओं की दशा एवं दिशा	डॉ. विकास शर्मा, डॉ. पुष्पा मिश्रा	306
78. वैदिक परिप्रेक्ष्य में सृष्टि उत्पत्ति की अवधारणा : ऋग्वेद के विशेष सन्दर्भ में	ममता चौधरी, अखिलेश कुमार विश्वकर्मा	311
79. अथर्ववेद का भूमिसूक्त : काव्य रूप और पर्यावरण विचार	डॉ. अर्णव पात्र	315

'मेघदूतम्' में वर्णित ज्योतिषशास्त्रीय विधान : एक अनुशीलन

प्रो. रञ्जन कुमार त्रिपाठी
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोधपत्रसार-

संस्कृत काव्यजगत में जिस प्रकार महाकवि कालिदास की श्रेष्ठता सर्वमान्य और स्वतः सिद्ध है, उसी प्रकार षड्वेदाङ्गों में ज्योतिषशास्त्र की श्रेष्ठता भी प्रमाणित है- '*ज्योतिषं मूर्ध्नि स्थितम्*।' कविकुलगुरु ने अपनी समस्त कृतियों में ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तों का विनियोग न्यूनाधिक किया ही है। वैदिक काल से अद्यावधि पर्यन्त ज्योतिर्विद्या जनसामान्य में लोकप्रिय रही है। भारतीय सन्दर्भ में प्रत्येक मनुष्य ज्योतिर्विज्ञान की विविध शाखाओं यथा-गणितशास्त्र, संहिताज्योतिष, होराशास्त्र, शकुनशास्त्र, मुहूर्त्तशास्त्र, रत्नविज्ञान, कृषिविज्ञान, सामुद्रिकशास्त्र, वृष्टिविज्ञान, स्वप्नशास्त्र आदि के सामान्य सिद्धान्तों का किसी न किसी रूप में प्रयोग अवश्य करता है तथा इन शास्त्रों से सम्बन्धित शुभाशुभ फलकथन से भी परिचित रहता ही है। संस्कृत काव्य जगत् के कथानकों के सुखान्त होने की ही परम्परा रही है। अतएव विभिन्न कृतियों के रचनाकार अपनी रचनाओं में ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तों का गुम्फन इतनी कुशलता से करते हैं कि श्रोता अथवा द्रष्टा को रसानुभूति के साथ-साथ कथा के सुखान्त होने का भी संकेत मिलता रहता है। 'मेघदूतम्' यद्यपि विप्रलम्भश्रृंगार प्राधान्य गीतिकाव्य है, तथापि ग्रन्थ में ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्त पाठकों को संकेतित करते रहते हैं कि कथा का सुखान्त ही होना है, अतएव पाठक निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक कथा का आद्यन्त रसावगाहन करता रहता है। शोधपत्र 'मेघदूतम्' में उपलब्ध ज्योतिषशास्त्रीय विविध स्कन्धों के सिद्धान्तों का अन्वेषण तथा काव्य प्रवाह में इन सिद्धान्तों की उपयोगिता का परीक्षण करता है।

वैदिक काल से ही ज्योतिषशास्त्र मानव जाति के जीवन का अभिन्न अङ्ग रहा है। यज्ञ प्रधान समाज में विविध यज्ञों के काल-निर्धारण हेतु ज्योतिष वेदाङ्ग अस्तित्व में आया। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र की अपर संज्ञा 'कालविधानशास्त्र' भी है- '*ज्यौतिषं कालविधानशास्त्रम्*'।[1] कालतत्त्व के विविध आयामों पर अपने विशिष्ट चिन्तन के कारण 'ज्योतिर्विज्ञान' की स्वीकार्यता सर्वदा बनी रही है। यज्ञादि वैदिक कर्मकाण्डों के लिए कालनिर्धारण हेतु अस्तित्व में आए हुए इस शास्त्र का विषय क्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता रहा है। इस निरन्तर प्रक्रिया के कारण शीघ्र ही यह स्थिति आ गई जब मानव-जीवन का लगभग प्रत्येक क्षेत्र इस ज्योतिर्विद्या के अन्तर्गत समाहित हो गया। सिद्धान्त, संहिता और होरा इन स्कन्धत्रयात्मक[2] ज्योतिषशास्त्र के विवेच्य विषयों[3] में कालस्वरूप, कालभेद, होरा, नवांश, गर्भाधान, जन्मकाल, यमलोत्पत्ति, आयुर्दाय, दशा, मरण, राजयोग, पूर्वजन्म, तात्कालिक प्रश्न, तिथि, दिवस, करण, मुहूर्त्त, योग, अङ्गस्फुरण, स्वप्न, विजय, हाथी-घोड़े की चेष्टा, वायु, मेघ, वृष्टि, सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान, मंगल-अमंगल, शकुन, दूत, वनवासियों का कालानुसार प्रयोग, ग्रह-सञ्चार, उदयास्त, वक्र, अनुवक्र, गर्भलक्षण, रोहिणी योग, आषाढ़ी योग, सद्योवर्षण, कुसुमलता लक्षण, परिधि, परिवेष, परिध, भूकम्प, गन्धर्वनगर, धूलिलक्षण, निर्घात लक्षण, अन्नोत्पत्ति, इन्द्रध्वज-इन्द्रचाप लक्षण, वास्तुविद्या, अङ्गविद्या, वायसविद्या, मृगचक्र, श्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, वृक्षायुर्वेद, उदकार्गल, खञ्जन लक्षण, मयूरचित्रक, रत्नपरीक्षा, दीपलक्षण आदि के द्वारा शुभाशुभ फल कथन समाहित हैं। ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धांत मात्र को आधार मानकर लक्षाधिक स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना तो हुई ही है, इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं की आचार्य व कवि परम्परा ने 'ज्योतिषशास्त्र' को अपनी रचनाओं में पर्याप्त स्थान दिया है। संस्कृत काव्य परम्परा में महाकवि कालिदास का स्थान अन्यतम है। कविकुलगुरु कालिदास की प्रत्येक रचना अपने शास्त्रीय परम्परा के जाज्वल्यमान रत्नश्रेष्ठ के रूप में स्थापित है। गीतिकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ व अग्रगण्य 'मेघदूतम्' महाकवि कालिदास की उत्कृष्ट कृति के रूप में प्रशंसित है। न केवल मेघदूत अपितु कविकुलगुरु की अन्य रचनाओं में भी ज्योतिषशास्त्र के साथ-साथ अन्य शास्त्रों के प्रसङ्ग यथावसर प्राप्त होते हैं।

'मेघदूतम्' गीतिकाव्य में उपलब्ध ज्योतिषशास्त्रीय तत्त्वों का अन्वेषण विविध बिन्दुओं के आलोक में किया जा रहा है।

कालतत्त्व–

ज्योतिषशास्त्र का उद्देश्य 'कालज्ञान' ही है।[4] काल-स्वरूप स्थापना क्रम में स्वयं भगवान सूर्यनारायण ने काल के द्विविध भेद कहे हैं– लोकसंहारकार काल तथा कलनात्मक काल।[5] ज्योतिषशास्त्र में वर्णित उपरोक्त द्विविध कालों का यथावसर प्रयोग 'मेघदूतम्' में हुआ है। कलनात्मक काल की विविध ईकाईयाँ यथा क्षण[6], मुहूर्त[7], दिवस[8], रात्रि[9], अहोरात्र[10], मास[11], वर्ष[12] आदि का उल्लेख इस ग्रन्थ में प्रचुरता से हुआ है। विदित है कि 'मेघदूतम्' गीतिकाव्य का आधार ही यक्ष का विरहकाल है अतएव विविध कालमानों का प्रयोग स्वाभाविक ही है।

शकुनशास्त्र–

आरम्भिक काल में शकुनशास्त्र ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत ही परिगणित रहा है। परन्तु कालान्तर में 'शकुनशास्त्र' एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में स्थापित हुआ। वैदिकाकल से ही 'शकुनशास्त्र' के अस्तित्व के प्रबल प्रमाण प्राप्त होते हैं। 'शकुन' शब्द का सामान्य अर्थ 'पक्षी' है, फिर भी न केवल पक्षी अपितु शुभाशुभ ज्ञान के निर्णय सन्दर्भ में जो हेतु हैं, वे समस्त विषय 'शकुन' के रूप में स्वीकृत हैं– '*शुभाशुभं ज्ञानविनिर्णयाय हेतुर्नृणां यः शकुनः स उक्तः।*'[13] यद्यपि 'शकुनशास्त्र' में विविध अवसरों पर पशु-पक्षी-सजीव-निर्जीव, अन्तरिक्ष, दैवीय लक्षणादि के आलोक में शुभाशुभ कथन का विधान है, तथापि यात्राकालीन शकुनों का व्यावहारिक दृष्टिकोण से अधिक प्रयोग होता है। 'मेघदूतम्' में भी मेघ का रामगिरि पर्वत से अलकापुरी तक की यात्रा का प्रसङ्ग है। यक्ष द्वारा मेघ को यात्राकाल में प्रस्तुत होने वाले विविध शकुनों की ओर संकेत किया गया है। यथा– यात्रा मार्ग में अनुकूल वायु का बहना[14], वामभाग में चातक का शब्द[15], पंक्तिबद्ध बलाकाओं का दर्शन[16], राजहंस का दर्शन[17], मयूर के स्वर का श्रवण[18] आदि शकुनों की स्थापना महाकवि कालिदास ने की है। ज्योतिषशास्त्र की 'शकुन' शाखा के ग्रन्थों में यात्राकालीन शुभाशुभ शकुनों पर अत्यन्त विस्तृत सूची प्राप्त होती है। यात्राकालीन शुभ शकुनों में अनुकूल वायु का चलना[19], चातक, बलाका[20], हंस, पद्म, चँवर, मत्स्य, रत्न, मृग, वृषभ, मयूर[21], गीली ताजी मिट्टी[22], हाथी, घोड़े, वेश्या[23], शस्त्रास्त्र, मृदङ्ग स्वर[24] स्फटिक मणि, मरकतमणि[25] आदि लक्षण परिगणित है। यक्ष द्वारा मेघ को अलकापुरी तक के मार्ग को बताने के क्रम में उपरोक्त वस्तुओं का वर्णन यथावसर हुआ है और 'शकुनशास्त्र' के आलोक में उपरोक्त वस्तुओं की गणना यात्राकालीन शुभ शकुनों के रूप में हुई है। इस शुभ शकुनों का दर्शन या श्रवण यात्रा की सफलता का सूचक माना गया है।

सामुद्रिकशास्त्र–

ज्योतिषशास्त्र का एक अन्य स्कन्ध 'सामुद्रिकशास्त्र' है। वस्तुतः स्त्री व पुरुष के शरीर लक्षणों के आधार पर शुभाशुभ कथन ही इस 'सामुद्रिकशास्त्र' का उद्देश्य है। महर्षि समुद्र द्वारा 'शरीरलक्षणशास्त्र' को प्रादुर्भूत करने के कारण ही यह शास्त्र 'सामुद्रिकशास्त्र' संज्ञा से प्रसिद्ध हुआ[26]– 'समुद्रेण प्रोक्तमिति सामुद्रिकम्।' 'मेघदूतम्' खण्डकाव्य में कुछ ऐसे प्रसङ्ग हैं जहाँ सामुद्रिकशास्त्र से सम्बन्धित गूढ़ सिद्धान्तों की स्थापना की गई है। इस सन्दर्भ में उत्तरमेघ का वह प्रसङ्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जहाँ यक्षिणी के सौन्दर्य का वर्णन उपलब्ध होता है। यक्षिणी के लिए तन्वी, श्यामा, शिखरिदशना, पक्वविम्बाधरोष्ठी, मध्येक्षामा, चकितहरिणीप्रेक्षणा, निम्ननाभिः, श्रोणीभारात् अलसगमना, स्तनायाम स्तोकनम्रा विशेषणों का प्रयोग हुआ है।[27] इसके अतिरिक्त प्रियङ्गुलताओं से यक्षिणी के शरीर की, चन्द्रमा से मुख के कान्ति की, मयूरपुच्छ समूह से केशों की, नदियों के तरङ्गों से भ्रूविलास के साम्य की कल्पना की गई है।[28] यक्षिणी के उपरोक्त शारीरिक सौन्दर्य की विलक्षणता तथा सामुद्रिकशास्त्रोक्त सौभाग्यवती स्त्री के शारीरिक लक्षणों के मध्य अद्भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है। सामुद्रिकशास्त्र में शरीर, आवर्त्त, गन्ध, छाया, सत्त्व, स्वर, गति तथा वर्ण इन आठ लक्षणों को प्रमुखता दी गई है।[29] स्थूल-पुष्ट-उन्नत नितम्ब, क्षीण कटि, गम्भीरदक्षिणावर्त्त नाभि, सम-पीन-घन-वृत्त-दृढ़स्तन, वर्त्तुलपाटल रक्तोत्पल व बिम्बफल सदृश अधरोष्ठ, स्निग्ध दुग्धनिभा कुन्दकली के समान नुकीली दन्तपंक्ति, काले नेत्र की पुतली, गोलाकार, धनुष के समान भ्रू, कोमल-काले-पतले-लम्बे केशादि युक्त स्त्रियाँ सौभाग्यशालिनी, सम्पत्तिशालिनी तथा पति को अत्यधिक प्रिय होती हैं।[30] आम्रकूट पर्वत के शिखर से लगे हुए मेघ की साम्यता भी सामुद्रिकशास्त्र के सिद्धान्त की ही स्थापना करता है। उत्तरमेघ में वर्णित यक्षिणी के सौन्दर्य वर्णन को यदि स्त्री सामुद्रिकशास्त्र का सर्वस्व कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कृषि विज्ञान–

वैदिक काल से ही कृषि विज्ञान के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद के मन्त्र में कहा गया है कि देवगणों ने कृषि का आरम्भ किया।[31] कृषि-विज्ञान के विकास के सन्दर्भ में 'अथर्ववेद' स्पष्ट करता है कि वैवस्वत मनु की वंश

परम्परा ने नृपति वेन के पुत्र पृथी हुए और उन्होंने ही कृषिकर्म का आरम्भ किया तथा अन्न की उत्पत्ति की।[32] वेदाङ्ग होने के कारण ज्योतिषवेदाङ्ग ने 'कृषिशास्त्र' की इस परम्परा को और अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। गृहस्थाश्रम के धर्म-निर्वहण हेतु कृषिशास्त्र की महत्ता को स्थापित किया गया और कहा गया- '*गृहस्थाचारधर्मस्य मूला कृषिरूदाहृता।*'[33] ज्योतिषपितामह महर्षि पराशर प्रणीत 'कृषि पराशर'[34] ग्रन्थ इसी सन्दर्भ में कहता है कि कृषि धन्य है, कृषि पवित्र कर्म है, प्राणियों का जीवन कृषि पर ही निर्भर है, यद्यपि कृषि कर्म में हिंसा दोष है तथापि अन्नादि द्वारा अतिथि सत्कार करने से कृषक कृषिकर्म के हिंसादि दोष से मुक्त हो जाता है। 'मेघदूतम्' ग्रन्थ में अलकापुरी मार्ग वर्णन प्रसङ्ग में कृषि की महत्ता और उसमें मेघ की भूमिका का निरूपण किया गया है। कृषिकर्म द्वारा ही भूमि 'अबन्ध्या'[35] संज्ञा से सही अर्थ में सुशोभित हो पाती है। कृषि की सफलता वृष्टि पर ही निर्भर होती है- '*वृष्टिमूला कृषि: सर्वा*'[36]। ज्योतिर्विद्या की कृषिशास्त्रीय शाखा के इस सिद्धान्त का समर्थन महाकवि कालिदास अपनी कालजयी कृति 'मेघदूतम्' में करते हैं- '*त्वय्यायत्तं कृषि फलमिति...*'।[37] यद्यपि माल प्रदेश के ऊपर से गुजरते समय ग्रामीण स्त्रियों के सरस, सरल, प्रेममय, संतृष्ण व साभिलाष दृष्टिपात के सन्दर्भ में उपरोक्त पंक्ति प्रयुक्त की गई है तथापि ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसी घटनाक्रम का मूल्याङ्कन करें तो आचार्य वराहमिहिरकृत 'बृहत्संहिता' स्पष्टतया निरूपित करता है कि ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा बीत जाने के बाद पूर्वाषाढा आदि नक्षत्रों में हुई वृष्टि कृषिजन्य शुभ फल उत्पन्न करने वाली होती है।[38]

वास्तुशास्त्र-

'मेघदूतम्' गीतिकाव्य के दो प्रसङ्गों उज्जयिनी वर्णन तथा अलकापुरी वर्णन क्रम में वास्तुशास्त्रीय तत्त्वों का साक्षात्कार होता है।[39] राजप्रासादों एवं देवालय के स्वरूप के साथ-साथ नगर योजना व विस्तीर्ण राजमार्गों का संकेत उज्जयिनी वर्णन में उपलब्ध है। इसी प्रकार अलकापुरी के गगनस्पर्शी शिखरों और मणिजटित फर्श से युक्त प्रासाद वर्णन अत्यन्त मनोरम तथा तत्कालीन समाज में प्रयुक्त वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रस्तुतीकरण करता है। यक्षों के इन भवनों के लिए महाकविकालिदास ने 'विमान' संज्ञा का प्रयोग किया है-'*नेत्रा: नीता: सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी।*'[40] वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वैराज्य कुल से सम्पन्न प्रासाद जिनका निर्माण स्वर्ण-रजत-मणि-मुक्ता-प्रवालादि से होता है तथा जो देवलोकादि में अपनी कामना के अनुसार स्वच्छन्दचलित होते हैं। वही प्रासाद देवताओं में 'नागर', दानवेन्द्रों में 'द्राविड़', गन्धर्वों में 'लतिन', यक्षों में विमान, विद्याधरों में 'मिश्रक', व्यन्तरों में 'वराटक', नागों में 'सान्धार' तथा नरेन्द्रों में 'भूमिज' संज्ञा से जाने जाते हैं।[41] महाकवि ने उत्तरमेघ में यक्ष के जिस भवन का वर्णन किया है वह मणियों द्वारा निर्मित अतएव इन्द्रधनुष की शोभा से युक्त, मरकतमणि की शिलाओं से बनी सीढ़ियों वाली बावड़ी से सुशोभित, माधवीलता-अशोक-बकुल वृक्षादि से युक्त क्रीड़ा-पर्वत, नीलमणि तथा स्फटिकमणि से निर्मित वासयष्टि से संयुक्त है। इस भवन के मुख्यद्वार पर शङ्ख और पद्म निधियाँ अङ्कित हैं। वास्तुशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'समराङ्गणसूत्रधार' में प्रासाद योजना क्रम में मनोहर चित्ताकर्षक अशोक वाटिका और स्नानगृह बनाने का विधान है। यह वाटिका और स्नानगृह लतामण्डपादि, लताकुञ्ज, शैल-शिखर, जल से भरी बावड़ियों तथा पुष्पवीथिकाओं से सुशोभित होनी चाहिए।[42] इन राज प्रासादों (विमानों) में विविध पादपरोपण का विधान भी है-'*...मुनिवरौ मन्दारपारिद्रुमौ*'[43], उत्तरमेघ में यही मन्दार वृक्ष यक्ष के घर की पहचान बनता है।

वृष्टिविज्ञान-

ज्योतिषशास्त्र की संहिताशाखा के अन्तर्गत 'वृष्टि-विज्ञान' के विविध विषय यथा मेघोत्पत्ति, मेघगर्भधारण, प्रवर्षण, गर्भविनाश, गर्भपुष्टि, जलप्रमाण, वर्षणप्रमाण, वातादि द्वारा वृष्टिफलज्ञान, सद्योवर्षणादि समाहित होते हैं। मेघ के अवयवों के विषय में कवि कालिदास की उक्ति है- '*धूमज्योति: सलिलमरुतां सन्निपात:...*।' 'मेघदूतम्' में यक्ष ने मेघ से कहा है कि-'*त्वय्यायतं कृषिफलमिति....*'[44] अर्थात् कृषि का फल तुम्हारे (मेघ के) ही अधीन है। ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध में भी कहा गया है- '*अन्नं जगत: प्राणा: प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम्*'।[45] अर्थात् अन्न जगत के प्राण का आधार है और वृष्टिकाल अन्न का आधार है। वृष्टि विज्ञान में मेघ गर्भधाराणादि विषय में विविध मासों से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त होते है। इसी प्रकार आषाढ मास में हवा और मेघ के आधार पर भी वृष्टि प्रमाण का निर्धारण होता है- '*आषाढ्यां भास्करास्ते सुरपतिककुभे वाति वाते सुवृष्टि:...*।'[46] साथ ही मेघों की आकृति के संदर्भ में कहा गया है कि बिजली सहित, सुगन्धित, मधुर स्वर वाले, सुन्दर वर्ण व आकृति वाले, शुभ घोषणा वाले और अमृत समान वर्षा करने वाले मेघ सुभिक्ष के सूचक होते हैं।[47] 'मेघदूतम्' ग्रन्थ में भी यथावसर 'मेघ' के विविध स्वरूप व आकृति की बात की गई है और वे समस्त आकृतियाँ वृष्टिविज्ञान के आलोक में शुभफल ही सिद्ध होती हैं। शुभशकुन, शुभचिन्हों सहित मेघ समूह वृष्टिकारक, क्षेम, कुशल, सुभिक्ष तथा विजय की सूचना देते हैं।

स्वप्नशास्त्र-

ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध में स्वप्नशास्त्रविषयक सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। कालान्तर में ज्योतिषशास्त्र की मुहूर्त्तशाखा के ग्रन्थकारों ने अपनी कृतियों में स्वप्नविज्ञान को विशेष महत्त्व दिया है। विविध स्वप्नों के आधार पर फलादेश-कथन इस शास्त्र का वैशिष्ट्य है। 'मेघदूतम्' ग्रन्थ में यक्ष-यक्षिणी के स्वप्नों का वर्णन है। यक्ष-यक्षिणी के वे स्वप्न स्वप्नशास्त्र के दृष्टिकोण में भावी घटनाओं के सूचक ही हैं।[48] स्वप्नों के कारण और उनके प्रभेदों के सन्दर्भ में ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों का कथन है कि- 'धातुप्रकोप, ग्रहकोप, चिन्ता, अभिचार, गुह्यकों का प्रभाव, भूत या भविष्य की घटनाओं के कारण स्वप्न-दर्शन होते हैं। इसी तरह दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भावज तथा दोषज भेद से स्वप्न के सप्त प्रभेद कहे गए हैं।'[49] 'मेघदूत' में जिन स्वप्नों का वर्णन प्राप्त होता है वे स्वप्न यक्ष ओर यक्षिणी के विविध रमण-प्रसङ्ग से ही सम्बन्धित हैं। विरही यक्ष अपने स्वप्न में जहाँ यक्षिणी का आलिङ्गन करता हुआ दृष्टिगत होता है[50], वहीं यक्षिणी के स्वप्न में यक्ष के मिलन की संभावना का प्रसङ्ग मिलता है।[51] यक्षिणी के एक अन्य स्वप्न में यक्ष किसी अन्य स्त्री के साथ रमण करता हुआ दिखता है।[52] उपरोक्त स्वप्नों का यदि स्वप्नशास्त्र के आधार पर मूल्याङ्कन करते हैं तो ज्ञात होता है कि स्वप्नों की उत्पत्ति का आधारभूत ग्रह 'चन्द्रमा' है- '*निद्राप्रभुं चन्द्रमसं च.... ये स्वप्न संज्ञा शशि सम्भवास्ते*।'[53] चन्द्रमा मन का भी कारक है अतएव मनोगत विविध विचार-इच्छादि का स्वप्न रूप में प्राप्त होना सम्भव है।[54] स्वप्नशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न में रुदन तथा स्वयं का स्त्री प्रसङ्ग[55] शुभ फलदायी होता है। परन्तु परस्त्री के साथ संभोग दर्शन भावी अशुभ का सूचक कहा गया है।[56] '*निद्रायां त्वमते शोकं पण्डिते वाञ्छितं फलम्*' अर्थात् निद्रावस्था में शोकजन्य-स्वप्न द्रष्टा मनुष्य को इच्छित फल की प्राप्ति होती है।[57] स्वप्नशास्त्रीय ग्रन्थों में विविध स्वप्नों के फल प्राप्ति के कालनिर्धारण-विषयक सिद्धान्त भी प्राप्त होते हैं।[58]

रत्नशास्त्र-

वैदिककाल से ही रत्नों का महत्त्व स्थापित है। विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रत्नों के प्रयोगों का विधान किया गया है। जहाँ तक ज्योतिषशास्त्रीय पृष्ठभूमि में रत्नों के उपयोग का प्रश्न है तो ग्रहशान्ति, ग्रह पुष्टिकरण, वास्तुशास्त्रीय प्रयोग, शकुनशास्त्रीय मंगल-द्रव्य के रूप में रत्नों का महत्त्व स्थापित है। ज्योतिषशास्त्रोक्त सूर्यादि नवग्रहों के माणिक्य, मोती, विद्रुम, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद और वैदूर्यमणि रत्न कहे गये हैं।[59] इसके अतिरिक्त स्फटिक, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त आदि अन्य रत्नों के लक्षण व प्रयोगादि का वर्णन रत्नशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है- सूर्यकान्त मणि से अग्नि उत्पन्न होती है तथा चन्द्रकान्तमणि से जल झरता है- '*रविकान्ताओ अग्गी सतिकन्ताओ झरेइ अमिय जलं*।'[60] 'मेघदूतम्' ग्रन्थ में विविध रत्नों का यथावसर प्रयोग हुआ है। इन्द्रधनुष का रत्नों की कान्ति के साथ साम्य स्थापना की गई है।[61] उज्जयिनी की समृद्धि का वर्णन[62] हो अथवा अलकापुरी के भव्य राजप्रासादों का अलौकिक चित्रण[63], सर्वत्र विविध महारत्नों का अद्भुत तथा अद्वितीय वर्णन मिलता है।

उपरोक्त विविध ज्योतिषशास्त्रीय स्कन्धों के अतिरिक्त पुनर्जन्म, भाग्यचक्र, इन्द्रचाप, पशु-पक्षी लक्षण, लताकुसुमादि, दशा, पर्व-निर्णय, भूगोल वर्णनादि का 'मेघदूतम्' गीतिकाव्य में बहुतायात प्रयोग दृष्टिगत होता है। यद्यपि 'मेघदूतम्' निश्चय ही ज्योतिषशास्त्र का स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, तथापि महाकवि कालिदास की जिस लेखनी ने 'कालामृतम्' तथा 'ज्योतिर्विदाभरणम्' नामक अद्वितीय ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन किया है, वही दिव्य लेखनी तथा काव्यकौशल 'मेघदूतम्' ग्रन्थ के कथानक में ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तों का गुम्फन अत्यन्त कुशलतापूर्वक करने में सफल सिद्ध हुई है। ज्योतिषशास्त्र के विविध स्कन्ध यथा शकुनशास्त्र, वास्तुशास्त्र, वृष्टिविज्ञान, कृषिशास्त्र, रत्नविज्ञान, सामुद्रिकशास्त्र, फलकुसुमलता, स्वप्नशास्त्र आदि में वर्णित सिद्धान्तों के परीक्षण द्वारा यह भी सूचित होता है कि यक्ष ने मेघ को अपने संदेश-प्रेषण रूपी जिस कार्य के लिए प्रवृत्त किया है वह कार्य अवश्य सफलता को प्राप्त होगा तथा शीघ्र ही यक्ष तथा यक्षिणी के पुनर्मिलन की संभावना भी बनेगी। इसी तथ्य की पुष्टि 'मेघदूतम्' के श्लोक द्वारा भी होती है-

'श्रुत्वा वार्ता जलदकथितां तांधनेशोऽपि सद्यः शापस्यान्त सदयहृदयः संविधायास्तकोपः।

संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तो भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शाश्वत।।'

सन्दर्भ-

1. याजुष् ज्योतिष; 3
2. ज्योतिषरत्नमालाय; 1/4
3. बृहत्संहिता; 2/18, 19, 23
4. आर्चज्यौतिषम्; 3
5. सूर्यसिद्धान्त; मध्यमाधिकार, 10
6. मेघदूतम्; पूर्वमेघ-27, उत्तरमेघ-48
7. तदैव; पूर्वमेघ-19

8. तदैव; पूर्वमेघ- 9
9. तदैव; उत्तरमेघ-48
10. तदैव; उत्तरमेघ-28
11. तदैव; पूर्वमेघ- 1, 2, उत्तरमेघ-27
12. महाभारत; 1/72/10
13. वसन्तराजशकुनम्; 1/7
14. मेघदूतम्; पूर्वमेघ-10,
15. तदैव
16. तदैव
17. तदैव; पूर्वमेघ-11
18. तदैव; पूर्वमेघ-23
19. मुहूर्त्तकल्पद्रुम; यात्राकुसुम, 116
20. बृहज्ज्यौतिषसार:, यात्राप्रकरण, 68-72
21. मुहूर्त्तदीपक; 33
22. प्रश्नमार्ग; 24/18
23. मुहूर्त्तमार्त्तण्ड; यात्राप्रकरण-15
24. ज्योतिर्विदाभरण; 11/98
25. शुद्धिदीपिका; 8/92
26. सामुद्रिकशास्त्रम्; 1/3
27. मेघदूतम्; उत्तरमेघ-22
28. तदैव; उत्तरमेघ-44
29. बृहद्स्त्रीजातकम्; 2/2
30. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्; 83/22,24,29
बृहज्ज्यौतिषसारम्; 21/121-126
'...परिपक्वबिम्बफलतुल्य:।'- सामुद्रिकशास्त्रम्; 4/142
'...मृगनेत्रा.....शुभानारी।' -तदैव; 4/165
'भ्रूर्वक्रतुल्या सूक्ष्मा च योषितां सा सुखावहा।' - भविष्यमहापुराण
31. ऋग्वेद; 10/28/8
32. अथर्ववेद; 8/10(4)/10-11
33. बृहस्पति संहिता; 28/19
34. कृषिपराशर; 1/8
35. मेघदूम्; पूर्वमेघ-11
36. कृषि पराशर; 1/10
37. मेघदूतम्; पूर्वमेघ-16
38. बृहत्संहिता; 23/1
39. मेघदूतम्, पूर्वमेघ, 35, 37, 38
40. तदैव; उत्तरमेघ-8
41. अपराजितपृच्छा; सूत्र-106, 12-13
42. समराङ्गणसूत्रधार; 15/28-29
43. वास्तुकल्पलता; 6/42 कालामृतम्; 6/26
44. मेघदूतम्; पूर्वमेघ-5
45. बृहत्संहिता; गर्भलक्षणाध्याय, श्लोक-1
46. बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्; 5/3
47. भद्रबाहुसंहिता; 8/25
48. प्रश्नमार्ग; 21/41
49. तदैव; 21/30
50. मेघदूतम्; उत्तरमेघ, श्लोक-41
51. तदैव; श्लोक-37
52. तदैव; उत्तरमेघ, श्लोक-51
53. यवनजातकम्; 68/12
54. स्वप्नप्रकाशिका; श्लोक-108
55. मुहूर्तकल्पद्रुम; विचित्रकुसुम, श्लोक-12-13
56. मत्स्यपुराण; 242/10
57. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण; श्रीकृष्णजन्मखण्ड, 77/13
58. स्वप्नकमलाकर; 1/5-7
59. भावप्रकाश; 12/14-15
60. रयण-परीक्खा; श्लोक-93, रसरत्नसमुच्चय, 4/6
61. मेघदूतम्; पूर्वमेघ, श्लोक-15
62. तदैव; पूर्वमेघ, श्लोक-33
63. तदैव; उत्तरमेघ, श्लोक-9

ISSN 2278 - 0327

आधुनिक शिक्षा के निकष पर औपनिषदिक शिक्षण-विधियाँ

डॉ. रश्मि यादव
असि०प्रो० संस्कृत
का०न०रा०स्ना० महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उत्तर प्रदेश

'शिक्षा' सभ्यता के उषः काल से आधुनिक युग पर्यन्त मानव संस्कृति के सृजन और परिष्कार का सशक्त माध्यम बनी हुई है। शिक्षा नवाचार, नवोन्मेष और सम्पूर्ण वैचारिक चिन्तन का उद्गम स्रोत है। "*नास्ति विद्यासमं चक्षुः*" महाभारत के इस सूत्रवाक्य से शिक्षा की अपरिहार्यता स्वतः सिद्ध होती है। शिक्षा शब्द "शिक्ष्" धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है- ज्ञानार्जन। मानव की मूलप्रवृत्तियों का परिमार्जन करना शिक्षा है। इस लक्ष्य की सम्पूर्ति तभी सम्भव है जब समुचित पद्धति से शिक्षण को सम्पादित किया जाय। आधुनिक शिक्षाविद् नाना प्रकार की शिक्षण-विधियों, नीतियों और युक्तियों के माध्यम से शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली एवं सकारात्मक बनाने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। एतदर्थ, उपनिषदों में प्रतिपादित शिक्षण-सिद्धान्तों और प्रविधियों के पुनरावलोकन की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षण प्रक्रिया को नवीन एवं सार्थक दिशा देने के लिए औपनिषदिक शिक्षण-विधियों के उपादेय तत्त्व गवेषणीय हैं। औपनिषदिक शिक्षण-विधियों के समकालिक महत्त्व और औचित्य को मूल्याङ्कित करते हुए शिक्षण में अपेक्षित व सकारात्मक सुधार और नवप्रयोग किया जा सकता है।

'उपनिषद्' आर्ष मनीषा के दार्शनिक चिन्तन, संकल्पना और मान्य सिद्धान्तों के आधारभूत ज्ञानराशि हैं। उपनिषदों में मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष के सर्वाधिक प्रेरक और प्रासङ्गिक तत्त्वों की दार्शनिक विवेचना अध्यात्म की उच्च भूमि पर की गई है। इन ग्रन्थों के रहस्यमयी मंत्रों में भारतीय मनीषा अत्यन्त प्रौढ़ और प्रखर रूप से मुखर हुई है। मानवीय मेधा के चूड़ान्त स्वरूप को उपनिषदों के दार्शनिक विमर्शों के निकष पर पर खा जा सकता है। औपनिषदिक "पराविद्या" अर्थात् आत्मज्ञान उसी उच्चतम ज्ञान का प्रकटीकरण है। औपनिषदिक ज्ञान की सरिता तात्कालिक ऋषियों के आश्रमों से प्रस्फुटित हुई। ज्ञान-विज्ञान की सुदीर्घ शृङ्खला को प्रादुर्भूत करने वाले औपनिषदिक आश्रम वस्तुतः गतिमान शिक्षण संस्थाएँ थीं जिन्हें गुरुकुल की संज्ञा दी जाती है। उन गुरुकुलों के संरक्षक आचार्य गुरुकुल में ब्रह्मचारी शिष्य अर्थात् अन्तेवासी को जीवन के विविध आयामों के साथ 'आत्मज्ञान' जैसे दुरूह विषय की शिक्षा देने के लिए नाना प्रकार की शिक्षण-विधियों का प्रयोग किया करते थे। औपनिषदिक गुरुकुलों में प्रयुक्त शिक्षण-विधियों में परोक्ष-विधि, व्युत्पत्ति-विधि, सूत्र-विधि, आख्यायिका-विधि, सादृश्य-विधि, संवाद-विधि, समन्वय-विधि, स्वगत-भाषण विधि, प्रश्नोत्तर-विधि, तात्कालिक, उत्तर-विधि, अध्यारोप-अपवाद विधि, कार्य-कारण विधि और नेति-नेति विधि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आधुनिक शिक्षा जगत् में पाठ्य-वस्तु की प्रकृति के अनुरूप प्रस्तुतीकरण की शैली को शिक्षण-विधि के रूप में परिभाषित किया जाता है। "शिक्षण-प्रविधियाँ ऐसे साधन हैं, जिनके प्रयोग से, छात्र पाठों में रूचि लेने लगते हैं, पाठ्य-सामग्री उन्हें अधिक स्पष्ट होने लगती है और वे सरलता व सुगमता से विषयवस्तु को हृदयंगम करने में समर्थ हो जाते हैं।"[1] उपनिषद्काल में लौकिक दृष्टान्तों के प्रस्तुतीकरण द्वारा शिक्षण करने की विधि अधिक प्रसिद्ध थी जिसे आधुनिक शिक्षाशास्त्र की भाषा में "उदाहरण प्रविधि" की संज्ञा दी जाती है। सटीक और रोचक उदाहरणों का प्रयोग करके विषयवस्तु को सरल, रोचक और ग्राह्य बनाया जा सकता है। उदाहरण-प्रविधि का अनेकशः प्रयोग श्वेदाश्वतरोपनिषद् में द्रष्टव्य है। जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जैसे जटिल दार्शनिक विषय को व्याख्यायित करने के लिए एक नेमि, तीन घेरों, सोलह सिरों, पचास अरों, बीस प्रत्यरों, छः अष्टकों से युक्त विचित्र रूप वाले पाश और एक नाभि से युक्त त्रिमार्ग भेद वाले "अलौकिक चक्र" का द्रष्टान्त प्रस्तुत किया गया है।[2] अन्यत्र भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए अलौकिक नदी का उदाहरण निर्दिष्ट किया गया है। व्योम, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पञ्च तत्त्वों से सृजित पञ्च दुःखों से युक्त, पञ्च इन्द्रियों, पञ्चबुद्धि और आदिमूल से युक्त सृष्टि को पचास भेदों वाली ऐसी नदी के

सादृश्य निरूपित किया गया है जो पाँच स्रोतों से प्राप्त जल वाली, पाँच स्थानों से उत्पन्न, पाँच प्राण-ऊर्मियों, पाँच भवरों, पाँच वक्र प्रवाह और पाँच पर्वों से युक्त है।[3] उपनिषदों में अलौकिक विषयों का प्रतिपादन करने के लिए समतुल्य वस्तुओं का उदाहरण दिया जाता था। बृहदारण्यकोपनिषद् (2.4.7-14) में याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपनी भार्या मैत्रेयी को दुन्दुभि, शंख और वीणा जैसी लौकिक वस्तुओं के उदाहरण द्वारा अद्वैत आत्मज्ञान का उपदेश दिया है।

औपनिषदिक आचार्यों ने विषयवस्तु की प्रस्तुति को प्रभावशाली बनाने के लिए लौकिक उदाहरणों के साथ ही सङ्केतों के माध्यम से विषय-प्रवर्तन का सुन्दर और सफल प्रयोग किया है। इस दृष्टि से छान्दोग्योपनिषद् विशेष रूप से पठनीय है जहाँ शाण्डिल्य-विद्या के प्रसङ्ग में ब्रह्म (तत्) से जगत् की उत्पत्ति (ज), स्थिति (इति) और लय (ल) को व्याख्यायित करने के लिए ''तज्जलान्''[4] इस सङ्केतात्मक शब्द का प्रयोग किया गया है। उपनिषत्साहित्य में दृष्टान्त-विधि या उदाहरण-विधि के प्रयोग की बहुलता परिलक्षित होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि औपनिषदिक शिक्षण पद्धति में यह विधि अधिक लोकप्रिय थी। '' *परोक्ष प्रिया इव हि देवा:*''[5] (अर्थात् देवताओं को परोक्षता प्रिय है,) यह उद्घोषणा भी उपनिषदीय मनीषियों की परोक्षप्रियता की सूचक है। यह शिक्षण-विधि आधुनिक शिक्षण-प्रक्रिया में अत्यधिक प्रासङ्गिक है क्योंकि इस विधि द्वारा रोचक, सजीव और औचित्यपूर्ण उदाहरणों के माध्यम से निरस और जटिल विषयवस्तु को भी बोध्यगम्य बनाया जा सकता है। यह शिक्षण पद्धति छात्रों की कल्पना-शक्ति, बौद्धिक-क्षमता और स्थूल से सूक्ष्म एवं सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चिन्तन-शक्ति के विकास में सहायक है।

उपनिषदों में दृष्टान्त विधि के पश्चात् जिस शिक्षण विधि का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, वह है- व्युत्पत्ति विधि। तात्कालिक शिक्षा-पद्धति में व्युत्पत्ति विधि का प्रयोग विशेष और क्लिष्ट शब्दों के अर्थ-प्रत्यायन के लिए किया जाता था। दूसरे शब्दों में इस विधि में शब्दों की निष्पत्ति की प्रक्रिया को प्रस्तुत करते हुए शब्दों का सटीक अर्थबोध कराया जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में ''पुरि (शरीर में) शेते (शयन करना) इति पुरुष:'' इस व्युत्पत्ति द्वारा पुरुष शब्द को आत्मा या चैतन्य-तत्त्व का बोधक माना गया है।[6] इसी प्रकार ऊँ शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर ऊँकार को ब्रह्म विषयक जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था तथा उससे भिन्न तुरीय अवस्था का बोधक माना गया है। इसमें त्रिमात्रिक ऊँकार की प्रथम मात्रा ''अकार'' को ब्रह्म की ''जाग्रत वैश्वानर'' नामक अवस्था का बोधक माना गया है।[7] ऊँकार की द्वितीय मात्रा ''उकार'' को श्रेष्ठ होने के कारण और द्विमात्रात्मक होने से ''स्वप्नावस्था रूप तैजस''[8] नामक ब्रह्म की द्वितीय अवस्था का सूचक माना गया है। इसी क्रम में ऊँकार की तृतीय मात्रा 'मकार' को मापक और लयस्थानीय ''सुषुप्त अवस्था वाला प्राज्ञ'' नामक ब्रह्म की तृतीय अवस्था का प्रतिपाद्य माना गया है।[9] जबकि मात्रा रहित ऊँकार अव्यवहार्य प्रपञ्चातीत एवं कल्याण रूप सृष्टि का बोधक है, जो ब्रह्म की चतुर्थ अवस्था (तुरीय) है।[10] व्युत्पत्ति विधि का परिष्कृत स्वरूप यास्क कृत निरुक्त में द्रष्टव्य है जिसमें अनेक वैदिक शब्दों का निर्वचन किया गया है। आज भी ''भाषा-शिक्षण'' में यह विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। इस विधि द्वारा जटिल शब्दों के अर्थ को स्पष्ट किया जा सकता है और छात्रों को शब्दों के मूल भावार्थ का अवबोध कराया जा सकता है। किन्तु वर्तमान में इस विधि का प्रयोग अत्यल्प हो गया है जिसके कारण शब्दों का अर्थबोध कराना दुष्कर होता जा रहा है। शिक्षण पद्धति में इस विधि के समुचित प्रयोग से शास्त्रीय और पारिभषिक शब्दों के अर्थप्रत्यायन द्वारा वाचन और लेखन-कौशल को परिमार्जित किया जा सकता है।

उपनिषद्युगीन आचार्य विस्तृत एवं गूढ़ विषयों को अल्प अक्षरों में निबद्ध करके प्रस्तुत करने में पाराङ्गत थे। इस शिक्षण-प्रविधि को ''सूत्र-विधि'' के नाम से अभिहित किया जाता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म''[11], ''तत्त्वमसि''[12], ''अहं ब्रह्मास्मि''[13], ''प्रज्ञानं ब्रह्म''[14] इत्यादि सूत्रवाक्यों के श्रवणमात्र से इन वाक्यों में समाहित गूढ़ एवं अध्यात्मपरक चिन्तन की व्याख्याएँ वैदिक शिष्यों के मस्तिष्क में अनायास ही अङ्कित हो जाती थी। वर्तमान में, विज्ञान तथा गणित जैसे विषयों के अध्यापन में इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों में इस विधि के प्रयोग के लिए शोध एवं नवप्रयोग किये जाने की महती आवश्यकता है। यह शिक्षण प्रविधि छात्रों की स्मरण-शक्ति और तर्कशक्ति को तीक्ष्ण करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

औपनिषदिक शिक्षाविद् विषयवस्तु को बोधगम्य और रोचक बनाने के लिए मनोरञ्जक एवं प्रभावोत्पादक आख्यानों की प्रस्तुतीकरण करने की 'आख्यायिका-विधि' से भलीभाँति परिचित थे। आधुनिक शिक्षाशास्त्र में इस विधि को ''कहानी-कथन प्रविधि'' की संज्ञा दी जाती है। ''शुन: शेपोपाख्यान''[15], ''जलोपाख्यान''[16] और ''पुरुरवा-उर्वशी आख्यान''[17] जैसे रोचक आख्यानों से युक्त वैदिक मेधा की चरमपरिणति उपनिषदों में द्रष्टव्य है। केनोपनिषदीय 'उमा-हेमवती-इन्द्र'[18] और कठोपनिषदीय

'यम नचिकेता'[19] आख्यान इस प्रविधि के सुन्दर निदर्शन हैं। वर्तमान में कहानी-कथन प्रविधि प्रारम्भिक कक्षाओं में अधिक लोकप्रिय है। यह प्रविधि विद्यार्थियों की जिज्ञासा, कल्पनाशक्ति और तर्कशक्ति के संवर्धन में उपादेय है। विषयवस्तु के निरस, सूक्ष्म और जटिल अंशों के स्पष्टीकरण में इस प्रविधि का अनुप्रयोग अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है।

उपनिषद्युगीन गुरुकुलों में कथोपकथन पर आधृत ''संवाद-विधि'' के प्रचलित होने के भी पुष्ट साक्ष्य समुपलब्ध होते हैं। औपनिषदिक आचार्य आध्यात्मिक विषयों को पूर्णत: स्पष्ट करने के लिए केवल कोरे उपदेश या व्याख्यान पर ही आश्रित नहीं रहते थे, अपितु विद्यार्थियों से संवाद स्थापित किया करते थे। उपनिषद्युगीन शिक्षण-प्रक्रिया शिक्षक-केन्द्रित होने पर भी एकपक्षीय न होकर द्विपक्षीय थी जिसमें गुरु और शिष्य के मध्य स्वस्थ अन्त: सम्बन्ध होता था। तात्कालिक आचार्य शिक्षक-मात्र नहीं थे अपितु शिष्य के संरक्षक और अभिभावक होते थे जिनसे शिष्य अपनी समस्त जिज्ञासाओं और शङ्काओं के समाधान के लिए स्वतंत्र प्रश्न रहते थे। संवाद-विधि में प्रयुक्त संवाद द्विपक्षीय होते थे जिसमें गुरु और शिष्य दोनों ही वक्ता भी होते थे और श्रोता भी होते थे। संवाद-विधि का प्रादुर्भाव ऋग्वेद के यम-यमी संवाद (10/10), पुरुरवा-उर्वशी-संवाद (10/95), सरमा-पणि संवाद (10/108), विश्वामित्र-नदी (3/33) इत्यादि संवाद सूक्तों से माना जा सकता है। तथापि इस विधि के पूर्ण विकसित स्वरूप का दिग्दर्शन उपनिषदों में होता है। याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद[20], यम-नचिकेता संवाद और शौनक-अङ्गिरा संवाद[21] इस विधि के अप्रतिम उदाहरण हैं जिसमें शिक्षक एक उपदेशक और छात्र जिज्ञासु प्राश्निक के समान विद्यमान रहता है। संवाद-विधि शिक्षण की प्रभावशाली विधि है, इसके माध्यम से शिक्षण कार्य करने से छात्रों की चिन्तनशक्ति एवं भाषा-कौशल का अपेक्षित विकास किया जा सकता है। इस शिक्षण-विधि में छात्रों को भावाभिव्यक्ति एवं जिज्ञासाओं के समाधान करने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध होता है।

संवाद-विधि उत्तरोत्तर विकसित होती हुई प्रश्नोत्तर-विधि में परिणत हुई। प्रश्नोत्तर-विधि में शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा की गयी पृच्छाओं का सरल एवं सारगर्भित उत्तर देकर उसके संशय का समाधान करने का प्रयास करता है और साथ ही शिक्षक स्वयं भी विद्यार्थियों से प्रश्न करके उनके ज्ञान और चिन्तन के स्तर का मूल्याङ्कन करता है। इस विधि का चिश्राकर्षक एवं सुन्दर निदर्शन प्रश्नोपनिषद् में द्रष्टव्य है, जहाँ महर्षि पिप्पलाद ने सुकेशा भारद्वाज, शैब्य सत्यकामा, सौर्यायणी, गार्ग्य, आश्वलायन, भार्गव तथा कबन्धी इन छ: ऋषियों को प्रश्नोत्तर के माध्यम से ब्रह्मज्ञान प्रदान किया। (प्रश्नोपनिषद् प्रथम से षष्ठ प्रश्न तक)। कठोपनिषद् और बृहदारण्यकोपनिषद् में भी इस विधि के सटीक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। कठोपनिषद् में यम और नचिकेता के मध्य दार्शनिक विमर्श प्रश्नोत्तर-विधि से ही निष्पादित हुआ है। इसी प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद् के चतुर्थ अध्याय में याज्ञवल्क्य जनक संवाद तथा गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद[22] में ऋषि याज्ञवल्क्य जनक और गार्गी द्वारा पूछे गये दार्शनिक प्र्शनों का सारगर्भित और तार्किक उत्तर देते हुए दिखाई देते हैं।

उपनिषद्युगीन प्रश्नोत्तर-प्रविधि वस्तुत: वर्तमान में प्रचलित वाद-विवाद विधि का ही प्रतिरूप हैं। इस विधि के लिए वैदिक वाङ्मय में अधिकांशत: ''शास्त्रार्थ'' शब्द का प्रयोग किया गया है। शास्त्रार्थ में प्रतियोगिता का भाव विद्यमान रहता था और वादी-प्रतिवादी के द्वारा प्रस्तुत किये गए तर्क के आधार पर विजेता निर्णित किये जाते थे। जनक की सभा में आयोजित शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य आर्तभाग, भुज्य, उषस्त, कहोल, गार्गी, आरुणि, शाकल्य और जनक के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का तार्किक और प्र्रामाणिक उत्तर देकर विजयी घोषित हुए थे।[23]

संवाद-विधि, प्रश्नोत्तर-विधि तथा वाद-विवाद विधि की समष्टि ''समन्वय विधि'' के रूप में परिलक्षित होती है। औपनिषदिक गुरुकुल मानवीय चिन्तन एवं गहन विचार-विमर्श की वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के समकक्ष थे। तात्कालिक परिषदों और विद्वद्गोष्ठियों में पूर्व-निर्धारित किसी गूढ़ विषय पर आयोजित शास्त्रार्थ में मनीषिगण स्वानुभूत स्वतन्त्र विचार व्यक्त किया करते थे और पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् किसी प्रबुद्ध ऋषि द्वारा इन विचारों का सामान्यीकरण करते हुए सर्वमान्य सिद्धान्त की स्थापना की जाती थी। उपनिषद्युगीन यह बौद्धिक प्रक्रिया आधुनिक शिक्षाशास्त्र में समन्वय-विधि की संज्ञा से व्यवहृत है। समन्वय-विधि का सुन्दर निदर्शन छान्दोग्योपनिषद् के उस प्रसङ्ग में द्रष्टव्य है। जहाँ छ: ऋषियों द्वारा प्रकट किये गये ब्रह्म-विषयक परस्पर भिन्न मतों का समन्वय करके कैकेय अश्वपतिनामक ऋषि सर्वसामान्य सिद्धान्त की स्थापना करते हैं।[24] इस उपनिषदीय विमर्श में ऋषियों ने स्वमान्यता एवं स्वचिन्तन के आधार पर भिन्न-भिन्न प्राकृतिक तत्त्वों को परमतत्त्व के रूप में व्याख्यायित किया है। यथा- प्राचीनशाल ऋषि को स्वर्ग रूप वैश्वानर, सत्ययज्ञ को आदित्य, इन्द्रद्युम्न को वायु, जल को आकाश, बुडिल को जल और उद्दालक को पृथ्वी ''परमतत्त्व'' के रूप में अभीष्ट है। इस

विमर्शोपरान्त कैकेय अश्वपति इन सभी मतों का समन्वय करते हुए निष्कर्ष रूप में स्वविचार को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं- ''इस आत्मरूप वैश्वानर का मस्तक-स्वर्ग, चक्षु-सूर्य, प्राण-वायु, उदर-आकाश, मूत्र-जल, दोनों पैर-पृथ्वी, वक्षस्थल-वेदी, लोभ-दर्भ, हृदय-गार्हपत्य, मन-दक्षिणाग्नि और मुख-आह्वानीय है, ऐसा जानकर उपासना करें।''[25] वर्तमान में शिक्षा को लोककल्याणकारी, समन्वयवादी एवं सर्वोन्मुखी बनाने के लिए शिक्षालयों में इस विधि के प्रयोग की महती आवश्यकता है। छात्रों के सम्मुख विभिन्न मतों को प्रस्तुत करके उसका समन्वय करते हुए शिक्षक विद्यार्थियों को सहिष्णुता, सम्भाव एवं सर्वहित जैसे उच्चतम मानवीय मूल्यों को आत्मसात् करने के लिए अभिप्रेरित कर सकता है। यह शिक्षण विधि विद्यार्थियों में अन्य मतों एवं सिद्धान्तों के ग्रहणीय तत्वों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति तथा वास्तविक तथ्य का अन्वेषण करने की जिज्ञासा को उत्पन्न करने में उपयोगी है।

उपनिषदीय गुरुकुल ज्ञान की गवेषणा में सतत् सक्रिय प्रयोगशालाएँ थी, जहाँ गुरु शिष्य की आशंकाओं का निराकरण ही नहीं करता था, अपितु उसे ज्ञानपिपासु बनाकर स्वतः समाधान प्राप्त करने के लिए नूतन शोध एवं नवाचार हेतु निर्देशित करता रहता था। इस दृष्टि से किये गये शिक्षण प्रक्रिया को ''तात्कालिकोत्तर-प्रविधि'' कहा जा सकता है। इस विधि में प्रश्न का तात्कालिक परिवेश के अनुसार उत्तर दिया जाता है और जिज्ञासु छात्र से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्ण और वास्तविक उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करे। छान्दोग्योपनिषद् में प्रजापति ने इन्द्र एवं विरोचन के आत्मविषयक प्रश्नों का पूर्ण समाधान न कहकर किञ्चित् तात्कालिक समाधान प्रस्तुत किया और यह घोषणा की कि आत्मा को पूर्णरूप से बिना जाने जो जा रहे हैं, वे देवता हो या असुर, ऐसे विचार वालों का पराभाव होगा।[26] कालान्तर में इन्द्र ने प्रजापति से पूर्ण समाधान प्राप्त किया किन्तु विरोचन में नहीं, फलस्वरूप विरोचन (असुर) का पराभव हुआ। अस्तु, यह शिक्षण की अपूर्ण विधि थी जो तात्कालिक समाधान प्रस्तुत करके छात्र को स्वतः नवीन एवं पूर्ण ज्ञान के अन्वेषण के लिए प्रेरित करती थी। शिक्षाजगत् में नवोन्मेष और नवाचार की दृष्टि से उपनिषद्युगीन यह प्रविधि अत्यन्त प्रभावकारी और व्यावहारिक विधि सिद्ध हो सकती है।

उपनिषद्युगीन आचार्य के द्वारा अध्यारोप और अपवाद विधि द्वारा शिक्षण कार्य करने के सङ्केत उपलब्ध होते हैं। सत्य पर असत्य को आरोपित करना 'अध्यारोप'[27] और इसके विपरीत उन आरोपों को हटाने की दशा को 'अपवाद'[28] कहा जाता है। 'सर्वं खिल्वदं ब्रह्म', 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'अयं आत्मा ब्रह्म' इत्यादि औपनिषदिक उपदेश इसी प्रविधि से उक्त हुए हैं। इन महावाक्यों में प्रथमतः ब्रह्म में ब्रह्माण्ड का आरोप करते हुए सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम को दर्शाया गया है। तदुपरान्त सृष्टि के वैपरित्य क्रम में प्रलयकालीन अवस्था को रेखाङ्कित करते हुए ब्रह्माण्ड का ब्रह्म में विलय प्रदर्शित किया गया है। आज भी दार्शनिक विषयों के शिक्षण में इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

मौखिक पद्धति पर आधृत उपनिषदीय शिक्षण-विधि उत्तरोत्तर तार्किक एवं तथ्यपरक होती गयी। तात्कालिक शिक्षाविद् दर्शन के सूक्ष्म एवं जटिल सिद्धान्तों के मर्मज्ञ थे। जीवन के दार्शनिक पक्ष को उद्भासित करने के लिए वैदिक मनीषा प्रकृति की सम्पूर्ण रहस्यमयी घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध पर गहन विचार करते हुए अनेकशः मुखरित हुई है। शिक्षण प्रक्रिया में कार्य से कारण तक पहुँचने की विधि 'कार्य-कारण विधि' कही जाती है। कार्य-कारण के अन्तर्सम्बन्ध के मर्मज्ञ ऋषि की यह उद्घोषणा विचारणीय है-''नेदममूलं भविष्यति।''29 (अर्थात् बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता है।) इस प्रसङ्ग में छान्दोग्योपनिषद् का सृष्ट्युत्पत्ति का दृष्टान्त ध्यातव्य है जिसमें जल रूपी कार्य का कारण अन्न, तेज रूपी कार्य का कारण जल और सत्य रूपी कार्य का कारण तेज को माना गया है।[30]

औपनिषदिक आचार्य लौकिक शब्दों के माध्यम से अलौकिक विषय को स्पष्ट करने की साधना में रत थे। वे शिष्य को परमब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का अभिज्ञान कराने के लिए अनेकानेक वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया करते थे। इसी क्रम में, एक नवीन विधि का प्रादुर्भाव हुआ जिसे 'नेति-नेति विधि' कहा जा सकता है। नेति-नेति विधि में जिस तथ्य का जितना वर्णन किया जाता है उसका उतना ही वर्णन पर्याप्त नहीं होता है, अपितु वह उससे भी कहीं अधिक होता है। वस्तुतः उपनिषदीय ऋषि लौकिक सत्य से परे पारलौकिक तत्त्व के अन्वेषी थे। वे अपनी अपरिमित मेधा और पुरुषार्थ से सम्पूर्ण प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्य का साक्षात्कार करने की दिव्य चेतना को आत्मसात् करने के लिए निरन्तर प्रवृत्त रहते थे। उन्होंने वाणी और मन इत्यादि इन्द्रियों के द्वारा अगोचर परमतत्त्व की सत्ता की अनुभूति की थी किन्तु वे इस सत्य से भलीभाँति अवगत थे कि सृष्टि के 'परमसत्य' को वाणी द्वारा व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। अतएव उन मनीषियों ने अवाङ्मानसगोचर-परमब्रह्म विषयक उपदेश हेतु जिस विधि को अङ्गीकृत किया उसे ही ''नेति-नेति'' की संज्ञा दी

गई। तात्कालिक गुरुओं ने इस विधि द्वारा ब्रह्म के अनन्त, असीमित एवं अपरिमित स्वरूप को बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। ईशावास्योपनिषद् में परमब्रह्म के स्वरूप को इसी विधि से निरूपित करते हुए उद्घोषणा की गई है कि वह (परमब्रह्म) गतिमान है और स्थिर भी, वे दूर से दूर और निकट से निकट है। वह इस सम्पूर्ण विश्व के भीतर परिपूर्ण है तथा इस विश्व के बाहर भी है।[31] वस्तुत: आचार्यों ने अगोचर एवं अव्यक्त ब्रह्मतत्त्व के स्वरूप को निरूपित करने के लिए 'नेति-नेति' विधि प्रयुक्त की है। 'नेति' निषेधात्मक या अभाव का बोधक नहीं है। नेति शब्द ईश्वर का निषेध नहीं करता है अपितु परमतत्त्व के स्वरूप निरूपण में मानव की असमर्थता को प्रकट करते हुए मानवीय शक्ति की अपर्याप्तता एवं अपूर्णता की ओर संकेत करता है। बृहदाारण्यकोपनिषद् में इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है कि वह नेति-नेति रूप से प्रतिपादित आत्मा अगृह्य है अर्थात् वह ग्रहण नहीं किया जाता; वह अशीर्य है, अर्थात् शीर्ण (नष्ट) नहीं होता, असङ्ग है, अर्थात् उसका सङ्ग नहीं होता है, अबद्ध है, व्यथित नहीं होता और क्षीण नहीं होता।[32]

उपनिषदीय मंत्रों में अनुस्यूत शैक्षिक मान्यताओं एवं सिद्धान्तों की गवेषणोपरान्त यह सिद्ध होता है कि उपनिषद्युगीन ऋषि अनेक विधियों द्वारा शिक्षण-कार्य करने में सिद्धहस्त थे। औपनिषदिक ऋषियों द्वारा व्यवहृत शिक्षण-विधियाँ आज भी उपादेय और ग्रहणीय हैं। आज शिक्षाशास्त्र में जिन शिक्षण-पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है, उनमें से अनेक विधियों का आदिस्वरूप उपनिषदों में समाहित है। समस्त औपनिषदिक शिक्षण-पद्धतियाँ प्राय: दार्शनिक विषयों के अध्यापन में प्रयुक्त होती थी जो वर्तमान में लौकिक और तकनीकी विषयों के शिक्षण की दृष्टि से भले ही पूर्णरूप से उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती हैं तथापि इन विधियों की उपादेयता को पूर्णत: नकारा भी नहीं जा सकता है। सामाजिक विषयों के अध्यापन में तो प्राय: सभी उपनिषद्युगीन शिक्षण-पद्धतियों को कुछ संशोधनों के साथ ग्रहण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गणित, विज्ञान और अन्य तकनीकी विषयों के शिक्षण में सूत्र विधि, कार्य-कारण विधि एवं प्रश्नोत्तर विधि लाभप्रद सिद्ध हो सकती है।

वर्तमान में, उपनिषदों में उपनिबद्ध शिक्षण-पद्धतियों के अनुशीलन से शिक्षक शिक्षण-प्रक्रिया को अपेक्षाकृत अधिक सुगम, व्यवस्थित, समायोजित और छात्रों के लिए बोधगम्य बना सकते हैं और कतिपय नवीन विधियों का अनुप्रयोग भी कर सकते हैं। एतदर्थ, उपनिषदीय ज्ञानराशि को आत्मसात् करने की महती आवश्यकता है। शिक्षण कौशल को सशक्त, प्रभावशाली, व्यावहारिक, बौद्धिक और सर्वग्राह्य बनाने के लिए उपनिषद्युगीन शिक्षण-पद्धतियों का ज्ञान और यथास्थान उनका समुचित एवं औचित्यपूर्ण प्रयोग आवश्यक है।

सन्दर्भ-

1. डॉ0 एस0पी0 कुलश्रेष्ठ, शैक्षिक तकनीकी के मूल आधरार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, सोलहवाँ संस्करण, 2014/15
2. श्वेदाश्वतरोपनिषद् 1.4- तमेकनेमि त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभि:। अष्टकै: षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्।।
3. श्वेदाश्वतरोपनिषद् 1.5- पञ्चस्त्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मि पञ्चबुद्ध्यादिमूलम्। पञ्चावर्तां पञ्चादु:खौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीम:।।
4. छान्दोग्योपनिषद् 3.14.1
5. ऐतरेयोपनिषद् 1.3.14
6. छान्दोग्योपनिषद् 6.8.1
7. माण्डूक्योपनिषद् 9- जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकार: प्रथमा मात्रा।
8. तदैव, 10- स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति।
9. तदैव, 11 - सुषुप्तस्थान: प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरवपीतेर्वामिनोति।
10. तदैव, 12- अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य: प्रपञ्चोपशम: शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार।
11. छान्दोग्योपनिषद् 3.14.1
12. तदैव 6.8.7
13. बृहदारण्यकोपनिषद्- 1.4.10
14. ऐतरेयोपनिषद् - 3.1.3
15. ऐतरेय ब्राह्मण
16. शतपथ ब्राह्मण- 11.8.1
17. शतपथ ब्राह्मण- 11.5.1
18. केनोपनिषद्- तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड
19. कठोपनिषद्- प्रथमोऽध्याय
20. बृहदारण्यकोपनिषद्- 2.4 एवं 4.5
21. मुण्डकोपनिषद्
22. बृहदारण्यकोपनिषद् 3.6, 3.8
23. बृहदारण्यकोपनिषद्- तृतीय अध्याय एवं चतुर्थ अध्याय का प्रथम एवं द्वितीय ब्राह्मण

24. छान्दोग्योपनिषद्– 5.11–18
25. छान्दोग्योपनिषद् 5.18.2– तस्य ह वा एतस्यामनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुविश्वरूप: प्राण: पृथग्वर्त्मात्मा संदहो बहुलो वस्तिरेव रयि: पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदय गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीय: ।
26. छान्दोग्योपनिषद् 8.8.4तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर। एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते परा भविष्यन्तीति।।
27. सदानन्द योगीन्द्रविरचित वेदान्तसार– व्याख्याकार– डॉ0 सन्तनारायण श्रीवास्तव, ''वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोप:।'' पृ0सं0 37
28. तदैव– अपवादो नाम रज्जुविवर्त्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद् वस्तुविवर्त्तस्यावस्तुनोऽज्ञानादे: प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्। पृ0सं0 115
29. छान्दोग्यापनिषद्– 6.8.3
30. तदैव– 6.8.3–4–5
31. ईशावास्योपनिषद्–5 – तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्थ तदु सर्वस्यास्य बाह्यत: ।।
32. बृहदाारण्यकोपनिषद् 4.2.4– स एष नेति नेत्यात्मागृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार– डॉ0 एस0पी0 कुलश्रेष्ठ अग्रवाल पब्लिकेशन्स, सोलहवाँ संस्करण–2014–15
2. 108 उपनिषद् (ज्ञानखण्ड) सम्पादक श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशन–संस्कृति संस्थान बरेली, संस्करण–2007
3. छान्दोग्योपनिषद्– भाषा टीकाकार– रायबहादुर बाबू जालिम सिंह, प्रकाशन–चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2008
4. बृहदारण्यकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, 13वाँ पुनर्मुद्रण।
5. केनोपनिषद्– गीताप्रेस, गोरखपुर
6. कठोपनिषद्– गीताप्रेस, गोरखपुर
7. वेदान्तसार, सदानन्द योगीन्द्र विरचित, व्याख्याकार– डॉ0 सन्तनारायण श्रीवास्तव, सुदर्शन प्रकाशन, गाजियाबाद, पञ्चम् संस्करण 2005
8. ईशावास्योपनिषद्–गीताप्रेस, गोरखपुर
9. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा–सत्यपाल रूहेला, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा। संस्करण–2012
10. प्राचीन भारतीय शिक्षण–पद्धति, प्रो0 अनंत सदाशिव अलतेकर, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2014

ISSN 2278 - 0327

श्रीमद्भागवतमहापुराण में भगवत् चेतना के विभिन्न स्तर-प्रासंगिक तुलना के आधार पर

डॉ. अक्षय कुमार मिश्र
संस्कृत विभाग, डी०ए०वी० महाविद्यालय
नन्योला, अम्बाला, हरियाणा-134003

भारतीय आध्यात्मिक साहित्यों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि- ईश्वर या भगवत् चेतना का स्तर स्थान, काल एवं पात्र की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं। एक ही ग्रन्थ में इस सत्ता का स्तर विभिन्न पात्रों के आधार पर भिन्न-भिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। शास्त्रीय ज्ञान तथा यथार्थ को जानने की अभिलाषा के अभाव से मनुष्य उन वर्ण्य विषयों के उद्देश्यों को सटीक समझ नहीं पाता है। यद्यपि भारतीय, स्वाभाविक रूप से आस्तिक या भगवत् विश्वासी होते हैं, फिर भी आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्तों को एवं भगवत् सत्ता को यथा तथ्य समझते हुए स्वीकारना उन के लिए अत्यन्त कष्टकर प्रतीत होता है ।

एक विद्वान् जो पूर्णरूप से नास्तिक है, वह भी धर्मशास्त्रों से उद्धरण देते हुए अपने अनुयायियों के समक्ष विषय वस्तु को प्रस्तुत करने में सक्षम होता है। ग्रन्थ एक, कर्ता एक, भाषा एक फिर भी सिद्धान्तों में विरोधाभास। यह केवल अध्येता के मानसिक स्तर पर ही निर्भर करता है। ग्रन्थ कर्ता तो परिपार्श्व तथा प्रसंगानुरूप विषयों का वर्णन करता है परन्तु परवर्ती समाज उसे अपनी अवस्था अनुरूप समझने का प्रयास करता है। जिसके फल स्वरूप वर्ण्य विषय के यथार्थ से वह अपने आप को तथा अनुयायियों को भी बहुत दूर ले जाता है।

संस्कृत साहित्य के अमल पुराण श्रीमद्भागवतम् में वर्णित पात्रों का यदि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट पता चलता है कि वे अपनी अपनी चेतना अनुरूप ही भगवत् सत्ता का आदर या निरादर किया करते थे। इन सभी को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- 1. भगवद्भक्त, 2. अभक्त। इन दोनों में भी अपनी अपनी चेतना अनुरूप स्तर में भिन्नता देखने को मिलती है। कुछ पात्रों का उदाहरण लेते हुए भगवत् चेतना के आधार पर उनकी तुलना करने का प्रयास करेंगें।

द्रौपदी एवं कृतद्युति

श्रीमद्भागवतम् के प्रथम स्कन्द में द्रौपदी के पांच पुत्रों की मृत्यु हो जाती है तथा षष्ठ सर्ग में कृतद्युति के पुत्र हर्षशोक की भी मृत्यु हो जाती है। इन दोनों प्रसंगों में पुत्र के वियोग से दु:ख तो हुआ परन्तु उस दु:ख का कारण किसे मानते हैं एवं दु:ख के समय में कैसी प्रतिक्रियाएं देते हैं उस से पात्रों के अभ्यन्तर स्थित भगवत् चेतना का स्तर प्रतिबिम्बित होता है। श्रीमद्भागवतम् के षष्ठ सर्ग में श्रीशुकदेव गोस्वामी वृत्रासुर का पूर्वजन्म वृतान्त वर्णन करते हुए शूरसेन के राजा चित्रकेतु के विषय में बताते हैं कि- वह राजा नि:सन्तान था तथा उसकी सौभाग्य के फलस्वरूप महर्षि अंगिरा से भेंट हुई और महर्षि के अनुग्रह से राजा की प्रथम पत्नी कृतद्युति के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ। बालक के जन्म से प्रसन्नता एवं शोक दोनों होने के कारण उस का नाम हर्षशोक दिया गया। कृतद्युति की सौतें ईर्ष्यालु थी, अत: उन्होंने बाद में बालक को विष खिला दिया। अपने पुत्र की मृत्यु के शोक से चित्रकेतु एवं कृतद्युति दोनों अत्यन्त विचलित हो गये। रानी की अवस्था अत्यन्त व्याकुल हो जाती है। रानी के सिर से फूलों की माला गिर पड़ी और उसके बाल बिखर गये। नेत्रों में लगा अंजन आंसुओं से धुल गया। पुत्र की मृत्यु पर शोक करती हुई उस रानी का दारुण विलाप कुररी पक्षी के आर्त स्वर की तरह लग रहा था।[1] उस ने भगवत् सत्ता पर दोषारोपण करते हुए कहा- हे विधाता, हे सृष्टिकर्ता! तू निश्चय ही अपने सृष्टि कार्य में अनुभव-हीन है क्योंकि पिता के रहते हुए तूने उस के पुत्र की मृत्यु होने दी और इस तरह से अपनी ही सृष्टि के नियमों के विपरीत कार्य किया है। यदि तू नियमभंग करने पर ही तुला है, तो तू निश्चय ही समस्त जीवात्माओं का शत्रु है और निर्दयी है।[2] कृतद्युति भगवान् पर कुटिल होने का दोषारोपण करते हुए उस को अपने पुत्र की मृत्यु का कारण मानती है।

वास्तव में विधाता नहीं, अपितु बुद्धिजीव अज्ञानवश तथा अपनी भगवत् चेतना में अनुभवहीनता के कारण स्वयं द्वारा किये गये सकाम कर्म के सूक्ष्म परिणामों को समझ नहीं पाता है। कर्म–मीमांसा–दर्शन के आधार पर कृतद्युति पुन: कहती है– हे ईश्वर ! आप यह कह सकते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि पुत्र के जीवनकाल में ही पिता की मृत्यु हो और पिता के जीवनकाल में ही पुत्र उत्पन्न हो, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार जीता और मरता है। फिर भी यदि कर्म इतना प्रबल है कि जन्म तथा मृत्यु उसी पर निर्भर करते हों तो फिर नियन्ता या ईश्वर की आवश्यकता नहीं है ? पुन: यदि तू कहे कि नियन्ता की आवश्यकता इसलिए है, क्योंकि माया में कार्य करने की शक्ति नहीं होती, तो कोई यह भी तो कह सकता है यदि कर्म के द्वारा तेरे बनाये हुए स्नेह बन्धन टूटते हैं, तो कोई भी सन्तान को स्नेहपूर्वक नहीं पालेगा वरन् सभी लोग अपनी सन्तानों की निर्दयता से उपेक्षा करने लगेंगे। चूँकि तूने स्नेह के उन बन्धनों को काटा है, जिसके वशीभूत होकर माता पिता अपनी सन्तान का पालन पोषण करने के लिए विवश हो जाते हैं, इसलिए तू अनुभवहीन एवं बुद्धिहीन प्रतीत होता है।[3] कृतद्युति के इस तर्क से भी यह प्रतीत होता है कि उस ने कर्म के सूक्ष्म नियमों को नहीं समझा है। भगवान् स्वयं भगवद्गीता में कहते हैं– 'कर्म की बारीकियों को समझना अत्यन्त कठिन है। अत: मनुष्य को चाहिए कि वह यह ठीक से जाने कि कर्म क्या है, विकर्म क्या है और अकर्म क्या है।'[4] कर्म, अकर्म तथा विकर्म के अन्तर को समझने के लिए परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को जानना होगा। जिसने यह भलीभांति समझ लिया है, वह जानता है कि जीवात्मा भगवान् का अंश है और फलस्वरूप वह सर्वदा भगवत् चेतना में कार्य करता रहता है। रानी कृतद्युति उस राजा की पत्नी है जो अगले जन्म में वृत्रासुर के रूप में भगवान् के एक परम भक्त बनते हैं। फिर भी उसकी अन्त:करण भगवत् चेतना से परिपूर्ण नहीं थी अत: अपने पुत्र के मृत्यु का कारण भगवान् को मानते हुए उन पर दोषारोपण करती है।

श्रीमद्भागवतम् के प्रथम सर्ग में वर्णन आता है कि– अश्वत्थामा ने जब ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके द्रौपदी के सोते हुए निर्दोष पुत्रों का वध कर दिया तब अर्जुन उसे तुरन्त बन्दि बनाकर शिविर में ले आया और उस हत्यारे को अपनी प्रिय पत्नी को सौंप दिया, जो मारे गये अपने पुत्रों के लिए विलाप कर रही थी। तब द्रौपदी ने अश्वत्थामा को देखा, जो पशु की भांति रस्सियों से बंधा था और अत्यन्त घृणित हत्या का कृत्य करने के कारण चुप था। अपनी स्त्री स्वभाववश तथा स्वभाव से उत्तम एवं भद्र होने के कारण, उसने ब्राह्मण रूप में उसके प्रति सम्मान व्यक्त किया।[5] इस श्लोक में 'ननाम' शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यह एक ही शब्द द्रौपदी और कृतद्युति दोनों के भगवत् चेतना के अन्तर को प्रदर्शित करने में पर्याप्त है। जिस अश्वत्थामा की भर्त्सना भगवान् स्वयं कर चुके थे और अर्जुन ने उसके साथ ब्राह्मण या गुरुपुत्र के समान नहीं, अपितु अपराधी जैसा बर्ताव किया था; यद्यपि द्रौपदी पुत्रों की हत्या से सन्तप्त थी और हत्यारा उसके समक्ष था, किन्तु वह ब्राह्मण या ब्राह्मण के पुत्र को सामान्य रूप से दिये जाने वाले सम्मान से उसे वञ्चित नहीं कर सकी। यहां पर द्रौपदी की चेतना कृतद्युति से कहीं अधिक प्रौढ एवं उच्च कोटि के है। इतना ही नहीं वह तो उस अपराधी को मृत्युदण्ड से भी छुड़वा देती है। वह अश्वत्थामा का इस प्रकार रस्सियों से बाँधा जाना सह न सकी और भगवत्परायण स्त्री होने के कारण उसने कहा 'इसे छोड़ दो, क्योंकि यह ब्राह्मण है, हमारा गुरु पुत्र है।' द्रौपदी की उपरोक्ति से यह पता चलता है कि भगवद्भक्त को स्वयं कितने ही कष्ट क्यों न सहने पड़े, फिर भी वह अन्यों के प्रति, यहाँ तक कि शत्रु के प्रति भी कठोर नहीं होता। भगवान् के शुद्ध भक्तों के ये लक्षण होते हैं। करुणामयी उत्तम नारी होने के कारण द्रौपदी माता की अनुभूतियों से और द्रोणाचार्य की पत्नी जीवित होने से उनका पूज्य पद होने की दृष्टि से यह नहीं चाह रही थी कि द्रोणाचार्य की पत्नी भी उन्हीं की तरह संतति विहीन हों। वह अर्जुन से कहती है – हे स्वामी, द्रोणाचार्य की पत्नी को मेरे समान मत रुलाओ। मैं अपने पुत्रों की मृत्यु के लिए सन्तप्त हूँ। कहीं उसे भी मेरे समान निरन्तर रोना न पडे।[6] द्रोणाचार्य की अर्धांगिनी के साथ अनुकम्पापूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए था, जिससे वह अपने पुत्र की मृत्यु के कारण दु:खी न हो। द्रौपदी के ये वचन बिना किसी कपट के हैं, और उस के शुद्ध भगवत् चेतना के स्तर को प्रदर्शित करते हैं।

नारद एवं हिरण्यकशिपु

चतुर्थ स्कन्द में देवर्षि नारद के द्वारा प्रचेताओं को भगवदुपदेश दिया जाता है। उस प्रसंग में देवर्षि नारद भगवान् को वृक्ष के मूल के रूप में तुलना करते हैं। पुन: सातवें स्कन्द में भी हिरण्यकशिपु अपने मित्रों को समझाते हुए यह उदाहरण देता है। उपमेय, उपमान और उपम्यवाचक शब्द सब कुछ समान है, किन्तु प्रासंगिक विश्लेषण करने से अन्तर्निहित उद्देश्य प्रतिफलित होता है और अन्त:करण की चेतना प्रस्फुटित होती है। सब कुछ समान होते हुए भी एक बहुत बडा अन्तर है दोनों की चेतना में।

प्रचेतागण पश्चिम दिशा में समुद्रतट पर जाजलि ऋषि से मिलने के बाद योगासन का अभ्यास करते हुए प्राणवायु, मन,

वाणी तथा बाह्य दृष्टि को वश में करना सीख लिया। जब वे यह प्राणायाम कर रहे थे तब देवताओं तथा असुरों- दोनों द्वारा पूजित वन्दित नारद मुनि उन्हे देखने आये। प्रचेताओं ने नारद मुनि का यथा योग्य सम्मान करते हुए उन्हें दिव्य ज्ञान से प्रकाशित करने के लिए निवेदन किया। महर्षि नारद सौम्य उपदेश देते हुए कहते हैं- 'यथार्थ रूप में भगवान् ही समस्त आत्म साक्षात्कार के मूल स्रोत हैं। फलतः समस्त शुभ कार्यों (कर्म, ज्ञान, योग तथा भक्ति) का लक्ष्य भगवान् हैं।'[7] पुनः वृक्ष की जड़ को सींचने का उदाहरण देते हुए समझाते हैं- जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचने से तना, शाखाएँ तथा टहनियाँ पुष्ट होती हैं और जिस तरह पेट को भोजन देने से शरीर की इन्द्रियाँ तथा अंग प्राणवान बनते हैं उसी प्रकार भक्ति द्वारा भगवान् की पूजा करने से भगवान् के ही अंग रूप सभी देवता स्वतः तुष्ट हो जाते हैं।[8] भगवद्गीता के पन्द्रहवे अध्याय में भी इस शाश्वत अश्वत्थ वृक्ष की परिकल्पना की गई है। वहां कहा गया है कि उस वृक्ष की जड़ें तो ऊपर की ओर हैं और शाखाएँ नीचे की ओर तथा पत्तियाँ वैदिक स्तोत्र हैं। जो इस वृक्ष को जानता है, वह वेदों का ज्ञाता है।[9] यह दृश्य जगत् नीचे की और विस्तृत है, इसका मूल भगवान् है। भगवान् स्वयं भगवद्गीता में कहते हैं- 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते'[10] यहां पर महर्षि नारद का उद्देश्य यह है कि- भगवान् वासुदेव ही सभी देवताओं का मूल स्रोत हैं उन्हीं की उपासना करने से अन्य सभी देवता प्रसन्न होंगे। जैसे उदर को भोजन देने से इन्द्रियाँ स्वतः सन्तुष्ट हो जाती हैं। केवल उदर को ही भोजन देकर हम समस्त इन्द्रियों को तुष्ट कर सकते हैं। निष्कर्ष यह है कि भगवान् वासुदेव की ही सेवा से अन्य सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

सातवें स्कन्द में हूबहू यही उदाहरण उपलब्ध होता है। परन्तु राक्षसराज हिरण्यकशिपु द्वारा एक भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है जो उसकी अन्तर्निहित मानसिक दशा को प्रदर्शित करता है तथा उस व्यवहार के फलस्वरूप उसकी भगवत् चेतना का स्तर पता चलता है।

हिरण्याक्ष की मृत्यु उपरान्त उसके पुत्र तथा उसका भाई हिरण्यकशिपु अत्यधिक दुःखी हुए। हिरण्यकशिपु ने अपने भतीजों को उपदेश दिया जिससे उनके शोक कम हो सकें- 'मेरे क्षुद्र शत्रु सारे देवता मेरे परम प्रिय तथा आज्ञाकारी शुभेच्छु भ्राता हिरण्याक्ष को मारने के लिए एक हो गए हैं। यद्यपि परमेश्वर विष्णु हम दोनों के लिए अर्थात् देवताओं तथा असुरों के लिए सदैव समान हैं किन्तु इस बार देवताओं द्वारा अत्यधिक पूजित होने से उन्होंने उनका पक्ष लिया और हिरण्याक्ष को मारने में उनकी सहायता की'।[11] हिरण्यकशिपु के उपरोक्ति से यह पता चलता है कि वह स्वयं भी भगवान् को परम स्वामी मानता है, परन्तु उनके द्वारा दिये गये उपदेशों को नहीं मानता है और बदले में उन्हें ललकारता है। पुनः कहता है- 'भगवान् ने असुरों तथा देवताओं के प्रति समानता की अपनी सहज प्रवृत्ति त्याग दी है। यद्यपि वे परमपुरुष हैं, किन्तु अब माया के वशीभूत होकर उन्होंने अपने भक्तों अर्थात् देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वराह का रूप धारण किया है, जिस प्रकार एक अशान्त बालक किसी की ओर भी उन्मुख हो जाता है। अतएव मैं अपने त्रिशूल से भगवान् विष्णु के सिर को उनके धड़ से अलग कर दूँगा और उनके शरीर से निकले प्रचुर रक्त से अपने भाई हिरण्याक्ष को प्रसन्न करुँगा जो उनके रक्त को चूसने का शौकीन था। पुनः उस उदाहरण को प्रस्तुत करता है जिसे देवर्षि नारद ने भी चौथे स्कन्द में प्रस्तुत किया है। हिरण्यकशिपु कहता है- जब वृक्ष की जड़ काट दी जाती है, तो वह गिर पड़ता है और उसकी शाखाएँ एवं पत्तियाँ स्वयमेव सूख जाती हैं। उसी तरह जब मैं इस मायावी विष्णु को मार डालूँगा तो सारे देवता, जिनके लिये भगवान् विष्णु प्राण तथा आत्मा हैं, अपना जीवन स्रोत खो देंगे और मुरझा जाएँगे।[12] यह वर्णन, दैवी पक्ष तथा आसुरी पक्ष दोनों की अन्तःकरण की प्रवृत्तियों में होने वाले एक विशाल अन्तर को प्रतीत कराता है। देवता पक्ष सदैव भगवान् के आदेशों का पालन करते हैं, जबकि असुरगण उन्हें क्षुब्ध करने या मारने की योजना बनाते हैं। इस प्रसंग पर श्री विश्वनाथ चक्रवर्ति ठाकुर लिखते हैं- 'देवता लोग कितने सौभाग्यवान् हैं कि उन सभी का एक प्राण विष्णु ही है और वे सभी देवता भी भगवान् विष्णु के प्राण तुल्य हैं। यदि हिरण्यकशिपु उन्हें अदृश्य भी कर दे तो वे निष्प्राण जैसा हो जाएँगे।[13] यह राक्षसराज का विचार है।

इन उपरोक्त उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि एक ही भगवत् तत्व को विभिन्न पात्रों के द्वारा अपनी अपनी अन्तःकरण की प्रवृत्तियों के प्रभाव से भिन्न भिन्न रूप में अनुभव किया जाता है। और उस अनुभव की प्रतिक्रिया स्वरूप भगवत् सत्ता के साथ व्यवहार करते हैं, जैसे कोई दास्य भाव से, कोई शान्त भाव से, कोई वात्सल्य भाव से, कोई सख्य भाव से, कोई माधुर्य भाव से तो कोई वीर, रौद्र, अद्भुत, हास्य, दया, भय आदि भाव से व्यवहार करते हैं। इस का एक सटीक उदाहरण श्रीमद्भागवतम् के दसवें सर्ग मे मिलता है कि - जब भगवान् श्रीकृष्ण भाई बलराम के साथ मथुरा स्थित कंस के कुवलयापीड हाथी का वध करने के उपरान्त रंगभूमि पर प्रवेश करते हैं तब विभिन्न लोगों के द्वारा अपनी अपनी भगवत् चेतना के आधार पर वह विभिन्न रूपों में

देखे जाते हैं। 'पहलवानों ने कृष्ण को वज्र के समान देखा, मथुरावासियों ने श्रेष्ठ पुरुष के रूप में, स्त्रियों ने साक्षात् कामदेव के रूप में, ग्वालों ने अपने सम्बन्धी के रूप में, दुष्ट शासकों ने दण्ड देने वाले के रूप में, उन के माता पिता ने अपने शिशु के रूप में, भोजराज ने मृत्यु के रूप में, मूर्खों ने भगवान् के विराट के रूप में, योगियों ने परम ब्रह्म के रूप में तथा वृष्णियों ने अपने परम आराध्य देव के रूप में देखा'।[14] श्रीमद्भागवतम् के टीकाकार श्री वंशीधर स्वामि भावार्थ दीपिका प्रकाश टीका पर, श्रीमज्जीवगोस्वामि वैष्णवतोषिणी टीका पर एवं श्रीमद्विश्वनाथ चक्रवर्ति ठाकुर सारार्थदर्शिनी टीका पर– '*रसो वै स:, रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवतीति*'[15] इस श्रुति वाक्य का उद्धरण देते हुए यह लिखते हैं कि– '*मथुरारंगभूमौ प्रसिद्ध: कृष्ण एव रस: तं रसं कृष्णमेवायमानन्दमयोह्यपि लब्ध्वानन्दी आनन्दभूमवान् भवतीति रसश्रुतिरेवं व्याख्येय*'[16]। अर्थात् वह परम पुरुष भगवान् ही सभी रसों का आगार हैं। श्री रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिन्धु में रसों के विषय में विस्तार पूर्वक लिखा है, मुख्य रस पाँच हैं– शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य।[17] गौण रस सात हैं– आश्चर्य, हास्य, वीर, दया, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स। इस प्रकार कुल 12 रस हैं।[18] इन सब रसों का चरम लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

उपरोक्त श्लोक के उपर अपनी भावार्थदीपिका टीका में श्रीधरस्वामि निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं, जिसमें कृष्ण के प्रति 10 विभिन्न रसों की व्याख्या मिलती है–

रौद्रोह्यद्भुतश्च श्रृंगारो हास्यं वीरो दया तथा।
भयानकश्च वीभत्स: शान्त: स प्रेमभक्तिक:॥[19]

दस भिन्न रस निम्न प्रकार हैं–

1. पहलवानों द्वारा अनुभव किया गया रस रौद्र।
2. पुरुषों द्वारा अनुभव किया गया रस अद्भुत।
3. स्त्रियों द्वारा अनुभव किया गया श्रृंगार।
4. ग्वालों द्वारा अनुभव किया गया हास्य।
5. राजाओं द्वारा अनुभव किया गया वीर।
6. माता पिता द्वारा अनुभव किया गया दया।
7. कंस द्वारा अनुभव किया गया भय।
8. मूर्खों द्वारा अनुभव किया गया वीभत्स।
9. योगियों द्वारा अनुभव किया गया शान्त तथा वृष्णियों द्वारा अनुभव किया गया प्रेमाभक्ति।

श्री विश्वनाथचक्रवर्ती ठाकुर अपनी सारार्थदर्शिनी टीका पर लिखते हैं– पहलवानों, कंस तथा दुष्ट राजाओं जैसे व्यक्तियों ने कृष्ण को घातक, क्रुद्ध या धमकी देने वाले के रूप में देखा।[20] इसका कारण यह है कि वे सब भगवान् के वास्तविक भगवत् सत्ता को समझने में असमर्थ थे क्योंकि उन सबकी भगवत् चेतना कलुषित थी। उनके अन्त:करण के अनुरूप ही भगवान् उनके विचारों में प्रकट होते हैं।[21] अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक जीव अपनी अन्त:करण की प्रवृत्तियों के आधार पर ही भगवान् को अनुभव करता है। वस्तुत: भगवान् हर एक के मित्र तथा शुभचिन्तक हैं परन्तु उनके प्रति हमारे विरुद्धाचरण के कारण हम उन्हें दण्ड देनेवाले के रूप में देखते हैं।

सन्दर्भ सूची –

1. विकीर्य केशान्विगलत्स्रज: सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम्॥
   भागवतम् 6.14.53
2. अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे।
   परे नु जीवत्यपरस्य या मृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुव: पर: ॥
   भागवतम् 6.14.54
3. न ही क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनो: शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभि:।
   य: स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥
   भागवतम् 6.14.55
4. कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण: ।
   अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति: ॥
   भगवद्गीता 4.17
5. तथाहृतं पशुवत् पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
   निरीक्ष कृष्णापकृतं गुरो: सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च॥
   भागवतम् 1.7.42
6. मारोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
   यथाहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहु: ॥
   भागवतम् 1.7.47
7. श्रेसयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थत: ।
   सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मात्मद: प्रिय: ॥
   भागवतम् 4.31.13
8. यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखा: ।
   प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥
   भागवतम् 4.31.14
9. ऊर्ध्वमूलमध:शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
   छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥
   भगवद्गीता 15.1.
10. भगवद्गीता. 10.8
11. सपत्नैर्घातित: क्षुद्रैर्भ्राता मे दयित: सुहृत् ।
    पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनै: ॥ भागवतम् 7.2.6

12. तस्मिन्कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ ।
विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥
भागवतम् 7.2.9
13. देवानां तु सौभाग्यं कियद्वर्णनीयं ते तु तदेकप्राणा एवेत्याह तस्मिन्नष्टे दैवात् कदाचिद्दृष्टे सति नशेरदर्शनार्थत्वात् छिन्नमूले वनस्पतौ यथा विटपाः शुष्यन्ति तथा शुष्यन्ति ते विष्णुरेव प्राण येषान्ते किं वा विष्णोरपि प्राणतुल्यास्ते परमधन्या एवेति भावः। भागवतम् 7.2.9 सारार्थदर्शिनी टीका
14. मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥भागवतम् 10.43.17
15. तैत्तिरीयोपनिषद्– 2.7.1
16. भागवतम् 7.2.9 सारार्थदर्शिनी टीका, पृ0 447
17. मुख्यस्तु पञ्चधा शान्तः प्रीतिः प्रेयांश्च वत्सलः ।
मधुरश्चेत्यमि ज्ञेया यथापूर्वमनुत्तमाः ॥ भक्ति0 सिन्धु 2.5.96.
18. हास्योद्भूतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि ।
भयानकः सबीभत्स इति गौणश्च सप्तधा ॥
एवं भक्तिरसो भेदाद् द्वयोर्द्वादशधोच्यते ॥
भक्ति0 सिन्धु 2.5.98.
19. भागवतम् 10.43.17 श्रीधरस्वामिविरचिता भावार्थदीपिका टीका पृ0 440.
20. भोजपतेः कंसस्य मृत्युरिति मृत्युत्वं माधुर्य्यसुधावर्षुकस्य कृष्णस्य न स्वरूपमतस्तेन तस्य तन्नास्वादितमिति तस्मिन् भयानकरसाभासः अविदुषां कंसपुरोहितादीनामपराधिनां विराट् व्यष्टिः प्राकृतो मनुष्यः हंहो अयमेव किं परमेश्वर इत्युचते भ्रान्तैरयन्तु पारदारिकत्वेन गवादिघातित्वेन च श्रुतचरः सम्प्रति प्राण्यस्थिरक्तकलिलगात्रो मनुष्येष्वप्यनाचारो घृणास्पदी भवत्यस्मन्नेत्राणामिति व्याहरत्सु महापापिष्ठेष्वावेशाभावात् कंसादिभ्योऽप्यधर्मेषु मन्दभाग्येषु तेषु वीभत्सरसाभासः। भागवतम् 10.43.17 विश्वनाथचक्रवर्तिकृता सारार्थदर्शिनी टीका पृ0 446
21. अथ तत्र रंगभूमौ स्थितेषु नानाविधजनसमुदायेषु श्रुतिप्रथित– महारसस्वरूपः स्वयं भगवानयमन्तः करणानुरूपमेव स्फुटति स्मेति वदन्नयमेव सर्वोपनिषत्सारार्थो मूर्त इति साक्षादिव दर्शयति। भागवतम् 10.43.17 विश्वनाथचक्रवर्तिकृता सारार्थदर्शिनी टीका पृ0 446

ISSN 2278 - 0327

भारत में प्राकृतिक आपदाओं की समस्या : एक अनुशीलन

डॉ. अखिलेश कुमार
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
श्री भूपराम धर्मेश्वर प्रसाद महा०मोहिद्दीनपुर सहराई सीतापुर

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है परन्तु प्रकृति के इस परिवर्तन में पृथ्वी पर रहने वाले मानव जाति, जीव जन्तुओं वनस्पतियों इत्यादि को कभी-कभी भारी नुकसान का सामना करना पड़ता है। प्रकृति द्वारा जैविक समुदाय पर अकस्मात् आये इस असन्तुलन को ही प्रकृतिक आपदा कहा जाता है।'' प्रकृतिक आपदा प्राय: एक अनपेक्षित घटना होती है, जो ऐसी ताकतों द्वारा घटित होती है, जो मानव के नियन्त्रण में नहीं है। यह थोड़े समय में और बिना चेतावनी के घटित होती है, जिसकी वजह से मानव जीवन के क्रिया कलाप अवरूद्ध होते हैं तथा बड़े पैमाने पर जानमाल का नुकसान होता है।''

आपदायें दो तरह की होती है, एक प्राकृतिक आपदा तो दूसरी मानवजनित आपदा। प्राकृतिक आपदाओं के अन्तर्गत ज्वालामुखी विस्फोट, सुनामी, भुकम्प, बाढ़, सूखा इत्यादि आते है। मानव जनित आपदाओं के अन्तर्गत नाभिकीय दुर्घटनायें, युद्ध हानिकारक गैसों का उत्सर्जन, रासायनिक पदार्थो का उपयोग, प्राकृतिक दोहन इत्यादि आते है। सामान्यत: देखने में दोनों आपदायें अलग-अलग दिखती है लेकिन कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओं का कारण मानव जनित क्रिया कलाप भी होते है। जैसे-न्यूक्लीयर, नाभिकीय विस्फोटों की वजह से भूकम्प या सुनामी आना, हानिकारक गैसों के उत्सर्जन के कारण ओजोन परत के क्षरण से हिमनदों के पिघलने की वजह से समुद्र के जलस्तर का बढ़ जाना इत्यादि ऐसे मानव जनित क्रिया कलाप है, जिनकी वजह से कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओं का जन्म होता है।

प्राकृतिक आपदाओं के निर्माण में कई कारक भूमिका है। जिसमें भौगोलिक परिस्थिति पर्यावरण, असन्तुलित मानवीय क्रिया-कलाप एवं प्राकृतिक बदलाव इत्यादि ऐसे कारक है जिनकी वजह से प्राकृतिक आपदाओं की घटनाएँ घटित होती रहती है। विज्ञान एवं तकनीकी विकास तथा मानव के सतत् प्रयास के बावजूद हम इन प्राकृतिक आपदाओं से निजाज पाने में सक्षम नहीं हो सके है।

भारत की भौगोलिक परिस्थिति भी पहाड़ों पठारों, नदियों और समुद्रतटीय क्षेत्रों से घिरी हुई है जिसके भूगोल की एक संक्षिप्त रूपरेखा विष्णु पुराण में इस प्रकार वर्णित की गई है-

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रश्चैव, दक्षिणम्।
वर्ष तत् भारत नाम, भारती यत्र सन्तति:।।

अर्थात् समुद्र के उत्तर में और हिमालय दक्षिण में भारत वर्ष स्थित है, जहाँ के निवासी भारती नाम से जाने जाते हैं। भारत का त्रिभुजाकार प्रायद्वीप पठार प्राचीनतम आर्केइयन युगीन ग्रेनाइट, नीचे चट्टानों से निर्मित है। यह आज से लगभग 120 मिलियन पूर्व गोंडवाना लैण्ड से सम्बद्ध था। जहाँ की रहने वाली जनजातियाँ आज भी गोंडनाम से जानी जाती है।

पृथ्वी की बाह्य संरचना मिट्टी, पहाड़, वन, पठार, नदी, झील एवं वायुमण्डल इत्यादि से बनी हुई है। जबकि आन्तरिक संरचना मिट्टी अनेक प्रकार के खनिज लवण, जल इत्यादि से बने हुए हैं। पृथ्वी के अन्दर मौजूद निकिल फेरियम एवं अन्य धातुविक तत्वों की वजह से पृथ्वी का आन्तरिक भूभाग चुंबकीय ऊर्जा के रूप में काम करता है। पृथ्वी की आन्तरिक गति अनेक भूपरपटी प्लेटो की वजह से गतिशील रहती है, जिसकी वजह से प्राकृतिक घटनाएँ भी पृथ्वी के अन्दर की प्लेटो का संचयन होता है जिसे बेगनर महोदय 'महाद्वितीय प्रवाह सिद्धान्त' तथा हेरीहेस और मार्गन महोदय ने प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त नाम दिया।

भारतीय प्लेट संसार की वृहत प्लेटों में से एक है। इसे इण्डो आस्ट्रेलियन प्लेट के नाम से भी जाना जाता है। इन प्लोटों के संचयन या एक दूसरे से टकराने से भूकम्प, सुनामी जैसे आपदायें आती है। भारतीय प्लेट के एशियाई प्लेट के नीचे क्षेपण होने की वजह से भारतीय उपमहाद्वीप में अकसर भूकम्प आते रहते है। 26 जनवरी, 2001 भुज 'गुजरात' के प्रलयंकारी भूकम्प का मुख्य कारण भारत प्लेट का ऐपियन प्लेट से टकराना ही था। गृह

मंत्रालय के 2011 के एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के भूभाग का लगभग 59 प्रतिशत हिस्सा भूकम्प की सम्भावना वाले क्षेत्र में आता है। इस क्षेत्र में हिमालय व उसके आसपास के क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह तथा गुजरात के कुछ क्षेत्र आते है। इस रिपोर्ट के अनुसार देश का 68 प्रतिशत हिस्सा कभी हल्का तो कभी भीषण सूखे के क्षेत्र में आता है। 38 प्रतिशत हिस्से में 750 से 1125 मिमी0 वर्षा होती है, तो 33 प्रतिशत क्षेत्र में 750 मिमी0 से कम वर्षा होती है। भारत के पश्चिमी और प्रायद्विपीय राज्यों का मुख्यत: शुष्क, अर्द्धशुष्क और कम नमी वाले क्षेत्रों को सूखे से गुजरना पड़ता है।

भारत की भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार भारत के प्रायद्विपीय भूभागों के अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न समय विभिन्न तरीकें की आपदायें आती रहीं है। 1972 में देश का लगभग अधिकांश हिस्सा सूखे से प्रभावित रहा। 1977 में समुद्री तूफान से आन्ध्रप्रदेश को भीषण तबाही का सामना करना पड़ा तो 1987 में देश के पन्द्रह राज्य तथा 2009 में देश के दस राज्यों में 252 जिलों को सूखे से भारी हानि का सामना करना पड़ा। 2008 में 'कोसी' ने उत्तर बिहार में तो 2005 में महाराष्ट्र को भीषण बाढ़ से तबाही का सामना करना पड़ा। समुद्री तूफान ने 1999 में उड़ीसा में 2008 में तमिलनाडु में तथा 2011 में तमिलनाडु में भीषण तबाही मचाई। भूकम्प ने 1993 में लातूर, महाराष्ट्र, मराडवारा क्षेत्र, 2001 में गुजरात के भुज और उसके आस-पास के क्षेत्र, 2005 के कश्मीर में 2011 में सिक्किम पूर्वोत्तर भारत और नेपाल में भीषण तबाही मचाई। बादल फटने से लेह 2010 में तथा 2013 में उत्तराखण्ड के केदारनाथ में देश को भीषण जनधन की हानि हुई। भारत में गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, उड़ीसा, उत्तराखण्ड आपदा की समस्याओं से ग्रसित शीर्ष राज्यों में आते है। यहाँ धन, जन, मवेशियों एवं फसलों की सर्वाधिक हानि होती है। भारत के तटीय राज्यों के लोगों को तूफान, भूकम्प सूखा इत्यादि के अकसर जोखिम का सामना करना पड़ता है। भारत के पास धन, संसाधन और निपटने के ठोस प्रारूप के अभाव के कारण लोगों को अधिक नुकसान का सामना करना पड़ता है। हमारे देश में अधिकांश आपदायें जलीय एवं मौसम विज्ञान के खतरों के कारण आती है। दुर्भाग्यवश इसकी संख्या भयावह तीव्रता लगातार बढ़ती जा रही है। जोखिम की सम्भावना वाले राज्यों में इन आपदाओं से निपटने की तैयारियाँ पर्याप्त नहीं हैं। आपदाओं के बदलते इस परिदृश्य में मौसम में जो बदलाव देखने को मिल रहा है उसने मौजूदा चुनौतियों में और इजाफा कर दिया है। यदि मौसम के कारण आने वाली आपदाओं की तीव्रता और अनिश्चितता का यही रूख बरकरार रहा तो इससे निश्चित ही खतरे और जोखिम का परिदृश्य बढ़ेगा।

प्रकृति के इस आपदा से पूर्णत: बचा तो नहीं जा सकता, लेकिन इससे होने वाली क्षति को निश्चित ही कम किया जा सकता है। इसे रोकने के लिए वैश्विक स्तर पर अनेक प्रयास किये गये जिसके परिप्रेक्ष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1972 से पाँच जून को पर्यावरण दिवस मनाने की घोषणा की।

1975 में साइट्स नाम से वाशिंगटन में वन जीव संरक्षण का समझौता हुआ जिसके तहत वनों और उसके अन्दर रहने वाले जीवों को सुरक्षा प्रदान की गई।

ओजोन परत के क्षरण को रोकने के लिए 16 सितम्बर 1987 को मानट्रियल में एक समझौता हुआ। जिसके तहत क्लोरोफ्लोरो कार्बन जैसी गैसों के उत्पादन और उपयोग को सीमित करने पर सहमति बनी, इसी तिथि को प्रत्येक वर्ष अन्तरराष्ट्रीय ओजोनपरत दिवस मनाया जाने लगा।

1992 में रियोडीजिनेरों में पृथ्वी शिखर सम्मलेन हुआ जिसमें पर्यावरण और विकास का एजेन्डा 21 पर सहमति बनी। 1997 में ग्लोबलवार्मिंग से निपटने के लिए क्योटो प्रोटोकाल सम्मेलन हुआ। 2001 में जर्मनी के शहरवान में विश्व मौसम परिवर्तन सम्मेलन में धरती पर हो रही जलवायु परिवर्तन एवं उसके खतरों से निपटने पर चर्चा हुई।

भारत सरकार ने भूस्खलन एवं वन जीवन के नुकसान को रोकने के लिए 1927 में वन अधिनियम और 1952 में इडियन वोर्ड ऑफवाइन्ड लाइफ की स्थापना की तथा जीवों के प्रबन्धन के लिए देहरादून में वन्यजीव संस्थान की स्थापना की। इसके अलावा 1969 में राष्ट्रीय पर्यावरण नीति अधिनियम नीति पारित किया।

धीरे-धीरे भारत सरकार इस दिशा में कदम बढ़ा रही है क्षति को अधिक से अधिक रोकने एवं नियोजित उपाय करने के लिए आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 बनाया और राष्ट्रीय आपदा संस्थान की स्थापना की। जो कि आपदा प्रबन्धन की दिशा में एक सकारात्मक कदम कहा जायेगा।

निष्कर्षत: प्राकृतिक आपदाओं को टाल पाना तो सम्भव नहीं है, लेकिन अद्यतन विज्ञान और तकनीकि का इस्तेमाल करके भूकम्प, सुनामी, चक्रवात, बाढ़ इत्यादि का भविष्यवाणी करके नुकसान को अधिक से अधिक कम किया जा सकता है। वृक्षारोपण द्वारा भूस्खलन से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है।

तकनीकि इस्तेमाल से पूर्व चेतावनी देकर जनधन की हानि को बचाया जा सकता है। आकस्मिक तौर पर आने वाली इन आपदाओं पर समयानुकूल शोध कार्य कर हानियों को कम करने के लिए उपाय करने की सख्त आवश्यकता है। जरूरत है कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा आपदा से निपटने के लिए बनायी गयी योजनाओं को ईमानदारी से लागू किया जाय। साथ ही इन आपदाओं के बारे में आम लोगों को भी जागरूक होने की जरूरत है जिससे अधिक से अधिक नुकसान को कम किया जा सके।

संदर्भ -

1. भारत भौतिक पर्यावरण, एन0सी0ई0आर0टी0, 2006, पृ081
2. भारत का वृहत भूगोल, डॉ0 चतुर्भुज ममोरिया, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, संस्करण 13वॉ, पृ0 1
3. भारत का भूगोल, डॉ0 शिवसागर ओझा, भौगोलिक अध्ययन संस्थान, गोविन्दपुर, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण-2002, पृ0 1
4. वही, पृ0 10
5. वही, पृ0 17
6. भौतिक भूगोल का स्वरूप सविन्द्र सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2009, पृ0 140
7. एन0आई0डी0एम0/डी0ए0सी0 रिर्पोट-2009
8. योजना, मासिक पत्र, वर्ष-56, अंक-3, मार्च-2012, पृ0 14
9. परिस्थितिकी एवं पर्यावरण, एस0के0 ओझा, बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद, संशोधित संस्करण- 2013, पृ0 194
10. वही, पृ0 194
11. योजना, मासिक पत्र, वर्ष-92, अंक-6, जून-2008
12. पर्यावरण भूगोल, सविन्द्र सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2004 पृ0 489-90
13. भारत भौतिक पर्यावरण, एन0सी0ई0आर0टी0, 2006, पृ09।

ISSN 2278 - 0327

संत चरणदास की अष्टांग योग में नियम साधना

डॉ. कुलदीप
सहायक प्रोफेसर 'विधि विभाग'
भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर, सोनीपत (हरियाणा)

भारतवर्ष जैसे महान राष्ट्र की सांस्कृतिक परंपरा विश्व को सदैव नूतन मार्गदर्शन करती रही है। इस धरा पर जन्म लेने वाले संतो व ऋषियों ने इस देश की अखंड सांस्कृतिक परंपरा को नित परिवर्तन के नियम को ध्यान रखते हुए समय-समय पर इसका पुनरावलोकन का कार्य भी किया है। समय व परिस्थिति के अनुसार धर्म की परिभाषाएं बदल जाया करती हैं, ऐसा हम अपने आर्ष ग्रंथों में ध्येय वाक्य के रूप में पढ़ते रहे हैं। संस्कृत भाषा को भारतवर्ष में देवों की भाषा कहा गया है। संस्कृत से ही निकल कर आई हिंदी भाषा वर्तमान समय में हमारी मातृभाषा है। मातृभाषा होने के साथ विश्व की सबसे वैज्ञानिक भाषा का गौरव भी प्राप्त कर चुकी है। हिंदी आज नासा के अंतरिक्ष विज्ञान, सुपर कंप्यूटर आदि की अधिक तथ्यात्मक भाषा के रूप में सबसे ऊपर स्थान प्राप्त हुआ है। हिंदी साहित्य आज भी संस्कृत में प्राप्त ज्ञान - विज्ञान का नई पीढ़ी में हस्तांतरण की अखंड परंपरा को अक्षुण्य बनाए रखने में सफल साबित हुई है। साहित्य का उद्देश्य केवल मात्र रसास्वादन नहीं अपितु जीवन उपयोगी खोजों को भी करना रहा है। व्यवसायिक दृष्टि से जहां हर किसी विषय की अपनी महत्ता है, हिंदी भी अपने व्यवसायिक महत्व के साथ - साथ मातृभाषा के रूप में हमें अपनी पुरातन सांस्कृतिक वैज्ञानिक धरोहर को अगली पीढ़ी में हस्तांतरण करने का भी एकमात्र प्रमुख साधन है। किसी भी राष्ट्र व समाज की उन्नति उस के साहित्य की दृष्टि पर निर्भर करती है।

इसी अनुसंधान परंपरा में संत चरण दास एक ऐसे साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। जिनका पूरा जीवन श्रेष्ठ एवं महानतम जीवन की खोज में एक मशाल की भांति स्वयं में जलकर मानवता को जीवन विज्ञान को आधार रखते हुए एक नई परिपाटी का आविष्कार करने का श्रेय रहा है। संत चरण दास कबीर की भांति एक समाज सुधारक मौलिक उद्भावक, उच्च जीवन मूल्यों के संस्थापक के रूप में अपने जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। संत चरणदास अन्य साहित्यकारों की भांति केवल रसास्वादन के लिए साहित्य रचना नहीं करते, अपितु श्रेष्ठ जीवन के लिए चयनित आयामों का वर्णन उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से किया। जिसका प्रचार-प्रसार उनके बाद स्वामी राम रूप, गोस्वामी जुगतानंद उनकी शिष्या सहजोबाई तथा 109 प्रधान शिष्यों आदि संत कवियों ने भी किया। अष्टांग योग की भारतीय संकल्पना जीवन की श्रेष्ठ संकल्पना में से एक है। महर्षि पतंजलि ने जीवन की उत्तम व्यवस्था के लिए अष्टांग योग को अपने वैदिक साहित्य से लेकर, संकलन करने का कार्य किया। वही संत चरण दास ने भी जीवन की उस धारा से स्वयं को जोड़कर अपने अनुभूति पूरक ज्ञान के द्वारा वर्तमान समय की समाज की परिस्थितियां एवं आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए उसका और अधिक व्यवहारिक पक्ष का उद्घाटन किया। इस शोधपत्र में हम संत चरणदास के अष्टांग योग में 10 नियमों की व्यवहारिक व्याख्या का वैज्ञानिक अवलोकन कर रहे हैं। उनके अनुसार यम जहां जीवन की सामाजिक व्यवस्था को सुंदर बनाने हेतु श्रेष्ठ आयामों की खोज कहा गया , वहीं नियम व्यक्तिगत जीवन की व्यवस्था को श्रेष्ठ बनाने के लिए आवश्यक आयामों का जीवन में संयोजन करना अत्यंत आवश्यक बतलाया।

सामान्यत 'योग' ऋषि-महात्माओं की बपोदी माना जाता रहा है। परंतु हिंदी साहित्य में इस प्रकार के संत महात्माओं की भरमार दिखाई देती है जिन्होंने योग जैसे जीवन के आधारभूत विषय को सर्वसाधारण विषय के रूप में प्रस्तुत कर उनके ऊपर अपनी लेखनी चलाई।

नियम -

महर्षि पतंजलि ने नियमों की संख्या 5 मानी है

शौच संतोष तप: स्वाध्याय ईश्वर प्राणीधान।[1]

परंतु संत चरण दास ने अष्टांग योग के दूसरे अंग नियम के भी यम के समान कई आचार्यों की तरह ही 10 विभाग माने हैं।

याज्ञवल्क्य संहिता में नियम के 10 अंगों का वर्णन है तप, संतोष, ईश्वर और वेद पर विश्वास, दान, ईश्वर - पूजा, सिद्धांत वाक्य का सुनना, जप, ध्यान, लज्जा, मति और अग्निहोत्र यह 10 नियम है। चरणदास जी ने भी 10 नियमों की व्याख्या इस प्रकार की है - इंद्रियवश, संतोष, आस्तिक, दान देना, ईश्वरा आराधना, सिद्धांत श्रवण, लाज युक्त तत्व दृढ़, जाप, होम यह 10 अंग माने हैं-

तप: संतोष आस्तिक्य दानमिश्वर प्रथम, सिद्धांतवाक्य श्रवण हविमती क जपो हुत्तम नियमद्रा प्रोक्ता योगशास्त्र विशारदे।[2]

1. इंद्रियवश-

चरणदास ने पांच ज्ञानेंद्रियों एवं इनके रसों का वर्णन करते हुए बताया है- चक्षु, कर्ण, रसना, त्वचा, घ्राण। इनके रस का वर्णन किया हैं- स्वरूप, श्रुति, रस, स्पर्श, गंध। इन सब इंद्रियों के स्वाद के प्रति आसक्ति का न रखना, प्रथम नियम कहा गया है। श्याम चरण दास जी ने स्वयं कहा है

खाते-पीते सोवत- जागत, योगी इंद्रिन को वश राखत,
तनुकू बसकर मनकू मारे, ऐसी विधि तप का अंग धारो।[3]

2. संतोष-

मनुष्य संतोष के अभाव में सब कुछ होते हुए भी अशांत बना रहता है शरीर से पूर्ण पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त धन से अधिक की लालसा न करना कम-अधिक की प्राप्ति पर शोक और हर्ष ना करना। क्योंकि आशा के दास बनकर व्यक्ति संसार के ही दास बन जाते हैं। अत: मनुष्य तृष्णा आदि के वशीभूत न होकर सदा संतोष का आश्रय ग्रहण करें।

संतोषदानूत्तम: सुखलाभ:।[4]

अर्थात् संतोष से सर्वोत्तम सुख मिलता है।

हानि भए नहि माने शोका, लाभ भए नहिं हर्षआवै।
ऐसी समझ हिय मे लावै, प्रारब्ध तन होय सु होई।[5]

अर्थात् लाभ हानि से हर्षित व दु:खी न होकर प्रारब्ध ही मानना चाहिए तथा नए संकल्प विकल्पों में सदैव साधक को सचेत रहना चाहिए, जिससे कि कोई नया कर्म ना बन सके। क्योंकि हर अच्छा या बुरा कर्म बंधन का कारण होता है।

3. आस्तिकता-

इतना विशालकाय,विचित्र विश्व ईश्वर ने ही बनाया है इस सत्ता में पूर्ण विश्वास का होना ही आस्तिकता है।

ईश्वर सर्वभूताना, हृदयशेर्जन तिष्ठति, भ्रमयानसर्वभूतानि यंत्रा रूढानि मायया ।[6]

कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि ईश्वर प्राणी मात्र के हृदय में व्यापक होकर ठहरा हुआ है कठपुतलियों को नचाने वाला नट के समान ही वह अपनी माया से भूत- मात्र को कार्य में प्रवृत्त किए हुए हैं। चरण दास जी इस बात को अपने तरीके से कहते हैं -

शास्त्र सुने प्रतीत जो कीजिए, सत्यब्रह्मा निश्चय करिलीजै,
बुद्ध निश्चय आतम के माही, जगत सांच करी मानै नाहीं।[7]

इनके अनुसार शास्त्र सम्मत विचारों को प्रीति पूर्वक सुन उस परमपिता परमेश्वर को मान लो क्योंकि हमेशा बुध लोगों ने इस संसार को मिथ्या तथा परमात्मा को सत्य माना है। इन्हीं के मत की पुष्टि आदि शंकराचार्य के मत से भी होती है

'ब्रह्मा सत् जगत मिथ्या'

4. दान -

भारतीय दर्शनों में दान को श्रेष्ठ बताया है। श्रेष्ठ दान के लक्षणों के बारे में जाबाल दर्शनोपनिषद में कहा है कि न्याय अर्जित धन-धान्य आदि को संकटग्रस्त वेदज्ञ अथवा श्रेष्ठ आचरण वाले साधकों को दिया जाए, वही दान श्रेष्ठ है। वशिष्ट संहिता में दान के विषय में कहा है कि न्याय पूर्वक प्राप्त किए हुए धन को श्रद्धा पूर्वक गरीबों को देना ही श्रेष्ठदान है-

न्याय अर्जित धन्म् श्रांते श्रद्धया वैदिके जने, अन्यदद्दा यंतु दीयांते तद्धन प्रोचेत मय।[8]

चरणदास ने भी दान का विस्तार इस प्रकार से किया उनके अनुसार दान पात्र और कुपात्र पर विचार करके ही देना चाहिए। दान दो प्रकार का है-

एक दान उपदेश जु दीजिए, भवसागर सो पार करीजै,
दूजा दान अन्न अरू पानी, दीजै कीजै बहु सनमानी।[9]

प्रथम प्रकार का दान शिक्षा के ज्ञान- विज्ञान का प्रचार प्रसार करना चाहिए जिससे व्यक्ति संसार के दु:खों से छुटकारा पाकर मुक्ति प्राप्त कर सके। दूसरे प्रकार का दान अन्न का दान तथा दूसरों की सुख की कामना व प्रयत्न करते हुए उनके कष्ट दूर करने का प्रयास भी करना चाहिए । इनमें भी प्रथम प्रकार का दान चरणदास जी ने उत्तम माना है।

5. ईश्वर आराधना-

नि:संकोच सभी नियम पालनो में ईश्वर आराधना को तथास्तु रूप से स्वीकार किया है जहाँ हठयोग और राजयोग में वर्णित ईश्वर पूजा ईश्वरप्राणिधान से मिलता-जलता दिखाई देता है वहां निष्काम भाव से कर्म करने को ईश्वरप्राणिधान ही कहा है । चरण दास जी ने ईश्वर पूजन को वर्णित करते हुए कहा कि- तन मन धन सब कुछ ईश्वर को अर्पित कर देना चाहिए। सब कार्य निष्काम भाव से फल की इच्छा रहित होकर करने चाहिए। लाभ की आशा न करके सेवा भाव अपनाकर, नम्रता पूर्वक ईश्वर पूजन

करना चाहिए। जो कुछ भी प्राप्त हो जाए सुविधानुसार फल – फूल ,पान –धूप आदि ईश्वर को अर्पित करने चाहिए। उन्हीं के शब्दों में –

पंचम ईश्वर पूजा करिए, तन मन बुद्धि जहांलै धरिए,
है निष्काम तजै सब आशा, सेवा करे हुए निज दासा।[10]

6. सिद्धांत श्रवण –

सृष्टि के सबसे प्राचीनतम ग्रंथ वेदों को माना गया है तथा वेद को देवों की वाणी कहा गया है। सिद्धांत श्रवण के बारे में वशिष्ट संहिता के अनुसार वेदांत चिंतन को ही सिद्धांत श्रवण कहा गया है।[11]

अर्थात् अपने वैदिक शास्त्रों का अध्ययन, इतिहास – पुराणों का अध्ययन एवं अन्य ग्रंथों का अध्ययन करना ही सिद्धांत श्रवण है। चरणदास जी के अनुसार सिद्धांत श्रवण संतों की वाणी को सुनकर उस पर विचार करना तथा उसके पश्चात् स्वतंत्र रूप से बिना किसी के प्रभाव के उसे ग्रहण करना चाहिए। यह विचार करना चाहिए कि सार तत्व क्या है। सार्थक और निरर्थक का ज्ञान प्राप्त करके सार तत्व को ग्रहण करना सिद्धांत श्रवण है। उन्हीं की वाणी में –

सिद्धांत श्रवण सुन बानी करि विचार गहिए मनमानी,
सार – असार विचार जु कीजै, पानी की तजि पयकौ पीजै।[12]

7. लज्जा –

लज्जा को मनुष्य का आभूषण माना गया है। वशिष्ठ संहिता में इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया। वैदिक और लौकिक मार्गों में माने गए सिद्धांत कर्मों के करने में जो स्वभावत: संकोच होता है, वही लज्जा है। चरणदास जी ने इसका विस्तार से वर्णन किया है। अपनों से बड़ों से, गुरु से, साधु से लज्जा करनी चाहिए सब विपरीत कर्मों का त्याग करना चाहिए तथा आंखों व ह्रदय में लज्जा के भाव होने चाहिए। तन – मन को चंचल नहीं होने देना चाहिए। उनके अनुसार सबसे बड़ी लज्जा तो ईश्वर से करनी चाहिए, जिससे सारे कार्य सुधर जाते हैं। उन्हीं के शब्दों में–

साधु गुरु से लाज करीजै, तन मन डोलन नाही दीजै।[13]

8. दृढ़ मति –

वशिष्ठ संहिता के अनुसार शास्त्र विहित सभी कर्मों में निष्ठा और गुरु के आदेश के अनुसार अन्य सब विषयों का त्याग करना ही दृढ़ मति है।[14]

चरणदास जी के अनुसार साधक को योगसाधना में अपना निश्चय दृढ़ रखना चाहिए। किसी के विचलित करने पर अथवा योग साधना के मार्ग से हटाने के प्रयास पर विचलित नहीं होना चाहिए। स्वर्ग जैसे सुखों को भी योग साधना के मार्ग में तुच्छ समझना चाहिए। यदि कोई प्रशंसा करें कि अपशब्द कहे दोनों ही परिस्थितियों में विचलित नहीं हों अपितु समभाव से रहना चाहिए। इस प्रकार साधक को इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए योग मार्ग में आगे बढ़ते रहना चाहिए।

ऐसा उन्होंने कहा भी है–

अष्टम हूं मति धजो कहिए, सो विशेष साधनकू चाहिए।
शुभ कर्मनकी इच्छा करनी, हो न सकै तो भी हिय धरनी।[15]

9. जाप–

जाबालदर्शन उपनिषद के अनुसार वेदोक्त मंत्रों के बार – बार उच्चारण को ही जाप कहा गया है। वेदों के समान ही धर्म शास्त्र, पुराण, इतिहास और कल्पसूत्र आदि में मन का निरंतर लगे रहना ही जप है । जाप के दो प्रकार बताए हैं – वाचिक जाप, मानसिक जाप ।

क. – वाचिक जाप– वाचिक जाप दो प्रकार का होता है 1 उच्च और 2 उपांशु ।

उच्च स्वर द्वारा किए गए जप की अपेक्षा उपांशु (होठों से जप) को सहस्त्र गुणा श्रेष्ठ माना गया है।

ख. – मानसिक जाप– यह जप भी दो प्रकार का होता है मनन और ध्यान। यहां मनन प्रकार दोनों वाचिक जप से श्रेष्ठ माना गया है, जो ध्यान मनन से भी सुहाना गुण माना गया है चरण दास जी के अनुसार मौन रहकर मन में जाप करना चाहिए। मन और जिव्हा दोनों की चंचलता को रोकना चाहिए। मन व प्राण वायु दोनों को वश में करके, गुरु द्वारा दिए गए मंत्र का जाप करना चाहिए। जैसा कि उन्होंने कहा ह–

नवै जप करै गाहि मौना , मन जिव्हासूं कीजै जोना।
होय सकै मन पवन गहीजै, गुरुमंत्र जप तामै कीजै।[16]

चरणदास जी कहते हैं ईश्वर व गुरु दोनों की स्तुति करना ही जाप है इस प्रकार के जाप से तीनों प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार जाप करते हुए साधक योग साधना के मार्ग को आरूढ़ होकर अपने लक्ष्य की ओर प्रवृत्त हो सकता है।

10. होम –

होम को 'यज्ञ' भी कहा गया है। चरणदास के अनुसार होम 'नियम' का दसवां अंग है। यह दो प्रकार का माना गया है ।

प्रथम– वैदिक रीति से हवन कुंड में संविदा रखकर हवन किया जाता है।

द्वितीय–ज्ञान रूपी अग्नि में अपनी इंद्रियों के स्वाद का स्वाहा

करना दूसरे प्रकार का हवन माना गया है। चरणदास के शब्दों में–

दसवें समझों होमही, कीजै दोय प्रकार,
आंगन माहीं साकिल्लकुं , वेद कहै ज्यों डार।[17]

इस प्रकार अष्टांग योग में निहित नियमों को सभी योगियों ने एक समान नहीं माना है। शांडिल्य उपनिषद, जाबालों उपनिषद, वशिष्ठ संहिता ने भी नियम के दस अंग के रूप में वर्णन किया है। इस प्रकार हमारे आर्ष ग्रंथों में वर्णित नियम के सभी अंगो का पालन करके मनुष्य का व्यक्तित्व श्रेष्ठ बनाया जा सकता है। आज के समय भी इसकी प्रासंगिकता उतनी ही अधिक है जितना जीवन मूल्यों का ह्रास होने के कारण पहले भी कष्ट उठाने पड़ते रहे हैं। इनका पालन करके मनुष्य का जीवन सदैव औदार्य गुणों से भरकर वह संसार में जन्म लेने का सर्वोत्तम प्रयोजन प्राप्त करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. महर्षि पतंजलि कृत, योगसूत्र पृष्ठ संख्या 2 – 32
2. याज्ञवल्क्य संहिता 3 .7
3. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 85
4. महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र, पृष्ठ संख्या 2– 42
5. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 85
6. श्रीमद्भागवत गीता
7. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 85
8. जाबल दर्शन, पृष्ठ संख्या 2 – 7
9. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 85
10. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 86
11. चरणदास जी कृत भक्ति सागर , पृष्ठ संख्या 86
12. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 86
13. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 86
14. वशिष्ठ संहिता, पृष्ठ संख्या 1.63
15. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 86
16. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 86
17. चरणदास जी कृत भक्ति सागर, पृष्ठ संख्या 87

सोशल मीडिया : महिला अधिकारों की प्राप्ति का नया अभियान

डॉ. सुनीता पारीक
एसोसिएट प्रोफेसर
अदिति कॉलेज, राजनीति विज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. संजय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वर्तमान लोकतंत्र देश और दुनिया इंटरनेट, वेब मीडिया, सोशल मीडिया और स्वतंत्र यूट्यूब चैनल्स का युग है, अतीत में सूचनाओं के लिए आम आदमी सिर्फ टीवी, रेडियो और अखबार पर निर्भर था जहां सुबह होने के साथ ही अखबार का बेसब्री से इंतजार रोज का काम था और उससे भी पहले अगर देखा जाए तो यह अखबार भी साप्ताहिक था, जहां सप्ताह भर की खबरें एक साथ छपने पर हीपढ़ पाते थे। इसके अलावा भारत में टीवी पर दूरदर्शन के माध्यम से आने वाली खबर के साथ ज्यादातर आम घरों में सभी टीवी पर नजर टिकाकर बैठ जाते थे और जहां सामान्य रूप से हर घर में टीवी न होना भी आम बात थी, इसलिए सामान्यतया पड़ोस में जिसके घर टीवी होता था बाकी सभी लोग भी खबर आने के समय वहीं पर इकट्ठे हो जाया करते, किंतु आज परिस्थिति पूरी तरह बदल चुकी है। वर्तमान काल में कोई भी घटना घटित होने के साथ ही या घटित होने के समय पर ही लाइव टेलीकास्ट के माध्यम से पूरी दुनिया के अंदर छा जाती है जिससे तत्काल ही सभी वाकिफ हो जाते हैं, जिसका पूरा श्रेय सोशल मीडिया को जाता है। सोशल मीडिया जो आज लोगों की पहली पसंद बन गया है, इसका शाब्दिक अर्थ का सीधा सा मतलब निकाला जा सकता है जनता की आवाज। वह आवाज जो उसे अपने ही लोगों से निकालकर सुनाई जाती है, ना कोई चैनल ना कोई अखबार सिर्फ आपकी अपनी खुद की आवाज अपनी खबरों के ज्ञान के भंडार के साथ।[1]

आज इंटरनेट की दुनिया के द्वारा आम नागरिक अपने देश की सीमाओं को तोड़ते हुए आसानी से एक दूसरे से संपर्क बना सकते हैं, अपने सूचनाओं, विचारों, खबरों को आपस में एक दूसरे के साथ साझा कर सकते हैं। यूट्यूब, न्यूज वेबसाइट, फेसबुक और ट्विटर आज सभी लोगों के खबरें देने के लिए और देखने के लिए एक पसंदीदा माध्यम है, बल्कि ट्विटर तो बड़े बड़े हस्तियों का मुख्य अड्डा बन चुका है जहां बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों से लेकर अभिनेता, अभिनेत्री उनके बच्चे परिवार एवं सभी जानी-मानी हस्तियां अपने अपने विचारों के साथ मुखातिब होती है। सोशल मीडिया के द्वारा हम कभी भी कहीं से भी किसी से भी अवगत हो सकते हैं और उसके बारे में अपनी राय व्यक्त कर सकते हैं। अगर कहीं पर भी कोई घटना घटित हुई है तो वह उसी समय तत्काल सभी लोगों के पास पहुंच सकती है और चाहे हम बस में हो, मेट्रो में हो, या अपने घर में हो, कहीं से कुछ भी जानकारी हासिल कर सकते हैं और जानकारी दे भी सकते हैं। जब हम सोशल मीडिया की बात करते हैं तो कहीं ना कहीं यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जहां मीडिया के हमारे पास इतने सारे साधन है, डिश टीवी के द्वारा टीवी चैनल एक साथ पहले की तुलना में कई खबरें एक साथ दिखा सकते हैं, स्मार्ट टीवी अपनी स्मार्टनेस से सबको लुभा रहा है और इस बात में भी संदेह नहीं है कि न्यूज़ चैनल अखबार और पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में भी पहले की तुलना में बढ़ोतरी हुई है। तो फिर भी क्या वजह होगी कि टीवी और प्रिंट मीडिया के होते हुए सोशल मीडिया ने अपनी दस्तक दी। शायद टीवी और प्रिंट मीडिया की निष्पक्षता पर लगे सवालों ने हमारी पहचान सोशल मीडिया से करवाई क्योंकि कई टीवी और मीडिया वालों पर पेड न्यूज का भी दोषी पाया गया।[2] कई बार तो यह भी कहा गया कि टीवी में दिखाई गई न्यूज़ पहले से ही फिक्स कर ली गई है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की 2019 की रिपोर्ट को अगर देखा जाए तो उसके अनुसार महिलाओं के प्रति हिंसा में 2018 की तुलना में 7.3 परसेंट की वृद्धि हुई है जिसमें तीन में से एक महिला शारीरिक, भावनात्मक या यौन हिंसा की शिकार

होती है[3] भारत की कुल आबादी में महिलाएं लगभग 48 प्रतिशत है और आंकड़े बताते हैं कि हर 3 में से एक महिला शारीरिक, भावनात्मक या यौन हिंसा की शिकार है और 2020 की रिपोर्ट इन आंकड़ों की 2018 की तुलना में 2019 में इन आंकड़ों की बढ़ोतरी की बात कर रही है। अधिकांश रूप में दर्ज मामलों में पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता, महिलाओं का शील भंग करने के इरादे से हमला, महिलाओं का अपहरण और धोखे से भगा ले जाना और बलात्कार महिलाओं के प्रति हिंसा के प्रमुख कथित कारण थे। चौंकाने वाली बात यह है कि वर्ष 2019 में भारत में प्रतिदिन औसतन 88 बलात्कार के मामले दर्ज हुए जिसमें हर 16 मिनट में लगभग एक बलात्कारहुआ।[4]

भारत में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कई कानून है जैसे कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम, 2013, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, दहेज निषेध अधिनियम 1961 और भारतीय दंड संहिता की धारा 294, 354, 509 जो छेड़खानी पीछा करना, उत्पीड़न करना महिलाओं को जबरदस्ती से छेड़ना और यौन उत्पीड़न के रूप में संबंधित है फिर भी महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध के मामलों में वृद्धि हो रही है और ऐसे कई मामले हैं जो रिपोर्ट ही नहीं किए जाते हैं इसके अलावा खुद महिलाएं भी अपने ऊपर हुए अत्याचार को रिपोर्ट कराने से हिचकती है, और कई बार महिलाओं को अपने लिए बने इन अधिकारों की जानकारी ही नहीं होती, इसीलिए आवश्यक है कि महिलाओं को इन कानूनों की जानकारी दी जाए और साथ ही साथ एक ऐसा प्लेटफार्म दिया जाए जिससे महिलाएं बिना किसी हिचक के अपने ऊपर हुए अत्याचार को बयान कर सके और इसमें प्रिंट मीडिया के अलावा सोशल मीडिया ने प्रभावी तरीकेसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

एक ऐसे देश में जहां लोकतंत्र सफलतापूर्वक कार्य कर रहा हो और जहां महिलाओं के लिए बराबरी के अधिकार की बात करते हुए ,उनको उनकी सुरक्षा के लिए उपयुक्त प्रावधान उपलब्ध करवाए हुए, समान अधिकारों के बावजूद भी अगर सही रूप में वह अपनी बात को या अपने ऊपर हुए अत्याचार को बयान नहीं कर पा रही है तो ऐसी हालत में लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप प्रिंट मीडिया या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है किंतु यदि टीवी या समाचार पत्र इस महिला वर्ग की आवाज को बुलंद करने में सक्षम ना हो पाए तो मीडिया की इस प्रकार की छवि से आम जनता के मन में निराशा पैदा होती है और इसी निराशा में आधुनिक इंटरनेट की दुनिया के रूप में सोशल मीडिया ने आशा का वातावरण पैदा किया है और खासकर महिलाओं के लिए यह एक ऐसा तोहफा बना जिसने उनको संविधान में आजादी प्राप्ति के साथ दिए गए समानता के अधिकार से वास्तव में उनकी पहचान करवाई, जहां महिलाओं को यह लगा कि बिना किसी से डरे, सहमें वह इस प्लेटफार्म के द्वारा अपनी बात को बेबाकी के साथ रख सकती हैं, फिर चाहे वह बात उनकी निजी पसंद की हो या कोई भी सार्वजनिक हितों से जुड़ा मुद्दा हो। आज अगर कहीं भी महिलाओं के साथ कोई भी अमान्य घटना होती है तो तत्काल ही एक तेज आंधी के भांति उस घटना की संपूर्ण जानकारी पूरी दुनिया में फैल जाती है और सोशल मीडिया के द्वारा पीड़िता के पक्ष में एक दबाव बना दिया जाता है कि जिस भी महिला के साथ गलत घटना घटित हुई है, उसे जल्द से जल्द न्याय मिले जो कि हम पिछले कई सालों से या कुछ ऐसी घटनाओं के माध्यम से देख पा रहे हैं कि किस भांति सोशल मीडिया के द्वारा एकाएक एक ऐसा माहौल बनाया गया जहां पीड़ित महिला ने दबंग होकर अपनी बात को रखा और उस महिला के पक्ष में पूरा का पूरा देश खड़ा हो गया और न्यायपालिका को अपराधियों को बिना कोई विलंब किए सजा देनी पड़ी, और समाज में यह संदेश गया की अगर कोई भी अपने गलत इरादे को रखते हुए महिलाओं के साथ किसी भी किस्म का दुर्व्यवहार करेगा तो कानून के द्वारा उसे नहीं बख्शा जाएगा, जो कि कहीं ना कहीं सोशल मीडिया के द्वारा संभव हो पाया। सोशल मीडिया ने इस प्रकार एक ऐसा महिला वर्ग पैदा किया जो अपने अधिकारों को लेकर पूरी तरह से सचेत है और जब एक महिला के द्वारा सोशल मीडिया पर कोई भी ऐसा कार्य किया गया तो वह बाकी सभी हजारों, लाखों महिलाओं के लिए एक ऐसा उदाहरण बना जहां से उनके जीवन को एक नई दिशा मिली।

निर्भया कांड : सोशल मीडिया पर फूटा आक्रोश

16 दिसंबर 2012 की रेप की घिनौनी घटना से हम सभी परिचित हैं जिन दरिंदों ने निर्भया के साथ यह घिनौना कृत्य किया वह 'रेयरेस्ट ऑफ रेयर' की श्रेणी में गिनागया। घिनौनी बलात्कार की इस वारदात के बाद दरिंदों ने सुनसान सड़क पर उसे मरने को छोड़ दिया लेकिन वह बहादुर लड़की अपनी हर सांस तक लड़ी परंतु 15 दिन बाद उसने दम तोड़ दिया। यह घटना इतनी वीभत्स थी की देशभर का गुस्सा सोशल मीडिया पर फूट पड़ा। दिल्ली की सड़कों पर हजारों की संख्या में भीड़ उतर पड़ी। सोशल मीडिया निर्भया को इंसाफ दिलाने की मांग पर अड़ गई और पूरा देश एक स्वर में उन दरिंदों के लिए मृत्युदंड की मांग करने लगा[5] यह

सोशल मीडिया पर निर्भया को इंसाफ दिलाने के लिए चली मुहिम का ही असर था कि संसद में भी इसे लेकर जमकर हंगामा हुआ।

जो भी सड़कों पर उतरे उसके बुलंद आवाज संसद में उठने पर तत्काल ही सरकार भी और न्यायपालिका भी इस मुद्दे को लेकर सतर्क हो गई और निर्भया को इंसाफ दिलाने की आवाज सोशल मीडिया पर बुलंद होती गई। दिल्ली समेत भारत के तमाम राज्यों की राजधानियों में मोमबत्तियां और प्लेकार्ड पकड़े हुए लोग, 'बलात्कारियों को फांसी दो' 'लड़की के कपड़े नहीं अपनी सोच बदलिए' और' बेटियों के लिए सुरक्षा चाहिए' जैसे नारे लगा रहे थे।[6]

अगर देखा जाए तो आजादी के बाद यह एक दुर्लभ और ऐतिहासिक मौका था और सोशल मीडिया पर लोगों का जो जमकर गुस्सा बरस रहा था और जिसके फलस्वरूप लगातार चल रहे प्रदर्शनों का यह असर हुआ कि सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस वर्मा की अध्यक्षता में 3 सदस्य कमेटी का गठन किया गया जिसका काम महिलाओं की सुरक्षा के लिए नए कानून बनाना था और महज 29 दिनों में जस्टिस वर्मा की कमेटी के द्वारा 630 पन्नों की रिपोर्ट तैयार की गई जो 2013 में पारित किए गए क्रिमिनल अमेंडमेंट एक्ट का आधार भी बनी। इस नए कानून के तहत विशेष मामले में बलात्कार की सजा को 7 साल से बढ़ाकर उम्र कैद किया गया।[7]

मीटू मूवमेंट

मीटू आंदोलन सबसे पहले 2017 में सोशल मीडिया के महत्वपूर्ण भूमिका द्वारा वायरल हुआ जब बॉलीवुड अभिनेत्री तनुश्री दत्ता ने सोशल मीडिया पर अपने साथ हुई सेक्सुअल हैरेसमेंट की पूरी कहानी को सभी के साथ सांझा किया जिसमें नाना पाटेकर जैसे दिग्गज अभिनेता का नाम लिया गया जिसमें तनुश्री दत्ता ने बताया कि 2008 में आई फिल्म 'हॉर्न ओके प्लीज' के लिए उन्हें एक आइटम नंबर शूट करना था और उसी दौरान शूटिंग के समय नाना पाटेकर पर तनु श्री दत्ता ने उन्हें गलत तरीके से छूने का आरोप लगाया[8] अब तक मी टू मूवमेंट में जुल्फी सईद, चेतन भगत, डायरेक्टर विकास बहल, आलोक नाथ अभिजीत भट्टाचार्य तमिल राइटर वक्का मुथु और मंत्री एमजे अकबर इत्यादि पर सेक्सुअल हैरेसमेंट के आरोप लग चुके है।[9] यह सब सिर्फ और सिर्फ सोशल मीडिया पर चलाए गए मी टू मूवमेंट का ही असर था जिससे कि यह आंदोलन यौन शोषण का शिकार हुई महिलाओं के लिए एक ऐसा अस्त्र बना जिसमें उसने इसके द्वारा अपने ऊपर हुए यौन शोषण की कहानी को सोशल मीडिया पर सबके साथ शेयर किया ताकि अगर भूतकाल में किसी वजह से वह महिला उस बात को नहीं कह पाई तो अब कह सके, जिन जिन महिलाओं ने सोशल मीडिया पर अपनी कहानी अन्य लोगों के साथ बाटी वह अन्य उन महिलाओं के लिए एक मिसाल बने जो अभी तक सामाजिक दबाव के भय से अपने हुए अपने ऊपर हुए अत्याचार को नहीं बता पा रही थी।

#मी टू आंदोलन की वास्तविक शुरुआत 2006 में अमेरिकी सिविल राइट्स एक्टिविस्ट तराना बरतने की और तनुश्री दत्ता के द्वारा यह भारत में भी यौन शोषण से पीड़ित महिलाओं के लिए एक आवाज बना इस आंदोलन के द्वारा सोशल मीडिया एक ऐसा प्लेटफार्म बना जिसमें यो शोषण पीड़ितों को इस बात का एहसास कराया गया कि वह अकेली नहीं है।

अगर देखा जाए तो पूरी दुनिया में कामकाजी महिलाएं यौन उत्पीड़न का शिकार हो रही है और भारत में भी बहुत से महिलाओं ने #मी टू के जरिए अपनी बात सुनाई और यौन उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाई,जहां पहले महिलाएं इसे नियति मानकर सिर झुका लेती थी वहीं अब उसका विरोध कर रही है, पुलिस के खिलाफ आवाज उठा रही है आमतौर पर कामकाजी महिलाओं को सेक्स के बदले फायदा पहुंचाने के बाद की जाती है और इसी आड़ में ऑफिस में उनका यौन शोषण होता है। यौन उत्पीड़न का मतलब है बेहूदा जुमलेबाजी,बार-बार मिलने की गुजारिश,किसी लड़की के शरीर की बनावट के बारे में टिप्पणी करना, बेहूदा इशारे बाजी इत्यादि।[10] अक्सर महिलाएं पीड़ित होते हुए भी किसी से यह कहती नहीं और अगर शिकायत करती भी है तो उनकी शिकायत अनसुनी कर दी जाती हैं परंतु सोशल मीडिया के द्वारा उनकी आवाज को उठाया जा रहा है और इन सभी शिकायतों को बाकी सभी लोगों के सम्मुख लाया जा रहा है।

यूनिसेफ के एक आंकड़े के मुताबिक दुनिया हर 10 में से एक लड़की ने अपने जीवन में कभी न कभी यौन उत्पीड़न का सामना किया है। एनसीआरबी की एक रिपोर्ट के मुताबिक 2014-15 में देश में दुष्कर्म की 34, 651 वारदातें हुई है।[11]

सोशल मीडिया और तीन तलाक का मुद्दा

तीन तलाक बिल का पास होना महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम रहा। 15 अगस्त 2017 के स्वतंत्रता दिवस के मौके पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के देश को संबोधित भाषण में तीन तलाक के मुद्दे पर बोलने के पश्चात् सोशल मीडिया पर भी तीन तलाक का मुद्दा छा गया और लोगों ने मांग की कि

तीन तलाक को जल्द से जल्द खत्म करना चाहिए। तीन तलाक के कारण महिलाओं को काफी अपमान और परेशानी का सामना करना पड़ा, तीन तलाक से पीड़ित महिलाओं ने देश में एक आंदोलन खड़ा किया जिसमें मीडिया ने उनकी मदद करें और मोदी के भाषण में तीन तलाक को खत्म करने की बात होने पर सोशल मीडिया पर भी तीन तलाक के विरोध में लोगों की आवाज उठी जिसमें लोगों ने मांग की कि तीन तलाक को जल्द से जल्द खत्म किया जाए। 2019 में तीन तलाक को अपराध बनाने वाला बिल लोकसभा के बाद राज्यसभा में भी पास हो गया।देशमें तीन तलाक को गैरकानूनी बनाते हुए 3 साल की सजा और जुर्माने का प्रावधान किया गया।[12]

2 जनवरी 2021 को तीन तलाक संबंधी कानून पर सुप्रीम कोर्ट ने अपना अहम फैसला दिया सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस डीवाई चंद्रचूड़ की अगुवाई में बेंच ने कहा कि पति के रिश्तेदार को तीन तलाक विरोधी कानून यानी मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षण एक्ट के तहत आरोपी नहीं बनाया जा सकता संबंधित केस में 2 जनवरी 2021 में तीन तलाक देने के मामले पर अपनी एवं टिप्पणी करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने पीड़ित महिला की सास को अग्रिम जमानत देते हुए यह टिप्पणी की। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि पीड़िता की सास तलाक देने वाले पति की मां है और अपराध महिला पुरुष ने किया है ऐसे में उसकी मां को अपराधी नहीं ठहराया जा सकता।[13]

377 और सोशल मीडिया—समाज में बराबरीकी दिशा में नया कदम

6 सितंबर 2018 को सुप्रीम कोर्ट के द्वारा सुनाए गए ऐतिहासिक फैसले के बाद भारत में समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर किया गया यानी कि अब दो व्यस्कों के सहमति से बनाए गए समलैंगिक संबंध को अपराध नहीं माना जाएगा। 24 साल चली कानूनी लड़ाई और कई अपीलों के बाद सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला आया, जिसमें अगर इस दौरान चले कई पड़ाव पर नजर डाली जाए तो 2009 में हाईकोर्ट ने इसे अपराध के दायरे से हटा दिया था किंतु 2013 में सुप्रीम कोर्ट ने दोबारा अपराध घोषित किया। 2017 में सुप्रीम कोर्ट ने सेक्सुअलिटी को निजता का अधिकार माना 2016 आते-आते 377 के खिलाफ तीस से ज्यादा मामले या शिकायत दर्ज हुई और अंततः 2018 में समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर किया गया।[14] चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा ने अपने फैसले में कहा कि जो भी जैसा है उसे उसी रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और समलैंगिक लोगों को भी सम्मान के साथ जीने का अधिकार है और बाकी लोगों को भी इसे लेकर अपनी राय बदलनी होगी। इसी फैसले के साथ सोशल मीडिया पर भी यह मुद्दा छा गया जिसमें फिल्मकार करण जौहर ने ट्वीट करते हुए कहा कि समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर करना समान अधिकारों के लिए बड़ी उपलब्धि है। देश को उसके ऑक्सीजन वापस मिली है इसी प्रकार कोंकणा सेन शर्मा ने ट्वीट किया 'हम जीत गए' 'शुक्रिया सुप्रीम कोर्ट' पत्रकार बरखा दत्त ने कहा कि 'इतिहास बन रहा है।'[15]

यह फैसला संविधान की आत्मा, चेतना, धड़कनों का विस्तार करते हुए समाज को समावेशी बनाने की एक शानदार व्याख्या प्रस्तुत करता है, जिसमें व्यक्ति की निजता को, उसकी पसंद को, यौन संबंध, प्रेम संबंध, उसके एहसास, उसके हमसफर के चयन के अधिकार आदि की व्याख्या की गई है। कई बार फैसले सिर्फ संवैधानिक सर्वोच्चता या मानवीय गरिमा की रक्षा के कारण ही महत्वपूर्ण नहीं होते बल्कि न्यायाधीशों की तार्किक टिप्पणी के कारण भी विशेष बन जाते हैं और इस मायने में जस्टिस दीपक मिश्रा, जस्टिस खानविलकर और जस्टिस रोहिंटन नरीमन, जस्टिस डीवाई चंद्रचूड़ और जस्टिस इंदु मल्होत्रा को ऐतिहासिक रूप से याद किया जाएगा समलैंगिकता जैसे विवादास्पद मुद्दे पर एकमत से दिया गया संवैधानिक पीठ का यह फैसला एक मील का पत्थर माना गया क्योंकि इसमें सुप्रीम कोर्ट के पांच जजों की संविधान पीठ ने एकमत से समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर किया।[16]

निष्कर्ष

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को अपने से निम्न श्रेणी में रखना पुरुष के स्वामित्व को बनाए रखने के लिए किया गया, आधुनिक समाज में महिलाओं की आकांक्षा बराबरी का दर्जा पाने की है हालाकी आज महिलाएं घर से बाहर निकली है और आर्थिक रूप से स्वतंत्र भी हुई है, साथ ही साथ अपनी निजता के प्रति भी सजक हुई है किंतु जहां एक तरफ महिला लगातार अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करके आगे बढ़ी है, स्वाधीन हुई है उतनी ही वह असुरक्षित भी हुई है। समाज में आज भी महिलाएं असमानता, हिंसा, शोषण तथा पुरुषों के घिनौनी मानसिकता की शिकार होकर यातना झेलती है। कामकाजी स्त्रियों को दोहरी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है और अपने अधिकारों को पाने की जद्दोजहद में एक महिला आज भी संघर्ष करती दिखाई देती है और अगर भारतीय मीडिया को देखें तो, भारतीय मीडिया ने नारी अस्मिता का जो मजाक उड़ाया है शायद ही किसी और ने उड़ाया

हो। अब मीडिया 'बिकेगा वही छपेगा' के सिद्धांत पर चल रहा है।[17] और इस स्थिति पर लगाम लगाने की आवश्यकता को अनुभव करते हुए ही सोशल मीडिया ने एक सभ्य समाज की पहचान कराते हुए अपनी दस्तक दी, जो औरतों के सुरक्षा और अधिकारों की बात करते हुए प्रशासन और भ्रष्टाचार पर कड़ी चोट करते हुए आधुनिक महिला को बुलंद आवाज प्रदान करता है। 16 दिसंबर 2012 को दिल्ली में गैंगरेप के बाद भले ही आज भी महिलाओं के साथ बलात्कार जैसी घटनाएं या यौन उत्पीड़न, छेड़छाड़ जैसे मामले कम न हुए हो लेकिन महिलाओं में आत्म सुरक्षा को लेकर एक आत्मनिर्भरता जरूर आ रही है, जैसे 2015 में एक खबर आई की एक अधेड़ हवाई यात्री ने अपनी सहयात्री महिला से फ्लाइट में छेड़छाड़ की कोशिश की और महिला ने बिना डरे तुरंत ही अपने स्मार्टफोन से उस व्यक्ति का वीडियो बना लिया यह सोशल मीडिया पर महिलाओं में जागरूकता अभियान का ही असर है कि पिछले 8 वर्षों के दौरान एसओएस बटन दबाने वाले अलर्ट सिस्टम की मांग भी बढ़ी है। कैब और टैक्सियों से लेकर स्मार्टफोन में भी अलर्ट या पैनिक बटन होने लगा है इसी के साथ कई सेफ्टी एप्स भी बढ़े हैं और ऐसी कई वेबसाइट भी बनाई गई है जहां यौन शोषण की शिकायत दर्ज कराई जा सकती है।[18] फ्लाइट में हुई इस घटना का जो वीडियो रिकॉर्ड किया गया उसे 4.4 मिलियन लोगों ने देखा और घटना का इस तरह से सबके सामने आना महिलाओं में जागरूकता को बढ़ाता है। इसके अलावा केंद्र सरकार के द्वारा 2015 से ही हिम्मत नाम का एक ऐप शुरू किया गया, जिसने महिलाओं के अंदर वास्तविक रूप से हिम्मत लाने का ही काम किया और महिलाओं के अंदर एक नई साहस की भावना आई। इस जागरूकता अभियान ने महिलाओं को बताया कि हर एक महिला अपने अधिकारों को पहचाने और अपने साथ हुई कोई भी यौन उत्पीड़न की घटना से अपने आप को दोषी ना माने बल्कि जिस ने उसके साथ गलत किया है उसकी इस करतूत को सबके सामने लेकर आए, महिलाओं के अंदर यह हिम्मत जगाने में सोशल मीडिया एक मजबूत आधार बना है।

संदर्भ सूची

1. जागरण ब्लॉग, रोहित श्रीवास्तव, m.jagran.com/blogs/ Rohit, इंटरनेट और सोशल मीडिया का बढ़ता साम्राज्य।
2. ibid
3. चितवन लाल जी, आइडियाज फॉर इंडियन, 07, सितंबर 2021 जागरूकता और आत्मरक्षा प्रशिक्षण के माध्यम से महिलाओं के खिलाफ हिंसा का सामना करना।
4. ibid
5. नवभारत टाइम्स डॉट कॉम/अपडेटेड : मार्च 20 2020, 6.15AM निर्भया कांड :16 दिसंबर की खौफनाक रात अब मिला निर्भया को इंसाफ।
6. NDTV India, updated March 20 2019 9 .38 IST
7. प्रियंका दूबे,BBC संवाददाता 18 फरवरी 2020 अपडेटेड 16 दिसंबर 2020 निर्भया कांड : गम और गुस्से में डूबे भारत को एक साथ लाने वाला मामला।
8. नवभारत टाइम्स डॉट कॉम अपडेटेड अक्टूबर 10, 2018,12:44pm,जानेक्या है #MeToo मूवमेंट, कहासे शुरू हुआ और क्यों मचा है बवाल।
9. जनसत्ता google.com/amp/s/www.Jan MeToo Campaign, जानिए क्या है मी टू मूवमेंट कब कहां और कैसे हुई शुरुआत।
10. अफरोदितिपिना, BBC News, वरिष्ठ प्राध्यापिका केंट विश्वविद्यालय 16 नवंबर 2017 दफ्तरों में योन उत्पीड़न से कैसे लड़े महिलाएं।
11. बीबीसी संवाददाता पायल भूयन, 18 अक्टूबर 2017 , लड़कियों के साथ सभी 2 पोस्ट पर लड़के क्यों, BBC news Delhi
12. सोशल मीडिया पर भी छाया तीन तलाक विरोधी कानून dated 3.7.2019
13. राजेशचौधरी,नवभारत टाइम्स, pdated January 2 2021, 6.35PM सुप्रीम कोर्ट की अहम टिप्पणी तीन तलाक में पति के रिश्तेदार नहीं जिम्मेदार अग्रिम जमानत देने पर कोई रोक नहीं।
14. बीबीसी न्यूज़ हिंदी सोशल 377 पर ऐतिहासिक फैसला देश को मिली ऑक्सीजन 6 सितंबर 2018
15. IBID
16. दृष्टि,सामाजिक मुद्दे, समलैंगिकता सामाजिक नैतिकता बनाम संविधानिक सर्वोच्चता, 20 अक्टूबर 2018.
17. जागरण ब्लॉग, सरोकार, अधिकार और निष्कर्ष
18. नई दुनिया, updated, , Sat 7 फरवरी 2015 01:16PM (IST) यौन उत्पीड़न से बचने के लिए सोशल मीडिया का सहारा।

ISSN 2278 - 0327

श्रीमद्भागवत-महापुराण में वर्णित राजधर्म एवं राजा के गुण तथा इनकी प्रासंगिकता

डॉ. प्रणव कुमार
सहायक आचार्य (सीनियर स्केल), राजनीति अध्ययन विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार (824236)

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख के माध्यम से श्रीमद्भागवत पुराण जिसे महापुराण की उपाधि दी गयी है में एक शासक अथवा राजा के लिए उपयुक्त गुणधर्मों और राजधर्म को समझने का प्रयास किया गया है। वैसे तो श्रीमद्भागवत-महापुराण को एक धार्मिक ग्रन्थ माना गया है, परन्तु पुराणों में इसे महापुराण की उपाधि इसलिए दिया गया है क्योंकि इसमें अन्य पुराणों के तुलना में अधिक आयामों और लक्षणों की चर्चा और विश्लेषण किया गया है। श्रीमद्भागवत-महापुराण में किसी अन्य पुराण की तुलना में राजनीतिक पहलू और मूल्यों का भी अधिक विस्तृत चर्चा किया गया है। अत: इस महान ग्रन्थ के आधार पर उपरोक्त राजनीतिक बिन्दुओं को समझने का प्रयास किया गया है, साथ ही इस ग्रन्थ में उद्धृत, वर्णित और विश्लेषित राजनितिक मूल्यों की वर्तमान समय और परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता समझने का भी प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- श्रीमद्भागवत, राजधर्म, गुण, धैर्य, निश्चय, विनयशीलता, सत्यनिष्ठा, धर्म, सहनशीलता, सहृदयता, स्व-नियंत्रण, प्रासंगिकता

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत पुराण को महापुराण की उपाधि दी गयी है क्योंकि इसमें अन्य पुराणों में प्राप्त अन्य 5 लक्षणों के अलावा कई अन्य लक्षण भी प्राप्त होते हैं। अन्य पुराणों के पाँच सामान्य लक्षण बताये गये हैं, परन्तु भागवत-महापुराण में दस लक्षण मिलते हैं। प्रस्तुत श्लोक पुराण के पाँच लक्षणों को प्रस्तुत करता है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

इस श्लोक के अनुसार पुराण में सर्ग अर्थात् निर्माण (क्रिएशन), प्रतिसर्ग अर्थात् समय-समय पर विनाश और पुन: निर्माण, वंश अर्थात् देवताओं और ऋषियों के वंशों का, मन्वन्तर अर्थात् विभिन्न मनुओं के नेतृत्व में कॉस्मिक चक्र, वंशानुचरित अर्थात् विभिन्न साम्राज्यों के एतिहासिक रूप-रेखा की विस्तृत और संक्षिप्त चर्चा की गयी है। यदि केवल इन्हीं पाँच लक्षणों पर भी चर्चा को केन्द्रित किया जाए तो भी श्रीमद्भागवत-महापुराण में स्थान-स्थान पर राजा और जनता के कर्तव्यों और अधिकारों की भी चर्चा की गयी है। भगवान् कृष्ण को मुख्य रूप से समर्पित यह महापुराण कृष्ण के वंश की विशद व्याख्या की है। उस सन्दर्भ में भी राज-धर्म को वर्णित किया गया है (महर्षि वेदव्यास, ख)। परन्तु, उसके अलावा भी कई अन्य प्रसंगों में भी इन राजनीतिक मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है। वैसे तो श्रीमद्भागवत-महापुराण की मूल चिंता शोक और संताप का निवारण और भक्ति की स्थापना है परन्तु इसमें जगह-जगह पर राजधर्म की भी चर्चा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हुई है।

सामान्यत: राजनीतिशास्त्र में यह परम्परा रही है कि गैर-पश्चिमी देश राजा अथवा शासक के गुण-धर्मों को समझने और विश्लेषित करने के लिए पश्चिमी चिंतकों के ओर देखने लगते हैं और इस कारण अपनी जड़ों को भूल कर पश्चिम का अन्धानुकरण करने लगते हैं। वैसे भारतीय परम्परा में अच्छे मूल्यों का बाह्य स्रोतों से ग्रहण करना अनुचित नहीं माना गया है। परन्तु अन्धानुकरण शायद ही उचित होगा, विशेषकर वैसे राष्ट्र-राज्यों के लिए जिनका अपना ही सभ्य राजनीतिक इतिहास बहुत ही लंबा रहा हो। विदेशी राजनीतिक मूल्यों का प्रत्यारोपण तो हो जाता है, परन्तु चूंकि वो मूल्य कहीं और उद्भूत हुए हैं इसलिए उनका प्रभाव अपेक्षित नहीं होता है। यहाँ तक कि मैकफर्सन जैसे पश्चिमी चिंतकों का भी मानना है कि कोई भी देश प्रजातंत्र हो सकता है यदि वो राष्ट्र-राज्य प्रजातंत्र की जड़ें अपनी परम्पराओं में ढूंढे न

कि किसी अन्य राष्ट्र से आयातित करे।

राजा के गुण और राजधर्म

श्रीमद्भागवत-महापुराण में राजा के गुण और राजधर्मों की अनेक स्थानों पर वर्णन मिलती है। छठे स्कंध में इंद्र वृत्रासुर से कहते हैं -

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी।
भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृद यं जगदीश्वरम्।।

(स्कंध 6-11-19, 763)

अर्थात् हे दानवराज ! सचमुच तुम सिद्ध पुरुष हो, तभी तो तुम्हारा धैर्य, निश्चय और भगवद्भाव इतना विलक्षण है। इस कथन में यह प्रत्यक्ष है कि एक राजा को धैर्यवान् और निश्चयशाली होना चाहिए और उसे ईश्वर में विश्वास करने वाला होना चाहिए। साथ ही इस प्रकरण से यह भी स्पष्ट होता है कि एक राजा को दूसरे राजा के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो। आज अंतरराष्ट्रीय कानूनों-जिनकी उत्पत्ति एक आधुनिक परिघटना है- में भी यह शत्रु राजा के साथ मर्यादोचित व्यवहार को स्थापित किया गया है। उपरोक्त प्रसंग उस समय का है जब इंद्र वृत्रासुर का वध करने वाले हैं। एक राजा दूसरे राजा के साथ उस समय भे उसके सद्गुणों को स्वीकार करने से पीछे नहीं हटता है जब वह उसका वध ही करने वाला क्यों न हो। इस तरह के उदाहरण अन्य भारतीय ग्रंथों में भी मिलते हैं। जैसी इसी प्रकार का व्यवहार राम उस समय करते हैं जब रावण उनके बाणों द्वारा घायल होकर मरनासन्न अवस्था में पड़े हुए हैं। कृष्ण भी इसी तरह का व्यवहार कर्ण के साथ तब करते हैं जब अंगराज मरने वाले हैं।

वस्तुत: पूर्वजन्म में वृत्रासुर एक सद्गुणी राजा था परन्तु कुछ कमियों के कारण उसका जन्म असुर जन्म में हुआ 7 पूर्व जन्म में उसका नाम चित्रकेतु था और वह शूरसेन का चक्रवर्ती राजा था। उसमें राजा के सभी गुण थे-

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रीयादिभिः।
सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिंता वन्ध्यापतेरभूत्।।

(स्कंध 6-14-12, 769)

अर्थात् छत्रकेतु में सुन्दरता, उदारता, युवावस्था, कुलीनता, विद्या, ऐश्वर्य, और सम्पति जैसे गुण थे जो एक राजा के लिए अपेक्षित माने गये हैं और लोगों में उसकी स्वीकार्यता दिलवाती है। विनयशीलता राजा का एक अन्य गुण है जो न सिर्फ एक महान शासक के लिए अपेक्षित है बल्कि उसे जनता में स्वीकार्य भी बनाता है। श्रीमद्भागवत-महापुराण में अंगिरा ऋषि चित्रकेतु में यह गुण का अवलोकन करते हुए कहते हैं-

महर्षिस्तमुपसीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ।
प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत्।।

(स्कंध 6-14-16, 769)

एक राजा में विनयशीलता भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है। जिसकी चर्चा महान भारतीय चिन्तक चाणक्य ही नहीं करते हैं बल्कि पश्चिमी राजनीतिक चिन्तक भी करते हैं। यहाँ तक की शक्तिशाली राजा को समर्थित अपने प्रख्यात पुस्तक 'द प्रिंस' में इटली के चिन्तक मैकियावेली भी यह बतलाते हैं कि राजा क्रूर होना उसके प्रति जनता में विरोध की भावना भर सकता है और इसके कारण जनता क्रांति के लिए उतारू हो सकता है। श्रीमद्भागवत-महापुराण में राजा को साधु स्वभाव का माना गया है। युधिष्ठिर जब भीष्म से उनके मरते समय मिलने जाते हैं तो कुन्तीपुत्र को साधु स्वभाव का बताया गया है-

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः।
शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः।।

(स्कंध 1-9-45, 124)

शायद ठीक उसी प्रकार से जैसे प्लेटो अपने प्रख्यात कृति में 'दार्शनिक राजा' की अभिकल्पना करते हैं अथवा जॉन स्टुअर्ट मिल अपने निबन्ध 'रिप्रेजेन्टेटिव गवर्नमेंट' में 'सहृदय राजा' की चर्चा करते हैं।

श्रीमद्भागवत-महापुराण के छठे स्कंध में अंगिरा ऋषि चित्रकेतु को सम्बोधित कर प्रकृतियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जैसे जीव सात आवरण से घिरा रहता है उसी प्रकार एक राजा भी सात प्रकृतियों से घिरा होता है और राजा की कुशलता इन सात प्रकृतियों की कुशलता पर निर्भर करती है और वो हैं - गुरु, मंत्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र। चाणक्य के अर्थशास्त्र और महाभारत के शांतिपर्व में भी राज्य के अंगों का इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत-महापुराण के अनुसार यदि एक राजा इन सात प्रकृतियों की रक्षा करने में सक्षम है तो ये सात प्रकृतियाँ राजा को राज्य-सुख का भोग करा सकता है।

अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मनः।
यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः।।
आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात्।
राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः।।

(स्कंध 6-14-17 एवं 18, 769)

उसके उपरान्त अंगिरा ऋषि यह व्यक्त करते हैं कि एक राजा सफल तभी हो सकता है जब उसकी रानियाँ, प्रजा, मंत्री

(सलाहकार), सेवक, व्यापारी, अमात्य (दीवान), नागरिक, देशवासी, अधीनस्थ मंडलेश्वर राजा और पुत्र नियंत्रण में हों। परन्तु इस सब से भी अधिक महत्वपूर्ण है एक राजा द्वारा अपने मन को वश में करना क्योंकि एक राजा उपरोक्त पर नियंत्रण तभी कर सकता है जब उसका मन नियंत्रण में हो।

अपि दारा: प्रजामात्या भृत्या: श्रेण्योऽथ मंत्रिण:।
पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिन:।।

(स्कंध 6-14-19, 769)

अन्य स्कन्धों में भी राजा के गुण-धर्मों और राजधर्म का वर्णन हुआ है। राजा परीक्षित की चर्चा करते हुए एक राजा के गुण-धर्मों में प्रजापालक, ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ प्रमुख माने गये हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में मनुपुत्र इक्ष्वाकु को प्रजापालक राजा के रूप में एवं राम को ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ राजा के रूप में मानक के रूप में स्थापित किया गया है-

पार्थ प्रजविता सक्षदिक्ष्वाकुरिव मानव:।
ब्रह्मण्य: सत्यसंधाश्य रामो दाशरथिर्यथा।।

(स्कंध 1-12-19, 137)

यहाँ ब्राह्मण का अर्थ जाति से कदापि नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि यही राम रावण का भी वध करते हैं। वस्तुत: इस सन्दर्भ में ब्राह्मण वो हैं जो ईश्वर के लिए मार्ग प्रशस्त करें और उनके लिए कृतसंकल्प रहें जो उनसे अपेक्षित हैं। भगवान् राम उसके प्रतिमूर्ति हैं। रामचरित मानस में भी इसकी पुष्टि होती है।

रघुकुल रीति सदा चली आई,
प्राण जाए पर वचन न जाई।

आज के समय में एक शासक में यदि सबसे बड़ी कमी किसी गुण की है तो वो है सत्यनिष्ठा। प्रजातान्त्रिक रूप से चुने गये राजनेता हों या राजशाही, आज विश्व में सत्यनिष्ठा पर चलने वाले शासकों की बहुत ही कमी हो गयी है। प्रजातंत्र में चुनाव के दौरान किये गये वादों और उसके पालन में बहुत ही बड़ा अंतर हो गया है। जबकि एक शासक को यह ध्यान देना चाहिए कि सत्यनिष्ठा न सिर्फ शासक को एक महान शासक बनाता है बल्कि जनता में उसको और अधिक स्वीकृत बनाता है। चाहे फुकुयामा जैसे उदारवादी चिन्तक हों या हॉब्सबॉम जैसे मार्क्सवादी अथवा हार्ट और नग्री जैसे उत्तर आधुनिकता से प्रभावित चिंतक, कई समकालिक राजनीतिक चिंतकों का मानना है कि आज के शासक मुख्य रूप से विश्वसनीयता की संकट से जूझ रहे हैं। उसका प्रमुख कारण है उनमें सत्यनिष्ठा की कमी। महात्मा गाँधी का भी मानना था कि हमारी कथनी-करनी में अंतर नहीं होना चाहिए।

राजा परीक्षित की अन्य गुणों की चर्चा भी की गयी है। जो कि निम्नलिखित हैं-

एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनर: शिबि:।
यशो वितनिना स्वानां दौन्तिरिव यज्व्नाम्।।

(स्कंध 1-12-20, 137)

अर्थात् राजा परीक्षित उशीनरेश शिबि के समान दाता और शरणागतवत्सल और दुष्यंत पुत्र भरत के समान यशस्वी होगा। इसके अनुसार राजा को जनता को देने के लिए तत्पर होना चाहिए।

धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयो:।
हुताश इव दुर्धर्ष: समुद्र इव दुस्तर:।।

(स्कंध 1-12-21, 137)

अर्थात् धनुर्धरों में अर्जुन के समान होगा तथा अग्नि के समान दुर्धर्ष और समुद्र के समान दुस्तर होगा। एक शासक को बहादुर और शौर्यवान् होना चाहिए।

मृगेंद्र इव विक्रांतो निषेव्यो हिमवानिव।
तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णु: पितराविव।।

(स्कंध 1-12-22, 137)

अर्थात् परीक्षित सिंह के समान पराक्रमी, हिमाचल की तरह आश्रय देने वाला, पृथ्वी के समान तितिक्षु और माता-पिता के समान सहनशील होगा। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक आदर्श राजा को पराक्रमी तो होना चाहिए पर साथ ही आश्रय देने वाला और सहनशील भी होना चाहिए। साथ ही-

पितामहसम: साम्ये प्रसादे गिरीशोपम:।
आश्रय: सर्वभूतानां यथा देवो रामाश्रय:।।

(स्कंध 1-12-22, 137)

अर्थात् वह पितामह ब्रह्मा के समान समता वाला, भगवान् शंकर की तरह कृपालु और भगवान् विष्णु के समान सम्पूर्ण प्राणियों को आश्रय देने वाला होगा।

इस तरह से हम देख सकते हैं कि श्रीमद्भागवत-महापुराण में राजा के गुणों और गुणधर्मों के व्याख्या की गयी है और इन गुणों का राजा में पाया जाना उसे महान बनाता है और उपरोक्त गुणों का पालन करना और व्यवहार करना ही राजधर्म है। इस प्रकार के प्रकरण इस महापुराण में अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं।

धर्मपालक राजा पर ईश्वरीय कृपा

श्रीमद्भागवत-महापुराण में इस बात बात पर भी जोड़ दिया गया है कि एक धर्मपालक राजा पर ईश्वरीय कृपा बनी रहती है । वह देवताओं के राजा इंद्र के समान राज्य करता है और उसके सगे

संबंधी और भाई उसका अनुचरण करते हैं-

निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृतविज्ञानविधूतविभ्रम:।
शशास गामिन्द्र इवाजिताश्र य:।।

(स्कंध 1-10-3, 125)

और इस प्रकार के राजा की यश-कृति स्वर्ग तक फैली रहती है और इनकी सभी प्रकार के तापों-दैविक, भौतिक, आत्मिक- से रक्षा होती है।

नाधयो व्याधय: क्लेशा दैव भूतात्महेतव:।
अजातशत्राभवन् जंतूनां राज्ञि कर्हिचित्।।

(स्कंध 1-10-6, 126)

प्रकृति ऐसे राजा के आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। पर्याप्त मात्रा में वर्षा की प्राप्ति होती है। गायें पर्याप्त मात्रा में दूध प्रदान करती हैं और किसी प्रकार की संसाधन की कमी नहीं रहता है।

कामं ववर्ष पर्जन्य: सर्वकामदुघा मही।
सिषिचु: स्म व्रजान् गाव: पयसोधस्वतीर्मुदा।।
नद्य: समुद्रा गिरय: सवनस्पतिवीरूध:।
फलान्त्योषधय: सर्वा: काम मन्वृतु तस्य वै।।

(स्कंध 1-10-4 एवं 5, 126)

उसी प्रकार चित्रकेतु के प्रसंग में षष्ठ स्कंध में उद्धृत है कि-

आसीद्राजा सार्वभौम: शूरसेनषु वै नृप।
चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुन्मही।।

(स्कंध 6-14-10, 769)

अर्थात् शूरसेन के चक्रवर्ती राजा चित्रकेतु के राज्य में पृथ्वी स्वयं ही प्रजाकी इच्छा के अनुसार अन्न-रस दे दिया करती थी। चाहे तथाकथित पश्चिमी 'धर्मनिरपेक्षता' के अवधारणा से प्रेरित समय में ईश्वरीय कृपा की बात मिथकीय लगती हो, परन्तु यह तो माना ही जा सकता है कि उपरोक्त उद्धरण एक राजा को सही रास्ते पर चलने को प्रेरित करता है।

राजा के पतन के कारण

आज जहाँ वंशवाद विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं द्वारा अनुभव की जाने वाली प्रमुख चुनौती है। क्योंकि यह एक राजा को अपने राजधर्म से पतित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारण माना गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण चित्रकेतु जैसा महान शासक भी पुत्रमोह के कारण एक महान राजा होते हुए भी न सिर्फ राजधर्म से पतित हो गया बल्कि वह मानव योनि से भी पतित होकर असुर योनि में जन्म लेने के लिए बाध्य हो गया। इससे यह प्रमाणित होता है कि पुत्रमोह एक चक्रवर्ती और योग्य राजा को भी पतित करने में सक्षम है। ठीक उसी तरह से जैसे धृतराष्ट्र का पुत्रमोह उसे अपने राजधर्म से पतित करने वाला प्रमुख कारण था। आज जहाँ परिवारवाद और भाई-भतीजावाद राजनीति की एक प्रमुख प्रवृति के रूप में उभरा है, श्री महाभगवत-पुराण परिवार के मोह से ऊपर उठकर राजसत्ता चलाने की वकालत करता है। वस्तुत:, राजधर्म से पतन ही राजा के पतन का कारण माना गया है, न सिर्फ इस जन्म में बल्कि अगले जन्म में भी।

भगवान् विष्णु के अवतार का मुख्य उद्देश्य-जनसेवा और जनपालन

इटली के आधुनिक चिन्तक मैकियावेली के बाद के आधुनिक पश्चिमी चिंतकों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से धर्म की महत्ता को राज्य के गतिविधियों में कम करके दिखाया है। भारतीय परम्परा में धर्म पर आधारित राज्य की परिकल्पना की गयी है। यह विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। श्री महाभागवत पुराण के प्रथम स्कंध के तृतीय अध्याय में भगवान् विष्णु के बाईस अवतारों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। सभी अवतारों के पीछे की मूल चिंताएं रहीं हैं धर्म की स्थापना और जनसेवा। इस अध्याय में यह दिखाया गया है कि भगवान विष्णु बाईसवें अवतार में कल्कि रूप में अवतार लेंगे और जिसका मुख्य उद्देश्य होगा आततायी राजाओं से पृथ्वी को मुक्त करना। उन राजाओं से जो जनता का कल्याण छोड़कर उनको लूटने में संलिप्त हो जायेंगे।

अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगात्पति:।।

(स्कंध 1-3-25, 91)

उससे पहले भी अपने सोलहवें अवतार में भगवान विष्णु परशुराम का अवतार ग्रहण करने का कारण भी क्षत्रिय राजाओं द्वारा ब्राह्मणों-अर्थात् उन लोगों को जो ज्ञान और भक्ति के प्रसार-प्रचार में संलग्न हैं- को त्रस्त किया जाना था। परशुराम रूप में इस प्रकार के आततायी राजाओं से पृथ्वी को इक्कीस बार पृथ्वी को मुक्त किया।

अवतारे षोडसमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान्।
त्रि:सप्तकृत्व: कुपितो नि:क्षत्रामकरोन्महीम्।।

(स्कंध 1-3-20, 90)

और अपने अठारहवें अवतार में भगवान विष्णु ने मर्यादा पुरुष राम अवतार में आकर उन्होंने न सिर्फ धर्म की स्थापना की बल्कि रावण जैसे आततायी राजा का भी वध किया।

नरदेवदेवत्वमापन्न: सुरकार्यचिकीर्षया।

समुद्रनिग्रादीनि चक्रे वीर्याण्यत: परम् ।।

(स्कन्ध 1-3-22, 90)

भगवान् विष्णु अपने बीसवें अवतार में कृष्ण का अवतार लेकर जनता पर हो रहे विभिन्न प्रकार के कष्टों और चिंताओं से मुक्त करने के उद्देश्य से अवतरित हुए।

वैसे तो श्रीमद्भागवत-महापुराण का आरम्भ द्वापर युग के राजा युद्धिष्ठिर द्वारा युद्ध में किये गए हिंसा से उद्भूत पश्चाताप है। श्रीमद्भागवत-महापुराण की पृष्ठभूमि है हिंसा से की गयी पाप से मुक्ति अत: युद्धिष्ठिर मूलत: हिंसा के विरूद्ध हैं। उनका मानना है कि सामान्य रूप से एक राजा को हिंसा से बचना चाहिए क्योंकि हिंसा के कारण हुए पाप से मुक्ति पाना आसान नहीं है। परन्तु वह यह भी वो जानते हैं की प्रजा रक्षा सबसे बड़ा धर्म है और प्रजा के रक्षा हेतु किया गया युद्ध धर्मयुद्ध होता है और प्रजा रक्षा हेतु किये गये धर्मयुद्ध में किया गया हिंसा भी क्षम्य है।

नैनो राज्ञ: प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम्।
इति में न तु बोधाय कल्पते शासनं वच:।।

(स्कन्ध 1-8-50, 119)

अत: यह कहा जा सकता है कि ईश्वर के अवतार का भी एक मूल उद्देश्य रहा है राजधर्म से पथभ्रष्ट शासकों का विनाश और संहार और साथ ही जनता की रक्षा एवं कल्याण।

उपसंहार

श्रीमद्भागवत-महापुराण एक धार्मिक ग्रन्थ होते हुए भी कई और लक्षणों को समेटे हुए है। राजनीतिक मूल्यों का संग्रह उनमे से एक है। विभिन्न महान राजाओं के व्यवहार और जीवन-चरित्र के माध्यम से एक शासक के गुण-धर्मों और अपेक्षित व्यवहार का वर्णन किया गया है। इस महापुराण में एक महान शासक से सम्बंधित राजधर्म के बारे में भी प्रकाश डाला गया है और यह भी प्रदर्शित किया गया है कि राजधर्म से च्युत होने से राजा का पतन तय है, न ही सिर्फ इस जन्म में बल्कि अगले जन्म में भी। यहाँ तक की सर्वशक्तिमान भगवान् विष्णु के अवतार का महत्व उद्देश्य रहा है राजधर्म को स्थापित करना। अंतत:, श्रीमद्भागवत-महापुराण में वर्णित राजधर्म आज भी प्रासंगिक है और उससे भटकाव के कारण आज के शासक जनता के अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची-

- महर्षिवेदव्यास (सं. 2075 क). श्रीमद्भागवतमहापुराण, प्रथम-खंड (स्कंध 1-8). गोरखपुर : गीताप्रेस
- महर्षिवेदव्यास (सं. 2075 ख). श्रीमद्भागवतमहापुराण, द्वितीय-खंड (स्कंध 9-12). गीताप्रेस, गोरखपुर : गीताप्रेस
- तुलसीदास (2015).श्रीरामचरितमानस. हनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा सम्पादित. गोरखपुर : गीता प्रेस
- मिल, जॉन स्टुअर्ट मिल (1861/1987). ऑन लिबर्टी और यूटिलिटेरियनिस्म. लंदन : वर्ड्सवर्थ क्लासिक्स ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर.
- प्लेटो. रिपब्लिक
- मैकियावेली (1532). प्रिंस.

ISSN 2278 - 0327

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की रचनाओं में वर्तमान सामाजिक समस्याओं का अवलोकन

डॉ. उष्मा यादव
असि० प्रोफेसर (संस्कृत)
डॉ० राम मनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय, मुफ्तीगंज,
जौनपुर, उत्तर प्रदेश

लोक चिन्तन अर्थात् मानव मात्र के कल्याण का चिन्तन करना मात्र नहीं है, अपितु यह शब्द अपने आप में सम्पूर्ण मानवीयता का समावेश किये हुए है। यदि पृथ्वी मानव का आवास है और इस पर मानव प्रजाति सुखपूर्वक कई वर्षों से निवास करती आ रही है, तो इसके पीछे परिस्थितियों का अनुकूलन अवश्य है। इस पारिस्थितिक अनुकूलन के लिए मानवमात्र को न केवल स्वयं अपितु अपने दायरे में आने वाले प्रत्येक जीव एवं निर्जीव के प्रति उदारता का भाव रखना अनिवार्य है।

किन्तु वर्तमान समय में मनुष्य स्वार्थवश अपने परम्परागत संस्कारों एवं लोक व्यवहारों को भूलता जा रहा है। आज के समय प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में मनुष्य-मनुष्य के बीच भी सद्व्यवहार नहीं रहा है और उसकी गणना पशुतुल्य व्यवहार के रूप में होती जा रही है। विक्रमचरित उपन्यास में डॉ. त्रिपाठी ने एक स्थल पर शूकर के माध्यम से मनुष्य को जगत् का सबसे तुच्छ प्राणी निरूपित किया है-

''*न बाधते लगुडताडितदेहस्य वेदना यथा मनुष्यविहित-निराकृतिवेदना।*''[1]

अर्थात् उस शूकर को लाठी की मार का उतना दु:ख नहीं है जितना दु:ख इस बात का है कि उसे मनुष्य जैसे क्षुद्र प्राणी ने मारकर अपमानित किया है।

विष्कम्भ नामक व्याघ्र कहता है कि हम कोई मनुष्य नहीं हैं जो भय से कातर हो जाएँ-

''*किं वयं मानवा, य इत्थं भयकातरा भवेम।*''[2]

डॉ. त्रिपाठी धनिक वर्ग द्वारा गरीबों के शोषण किये जाने की स्थिति से भी दु:खी हैं। विक्रमचरित में उन्होंने विकास के नाम पर अमीरों द्वारा होने वाले बेगारी मजदूरों से शोषण के प्रति कटाक्ष किया है। तिलकसिंह के दुर्दान्त बेटों द्वारा मारे जाने पर शूकर अपनी पत्नियों से कहता है कि इन्होंने मुझे ऐसा मारा है, जैसा किसी मनुष्य को मारा हो। मेरे अंग-अंग कलप रहे हैं। ऐसी पिटाई तो बेगार में पकड़े हुए मजदूरों की भी नहीं की जाती है। जिन लाठियों से इन्होंने मुझे मारा है, वे लाठियाँ निर्बल और निर्धन किसानों की मरम्मत कर-कर के मजबूत हो गई है। कामुकता की पराकाष्ठा के कारण समाज में फैलने वाले एड्स नामक महारोग से वेश्यागामी तिलकसिंह की मृत्यु बतलाकर वे वर्तमान समाज में व्याप्त दुष्चरित्रता को भी व्यक्त करते हैं-

''*पश्यन्तीनां मम भार्याणां शूरसन्ततीनां च तिलकसिंहतनयैः मनुष्यमारं मारिताऽस्मि। विष्ठा गृहिता अपि नेत्थं ताड्यन्ते।*''[3]

''*निर्बलनिर्धनकृषकप्रताडनपीनान् स्वलगुडान। मनुष्यमारं मारितो ग्रामधिपेन।*''[4]

समाज में दलितोद्धार के नाम पर आज बहुत प्रचारित-प्रसारित किया जा रहा है, किन्तु दलितों का वास्तविक उद्धार नहीं हो पा रहा है। डॉ. त्रिपाठी इस सम्बन्ध में भी अति संवेदनशील हैं। कम्बुकंठ नामक श्रृगाल और चतुरिका नाम्नी श्रृगाली, ये दलितोद्धार के नाम पर, उच्चवर्ग के सिंहादि पशुओं के विरोध की आग वन में भड़काते हैं और कहते हैं कि हम वन में दलितचेतना की आग प्रज्वलित करेंगे। उस आग के आगे बैठकर तापेंगे और इन दलितों का भी शोषण करेंगे-

''*अतो दलितचेतनाया अग्निं प्रज्वालयामः। तज्ज्वालासु निगीर्ण उच्चवर्गीयानां राज्ये आवां शैत्येन दैन्येनार्दितास्तत्तापे सुखोष्णतां च प्राप्स्यावो मुष्णन्त इमानपि दीनान् जन्तून्।*''[5]

समाज का प्रत्येक व्यक्ति उन्नति को प्राप्त करे। आर्थिक एवं सामाजिक रूप से समरूपता बने यही लोकचिन्तन का उद्देश्य है। समाज में ऐक्य स्थापित करने के लिए सबसे पहले स्वयं को समर्थ होना पड़ेगा। इस विषय में डॉ. त्रिपाठी ने मुल्ला नसुरूद्दीन की कथा के माध्यम से सफलता प्राप्ति के गोपनीय उपाय के बारे में लिखा है कि हमारा शरीर सक्षम है और सक्षम शरीरयुक्त व्यक्ति

ही लोकचिन्तन को साकार कर सकते हैं, क्योंकि '*शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्*' इसे डॉ. त्रिपाठी ने जाबालि और मुल्ला नसुरूद्दीन के संवाद के रूप में लिखा है- ''*जाबालिर्मुनिः करुणापूरिताभ्यां नयाभ्यां तं पश्यन् अवदत् - वत्स, एतादृशः वृक्षः वस्तुतो न भवति। इदं शरीरमेवैतादृशः वृक्षः, अथवा सूर्यः, पवनः, चन्द्रः एतेऽपि तादृशा वृक्षाः। संसार एव एतादृशो वृक्षः। एनं वयं नाभभेदैः विविधं वर्णयामः। नामभेदात् भेदबुद्धिर्भवति। तत्त्वं तु एकमेव। स च वृक्षः बहिर्भ्रमणेन अन्वेष्टुं न शक्यते, स तु मनुष्यस्य अन्तः वर्तते।*''[6]

दोषान्वेषी बुद्धि लोक सेवा में हानिकारक होती है, विशेषकर जब स्वयं के दोषों को न देखकर दूसरे के दोषों के परिगणन में व्यस्त हो जाते हैं। अतः सर्वप्रथम स्वयं के दोषों को जानकर उन्हें सुधारना चाहिए, उसके बाद ही किसी अन्य के दोषों को देखना चाहिए एवं अन्य के दोषों को कभी भी सार्वजनिक रूप से व्यक्त नहीं करना चाहिए, बल्कि पृथक्तया एकांत में व्यक्तिगत रूप से कहना चाहिए, क्योंकि सार्वजनिक रूप से किया गया परिहास अपमान का स्वरूप धारण कर लेता है। इस सम्बन्ध में डॉ. त्रिपाठी कहते हैं- ''*ये स्वस्य दोषं न पश्यन्ति ते दोषान्विताज्जना-दधिकतरं दूषिताः भवन्ति।*''[7]

अति आदर्शवादिता के चलते वर्तमान समस्याओं को छोड़कर केवल भविष्य की चिन्ताओं के लिए प्रवर्तित होना लोकसेवा के लिए उचित नहीं है। सर्वप्रथम वर्तमान आसन्न समस्याओं का समाधान करना चाहिए तब ही भविष्य के लिए चिन्तन करना चाहिए। डॉ. त्रिपाठी भी कहते हैं कि- ''*अयं जीवः भविष्यचिन्तया आक्रान्तो न भवेत्।*''[8]

लोकचिंतन वस्तुतः समग्र समाज के प्रति या प्रत्येक मानव के प्रति किया गया चिंतन है जिसका लक्ष्य उसके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाते हुए आदर्श नैतिक व्यवस्था की स्थापना है। समय-समय पर आसुरी वृत्तियाँ समाज में आती रहती हैं, जिनमें से डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने धूम्रपान पर लिखा है-

''*धूमवर्तीपानपरैः युवभिर्युवतीभिः पूरितोऽलिन्दः। तत्रापि युवत्योऽधिकसंख्यकाः सन्ति। ए वं सर्वत्रात्र बर्लिने विलोक्यते धूमपानरतेषु जनेषु महिलानां संख्याऽधिका भवति। ब्रेख्तेन स्वयं तु स्वकीयो रङ्गमंचः स्मोकर्स थियेटर इति घोषितः, यत्र नाट्यावलोकनावसरे धूमपानस्य दर्शकेन स्वकीये देशकाले अवस्थानस्य च स्वातंत्र्यम्।*''[9]

धूम्रपान एक ऐसा दोष है जो न केवल धूम्रपान करने वाले को अपितु निकटवर्ती अन्य व्यक्तियों एवं गर्भस्थ शिशु को भी गंभीर रूप से क्षति पहुँचाता है। यद्यपि सभी प्रकार के व्यसन क्षतिकारक होते हैं, किन्तु अन्य व्यसन प्रायः व्यसनी को ही क्षति पहुँचाते हैं, जबकि धूम्रपान दूसरों के लिए भी हानिप्रद होता है। बर्लिन नगर के बारे में उन्होंने लिखा है कि युवक एवं युवतियाँ अतिशय मात्रा में धूम्रपान कर रहे हैं। यहाँ तक कि जिस थियेटर में वे गए थे उसे स्मोकिंग थियेटर कहना भी गलत न होगा। अर्थात् सामाजिक विद्रूपताएँ सम्पूर्ण समाज विशेषकर युवा वर्ग में अपनी जड़ें गहरी कर रही हैं। इन विद्रूपताओं से बचने के लिए और समाज को बचाने के लिए त्वरित एवं प्रभावी प्रयत्न आवश्यक है। इस प्रकार से लेखक ने अपने लोकचिंतन का प्राक्कलन किया है।

रंगमंच की कतिपय मर्यादाएँ होती हैं। रंगमंच को जुगुप्साकारक नहीं होना चाहिए। रंगमंच पर हवस को जगाने वाले अर्द्धनग्न दृश्य मंच की मर्यादाओं को नष्ट करते हैं। यद्यपि यह दृश्य प्रायः तथाकथित विकसित राष्ट्रों में देखे जाते हैं। भारत में मंच की मर्यादा का पालन होता है, तथापि यदि हम विदेशों में इस प्रकार के दृश्यों का समर्थन करेंगे तो भारत में भी यह विकृति शीघ्र ही अपने पैर पसार लेगी और यह दोष भारत में भी व्याप्त हो जाएगा। इसलिए हमें वहाँ भी उसका विरोध करना चाहिए, क्योंकि अश्लीलता मानव के अंतरमन में शीघ्र प्रविष्ठ हो जाती है और छुआछूत की तरह यह भी शीघ्र ही सर्वत्र प्रसारित हो जाएगी। नैतिक और आदर्श मूल्यों वाली हमारी संस्कृति अभी तक इस दोष से भारतीयों को बचाए रखने में सक्षम है, किन्तु प्रत्येक लोक चिंतक का यह दायित्व है कि इस विषय को बड़े जोर शोर से उठाते हुए नग्नता के विरोध में आए ताकि समाज आदर्श के पथ पर सतत् विचरण कर सके। डॉ. त्रिपाठी इस सम्बन्ध में कहते हैं कि- ''*नाटके विरूपीकरणं, बीभत्सचित्रणं व्यंग्यं च प्राधान्यं यातानि। वेश्यालयस्य दृश्यम् अत्यन्तं जुगुप्सात्मकम्। अर्द्धनग्नानां वेश्यानां नितम्बादि प्रदर्शनं निर्वेदं ग्लानिं जुगुप्सां च जनयति। भारते तु एतादृशदृश्यानां मंचे प्रदर्शनं कदाचि न्नामुमन्येत्, दर्शका वा एतादृशं प्रदर्शनं सहजभावेन न स्वीकुर्युः।*''[10]

'माता परं दैवतम्' इस निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी ने माता और संतान के सम्बन्धों के बारे में लिखा है। वे न केवल जन्मदात्री माता अपितु भू-धरा का भी मानव से तादात्म्य स्थापित करते हैं। लोकचिंतन का तात्पर्य केवल किसी के सुख का चिंतन करना मात्र नहीं है, अपितु उस चिंतन को व्यवहार में लाना है। जगत में संतान के प्रति माता एवं मानव मात्र के लिए पृथ्वी सच्ची लोकचिंतक है। डॉ. त्रिपाठी कहते हैं-

''*माता हि नाम कारुणस्य निरबधिः शेवधिः, वात्सल्यस्य*

अक्षय स्त्रोत:, सृष्टे: जन्मदात्री धात्री पावयित्री च विद्यते। सा खलु जगतां वन्द्या। ये गुणा ब्रह्माण्डमेनं धारयन्ति, तेषां समेषामपि समवायो मातरि भवति। माता किल त्यागस्य मूर्ति: तपसो निधानं, सेवायाश्च प्रतृति:। अपत्यस्य कृते कानि कानि दु:खानि असौ न सहते ? शिशु स्वगर्भे धारयन्ती सा स्वशरीरस्य धातुभिस्त पोषयति, अमृतकल्पेन स्तन्येन स्तनन्धय वर्द्धयति, नि:शेषमपि स्वजीवन तस्य कल्याणाया चार्पयति।"[11]

अर्थात् लोक चिंतक में मातृ-भाव की विद्यता ही उसे सही मायनों में आदर्श लोक चिंतक का स्वरूप प्रदान करती है।

डॉ. त्रिपाठी ने अपने छठे निबन्ध में उपनिषद् वाक्य का उल्लेख किया है। इसकी भूमिका बनाते हुए डॉ. त्रिपाठी ने भौतिकता के लिए अर्थ की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है किन्तु उस धन में अतिआसक्तता का वे सर्वथा विरोध करते हैं। स्वयं डॉ. त्रिपाठी के शब्दों में-

''गृघ्नुतां त्यक्त्वा असक्तबुद्ध्या यदि अपेक्षामनतिक्रम्य वित्तम् उपयुज्यते, तर्हि सांसारिकाणा मनुजानां कृते तु तत् सुखसाधनमेव। तथा चोक्तमीशावास्योपनिषदि-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीया: सा गृध: कस्यस्विद् धनम्।।''[12]

निश्चित रूप से धन और सम्पत्ति जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने में सक्षम है, किन्तु केवल धन में मन लगा रहे तो वह मानवीयता के गुणों से दूर होता चला जाता है और एक लाचची मनुष्य का लोक चिंतन शून्य हो जाता है अत: ''न *वित्तेण तर्पणीयो मनुष्य:।'*

लोकचिंतन के परिप्रेक्ष्य में डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं-

'' अस्माकं संस्कृतौ धैर्य-नय-विनय-प्रभृतिगुणानां गौरवेण समं वपुषो गौरवमपि मानवस्य समुचितविकासाय अपेक्षितम्।''[13]

'' स्वस्थ-शरीरे एव स्वस्थं मनो निवसतीति निर्विवादम्। अत एव या संस्कृति: विचारसरणिर्वा शरीरमुपेक्ष्य प्रवर्तते, तदनुयायिनां विनाशोऽवश्यम्भावी। मानवजीवने शरीरस्य महत्त्वं सर्वातिशायि। शरीरं खलु संसारस्य समेषामपि कार्य-व्यापाराणां मूलम्, मानवो यत्किमपि कर्तुमभिलषिति, यत्किमप्यभीप्सते तस्य आद्यमुपकरणं भवति शरीरमेव। कवि: कालिदास उद्घोषयति- शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।''[14]

इस प्रकार से स्वयं के चिंतन को कालिदास की लेखनी तक लाते हुए, डॉ. त्रिपाठी ने स्वस्थ शरीर को समस्त उद्देश्यों की पूर्ति का अनिवार्य कारण कहा है। निश्चित रूप से शरीर में होने वाले विकार या वेदनाएँ ध्यान भटकाने का कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में हम न स्वयं के लिए, न परिवार के लिए, न समाज के लिए और न ही राष्ट्र के लिए कुछ कर सकते हैं, जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने समस्त मानव प्रजाति विशेषकर युवाओं से स्वस्थ शरीर के निर्माण एवं संरक्षण के लिए आग्रह किया है।

लोक कल्याण के लिए सक्रिय रहना सर्वथा उपयुक्त है। केवल चिंतन से तब तक लोक कल्याण नहीं हो सकता, जब तक कि क्रियाशीलता का अभाव है। जब-जब भी क्रियाशीलता शिथिलता में परिवर्तित होती है, तब-तब लोक-चिंतन, चिंतन मात्र रह जाता है। क्रियात्मक स्वरूप को प्राप्त नहीं होने के कारण कोरे शब्द व्यवहार में परिवर्तित नहीं हो पाते और लोक में हास्य का विषय बन जाते हैं। सच्चा लोक चिंतन वही है कि जिसमें आप अपनी योग्यता को सतत् उद्यम के साथ योजित कर दें। डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं कि-

'' मानव: स्वभावत: एव कर्मपरायण:। कर्मविरहित: स क्षणमपि स्थातुं शक्नोति। एषा हि तस्य नैसर्गिकी प्रवृत्ति:। गीताकार: युक्तमेवाहं- न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:। एवम् उद्यमो हि नाम नरस्य स्वाभाविको धर्म:। उद्यमं कुर्वन्नसौ श्रिय लभते। अतएव 'नानाश्रान्ताय श्रीरस्ती' ति वेदवाक्यं सर्वथा संगच्छते।"[15]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी कर्मों के त्याग की अपेक्षा विषयों का त्याग करना उचित मानते हैं, उनके अनुसार मनुष्य को सदैव अपने कर्म करना चाहिए, न कि भाग्य के सहारे बैठना चाहिए। इसी प्रकार त्रिपाठी जी कहते हैं कि अपने कर्मों को त्यागकर और दायित्वों से पलायन करने वाले संन्यासी को वह प्रवंचक मानते हैं-

'' वासुदेव कृष्णो ब्रूते- एकस्मै क्षणायापि कर्म नरं न जहाति। अवशेन जनेन कर्म करणीयं भवति- कामं स परिग्रही भवेत् संन्यासी वा। यद्यवशं करणीयमेव कर्म।''[25]

स्मितरेखा कथासंग्रह की प्रथम कथा एकं रुप्यकम् में वृद्ध व्यक्ति की कथा व्यक्त की गई है जिसमें यात्रा के दौरान वृद्ध व्यक्ति के पास कुल किराये में एक रूपये की कमी होने के कारण उसे बस से उतार दिया जाता है, यही नहीं बस में भी परिचालक द्वारा उसके साथ मानवीयतापूर्ण व्यवहार नहीं किया जाता है। वृद्ध व्यक्ति के साथ बस के अन्दर किये जाने वाले इसी व्यवहार को चित्रित करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं-

''अयि वृद्ध, त्वपि अस्य महाभागस्य पार्श्वे उपविश। मदीयमेवासनं लक्ष्यीकृत्य प्रावर्तत तदीयं वचनमिति मया बुद्धम।''[26]

इसी प्रकार- *''कोपाटोपसमन्वित: परिचालकोऽगर्जत्- '*अरे

एकवारमुक्तं न शृणोषि ?' अथ च अन्यान् वसयात्रिकान् श्रावयन् साधिक्षेपमब्रवीत्- कीदृशा ग्रामीणा जाङ्गलिका आयान्ति बसे.... ।''[27]

बस में बैठे अन्य यात्री भी उस गरीब ग्रामीण वृद्ध की सहायता करने की अपेक्षा उसे ही कहते हैं- '' *अरे वृद्ध, निस्सारय एकम् अपरं रुप्यकम्। एवं याच्यां परिचालको यात्राव्ययं न न्यूनीकुर्यात्। स तु यावान् यात्रापत्रराशिस्तावन्तमेव वाञ्छति। एकस्य रुप्यकस्य रक्षणेन धनाढ्यस्तु न भविष्यसि त्वम्।''*[28]

इसी प्रकार इस कथा संग्रह की द्वितीय कथा अभिनन्दनम् में महिलाकर्मियों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार से दु:खी होकर डॉ. त्रिपाठी अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं। प्रभुदयाल जो कि सेना में अधिकारी हैं, एक बार चिकित्सालय में चिकित्सा हेतु जाता है एवं वहाँ कार्यरत परिचारिका से अश्लील व्यवहार करता है, जिससे उसे सेना से निष्कासित कर दिया जाता है-

'' *एकदाऽसो सैन्यचिकित्सालये चिकित्सार्थं प्रवेशितस्तत्र परिचारिकया कयाचित् अश्लीलं व्यवहारति स्म, अतो निष्कासित: सेनाया:।''*[29]

अभिनवशुकसारिका की अन्तिम कथा में डॉ. त्रिपाठी ने पति-पत्नी के मध्य टकराव की स्थिति का चित्रण किया है। इस कथा में पति-पत्नी के अलग-अलग होने के पश्चात् समय की गति उन्हें पुन: मिला देती है और वे अपनी-अपनी त्रुटियों को मानते हैं। स्वर्णलता कहती है-

'' *न तबापराधौ न ममापराध:। अपराधा: सन्ति स्थितीनां याभिस्त्वं विनिर्मितो यामिश्चाहं विनिर्मिता।''*[30]

लेकिन इस कारण प्रेम के धागे में एक गाँठ निश्चित रूप से पड़ जाती है, जो कभी नहीं खुलती है। इस प्रकार इन दोनों में आपसी सामंजस्य तो पुन: हो जाता है, किन्तु उनमें प्रेम का पुन: संचार नहीं हो पाता है। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी ने मनुष्य की तुलना वृक्ष से की है। स्वर्णलता अपने पति सम्पन्न कुमार से कहती है-

'' *प्रत्येक मानवस्य जीवनं वृक्ष इव। अयं वृक्षो यथा कांक्षितं न प्रतिफलति। यतो हि अयं वृक्षो नास्माभी रोपित:। अत एवास्य फलमपि नास्माकं वशे वरीवर्ति। वृक्ष: स्वयमेव स्वफलं न भुङ्क्ते। ये रोपयन्ति ते आस्वादयन्ति तदीयानि फलानि, अन्ये वा। मदीयो जीवनवृक्षो मम मात्रा पित्रा च रोपित:। तयो: कृते अहं त्वया सह चलिष्यामि।''*[31]

वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्याओं में पुत्र-पुत्रियों के मध्य भेदभाव की है। आज भी पुत्र के जन्म पर अपार खुशियाँ मनाई जाती हैं और पुत्री के जन्म पर मनाई जाने वाली खुशियाँ मात्र दिखावा होती है। पुत्र-पुत्रियों के लालन-पालन में भेदभाव किया जाता है, उनकी शिक्षा-दीक्षा में भी अंतर रहता है। पुत्रियों को अधिक शिक्षित नहीं किया जाता है, क्योंकि माता-पिता यह मानकर चलते हैं कि पुत्री तो पराया धन होती है, उसे शिक्षित करके उन्हें फायदा नहीं होने वाला है। पुत्र को शिक्षित करेंगे तो वह अपने भविष्य का आधार बनेगा। बेटी के जन्म लेते ही माता-पिता को उसके विवाह और दहेज की चिन्ता भी सताने लगती है, पुत्री के जन्म में खुशियाँ नहीं मनाने या कम मनाने के पीछे यह भी एक मुख्य कारण है। यही कारण है कि पुत्रियों को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जाता है। वर्तमान समय में कुछ कथित माता-पिता इन्हीं कारणा से पुत्री को जन्म भी नहीं लेने देते हैं। इन्हीं हत्यारे माता-पिताओं पर डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि पुत्र हो या पुत्री, संतान में योग्यता देखनी चाहिए। स्त्री-पुरुष का भेद नहीं-

'' *पुत्री स्याद्वाऽथ पुत्रो वा को विशेषोऽनयोर्यत:।*
सन्ततौ योग्यतरा काम्या हेया स्वीमुम्भिदा तथा।।''[32]

वर्तमान समय में पति-पत्नी के मध्य विश्वास की डोर अत्यन्त कमजोर होती जा रही है, नवीन युगलों में यह समस्या अधिक रहती है। शशिधर जीव रसायन विषय में पीएच.डी. करने हेतु डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी व्यंग्य प्रधान आख्यायिका ''महाकवि कण्टक:'' में पात्र कण्टक के मुख से समाज और देश के लिए कवि के क्या कर्त्तव्य होते हैं, यह बताने का प्रयास किया है। यहाँ के कवि के मुख से त्रिपाठी ने बताया है कि कवि का कार्य आसान नहीं होता है। कवि समाज का अग्रदूत होता है इस नाते उसके कई कर्त्तव्य होते हैं-

'' *जानात्येव भवान् यत् परमकठिनं कविकर्म भवति। कवि: समाजस्याग्रदूत: नेता च भवति। तथापि कविकर्त्तव्यं पाल्यत एव मया। कविना नवयूनां सम्पर्के अवश्यमागन्तव्यम्।''*[35]

पाश्चात्य संस्कृति से परिपूर्ण फिल्में और टी.वी. धारावाहिक आज के समय में निरन्तर प्रसारित होते रहते हैं, जो हमारी प्राचीन संस्कृति पर एक करारा प्रहार है। पाश्चात्य संस्कृति को जिस तीव्र एवं सुनियोजित गति से परोसा जा रहा है, वह हमारी युवा पीढ़ी, परिवार, समाज एवं देश के लिए निश्चित ही चिन्ता का विषय है। डॉ. त्रिपाठी स्वयं भी इस चिंता से ग्रसित है और वे महाकवि कण्टक के द्वारा अपने मन की अभिव्यक्ति को शब्द प्रधान करते हैं। महाकवि कण्टक एक फिल्म देखने के लिए जाते हैं और एक दृश्य को देखकर वह व्याकुल हो उठते हैं- ''*अथ किम् ? अहं मनसि विहसन्नवदम्। अथ यदा नायक: नायिकां चुम्बितुं प्रावर्तत तदा महाकवि: स्वहृदये परमानन्दसन्दोहमनुभवन्नपि उपरिष्टाज्जुगुप्सां*

नाटयन्नाह– अरे कीदृश्योऽयं निर्लज्जः तस्यास्तन्वङ्ग्या वदनं स्पृशन् न सङ्कुचति।''[36]

डॉ. त्रिपाठी ने प्रजा के दुःख को भी राजा का ही दुःख माना है। प्रजा राजा को भगवान का अवतार मानती है– ''*प्रजाः क्वचित् स्वदुःखानि तस्य समक्षं निवेदयन्ति। श्रावं श्रावं करुणाविगलितं चित्तं जायते। प्रजास्तस्मिन् महाराजस्य अनन्तदेवस्य स्वरूपं विलोकयन्ति। प्रजाः दुखिताः सन्ति–ताषां राज्ञो दुःखम्। सहस्त्रशो जनानां विगग्रहास्तस्मिन् सन्निविष्टाः। हताशाः जनाः निराशाः जनाः दिविरेः प्रतारिता जनाः, निर्वसनाः नग्ना जनाः।''*[37]

डॉ. त्रिपाठी वर्तमान समय में व्याप्त व्यसन की समस्या से भी चिन्तित हैं। नशे के सेवन से व्यक्ति की सोचने–समझने की शक्ति भी समाप्त हो जाती है। नशे का आदी व्यक्ति किसी काम का नहीं रहता है– ''*कञ्चुकी तथैव स्वयष्टिं अक्टकीकुर्वन् शनैः रिङ्गन्निव विनिर्गतः। उत्कर्षस्य मनो व्याकुलम्। शूरस्य किमभवत्– स व्यसनी वर्तते मूर्खश्च– अहिफेनस्य सेवनेन तस्य विचारशक्तिः सर्वथा लुप्ता।''*[38]

डॉ. त्रिपाठी समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं से भली–भाँति परिचित हैं और अपने लेखन में उन्हें यथास्थान समाविष्ट भी करते हैं। वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति की समस्या भी व्याप्त है। यह अधिकांशतः विवशता के कारण होती है। विचित्रोपाख्यानम् के चरित्र लुईस की पत्नी शीबा 'डाँस' क्लब में भाग लेती है और आमदनी अधिक न होने के कारण धीरे–धीरे वेश्यावृत्ति को अपनाती है। फलतः उसे असाध्य रोग होता है और कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। शीबा का पति लुइस किताबी कीड़ा बनकर अपनी पत्नी की तरफ ध्यान नहीं दे पाता है और इससे उसकी पत्नी शीबा अपने आप को उपेक्षित महसूस करती है। इस तरह दोनों का जीवन नरक बन जाता है। लेखक इस तथ्य को अत्यन्त कुशलता से व्यक्त करता है–''*एवं च कलहं कुर्वाणयोस्तयोरनुदिनं सुखं न्यूनायितम्। दाम्पत्यं दुःस्वप्नायितम्। जीवनं दुःखार्णवायितम्। मनो दूनायितम्। दीनायितं दैनिन्दिनं कर्म।''*[39]

सन्दर्भ सूची–

1. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
2. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 34
3. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3
4. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2
5. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22
6. रूमी पंचदशी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2
7. रूमी पंचदशी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
8. रूमी पंचदशी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 7
9. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13
10. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 16–17
11. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 8
12. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13
13. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 14
14. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 14
15. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 16
16. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28, 29
17. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
18. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
19. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
20. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33
21. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36
22. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36
23. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 39
24. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 265
25. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 96
26. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2
27. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
28. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
29. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 8
30. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 72
31. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 72
32. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 10
33. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 5
34. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 51
35. महाकवि कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22–23
36. महाकवि कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40
37. ताण्डवम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 149–150
38. ताण्डवम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 165
39. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 17

ISSN 2278 - 0327

उपनिषदों में ऊंकार वर्णन

डॉ. हेमलता जोशी
सहायक आचार्य
जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूं, (राज.)

भारतीय परंपरा में ऊंकार का अपना विशेष स्थान है। उपनिषदों में इसका विशद् वर्णन है। उपनिषदों में ब्रह्म को अनेक नामों से जाना जाता है। उन्हीं में एक है ओम्। यह साध्य एवं साधन दोनों ही है। अत: इस ओम् रूपी साधन से, उसके माध्यम से उस साध्य अर्थात् ब्रह्म तक पहुंचा जा सकता है, उसे अनुभव किया जा सकता है, उसका साक्षात्कार किया जा सकता है और सर्व बंधनों से मुक्त हुआ जा सकता है। अत: सिद्ध होता है कि वास्तव में ऊं की प्राप्ति के लिए ऊंकार साधना को ही अपनाना होगा क्योंकि ऊं ही परम तत्त्व है, परम शक्ति है जिसका विस्तार यह जगत् है। इसकी पुष्टि ध्यान बिंदूपनिषद् से होती है। कहा गया है कि ऊंकार से ही देवों की उत्पत्ति, स्वर की उत्पत्ति और लोक के सभी स्थावर-जंगम की उत्पत्ति हुई है।[1] अत: यह उपास्य है। छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है कि संपूर्ण प्राणियों का रस (सार) पृथ्वी, जल, औषधि, पुरुष, वाक्, साम ऊंकार है। यह ऊंकार सभी रसों में सर्वोत्तम रस है। यह परमात्मा का प्रतीक होने के कारण उपास्य है।[2] यद्यपि ऊं एक स्वर है तथापि अक्षर अमृत, अक्षय रूप ब्रह्म का ही प्रतीक है। देवगण इस अक्षर ब्रह्मकार में प्रविष्ट होकर अमरत्व अभय को प्राप्त होते हैं।[3] अत: स्पष्ट होता है कि वास्तव में ऊंकार एक है लेकिन यह अनेक रूपों में व्यक्त होता है, अनेक विशेषताओं का समुच्चय है और साधन एवं साध्य दोनों ही है। इसीलिए यह अपना विशेष स्थान रखता है। प्रस्तुत लेख में उपनिषदों में उल्लिखित ऊंकार का स्वरूप, ऊंकार साधना और उसके परिणाम पर चर्चा की गई है। यह लेख सुधी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेगा, ऐसा विश्वास है।

कुंजी शब्द: ऊंकार, प्रणव, उद्गीथ, ब्रह्म।

दर्शन के क्षेत्र में ऊंकार का अपना विशेष स्थान है। दार्शनिकों ने इसे ब्रह्म की उपमा दी है, उसका प्रतीक माना है, उसका वाचक माना है साथ ही इसे शुभ और मंगलकारी भी माना है। अत: किसी ग्रंथ में, शास्त्रों में, शुभ कार्यों में ऊं के द्वारा ही अपनी बात को प्रस्तुत किया गया है। कहने का तात्पर्य है कि ब्रह्म को स्मरण कर, उसको समर्पण कर सर्व कल्याण हेतु इस शुभ और मंगलकारी ऊं अक्षर को लिखित और वाचिक रूप से उपयोग में लाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वास्तव में ऊं उस परम ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए यह उपास्य है, स्मरणीय है, शुभ है, कल्याणकारी है। ऊंकार स्वयं में पूर्ण है। इसीलिए यह कई नामों से जाना जाता है, कई रूपों में व्यक्त होता है, कई गुणों को प्रदर्शित करता है और कई विशेताओं का पुंज होता है। इसका उदाहरण अथर्वाशिरोपनिषद् में मिलता है। कहा गया है कि हृदय में विराजते हुए आप तीनों मात्राओं (अ, उ, म) से परे हैं। हृदय के उत्तर में सिर है, दक्षिण में पैर हैं। जो उत्तर में विराजमान है, वही ऊंकार है। वही प्रणव है, वही सर्वव्यापी है, अनंत है। तारक स्वरूप है, वही सूक्ष्म है, वही शुक्ल है। जो शुक्ल है वही विद्युत है। जो विद्युत है, वही परब्रह्म है, वही एक रूप है। जो एक रूप है, वही रुद्र है। जो रुद्र है वही ईशान है, वही महेश्वर है।[4] कहने का तात्पर्य है कि एक ही ऊंकार की अभिव्यक्ति कई रूपों में हो रही है।

ऊंकार का स्वरूप

ऊं एक ध्वनि है, वर्ण है, पद है, स्वर है, अक्षर है, शब्द है, मात्राओं का समुच्चय है, पुण्ड्र है लेकिन यह ब्रह्म का प्रतीक भी है। ऊं को प्रणव, उद्गीथ आदि नामों से भी जाना जाता है। छांदोग्योपनिषद् में कहा है कि वाक् ऋक् है, प्राण साम है और ऊं उद्गीथ हैं। वाणी और प्राण अथवा ऋचा और साम के संयोग से ऊंकार का सृजन होता है।[5] मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म का शरीर जो शब्द उच्चारित करता है, उसे ऊं कहते है।। यह तीनों लिंगों से युक्त है। अग्नि, वायु और सूर्य के रूप में प्रकाश देने वाला है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के रूप में अधिपति स्वरूप हैं। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय तीनों अग्नियां उसके मुख हैं। ऋक्, यजुर्वेद और साम को भी जानने में समर्थ हैं। भू:, भुव:, और स्व: तीनों लोक उसी के रूप हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल हैं। प्राण, अग्नि और आदित्य इसके प्रताप हैं। जल, अन्न और चंद्रमा इसके पोषण हैं। बुद्धि, मन और अंहकार इसकी

चेतना हैं। प्राण, अपान और व्यान इसके प्राण हैं। यही ऊंकार पर, अपर रूप ब्रह्म है। यह ऊंकार ही ब्रह्म है।[6] ऊं इस महावाक्य के महामंत्र के हंस ऋषि अव्यक्त गायत्री छंद है। परम हंस देवता है, हं बीजमंत्र है, स: शक्ति है, सोहम् कीलक है।[7] कठोपनिषद् में कहा है कि यह ऊं अक्षर ब्रह्म है, सर्वोत्तम है। जिस अभीष्ट की कामना करते हैं, उसकी प्राप्ति होती है।[8] मांडूक्योपनिषद् में कहा है कि यह ऊंकार, यह अक्षर अविनाशी है। उसकी महिमा को प्रकट करने वाला यह ब्रह्मांड है। भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों वाला संस्कार भी ऊंकार ही है तथा तीनों कालों से अन्य जो भी तत्त्व है, वह ऊंकार ही है।[9] ब्रह्म और आत्मा अक्षर ऊंकार रूप ही हैं। यह ऊंकार मात्राओं में सन्निहित है। इसकी मात्राएं ही इसके चरण हैं और चरण ही इसकी मात्राएं हैं। ये मात्राएं अकार, उकार और मकार हैं।[10] तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार ऊं ब्रह्म है। यही प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला जगत है। यह अक्षर है। अनुमोदन और स्वीकृति वाचक है।[11] प्रणवोपनिषद् के अनुसार ब्रह्मवेत्ताओं ने ऊंकार को ही अद्वितीय, अविनाशी कहा है। तीन लोक भु:, भुव:, स्व:, तीन वेद ऋक्, यजुर, साम, तीन अग्नियां- गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, तीन वर्ण, तीन मात्रा एवं अर्धमात्रा अ, उ, म और अनुस्वार सन्निहित है। वही उसका साक्षात् कल्याणकार शिव स्वरूप है।[12] योग कुडलिनी उपनिषद् में कहा है कि ऊंकार में तीन अक्षर, तीन कर्म, तीन लोक, तीन गुण, तीन स्वर निहित हैं। अकार जागृत अवस्था में नेत्रों में, उकार सुप्त अवस्था में कंठ में और मकार सुषुप्ति अवस्था में हृदय में रहता है।[13]

ब्रह्मविद्योपनिषद् में ऊं के तीन देवता, तीन लोक, तीन वेद, तीन अग्नियां बताई गई हैं। शिव स्वरूप इस त्र्यक्षर की तीन और आधी मात्राएं अकार, उकार, मकार और अनुस्वार हैं। ओंकार का शरीर ऋग्वेद, अग्नि गार्हपत्य, तत्त्व पृथ्वी और देवता ब्रह्मा को बतलाया है। उकार का शरीर यजुर्वेद, अग्नि दक्षिणाग्नि, तत्त्व आकाश तथा देवता विष्णु को बताया गया है। मकार का शरीर सामवेद, अग्नि आहवनीय, तत्त्व द्युलोक, देवता ईश्वर और परमदेव कहा है। शंख के मध्य भाग की तरह अकार सूर्य मंडल के मध्य में प्रतिष्ठित है। चंद्रमा के सदृश उकार उसी चंद्र मंडल में स्थित है। निर्धूम अग्नि विद्युत अग्नि सदृश मकार प्रतिष्ठित है। इस तरह के तीन मात्राओं को सूर्य, चंद्र, अग्नि के रूप जानना चाहिए। जिस तरह दीपशिखा ऊपर की तरफ जाती है उसी तरह अर्धमात्रा की स्थिति को जानना चाहिए। यह शिखा पद्म सूत्र के समान दिखती है। सूर्य सदृश यह नाड़ी सूर्य का भेदन करके बहत्तर हजार नाड़ियों का भेदन करके मूर्धा में प्रतिष्ठित होने वाली सभी प्राणियों को वरदान देने वाली एवं सबको व्याप्त करके स्थित रहने वाली है।[14]

नादबिंदूपनिषद् में ऊं अथवा प्रणव को हंस की उपमा दी गई है। अत: कहा है कि इस हंस का दायां पंख अकार है, बांया पंख उकार है, पूंछ मकार है और सिर अर्धमात्रा है। रजोगुण और तमोगुण दोनों पैर है और सत्वगुण शरीर है। धर्म दक्षिण नेत्र और अधर्म बाम नेत्र है। भूलोक उसके दोनों पैरों में है। भुवर्लोक उसके दोनों जानुओं में हैं, स्वर्गलोक उसके कटिप्रदेश में है और महलोक नाभि में है, जनलोक हृदय में है, तपोलोक कंठ में है। भौंहों और ललाट के बीच में सत्यलोक है।[15] अकार की प्रथम मात्रा आग्नेयी, द्वितीय मात्रा वायव्या, तृतीय मात्रा उत्तर मात्रा (सूर्यमंडल सदृश) और चौथी मात्रा वारुणी है। इन चारों मात्राओं में से प्रत्येक मात्रा तीन-तीन कलारूपी मुख से सुशोभित हैं। अत: इसे द्वादश कलात्मक ऊंकार भी कहा जाता है। ये बारह मात्राएं घोषिणी, विद्युन्माला, पतंगी, वायुवेगनी, नामधेया, ऐन्द्री, वैष्णवी, शांकरी, महती, ध्रुवा, मौनी, ब्राह्मी हैं।[16] ऊं तारक मंत्र है। यही ब्रह्म स्वरूप है। व्यष्टि और समष्टि दोनों प्रकार से इसी का चिंतन करना चाहिए। व्यष्टि (बाह्य) और समष्टि (अंत:) ब्रह्म प्रणव के अंग हैं। इसे उभयात्मक प्रणव भी कहा जाता है। यही विराट प्रणव के नाम से भी जाना जाता है। विराट प्रणव 16 मात्राओं से संयुक्त है। इस प्रणव को 36 प्रकार के तत्त्वों से परे भी कहा जाता है। इसकी सोलह मात्राएं है-अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, बिंदु, नाद, कला, कलातीता, शांति, शांत्यतीता, उन्मनी, मनोन्मनी, पुरी, (बैखरी) मध्यमा, पश्यंती परामात्रा। यह सोलह मात्राओं से संयुक्त प्रणव चतुर्दिक ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा, अविकल्प चतुर्विध तुरीय से भिन्न न होने के कारण फिर से चौंसठ मात्राओं से युक्त होता जाता है। यह प्रणव ही प्रकृति और प्रकृति रूप से पुन: दो भेदों को पाकर 128 मात्राओं से युक्त स्वरूप को ग्रहण करता है। इस तरह एक होकर भी ब्रह्म प्रणव दृष्टि भेद से अनेकाविध रकार एवं निराकार अर्थात् सगुण और निर्गुण स्वरूप को प्राप्त होता है।[17] इससे स्पष्ट होता है कि ऊं की मात्र तीन ही मात्राएं नहीं है बल्कि उसके भी कई भेद प्रभेद हैं जिससे वह कई मात्राओं में विभक्त हो जाती हैं या यों भी कहा जा सकता है कि एक ही ऊं या प्रणव कई मात्राओं का संयुक्त रूप है।

ऊंकार साधना

ऊं साधन और साध्य दोनों ही है क्योंकि एक ओर इसे ब्रह्म की उपमा दी गई है तो तो दूसरी ओर यह ब्रह्म का प्रतीक है। अत: ऊं रूपी साधन का आलंबन लेकर ओम रूपी साध्य को प्राप्त किया जा सकता है। चाहे इसे प्राणायाम में लें या मंत्र में या फिर ध्यानादि में। उपनिषदों में इसकी भी अनेक विधियां बताई

गई हैं। चूंकि आत्म साक्षात्कार या ब्रह्म की प्राप्ति ही साधकों या जिज्ञासुओं के अन्वेषण अथवा खोज का विषय रहा है। इसकी पुष्टि उपनिषदों में होती है। ध्यानबिंदूपनिषद् में उल्लेख है कि ऊंकार रूपी एकाक्षर ब्रह्म ही सभी मुमुक्षुओं का लक्ष्य रहा है। जाबालदर्शन उपनिषद् में कहा गया है कि ऊंकार के तीन वर्ण अकार, उकार और मकार क्रमश: पूरक कुंभक और रेचक से संबंध रखने वाले हैं। इन तीनों वर्णों का समूह ही प्रणव है। अत: प्राणायाम भी प्रणव रूप ही है। इड़ा नाड़ी के द्वारा सोलह मात्रा विशिष्ट अकार का चिंतन करते हुए पूरक करें, चौंसठ मात्रा विशिष्ट उकार का चिंतन करते हुए कुंभक करें और बत्तीस मात्रा विशिष्ट मकार का चिंतन करते हुए पिंगला नाड़ी से रेचन करें। पुन: यही क्रिया पिंगला से दोहरानी चाहिए। कहने का तात्पर्य है कि अनुलोम-विलोम प्राणायाम में प्रणव की मात्राओं का चिंतन करना चाहिए।[18] मुंडकोपनिषद् में कहा है कि प्रणव ऊंकार धनुष है। अंतरात्मा बाण है। ब्रह्म उसका लक्ष्य भेदन है। आलस्य प्रमाद रहित होकर उसे भेदा जा सकता है। अत: एकाग्रता पूर्वक उसमें तन्मय हो जाना चाहिए।[19] यही बात रुद्रहृदयोपनिषद् में भी कही गई है।[20] ध्यानबिंदूपनिषद् कहता है कि प्रणव की अर्धमात्रा को रस्सी बनाकर हृदय कमल रूपी नाल द्वारा जालरूपा कुंडलिनी को भौहों के मध्य में लय करें।[21] इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी उल्लेख मिलता है कि शरीर को नीचे की अरणि बनाकर प्रणव को ध्यान के द्वारा निरंतर मंथन करने से छिपी हुई अग्नि की भांति परमेश्वर को देखें।[22] तेजोबिंदूपनिषद् में कहा है कि हृदयाकाश में स्थित प्रणवस्वरूप तेजोमय बिंदु का परम ध्यान है।[23] अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊंकार की साधना और ऊंकार की प्राप्ति योगियों की ध्यान साधना का केन्द्र रहा है।

अमृतनादोपनिषद् में कहा है कि इस प्रणव नाम से प्रसिद्ध घोष का उच्चारण बाह्य प्रयत्नों से नहीं होता है। यह व्यंजन एवं स्वर भी नहीं है। इसका उच्चारण कंठ, तालु, ओष्ठ, नासिका और सानुनासिक भी नहीं होता। प्रणव वह श्रेष्ठ अक्षर है जो कभी भी युत नहीं होता। ऊंकार का प्राणायाम के रूप में अभ्यास करना चाहिए तथा मन गुंजायमान घोष में सदैव लगाए रखना चाहिए।[24] वह एकाक्षर प्रणव ऊं ही ब्रह्म है। इसी का ध्यान कर रेचन करना चाहिए। कई बार इसका प्रयोग कर चित्त के मलादि को बंद करना चाहिए।[25] धारणा के अभ्यास में इसका आलंबन महत्त्वपूर्ण माना गया है। अत: निर्देश मिलता है कि पृथ्वी तत्त्व की धारणा में ऊंकार की पांच मात्राओं का, जल तत्त्व में चार मात्राओं का, अग्नि में तीन मात्राओं का, वायु में दो मात्राओं का, आकाश में एक मात्रा का तथा स्वयं ऊंकाररूप प्रणव की धारणा करते समय उसकी अर्धमात्रा का चिंतन करना चाहिए। अपने भीतर में ही पंचभूतों की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए और ध्यान करना चाहिए। इससे पंचभूतों की धारणा द्वारा पंचभूतों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है।[26]

अमृतनादोपनिषद् में कहा है कि ऊंकार के रथ में बैठकर भगवान विष्णु को सारथी बनाकर ब्रह्मलोक के यथार्थ पद का अन्वेषण करते हुए भगवान रुद्र की आराधना में तत्पर रहना चाहिए।[27] जो उदद्गीथ है- उद्-प्राण, गीथ-अभिव्यक्ति है-वही ऊंकार है। जो ऊंकार है, वही उद्गीथ है। यह सूर्य भी ऊंकार है। अत: ऊंकार के द्वारा उसकी प्रार्थना करनी चाहिए। छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है कि प्रणव रूप महान अस्त्र धनुष को लेकर निश्चय ही उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढ़ाएं फिर भावपूर्ण चित्त द्वारा उस वाण को खींचकर उस परमात्मा को लक्ष्य मान कर भेदें।[28] नारद परिव्राजकोपषिद् कहता है कि ध्यान करने वाले कृमिकीट की भांति परब्रह्म ऊंकार का ही ध्यान करता रहे।[29]

परिणाम

उपनिषदों में ऊंकार की साधना के अनेक परिणाम बताए गए हैं।[30] जाबालदर्शन उपनिषद् में कहा गया है कि प्राणायाम में प्रणव की मात्राओं का चिंतन करने से छ: माह में मनुष्य ज्ञानवान हो जाता है और एक वर्ष करने तक साधक को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। इसलिए ऊंकार का सदैव अभ्यास करना चाहिए।[31] कठोपनिषद् में कहा गया है कि यह प्रणव आत्म साक्षात्कार का श्रेष्ठ आलंबन है। यही परमात्मा के ध्यान का आधार होने से सर्वश्रेष्ठ है। इसे जानकर साधक ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं।[32] अथर्वाशिरोपनिषद् में बताया गया है कि ऊंकार में तीन मात्राएं हैं और चौथी अनुस्वार है। उस ब्रह्मदेव की प्रथम मात्रा (अ) ब्रह्मा की है जिसका रंग रंग लाल है। इसके ध्यान से ब्रह्मपद प्राप्त होता है। ब्रह्मदेव की दूसरी मात्रा (उ) विष्णु की है जिसका रंग कृष्ण है। इसके नियमित ध्यान से विष्णु पद की प्राप्ति होती है। ब्रह्मदेव की तृतीय मात्रा (म) ईशान की है जिसका रंग पीला है। इसके ध्यान से ईशान पद की प्राप्ति होती है। अर्ध चतुर्थ मात्रा समस्त देवों के रूप में अव्यक्त होकर आकाश में विचरण करती है। इसका रंग शुद्ध स्फटिक मणि के समान है। इसके ध्यान से मुक्ति प्राप्त होती है।[33] मांडूक्योपनिषद् में कहा है कि जागृत स्थान वाला वैश्वानर व्याप्त होने और आदि तत्त्व होने के कारण ऊंकार प्रथम चरण है।

इस प्रकार ज्ञान रखने वाला ज्ञानी संपूर्ण कामनाओं को प्राप्त करता हुआ सबमें वरिष्ठता पाता है। स्वप्न वाला स्थान तेजस श्रेष्ठ होने के कारण द्विभाव में रहने से ऊंकार का द्वितीय चरण है-ऐसा ज्ञान रखने वाला पुरुष ज्ञान उत्कर्ष करता हुआ समान भाव में निमग्न

रहता है। उसके कुल में भी ब्रह्म को जानने वाले होते हैं। सुषुप्ति वाला प्राज्ञ विश्व का मापक और प्रलय करने वाला होने से ऊंकार का तृतीय चरण है। इसको जानने वाला ज्ञानी संपूर्ण विश्व का यथार्थ स्वरूप जानता हुआ इन सबको स्वयं में लय करने वाला होता है। मात्रा रहित ऊंकार क्रिया से रहित है। जगत के प्रपंचों का शामक, कल्याणकारी और अद्वैत रूप यह चतुर्थ चरण है। ऐसा जानने वाला आत्मज्ञानी के द्वारा आत्मा को परम ब्रह्म में प्रविष्ट करता है।[34]

जो विद्वान् उद्गीथ की उपासना करता है, वह संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है। यह ऊंकार अनुमति सूचक है। यह समृद्धि है, ऐसा जानने वाला संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। ऊं अक्षर से ही त्रयी (वेदत्रयी अथवा त्रिगुणातीत सृष्टि) विद्या कर्म में प्रवृत्त होती है। ऊं कहकर अध्वर्य आदेश करता है, होता पाठ स्तुति करता है, उद्गाता सामगान आरंभ करता है। ऊंकार अक्षर रूप ब्रह्म की महिमा और रस से सभी यज्ञादि कर्मो की उसी अक्षर की अर्चना के रूप में किए जाते हैं।[35] ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा गया है कि ऊं की साधना द्वारा सभी तरह की इच्छाएं शांत हो जाती हैं।[36] स्वयं अपने आप में आनंद रूप विराट ब्रह्म पुरुष अकार, उकार और मकार से युक्त यह तीन अक्षरों वाला ऊंकार रूप प्रणव स्वरूप है। इसका जप करने से योगीजन सांसारिक बंधनों से युक्त हो जाते हैं।[37]

निष्कर्ष- उपनिषद् ज्ञान-विज्ञान के भंडार हैं। इनमें अनेक विषयों पर चर्चा हुई है। ऊंकार जैसा गूढ़ और महत्त्वपूर्ण विषय इससे अछूता नहीं है। इसे अनेक नामों से, अनेक विशेषताओं से और अनेक गुणों से जाना जाता है। यह साधन ही नहीं अपितु साध्य भी है। अत: ओंकार रूपी साधन से ऊंकाररूपी साध्य को प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न उपनिषदों में इसका विशद् वर्णन मिलता है। अत: इसमें गोते लगाने पर ही इसे जाना और समझा जा सकता है साथ ही अभ्यास के द्वारा इसे अनुभव किया जा सकता है। इस ऊंकार का प्रयोग और अभ्यास मंत्र साधना में, प्राणायाम और ध्यानादि में विशेष रूप से किया जाता है जिसके अनेकानेक सुपरिणाम हैं। अत: जो साधक इस ऊंकार की साधना करना चाहता है, इसमें गोते लगाना चाहता है और साध्य को प्राप्त करना चाहता है तो उसे ऊंकार को साधन रूप बनाकर, उसी का आलंबन लेकर आगे बढ़ना होगा। अभ्यास को जितना महत्त्व दिया जाएगा, साध्य उतना ही निकट होता जाएगा। इसलिए आवश्यक है कि इस ऊंकार जो स्वयं ब्रह्म का प्रतीक है, की साधना करने से सर्व बंधनों से मुक्त हुआ जा सकता है, उस ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है।

संदर्भ सूची-

1 मंत्र 16, ध्यानबिंदूपनिषद् पृ. 92
2. 1/1/2-3 छांदोग्योपनिषद्, पृ. 83-84
3. 1/4/4 छांदोग्योपनिषद्, पृ. 90
4. मंत्र 3-4, अथर्वशिरोपपिषद्, पृ. 10-13
5. 1/1/5-6 छांदोग्योपनिषद्, पृ. 84
6. 5/5, मैत्रायण्युपनिषद्, पृ. 395
7. मंत्र 20, शुकरहस्योपनिषद्, पृ. 401
8. 1/2/16 कठोपनिषद् पृ. 58
9. मंत्र 1, मांडूक्योपनिषद्, (उपनिषद् अंक) पृ. 295
10. मंत्र 8, वही, पृ. 299
11. अष्टम् अनुवाक, तैत्तिरीय उपनिषद्, (उपनिषद् अंक) पृ. 332
12. अष्टम् अनुवाक्, तैत्तिरीय उपनिषद्, पृ. 332
13. मंत्र 3 प्रणवोपषिद् पृ. 227
14. मंत्र 74 योगकुंडलिनी उपनिषद्, पृ. 217
15. मंत्र 2/12 ब्रह्मविद्योपषिद्, 213-14
16. 1/1/1-5 नादबिंदूपनिषद उपनिषद् अंक, 692
17. 1-8 नादबिंदूपनिषद्, उपनिषद् अंक 394-95
18. 8/1-3 नारदपरिव्राजकोपनिषद्, (उपनिषद् अंक) पृ. 782-83
19. मंत्र 1-6 जाबालदर्शनोपषिद्, पृ. 730
20. मुंडकोपनिषद्, पृ. 5/370
21. मंत्र 38, रुद्रपरिव्राजकोपषिद्, उपनिषद् अंक पृ. 661
22. ध्यानबिंदूपषिद् पृ. 35
23. 1/4 श्वेताश्वतर उपनिषद् पृ. 376
24. मंत्र 1, तेजोबिंदूपषिद्, पृ. 692
25. मंत्र 25, अमृतनादोपनिषद्, पृ. 31
26. मंत्र 21, वही, पृ. 30
27. मंत्र 31-32, वही, पृ. 32
28. मंत्र 2, वही पृ. 27
29. 2/2/4 मुंडकोपनिषद्, पृ. 283
30. 3/12 नारदपरिव्राजकोपषिद्, 139
31. उपनिषद् अंक, पृ. 730
32. 1/2/17, कठोपनिषद् पृ. 58
33. मंत्र 5, अथर्वशिरोपनिषद्, पृ. 14
34. मंत्र 9/12, मांडूक्योपनिषद्, (उपनिषद् अंक) पृ. 300-301
35. 1/1/7 छांदोग्योपनिषद् पृ. 85
36. मंत्र 2/12, ब्रह्मविद्योपनिषद्, पृ. 213-14
37. मंत्र 1, आत्मबोधोपनिषद् पृ. 33

संदर्भ ग्रंथ

1. 108 उपनिषद्, (ब्रह्मविद्या खंड) पं. श्रीरामशर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, (उ. प्र.) 2005
2. 108 उपनिषद् (ज्ञानखंड) पं. श्रीरामशर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, (उ. प्र.) 2005
3. उपनिषद् अंक, गीता प्रेस गोरखपुर, तेईसवे वर्ष का विशेषांक, सं 2072।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मधुमेह प्रबन्धन में यौगिक अभ्यास की उपयोगिता

अर्जुन सिंह जघेला
शोधार्थी
निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान

डॉ. भावना श्रीवास्तव
शोध निर्देशक
निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान

शोध सारांश- वर्तमान समय में लगभग हर कोई डायबिटीज के विषय में नहीं जानते है कि यह क्या है। संयुक्त राज्य में लगभग दर प्रतिशत 7.0 मिलियन जनसंख्या से भी अधिक लोग डायबिटीज से पीड़ित हैं, वही वैज्ञानिक अनुमान है कि भारत के हर तीसरे व्यक्ति में इसके मुख्य लक्षण विद्यमान है, यह एक गंभीर एवं आजीवन स्थिति है। मधुमेह चयापचय का एक विकार है। हम जो भोजन करते हैं, उसका अधिकांश भाग ग्लूकोज, रक्त में शर्करा के रूप में टूट जाता है। ग्लूकोज शरीर के लिए ईंधन का मुख्य स्त्रोत है। पाचन के पश्चात् ग्लूकोज रक्तप्रवाह में गुजरता है, जहां इसका उपयोग कोशिकाओं द्वारा विकास व ऊर्जा के लिए किया जाता है। ग्लूकोज का कोशिकाओं में जाने के लिए इंसुलिन मौजूद होना चाहिए। इंसुलिन अग्न्याशय द्वारा उत्पादित एक हार्मोन है, जो पेट के पीछे एक बड़ी ग्रंथि है। जब हम खाते हैं, तो रक्त में ग्लूकोज को हमारी कोशिकाओं में ले जाने के लिए अग्न्याशय स्वचालित रूप से इन्सुलिन की सही मात्रा का उत्पादन करता है। मधुमेह वाले लोगों में, हालांकि अग्न्याशय या तो बहुत कम या कोई इन्सुलिन पैदा करता है या कोशिकाएं उत्पादित इन्सुलिन के लिए उचित रूप से प्रतिक्रिया नहीं देती हैं। ग्लूकोज रक्त में बनता है, मूत्र में बह जाता है और मूत्र में शरीर से बाहर निकल जाता है। इस प्रकार शरीर अपने ईंधन के मुख्य स्त्रोत को खो देता है, भले ही रक्त में बड़ी मात्रा में ग्लूकोज होता है।

मुख्य बिन्दु- आधुनिक जीवन शैली, मधुमेह, योग एवं आहार।

प्रस्तावना- आधुनिक चिकित्सा प्रणाली ने अपने तर्कसंगत आधार के कारण वैश्विक स्तर पर विभिन्न हिस्सों में चिकित्सा की लगभग सभी पारंपरिक प्रणाली को बदल दिया है। यह संक्रामक रोगों के घातक हाथों से आदमी को बचाने में खुद को सबसे प्रभावी साबित किया है। हालांकि, मधुमेह संबंधी बीमारियों की तेजी से बढ़ती घटना आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के लिए एक बड़ी चुनौती है। मानव जीवन की यह समस्या आधुनिक युग में जीवन शैली के विकारों के रूप में जानी जाती हैं, जैसे कि-

- **मानसिक रोग**- तनाव, अवसाद, चिंता, अनिद्रा, स्मृति हानि, क्रोध आदि।
- **शारीरिक रोग**- मधुमेह, मोटापा, रक्तचाप, अस्थमा, ग्रीवा स्पोंडिलिटिस आदि।
- **मनोदैहिक**- पेप्टिक अल्सर, कब्ज, माइग्रेन और मासिक धर्म की समस्याएं।

हमारी जीवन शैली हमारी वास्तविक पहचान बनाती है, जो हमारी आदतों पर आधारित है। जैसे कि जीवन की अव्यवस्थाएं और सोचने का तरीका। कहने का मतलब यह है कि हमारी सोच, विचार, भावना, चरित्र और व्यवहार से हमारी जीवन शैली विकसित होती है। आधुनिक जीवन शैली के नाम पर लोग उन तथ्यों को नजरअंदाज कर देते हैं, जिनका उन्हें ध्यान रखना चाहिए। आमतौर पर वह तब तक नहीं उठते जब तक कि साइड इफेक्ट उन पर नहीं उतरते। आधुनिक समय की तेज गति की जीवन शैली उनके स्वास्थ्य पर खतरनाक विकार पैदा कर रही है और वह इसे केवल 30-40 वर्ष की आयु से ऊपर महसूस करना शुरू कर देते हैं। तनाव व ज्यादा पाने की लालसा से भरी जीवन शैली ने इसकी गति भी बढ़ा दी है।

अमेरिका के स्वास्थ्य और मानव सेवा विभाग द्वारा प्रदान किए गए नए अनुमानों के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका में प्री-डायबिटीज अधिक एवं आम है। अमेरिका में 2000 में लगभग 40 प्रतिशत वयस्कों, आयु 40 से 74 तक के अर्थात 41 मिलियन लोगो में प्री-डायबिटीज था। नए आंकड़े 2020 में पता चलता है कि कम से कम 88 मिलियन अमेरिकी वयस्कों में प्री-डायबिटीज है। वही भारत में यह आंकडा 77 मिलियन है। अच्छी खबर यह है कि यदि अपने शरीर के वजन का 5 से 7 प्रतिशत आहार और बढ़ी हुई शारीरिक गतिविधियों के माध्यम से मधुमेह के विकास के जोखिम को कम कर सकते हैं।

1921 में इंसुलिन की खोज से पहले, निदान के बाद कुछ वर्षों के भीतर टाइप 1 मधुमेह वाले सभी की मृत्यु हो गई। हालांकि इंसुलिन को एक इलाज नहीं माना जाता है, लेकिन इसकी खोज मधुमेह के उपचार में पहली बड़ी सफलता थी। आज, स्वस्थ भोजन, शारीरिक गतिविधि और इंसुलिन लेना टाइप 1 मधुमेह के लिए बुनियादी उपचार हैं। इंसुलिन की मात्रा भोजन के सेवन और दैनिक गतिविधियों के साथ संतुलित होनी चाहिए। लगातार रक्त शर्करा की जाँच के माध्यम से रक्त शर्करा के स्तर की बारीकी से निगरानी की जानी चाहिए मधुमेह वाले लोग भी एक वर्ष में कई बार रक्त शर्करा के स्तर की निगरानी करते हैं, जिन्हें A1C कहा जाता है। A1C परीक्षण के परिणाम 2-3 महीने की अवधि में औसत रक्त शर्करा को दर्शाते हैं। स्वस्थ भोजन, शारीरिक गतिविधि और रक्त शर्करा परीक्षण टाइप 2 मधुमेह के लिए बुनियादी प्रबंधन उपकरण हैं। इसके अलावा, टाइप 2 मधुमेह वाले कई लोगों को अपने रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने के लिए मौखिक दवा, इंसुलिन या दोनों की आवश्यकता होती है। नई दवाएं टाइप 1 और टाइप 2 डायबिटीज का इलाज करती हैं परन्तु वजन नियंत्रण मधुमेह के प्रबंधन के लिए बेहतर तरीका है। साथ ही टाइप 2 मधुमेह वाले लोग आहार-विहार, शारीरिक गतिविधि, योग के माध्यम से रोग के विकास की संभावना कम कर सकते हैं।

मधुमेह के मुख्यत: तीन प्रकार हैं-

- मधुमेह टाइप - 1
- मधुमेह टाइप - 2
- गर्भावधि मधुमेह

टाइप 1 डायबिटीज-

टाइप 1 डायबिटीज एक ऑटोइम्यून बीमारी है। यह ऑटोइम्यून बीमारी तब उत्पन्न होती है। जब संक्रमण से लड़ने के लिए शरीर की प्रणाली (प्रतिरक्षा प्रणाली) शरीर के एक हिस्से के खिलाफ हो जाती है। मधुमेह में, प्रतिरक्षा प्रणाली अग्न्याशय में इंसुलिन बनाने वाली बीटा कोशिकाओं पर हमला करती है और नष्ट कर देती है। अग्न्याशय तब कम या कोई इंसुलिन पैदा नहीं करता है। जिस व्यक्ति को टाइप-1 डायबिटीज है, उसे जीने के लिए रोज इंसुलिन की जरुरत पड़ती है। वर्तमान में, वैज्ञानिकों को यह नहीं पता है कि बीटा कोशिकाओं पर हमला करने के लिए शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली का क्या कारण है, लेकिन वह मानते हैं कि ऑटोइम्यून, आनुवांशिक व पर्यावरणीय कारक, संभवत: वायरस शामिल हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में निदान किए गए मधुमेह के लगभग 5 से 10 प्रतिशत टाइप 1 मधुमेह खाते हैं। यह बच्चों और युवा वयस्कों में सबसे अधिक बार विकसित होता है, लेकिन किसी भी उम्र में दिखाई दे सकता है। टाइप 1 मधुमेह के लक्षण आमतौर पर छोटी अवधि में विकसित होते हैं, हालांकि बीटा सेल विनाश सालों पहले शुरू हो सकता है। इसके मुख्य लक्षण है- प्यास बढ़ना और पेशाब, लगातार भूख, वजन में कमी, धुंधली दृष्टि और अत्यधिक थकान शामिल हो सकते हैं। यदि इंसुलिन का निदान और इलाज नहीं किया जाता है, तो टाइप 1 मधुमेह वाला व्यक्ति कोमा में भी जा सकता है, जिसे मधुमेह केटोएसिडोसिस भी कहा जाता है।

टाइप 2 डायबिटीज-

मधुमेह का सबसे आम रूप टाइप 2 मधुमेह है। मधुमेह वाले 90 से 95 प्रतिशत लोगों में टाइप 2 होता है। मधुमेह का यह रूप सबसे अधिक बार वृद्धावस्था, मोटापे, मधुमेह के पारिवारिक इतिहास, गर्भकालीन मधुमेह के पिछले इतिहास, शारीरिक निष्क्रियता और कुछ विशिष्टताओं से जुड़ा होता है। टाइप 2 मधुमेह वाले लगभग 80 प्रतिशत लोग अधिक वजन वाले होते हैं। टाइप 2 मधुमेह बच्चों और किशोरों में तेजी से निदान किया जा रहा है। हालांकि, राष्ट्रीय स्तर पर युवाओं में टाइप 2 मधुमेह के प्रसार के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। जब टाइप 2 मधुमेह का निदान किया जाता है, तो अग्न्याशय आमतौर पर पर्याप्त इंसुलिन का उत्पादन करता है, लेकिन अज्ञात कारणों से शरीर इंसुलिन का प्रभावी ढंग से उपयोग नहीं कर सकता है, जिसे इंसुलिन प्रतिरोध कहा जाता है। कई वर्षों के बाद, इंसुलिन का उत्पादन कम हो जाता है। जो कि परिणामत: टाइप 1 डायबिटीज के समान है अर्थात् ग्लूकोज रक्त में बनता है परन्तु शरीर अपने मुख्य स्रोत ईंधन का कुशल उपयोग नहीं कर सकता है। टाइप 2 मधुमेह के लक्षण धीरे-धीरे विकसित होते हैं। इसके मुख्य लक्षण है- थकान, बार-बार पेशाब आना, प्यास और भूख में वृद्धि, वजन में कमी, दृष्टि में धुंधलापन और घावों या घावों का धीमा उपचार शामिल हो सकते हैं, परन्तु कुछ लोगों में कोई लक्षण नहीं होते हैं।

गर्भावधि मधुमेह-

कुछ महिलाएं गर्भावस्था में देर से गर्भधारण करती हैं। हालाँकि मधुमेह का यह रूप आमतौर पर बच्चे के जन्म के बाद गायब हो जाता है, लेकिन जिन महिलाओं को गर्भकालीन मधुमेह होता है, उन्हें 5 से 10 वर्षों के भीतर टाइप 2 मधुमेह विकसित होने की 20 से 50 प्रतिशत संभावना होती है। एक उचित शरीर के वजन को बनाए रखने और शारीरिक रूप से सक्रिय होने से

टाइप 2 मधुमेह के विकास को रोकने में मदद मिल सकती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 3 से 8 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं गर्भकालीन मधुमेह का विकास करती हैं। टाइप 2 मधुमेह के साथ, गर्भावधि मधुमेह कुछ जातीय समूहों में और मधुमेह के पारिवारिक इतिहास वाली महिलाओं में अधिक बार होता है। गर्भावधि मधुमेह गर्भावस्था के हार्मोन या इंसुलिन की कमी के कारण होता है। गर्भावधि मधुमेह से पीड़ित महिलाओं में कोई लक्षण नहीं हो सकता है।

प्री-डायबिटीज- प्री-डायबिटीज वाले व्यक्ति में रक्त शर्करा का स्तर सामान्य से अधिक होता है, जो कि डायबिटीज निदान के लिए पर्याप्त नहीं होता है। यह स्थिति टाइप 2 मधुमेह, हृदय रोग और स्ट्रोक (रॉबिन्सन और कोट्रान, 2006) के विकास के जोखिम को बढ़ाती है। प्री-डायबिटीज को बिगड़ा हुआ उपवास ग्लूकोज (आईएफजी) या बिगड़ा हुआ ग्लूकोज टॉलरेंस (आईजीटी) भी कहा जाता है, यह निदान करने के लिए उपयोग किए गए परीक्षण पर निर्भर करता है। कुछ लोगों के पास IFG और IGT दोनों होते हैं।

- आईएफजी एक ऐसी स्थिति है जिसमें रक्त शर्करा का स्तर रात भर के उपवास के बाद उच्च (100 से 125 मिलीग्राम या डीएल) होता है।
- आईजीटी एक ऐसी स्थिति है जिसमें 2 घंटे के मौखिक ग्लूकोज सहिष्णुता परीक्षण के बाद रक्त शर्करा का स्तर उच्च (140 से 199 मिलीग्राम या डीएल) है, लेकिन मधुमेह के रूप में वर्गीकृत होने के लिए पर्याप्त उच्च नहीं है।

अमेरिका के स्वास्थ्य और मानव सेवा विभाग द्वारा प्रदान किए गए नए अनुमानों के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका में प्री-डायबिटीज अधिक एवं आम है। अमेरिका में 2000 में लगभग 40 प्रतिशत वयस्कों, आयु 40 से 74 तक के अर्थात् 41 मिलियन लोगो में प्री-डायबिटीज था। नए आंकड़े 2020 में पता चलता है कि कम से कम 88 मिलियन अमेरिकी वयस्कों में प्री-डायबिटीज है। वही भारत में यह आंकडा 77 मिलियन है। अच्छी खबर यह है कि यदि आपको पूर्व मधुमेह है, तो आप मधुमेह को रोकने या देरी करने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। अध्ययनों से स्पष्ट रूप से पता चला है कि आप अपने शरीर के वजन का 5 से 7 प्रतिशत आहार और बढ़ी हुई शारीरिक गतिविधियों के माध्यम से मधुमेह के विकास के जोखिम को कम कर सकते हैं। पूर्व-मधुमेह के एक प्रकार, आईजीटी के साथ 3,000 से अधिक लोगों के एक प्रमुख अध्ययन में पाया गया कि आहार और व्यायाम के परिणामस्वरूप 5 से 7 प्रतिशत वजन कम हुआ, 200 पाउंड वजन वाले व्यक्ति में लगभग 10 से 14 पाउंड कम हुआ, परिणामतः टाइप 2 मधुमेह लगभग 60 प्रतिशत लोगों में कम हुआ। अध्ययन के प्रतिभागियों ने अपने आहार में वसा और कैलोरी में कटौती करके और सप्ताह में 5 दिन कम से कम 30 मिनट (सबसे अधिक पैदल चलना) व्यायाम करके वजन कम किया।

एक पुरानी कहावत है कि हम वही हैं जो हम खाते हैं, यह आज भी अच्छा है। परन्तु यदि आप उच्च कैलोरी खाद्य पदार्थों का सेवन कर रहे हैं और पर्याप्त व्यायाम नहीं कर रहे हैं, तो यह बाद में आपके स्वास्थ्य पर जल्द ही प्रभाव दिखाएगा। जब आप 40 वर्ष की आयु के करीब पहुंच रहे हों, तो आपको अधिक सावधान रहने की जरूरत है। मधुमेह, श्वसन संक्रमण, उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्रॉल, हृदय रोग, कैंसर और ऑस्टियो-पोरोसिस कुछ मुख्य समस्याएं हैं, इस आयु वर्ग के लोगों में सामना होता है। भोजन की आदतें और अस्वास्थ्यकर जीवनशैली मुख्य योगदानकर्ता हैं।

जीवनशैली की इन खतरनाक बीमारियों के रोकथाम के लिए योग एक प्राचीन भारतीय कला और विज्ञान है। जो शारीरिक और मानसिक व्यायाम और गहन विश्राम के माध्यम से व्यक्तिगत स्वास्थ्य और समग्र स्वास्थ्य को बढ़ावा देने का प्रयास करता है। हालाँकि, इस विधा को कम से कम 5,000 साल पुराना माना जाता है, योग एक धर्म नहीं है और किसी भी व्यक्ति के धार्मिक या आध्यात्मिक अभ्यास के साथ अच्छी तरह से फिट बैठता है। किसी भी उम्र, धर्म और स्वास्थ्य या जीवन की स्थिति में से कोई भी योग का अभ्यास कर सकता है और इसके लाभ प्राप्त कर सकता है।

कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि लगभग 15 से 25 शताब्दी ईसा पूर्व, यह भारत में विकसित एक सभ्यता थी। जिसमें दो सुंदर और अजीब भारतीय शहरों की दीवारों पर 'मोहेंगो' और 'दारोभा' नाम के योगी की छवियां मिली हैं। हालांकि, अन्य शोधकर्ताओं का मानना है कि योग एरियन से संबंधित है जो 15 वीं शताब्दी ईसा पूर्व में भारत में आया था। उनकी भाषा संस्कृत थी और योग शब्द, जिसका अर्थ है 'एकीकरण', का पहली बार संस्कृत में उपयोग किया गया है। बाद में, भारतीयों ने योग को मानव आत्मा और सत्य के एकीकरण के रूप में व्याख्या की। योग उसके लिए पीड़ा का नाश करने वाला है, जो खाने और मनोरंजन, क्रिया में परिश्रम, नींद और जागने का माध्यम है।

भगवान श्री कृष्ण ने योग, आहार, मनोरंजन के सन्दर्भ में कहा है कि-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
*युक्तस्वपनाव बोधस्य योगो भवति दु:खहा।।*गीता 6.17

योग जीवन जीने की कला, स्वस्थ एवं आध्यात्मिक जीवन शैली है, जो जीवन की सभी समस्याओं को हल कर सकता है। यौगिक जीवन शैली इन सभी समस्याओं को दूर करने के लिए एक परम और अद्वितीय मार्ग प्रदान करती है। योग जीवन जीने की कला, स्वस्थ और आध्यात्मिक जीवन शैली है। यह जीवन की सभी समस्याओं शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आदि को हल कर सकता है। योग जीवन और सफलता का सही मार्ग दिखाता है। योग सिद्धांत का अभ्यास स्वयं खोजकर्ता की एक प्रक्रिया है। यह दीर्घकालीन स्मृतियों का एक जागरण है कि वास्तव में वह कौन और क्या हैं- हमारे भीतर, एक अभिन्न संपूर्ण, बाह्य रूप से जीवन का एक अभिन्न अंग जो योग साधनाओं का लाभ है, वह एक नए व्यक्ति का सृजन नहीं है।

योग भक्ति और खुशहाल जीवन शैली का मार्ग दिखाता है। साथ ही अष्टांग योग का प्रत्येक चरण इन समस्याओं का समाधान कर सकता है। यम या नियमावली-सामाजिक और पारिवारिक, आसन-शारीरिक, प्राणायाम-मानसिक, प्रत्याहार-संतुष्टि, धारणा, ध्यान और समाधि-आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार अष्टांग योग समग्र स्वास्थ्य का आधार है और वास्तविक स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है। यदि योग हमारे जीवन में शामिल है तो हम इस प्रकार की समस्याओं से सुरक्षित और जीवन में हमेशा स्वस्थ रह सकते हैं।

उपसंहार- योग युक्त व्यक्ति को हमेशा खुशहाल, मध्यम व बीच का मार्ग अपनाना चाहिए। भगवान बुद्ध भी भोजन, पेय आदि के विषय में कहा है। कई प्रारंभिक मानव अध्ययन बताते हैं कि दैनिक योग एवं आहार, टाइप 2 मधुमेह वाले लोगों में रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सुधार कर सकता है। योग एवं आहार चिकित्सा किसी अन्य रूप से बेहतर है। जिसमें बेहतर शोध की आवश्यकता है। हालाँकि भारत सरकार विश्व स्वास्थ्य संगठन के सहयोग से आयुष के माध्यम से कई कार्यक्रमों को वर्तमान समय में क्रियान्वित कर रही है, जो गाँव, पंचायत, जिला एवं प्रदेश स्तर पर बृहत् रूप में चला रही है, जिसके सफलता को देखते हुए इस कार्यक्रम को सभी जगहों पर संचालित करने का प्रयास किया जा रहा है। योग जीवन का विज्ञान या उत्कृष्टता का विज्ञान है जो सभी प्रकार की उत्कृष्टता विकसित कर सकता है जो मानव जीवन में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि हो सकते हैं या योग स्वस्थ और आध्यात्मिक जीवन जीने की कला है। जो जीवन शैली के सभी प्रकार के विकारों को ठीक कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. बिजलानी, आर, (2008), स्वस्थ जीवन शैली के लिए योग, सार, राष्ट्रीय योग सप्ताह -2008, मोरार जी देसाई, नई दिल्ली
2. चक्रवर्ती, एम.वी., और बूथ एफडब्ल्यू (2004), भोजन, व्यायाम और मितव्ययी जीनोटाइप, आधुनिक पुरानी बीमारियों की विकासवादी समझ की ओर बिंदुओं को जोड़ना, फिजियोल
3. अनुवाद, पंचम सिंह (1980), हठ योग प्रदीपिका, तीसरा संस्करण, नई दिल्ली, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. स्कज
4. स्टर्गेस, स्टीफन, (2004), द योग बुक, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड
5. श्रीकांता, एस.एस., नागरथाना आर और नागेंद्र एच.आर. (2006), मधुमेह के लिए योग, बंगलोर, स्वामी विवेकानंद योग प्रकाशन - 560019 कर्नाटक, भारत
6. शंकर, गणेश, (1998), योग का समग्र दृष्टिकोण, पाठक वार्ड बीना, माधव धमेचा पब्लिशर्स जागेश्वरी माता परिसर के लिए, म.प्र. 470113
7. शर्मा, रामावतार और शुक्ला, एम., (1998), योग और समग्र स्वास्थ्य योग में स्वास्थ्य, पाठक वार्ड बीना, शंकर गणेश, माधव धमेचा, पब्लिशर्स जागेश्वरी माता परिसर के लिए, म.प्र., 470113
8. सरस्वती, स्वामी चरणानंद, (2005), स्वतंत्रता पर चार अध्याय, मुंगेर, बिहार, भारत, योग प्रकाशन ट्रस्ट
9. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद, (1999), घेरंड संहिता, मुंगेर, बिहार योग भारती
10. सरस्वती, स्वामी सत्यानंद, (1980), शोर से शोर तक योग, मुंगेर, बिहार स्कूल ऑफ योग
11. रॉबिंस और कोट्रान, (2006), रोग का मूल रोग, 7 वां संस्करण, नई दिल्ली, सुंदर एल्सेवियर एलडीटी, लाजपत नगर-110024, भारत
12. नागेंद्र, एच. आर., (1993), आधुनिक जीवन की समस्याओं के लिए समग्र दृष्टिकोण, योग सागर में, विश्व योग सम्मेलन की कार्यवाही (पृष्ठ 251-259), मुंगेर, बिहार स्कूल ऑफ योग
13. हरानंद आरण्य स्वामी हरी, 1974, पातंजल योगदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
14. आचार्य बलदेव उपाध्याय, 1987, पुराण विमर्श, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
15. वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, 1918, योग वशिष्ट, प्रकाशक तुकाराम जावजी, द्वि आवृत्ति बम्बई
16. गौतम डॉ. चमनलाल, हठ प्रदीपिका, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली, उ.प्र.
17. गोयन्दका श्री हरिकृष्ण दास, 14वाँ संस्करण सं.2041, श्रीमद्भगवद्गीता, शंकर भाष्य, हिन्दी अनुवाद, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

ISSN 2278 - 0327

व्यावहारिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में योग दर्शन में वर्णित संतोष का महत्त्व

विश्व दीपक चंद्रोल
शोधार्थी, योग विज्ञान
निर्वाणविश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

डॉ. भावना श्रीवास्तव
अनुदेशक, योग विभाग
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

सारांश:- आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव जीवन असंतोष के कारण व्यवस्थित नहीं हैं । आधुनिक तकनीकी के कारण भी मानव जीवन में असंतोष एक मुख्य कारण देखा गया है। आज व्यक्ति महत्वाकांक्षी होता जा रहा है और लोगों के भौतिक सुख साधनों को देखकर लालायित होता जा रहा है और उसी भौतिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति के पीछे भागता फिर रहा है जिससें उसके जीवन में घोर असंतोष फैलता जा रहा है। इसी असंतोष को खत्म करने के लिए महर्षि पतंजलि व अन्य ऋषि व विद्वानों ने संतोष को परिभाषित किया है और इस संतोष के माध्यम से या इस संतोष के रास्ते पर चलकर मानव जीवन सफल बना सकता है।

कूट शब्द - व्यावहारिक जीवन, संतोष, आनन्द, सुख, योग दर्शन,

परिचय:-आधुनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह निम्न वर्ग व मध्यम वर्ग तथा उच्चवर्ग पढ़ें - लिखे, अनपढ़ नौकरी पेशा चाहे ग्रामीण खेती प्रधान सभी व्यक्ति अपने दैनिक जीवन-यापन के लिए अपने दैनिक क्रियाकलापों का सुबह से रात तक परिचय देते रहते है। परन्तु अपने आस पास के वातावरण के घटनाओं से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष मानसिक व शारीरिक पक्षों को सूचना व प्रत्यक्ष अनुभव से उनके प्रभावों से गुजरते रहते है जैसे वर्तमान के व्याप्त कोरोना काल प्रारम्भिक स्थिति में कोई भी देश विदेश की संदेश सुनकर यह कल्पना नहीं किये थे कि उनका प्रत्यक्ष प्रभाव उनके स्वंय परिवारिक परिवेश में शीघ्रता से पढ़ने वाला है। क्योंकि सामान्य व्यक्ति के सोच के अनुसार वह केवल दूसरे देश की महामारी ही था, इसका प्रभाव प्रत्यक्ष से कोसों दूर कल्पना किये जा रहे थे । परन्तु व्यावहारिक में ठीक इसका प्रभाव कल्पना से विपरीत रहा और प्रत्यक्ष प्रभाव आम जनमानस अनुभव कर रहे है, जिसमें प्रत्येक देश- विदेश से लेकर राज्य, शहर, ग्रामीण व प्रत्येक लोगों की व्यवहारिक जीवन बिखरते नजर आते है साथ ही प्रत्येक घर की सूक्ष्म अवलोकन से दृष्टि करने से ज्ञात होता है कि लोगों में स्वास्थ के प्रति जागरूकता व अंग्रेजी दवाईयों, आयुर्वेद, योग दैनिक दिनचर्या के प्रति सोच बदलाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

अत: इस विशेष परिस्थिति में आज सभी वर्गों व सभी देश-विदेश तथा पूरे विश्व के बीच एक मैलिक व सार्वभौमिक समस्या नजर आती है कि सुख की प्राप्ति या उच्चतम सुख के साधन का चुनाव व माध्यम की संज्ञा प्रयोगिक रूप से कैसे प्राप्त किया जा सके, जिसमें भौतिक सुख, मानसिक सुख व आध्यात्मिक सुख की बात इनमें देश काल परिस्थिति के अनुसार भिन्न हो सकता है, परन्तु भौतिक मानसिक व आध्यात्मिक दुखों के साथ व्यवहारिक चीजों जिसे उचित पालन कर सुख के समीप पहुँचा जा सकता है इसका वर्णन पातंजल योग सूत्र के वर्णित 'संतोष' का पालन कर उच्चतम सुख की प्राप्ति की जा सकती है।

आज मनुष्य आधुनिक परिवेश में सभी चीजों व संसाधनों के होते हुए भी केवल उनके पास 'संतोष' के जगह दूसरा माध्यम काम नहीं आ रहा है आधुनिक मेडिकल साइंस प्राम्भिक स्थिति -टीका का इन्तजार से लेकर अभी तक टीकाकरण जनमानस के बीच केवल प्राचीन ग्रंथ में वर्णित संतोष की भावना के आध्यात्मिक सेतु की भांति मानसिक सुख व आशावादी दृष्टिकोण दिखलाने का कार्य से है । सन्तोष:-सन्तोष को समाधान कहा है । योग में समाधान एक माध्यम है जिससे अभ्यास की कुशलता होती है, क्योंकि जिनका चित्त सन्तुष्ट (प्रसन्न) नहीं होता है उनका चित्त एकाग्र भी नहीं हो सकता। योगी की चित्त में किसी वस्तु की कमी का आभास नहीं होता इसी कारण उनकी चित्त स्वभावत: सन्तुष्ट होने के कारण एकाग्र होता है। सन्तोष होने से योगी को अद्भुत और अद्वितीय परम सुख मिलता है। वही व्यक्ति पूर्ण है जो सन्तुष्ट है, क्योंकि वह परमात्मा के प्रेम, राग को जान जाता है और वे अपने कर्तव्यों का पूर्ण पालन करते हैं वह सत्य और आनंद को जानकर परम सुखी होता है ।

मन की अवस्थाएँ सन्तोष और शान्ति है। मनुष्यों में भेद जाति, धर्म (मत), संपत्ति और शिक्षा के कारण होता है। व्यक्ति को व्याकुल एवं विचलित मनुष्यों के भेद के कारण ही होता है भेद से

विरोध का जन्म होता है विरोध के कारण चेतन या अचेतन का कलह होने लगता है जो व्याकुल एवं विचलित का कारण है। इस स्थिति में मन को एकाग्र करना कठिन हो जाता है। मन की एकाग्रता न होने पर व्यक्ति की शांति भी अपहन्त (नष्ट) हो जाती है। जब आत्मदीप की लौ, वासना रूपी वायु से भी नहीं काँपती तब सन्तोष और शांति होती है। साधक व्यक्ति की शान्ति की खोज करता है जिसमें उसकी बुद्धि परमात्मा में दृढ़तापूर्वक स्थित हो जाए न कि मृतक की शून्य शान्ति की खोज करता है ।

सन्तोष: सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा ।

व्यास भाष्य 2/32

सन्तोष-व्यक्ति के पास जो भोग साधना (पदार्थ) उपस्थित है, उससे अधिक तथा अनुपयोगी तथा अन्य पदार्थों को पाने की इच्छा न करना ही सन्तोष कहलाता है।

योग साधक के पास जो आरम्भ में पदार्थ ही प्राप्त है उतना ही योग के लिये पर्याप्त होते हैं। उससे अधिक चाह योग साधक को नहीं करनी चाहिए।

मिट्टी के घड़ा से ही जल रखने का कार्य हो रहा है तो सोने की घड़ा की इच्छा (चाह) क्यों की जाये। सन्तुष्ट व्यक्ति दुनिया में सबसे समृद्ध और सुखी होते हैं। असन्तुष्ट व्यक्ति से बड़ा इस दुनिया में कोई दरिद्र नहीं होता है। दरिद्रता के लक्षण में अधिक से अधिक पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा है। ऐश्वर्य का लक्षण पूर्णकामता है, जबकि योगी का धन तो सन्तोष है।

या दुस्त्यजा दर्मातिभिर्या न जीर्यति जीर्यताम्
तां तृष्णं सन्त्यजन् प्राज्ञ: सुखेनैवाभिपूयेते ।।

महा भारत आदिपर्व 85/14

सभी दुखों का मूल तो इच्छा ही है। यह इच्छा इतनी प्रबल होती है कि शरीर के वृद्ध होने पर यह वृद्ध नहीं होती अपितु और भी प्रबल होती जाती है। इसलिए जो इच्छा (तृष्णा) को त्याग देना है वही सच्चा (अनुत्तम सुख) की प्राप्ति करता है ।

यही बात भाष्यकार व्यासदेव भी कहे है -

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हत: षोडशीं कलाम् ।

मनुस्मृति

अर्थात् इस संसार में जितने भी चन्दन, माला, वनिता भोजन आदि इच्छाओं (कामनाओं) की सुख है और जितनें भी स्वर्ग का सुख - अमृतपान, अप्सराभोग, आदि से होने वाला दिव्यसुख है। ये दोनों प्रकार के सुख मिलकर भी सन्तोष से होने वाला अनुत्तम सुख की 16वें (सोलहवें) अंश के बराबर भी नहीं है ।

वशिष्ठ संहिता में-

यदृच्छालाभसन्तुष्टं मन: पुंसां भवेदिति ।
या धीस्तामृषय: प्राहु: सन्तोषं सुखलक्षणम् ।। 1/55(व.सं.)

साहसपूर्वक किये गये कार्य का परिणामस्वरूप लाभ में मनुष्य का मन सन्तुष्ट रहें तो ऐसी स्थिति में मनुष्य की बुद्धि को ही ऋषिगण सुखदायक संतोष कहा गया है ।

अधिकतर मानव सुख की तलाश में है, परन्तु उन्हें सन्तोष प्रदान कर सकें ऐसे उपाय ढूँढने वाले बहुत कम लोग होते है । लोग सुख की चाह में क्षणिक सुख जैसे - टेलीविज़न सिनेमा, खेलकूद आदि की ओर झुकते है, परन्तु चिरस्थायी सुख से वे अपरिचित रह जाते है लोग पद, शक्ति और भौतिक आधिपत्य चाहते है, इसके बदले में परिणामस्वरूप मिलती है - अनिश्चितता, भय, असुरक्षा और मानसिक व्याधियाँ, शारीरिक व्याधियाँ ।

हम सन्तुष्ट हो, जीवन के प्रति उत्साह से भरी रचनात्मक अभिवृत्ति हो, इसका अत्यन्त सरल उपाए है। ये उपाए इतना सरल है कि लोग इसके बारे में सोचते भी नहीं है। उपाय यह है कि हम अपनी चेतना के विकास व विस्तार को उच्च स्तर पर लें जायें और मन की अनन्त गहराइयों में बैंठे। इस स्थिति में जब आप अपने मन को जानेंगें, तब उसको सुख का अनुभव देने वाले आनन्द तथा शान्ति का अनुभव होगा, जीवन के सभी बडें छोटे संघर्ष महत्वहीन प्रतीत हो जाएगा। आप इस स्थिति में भी संस्कार में जीवन व्यतीत करते हुए अपने सहकर्मियों के साथ कर्तव्यों का पालन करेंगें इसी स्थिति में आपको सम्पूर्ण सन्तोष की प्राप्ति होगी। तब आपका जीवन सफल, सार्थक हो जाएगा और उस सभी निम्न विचारों से मुक्त हो जायेगा जिसमें अधिकतर लोग क्षणिक सुख के लिए उलझे रहते हैं।

सन्तोष और खुशी प्राप्त करने के उपाए में मुख्य बाते है कि अपने मन को बदलें, अपनी सजगता का विस्तार व विकास करें, मन की सूक्ष्म प्रक्रियाओं के प्रति भी सजग बनें रहें आनन्द स्वत: ही आपके पास आ जाएगा सुखी व सन्तोष का यह अच्छा उपाए समाधान के रूप में ध्यान को बताया है। ये सभी प्रक्रिया को ध्यान के माध्यम से किया जा सकता है।

हमारे दुखों के कारण में मानसिक संयोजन ही है। आनन्द की खोज के लिए हम अपने अहं को पुष्ट करने की प्रयास करते रहते है, इसी के परिणामस्वरूप हम विभिन्न इच्छाऐं करते है जैसे- धन की प्राप्ति, खान-पान, मर्यादा, प्रभुता स्थापित करने में सुख की प्राप्ति दिखायी देते रहते हैं जो कि क्षणिक है। हम सुख के अनुभव के लिए अपने अहं को पोषित करने का प्रयास करने लगते है।

इस प्रयास में दूसरे लोगों को नुकसान भी हो सकता है जिसके परिणाम स्वरूप घृणा, चिन्ता, भय व तनाव आदि से वातावरण दूषित होता है। यह रास्ता आनन्द की खोज के विपरीत परिणाम वाले है। यदि हमें इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं होती तो हमारा मन में कई तरह के दु:ख, तनाव और मानसिक अशान्ति व्याप्त होने लगती है। जब हम निराशा, असंतोष व दु:ख की स्थिति में रहते है तब वर्तमान जीवन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होते है एवं उनके साथ- साथ उचित मानवीय मूल्यों का अनुसरण न कर अनुचित मार्ग की ओर अग्रसर होने लगते है। संतोष से जीवन की हर परिस्थिति का सामना करने की क्षमता प्राप्त होती है, अधिकतर लोगों की मनोस्थिति जीवन के उतार-चढ़ाव के अनुरूप परिवर्तन होते रहते है, हर पल बदलने वाली मन की स्थिति (कभी क्रोध - कभी निराशा) ध्यान के लिए उचित नहीं होते।

इसलिए संतोष की आवश्यकता होती है और व्यक्ति को ध्यान के लिए कुशल बनाती है। कृत्रिम संतोष, आन्तरिक संतोष से पृथक् ले जाती है इसलिए आन्तरिक संतोष मौलिक प्राथमिकता होनी चाहिए।

सामान्यत: कथन है कि ''कहना जितना सरल है, करना उतना ही कठिन है '' संतोष के अवतरण के लिए यम - नियम के पालन करते हुए प्राप्त परिणाम को सहजतापूर्वक स्वीकार करना होगा ।

संतोषदनुत्तम सुखलाभ: 2/42

संतोष से अति उत्तम सुख की अनुभूति होती है।

संतोष का सर्वाधिक महत्व है साधक के जीवन में, उच्च साधना करने के इच्छुक साधक के लिए यह विशेष रूप से अतिआवश्यक है इसमें साधक आत्मसाक्षात्कार करने के मार्ग में अग्रसर होते जाते है अपने जीवन में अनिवार्य रूप से संतोष का पालन करने वाले ही उच्च साधना व आत्म साक्षात्कार कर सकते है। जो व्यक्ति असंतुष्ट है इनके लिए उच्च साधना में सफलता की संभावना क्षीण होती है। असंतोष एक ऐसी आवरण है जिसे अविद्या कहा गया। योग साधना के पूर्व अविद्या के आवरण को हटाने का शर्त होता है क्योंकि असंतोष से ही कई मनोरोगों को जन्म देता है, कुठाओं के कारण बनता है। जब साधक का मन असंतोष में रहेगा तो वह साधना कैसे कर सकता है।

यम नियम के पालन करने से ध्यान में भी सफलता आती है। ध्यान में आवश्यक जागरूकता को आवरणों, मानसिक त्रुटियों तथा कुंठाओं से अलग रखना अतिआवश्यक है। इसी के लिए संतोष के अभ्यास होना जरूरी है, संतोष से अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होता है। इसी के बाद साधक ध्यान के मार्ग में आगे चल सकता है और सफल हो सकता है। असंतोष की स्थिति में कुंठाए उत्पन्न होती है, ऐसे साधकों के लिए ध्यान में सफलता असंभव हो जाती है।

निष्कर्ष- मानसिक व आध्यात्मिक रूप से सुख की प्राप्ति के लिए संतोष की साधना करना आवश्यक है पातंजल योग दर्शन में अष्टांयोग योग के अन्तर्गत नियम में शौच उसके बाद संतोष का वर्णन है संतोष के बारे में महर्षि पतंजली ने बताया है कि सुखों में श्रेष्ठ सुख संतोष से प्राप्त होती है। संतोष की साधना होने पर ही योग मार्ग में आप आगे बढ़ सकते है जीवन में सुख की प्राप्ति के लिए संतोष अति आवश्यक है। असंतोष क्षणिक सुख भी नहीं हो सकता अपने व्यवहारिक जीवन में कर्म करने के उपरान्त जो परिणाम मिले उसी में संतुष्ट होना ही योग साधक का कर्तव्य होता है। इससे मन शान्त और एकान्त होती है जिससे योग मार्ग में आगे की साधना सरल हो जाती है। असंतोष की स्थिति में पर्याप्त संसाधन होने पर व्यक्ति और चाह की स्थिति होने के कारण वर्तमान समय में भी दुखी रहते है, वहीं संतोष की स्थिति में अपर्याप्त संसाधन होने पर भी व्यक्ति संतुष्टी के कारण वर्तमान समय में सदैव खुशी की स्थिति होती है।

संदर्भग्रंथ सूची-

- आयंगार, बी. के. एस., योगदीपिका प्रकाशन-ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड 2009 पेज न.25-26
- शास्त्री,डॉ. विजयपाल, योग विज्ञान प्रदीपिका (पातंजल योगसूत्र मूल हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद सहित) आर.डी.पाण्डे सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली सन्-2006 पेज न.-140
- दिगंबर जी स्वामी, झा डॉ पीताम्बर, सहाय श्री ज्ञान शंकर, वसिष्ठसंहिता (योगकाण्ड) आलोचनात्मक संस्करण (परिवर्धित), प्रकाशक- श्री ओम् प्रकाश तिवारी, सचिव, कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति, सन्- 2009 पेज-56
- सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, 'ध्यान तंत्र के आलोक में' योग पब्लिकेशन ट्र्स्ट, मुंगेर बिहार, भारत, सन् 2013,
- सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, ''मुक्ति के चार सोपान (पातंजल योग सूत्र का यौगिक भाष्य)'' प्रकाशक पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार,भारत, सन्-2004

ISSN 2278 - 0327

श्री नरेन्द्र मोदी कार्यकाल में 15 अगस्त की नई योजनाओं और नीतियों में भूमिका (2014-2019)

डॉ. संजय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. सुनीता पारीक
एसोसिएट प्रोफेसर
अदिति कॉलेज, राजनीति विज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मोदी सरकार के द्वारा इस ऐतिहासिक दिन को देश को असंख्य नीतियां कार्यक्रम विचार तथा भविष्य का मार्गदर्शन प्रदान किया है। यह दिन देश के लिए 15 अगस्त 1947 के बाद से हमेशा गौरव का चल रहा है। इस दिन देशभर में केंद्र और राज्य सरकारों के द्वारा कई प्रकार की इतिहासिक घोषणाएं तथा कार्यक्रम आरंभ करने का चलन 1947 के बाद सही चला रहा है। केंद्र सरकार के द्वारा इस दिन 70 सालों में भिन्न-भिन्न प्रधानमंत्रियों के द्वारा महत्वपूर्ण घोषणाएं की गई। इसी संदर्भ में हम श्री नरेंद्र मोदी के द्वारा की गई 15 अगस्त की कार्यक्रम और नीतियों की घोषणा का अवलोकन करेंगे, किस प्रकार से ही घोषणा होने पर भारत के राजनीतिक सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक विकास में मील का पत्थर साबित किया। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पिछले 20-25 सालों के भारतीय राजनीति के राजनीतिक इतिहास में यदि हम झांक कर देखें तो श्री नरेंद्र मोदी एकमात्र ऐसे प्रधानमंत्री दिखाई देते हैं, जो जनता से सीधे तौर पर संवाद और संबंध बनाने में सफल हुए हैं, इसीलिए हमें उनके 15 अगस्त के भाषणों को विशेष तौर पर अवलोकन करना चाहिए, क्योंकि यह ऐतिहासिक दिन भारत के सभी नागरिकों के लिए हमेशा से हर्ष और उल्लास का माहौल आता है। इस दिन देशभर में राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय नागरिकों द्वारा दी गई कुर्बानियों तथा भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भारतीयों के किए गए योगदान को याद किया जाता है और यह भी याद किया जाता है कि किस प्रकार से भारत ने दुनिया की सबसे ताकतवर राजनीतिक शक्ति ब्रिटेन से अपनी आजादी प्राप्त की और आजादी प्राप्त करने के बाद किस प्रकार से भारत ने अपना संविधान का निर्माण किया तथा भारत में लोकतंत्र को स्थापित किया। 15 वें प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी का कार्यकाल का आरंभ 16 वीं लोकसभा में भारतीय जनता पार्टी के द्वारा स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने के बाद 26 मई 2014 को शपथ ग्रहण से आरंभ हुआ, इस शपथ ग्रहण समारोह को विशेष बनाने के लिए श्री नरेंद्र मोदी के द्वारा सभी पड़ोसी देशों के राष्ट्रीय अध्यक्षों को आमंत्रित किया गया और यह संदेश देने का सरकार के द्वारा प्रयास किया गया कि भारत अपने पड़ोसी मुल्कों के साथ आने वाले समय में मैत्रीपूर्ण तथा आपसी तनाव कम करने के लिए संकल्प बद्ध है।

जब-जब केंद्र में नई सरकार का गठन होता है उसके द्वारा अपनी भविष्य की योजनाओं को लोकसभा चुनाव के दौरान स्पष्ट तौर पर प्रदर्शित और प्रस्तुत किया जाता है। इसी के साथ हर लोकसभा चुनाव में राष्ट्रीय दल अपना घोषणा पत्र भी जनता के सम्मुख रखती है तथा भविष्य के विकास के लिए कुछ वायदे तथा वर्तमान चल रही समस्याओं का समाधान प्रस्तुत घोषणा पत्रों में किया जाता है।

15 अगस्त 2014 का भाषण

15 अगस्त 2014 को प्रधानमंत्री के द्वारा दिया गये अपने प्रथम भाषण के विश्लेषण और चर्चा करें, तो प्रधानमंत्री उसमें वह अपने आप को जनता के समक्ष प्रधान सेवक या जनता का सेवक के रूप में प्रस्तुत करते हैं और तथा इस बात पर भी बल देते हैं कि एक गरीब घर से साधारण व्यवसाय (जैसे चाय बेचने वाला) करने वाला व्यक्ति इस देश की सबसे उच्चतम पद पर एक ही कारण से आज है, वह देश का संविधान जो सभी को बराबर अधिकार देता है। और इसी भावना और अधिकार को श्री नरेंद्र मोदी लोकतंत्र के सबसे बड़ी ताकत के रूप में व्याख्या करते हैं। भाषण में इस बात पर भी बल दिया गया कि 25 सालों के बाद लोकसभा में संपूर्ण बहुमत की सरकार बनने के बावजूद हम बहुमत के आधार पर सरकार को संचालित ना करके सहमति के आधार पर सरकार को चलाए जाएगा।

सरकार चलाने के कुछ महीनों के अंदर ही यह महसूस किया गया कि दिल्ली की केंद्र सरकार की विभिन्न विभाग में आपसी तालमेल के स्थान पर आपसे द्वंद तथा झगड़ा नीतियों के संबंध में प्रमुख तौर पर उभरता रहा है, केंद्र सरकार की विभागों का आपसी झगड़ा इस कदर बिगड़ जाता है कि वह कभी-कभी हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के दरवाजे तक भी पहुंच जाते हैं, इस प्रकार की परंपरा को बदल कर अब हमारी सरकार एक जैविक एकता, एक जैविक इकाई और आपसी तालमेल से सरकार चलाने का प्रयास शुरू कर दिया है। जिसका एक लक्ष्य -एक मन- एक दिशा- एक ऊर्जा से भरपूर संगठित इकाई के तौर पर कार्य करें। व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रीय हित और राष्ट्रीय चरित्र की भावना से सरकार को चलाने का प्रयास किया जाएगा।[1]

अपने संबोधन में भारत में महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध के संदर्भ में यह कहा कि माता-पिता को अब लड़कों से यह पूछना होगा कि वह घर के बाहर क्या करते हैं, लेट आने पर उनको टोकना होगा और उन पर भी नजर रखनी होगी जिस प्रकार से नजर अभी तक भारतीय समाज परिवारों में लड़कियों पर रखा करता है, कानून अपना कार्य शक्ति से करेगा लेकिन महिलाओं के प्रति अपराध को खत्म करने के लिए परिवार और समाज को अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए कार्य करना होगा।[2]

भारत में महिला लिंग अनुपात की कमी को देखते हुए डॉक्टरों से भी अपील की गई कि वह तकनीकी जांच पड़ताल करके गर्भ में पल रही बच्चियों की हत्या ना करें। सरकार बनने के बाद प्रथम भाषण का शुरुआती हिस्सा समाज सुधार और सामाजिक समस्याओं को अंत करने के संदर्भ में समाज को संदेश देने का रहा अपनी पहली महत्वकांक्षी योजना घोषित करते हुए कहा कि -

जन धन योजना की घोषणा करते हुए कहा गया कि देश के सबसे करोड़ों गरीब आदमी के पास आज भी बैंक खाता नहीं है इसीलिए वे सरकार कि किसी भी योजना से सीधे तौर पर नहीं जुड़ सकते हैं इस योजना का संदेश यह था कि यह सरकार गरीबों के पक्ष में नीतियां बनाने के संदर्भ में पहल करने जा रहे हैं। देश के युवाओं को अधिक से अधिक रोजगार देने और देश में विनिर्माण क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए दूसरी महत्वकांक्षी योजना की घोषणा मेक इन इंडिया के नाम से की गई जिसमें दुनिया भर के बड़े-बड़े उत्पाद बनाने वालों को भारत में आमंत्रित किया किया जाएगा, जितने भी विनिर्माण इस नीति के तहत किया जाएगे देशभर में जिस प्रकार से आईटी पेशेवरों ने दुनिया भर में अपनी पहचान बनाई है [3] उसी प्रकार की पहचान अब भारत को डिजिटल इंडिया बनाकर तकनीकी सूचना को अभिजात वर्ग से निकालकर गरीब आदमी का हथियार बनाने का कार्य करना होगा, इसके लिए देश के सभी गांव को ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी से जोड़ा जाएगा, जिससे गांव में शिक्षा से लेकर बैंकिंग सुविधा मोबाइल सुशासन तथा सरकार की सभी नीतियों को सुगम तरीके से मोबाइल तकनीक के माध्यम से लागू किया जा सके।

गांधी के सपने को पूरा करने हेतु तथा देश में चारों तरफ फैली कूड़ा करकट गंदगी को एक सफाई अभियान के तहत समाप्त करने का संकल्प प्रधानमंत्री के द्वारा स्वयं लिया गया तथा 2019 का एक लक्ष्य रखा गया कि देश में 2019 तक गांधी जी की 150 वी जयंती में पूरे देश को स्वच्छ भारत घोषित किया जाएगा। इस योजना की शुरुआत 2 अक्टूबर 2014 से होगी सफाई अभियान के महत्वपूर्ण देशों को पूरा करने के लिए देश के सभी स्कूलों में शौचालय का निर्माण किया जाएगा, इसके लिए सरकार सांसद निधि तथा कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी के तहत फंड के प्रयोग करने की इजाजत बड़े स्तर पर दी जाएगी।[4] इस प्रकार स्कूलों में शौचालय बनाने की नीति के माध्यम से स्कूलों में जो बड़ी संख्या में लड़कियां इसी कारण से स्कूल नहीं जा पाती है कि वह शौचालय की सुविधा नहीं है। इस समस्या को समाप्त करने का एक बड़ा प्रयास सरकार के द्वारा ग्रामीण स्तर की लड़कियों को स्कूली शिक्षा ग्रहण करने के संदर्भ में किया गया है।

एक अलग प्रकार की ग्रामीण स्तर के विकास को तेज गति देने के लिए सांसद आदर्श ग्राम योजना की घोषणा की गई, जिसमें जिम्मेदारी चुने हुए लोकसभा और राज्यसभा के प्रतिनिधियों को एक गांव को विकसित करने का संकल्प लेना होगा, जिससे विकास की गति ग्रामीण स्तर पर एक मॉडल के तौर पर उभर सके।

15 अगस्त 2015 का भाषण

15 अगस्त 2015 के भाषण में प्रधानमंत्री ने नीतियों के क्रियान्वयन के संदर्भ में एक दिलचस्प और महत्वपूर्ण बात राष्ट्र के सामने रखी, उनके द्वारा कहा गया कि 40 -50 सालों से जितनी भी केंद्र सरकार की नीतियों की घोषणा की गई वह 5-7 करोड़ लोगों तक ही पहुंच पाई लेकिन हमारे द्वारा घोषित की गई जन धन योजना 1 साल के अंदर ही 10 करोड़ नागरिकों तक पहुंच गई है।[5] हम एक नई प्रकार की कार्य संस्कृति को बढ़ावा तथा प्रोत्साहन देने के लिए लगातार प्रयासरत रहेगें, केंद्र सरकार की योजनाओं को लाभ सभी लाभांवित व्यक्तियों तक समय पर पहुंच पाए यही हमारी हर योजना का उद्देश्य आने वाले भविष्य में रहेगा। देश के गरीब लोगों तक सामाजिक सुरक्षा किस प्रकार के प्रदान

की जाए यह प्रत्येक केंद्र सरकार तथा योजना आयोग के सामने एक चुनौती रही है, इस चुनौती को पूरा करने के लिए सरकार के द्वारा प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, अटल पेंशन योजना, जीवन ज्योति बीमा योजना आदि आरंभ करके देश में सामाजिक सुरक्षा का दायरा आम नागरिकों तक पहुंचाने का सरकार के द्वारा प्रयास किया गया है। 12 रुपए प्रति वर्ष के भुगतान से प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना के 2 लाभ का हकदार गरीब से गरीब व्यक्ति भी हो सकता है।[6]

देश में मजदूरों के लिए अभी तक 44 प्रकार के कानूनों का निर्माण किया गया, जिसके कारण मजदूर वर्ग इन कानूनों की जटिल प्रक्रिया को अपने लाभ के लिए कभी भी समझ नहीं पाया, सरकार के द्वारा इन सभी कानूनों को चार प्रमुख कानूनों में बदलकर देश के करोड़ों मजदूरों को उसका हक प्रदान करने का सुलभ तरीका उपलब्ध करवाया है।[7]

देश में काले धन को लाने के संबंध में विभिन्न प्रकार की कानूनी प्रावधानों को करके काले धन पर लगाम लगाई जा रही है। जनधन खातों का लाभ अब मनरेगा में मजदूरी के भुगतान के तौर पर, छात्रों को छात्रवृत्ति के तौर पर और ऐसे अन्य सभी केंद्रीय योजनाओं में गरीब लोगों की मदद करने के लिए जनधन खातों का प्रयोग सीधे भुगतान करने के लिए किया जा रहा है, जनधन खाता ने भारत में बड़े स्तर पर सरकारी भ्रष्टाचार तथा सरकारी धन के दुरुपयोग पर लगाम लगाने का कार्य किया है। यह हमेशा से सरकारी नीतियों के संबंध में कहा गया कि केंद्र सरकार यदि 100 प्रतिशत किसी भी योजना में जमीनी स्तर पर भेजती है, तो उसका जमीनी स्तर पर पहुंचने का प्रतिशत हमेशा से 10 से 40 प्रतिशत तक ही रहा।

भारत सरकार का कृषि मंत्रालय अब किसान कल्याण मंत्रालय के नाम से जाना जाएगा। सरकार के द्वारा किसानों के लिए सिंचाई के लिए प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना जैसी महत्वकांक्षी महत्वपूर्ण योजना की घोषणा करते हुए कहा कि हम कृषि क्षेत्र में जल बचाओ, ऊर्जा बचाओ, उवरक बचाओ के मंत्र के साथ एक नया आंदोलन कृषि क्षेत्र में आरंभ करने का फैसला सरकार के द्वारा लिया है जिसका प्रमुख उद्देश्य 'प्रति बूंद अधिक फसल' यूरिया की चोरी को रोकने के लिए नीम कोटिंग यूरिया का प्रयोग जैसी योजनाओं को शुरू किया गया है।[8]

देश का पिछड़ा क्षेत्र जैसे पूर्वी उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तर पूर्वी क्षेत्र के विकास के बाद ही संपूर्ण भारत आगे बढ़ पाएगा, इसलिए इन सभी क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे में भारी निवेश सरकार के द्वारा आने वाले समय में किया जाएगा।

आजादी के बाद से देशभर के संपूर्ण 6 लाख गांव में विद्युतीकरण का कार्य अभी भी संपूर्ण रूप से नहीं हो पाया है, 18500 गांव देश के बिजली से अभी भी वंचित पाए गए हैं इसीलिए इन सब को विद्युतीकरण करने के लिए समयबद्ध तरीके से 1 से 2 साल में पूर्ण कर दिया जाएगा।[9]

देश के युवाओं में रोजगार प्रदान करने के लिए उनको अपने पैरों पर खड़े करने के लिए सरकार के द्वारा स्टैंड अप इंडिया और स्टार्टअप इंडिया योजना को लांच किया जा रहा है, जिससे देश में युवा स्वयं रोजगार हासिल करते हुए अन्य युवाओं के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करें। इस काम को पूर्ण करने के लिए देशभर में 1.25 लाख बैंकिंग यूनिटों से आग्रह किया गया है कि स्टार्टअप इंडिया योजना के दौरान दिए गए लोन में सभी बैंक ब्रांच दलितों, जनजातीय क्षेत्रों में जनजातियों को और महिलाओं के स्टार्टअप को प्राथमिकता के आधार पर लोन उपलब्ध करवाएं यदि यह योजना सफल हो पाती है तो देश में बड़े स्तर पर रोजगार उत्पन्न हो सकते हैं। सरकार को इस योजना को लागू करने के लिए हर स्तर पर योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना होगा।

भारत में सरकारी नौकरियों में परीक्षा और साक्षात्कार के माध्यम से नौकरियां प्राप्त होती थी लेकिन इस प्रणाली से भाई भतीजावाद, पैसों का लेनदेन, क्षेत्रवाद तथा अन्य बहुत से प्रकार के भ्रष्टाचार नौकरियों में केंद्र और राज्य सरकारों में फैलता गया, इसी को मुक्त करने के लिए नौकरियों में फैले भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए प्रधानमंत्री के द्वारा घोषित किया गया कि अब आने वाले समय में नौकरियां लिखित परीक्षा के आधार पर ही प्राप्त होगी। 2022 तक देश के 6 लाख गांव को संकल्प करना चाहिए कि आजादी के 75वी वर्षगांठ के उपलक्ष में हम देश की समस्याओं को समाप्त करने के लिए संकल्प लेते हैं।

एक प्रकार से प्रधानमंत्री देश के नागरिकों को देश के भविष्य के संदर्भ में सोचने के लिए आइडियों तथा योजनाओं पर विचार करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं और यही एक मजबूत राजनीतिक नेतृत्व का लक्षण होता है, देश के नागरिकों को किस प्रकार से प्रेरित किया जाए और मोदी जी अपने हर संबोधन में भविष्य की योजनाओं तथा भविष्य की विकास की चर्चा करके नागरिकों को प्रेरित करते हैं जो देश की राजनीति से 15-20 सालों से एक प्रकार से गायब प्रतीत हो रहा था।

15 अगस्त 2016 का भाषण

15 अगस्त 2016 को 70वां स्वतंत्रता दिवस पर पीएम मोदी

ने लालकिले से तिरंगा फहराने के बाद देश को संबोधित करते हुए कहा कि एक भारत श्रेष्ठ भारत के सपने को पूरा करना चाहिए। इसके लिए हर आदमी को अपनी जिम्मेदारी को निभाते हुए देश की वर्तमान समस्याएं के समाधान के लिए सामर्थ्य भी है। महात्मा गांधी, सरदार पटेल, पंडित नेहरू और अनगिनत लोगों ने स्वराज हासिल करने के लिए अपनी जान की कुर्बानी दे दी ।

इस भाषण में प्रधानमंत्री के द्वारा 2 सालों में उठाए गए नीतियों कार्यक्रम को जनता के सामने विस्तार से रखा तथा अपनी सरकार की नई कार्य संस्कृति के संदर्भ में भी इस भाषण में जनता के सामने अपने विचार रखें।

रेलवे व्यवस्था को तेज गति देने के लिए जो पहले रेल टिकट बुक करने के लिए बहुत मेहनत लगती थी, अब उसमें तेज गति लाकर 1 मिनट में 15 हजार रेल टिकट मिलना संभव हो गया है। दो साल में 3500 किलोमीटर रेल लाइन को सुचारू किया है।[10] केंद्र सरकार की नौकरियों में भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए तथा सुशासन के लिए ग्रुप सी और डी में इंटरव्यू खत्म किया गया है।

पहले पासपोर्ट बनने में 6 महीने का समय लगभग लग जाता था अब उस में तेजी लाकर 2 सालों में हमने पौने 2 करोड़ पासपोर्ट देने का काम भी किया है।

देशभर में सड़कों का जाल मजबूत करने के लिए ता ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने इस कार्य में तेज गति प्रदान की है। पहले एक दिन में 70-75 किलोमीटर सड़क बनती थी, अब 100 किलोमीटर बनती है।[11]

देश में बिजली की कमी को दूर करने के लिए ऊर्जा के क्षेत्र में 2 सालों में 40 फीसदी विकास किया है।

भारत में घरों में हमेशा खाना बनाने के लिए गैस का कनेक्शन लेना तथा गैस प्राप्त करना हमेशा से एक चुनौती का कार्य एक समय दे रहा, 60 साल में 14 करोड़ लोगों को रसोईगैस मिला था लेकिन सरकार के द्वारा क्षेत्र में तेज गति लाने के लिए और सुलभ गैस कनेक्शन उपलब्ध कराने के लिए 60 सप्ताह में 4 करोड़ लोगों को रसोईगैस मिला है।[12]

देश में सभी नागरिकों को आधार कार्ड प्रदान करने के लिए इस कार्य को युद्ध स्तर पर किया जा रहा है और अब देश के 70 करोड़ लोग आधार से जोड़े गए है।

इस सरकार ने एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी किया है कि देश में पुराने पड़ चुके कानूनों को भी निरस्त कर दिया है 2 सालों में पांच सौ कानून निरस्त किए है आने वाले समय में 1700 कानूनों को निरस्त करना है जो जंजाल बन चुके हैं।[13]

जनधन योजना का विस्तार करते हुए अब इसकी संख्या 21 करोड़ नागरिकों तक पहुंच गई है। यह योजना वाक्य में ही देश के गरीब जनसंख्या को देश की आर्थिक मुख्यधारा से जोड़ना तथा देश की कल्याणकारी योजनाओं को सीधे उन तक पहुंचाने का एक बड़ा जरिया आने वाले समय में बनेगी। जिस प्रकार से आधार कार्ड ने देश के सभी नागरिकों को एक पहचान पत्र देने कार्य किया है। उसी प्रकार से जन धन योजना गरीब नागरिकों को आर्थिक तौर पर सशक्तिकरण देने कार्य करेगी सरकारी योजनाओं से अरबों रुपए का भ्रष्टाचार भी समाप्त होगा। 2014 के भाषण में 18 हजार गांवों के विद्युतीकरण का लक्ष्य रखा था उसमें से अभी तक 10 हजार गांवों में बिजली पहुंच गई है।[14]

ऊर्जा और पेट्रोलियम के क्षेत्र में दूसरे देशों पर निर्भरता को समाप्त करने के लिए तथा ऊर्जा को बचाने के उद्देश्य से सरकार के द्वारा 77 करोड़ लेड (LED) बल्ब को बांटने का लक्ष्य रखा गया है, इसमें से 13 करोड़ बल्ब बांटे जा चुके हैं। अब लेड बल्ब की कीमत 300 रुपये से कम होकर 50 पर मिलने लगा है।[15]

15 अगस्त 2017 का भाषण

15 अगस्त 2017 के भाषण में प्रधानमंत्री के द्वारा आजादी के इतिहासिक दिनों को याद करते हुए कहा कि अभी अभी भारत छोड़ो आंदोलन Quit India Movement का 75 साल स्मरण किया गया है, चम्पारण सत्याग्रह की शताब्दी मना रहे हैं और साबरमती आश्रम की शताब्दी का भी वर्ष है। लोकमान्य तिलक के द्वारा दिया गया नारा 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' को 125 वर्ष हो गये है।[16]

नई नीति और योजनाओं के संदर्भ में प्रधानमंत्री के द्वारा New India का एक संकल्प लेकर देश को आगे बढ़ाना है। 'New India' को परिभाषित इस प्रकार से किया जो सुरक्षित हो, समृद्ध हो, शक्तिशाली हो, 'New India' जहां हर किसी को समान अवसर उपलब्ध हो, 'New India' जहां आधुनिक विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में भारत का विश्व में दबदबा हो।[17]

वन रैंक - वन पेंशन' का अटका हुआ मामला का समाधान करके फौजियों की आशा-आकांक्षाएं पूरी की गई है।

GST के द्वारा देश में Cooperative Federalism, Competitive Cooperative Federalism का माहौल बनाने का कार्य किया जा रहा है।

2014 के बाद आज दुगुनी रफ्तार से सड़के बना रही हैं,

दुगुनी रफ्तार से रेलवे की पटरियां बिछाई जा रही हैं, 2014 मे संपूर्ण विद्युतीकरण योजना नीति के तहत आज 14 हजार से ज्यादा गांव, जो आजादी के बाद भी अंधेरे में पड़े हुए थे, उजाला हो गया है। जनधन योजना मे अब 29 करोड़ गरीबों के जब बैंक अकाउंट खुल गये हैं, किसानों के नौ करोड़ से ज्यादा Soil Health Card पुरे होने की भी जानकारी दी गई।[18]

सरकार में भी खरीदी करने में अब छोटा-सा व्यक्ति भी हजारों किलोमीटर दूर बैठा गांव का व्यक्ति भी सरकार को अपना माल supply कर सकता है, यह GEM नाम का एक पोर्टल के द्वारा किया जा रहा है इसका उदेश्य सरकार की खरीदारी में transparency को लागू करना है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के अंतर्गत शुरू की गई योजानाओं में से 21 योजना अभी तकपूर्ण कर की गई हैं और बाकी 50 योजनाएं आने वाले कुछ समय में पूर्ण हो जाएंगी। 2019 के पहले कुल 99 बड़ी-बडी योजनाएं को परिपूर्ण करके, किसान के खेत तक पानी पहुंचाने का काम पूर्ण करने का लक्ष्य के संदर्भ में भी बताया गया।[19]

प्रधानमंत्री द्वारा अपने भाषण में 'प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना' का निर्माण के संदर्भ में बताया जिसका उद्देश्य बीज से बाजार तक किसानों की प्रत्येक मदद (hand-holding) करेंगे। 2016 की नोटबंदी का फायदे सदर्भ के मे प्रधानमंत्री ने जानकारी देते हुये बताया कि तीन लाख करोड़ रुपए बैंक सिस्टम में वापस आए है।[20] नोटबंदी के अन्य फायदे की जानकारी देते हुए कहा कि देश में इनकम टैक्स रिटर्न फाइल करने वालों की संख्या डबल हो गई है,[21] नोटबंदी के बाद डाटा माइनिंग के द्वारा तीन लाख शैल कंपनियों की जानकारी प्राप्त हुई, जिसमें हवाला कारोबार, काले धन का गैर कानूनी कार्य होता था इसमें से अधिकतर कंपनियों को बंद कर दिया गया।

उच्च शिक्षा के संबंध में प्रधानमंत्री ने बताया कि शिक्षा के क्षेत्र में 20 World Class यूनिवर्सिटियों को बनाने का फैसला किया गया है, 2014 के बाद से तीन वर्ष में 6 IIT, 7 नए IIM, 8 नए IIIT, इसका निर्माण किया है।22

15 अगस्त 2018 स्पीच

इस भाषण में सबसे बड़ा महत्वपूर्ण नीतिगत फैसले के संदर्भ में ओबीसी आयोग को संवैधानिक दर्जा देने की बात कही और कहां की संवैधानिक दर्जा दे कर पिछड़ों और अति पिछड़ों के हकों की रक्षा करने का प्रयास किया गया।

भारत की पहचान red tape की जगह बदलकर आज red carpet और ease of doing business के रूप में भारत की पहचान को बनाने की बात कही, भारत की छवि कुछ समय से policy paralysis, यानी delayed reform हो गई थी, लेकिन 2014 के बाद से दुनिया में एक ही बात आ रही है कि नीतियों के संदर्भ में भारत यानी reform, perform और transform इमेज सरकार के द्वारा बनाई जा रही है

प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत की Fragile five में गिनती हो रही थी। लेकिन आज दुनिया भारत के संदर्भ में कहे रही है कि भारत multi trillion dollar के investment का destination बन गया है। सोया हुआ हाथी अब जग चुका है, चल पड़ा है, सोए हुए हाथी ने अपनी दौड़ शुरू कर दी है। दुनिया के अर्थवेत्ता कह रहे है अंतरराष्ट्रीय संस्थान कह रहे हैं, आने वाले तीन दशक तक, विश्व की अर्थव्यवस्था की ताकत को भारत गति देने वाला है।

नॉर्थ-ईस्ट के संदर्भ में प्रधानमंत्री ने विशेष तौर पर कहा कि आज खेल के मैदान मे नॉर्थ-ईस्ट की दमक नजर आ रही है। नॉर्थ ईस्ट के आखिरी गांव में बिजली पहुंच गई है , रेलवे, चौड़ी सड़कें, हवाई यात्रा, वाटर वे, तकनीकी इंटरनेट के विकास की खबरें आ रही है और नौजवान वहां BPO खोल रहे हैं। आज नॉर्थ ईस्ट organic farming ऑर्गेनिक फार्मिंग का केंद्र बना रहा है, देश की स्पोर्ट्स यूनिवर्सिटी की मेजबानी नॉर्थ ईस्ट कर रहा है।[23]

नई योजनाओं की प्रगति के संदर्भ में जानकारी देते हुए कहा कि 13 करोड़ लोगों को मुद्रा लोन दिया गया है। उसमें 4 करोड़ नौजवान हैं, जिन्होंने ज़िंदगी में पहली बार कहीं से लोन लिया है।[24]

हिन्दुस्तान के तीन लाख गावों में कॉमन सर्विस सेंटर देश के युवा चला रहे हैं, गांववासी इन सेंटरों के माध्यम से देश और दुनिया की सभी सुविधाएं ऑनलाइन माध्यम से ले सकते हैं।

एक नया सेटेलाइट 'नाविक' को लॉन्च करने की योजना है जिससे इससे देश के मछुआरों को, देश के सामान्य नागरिकों को नाविक के द्वारा दिशा दर्शन का लाभ मिलेगा।[25]

भाषण में कहा कि 2022 तक अंतरिक्ष में मानव सहित गगनयान लेकर के चलेगें, जब ये गगनयान अंतरिक्ष में जाएगा, तो भारत मानव को अंतरिक्ष में पहुंचाने वाले विश्व के चौथे देश बन जाएंगे।

स्वास्थ्य क्षेत्र में बड़ी योजना आयुष्मान भारत योजना में 10 करोड़ परिवारों को, यानी करीब-करीब 50 करोड़ नागरिक, हर परिवार को 5 लाख रुपया सालाना, health assurance देने

की योजना है। 25 सितंबर, 2018 को प्रधानमंत्री जनआरोग्य अभियान लॉन्च होगा और इसका लाभ देश के गरीब व्यक्ति को अब बीमारी के संकट से जूझना नहीं पड़ेगा।[26]

डायरेक्ट टैक्स के विस्तार के संदर्भ में कहा कि देश में 2013 में डायरेक्ट टैक्स देने वाले 4 करोड़ लोग थे। लेकिन सरकारी प्रयासों से आज यह संख्या करीब–करीब दो गुना हो करके पौने सात करोड़ हो गई है।[27]

अप्रत्यक्ष कर में GST आने के बाद पिछले एक वर्ष में 70 लाख का आंकड़ा एक करोड़ 16 लाख पर पहुंच गया है।

राजनीतिक घोषणाओं में ने कहा कि सुरक्षाबलों के प्रयासों, राज्य सरकारों की सक्रियता से आज कई वर्षों के बाद त्रिपुरा और मेघालय- दो राज्य पूरी तरह armed forces special power act से मुक्त हो गए हैं।[28]

भाषण के अंत में प्रधानमंत्री ने अपनी भविष्य की योजनाओं और लक्ष्य को संबोधित करते हुए कहा कि हर भारतीय के पास अपना घर हो - housing for all. हर घर के पास बिजली कनेक्शन हो - Power for all. हर भारतीय को धुंए से मुक्ति मिले रसोई में, और इसलिए cooking gas for all. हर भारतीय को जरूरत के मुताबिक जल मिले और इसलिए water for all. हर भारतीय को शौचालय मिले और इसलिए sanitation for all, हर भारतीय को कुशलता मिले और इसलिये skill for all, हर भारतीय को अच्छी और सस्ती स्वास्थ्य सेवाएं मिले, इसलिये health for all, हर भारतीय को सुरक्षा मिले, सुरक्षा का बीमा सुरक्षा कवच मिले और इसलिए insurance for all, हर भारतीय को इंटरनेट की सेवा मिलें और इसलिए connectivity for all, इस मंत्र को ले करके हम देश को आगे बढ़ाना चाहते है।[29]

REFERENCE

1. प्रधानमंत्री ने 68वें स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित किया
   15 अगस्त 2014
   https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=108819
2. ibid
3. ibid
4. ibid
5. 69वें स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र के नाम प्रधानमंत्री के संबोधन का अंग्रेजी में अनुवाद
   15 अगस्त 2015
   https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=126094
6. ibid
7. ibid
8. ibid
9. ibid
10. 15 अगस्त 2016, पीएम मोदी का तीसरा भाषण- योजनाओं का ब्योरा और काम का लेखा-जोखा
    https://www.amarujala.com/india-news/pm-modi-s-third-speech
    15 अगस्त 2016, पीएम मोदी का तीसरा भाषण pib.gov.in
11. ibid
12. ibid
13. ibid
14. ibid
15. ibid
16. 71वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले के प्राचीर से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के भाषण की मुख्य बातें
    Posted On: 15 AUG 2017 12:54PM by PIB Delhi
    https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1499743&RegID=3& LID=2
17. ibid
18. ibid
19. ibid
20. ibid
21. ibid
22. ibid
23. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1543104&R egID=3&LID=2
    प्रधानमंत्री ने 72वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले के प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित किया
    Posted On: 15 AUG 2018 1:02PM by PIB Delhi
24. ibid
25. ibid
26. ibid
27. ibid
28. ibid
29. ibid

ISSN 2278 - 0327

वैदिक वाङ् मय में नारी का स्वरूप

मधुस्मिता डेका
शोधच्छात्रा
वेद विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अनवरत चिन्तन की अक्षयधारा के अजस्र स्रोत वेद भारतीय मनीषा एवं वैदुष्य के प्रकाश्यमान ग्रन्थ है। मानव जगत को ज्ञान की देन देने वाली विज्ञाननिधि वेद जो केवल सर्वप्रथम ही नहीं यावन्मात्र साहित्य के मूल भी है, उनमें नारी का महत्व विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है। नारी–विमर्श, नारी–संचेतना, नारी शक्ति, नारी–वाद वर्तमान प्रगति युग के नारी विषयक जागृति के उद्घोषक विचार है, किन्तु यह विचार मात्रा आधुनिक नहीं अपितु वैदिक नारी विषयक विचार क्रान्ति से अभिप्रेरित है। वैदिक साहित्य का अनुशीलन करने से नारी स्वरूप पता चलता है।

नारी शब्द '**नृ**' अथवा '**नर**' शब्द से आया है। ऋग्वेद में 'नृ' शब्द का प्रयोग वीरत्व, दान देना और नेतृत्व लेने के अर्थ में हुआ है। ऋग्वेद में 'यज्ञ' के अर्थ में '**नार्य:**' शब्द का प्रयोग हुआ है। नृ–अच्–ङीप्–नारी, नर + ङीष्–नारी। महर्षि पतंजलि ने दोनों व्युत्पत्ति को सही माना है– *नृर्धर्म्यान्नारी नरस्यापि नारी*। यास्क ने नर शब्द को नृत्–नाचना धतु से बनाया है– '*नारा: मनुष्या: नृत्यन्ति कर्मसु*।' ब्राह्मणों में कहीं–कहीं नारि पाठ मिलता है। सायण के मत में नारी का भाव नरों का उपकारक अथवा शत्रु न होना है।

वैदिक वाङ्मय में नारी का महनीय स्थान विद्यमान है। उसे एक महान शक्ति कहा गया है। उसके विना समाज का अस्तित्व, विकास उत्थान तथा कल्याण सम्भव नहीं है यह अत्युक्ति न होगी। वेदों में नारी देवी विदुषी, दुहिता, पत्नी, जननी, अध्यापिका, उपदेशिका आदि अनेक रूपों में वर्णित है।

नारी का सवप्रर्थम रूप है जब वह नवजात पुत्री के रूप में भूमिष्ठ होती है। ऐतरेयब्राह्मण में उद्धरण है कि "*सखा ह जाया कृपण हि दुहिता*"। एक ही वस्तु के दो पहलुओं के समान कन्या भी समाज के एक पक्ष द्वारा स्वीकृत थी और दूसरे पक्ष द्वारा उसे हेय दृष्टि से देखा गया, अवांछित वस्तु के रूप में स्वीकारा गया। इस स्थल पर परस्पर दो विरोधी विचारधाराएँ प्रतीत होती हैं। यथा पत्नी तो पुरुष के लिए परम मित्र के समान है किन्तु उन्हीं दोनों का अंश पुत्री दु:ख का हेतु बन गई है। यदि पुत्री नहीं होगी तो पत्नी का स्थान कौन ग्रहण करेगा? परन्तु आदर्श घरों में वह माता–पिता के पुत्रानिर्विशेष वात्सल्य को प्राप्त करती है भाई बहनों के साथ प्रेम पूर्वक सम्भाषण और व्यवहार का वर्णन अथर्ववेद में पाया जाता है "*मा भ्राता भातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा*"[1] आजन्म अविवाहित रहने वाली कन्या पिता के धन में हिस्सा पाती थी–

"*अमाजूरिव पित्रो: सचा सती*" [2]

वैदिक संस्कृति में गृहस्थ जीवन को एक यज्ञ का स्वरूप दिया गया है और इस यज्ञ में स्त्री अर्धांगिनी के रूप में पुरुष को सहयोग प्रदान करती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विवेचित कर्मकाण्डीय विवरणों में स्पष्ट रूपेण उपलक्षित है कि विवाह का प्रथम उद्देश्य याज्ञिक कृत्यों के सम्पादन की पूर्णता है जो पत्नी के रहने पर ही सम्भव है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में "*अयज्ञो वा एषयोऽपत्नीक:*"[3] कहकर बताया गया है कि विना पत्नी के पुरुष को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है क्योंकि सभी याज्ञिक कृत्यों में पत्नी की उपस्थिति अपेक्षित है। *पत्युर्नो यज्ञ संयोगे*[4] इस पाणिनीय प्रयोग से भी यह विदित होता है कि यज्ञ में साथ बैठनें वाली स्त्री को ही पत्नी कहा गया है। शतपथब्राह्मण में जहाँ पत्नी की प्रतिष्ठा का आधार गृह है, वहीं पत्नी से गृह की प्रतिष्ठा होती है। अभिप्राय यह है कि प्रतिष्ठा का आधार होने के कारण ही नारी पत्नी कही गई है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्मकाण्ड प्रधान होने के कारण पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति में नारी के रूप इतने अधिक स्पष्ट नहीं हो पाते है, जितने अधिक याज्ञिक कृत्यों की पूर्ति में। इसी कारणवश समग्र ब्राह्मण साहित्य में नारी के अन्य रूपों की अपेक्षा पत्नी रूप गुरवर होकर अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया था।

वधू के रूप में नारी गृह की साम्राज्ञी है–

'' साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवा भव।
ननान्द्ररि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधिदेवृतु।।'' [5]

पुत्रवधू रूप में तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस प्रकार की उपमा दी गई कि-यजमान के शत्रु उसी प्रकार उनकी बात मानेंगे, जिस प्रकार स्नुषा श्वसुर की आज्ञा मानती है-

'' अस्य स्नुषा श्वसुरस्य प्रशिष्टिम्'' [6]

वर कन्या को वधूरूप में ग्रहण करते समय उसका हाथ पकड़कर कहता था-

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदिष्टर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्ध्रिर्मह्यं त्वादुगार्हपत्याय देवाः।। [7]

अर्थात् कल्याणी, मैं तुम्हारे और अपने सौभाग्य के लिये तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। तुम मुझ पति के साथ वृद्धावस्था तक रहो। भग, अर्यमा, सविता पुरन्ध्रि आदि देवताओं ने धर्म की रक्षा के लिए मुझे तुमको दिया है। इस प्रकार ऋग्वेद के दशम मणडल में गृहस्थ सम्बन्ध अनेकों मन्त्र हैं जिनमें पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया गया है-

'' दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्।
शं नो भव द्वि पदे शं चतुष्पदे।।''

नारी का चतुर्थ रूप 'मातृ' रूप है। नारी का मातृरूप सर्वदा निन्दा से मुक्त रहा है। इस रूप में नारी का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार मिलता है-

महान्तं त्वा महीतां सम्राजं चर्षणीनाम्।
देवी जनित्रयजीजनद् भद्रा जनित्रयजीजनत्।। [8]

यह माता शब्द के पर्यायवाची 'जननी' शब्द की व्याख्या करने हुये। कहा गया है कि नारी का जाया रूप पुनः पुत्रा को जन्म देने के कारण 'जननी' शब्द से अभिहित है। 'नारी' मातृ देवता है। भगवती श्रुति का उपदेश है 'मातृदेवो भव'। वैदिक ऋषि का मन्त्र है कि-पवित्रा एवं पूज्य माता ने हमे जन्म दिया है। माता की शक्ति महान है। उसे मैं प्रार्थना से प्रसन्न करता हूँ-

' मातुर्महि स्वत वस्तद् हवीमभिः' [9]

अथर्ववेद में वर्णन आता है कि माता दक्षिण आदि धर्मकृत्य करती है - *'' युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणायाः''* माता का स्थान वस्तुतः स्वर्ग से भी ऊँचा है। शास्त्रीय दृष्टि में यह मातृत्व नारी के प्रति दयामयी जगन्माता का प्रसाद है, जिनका रूप कहलाने का गौरव सारे नारी समाज को प्राप्त हुआ है।

कौमारकाल नारी की साधनावस्था है और उत्तरकाल उस जीवन की सिद्धावस्था है। हमारी संस्कृति के उपासकों ने नारी के तीन रूपों (कन्यारूप, भार्यारूप, मातृरूप) का चित्रण बड़ी ही सुन्दरता से किया हैं। पाश्चात्यविद्वान् मैटरलिंक का विचार है- All mother are rich when they love their children, there are no poor mother, no ugly ones, no old ones.

ऋग्वेद के अनुशीलन से जाना जाता है कि आर्यों में स्त्री शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थी और काव्य रचना भी करती थी। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों का आविष्कार स्त्रियों द्वारा हुआ था यज्ञ-कार्य में भी स्त्रियों की विशेष महत्व थी-

शुद्धः पूता योषतो यज्ञिया इमाः। [10]
वेधा ऋतस्य वारिणीन्दपत्नी गहीयते।। [11]

ऋग्वेद में उन महिमामयी नारियों की चर्चा है जिनका मन्त्र-दृष्टा ऋषिकाओं के रूप में अथवा देवियों के रूप में स्तवन किया गया है। जैसे धन की देवी लक्ष्मी, शक्ति की दुर्गा और विद्या की सरस्वती वैसे ही अदिति, उषा, इन्द्राणि, इला, भारती, होला, श्रद्धा, पृश्नि आदि देवियाँ अनेक तत्त्वों की अधिष्ठात्री हैं। इन्हें कहीं देवमाता और कहीं देवकन्या बताया है। उषा ज्ञान देने वाली है और सारे विश्व को प्रकाशित करती है-

'' चित्रां केतुं कृणुते चेकिताना'' [12]
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती।। [13]

संहिताकालीन नारी यज्ञ, प्रशासन, युद्ध, न्याय, दौत्य आदि सभी कार्यों को सुसम्पादित करने में सक्षम अधिकारिणी थी। इसके अतिरिक्त ज्ञान के विविध स्रोतों में भी उसकी पैठ थी, जिसके कारण वह राष्ट्र के श्रेय एवं प्रेय में अपने नर की सहयोगी बनकर उसके कंधे से कंधा मिलाकर भाग लेती थी। यही कारण है कि संहिताकालीन पुरुष नारी को 'कुलपा' (कुल का पालन करने वाली) 'ध्रुवा' है (दृढ़ संकल्प वाली), 'पुरन्ध्रि' (समाज की नेत्री), 'प्रतरणी' (जीवन की पतवार), 'शिवा' (कल्याणकारिणी), सुमंगली (मंगलकारिणी) आदि विशेषणों से संबोधित कर उसकी श्रेष्ठता, ज्येष्ठता को स्वीकार करता था।

वस्तुतः वैदिक संस्कृति में नारी की मुख्य भूमिका रही है किन्तु यह मुख्य भूमिका युग के अनुसार परिवर्तित होती है। भारत में मध्ययुग में पतनोन्मुख-प्रवृत्तियों का प्रादुभवि बढ़ने लगा और नारियों का मर्यादा क्षुर्ण हुई। यह हमारे देश, जाति का दुर्भाग्य रहा है कि उत्तरोत्तर नारी के अधिकारों में ह्रास आता गया और आज पूरा समाज इस दीन-हीनावस्था में पहुँच गया है। पहचान करने पर भी विश्वास नहीं होता है कि क्या यह देश उन मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों, यज्ञ-कर्त्रियों का जन्मस्थान है, जहाँ कभी तेजस्विता की साक्षात्मूर्ति महर्षि अत्रि की पुत्री 'अपाला', वैदिक मन्त्रों का घोष

करने वाली 'घोषा' कर्मकाण्ड- प्रवर्तिका 'जुहू' दानदात्री 'दक्षिणा', बुद्धि उपासिका रामेशा, ब्रह्मवादिनी 'लोपामुद्रा' अद्वैतवादिनी 'वागाम्भृणी' आदि ऋषिकायें उत्पन्न हुई थीं। वैदिक नारियों के वेदकालीन उदार विचार समाज के उन्नायक थे, जो आज भी अनुकरणीय है।

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1- ऋग्वेद संहिता, सायणभाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे, 1972.

2- अथर्ववेद का सुबोधभाष्य, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, 1985.

3- अथर्ववेद संहिता, (हिन्दी अनुवाद), हरिशरण सिद्धान्त अलंकार, भगवती प्रकाशन, माडल टाउन, नई दिल्ली, 1994.

4- निरुक्तम् दुर्गावृत्ति, आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पुणे, 1918.

5- वैदिक अनुशीलन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1989.

सन्दर्भसूची -

1. अथर्ववेद 3/30/3.
2. ऋग्वेद, 2/18/7.
3. तै. ब्रा. 2.2.2.6
4. पाणिनीय अष्टाध्यायी 8.2.2.3
5. ऋग्वेद 10/85/46
6. तै. ब्रा. 2.7.6.12
7. ऋग्वेद, 20.8.5.36
8. ऐ.ब्रा. 8/36/3.
9. ऋग्वेद 1/15/9/2
10. अथर्ववेद 11/1/17
11. अथर्ववेद 0/126/10
12. ऋग्वेद 1/113/15
13. ऋग्वेद 1/92/4

ISSN 2278 - 0327

वैदिकसाहित्य में सैन्य संगठन का स्वरूप

डॉ. मुनेश देवी
शोध निर्देशिका
विभाग: संस्कृत
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

सीमा
शोध छात्रा
विभाग: संस्कृत
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

सारांश:

संगठन मानव-जीवन का मूल है और इसी का फल समाज है। मानव बिना संगठन के जीवन की गुत्थियों का निदान नहीं कर सकता। युद्ध भी मानव-जीवन की महत्वपूर्ण गुत्थी है। जिसे बिना सुसंगठित सेना के सुलझाना असंभव है। सेना के विभिन्न अंग अपने आप में पूर्ण होते हैं और उनका कार्य भी एक-दूसरे से भिन्न होता है। परन्तु वे एक-दूसरे के साथ संगठित होकर ही युद्ध क्षेत्र में सफलता पा सकते हैं। यौद्धिक सफलता प्रधानता प्रशिक्षित एवं सुसंगठित सांग्रामिक सेना की कार्य-कुशलता पर ही निर्भर होती है।

मुख्य शब्द: - उपद्रव, समिति, क्षेत्रिय, अश्वारोही

प्रस्तावना:

सेना की शक्ति से ही राजा साम्राज्य का विस्तार करता हुआ देश को बाहरी और भीतरी शत्रुओं से सुरक्षित रख सकता है। इसलिए राजा को सेना की शक्ति को बढ़ाने के लिए उसका संगठन करना आवश्यक था। अत: राजा के लिए सैन्य-संगठन का कार्य चुनौतीपूर्ण था।

वैदिकसाहित्य:

किसी भी देश अथवा राष्ट्र की रक्षा सर्वोपरि होती है। एतदर्थ सेना की आवश्यकता होती है। सेना राष्ट्र की आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के शत्रुओं से रक्षा करती है। ये उभयविध शत्रु सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक शक्ति एवं आर्थिक विकास में व्यवधान उपस्थित करते रहते हैं। जब आन्तरिक उपद्रवों की अत्यधिक अभिवृद्धि हो जाती है अथवा निकटवर्ती शत्रुओं द्वारा उत्पन्न समस्याएं विकराल रूप धारण कर लेती हैं, उस समय युद्ध आरम्भ हो जाता है। वेद में पुत्र, पौत्र, गौ, जल तथा उर्वरा भूमि को युद्ध का कारण बतलाया गया है।[1]

इसी कारण सेना के संगठन की, उसको अस्त्र-शस्त्र से सम्पन्न बनाने की तथा उसको पूर्ण रूप से सन्तुष्ट रखने की व्यवस्था की गयी थी। ऋग्वेद में सेना को धन कहा गया है। ''*वाजिनी वसू*''[2]। सेना के महत्व को दुष्टि में रखते हुए वेद में सैनिकों के प्रति सम्मान एवं सत्कार की भावाभिव्यक्ति के लिये उन्हें नमन किया गया है।[3]

सेना का गठन:

वैदिक वीर शत्रु से युद्ध करने के लिये सेना को संगठित किया करते थे। वैदिक वीरों के स्वरूप आश्चर्यजनक तथा दर्शनीय थे। कभी ये नेता के रूप में संसार को धारण करने का कार्य करते थे, तो कभी पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो जाया करते थे।[4] ये वीर युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय सात-सात की पंक्ति में चला करते थे।[5] सेना के संचालन के लिये सेना को विभागों में विभक्त किया जाता था। प्रत्येक विभाग का एक नेता नियुक्त किया जाता था। प्रत्येक नेता अपनी विभागीय रक्षा एवं क्षमता के आधार पर सेना का नेतृत्व किया करता था। युद्धकाल में भी अनुशासन बनाये रखने के लिये नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन किया जाता था।

अधिकारीगण:

सेना के संगठन एवं संचालन के लिये अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। वेद में भी सैन्य अधिकारियों का विवरण प्राप्त होता है। यद्यपि वेद में आधुनिक युग की भांति विभिन्न सैन्य अधिकारियों का विवरण तो प्राप्त नहीं होता किन्तु सैनिकों के अतिरिक्त कुछ प्रमुख पदों पर नियुक्त किये जाने वाले अधिकारियों के विषय में विवरण प्राप्त होता है।

राजा:

वेद कालीन समाज में राजा शासन व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी तथा कर्णधार माना जाता प्रजा की रक्षा करना उसका सर्वप्रमुख कर्त्तव्य था। राजा का पद वंश परम्परानुगत भी होता था तथा उसका चयन भी किया जाता था। समाज के प्रमुख व्यक्तियों

का समूह जिसे ''समिति'' के नाम से अभिहित किया जाता था, के द्वारा राजा का निर्वाचन किया जाता था। अथर्ववेद के अनुसार राजा का चयन भद्र, राजकत्ता सूत तथा ग्रामीण किया करते थे।[6]

जब राजा का चयन हो जाता था तब उसके लिये यह कामना की जाती थी कि वह तेजस्वी, प्रजापालक, समस्त प्रजा का प्रिय तथा प्रजा के द्वारा स्वीकार्य हो। समस्त प्रजा तथा अधिकारियों का उसे पूर्ण सहयोग प्राप्त हो।[7]

पुरोहितः

राजा के सहायकों में पुरोहित का स्थान सर्वोपरि था। वह राजा को उत्तम सलाह देकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग देता था। वेद में ''*वयं राष्ट्रे जागृयां पुरोहिता:*''[8] ''*हमारे राष्ट्र के पुरोहित सदैव प्रयत्नशील रहे*'' के द्वारा पुरोहित के लिये सैदव सतर्क, सचेत एवं प्रगति पथ पर अग्रसरित रहने की कामना की गयी है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिये तथा राजा को राजकार्य में सहायता प्रदान करने के लिये पुरोहित की नियुक्ति की जाती थी। वह राजा का गुरु, उपदेशक तथा शुभचिंतक होता था।

सेनापति:

पुरोहित के अतिरिक्त राजा का द्वितीय परामर्शदाता व सहायक सेनानी होता था। इसे सेनापति अथवा सेनाध्यक्ष के नाम से भी अभिहित किया जाता था। वेद में सेनापति को नमन किया गया है ''*पत्तीनां पतये नम:*''[9]। यद्यपि राजा युद्धकाल में सेना का संचालन स्वयं करता था, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर युद्ध के समय सेनापति से भी सहायता ली जाती थी। सेनापति का प्रमुख कार्य सैन्य संगठन तथा सेना को प्रशिक्षण प्रदान करना था।

योद्धाः

वेद में जाति तथा देश की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहने वाले, जननी तथा जन्म-भूमि के लिये अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले क्षत्रिय वीरों को सम्मान प्रदान किया गया है। हमारे राष्ट्र के क्षत्रिय बाण चलाने की विद्या में प्रवीण, शत्रुओं का अत्यन्त ताड़न करने वाले, महारथी, शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में कुशल, विविध युक्तियों एवं उपायों के द्वारा शत्रु को परास्त करने वाले तथा स्वयं विजयी हों।[10] सैनिकों के इसी महत्व के कारण चिरन्तन काल से उनके वीरतापूर्ण कार्यों के यशोगान की परम्परा रही है।

रथी:

रणभूमि में रथारूढ़ होकर युद्ध करने वाला योद्धा महारथी कहलाता है। वेद में ''*नमो रथिभ्यो*'' उत्तम रथ वालों को नमन किया गया है।[11] ऋग्वेद में इन्द्र को श्रेष्ठतम रथी कहा गया है।[12] इन्द्र अश्वों का ज्ञाता होने के कारण दौड़ने वाले अश्वों की सर्वप्रथम परीक्षा करता था।[13] वह महारथी की संज्ञा से विभूषित था।

सेना के प्रकारः

वेद में सेना के लिये ''त्र्यनीक:''।[14] अर्थात् तीन सेनाओं वाला से यह प्रतीत होता है कि उस समय सेना तीन प्रकार की थी, किन्तु स्पष्ट रूप से सेना के प्रकारों का वर्णन उपलब्ध नहीं होता है। विजय प्राप्ति के लिये इन्द्र ने दुन्दुभि की ध्वनि से घोर नाद करती हुई पताका युक्त अश्वारोही, पदाति, वीरों तथा रथ सेना के साथ युद्ध किया था।[15] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वैदिक आर्य तीन प्रकार की सेना से परिचित थे।

सैनिकों के कार्यों का विभाजनः

वेद कालीन सेना को नियमों में आबद्ध किया जाता था। स्वयं इन्द्र की सेना नियमाबद्ध थी।[16] सेना को सुचारू रूप से कार्य संचालन हेतु विविध प्रकार के विभागों में विभक्त किया जाता था। प्रत्येक विभाग अपने-अपने निर्धारित कार्यों का यथोचित पालन किया करता था। प्रत्येक विभाग में सैनिकों के कार्य का विभाजन उनकी दक्षता एवं क्षमता के आधार पर किया जाता था। वेद में इक्कीस प्रकार के उत्तम तथा आनन्द प्रदाता वीरों का वर्णन उपलब्ध होता है।[17] सैनिकों का कार्यक्षेत्र पर्याप्त विस्तृत था तथा इसका विभाजन सैनिकों के पदों के आधार पर निर्धारित किया जाता था।

अस्त्र-शस्त्रः

सेना जहाँ राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करती है, वहीं सैनिकों की सुरक्षा के लिये अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किया जाता है। वेद में सैनिकों के लिये कामना की गयी है''*स्थिरा: व: सन्त्वायुधा:*।''[18] सेना को सुदृढ़ बनाने के लिये तथा सैनिकों में सुरक्षा तथा आत्मविश्वास की भावना भरने के लिये अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया जाता था। वेदों में धनुष, वज्र, पाश, शक्ति, परशु, गदा, वाशी (कुठार), ऋष्टि (भाला), निषङ्ग (तलवार), अश्मा (पत्थर), रम्भिणी (लाठी), कृत्या, स्फोटक अस्त्र, चक्र, मणि, विद्युत् प्रयोग, आग्नेयास्त्र, धूमास्त्र आदि अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन प्राप्त होता है।

गुप्तचर व्यवस्थाः

समुचित राज्य व्यवस्था स्थापित करने के लिये वैदिक काल में गुप्तचरों की नियुक्ति की जाती थी। वेद में इन्हें अग्निनेत्र की संज्ञा दी गयी है।[19] इस प्रकार के अग्निनेत्र स्वरूप विद्वानों को सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था। इनसे अपेक्षा की जाती थी, कि वे अग्नि के सदृश गणों से सम्पन्न हों। जिस प्रकार अग्नि अन्धकार का विनाश करके प्रकाश के संचरण द्वारा वस्तु स्थिति का दर्शन

करती है, उसी प्रकार गुप्तचर अपनी तेजस्विनी तथा प्रखर दृष्टि द्वारा तथा बद्धि भेद से आन्तरिक तत्त्वों का पता लगाकर वस्तुस्थिति को राष्ट्र के हित के लिये प्रस्तुत करते हैं।

ऋग्वेद में अग्नि से कामना की गई है कि वह अपने वेगवान् गुप्तचरों को चारों और प्रेरित करते।[20] गुप्तचरों को अन्धकार के भेदक सूर्य के समान नेत्र स्वरूप बतलाया गया है।[21] ऋग्वेद के यम-यमी संवाद में यम-यमी को बतलाता है कि देवों के गुप्तचर दिन एवं रात्रि पर्यन्त संचरण किया करते हैं। वे रुकते नहीं हैं तथा नेत्र भी बन्द नहीं करते हैं।[22] इस प्रकार वेदकालीन गुप्तचर सजगतापूर्वक अपने कर्त्तव्य को निष्ठापूर्वक एवं अपने दायित्व के प्रति समर्पित भावना से कार्य किया करते थे। ऐसे ही गुणी एवं कर्त्तव्यपरायण गुप्तचरों द्वारा राष्ट्र सुरक्षित होता है।

कर्त्तव्यनिष्ठा पर पुरस्कारः

वेद में जहाँ शूरवीरों को स्वकर्त्तव्य पालन के लिये प्रेरित किया जाता था, वहीं विजय प्राप्ति के उपरान्त जो धन, सम्पत्ति आदि प्राप्त होती थी, उसे उपहार स्वरूप सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिये प्रदान किया जाता था। यशस्वी वीरों को विपुल धन से सम्मानित किया जाता था।[23] जातवेद वैश्वानर ने युद्ध से प्राप्त धन देवताओं को प्रदान किया था।[24] इन्द्र ने शत्रु के पांच सैनिक का विध्वंस करने पर विजयोपरान्त अनुयायी दिवोदास को शत्रु के सौ किलों वाले नगरों को प्रदान किया था।[25]

कर्त्तव्य अवहेलना पर दिया जाने वाला दण्डः

वेद में आदर्श समाज एवं अखण्ड राष्ट्र की कामना की गई है। इसके लिये अपने कर्त्तव्य पालन एवं दायित्व बोध हेतु विविध प्रकार से प्रेरित किया गया है तथा विजय प्राप्ति की कामना की गयी है, किन्तु कर्त्तव्य अवहेलना का वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। सम्भवतया वेद में शत्रु के प्रति उग्रतम व्यवहार द्वारा राष्ट्रवासियों को इस तथ्य से अवगत कराया जाता हो, कि राष्ट्र की सुरक्षा एवं व्यवस्था को विखण्डित करने वाला प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का शत्रु है। ऐसे व्यक्ति को विनष्ट करने की कामना की गई है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से सैनिकों को दण्डित करने का वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस समय अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने वाले सैनिक ही नहीं थे।

उपसंहारः

उपर्युक्त विवरणों के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वेद-कालिक सैन्य संगठन सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित था तथा राष्ट्र की रक्षा आर्यों का सर्वोपरि लक्ष्य था। युद्ध के लिये सेना के महत्व को दृष्टि में रखते हुए तथा सेना को सुसंगठित एवं अनुशासित रखने के लिये सैन्य अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। राजा का पद सर्वोच्च होता था। राजा को सहायता प्रदान करने के लिये पुरोहित, सेनापति आदि की नियुक्ति की जाती थी। समुचित सैन्य व्यवस्था के लिये सेना को विभिन्न प्रकार के विभागों में विभक्त किया जाता था। सैनिकों के उत्साहवर्धन के लिये उनके वीरतापूर्ण कार्यों की सराहना की जाती थी तथा उन्हें पुरस्कृत किया जाता था।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. लोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते। ऋग्वेद 6/25/4
2. ऋ. 5/74/7
3. नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतोतऽइषवे नमः बाहुभ्यामुत ते नमः। यजु. 16/1
4. अधानरो न्योहतेऽधां नियुत ओहते। अधापरावता इति चित्रा रुपाणिदश्या।। ऋ. 5/52/11
5. सप्त में सप्त शाकिन। ऋ. 5/52/17
6. ये राजानो राजकृतरू सूता ग्रामण्यश्च ये। उपस्तीन्पर्णमह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान्।। अथर्व. 3/5/7
7. अथर्ववेद 3/4/1-3
8. यजुर्वेद 9/23
9. यजुर्वेद 16/19
10. आ राष्ट्रे राजन्यरू शूरऽइषव्योइतिव्याधी महारथो जायताम्। यजु. 22/22
11. यजुर्वेद 16/26
12. ऋग्वेद 1/11/1
13. उग्रं युयुज्यपृतनासु सासहि-मृणकातिमदाभ्यम्। वेदा भृमं चित् सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदूनशत्। ऋ. 8 / 61/12
14. ऋ. 3/56/3
15. आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु। ऋ.6/47/31
16. द्रूहो निषत्तापृशनी। ऋ. 10/73 /2
17. त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः। अथर्व. 13/1/3
18. ऋ. 1/39/2
19. ये देवाऽअग्नि नेत्रारू पुरः सदस्तेभ्यरू। यजु. 9/36
20. प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो। ऋ. 4/4/3
21. सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने। ऋ. 5/59/3
22. न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति। ऋ.10/10/8
23. धर्मस्तुभेदिव आ पृष्ठयज्वने द्युमनश्रवसे महि नृम्णमर्चत। ऋ. 5/54/1
24. दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्रिरिचे महित्वम्। राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युध देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ। ऋ. 1/59/5
25. शतमश्मन्यीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् दिवोदासादाशुषे। ऋ. 4/30/20

ISSN 2278 - 0327

रामचरित मानस में मानव मूल्य

डॉ. मनोज उपर्ति
शोध निर्देशिक:
विभाग- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

सुदेश कुमारी
शोध छात्रा
विभाग- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

भूमिका:

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के विराट व्यक्तित्व में अद्भुत काव्य प्रतिभा और लोक संगठन की अनूठी शक्ति एक साथ विकसित हुई है। तुलसी शास्त्र पारंगत मनीषी थे जिन्होंने वेद-वेदांगों का अध्ययन किया था। वे भारत की समस्त काव्य-साधना और तत्वचिन्तन के ज्ञाता थे। उन्हें अच्छी बुरी कविता की पहचान थी। उन्होंने रामचरितमानस में अपने काव्य सिंद्धान्तों एवं काव्य दृष्टि को कई स्थानों पर स्पष्ट किया है। रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही उन्होंने जहाँ राम कथा लेखन की बात कही है, वहीं काव्य तत्वों का उल्लेख करते हुये कहते हैं-

आखर अरथ अलंकृति नाना। छनद प्रबन्ध अनेक विधाना।।
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोस गुन विविध प्रकारा।।
अरथ अनूप सुभाव सुपासा। सोइ पराग मकरन्द सुवाता।।
धुनि अविरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाती।।[1]

प्रेरक पांडित्य से सम्पन्न होकर भी वे लोक-चेतना के अप्रतिम पारखी थे। उन्होंने स्वयं को भारतीय जनमानस से इस भांति साधारणीकृत कर लिया था कि आज का जनमानस भी अपने आप को उनके मानवीय मूल्यों से एकीकृत करने में गौरवान्वित अनुभव करता है। इस दृष्टि से तुलसी आज भी प्रासंगिक हैं।

वर्तमान समय में जहां भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों का लगातार अवमूल्यन हो रहा है। ऐसे नाजुक दौर से तुलसी जैसे जनवादी कवि को स्मरण करना स्वाभाविक भी है और जरूरी भी है। आज जब हर चीज बिकने को तैयार है और हर व्यक्ति सामने वाले व्यक्ति को सीढ़ी बनाकर सफलता की मंजिल को छू लेने के लिए घात लगाए बैठा है तो ऐसे संकटपूर्ण समय में तुलसी का मानस पवित्र पावनी माँ गंगा की तरह हर प्रकार के दोषों को धोकर शुद्ध भावों का संचार करने वाला सर्जन है। रामचरितमानस के गहन अन्वेषण से जो तथ्य उभर कर सामने आता है उसके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास किसी भी मत या संप्रादाय के विधिवत् अनुयायी नहीं थे। उनकी साधना सांप्रदायिकता से मुक्ति चाहती थी। वे राम के अनन्य भक्त थे। यह भी सत्य हैं कि तुलसीदास रामानन्द संप्रादय से विशेष प्रभावित थे। उन्होंने निर्गुण धारा के मानव मूल्यों को तो ग्रहण किया।

किन्तु असंयत वर्णाश्रम और धर्म विरोधी नीति को ग्रहण नहीं किया। मनाव मूल्यों के संरक्षण और उत्कर्ष पर उनकी गहरी दृष्टि थी। उनकी यह स्पष्ट मान्यता थी कि अपमानित तथा शोषित व्यक्ति में भावुकता वृद्धि से क्रोध का जन्म होता है, किन्तु यह विकृति जब भक्ति का सहारा पाती है, तो संस्कृति का स्वरूप विकसित होता है। उनका मानना है कि दु:ख से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और बुद्धि का परिष्कार होता है, विकार पीड़ा की गुहार ही आत्म संस्कार का द्वार खोलती है। यह भी सत्य है कि विकृति के प्रति होने वाली विरक्ति के अनुरूप मनोहरी संस्कृति का उदय होता है।

उद्देश्य: इस शोध पत्र का उद्देश्य तुलसी दास द्वारा कृत रामचरित मानव में मानव मुल्य को जानना है।

संकेत शब्द: मानवतावादी, साम्प्रदायिकता, विषमताग्रस्त, परिकल्पना, आक्क्षमिक

मानवतावादी तुलसी ऊँच-नीच, जाति-पाति और सांप्रदायिकता का पुरजोर विरोध करते हैं। तुलसी का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था किन्तु काशी में उन्हें पंड़ितों का जबदस्त विरोध सहना पड़ा था। तुलसी राम भक्ति के आधार पर समाज को वादमुक्त करना चाहते थे। शास्त्रियता को उन्होंने लोकग्राह्य बनाया। शाखा में काव्य रचना करके वे लोक में प्रिय होते हैं और शास्त्रीय मर्यादा का निर्वाह करके विद्वानों में। विषमताग्रस्त कलिकाल तुलसी का युग है, जिसमें वे दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित सर्वसुखद रामराज्य का स्वप्न बुनते हैं-

'*सब नर करहिं परस्पर प्रीति, चलहिं स्वधर्म निरति श्रुति नीति*'।[2]

तुलसी के राम मंगल भवन अमंगल हारी हैं। उनके काव्य की प्रस्तावना ही लोक मंगल से हुई है।

'वर्णानामार्थ संघानां रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।।[3]

रामचरित मानस की इस पंक्ति (ढ़ोल गंवार शूद्र, पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी) को लेकर यह आक्षेप लगाया जाता है कि वे नारी तथा दलितों के प्रति सामंतवादी मानविसकता को व्यक्त करते है, जो कि सही नहीं है। क्योंकि तुलसीदास जैसा इतना बड़ा जनवादी तथा मानवतावादी कवि स्त्रियों और दलितों के प्रति ऐसी धारणा व्यक्त कर ही नहीं सकता। ऐसा प्राय: 'ताड़न' शब्द के अर्थ को ठीक तरह से न समझ पाने के कारण होता है ताड़न बिहारी भाषा के भोजपुरी बोली का शब्द है। जिसका अर्थ है- ताड़ना अर्थात् जानना या समझना। इस दृष्टि से विवेचित पंक्ति का अर्थ हुआ कि समाज में जो शोषित और कमजोर वर्ग है उनकी स्थिति को भी जानने और समझने की जरूरत है। अगर ऐसा नहीं होता तो तुलसी के राम शबरी के जूठे बेर कभी नहीं खाते और केवट की नाव में न बैठते और न ही उसे अपना चरण धोने देते। तुलसी ने राम के रूप में एक ऐसे आदर्श नायक की परिकल्पना की है जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की आदर्श एवं जीवंत प्रतिमा हैं। वे धर्म एवं नैतिकता के मानदंड हैं। उनमें त्याग विराग, लोकहित और मानवता का चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है। वे सर्व गुण सम्पन्न सर्वशक्तिमान एवं शीलवान जननायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। शक्ति, शील एवं सौंन्दर्य के भण्डार राम जन-जन के प्रिय पात्र हैं। वे मानवता के पोषक एवं उच्च आदर्शों के प्रतीक हैं। क्षत्रिय तेज से सम्पन्न राम लोक रक्षक एवं धर्म संस्थापक हैं। सीता के रूप में आदर्श पत्नी, भरत के रूप में आदर्श भाई, लक्षमण के रूप में आदर्श अनुज एवं हनुमान के रूप में आदर्श सेवक एवं नीति की जो परिकल्पना तुलसी ने प्रस्तुत की है वह 'बहुजन सुखाय एवं बहुजन हिताय' है।

अत: कहा जा सकता है कि तुलसी का मानस मानव जीवन का दर्पण ही नहीं दीपक भी है जो उसे संघन अंधेरे में भी जीने की राह दिखाता है। यही कारण है कि रामचरित मानस अपनी सहजता, सरलता एवं लोकप्रियता के कारण ही घर-घर में विराजमान है और उसकी मधुर पंक्तियों की गूंज भारत की गलियों में सुबह-शाम सुनी जा सकती है। जिस तरह लम्बी थकान के बाद माँ की गोद में सुख और शान्ति मिलती है उसी तरह गहरी पीड़ा में मानस की पंक्तियाँ विश्राम देती हैं।

चित्रकूट सभा राम और भरत के मिलन स्थल के रूप में तुलसी ने चित्रित किया है। जहां शील का शील से, स्नेह का स्नेह से और नीति का नीति से मिलन उत्त्कर्ष की दिव्य प्रभा प्रस्तुत करती है। भरत 'भायप भगति के बल पर राम को मनाने जाते हैं।' तुलसीदास लिखते हैं-

राम बासथल बिटप बिलोके,
उर अनुराग अनुराग रहत नहि रोके।।[4]

चित्रकूट की सभा में सारा समाज है, चरित्रों में नीति, विनय स्नेह, त्याग आदि के स्तर पर प्रतिस्पर्धा सी है। तुलसीदास लिखते हैं-

देखि करहिं सब दन्ड प्रणामा।
कहि जै जानकि जीवन रामा।।
प्रेम मगन अस राज समाजू।
जनु फिरि अवध चले रघुराजू।।[5]

कैकेयी की कठोरता आकस्मिक थी स्वभावगत नहीं। सीता जी सहित दोनों भाइयों को देखकर कैकेयी पछताने लगती है। गोस्वामी जी लिखते हैं-

लखि सिय सहित सरल दोऊ भाई।
कुटिल रानि पछितानि अघाई।।[6]

राजा और प्रजा, गुरु और शिष्य, भाई और भाई, माता और पुत्र, पिता और पुत्री, स्वसुर और जामात्र, सास और बहू, क्षत्रिय और ब्राह्मण और शूद्र, सभ्य और असभ्य के परस्पर व्यवहारों के उपस्थित प्रसंग के धर्मगांभीर्य और भावोत्कर्ष के कारण अत्यंत मनोहर रूप प्रस्फूटित हुआ। शुक्ल जी ने ठीक ही लिखा हैं- 'यदि भारतीय शिष्टता एवं सभ्यता का चित्र देखना हो तो इस राज समाज को देखिए।'[7] गोस्वामी जी लिखते हैं-

भरत विनय सादर सुनिअ करिअ विचारू बहोरि।
करब साधुमत लोकमत त्रिपमय निगम निचोरि।।[8]

रामचरितमानस समन्वय की विराट चेष्टा है। तुलसी ने अपने समय में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक आदि सभी क्षेत्रों में विषमता को दूर करने का अनूठा प्रयास किया है। शैव और वैष्णव का समन्वय करते हुए वे कहते हैं-

शिव दोही मम दास कहावा।
सो नर मोहि सपनेहु नहि भव।।[9]

इसी तरह निर्गुण और सगुण तथा ज्ञान और भक्ति का समन्वय करते हुए कहते हैं-

ज्ञानहि भगतहि नहि कछु भेदा।
उभय हरहि भव संभव खेदा।।

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई।। [10]

आज समाज में लोग एक दूसरे को सहयोगी नहीं बल्कि प्रतिद्वन्द्वता के कारण शत्रु के रूप में देखते है। जिससे हर व्यक्ति स्वयं को जीवन संग्राम में असहाय एवं अकेला खड़ा पाता है और अवसादग्रस्त होता जा रहा है। जबकि तुलसीदास कहते हैं कि हमें हर प्राणी के भीतर परमपिता परमात्मा के दर्शन करते हुए एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहिए। भक्ति की चरम सीमा पर पहुँच कर भी तुलसी ने लोकपक्ष को नहीं छोड़ा। आज राजा से रंक तक के घर में तुलसी का मानस सुशोभित हो रहा है। और प्रत्येक प्रसंग पर इनकी चौपाइयों के उदाहरण दिए जाते हैं।

सियाराममय सब जग जानी।
करौ प्रनाम जोरि जुग पानी।। [11]

ईश्वर में पुरी आस्था और मनुष्य का सम्मान है। तुलसी ने भक्त को भगवान से बड़ा बताया है।

मेरे प्रभु अस विश्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।। [12]

मध्यकालीन भक्ति में यह मानवतावाद की पराकाष्ठा है। इससे अधिक वह मानव प्रेम का प्रमाण और क्या दे सकते थे। इसी कारण उनकी भक्ति का महत्त्व सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। जीवन में सच्चे मित्र की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। वास्तव में मित्रता मन में उत्साह भरती है और अपनी मंजिल की ओर बढ़ने की शक्ति देती है। वर्तमान समय में व्याप्त लूत खसोट, लालच एवं स्वार्थपरता ने सभी संबंधों पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। इसीलिए सावधान करते हुए तुलसी कहते हैं–

जे न मित्र दुख होहिं दुखरी।
मिनहि बिलोकत पतक भारी।।
निज दुख गिरि सम रजकर जाना।
मित्रक दुख रज मेरु समाना।। [13]

भारतीय संस्कृति और आदर्श के महान उपासक तुलसीदास ने परोपकार में आत्मसंतोष की अनुपम उपलब्धि और सर्वजन हिताय का दिव्य भाव देखा है। मानव धर्म का पालन कर मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित करने के लिए वे कहते हैं–

परहिंत सरिस धर्म नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहि अधमाई।। [14]

समतामूलक समाज की स्थापना पर बल देते हुए तुलसी कहते हैं–

नहि दरिद्र कोऊ दु:खी न दीना।
नहि कोऊ अबुध न लछन हीना।। [15]

तुलसी ने विषमताग्रस्त मायावी संसार से मुक्ति पाने के लिए गुरु भक्ति का अनुपम मार्ग सुझाया। तुलसीदास लिखते हैं–

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिट दोष विभंजन।। [16]

अर्थात् गुरु कृपा रूपी मंजुल अंजल से मन के भीतरी द्वार खुल जाते हैं और जीवन का वास्तविक लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। संगति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक प्रक्रिया है तुलसी के मन में लोक कल्याण की अद्रूत भावना विद्यमान थी। इसीलिए उन्होंने सत्संगति के प्रति जन–मानस को आकर्षित करते हुए कहा हैं–

बिन सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।। [17]

गोस्वामी जी की भक्ति में व्यष्टि से समष्टि तक का परिष्कार है। वे राम भक्ति को भव सागर रूपी संसार से मुक्ति का साधन मानते हैं। तुलसी का अटूट विश्वास है कि ईश्वर भक्ति से सत्य पालन की शक्ति मिलती है। यह निर्विवाद तथ्य है कि सत्य पालन परम धर्म है। और धर्म का पालन करने से जीवों के प्रति प्रेम उभरना स्वाभाविक है इसीलिए तुलसी रघुकुल तिलक का ध्यान करते हैं–

नीलांबुजश्यामल कोमलांगं सीता समारोपित वामभागम्।
पणौ महासायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंश नाथम्।। [18]

निष्काम सेवा भाव को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए तुलसीदास कहते हैं कि विनम्रता मनुष्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देती है, किंतु विषमता के प्रति कठोर होने और अन्याय का विरोध करने से ही मानव मूल्यों की सुरक्षा सम्भव है।

मानवीय मूल्यों में गिरावट हमारे समाज को पतन की ओर ले जा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और समीक्षक हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार इस सन्दर्भ में उद्धरणीय है– 'यहां काल निरन्तर कोडे चला रहा है जो दुर्बल हैं धराशायी हो जाते हैं और जो सबल हैं टिके रहते हैं। ग्रहण–निषेध के जंजाल में से सही तथ्य का पता लगाना कठिन है। सामाजिक परिवर्तन और जीवन मूल्य दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।'[19] आज नाम, शोहरत, पैसा प्रसिद्धि व्यक्ति पर हावी होता जा रहा है इसीलिए मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन होना स्वाभाविक है। आज मानव में स्वार्थपरता, अहं चेतना, अनैतिकता की अतिशयता हो रही हैं जिससे उसका मार्ग अस्पष्ट और कंटकाकीर्ण होता जा रहा है। इन्हीं कुसंस्कारों के कारण आज मनुष्य अपने को भीड़ में अकेला और नैतिक मूल्यों से कटा हुआ आहत दिखायी देता है।

रामचरितमानस को व्यहार का दर्पण कहा जाता है। मानव

को कैसा आचरण करना चाहिए इसका उपदेश रामचरितमानस के चरित्रों का अवलोकन करने से ज्ञात होता हैं। तुलसीदास नीति विशारद महापुरूष थे। वे एक स्थान पर कहते हैं कि मंत्री, वैद्य और गुरु यदि किसी लोक लालच या भय के वशीभूत होकर चापलूसी करते हैं और सत्य वचन नहीं बोलते तो उस राजा का राज्य, रोगी का शरीर और व्यक्ति का धर्म शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होई बेगही नास।।[20]

निश्चय ही तुलसी का रामचरितमानस लोकमंगल का विधान करने वाली पतित पावन गंगा के समान फलदायिनी है।[21]

निष्कर्ष-

मूल्य, समाज में मानव द्वारा निर्मित कुछ नियमों की श्रृंखला है। समाज में संतुलन कायम रखने के लिए ही मानव द्वारा निर्मित ये मूल्य 'मानवीय मूल्य' कहलाते हैं। जब कोइ व्यक्ति इन मूल्यों की कसौटी पर खड़ा उतरता है तभी उसकी मनुष्यता सिद्ध होती है और वह सामाजिक जानवर की श्रेणी से ऊपर उठकर नैतिक एवं मानवीय प्राणी कहलाने का अधिकारी बनता है।

आज समाज की स्थिति विघटित होती चली जा रही है। बाजारवादी एवं पूंजीवादी स्वार्थी दौर ने मानव को मानवीय मूल्यों से कोसों दूर कर दिया है। आज मनुष्य भावनाओं से कम और बुद्धि से अधिक काम लेने लगा है। अपने फायदे के लिए वह जीवन मूल्यों की अवहेलना करने लगा है। जब-जब किसी ने स्वार्थवश जान-बूझकर या फिर अनजाने में ही सही मानवीय मूल्यों की अवहेलना करनी चाही है, समाज में असंतुलन स्थापित करनी चाहा है तब-तब उसे दुख एवं कष्ट के सिवा कुछ नहीं मिला है। आज संपूर्ण मानव समाज विनाश की ओर बढ़ रहा है क्यों ? इसके मूल में है शाश्वत नियमों एवं मूल्यों की अवहेलना। जिसके चलते छल-प्रपंच, हिंसा, घृणा, अनाचार, व्याभिचार, भ्रष्टाचार, शोषण, जातियतावाद, सांप्रदायिकता जैसे समाज तथा राष्ट्र को खोखला करने वाली भावनाएँ उठ रही हैं। मानवीय मूल्यों के अभाव में मनुष्य का चारित्रिक पतन हो रहा है जिसके कारण उसकी भावनाएँ कुत्सित हो रही है और वह जघन्य से जघन्य अपराध को अंजाम दे रहा है। ऐसे पतनमुखी समाज एवं क्षत-विक्षत होते मानवता की रक्षा हेतु मानवीय मूल्यों जैसे- प्रेम, सम्मान, परोपकार, दान, श्रद्धा, तप आदि की स्थापना की जरूरत है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची:

1. रामचरितमानस पृष्ठ 630
2. रामचरितमानस पृष्ठ 860
3. रामचरितमानस पृष्ठ 1
4. रामचरितमानस पृष्ठ 576
5. रामचरितमानस, अरन्यकाण्ड, चित्रकूट सभा पृष्ठ 456
6. रामचरितमानस, अरन्यकाण्ड, चित्रकूट सभा पृष्ठ 463
7. रामचरितमानस, अरन्यकाण्ड, चित्रकूट सभा पृष्ठ 476
8. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 117
9. रामचरितमानस, अरन्यकाण्ड, चित्रकूट सभा पृष्ठ 486
10. रामचरितमानस, पृष्ठ 780
11. रामचरितमानस, बालकाण्ड पृष्ठ 9/116
12. विनयपत्रिका पृष्ठ 88
13. रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड पृष्ठ 735
14. रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड पृष्ठ 671
15. रामचरितमानस, अरन्यकाण्ड, चित्रकूट सभा पृष्ठ 490
16. रामचरितमानस पृष्ठ 111
17. मानस/2. पृष्ठ 860
18. मानस/2. पृष्ठ 612
19. अयोध्याकाण्ड, श्लोक 3
20. हजारी प्रसाद द्विवेद्वी,
21. सुन्दरकाण्ड, दोहा 32, पृष्ठ 632

ISSN 2278 - 0327

वैदिक साहित्य में वर्णित व्यापारिक एवं आर्थिक व्यवस्था

डॉ. संदीपा कालभोर
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल
मानसेवी शिक्षक, हिन्दी विभाग

सिंधुसभ्यता जैसी नगरीय एवं समृद्ध सभ्यता के पश्चात् वैदिक सभ्यता का प्रारम्भ पुन: नए सिरे से हुआ। वैदिक सभ्यता अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ग्रामीण एवं कबिलाई थी। वैदिक संस्कृति के बारे में जानने के प्रमुख साधन हैं- प्रथम, उत्खननों से प्राप्त पुरावशेष एवं द्वितीय, वैदिक साहित्य। विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद के तिथिक्रम से मेल खाने वाली संस्कृतियों में काले एवं लाल मृद्भांड, ताम्रपुजों एवं गेरूवर्णी मृद्भाडों की संस्कृतियाँ आती है, इन्हें ऋग्वेदकालीन मानने में मतैक्य है। अत: वैदिककालीन संस्कृति का समझने के लिए वैदिक साहित्य का सहारा लिया गया है। जिसे दो भागों में बाँटा गया है- ऋग्वेदकाल एवं उत्तर ऋग्वेदकाल।

ऋग्वेदकालीन आर्थिक एवं व्यापारिक व्यवस्था के अध्ययन का एकमात्र साधन विश्व साहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद है। ऋग्वेदकालीन जीवन मुख्यत: ग्रामीण एवं कबिलाई व्यवस्था पर आधारित था। अधिकांश ग्राम नदियों एवं झीलों के किनारे बसे थे। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुचारण था। वैदिक साहित्य में गाय, बैल, भैंस, घोड़े, बकरी, भेड़ आदि के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। इनमें गाय का सर्वाधिक महत्व था। उसकी सभी कामना करते थे। पशु पालने वाले के लिए 'गोप', 'गोपाल', 'अजपाल' आदि शब्द मिलते हैं।[1] ऋग्वेद में स्थान - स्थान पर पशुधन की वृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद के एक मंत्र के अनुसार गाय, घोड़े तथा सुपुत्र धन-सम्पत्ति माने गए हैं (*अश्विनं सुपुत्रिणां वीरवन्त रयि नशते स्वस्ति*)।[2]

कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त अनेक प्रकार के उद्योग धंधे प्रचलित थे। ऋग्वेद में लक्ष्मन (बढ़ई), हिरण्यकार (सुनार), कर्मार (धातुशिल्पीं) चर्मकार (मोची), तंतुवाय (जुलाहा) तथा कुंभकार आदि उद्यमियों के उल्लेख मिलते हैं। स्त्रियाँ घर में सूत कातने का कपड़ा बुनने का कार्य करती थीं। इस काल में व्यवसाय जाती प्रथा में बँधा नहीं था, कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र रूप से किसी भी व्यवसाय को अपना सकता था।[3] इसका प्रमाण ऋग्वेद के एक मंत्र में है, जिसमें एक व्यक्ति कहता है कि, मैं शिल्पी हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं तथा मेरी माता अनाज पीसती हैं (*कारूरह ततो भिषगुपल प्रक्षिणी नाना। नानाधियों वसूयवोनुगा इव तस्थिमेन्दायेन्दो परिस्त्रव*)।[4]

इस तरह एक ही परिवार के लोग विभिन्न व्यवसायों में संलग्न थे।

ऋग्वेद में वस्तुओं के क्रय-विक्रय के उल्लेख मिलते हैं। व्यापारियों के लिए 'वणिज' और वाणिज्य शब्दों का मिलता है।[5] जैसा कि पूर्वकथित है इस समय मुख्य रूप से वस्तु-विनिमय की प्रथा थी। एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु मिल जाती थी। अर्थवेद में इस प्रकार के लेन-देन को 'प्रतिपण' और 'प्रपण' कहा गया है।[6] बड़े सौदों में गाय मूल्य की इकाई मानी जाती थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर इंद्र की प्रतिमा का मूल्य दस गायें बताया गया है (*क इमं दशभिर्मम इंद्रं क्रीणति धेनुभि:*)।[7] वहीं एक अन्य ऋचा में एक ऋषि अपनी इंद्र की प्रतिमा को सौ, हजार मूल्य पर भी देने को तैयार नहीं थे।[8] अत: गाय मूल्य का माप थी और बहुमूल्य वस्तु समझी जाती थी। गौ (गाय या बैल) शब्द धनसूचक था। आज भी गौधन शब्द प्रचलित है। प्रेमचंद्र के विश्वप्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में गाय के दान का उल्लेख आया है।

''वैदिक काल में गाय को एक देवक पशु समझा जाता था, साथ ही आर्थिक दृष्टि से गाय के महत्व ने उसे अधिक श्रद्धा का पात्र बना दिया था। यही कारण है कि भाषा की अनेक अभिव्यक्तियाँ पशुओं से संबंधित थी। जैसे 'गविष्टि' जिसका शाब्दिक अर्थ है गायों की खोज करना, कालान्तर में इसका अर्थ 'युद्ध करना' हो गया। जिसका स्पष्ट अभिप्राय है कि बहुधा गायों के अपहरण और पशुओं की खोज के कारण लोगों में युद्ध हो जाया करते थे।

वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है, कि इस समय व्यापार में काफी मोल-भाव होता था। लेकिन एक बार मूल्य तय हो जाने

पर क्रेता एवं विक्रेता दोनों को ही अपने सौदे पर दृढ़ रहना पड़ता था। इसी तरह का उदाहरण ऋग्वेद में मिलता है, जिसमें एक व्यापारी ने अपनी कीमती वस्तु को कम मूल्य पर बेच दिया, बाद में उसे अपनी भूल का ज्ञान हुआ और वह अपनी भूल सुधारने क्रेता के पास गया, लेकिन अपनी व्यापारी अपनी भूल नहीं सुधार पाया क्योंकि वह वस्तु बेच दी गई थी और वह अपने सौदे से पलट नहीं सकता था (*भूयसा वस्नमवरत .... प्रवाणम्*) ।[9] इसी तरह ऋग्वेद में सोमपौधे (सोमलता) के रूप में व्यापार की भी जानकारी मिलती है।[10] 'सोम' के व्यापार के सम्बंध में 'गुलेरी' जी के 'कछुआ-धरम' नामक निबंध में दिलचस्प वर्णन है, जिसमें बताया गया है कि 'सोम' की खरीदारी में बड़ी हुज्जत करनी पड़ती थी। सोम का दाम एक गाय के मोल पर तय होते-होते एक बछिया पर आकर तय होता था। गुलेरी जी के अनुसार जैसे आज करोड़पति एवं लखपति विशेषण अमीरों के लिए प्रयुक्त होते हैं, वैसे ही वैदिक कालीन अमीर सहस्त्रगु, शतगु कहलाते थे, क्योंकि उस समय का सिक्का गौएँ थीं।[11]

ऋग्वेद में सोने के 'निष्क' का भी उल्लेख है, लेकिन यह गले में पहनने का एक आभूषण था।[12] किंतु उत्तर - वैदिक युग में 'निष्क' निश्चित रूप से एक सिक्का था। ऋग्वेद में 'पणि' लोगों के उल्लेख मिलते है, जो मुख्यत: व्यापारी हुआ करते थे (पणि वर्णिक भवति)।[13] पणियों के लिए वेदों में कहा गया है कि वे अधिक धन बनाने के लालच से अपने जहाज दूर देशों को भेजते हैं एवं सारे समुद्र को मथ डालते हैं।[14] वैदिक साहित्य में 'देवपणि' शब्द भी मिलता है, जो सम्भवत: आर्य व्यापारियों के लिए प्रयुक्त हुआ होगा। वैदिक साहित्य में पणियों के लिए एक और विशेषण 'बेकनाट' भी मिलता है। जो कुसीदी (सूदखोर) होते थे। वेदों में ऋण लेने व देने को निकृष्ट समझा गया है, (अनृणो फवामि अर्थात् किसी के ऋणि मत बनो, यजुर्वेद: [32] अनृणा स्याम अर्थात् ऋणी बनने वाले कार्य मत करो)।[15] यही कारण है कि पणियों की वैदिक साहित्य में उनकी लालची प्रवृत्ति के कारण निंदा की गई है।

वैदिक लोग जंगली पथों से अधिक दिनों तक संतुष्ट नहीं रहे, उन्होंने देश के एक भाग को दूसरे से मिलाने वाले अनेक पथों का निर्माण किया। ऋग्वेद में पथों के निर्माण एवं उन्हें सुगम बनाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऋग्वेद में इंद्र को जंगलों को साफ करके मार्ग बनाने वाला[16] तथा मरूत देवों को रास्ते में स्थित चट्टानों को तोड़कर सुगम बनाने वाला कहा गया है।[17] मार्ग खोजने वालों को पथिकृत कहा गया है। अग्नि को पथकृत कहा गया जो कि पथों का निर्माण वनों को जलाकर करने में सहायक है। इस काल में होने वाली धीमी व्यापारिक गतिविधियों ने धीरे-धीरे नगरीकरण की ओर रूख कर लिया। इन व्यापारिक वस्तुओं को लाने जाने के लिए जल एवं स्थल दोनों ही मार्गों का प्रयोग होता था। भारवाही पशुओं जैसे- बैल, घोड़े, भैंस, गधे एवं ऊँट का प्रयोग व्यापारी माल की आवाजाही के लिए होता था। इस काल में बैलगाड़ियाँ भी प्रयुक्त होती थीं तथा रथ सवारी गाड़ी का कार्य करते थे, जिन्हें 'अनस' कहा जाता था।[18] ऋग्वेद में आवागमन को सुगम बनाने के लिए रथ (यान) निर्माण के लिए कहा गया है (*ओ नो नावा मतीनां.......रथम्*)।[19] विद्वानों में इस बात का काफी मतभेत है कि वैदिक लोगों को समुद्र का पता था अथवा नहीं। लेकिन ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर समुद्र शब्द का उल्लेख आता है, जो स्पष्ट करता है कि वैदिक लोग समुद्र एवं समुद्री मार्गों से भली-भाँती परिचित थे (ऋग्वेद के मंत्रों में पूर्वी एवं पश्चिमि समुद्रों तथा चारों समुद्रों का उल्लेख है। उदाहरणार्थ - (*उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरा:*) ।[20]

उत्तरऋग्वेद काल में देश की व्यापारिक एवं आर्थिक व्यवस्था में उन्नति देखने मिलती है। अनेक प्रकार के छोटे-बड़े उद्योग-धंधे विकसित हो चुके थे। अब उद्योग-धंधे समूह में चलाए जाने लगे थे। धीरे-धीरे अलग-अलग उद्योगों से अलग समुदाय विकसित होने लगे थे। समुदाय कालान्तर में 'निगम' या 'गण' के रूप में विकसित हुए। वाजसनेयी संहिता, तैत्तरीय संहिता, पंचविंश ब्राह्मण आदि ग्रंथों में 'गण' शब्द का प्रयोग हुआ है। बृहदारण्यक, उपनिषद में भी 'गण' और 'विश' शब्द आए हैं।[21] जिसके अनुसार वणिक लोग समुदाय में धनोपार्जन करते हैं। यहि गण आगे चलकर श्रेणी संगठन के रूप में विकसित हुए। ब्राह्मण ग्रंथों में 'श्रेष्ठी' शब्द मिलता है। जो संभवत: गण के प्रधान को सूचित करता है एवं इनकी स्थिति वही रही होगी जो परवर्ती काल में 'सेठ' की थी।[22]

उत्तरऋग्वेद साहित्य में नाप-तौल का उल्लेख तुला या तराजू[23] के रूप में मिलता है। अनाज नापने के लिए लकड़ी के छोटे बड़े अनेक प्रकार के बर्तनों का प्रयोग होता था। बहुमूल्य रत्नों तथा सोने-चाँदी आदि तोलने के लिए कृष्णल, माष (गुंजा) आदि अनाजों के दाने तौल में प्रयुक्त होते थे।[24] ऋग्वेदकालीन निष्क जो गले में पहनने का आभूषण था, अब धातुखंड के रूप में एक निश्चित तौल अथवा मुद्रा की तरह प्रयुक्त होने लगा था।[25]

अथर्ववेद के अनुसार व्यापार प्रपण अथवा प्रतिपण के द्वाराही होता था। देश के व्यापारी अपनी सामग्री के साथ एक

स्थान से दूसरे स्थान जाया करते थे। कभी ये वस्तुएँ बेचते थे कभी आवश्यकतानुसार विनिमय करते थे। यजुर्वेद के अनुसार भी इस समय व्यापार वस्तु-विनिमय द्वारा चलता था। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रांतों के बीच वस्तुओं का यातायात होता था। अथर्ववेद में दूर्श (ऊन), पवस्त (चद्दर) और अजिन (बकरी के चर्म से बना वस्त्र) आदि व्यापारिक वस्तुओं के उल्लेख मिलते हैं।[26] इस काल में धुर पश्चिमि प्रदेशों से आधुनिक उत्तरप्रदेश तथा बिहार तक वस्तुओं का आदान-प्रदान होने लगा था। गांधार प्रदेश की ऊन बहुत प्रसिद्ध थी तथा पूर्वी भागों में भेजी जाती थी। अथर्ववेद से पता चलता है कि सिंधु प्रदेश का गुग्गल बाहर भेजा जाता था। सिंधु प्रांत के घोड़े भी प्रसिद्ध थे। शतपथब्राह्मण, बृहदारयण्क उपनिषद आदि ग्रंथों में सैंधव घोड़ों की चर्चा मिलती है।[27] इस काल में मिस्त्र, असीरिया तथा बेबीलोना से भारत के व्यापारिक संबंध थे। विद्वानों के अनुसार वैदिक काल के अंतिम समय में अरब तथा पूर्वी अफ्रीका से सामुद्रिक व्यापार प्रारम्भ हो गया था।[28] वैदिक काल में देशी-विदेशी व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि आर्थिक उन्नति का कारण बनी ।

संदर्भ-

1. 'वैदिक साहित्य और संस्कृति', बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1981. पृ. 455-456.
2. 'ऋग्वेद' : 5/4/11
3. 'इकानॉमिक लाइफइन एंशिएंट इंडिया', एन.सी. बंधोपाध्याय, कलकत्ता, 1945, पृ. 155-156.
4. 'ऋग्वेद': 9/112/3
5. 'ऋग्वेद': 1/112/11 तथा 5/45/8
6. 'अथर्ववेद': 3/15 तथा 12/15/4
7. 'ऋग्वेद': 4/24/1
8. 'ऋग्वेद' : 8/1/5
9. 'ऋग्वेद': 4/24/9
10. 'ऋग्वेद' : 8/164/1 तथा वही: 10/34/1
11. 'गूलेरी साहित्यलोक', संपा. डॉ. मनोहरलाल, किताब घर, दिल्ली, 1983, पृ. 239.
12. 'गूलेरी साहित्यलोक', संपा. डॉ. मनोहरलाल, किताब घर, दिल्ली, 1983, पृ. 239.
13. 'निरूक्त': 2/17
14. 'ऋग्वेद' 2/48/3 तथा वही: 1/56/2
15. 'अथर्ववेद': 6/197/1
16. 'ऋग्वेद': 1/140/9
17. 'ऋग्वेद': 1/45/6
18. 'ऋग्वेद': 8/46/28
19. 'ऋग्वेद' : 8/46/28
20. 'ऋग्वेद': 2/48/3, वही: 10/136/5
21. वृहदारण्यक उपनिषद: (1/4/12) शतपथ ब्राह्मण : 2/2/7/33
22. 'भारतीय व्यापार का इतिहास', कृष्णदत्त वाजपेयी, राष्ट्रभाषा, मथुरा, 1951, पृ.28.
23. शतपथ ब्राह्मण: 5/5/5/16
24. छांदोग्य उपनिषद: 4/2/1-3
25. अथर्ववेद: 3/15/4 एवं यजुर्वेद: 3/50
26. अथर्ववेद: 5/7/6
27. 'भारतीय व्यापार का इतिहास', कृष्णदत्त वाजपेयी, राष्ट्रभाषा, मथुरा, 1951, पृ. 22.
28. 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा', जयचन्द्र विद्यालंकार, हिन्दुस्तान ऐकेडमी, इलाहाबाद, 1933, पृ. 263.

ISSN 2278 - 0327

संस्कृतसाहित्य में पाश्चात्य कवियों की भूमिका

डॉ. राजकुमार
ग्राम-सरवट,पोस्ट-सरवट,
जिला-सोनभद्र, उत्तर प्रदेश, भारत

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

संस्कृतसाहित्य की धारा परस्सहस्र वर्षों से आधुनिक युग तक अजस्र गति से प्रवाहित होती चली आ रही है। यह पुरातन भी है और नित्य-नूतन भी। सह अस्तित्व के सिद्धान्त के आधार पर स्त्री और पुरुष दोनों ने ही आदिकाल से संस्कृतसाहित्य के सर्जन एवं उन्नयन में अपना-अपना अवदान किया है। वैदिक ऋषिकाओं से लेकर आधुनिक भारत में जन्म लेने वाली परम विदुषी नारियों एवं कवयित्रियों ने जिस तरह संस्कृतसाहित्य का संवर्धन किया है, उसी तरह विदेशों में जन्म लेने वाली अनेक नारियों ने भी अपने-अपने क्षेत्र में समय-समय पर संस्कृतसाहित्य को अपना योगदान किया है।

वर्ष 1972 में नई दिल्ली में जब एक बृहत् 'अन्ताराष्ट्रिय संस्कृत सम्मेलन' सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गया तो आगामी वर्ष में विश्वभर के संस्कृत-विद्वानों ने विचार-विमर्श कर एक वैश्विक संस्था 'International Association of Sanskrit Studies' (अन्ताराष्ट्रिय-संस्कृताध्ययन-समवाय) की स्थापना की और फ्रांस की राजधानी पेरिस में इसका मुख्यालय स्थापित किया गया। उस समय पेरिस की सोरबोन यूनिवर्सिटी में लुई रेनू की शिष्य-परम्परा की अन्यतम प्रो. कोलेत कैय्या थीं, जो जैन दर्शन एवं प्राकृत भाषा की विशेषज्ञ थीं। प्रो. कैय्या ने इस वैश्विक संस्था को पालित-पोषित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। अपने निधन से पूर्व तक वे इसके बोर्ड की सक्रिय सदस्य रहीं। प्रो. कैय्या ने भाषा-वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में अर्धमागधी प्राकृत में लिखे श्वेताम्बर जैन धर्म के ग्रन्थों का समीक्षण किया तथा प्राकृत-अपभ्रंश ग्रन्थों के सम्पादन एवं अनुवाद भी किये। प्रो. कैय्या के निधन के पश्चात् उनकी शिष्या भारत-फ्रांसीसी समुदाय की प्रो. नलिनी बलबीर ने उनकी शैक्षिक परम्परा में आगे बढ़कर काम किया। नलिनी बलबीर ने, जो पेरिस की सोरबोन यूनिवर्सिटी में ही 1988 से प्रोफेसर हैं, जैन दर्शन एवं प्राकृत के क्षेत्र में बृहत् अनुसंधान कार्य किया है। प्रो. नलिनी ने प्राकृत साहित्य के अनेक मूल ग्रन्थों का सम्पादन, अध्ययन एवं भाषान्तरण किया है और आगे भी वे इस क्षेत्र में निरन्तर कार्य कर रही हैं। प्रो. कैय्या के काल से ही नलिनी भी 'वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेंस' के अधिवेशनों में सक्रिय भागीदारी करती रही हैं। इनके अतिरिक्त सोरबोन यूनिवर्सिटी में प्रो. मेरी-क्लाउडे पोर्शे संस्कृत-काव्यशास्त्र की विशेषज्ञ प्राध्यापिका के रूप में नियुक्ति यहाँ 1977-78 में हुई थी। इससे भी पूर्व पौराणिक महाकाव्य एवं पुराणों के अध्ययन के क्षेत्र में प्रो. मैडली ने बियार्डेऊ का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने मीमांसा एवं वेदान्त दर्शन के अतिरिक्त महाभारत पर गम्भीर शोधकार्य किया। संस्कृत नाटक एवं नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में फ्रांस में सिलवाँ लेवी एवं लुई रेनू की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली प्रोफेसर है बासाँ बूदों बिन, जो नाट्यशास्त्र एवं सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में निरन्तर शोध कर इस विषय पर कार्य कर रही हैं। प्रख्यात फ्रांसीसी वैयाकरण प्रो. प्येर सिल्वाँ फिलियोज़ा की पत्नी डॉ. वसुन्धरा फिलियोज़ा भी पेरिस में संस्कृत एवं भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में विशेष कार्य कर रही हैं। उनके घर का वातावरण पूरी तरह संस्कृतमय है। अपनी दोनों पुत्रियों के नाम उन्होंने संस्कृत-व्याकरण की टीकाओं के आधार पर रखे हैं।[1]

फ्रांस की भाँति जर्मनी में अठारहवीं शताब्दी के अन्त में संस्कृत का विधिवत् पदार्पण हो चुका था। हम्बोल्ट यूनिवर्सिटी, बर्लिन में भारतीय विद्या अध्ययन विभाग की स्थापना 1821 ई. में हुई, जहाँ फ्रांज, बॉप, वेबर, पिशेल, ल्यूडर्स जैसे संस्कृतज्ञों ने उच्चस्तरीय संस्कृत-अध्ययन-अनुसन्धान को गति प्रदान की। प्रो. हैनरिख ल्यूडर्स ने जब बर्लिन के इस विश्वविद्यालय में लम्बे समय तक अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहते हुए संस्कृत-वाङ्मय के अनेक क्षेत्रों में काम किया, उसी समय उनकी पत्नी श्रीमती ऐल्से ल्यूडर्स ने भी पति की सहभागिता की। उन्होंने महाभारत के शोधन

का कार्य किया, मध्य एशिया से प्राप्त पाण्डुलिपियों को पढ़कर अनुवाद सहित प्रकाशित किया, जिनमें शुकसप्तति एवं जातकमाला की लिपियाँ सम्मिलित थीं। विदुषी ल्यूडर्स ने अपने भारत-भ्रमण का वृत्तान्त 'Under the Indian Sun' नाम से लिखकर ग्रन्थ रूप में प्रकाशित कराया था। बर्लिन के इसी विभाग की डॉ. सोर्गेल ने 'इण्डियन आर्ट हिस्ट्री' पर काम किया है। 'आई. ए. एस. एस.' संस्था के महासचिव प्रो. जे. सोनी की जर्मन पत्नी श्रीमती एल. सोनी ने भी फिलिप्स यूनिवर्सिटी, मारबुर्ग में रहकर अपने पति के संस्कृत-सम्बन्धी कार्यों में सहभागिता की है। जर्मनी की म्यूनिख यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर रोबर्ट ज़ाइडेनबॉस की योग्य शिष्या डॉ. ईवा मारिया ग्लासब्रैनर संस्कृत की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे संस्कृतभाषिणी हैं और संस्कृत-शोधकार्य में दक्षता प्राप्त कर चुकी हैं।[2]

यूरोप द्वीप के देशों में इटली एक ऐसा देश है, जहाँ संस्कृत के क्षेत्र में गम्भीर काम हुए हैं। इटली के ट्यूरिन नगर में संस्कृत एवं भारतीय विद्या के अध्ययन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संस्था है 'चेस्मियो' (CESMEO) जिसे 'International Institute of Advanced Asian Studies' कहा जाता है। इसकी स्थापना 1982 में हुई। लम्बे समय तक इसके निर्देशक प्रो. ऑस्कर बोटो रहे। बोटो के निधन के बाद उनकी शिष्या प्रो. इरमा पियोवानो इसकी निर्देशिका हैं। इस संस्था की अनेक बृहत् परियोजनाओं में से एक है- 'Minor Sanskrit Texts and Studies on Social and Religious Law' इसके अन्तर्गत इरमा पियोवानो ने 'दक्ष स्मृति' का सटिप्पण सम्पादन किया है। चेस्मियो संस्था का काम है- संस्कृत एवं प्राच्य विद्या के सर्वाधिक प्रतिष्ठित जर्नल 'Indologica Taurinensia' का प्रकाशन। यह वस्तुत: 'इण्टरनेशनल एसोसिएशन ऑफ संस्कृत स्टडीज' का मुखपत्र है, और इसके प्रकाशन का दायित्व इरमा बड़ी दक्षता के साथ निभा रही हैं।[3]

सोवियत रूस में संस्कृत-अध्ययन की सुदृढ़ परम्परा रही है। रूस की राजधानी मास्को में स्थित 'Institute of World Literature' की 'Russian Academy of Sciences'में कार्यरत संस्कृत-विदुषी हैं डॉ. नटालिया लिडोवा। वे साहित्य-मर्मज्ञ हैं। उन्होंने अपना समग्र शैक्षिक जीवन भरत के नाट्यशास्त्र के अध्ययन एवं अनुसंधान में व्यतीत किया है। वे प्राय: नाट्यशास्त्र के विविध आयामों पर अपने शोध-निबन्ध लिखती रही हैं। विश्व में कहीं पर भी नाट्यशास्त्रीय विषय पर होने वाले परिसंवादों एवं संगोष्ठियों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित रहती है। डॉ. लिडोवा 'वर्ल्ड संस्कृत कान्फ्रेंस' के सभी अधिवेशनों में सक्रिय रूप ये सम्मिलित होती रही हैं तथा सौन्दर्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र से सम्बद्ध शोध में अपना अवदान देती रही हैं।[4]

यूरोपीय देशों में ब्रिटेन भी ऐसा देश है जहाँ संस्कृत को पर्याप्त प्रश्रय मिला। इग्लैण्ड की राजधानी लन्दन में ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज एवं लन्दन यूनिवर्सिटी में संस्कृत के अध्यापन एवं अनुसंधान की व्यवस्था है। वर्तमान युवा पीढ़ी के संस्कृतज्ञों का प्रतिनिधित्व करने वाली डॉ. वेण्डी फिलिप्स रोड्रिज़ुएज़ कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी की 'Faculty of Oriental Studies' में कार्यरत हैं। उनका कर्तृत्व तब अधिक प्रकाश में आया, जब 14वीं 'वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेंस' में जापान में उनके शोध-प्रबन्ध पर उन्हें 'Best Thesis Prize' प्राप्त हुआ। स्कॉटलैण्ड की राजधानी एडिनबरा में स्थित एडिनबरा यूनिवर्सिटी के प्रो. ब्रॉकिंगटन की पत्नी मेरी ब्रॉकिंगटन भी रामायण में विशेष रूचि रखती हैं। उन्होंने उन्होंने 'Epic and Puranic Bibliography' तैयार करने में अपने पति की सहायता की।[5]

संस्कृत के प्रति विशेष प्रेम रखने वाली डॉ. बिलियाना म्यूलर का जन्म तो बल्गारिया में हुआ, पर उनका कार्यक्षेत्र जर्मनी अधिक रहा। वे अन्य विषयों के अतिरिक्त संस्कृत-नाट्य एवं भारतीय नृत्यकला में विशेष रूचि रखती हैं और नृत्य की शिक्षा भारत आकर लेती हैं। वे प्राय: भारत आती रहती हैं और दिल्ली विश्वविद्यालय में तीन वर्ष तक 'विजिटिंग ऐसोशियेट प्रोफेसर' भी रह चुकी हैं।[6]

संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक विश्वविद्यालय संस्कृत का केन्द्र रहे हैं। पश्चिम अमेरिका में बर्कले स्थित केलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में संस्कृत-अध्ययन की परम्परा 1897 से है। वर्तमान में वहाँ प्रतिष्ठित संस्कृत-विद्वान् रोबर्ट गोल्डमेन हैं, जो रामायण-परियोजना के निदेशक एवं मुख्य सम्पादक हैं। उनकी पत्नी सेली गोल्डमेन सीता की तरह पति की अनुयायिनी हैं। वे संस्कृतज्ञा है, वहीं पर प्राध्यापिका है, तथा उनकी सह-अनुवादिका हैं। यह दम्पति-युगल भारत एवं संस्कृत से सर्वात्मना जुड़ा है।

अमेरिका के अतिरिक्त संस्कृत से जुड़ा एक और महत्त्वपूर्ण देश है कनाडा, जहाँ की ब्रिटिश कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, वेंकूवर में संस्कृत-अध्ययन की पुरानी परम्परा है और इसी संस्था में आगामी वर्ष में 17वीं 'वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेंस' आयोजित होने जा रही है। इस यूनिवर्सिटी के के 'Center for India and South Asia Research' में प्रो. मन्दाक्रान्ता बोस संस्कृत-सौन्दर्यशास्त्र एवं संगीतशास्त्र की विशेषज्ञ विदुषी हैं। उन्होंने 17वीं शताब्दी के

ग्रन्थ 'संगीतनारायण' पर शोधकार्य किया है। वे संस्कृत में काव्यशास्त्र, नृत्य-साहित्य एवं नारी-विषयक अध्ययन में विशेष लेखन कार्य कर चुकी हैं। अपने संगीतशास्त्रीय शोध के कारण ही उन्हें वैश्विक पटल पर जानी जाती है। इसी विश्वविद्यालय के इसी विभाग में दीर्घकाल से प्रतिष्ठित प्रोफेसर हैं अशोक अक्लूज़कर और वहीं अधिष्ठित हैं उनकी पत्नी विद्युत् अक्लूजकर। यह दम्पति 'अन्ताराष्ट्रिय संस्कृत समवाय' एवं इसके आयोज्यमान विश्व संस्कृत सम्मेलनों से सर्वात्मना जुड़े हैं। प्रो. विद्युत् ने पुराण, पौराणिक महाकाव्यों पर विशेष कार्य किया है तथा क्लासिकल, मध्यकालीन एवं आधुनिक साहित्य के विविध आयामों का अध्ययन एवं लेखन किया है। वे संस्कृत-सम्बन्धी शोधकार्य में निरन्तर सक्रिय हैं। कनाडा की ही एक और संस्कृत विदुषी है प्रो. टी. एस. रूक्मिणी, जो कोनकोर्डिया यूनिवर्सिटी, मोण्ट्रियल के धार्मिक अध्ययन विभाग में 'हिन्दू स्टडीज' के पीठ पर अधिष्ठित हैं। उनके शोध के प्रमुख क्षेत्र हैं- योग, अद्वैत वेदान्त, वेदान्त में भक्ति-सम्प्रदाय, हिन्दू धर्म में संन्यास-परम्परा आदि। प्रो. रूक्मिणी ने धर्म एवं दर्शन के इन्हीं विषयों पर गम्भीर लेखन कार्य किया है। कनाडा को संस्कृत का गढ़ बनाने में इस पण्डिता-त्रयी का प्रभूत अवदान है।

दक्षिण-पूर्व एशिया का समग्र क्षेत्र संस्कृत भाषा एवं साहित्य से प्रभावित क्षेत्र है। उसमें भी थाइलैण्ड पर संस्कृत का अमिट प्रभाव पड़ा है। थाइलैण्ड के राजघराने संस्कृत के गढ़ बनते रहे हैं। थाइलैण्ड की वर्तमान राजकुमारी महाचक्री सिरिन्धौर्न ने भारतीय विद्वान् प्रो. सत्यव्रत शास्त्री से विधिवत् कई वर्षों तक संस्कृत की शिक्षा ग्रहण की। परास्नातक कक्षा में अपना लघु शोध-प्रबन्ध लिखने के लिए उन्होंने उत्तर-पूर्व थाइलैण्ड के क्षेत्र प्नोमरूङ् के प्रासाद में प्राप्त संस्कृत-अभिलेख को ग्रहण किया। संस्कृत के साथ उनका जुड़ाव इतना आगे बढ़ा कि थाइलैण्ड की राजधानी बैंकॉक की शिल्पाकॉर्न यूनिवर्सिटी के 'Sanskrit Studies Centre' द्वारा वर्ष 2001 एवं 2005 में जो 'इण्टरनेशनल संस्कृत कॉन्फ्रेंस' आयोजित की गई तथा 2016 में 16वीं 'वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेंस' आयोजित हुई, वे राजकुमारी के ही सम्मान में हुई और राजकुमारी ने ही उनका विधिवत् उद्घाटन किया। संस्कृत को इस योगदान हेतु सिरिन्धौर्न को भारतीय राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका है। थाइलैण्ड की थम्मासात यूनिवर्सिटी में स्थापित 'इण्डिया स्टडीज़ सेण्टर' की निदेशक रहीं डॉ. स्त्रीसुरांग फुलथेपियो रामायण की विशिष्ट विदुषी हैं। संस्कृत एवं रामायण पर उन्होंने अनेक शोध-पत्र लिखे हैं। 2016 में जबलपुर में हुए एक 'अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन' में उनकी अध्यक्षता में 'भारत-थाई रामायण फोरम' की स्थापना हुई है। शिल्पाकॉर्न यूनिवर्सिटी, बैङ्कॉक के 'प्राच्यभाषा विभाग' की प्राध्यापिका प्रो. कुसुम रक्सामनि ने कनाडा के टोरण्टो विश्वविद्यालय में जाकर संस्कृत-कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन का काम किया है। वहीं की एक अन्य प्राध्यापिका डॉ. मनीपिन फ्रोम्सुथिराक ने इंग्लैण्ड के लन्दन विश्वविद्यालय से धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन पर काम कर पी-एच. डी. डिग्री प्राप्त की है। चूलालौङ्कौर्न विश्वविद्यालय की डॉ. प्रानी लापानित ने क्षेमेन्द्र के 'चारुचर्या' और 'सुवृत्ततिलक' पर काम किया है। 2000 ई. में जब शिल्पाकॉर्न यूनिवर्सिटी के 'संस्कृत स्टडीज़ सेण्टर' में डॉक्टरेट डिग्री हेतु शोध-कार्य का शुभारम्भ हुआ तो एक संग्रहालय की निदेशिका सुश्री अमरा श्रीसुचात ने सर्वप्रथम शोध में प्रवेश लेकर 'पातञ्जल योगसूत्र' पर काम कर पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त की।

संस्कृत-वाङ्मय को महिलाओं के वैश्विक अवदान का एक ज्वलन्त उदाहरण है डॉ. जया स्टाज़, जिनका जन्म तो बेल्जियम में हुआ, पर संस्कृत-शिक्षा उन्होंने भारत एवं थाइलैण्ड में ग्रहण की। विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में थाइलैण्ड जाने पर 'संस्कृत स्टडीज़ सेण्टर' में मेरा उनसे साक्षात्कार हुआ। उन्होंने तीन वर्षों तक मुझसे संस्कृत-भाषा, काव्यशास्त्र एवं गीता का नियमित अध्ययन किया। जया को जीवन में तीन वस्तुओं से प्रेम है- संस्कृत, भारत एवं श्रीकृष्ण। संस्कृत-प्रेम के कारण वे भारत के आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक प्रदेश के उन गाँवों में गईं, जहाँ सर्वसाधारण द्वारा संस्कृत भाषा बोली जाती है, गीता में निहित धर्म एवं दर्शन को तुलनात्मक रूप से लेकर उन्होंने डॉक्टरेट की और सम्पूर्ण भगवद्गीता का अपने देश की डच भाषा में अनुवाद कर उसे बेल्जियम से ही प्रकाशित कराया। श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्ति के कारण मेरी प्रेरणा से डॉ. स्टाज़ वृन्दावन जाकर रहने लगीं और वहाँ 'जीवा इंस्टीट्यूट ऑफ वैदिक स्टडीज़' की सेक्रेटरी बनकर सेवारत हैं। व्रज में बसने पर उन्होंने आत्मकथा-रूप में एक पुस्तक लिखी-'From Taj to Vraj' सत्य की खोज कराने को उन्मुख यह पुस्तक नारी-जीवन-दर्शन की एक अद्भुत पुस्तक है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. संकृतविद्या पत्रिका पृ 132
2. संकृतविद्या पत्रिका पृ 15
3. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास-पृ563
4. पाश्चात्य संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ 231
5. पाश्चात्य संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ 12
6. पाश्चात्य संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ 431

ISSN 2278 - 0327

ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर को पहचानने की प्रक्रिया : एक गुणात्मक अध्ययन

उज़्मा एजाज
शोध छात्रा, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
(एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
बिलासपुर, छत्तीसगढ़

डॉ. मुकेश कुमार चंद्राकर
सहायक प्राध्यापक, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
(एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
बिलासपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर विकास से संबंधित एक विकलांगता है जो कि बच्चों के सामाजिक, व्यावहारिक एवं संप्रेषण कौशल को कई तरीकों से प्रभावित करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व स्तर पर 160 में से 1 बच्चे को ऑटिज्म होता है। यह एक ऐसी विकृतियों का समूह है जिसमें विकास के एक या एक से अधिक क्षेत्र प्रभावित होते हैं। इंस्टिट्यूट ऑफ़ न्यूरोलॉजिकल डिसऑर्डर एवं स्ट्रोक के अनुसार अनुवांशिक या पर्यावरण दोनों ही ऑटिज्म की संभावना को निर्धारित करते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन बच्चों में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर को पहचानने की प्रक्रिया पर आधारित है। इस शोध अध्ययन में शोध प्रविधि के रूप में साक्षात्कार को अपनाया गया है। न्यादर्श के रूप में छत्तीसगढ़ राज्य के शिशु रोग विशेषज्ञों, शासकीय अस्पताल में पदस्थ मनोवैज्ञानिकों एवं निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे मनोवैज्ञानिकों, मनोरोग विशेषज्ञों, जिला पुनर्वास केंद्र संयोजक एवं थैरेपिस्ट को चयनित किया गया है। इन विशेषज्ञों का चयन उद्देश्य पूर्ण न्यादर्श प्रविधि के द्वारा किया गया। शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग करते हुए प्रदत संकलित किए गए। प्रदत्त विश्लेषण हेतु विषय वस्तु विश्लेषण का प्रयोग किया गया। शोध निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर से पीड़ित बच्चों की पहचान करना, जल्द से जल्द उचित हस्तक्षेप शुरू करना बहुत महत्वपूर्ण है। सामान्यतौर पर सबसे पहले माता-पिता के द्वारा ही अपने बच्चों में असामान्य व्यवहार की पहचान की जाती है तत्पश्चात् लक्षणों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों की सलाह, थैरेपिस्ट की सुविधाएं तथा पुनर्वास केंद्रों की सेवाओं के माध्यम से बच्चे को सामान्य करने की कोशिश की जाती है।

प्रस्तावना

ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर मस्तिष्क का विकार है जिसमें मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्र एक साथ काम करने में विफल हो जाते हैं इसलिए इसे ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर कहा जाता है। ऑटिज्म से ग्रसित बच्चे बाकी बच्चों से अलग सुनते, देखते और महसूस करते हैं। सभी ऑटिस्टिक बच्चों को कुछ ना कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कुछ बच्चों को सीखने से संबधित, कुछ को मानसिक स्वास्थ्य संबधित समस्या तथा कुछ को व्यवहार संबंधी समस्याएं हैं (अमेरिकन ऑटिज्म सोसायटी, 2011)। इस शब्द का उपयोग सबसे पहले ब्लूर्ले ने 1911 में मानसिक विकृति स्कीजोफ्रीमियां के रोगियों में पाए जाने वाले सामाजिक संबंधों में उपस्थित कमी के लक्षण को संबोधित करने के लिए किया, लेकिन इसका वैज्ञानिक अध्ययन लियो कैर्न ने 1943 में एवं हंस अस्पेर्गेर ने 1944 में किया। वर्तमान में इस शब्द का उपयोग बच्चों में पाए जाने वाले विकासात्मक विकृति के लिए किया जाता है। सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एवं प्रिवेशन (2014) के अनुसार अभी तक ऑटिज्म की कोई दवाई नहीं बनी है इसलिए डॉक्टर ऐसी दवा लेने की सलाह देते हैं जो ऑटिज्म से ग्रसित बच्चे को सामान्य जीवन जीने में मदद कर सकती है। इन दवाइयों के साथ-साथ थेरेपी की मदद से भी इसके लक्षणों को कम किया जा सकता है। ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर पूरी दुनिया में फैला हुआ है, भारत में प्रति वर्ष ऑटिज्म के एक मिलियन से अधिक मामले सामने आते हैं। ऑटिज्म से ग्रसित बच्चों के मस्तिष्क की संरचना विशेषकर अग्रपाली, पैराइटल तथा मध्य मस्तिष्क की संरचना में दोष मुख्य रूप से देखने को मिलता है। इन संरचनाओं में दोष के कारण ऐसे बच्चों के व्यवहार, संवेग एवं संज्ञानात्मक

क्षमता में कमी हो जाती है। यदि जन्म के समय बच्चा स्वेल साइटो मेगालो वायरस, हरपिस् इंसेफलाइटिस आदि से संक्रमित हो जाता है तो ऐसे बच्चों में ऑटिज्म के लक्षण उत्पन्न होने की संभावना पाई जाती है। मानसिक मंदता से जुड़े कुछ कारण ऐसे हैं जो बच्चों में ऑटिज्म को उत्पन्न करते हैं। इन कारणों में डाउन सिंड्रोम, फैजाएल एक्स सिंड्रोम आदि प्रमुख है। यह सभी गुणसूत्र सम्बन्धी विकृतियां हैं जो ऑटिज्म के विकास में सहायक होती हैं (फिगर एवं सहयोगी, 1986)। भारतीय साहित्य में पहली बार ऑटिज्म शब्द का प्रयोग 1959 में हुआ था। इससे पहले 1944 में बाल रोग विशेषज्ञ रोनाल्ड ने इस विकार के कारण, प्रकार या उपचार के बारे में अपनी राय व्यक्त की थी। सन् 1980 के आसपास कुछ पेशेवर लोगों ने ऑटिज्म के संबंध में अपनी रुचि लेना आरंभ किया परंतु मानसिक मंदता एवं ऑटिज्म को लेकर उनमें अनेक शंकाएं थीं। सन 1991 में दिल्ली में कुछ अभिभावकों ने 'एक्शन फॉर ऑटिज्म' नाम की संस्था बनाई जो न सिर्फ बच्चों के लिए बल्कि उनके माता-पिता की ट्रेनिंग के लिए भी काम करती है। सन् 1996 में पहली बार ऑटिज्म बच्चों के लिए 'ओपन डोर' के नाम से एक स्कूल भी खोला गया। धीरे-धीरे अन्य स्थानों में भी स्कूल खोले जाने लगे जैसे मुंबई में 'आशियाना इंस्टीट्यूट फोरम फॉर ऑटिज्म', हैदराबाद में 'डेवलपमेंट सेंटर फॉर एक्सेप्सन् चिल्ड्रन', चेन्नई में 'वी कैन', भुनेश्वर में कैच, पुणे में 'पथ वेस', अहमदाबाद में 'तनेय फाउंडेशन', पश्चिम बंगाल में 'ऑटिज्म सोसायटी' आदि विभिन्न प्रदेशों में खोले गए। 2014 में गुरु ग्राम में 'ऑटिज्म सेंटर फॉर एक्सीलेंस' द्वारा लिखावट और पेशीय कौशल पर मॉडल भी बनाया गया जिसका उद्देश्य ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर वाले बच्चों में अप्लाइड बिहेवियर एनालिसिस के माध्यम से संप्रेषण, स्व सहायता एवं सामाजिक कार्य संबंधित कौशल विकसित करना था। भारत सरकार द्वारा नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम 1995 को निश्चित किया गया एवं ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर को विकलांगता की श्रेणी में लाया गया साथ ही एक नया अधिनियम 'नि:शक्त व्यक्ति अधिकार अधिनियम, 2016' बनाया गया। अब ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर वाले लोगों को भी सब अधिकार उपलब्ध कराना राज्य एवं केंद्र सरकार दोनों का ही दायित्व हो गया है। 2017 में विकलांग व्यक्ति शिक्षा अधिनियम द्वारा बनाए गए अक्षमताओं में ऑटिज्म को भी सम्मिलित किया गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक बच्चे को विकलांगता मुक्त और उचित सार्वजनिक शिक्षा दी जाए। सन् 2018 में भारतीय संसद ने ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर वाले व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय ट्रस्ट बिल भी पारित कर दिया है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर से संबंधित साहित्य के पुनरावलोकन के अंतर्गत निम्न अध्ययन किया गया -

कोलमैन (1982) ने 'स्टडी अबाउट ऑटिज्म अमग् एक्सपर्ट एंड केयर गिवर्स' पर अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ऑटिज्म एक्सपर्ट एवं केयर गिवर्स के मध्य ऑटिज्म संबंधी ज्ञान की जांच करना था। न्यादर्श के रूप में 950 केयर गिवर्स एवं 80 ऑटिज्म विशेषज्ञ से प्रश्नावली के माध्यम से सूचना एकत्र कर उसका विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया कि ऑटिज्म विशेषज्ञ के ऑटिज्म संबंधी ज्ञान में कुछ कमी नहीं है परंतु देखभाल कर्ताओं के मध्य कुछ सेवाओं के संबंध में जानकारी का अभाव पाया गया जैसे बच्चों को कैसे प्रशिक्षित किया जाए, तकनीकी साधनों का उपयोग किस प्रकार किया जाए, नए-नए थेरेपी के माध्यम से किस प्रकार व्यवहार का परिमार्जन किया जाए आदि। **डेल (2006)** ने 'स्टडी ऑन मदर एटरीब्यूशन देयर चाइल्ड आफ ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर' पर अध्ययन किया। इस अध्ययन में 16 ऑटिस्टिक बच्चों की माताओं से साक्षात्कार के माध्यम से बच्चों से संबंधित उनकी आशाओं के बारे में अध्ययन किया एवं यह पाया कि इनमें अपने बच्चों के भविष्य के बारे में बहुत अधिक चिंता, हताशा एवं नकारात्मक विचार हैं। उन्हें अपने परिवार के सदस्यों के साथ बहुत सी मुश्किलों का सामना भी करना पड़ता है। इस अध्ययन में यह भी सुझाव दिया गया कि ऐसी स्थिति में पेशेवरों की सहायता की काफी आवश्यकता है। मरसर (2006) ने 'आईडेंटिफाई दा पैरेंटल व्यूज़ ऑन द कॉसेस ऑफ ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर' पर अध्ययन किया। इस अध्ययन हेतु 41 अभिभावकों को न्यादर्श के रूप में लिया गया एवं प्रश्नावली के माध्यम से इन अभिभावकों से सूचनाएं प्राप्त की गईं। निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि अनुवांशिक कारणों को (90.2%), आहार कारकों को (51.2%), एवं टीका करण को (40%) अभिभावकों ने ऑटिज्म का कारण माना। सुझाव के तौर पर यह भी कहा गया कि ऑटिज्म विकास से संबंधित गलत सूचनाएं एवं गलत समझ को दूर करने की काफी आवश्यकता है। **बाबू जॉर्ज (2015)** ने 'स्टडी ऑफ ऑटिज्म डेवलपिंग एंड वेलेडेटिंग डायग्नोसिस क्लिनिकल टूल' पर अध्ययन किया। इस शोध का उद्देश्य 2 से लेकर 6 वर्ष तक के बच्चों में ऑटिज्म की पहचान हेतु एक टूल

का निर्माण करना था। इस कार्य के लिए शोधकर्ता ने चाइल्ड डेवलपमेंट रिसर्च ट्रेनिंग एंड टीचिंग सेंटर के बच्चों पर कार्य किया। तत्पश्चात् चाइल्ड हुड ऑटिज्म टूल का निर्माण किया जिसमें 24 पद थे जो निम्न कारकों जैसे सामाजिक, व्यक्तिगत, संप्रेषण, व्यवहार, आक्रामकता, पुनरावृत्ति आदि। इस टूल के माध्यम से आसानी से ऑटिज्म की पहचान की जा सकती है। **मिश्रा एवं श्रीदेवी (2017)** ने 'एनालिसिस ऑफ द रिपोर्ट ऑफ पेरेंट्स ऑन एलारामिंग साइन ऑफ ऑटिज्म इन चिल्ड्रन' पर अध्ययन किया। इस अध्ययन हेतु एक्स पोस्ट फैक्टो विधि का प्रयोग किया गया एवं हिमकुटुक् न्यादर्श विधि के माध्यम से 60 ऑटिज्म वाले बच्चों के अभिभावकों से साक्षात्कार लेकर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अधिकतर अभिभावकों ने अपने बच्चों में ऑटिज्म के जो संकेत देखे थे उनका प्रतिशत इस प्रकार है – निर्देशों का पालन करने की असमर्थता (88%) ,अजीबो – गरीब व्यवहार(72%), संप्रेषण करने की असमर्थता(82%), ध्यान एकाग्रता में कमी(83%); समूह में रहने की असमर्थता (55%)। **रुबक विजय (2018)** ने 'अ स्टडी टू एसेसमेंट दा नॉलेज ऑन ऑटिज्म अमंग पेरेंट्स' पर अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अभिभावकों में ऑटिज्म संबंधी ज्ञान का अध्ययन करना था। इस कार्य हेतु 50 अभिभावकों से साक्षात्कार के माध्यम से सूचना एकत्र कर उनका विवरणात्मक विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला गया कि केवल 26 अभिभावकों को ही ऑटिज्म संबंधी ज्ञान था, जबकि, 24 अभिभावक इस डिसऑर्डर से अनभिज्ञ थे। सुझाव के रूप में इस अध्ययन में कहा गया है कि अभिभावकों में ऑटिज्म क्या है, यह क्यों होता है, इसके लक्षण क्या है, इसका उपचार कैसे होता है, पहचान किस प्रकार की जाती है, इन सब की जानकारी होनी चाहिए।

उक्त सभी शोध का पुन: अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इन शोधों में माता– पिता के बीच ऑटिज्म संबंधी जानकारी की जांच, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर के लिए उत्तरदाई कारकों की पहचान, ऑटिस्टिक बच्चों के माता– पिता की बच्चे से संबंधित आशाओं के बारे में, अध्ययन किया गया है। लेकिन कोई भी अध्ययन बच्चों में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर की प्रारंभिक पहचान की प्रक्रिया के विषय में नहीं किया गया है। अत: इस विषय पर शोध कार्य कर यह शोध पत्र प्रस्तुत किया गया।

अध्ययन का औचित्य

इंटरनेशनल क्लीनिकल एपिडेमियोलॉजी नेटवर्क ट्रस्ट (2016) के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 2 से 9 वर्ष के बच्चों में एक से डेढ़ प्रतिशत बच्चों को ऑटिज्म है और यह संख्या दिन–व–दिन बढ़ती जा रही है। ऑटिज्म, लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में 4 गुना अधिक होता है तथा इसमें प्रजाति या सामाजिक सीमा नहीं होती है। पारिवारिक आय, जीवन शैली तथा शैक्षिक स्तर ऑटिज्म की संभावना को प्रभावित नहीं करते हैं (सुनयन, 2014)। ऑटिज्म आजीवन रहने वाला विकार है, इसलिए बच्चे को इस विकार के साथ प्रबंधित करना बहुत आवश्यक है। इस कार्य में परिवार के साथ–साथ समाज के सदस्यों और सरकार की भी सहभागिता आवश्यक है। छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा नि:शक्तता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य किया जा रहा है जिसके लिए वर्ष 2017 में छत्तीसगढ़ को सर्वश्रेष्ठ राज्य का राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया। इससे पहले 2016 में भी छत्तीसगढ़ को दिव्यांग जनों के सशक्तिकरण संबंधी कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ राज्य का राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया था। छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा गंभीर एवं बहु दिव्यांग व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए विभिन्न योजनाएं जैसे सामर्थ्य विकास योजना, राष्ट्रीय नि:शक्त जन पुनर्वास कार्यक्रम, दीनदयाल नि:शक्तजन पुनर्वास कार्यक्रम, नि:शक्त जन सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना चलाई जा रही है। नि:शक्त बच्चों को निशुल्क छात्रावास, शिक्षण प्रशिक्षण, भोजन एवं आवासीय सुविधा उपलब्ध करा कर उनकी शिक्षा एवं पुनर्वास की भी व्यवस्था की जा रही है। दिव्यांगों को शासकीय सेवा में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु अधिनियम के अनुरूप शासकीय सेवा में आरक्षण को 6% से बढ़ाकर 7% किया गया है। राज्य की योजनाओं के अंतर्गत नि:शक्त व्यक्तियों के समग्र पुनर्वास का कार्यक्रम प्रारंभ कर जिला बिलासपुर, राजनांदगांव एवं कोरिया के 1060 ग्राम पंचायत तथा 17 जनपद पंचायतों का चयन कर सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही है। उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान करने हेतु विशेष दिव्यांग महाविद्यालय भी रायपुर में संचालित किए जा रहे हैं। राज्य सरकार द्वारा चलाई जाने वाली समस्त योजनाओं का लाभ ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर से ग्रसित व्यक्तियों को भी प्रदान किया जा रहा है। उन्हें भी नि:शक्तता का प्रमाण पत्र जारी किया जा रहा है। जिला पुनर्वास केंद्र के माध्यम से ऑटिज्म विकार से ग्रसित बालक/बालिका के व्यवहार परिमार्जन एवं संप्रेषण क्षमता को विकसित करने हेतु विभिन्न थेरेपी की भी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। राज्य में ऑटिज्म बच्चों की शिक्षा हेतु विभिन्न विद्यालय भी गैर सरकारी संस्था द्वारा संचालित किए जा रहे हैं। इन विद्यालयों में बच्चों के संपूर्ण विकास हेतु विभिन्न

गतिविधियों का भी आयोजन किया जाता है। ऑटिज्म बच्चों के संज्ञानात्मक विकास हेतु शिक्षण के अनेक सिद्धांत एवं सूत्रों का उपयोग करके शिक्षण कराया जाता है एवं भावात्मक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है एवं मनोगत्यात्मक विकास हेतु विद्यालयों में स्वस्थ आदतों, विभिन्न व्यावसायिक कौशल के सीखने का अवसर भी प्रदान किए जाते हैं जिससे वह अपने दैनिक क्रियाओं को आत्मविश्वास के साथ संपन्न कर सके साथ ही अपनी योग्यता अनुसार व्यावसायिक दक्षता प्राप्त कर आत्मनिर्भर बनने की ओर अग्रसर हो सके। ऐसे बच्चों के अभिभावकों को बच्चों के विषय में सही जानकारी प्रदान करके भी उन्हें इस प्रकार के तनाव परिस्थितियों से सामना करने योग्य बनाया जा सकता है जैसे यह विकार क्या है, इसके क्या कारण है, इसके क्या लक्षण है, कौन-कौन से उपचार उपलब्ध है, इन सभी बातों की जानकारी देकर परिवार के सदस्यों को तनाव से दूर किया जा सकता है (बेंसन् 2008)। जब बच्चे किसी व्यवहार में परिवर्तन का प्रदर्शन करना शुरू करता है तो शुरुआती हस्तक्षेप से बच्चे को उचित उपचार दिलवाने में मदद मिल सकती हैं। अत: इस प्रकार की प्रारंभिक पहचान करना काफी आवश्यक है। इन्हीं सब आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने इस विषय पर अध्ययन करने की आवश्यकता महसूस की। इस अध्ययन में न केवल बच्चों में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर को पहचानने की प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है बल्कि आयु के अनुसार उनके शुरुआती लक्षणों की भी व्याख्या की गई है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बच्चों में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर को पहचानने की प्रक्रिया का अध्ययन करना है।

शोध विधि एवं न्यादर्श

यह शोध अध्ययन एक वर्णनात्मक सर्वेक्षण है एवं इसकी प्रकृति गुणात्मक है। बच्चों में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर को पहचानने की संपूर्ण प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए शोधार्थी द्वारा छत्तीसगढ़ राज्य के 20 ऑटिज्म विशेषज्ञों का चयन किया गया जिसमें पाँच शिशु रोग विशेषज्ञ, तीन शासकीय अस्पताल में पदस्थ मनोवैज्ञानिकों एवं छह निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे मनोवैज्ञानिकों, चार मनोरोग विशेषज्ञ, दो जिला पुनर्वास केंद्र संयोजकों को चयनित कर उनसे संपर्क किया गया।

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से ऑटिज्म विशेषज्ञों से साक्षात्कार लिया गया। इस उपकरण में विभिन्न प्रकार के प्रश्न जैसे कि दो वर्ष से कम/अधिक उम्र के बच्चों में ऑटिज्म की पहचान करने की प्रक्रिया, कौन से उपकरण का उपयोग, उनके व्यवहार, आटिज्म बच्चों की आंकलन करने में होने वाली समस्या, अभिभावकों को दीये जाने वाले सुझाव, एवं अभिभावकों की अपेक्षा आदि विशेषज्ञों से पूछे गये।

प्रदत्तों का विश्लेषण

इस अधयन में प्रदत्तों का संकलन साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त कर रिकॉर्डिंग किया गया एवं उसे प्रतिलेखन किया गया। प्रतिलिखित साक्षात्कार प्रदत्तों को बार-बार पढ़ा गया एवं पूछे गये प्रश्नानुक्रम में प्रदत्तों को प्रश्नवार लिख कर सारांश विषयवस्तु विश्लेषण तकनीक के माध्यम से प्रदत्तों का विश्लेषण किया गया एवं निष्कर्ष प्राप्त किये गए।

निष्कर्ष

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं-

1. अगर बच्चा दो वर्ष से कम आयु का है तब मनोवैज्ञानिकों द्वारा माता-पिता से बच्चों से संबंधित समस्याओं को सुनकर जैसे 'नाम पुकारे जाने पर प्रतिक्रिया नहीं देना', 'कुछ भी ना बोलना', 'आंख मिलाने में असमर्थ होना', 'अपने माता-पिता को ना पहचान पाना', आदि के बताए जाने के आधार पर ऑटिज्म की प्रारंभिक पहचान की जाती है। कभी-कभी विशेषज्ञ एम.चैट. (M-CHAT) मानकीकृत उपकरणों के माध्यम से भी ऑटिज्म की प्रारंभिक पहचान करते हैं।
2. यदि बच्चे की आयु दो वर्ष से अधिक है तब मनोवैज्ञानिकों द्वारा माता-पिता से बच्चों से संबंधित समस्याओं को सुनकर जैसे 'बच्चा अपना नाम सुनकर प्रतिक्रिया नहीं देता', 'अकेले खेलना पसंद करता है', 'चेहरे पर अजीबो-गरीब हाव-भाव होना', 'अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाता है', 'किसी शब्द या वाक्य को दोहराता है', 'बार-बार एक ही काम करता है', 'अजीब -अजीब आवाज निकालता है', 'आक्रमणकारी व्यवहार करता है', 'चीजों को तोड़फोड़ करता है', 'अपने काम खुद से नहीं कर पाता है', 'किसी को देखकर नहीं मुस्कुराता है', 'भीड़ भाड़ पसंद नहीं करता है', 'हाथ को स्थिर नहीं रखता है' आदि के आधार पर भी विशेषज्ञ द्वारा ऑटिज्म की पहचान की जाती है। इसके साथ साथ विशेषज्ञ आई.एस.ए.ए.(ISAA) मानकीकृत उपकरण के माध्यम से भी बच्चों में ऑटिज्म की पहचान

करते हैं।

3. विशेषज्ञों का कथन था कि ऑटिज्म बच्चे सामान्य बच्चों से बहुत अलग होते और उनकी रुचियां सामान्य बच्चों से काफी अलग होती है जैसे, ऑटिज्म बच्चे 'अपनी चीजों को नहीं पहचानते', 'किसी से मिलने के दौरान मुस्कुराते नहीं हैं', 'नाम पुकारे जाने पर प्रतिक्रिया नहीं देते', 'अलग रहने की कोशिश करते हैं', 'स्वयं से खाना नहीं खा सकते', 'इशारों का प्रयोग अधिक करते हैं', 'शब्दों को दोहराते हैं', 'अपने में ही व्यस्त रहते हैं', 'दिनभर उछल कूद करते हैं', 'अपनी जरूरतों को नहीं बताते', 'भीड़ भाड़ में जाना पसंद नहीं करते हैं', 'अपनी तकलीफ को नहीं बताते हैं, आदि।

4. प्रदत्तों के विश्लेषण से यह पाया गया कि ऑटिज्म के आकलन हेतु विशेषज्ञों के द्वारा अधिकतर 'ऑटिज्म रेटिंग स्केल', 'शॉर्ट सेंसरी प्रोफाइल', 'एम. चैट', आई. एस. ए.ए.', 'सी.ए.आर.एस' आदि मानकीकृत उपकरणों का प्रयोग भी किया जाता है। इन उपकरणों के माध्यम से विशेषज्ञों के द्वारा बच्चों में ऑटिज्म के प्रकार एवं स्तर का भी निर्धारण किया जाता है।

5. बच्चों में ऑटिज्म का आंकलन करते समय विशेषज्ञों को इन बच्चों के माता-पिता को यह समझाने में अधिक समस्या होती है कि 'उनके बच्चे को ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर' है, एवं अभिभावकों को लगता है कि कुछ समय बाद उनका बच्चा सामान्य हो जाएगा। विशेषज्ञों का कथन था कि 'कभी-कभी माता-पिता अपने बच्चे की समस्याओं को सही-सही नहीं बताते व कुछ लक्षणों को छुपाते है' जिसके कारण उन्हें आंकलन करने में समस्या होती है। अगर बच्चा बहुत अधिक उत्तेजना वाला है तो ऐसी स्थिति में उन्हें शांत करने में भी काफी समस्या होती है। विशेषज्ञों ने यह भी कहा कि 'अभिभावक मानने को तैयार ही नहीं होते कि उनका बच्चा असामान्य नहीं है। उनका मानना है कि बच्चा अभी छोटा है जब बड़ा होगा तो स्वयं ठीक हो जाएगा और वे जितनी अधिक समस्या बताएंगे बच्चे का उपचार उतना लंबा चलेगा'।

6. इन बच्चों के माता- पिता का आपस में तालमेल सही नहीं होता है वह आपस में ही बच्चे को लेकर बहस करने लगते हैं, कभी मां स्वीकार नहीं करती है कि उनका बच्चा असामान्य नहीं है, तो कभी पिता द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता इसलिए विशेषज्ञों को इन बच्चों के माता-पिता को समझाने में ही कई बैठक लग जाती हैं।

7. विशेषज्ञों द्वारा बच्चों के माता-पिता को यही सुझाव दिया जाता है कि 'वे सर्वप्रथम अपने बच्चे को स्वीकार करें और उसे जरूरत के अनुरूप थेरेपी दिलवाए'। यह भी सुझाव दिया जाता है कि वह अपने 'बच्चे को अकेले ना छोड़े', 'जो कुछ प्रोफेशनल द्वारा सिखाया जाता है उसे घर पर भी सिखाने की कोशिश करें अर्थात् इन बच्चों के साथ ज्यादा से ज्यादा मेहनत करें क्योंकि देर से सही लेकिन यह सीखते जरूर है'। विशेषज्ञों का सुझाव था कि बच्चों को आवश्यकतानुसार 'स्पीच थेरेपी', एवं 'ऑक्यूपेशनल थेरेपी' दिलाएं। इन बच्चों के अभिभावकों को यह भी सुझाव दिया जाता है कि बच्चों के लिए विशेष शिक्षा की व्यवस्था करें।

8. ऑटिज्म विशेषज्ञों द्वारा ऑटिज्म बच्चों के अभिभावकों से यही अपेक्षा की जाती है कि वह 'अपने बच्चे से संबंधित समस्याओं को उनके सामने रखें, जिससे कि उनकी जरूरतों के अनुसार उनका उपचार किया जा सके, वह अपने बच्चे को स्वीकार करें एवं अपना नजरिया इन बच्चों के प्रति सकारात्मक रखे'; इन बच्चों को समाज से छुपाए नहीं', 'स्वयं को सहज महसूस करें', 'बड़े ही धैर्य से इन बच्चों को घर पर भी सिखाने की कोशिश करें'; 'इनके प्रति सहानुभूति नहीं बल्कि परानुभूति रखें', 'बच्चों को अधिक से अधिक व्यस्त रखने की कोशिश करें', 'उन्हें साइकिलिंग कराएं और जरूरत के अनुसार थेरेपी दिलाएं'।

उपसंहार

बच्चों को पालना आसान काम नहीं होता है। यह अपने आप में ही माता- पिता के लिए चुनौती होती है, बच्चा अगर ऑटिज्म से पीड़ित है तो यह कार्य और भी मुश्किल और चुनौतीपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस स्थिति में बच्चे के संज्ञानात्मक व सांवेगिक विकास के लिए ज्यादा प्रयास करने पड़ते हैं। ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर सामाजिक विकृतियों, संवाद में परेशानी, प्रतिबंधित व्यवहार का दोहराव और व्यवहार का स्टीरियो टाइप पैटर्न द्वारा पहचाने जाने वाला तंत्रिका विकास संबंधी जटिल विकार है जो व्यक्ति के जीवन के प्रथम 3 वर्षों के दौरान उत्पन्न होता है (अमेरिकन विकलांगता अधिनियम, 1990)। यदि शुरुआत में ही इस विकार के लक्षणों की पहचान कर ली जाए तो कुछ हद तक बच्चा ठीक हो सकता हैं। अज्ञात कारणों से होने वाली इस

बीमारी का विशेषज्ञ अभी तक कोई इलाज नहीं ढूंढ पाए है, फिर भी, इसके लक्षणों को देखते हुए उचित चिकित्सा परामर्श प्रदान किया जा सकता है। यह मानसिक मंदता की स्थिति नहीं है क्योंकि ऑटिज्म से पीड़ित लोग कला, संगीत, लेखन, शिक्षा आदि में उत्कृष्ट कौशल दिखा सकते हैं (नंदी, 2010)। प्रशिक्षण के माध्यम से इस विकार वाले बच्चों के सामाजिक अंत:क्रिया, शाब्दिक तथा अशाब्दिक संप्रेषण, संवेग एवं क्षमता में सुधार किया जा सकता है (रहमान, 2011)। इन बच्चों के समुचित प्रबंधन के लिए समूह उपागम की भी आवश्यकता होती है, जिसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक, विशेष शिक्षक, बाल रोग विशेषज्ञ, वाणी एवं भाषा चिकित्सक यह सभी सामूहिक रूप से अपना योगदान देते हैं। इन सभी में बाल रोग विशेषज्ञ की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश मामलों में माता-पिता पहले इनसे ही संपर्क करते हैं। जब बच्चे में आयु के अनुसार परिमाणात्मक परिवर्तन हो रहा है, लेकिन गुणात्मक परिवर्तन नहीं हो पा रहा है तो ऐसी स्थिति में माता-पिता सबसे पहले बाल रोग विशेषज्ञ के पास जाकर बच्चे से संबंधित अपनी समस्याओं को बताते हैं। शिशु रोग विशेषज्ञों द्वारा बच्चों से संबंधित समस्याओं को सुनकर एवं बच्चे की गतिविधियों को देखकर यह अनुमान लगा लिया जाता है कि बच्चा सामान्य नहीं है और उसे विकास से संबंधित समस्या है इसलिए वे इन बच्चों के माता-पिता को मनोवैज्ञानिकों के पास जाने की सलाह देते हैं।

सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन के ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर विशेषज्ञों से प्राप्त कथन के आधार पर इन बच्चों के माता-पिता को यही सुझाव दी जाती है कि यदि बच्चों में किसी भी प्रकार के असामान्य व्यवहार परिलक्षित होने पर तत्काल ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर विशेषज्ञों से संपर्क करें एवं उन्हें बच्चे से सम्बंधित सभी जानकारी साझा करें और कोई भी बात न छुपायें, अपने बच्चे को स्वीकार करें एवं अपना नजरिया इन बच्चों के प्रति सकारात्मक रखे, बच्चों के साथ ज्यादा से ज्यादा समय बिताएं, उनके हावभाव को समझें, उनसे बात करने की कोशिश करें, अगर बच्चा कुछ अच्छा करता है तो उसकी तारीफ करें, इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा। अगर उन्हें मालूम हो जाएं कि उनका बच्चा ऑटिस्टिक है तो उसके ट्रीटमेंट पर जरूर ध्यान दें, डॉक्टर व विशेषज्ञों द्वारा जो भी उपाय बताया जाए उसे अपनाएं, बहुत धैर्य के साथ सकारात्मक व्यवहार करें, अपने बच्चे की ठीक होने की उम्मीद न छोड़ें क्योंकि उनके उम्मीद छोड़ने का सबसे बुरा असर उनके बच्चे पर ही होगा। ऑटिज्म वाले बच्चे को हम उम्र के साथ खेलने का मौका दें ताकि अन्य बच्चों के साथ घुल-मिल सकें।

संदर्भ -

- एडवूड.टी (1995) एस्पर्जर सिंड्रोम आ गाइड फॉर पैरेंट्स एंड प्रोफेशनल्स।
- कोलमैन (1982) 'सर्वे ऑफ नॉलेज अबाउट ऑटिज्म अमग् एक्सपर्ट एंड केयर गिवर्स' वॉल्यूम 7 पेज 189 - 196
- डेल (2006) 'स्टडी ऑन मदर एटरीब्यूशन देयर चाइल्ड आफ ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर' सोशल साइंस एंड मेडिसिन 5(87)132 3।
- बाबू जार्ज (2015). 'स्टडी आफ ऑटिज्म डेवलपिंग एंड वैलिडिटी एंड डायग्नोसिस क्लिनिकल टूल' पीएच.डी. थिसिस, अलगप्पा यूनिवर्सिटी।
- बेंसन् (2008) 'मैटरनल इंवॉल्वमेंट इन द एजुकेशन ऑफ यंग चिल्ड्रन विथ ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर' वॉल्यूम 12 पेज 47-61
- मिश्रा एवं श्रीदेवी(2017) 'एनालिसिस ऑफ द रिपोर्ट ऑफ पेरेंट्स ऑन एलारामिंग साइन ऑफ ऑटिज्म इन चिल्ड्रन' जर्नल आफ कम्युनिटी गाइडेंस एंड रिसर्च वॉल्यूम 34 पेज नंबर 105- 108।
- रहमान (2011) 'स्पीच डेवलपमेंट ऑफ ऑटिस्टिक चिल्ड्रन इंटरएक्टिव कंप्यूटर गेम्स टेक्नोलॉजी एंड स्पेशल एजुकेशन, वॉल्यूम 8 पेज 208-223।

ISSN 2278 - 0327

दूधनाथ सिंह के साहित्य में समाज में चित्रित जीवन मूल्य

डॉ. कविता चौधरी
शोध निर्देशिका
विभाग – हिन्दी
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

वीनस
शोध छात्रा
विभाग – हिन्दी
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

सारांश:

दूधनाथ सिंह कथा तथा शिल्प साहित्य की व्याख्या करते हुए जीवन मूल्यों का वर्णन करते हैं। उनकी कहानियों के जो विचार है वो दूसरे कथाकारी को समाप्त कर रही है। दूधनाथजी पुराने मूल्यों को छोड़कर नए मूल्यों की तराश की है। समाज से रूढ़ीवादिता को हराकर नए जीवन मूल्य स्थापित किए है। उन्होंने मानव के मूल्यों की समता और उनकी जरूरत के अनुसार उसी रूप में ढ़ाला।

मुख्य शब्द:–अस्मिता, थरथरहर, संक्राति, बौद्धिक

प्रस्तावना:

दूधनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में मानव जीवन तथा मानव समाज से संबंधित नए मूल्यों को स्थापित किया है। उनकी कहानियों का पक्ष मानवतावादी हो चुका हे। ये पुरा संसार बौद्धिक संक्राति का शिकार हो रहा है। सांस्कृतिक मूल्यों का विद्यान तथा हाहाकार मची हुई हैं। पश्चिमी सभ्यता ने टेक्नोलोजी के माध्यम से पूरे विश्व पर काबू पा लिया है। मनुष्य टेक्नोलोजी को अपनाकर असहाय सा महसूस करने लगा है। टेक्नोलोजी ने आधुनिकता को तो जन्म दिया है परंतु मानव मूल्यों को भी नष्ट किया है। दूधनाथ सिंह ने ये सब महसूस किया है कि मानव जमीन में घसँता जा रहा है। मानव मूल्यों की रक्षा के लिए उन्होंने कुछ अपने साहित्य में मानव मूल्यों को डाला है।

स्वतंत्रता के पश्चात् सभी कहानीकार समस्याओं का सामना कर रहे है। उन्हें विफलता ही विफलता हाथ लग रही है। इतिहास के नए–नए आयाम कथनलेखन की नई भूमिका तैयार करती है। उपभोक्तावादी संस्कृति विश्व में मनुष्य जीवन की निरंतर काट रही है। इन समस्याओं को देखने वाले कहानीकार बहुत कम मिलते है। सामाजिक मूल्यों की दुधनाथ सिंह परिभाषित करते है कि जो दलाल मीठे बोलते है उनकी मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। परंतु इसी समय मैंने देखा है कि कपड़े की दुकान पर जो दलाल होते है वो बड़े ही जालिम दिखे है। ये कभी रटी–रटाई बाते तोते की तरह बोलते है।

जब कोई बंगाली हिन्दी बोलने की कोशिश करता है तो मेरे सिर पर ऐसा महसूस होता है कि कोई कीड़ा चढ़ रहा हो यही मेरी विफलता है।[1] मिसरदास ने रगनाथ से इस कमरे में रहने वाले का नाम पूछा। तो दास फटाक से कहता है कि मेरे यहाँ बड़े–बड़े लोगों को देखकर इसको चिड़न होती है। खुद के जैसा ही यह इसको समझता है। मिसीज के साथ एक हफ्ते में पास मिल जाने पर सिनेमा चला जाता है। पहले ये अपनी लड़की को क्यों नहीं संभालता जो घर की गैलरी में लोंडों के साथ खेलती है। दूसरे की बीवियों पर इसकी रात पड़ती है।[2]

उत्सव कहानी के माध्यम से भी दुधनाथ सिंह ने समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है। एक घर में एक विधवा स्त्री अकेली रहती थी। उस विधवा का मर्डर हो जाता है। उसके सभी सगे–संबंधियों को बुलाया गया जब तक उनके सगे–संबंधी नहीं आए तब तक शव की सुरक्षा की जिम्मेदारी डिपार्टमेंट ने संभाली। बहू को विधवा के पोतों ने बहुत बुरी तरह हिला दिया। वह अपने बच्चों को तो कभी गोद में उठाना ही नहीं जानता था अगर बच्चे जबरदस्ती आ भी जाते थे तो उन्हें डाँटता था। बच्चे हमेशा उससे डरते थे वो उसका इंतजार करते थे कि यह कब यहाँ से निकले। परंतु बहू छोटी लिली के साथ अश्लीलता से सड़कों पर घूमता रहता था। और उसकी आवाज में तोतलापन था।[3] इस माहौल में समाज के जीवन मूल्यों की पहचानना कहानीकार के लिए बड़ा ही गौरवपूर्ण था। इसके पश्तात् प्रोफेसर फिर डॉक्टर का नंबर आया ये दोनों ही 35 वर्ष के लगभग थे। एक व्यक्ति बहुत सारे कुत्ते रखता था तो दूसरा इतने ही नौकर रखता था। एक अपने कुत्तों के साथ एक अपने नौकरों के साथ मस्ती करती थी।

प्रोफेसर की पत्नी ने एक कुत्ते का बच्चा तथा डॉ. ने आदमी का बच्चा उपहार स्वरूप दिया। दोनों की आ.... में ले आया गया। कुत्ता भौं-भौं तथा आदमी जल पीना सीख रहा था।[4]

सुखान्त कहानी के माध्यम से भी एक बेबशी का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनकी माँ बूढ़ी हो चुकी थी उसके चेहरे पर झूरीयाँ ही झूरीयाँ आ गई थी। वो चलने भी झूककर लगी थी। उनकी आवाज से रोब हट गया था। वो पूराणिक चारपाई पर ही व्यतीत करती थी। यदि कला को वो भगवान को प्यारी हो गई तो मेरी बीवी दीवारें गिरानी पड़ेगी। एक ही रात में ये सारा काम मिटवाना पड़ेगा। सुबह पिता के सारे सगे-संबंधी इकट्ठे होंगे मेरा जीवन आराम से गुजर रहा है। अब मैं सोने के लिए तैयार हूँ। इंतजार के लिए अब समय दूर नहीं है।[5]

सुखान्त कहानी में एक ओर घटना है जो मानव जीवन से ही संबंधित है। माँ रो रही थी। पत्नी भी डरी हुई थी। दोनों बच्चे भी भय से कांप रहे थे। सड़कों पर हल्की बौछारे गिरने लगी थी। तूफान के बाद धूप निकलनी शुरू हो गई थी। ये लोग पवित्र है परंतु दु:खी है। शोकगीत कहानी भी मानव मूल्यों से ओतप्रोत हैं। इस कहानी में गायत्री जो बहुत ही कम आयु की लड़की है। उसके सामने उसकी माँ को आजाद करवाने का बड़ा मुश्किल कार्य है। वो अपने लक्ष्य पर कार्य करती रहती है। वह छोटी-मोटी बातों पर ध्यान नहीं देती। फिर हम गायत्री के लिए दु:खी है।[7]

दूधनाथ सिंह ने महिला समाज पर होने वाले अत्याचारों को भी स्पष्ट किया है। इसके भीतर कथा में सोम चारपाई पर लेटकर अपनी बातें उठा देता है। वह शर्म महसूस करती हुई उनमें जाती है। वह उसे भागने भी नहीं देता। लेकिन उसकी बांतों को कभी भी पलटकर जवाब नहीं दिया। वह शर्म से इधर-उधर देखकर वही छुपा लेता था। उसकी आंखों के सामने मासूम सोम का चेहरा रहता था।[8]

अत: अंत में हम कह सकते हैं कि दूधनाथ सिंह की कहानियों में जीवन के नए-नए आयाम देखने को मिलते हैं। सभी कथाकारों में से निकलकर दूधनाथ सिंह ने अपनी पहचान सबसे अलग बनाई है। नारी शहरी जीवन की मुसीबतें, आर्थिक तंगी, सामान तारा उसका शोषण बाजारी आदि इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया है।

उन्होंने साधारण लोगों के साथ घटने वाली घटना को भी बड़े अच्छे ढंग से दिखाया है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से नगरीय जीवन को भी चित्रित किया है। निम्न वर्ग तथा मध्यम वर्ग के लोगों की तुलना की है। वर्ण व्यवस्था तथा जातीवाद को भी दूधनाथ सिंह ने अपने साहित्य में दिखाया है।

इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित वर्ग को भी उजागर किया है। स्त्री-पुरूष की लालसा तथा प्रताड़ना को भी उजागर करके दिखाया है। दूधनाथ सिंह को कहानी आंदोलन के जन्मदाता माना जाता है। भाई का शोकगीत, प्रेमकथा का न अन्त कोई, सुखान्त, धर्मक्षेत्रे, कुरूक्षेत्रे, सपाट चेहरे वाला आदमी इन सभी कहानियों में दूधनाथ जी ने समाज को किसी न किसी रूप में चित्रित किया है। माननीय संवेदना को भी उन्होंने दिखाया है।

अत: अंत में हम कह सकते है कि दूधनाथ सिंह ने अपनी कहानियों के माध्यम से टूटते परिवार, नारियों की दशा, ग्रामीण बदलाव आदि को नए रूप में दिखाया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची:

1. सपाट चेहरे वाला आदमी, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या - 40
2. सब ठीक हो जाएगा, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या - 61
3. सुखान्त, उत्सव, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या - 66
4. सुखान्त, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या -66
5. सुखान्त, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या - 126
6. सुखान्त, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या -146
7. सुखान्त, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या -96
8. प्रेम कथा न अंत कोई, दूधनाथ सिंह - पृष्ठ संख्या -86

ISSN 2278 - 0327

चित्तशुद्धि में आर्य अष्टांगिक मार्ग की उपादेयता : एक दृष्टिकोण

नीलू विश्वकर्मा
पीएच.डी. शोधार्थी (योग)
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविध्यालय
साँची (म.प्र.)

डॉ. उपेन्द्रबाबू खत्री
(सहायक प्राध्यापक योग), योग एवं आयुर्वेद विभाग
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविध्यालय
साँची (म.प्र.)

शोध संक्षेपिका -

चित्त का सामान्य अर्थ होता है देखना, सजग होना, चैतन्य होना। इसमें मन की चेतन, अवचेतन और अचेतन तीनों अवस्थायें समाविष्ट हैं। ब्रह्माण्ड के समस्त रहस्य मनुष्य के मन में निहित होते हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य का सारा ज्ञान चित्त में अन्तर्निहित होता है किन्तु राग-द्वेष, मोह लोभ और भय आदि विकारों के कारण वह ज्ञान ढँका रहता है। विकार युक्त चित्त को अकुशल चित्त कहा जाता है, इसका मूल कारण अविद्या और तृष्णा है। अविद्या को नष्ट करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुशीलन आवश्यक है। जिसका आरम्भ सम्यक् दृष्टि से होता है। अकुशल अर्थात् अशुद्ध चित्त से किया जाने वाला कर्म दु:ख उत्पन्न करता है। अत: साधक इस दु:ख से मुक्ति पाना चाहता है। दु:ख से मुक्ति हेतु चित्त की शुद्धि आवश्यक है, चित्त की शुद्धि के लिए भगवान् बुद्ध ने चार आर्य सत्य का उपदेश दिया है। संसार में दु:ख है- जन्म-मरण, जरा-व्याधि। दु:ख का कारण है- तृष्णा। दु:ख निरोध का उपाय- निर्वाण और दु:ख निरोध मार्ग- आर्य अष्टांगिक मार्ग। आर्य अष्टांगिक मार्ग का उद्देश्य है, सभी चित्त मलों (क्लेशों) की शुद्धि करना है। केवल बाह्य जीवन में परिवर्तन करने से अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं होता, इसके लिए मन की पूर्णत: शुद्धि होना आवश्यक है। चार आर्य सत्यों का ज्ञान सम्यक् दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि के ठीक-ठीक अभ्यास करने से चित्त के मल का नाश होता है, जिससे कि मलिन चित्त शुद्ध, निर्मल हो जाता है, साधक सभी दु:खों से मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त करता है। प्रस्तुत शोध - पत्र में चित्त, चित्त का स्वरुप, चित्त के भेद एवं चित्त शुद्धि में आर्य अष्टांगिक मार्ग की उपादेयता का अध्ययन किया गया है।

कूट शब्द- चित्त, आर्य अष्टांगिक मार्ग, शील, समाधि, प्रज्ञा, निर्वाण।

प्रस्तावना-

चित्त शब्द बौद्ध धर्म में एक तकनीकी शब्द है। जिसका समानार्थी शब्द अन्य भाषाओं में नहीं है। चित्त का अर्थ होता है देखना, सजग होना, चैतन्य होना इसमें मन की चेतन, अवचेतन और अचेतन तीनों अवस्थाएँ समाविष्ट हैं। सामान्यत: चित्त का अर्थ मन (MIND) और चेतना (CONSCIOUSNESS) से लिया जाता है। 'चित्त, चैत, मन और मनस् आदि ऐसे शब्द हैं, जो बौद्ध धर्म और दर्शन में बहुधा प्रयुक्त हुए हैं। इनमें थोडा बहुत तार्किक भेद होते हुए भी ये एक अर्थ को अभिप्रेत करता है।'[1]

चित्त का अर्थ- 'चित्त का सामान्यत: अर्थ अंत:करण, मन, हृदय और दिल से लिया जाता है।'[2] चित्त पुरुषवाचक संज्ञा है, जिसका संबंध अंत:करण चतुष्टय से है। अंत:करण चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से होता है।

चित्त की परिभाषा-

'*चित्तेन नीयति लोको*' (संयुत्तनिकायपालि-1/1/62) अर्थात् चित्त से ही विश्व नियन्त्रित होता है।[3] मन की संकल्पना जटिल है और यह विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग हैं। बौद्ध मत में मन के लिए चित्त शब्द का उपयोग हुआ है और इसका अर्थ बहुत व्यापक है। इसमें संज्ञान, धारणा, (अनुत्रण), मूर्त एवं अमूर्त विचार भावनाएं, सुख-दु:ख की अनुभूति ध्यान एकाग्रता और बुद्धि इत्यादि अर्थ समाविष्ट हैं। जब बौद्ध मत मन को उल्लेखित करता है तो इसमें सभी प्रकार की मानसिक गतिविधियाँ निर्दिष्ट होती हैं। बौद्ध धर्म के सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ धम्मपद के प्रथम अध्याय की प्रथम दो गाथाओं में उपदिष्ट है कि सभी प्रकार की मानसिक क्रियाकलापों मन ही प्रधान है, समस्त कार्यों अथवा क्रियाओं का आरम्भ मन से होता है सभी धर्म मनोमय हैं। धर्म अर्थात् *धारयते इति धर्म:* अर्थात् जिसको धारण किया जाए वही धर्म है। धर्म रूपी गाड़ी का चालक मन होता है। 'जब कोई व्यक्ति अपने मन को मलिन (मैला) करके कोई कोई शब्द या

वाणी बोलता है तथा शरीर से कोई कर्म करता है, तब दु:ख उसके पीछे-पीछे ऐसे हो लेता है, जैसे गाड़ी के चक्के (पहिये) बैल के पैरों के पीछे-पीछे हो लेता है और जब कोई व्यक्ति शुद्ध एवं स्वच्छ (निर्मल) मन से वाणी बोलता अथवा शरीर से कोई शुभ कर्म करता है, तब सुख उसके पीछे ऐसे हो लेता है जैसे छाया।'[4] नाम और रूप की संयुक्त अभिव्यक्ति ही मनुष्य का शरीर है। यह एक रथ की तरह है जिसको कि मन रूपी रथी, इन्द्रियाँ रूपी घोड़ों को चलाने वाला है। बौद्ध मत में आत्मा जैसे किसी दूसरे तत्व की जरुरत मन और शरीर को समझने के लिए आवश्यक नहीं है। यदि चित्त (मन) को दीर्घकाल तक किसी एक अभ्यास से सही मार्ग पर लगाया जाये, तो शरीर का सदुपयोग करते हुए जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है। धम्मपद में कहा है कि- 'जो कोई पुरुष, स्त्री, गृहस्थ अथवा भिक्खु (प्रव्रजित), गृहत्यागी चित्त को संयमित करेंगे, वे मार के बंधन से मुक्त हो जायेंगे' [5] बौद्ध मत में 89 प्रकार के चित्त का वर्णन है जो कि निम्नलिखित वर्गों में विभाजित है-

1. कामावाचार चित्त जो 54 प्रकार के हैं।
2. रूपावचार चित्त जो 15 प्रकार के है।
3. अरूपावचार चित्त जो 12 प्रकार के है।
4. लोकोत्तर चित्त जो 08 प्रकार के हैं। इस प्रकार से कुल 89 प्रकार के चित्त का वर्णन बौद्ध मत के अंतर्गत देखने को मिलते हैं।

मिलिन्द- प्रश्न नामक ग्रन्थ में भन्ते नागसेन ने राजा मिनाण्डर को एक प्रश्न के उत्तर में सात प्रकार के चित्त का वर्णन किया है।[6] जो इस प्रकार हैं-

1. संक्लेश चित्त- जो राग, द्वेष और मोहयुक्त क्लेशों से युक्त है तथा जिन्होंने शरीर-शील, चित्त और प्रज्ञा की भावना नहीं की है, उनका चित्त भारी, मोटा और मंद होता है। यहाँ पर भारी, मोटा और मन्द से आशय अकुशल चित्त के विभिन्न स्तरों से है।

2. स्त्रोतापन्नका चित्त-जो चित्त बुरी राह की ओर नहीं जा सकते, जो सच्चे सिद्धांत को जान चुके हैं, तथा बुद्ध के धर्म को जानते हैं, उनका चित्त तीन भ्रम मूलक विषयों में हल्का और तेज होता है तो भी आर्य मार्ग में भारी, मोटा और मन्द होता है। यहाँ पर हल्का और तेज से आशय कुशल चित्त के विभिन्न स्तरों से है

3. सकृदागामी का चित्त- जिनमें राग-द्वेष और मोह नाममात्र के रह गये हैं, उनका चित्त पांच स्थानों में हल्का और तेज होता है तो भी दूसरी ऊपर के बातों में भारी और मंद होता है।

4. अनागामी चित्त- जिनके नीचे के पांच बंधन कट गये हैं, उनका चित्त दस स्थानों में हल्का और तेज होता है, किन्तु ऊपर के भूमियों में भारी और मंद होता है अर्थात् कुछ क्लेश (चित्त के मैल) शेष रहते हैं।

5. अर्हत का चित्त- जिनके आस्रव क्षीण हो गये हैं, जिनके सभी क्लेश हट गये हैं, जिनके ब्रह्मचर्य-वास (वीतकाम) पूरे हो गये हैं, जिनके जो कुछ कार्य करने के थे सभी समाप्त हो गये हैं , जिनके सभी भार उतर गये हैं, जो सच्चे ज्ञान तक पहुँच गये हैं, जिनके भव-बंधन बिल्कुल कट गये हैं तथा जिनके चित्त पूर्णत: शुद्ध हो गये हैं, उनका चित्त किसी भी श्रावक के करने तथा जानने वाली सभी बातों में हल्का और तेज होता है, किन्तु प्रत्येक बुद्ध की भूमियों में भारी और मंद होता है, क्योंकि श्रावक की बातों में उनका चित्त शुद्ध हो गया तो प्रत्येक बुद्ध की बातों में शुद्ध नहीं हुआ है। बल्कि अभी कुछ मैल शेष है।

6. प्रत्येक बुद्ध का चित्त- जो अपने मालिक स्वयं हैं जिनको किसी आचार्य की आवश्यकता नहीं रही, जो गेंडे के सींग की तरह अकेले रहने वाले हैं, और जो अपने जीवन में परिशुद्ध तथा निर्मल हो गये हैं, उनका चित्त अपने विषय में हल्का और तेज होता है, किन्तु सर्वज्ञ बुद्ध की भूमियों में भारी और मंद होता है, क्योंकि अपने विषय में बिल्कुल परिशुद्ध और निर्मल हो गये हैं, तो भी सर्वज्ञ बुद्ध की भूमियाँ व्यापक हैं।

7. सम्यक् संबुद्ध का चित्त- जो सम्यक् संबुद्ध हो गये हैं, सर्वज्ञ दस बलों को धारण करने वाले हैं, जो चार प्रकार के वैशारद्यों से युक्त अट्ठारह बुद्ध धर्मों से युक्त हैं, जिन्होंने इन्द्रियों को पूरा-पूरा जीत लिया है, जिनके ज्ञान कहीं नहीं रुकते हैं उनका चित्त सभी जगह हल्का और तेज रहता है वह सबसे उत्तम चित्त होता है। ऐसा चित्त जिसका होता है उसे सम्यक् संबुद्ध कहा जाता है क्योंकि वह सभी तरह से शुद्ध हो गये हैं वह निर्वाण को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

चित्त का स्वरूप-

चित्त के स्वरूप के बारे में धम्मपद के चित्तवग्ग में स्पष्ट किया गया है कि- चित्त चंचल है, चपल है, दर्-रक्ष्य है, दुर्-निवार्य है। मेधावी पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को।[7]

चित्त विशुद्धि-

बुद्ध धर्म में अत्यंत दुर्लभ प्रव्रज्जा को पाकर विशुद्धि (निर्वाण) के लिए सीधे कल्याणकारी मार्ग का निर्देश प्राप्त है। जिसे आर्य अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। बौद्ध दर्शन में विशुद्धि से तात्पर्य निर्वाण से है। शुद्धि को चाहने वाले साधक बहुत उदयोग (प्रयास)

करने पर भी विशुद्धि को प्राप्त नहीं कर सकते, विशुद्धि प्राप्ति के लिए चार आर्य सत्य का ज्ञान होना आवश्यक होता है। उसमें भी मार्ग सत्य पर आरुढ़ होकर ही साधक विशुद्धि को प्राप्त कर सकता है। भगवान् बुद्ध ने चित्त विशुद्धि के लिए शील, समाधि एवं प्रज्ञा की भावना करने का उपदेश दिया है। जो व्यक्ति परिशुद्ध शील से युक्त होकर समाधि और प्रज्ञा की भावना करेगा, वही निर्वाण को पा सकता है। वही संसार में तृष्णा रूपी जटा का अन्त करता है, तथा तृष्णा से आत्यांतिक निवृति ही निर्वाण है। चित्त में व्याप्त कर्म संस्कारों के कारण अविद्या उपन्न होती है, उसी अविद्या का सर्वथा नाश निर्वाण एवं विशुद्धि कहलाता है। धम्मपद के चित्तवग्ग में '*चित्त को दूरगामी अकेले विचरण करने वाला निराकार, गुह्य आशय बतलाया गया है। जो इस प्रकार विभिन्न क्रियाकलापों से युक्त चित्त का संयम करेंगे, वे ही मार के बंधन से मुक्त होंगे*।'[8] योग दर्शन में चित्त को मन, बुद्धि और अहंकार से युक्त माना गया है। चित्त प्रकृति का हिस्सा है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है तो चित्त भी त्रिगुणात्मक- सत, रज और तम का स्वभाव क्रमशः प्रकाश क्रिया और स्थिति (जड़ता) है। चित्त की वृत्तियां पाँच प्रकार की होती हैं- सम्यक् ज्ञान, भ्रांतिपूर्ण ज्ञान, कल्पना, निद्रा और स्मृति।[9] *प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः*। यो.सू.1/6 यद्यपि विषय सापेक्ष चित्तवृत्तियाँ विषयों के अन्तर से असंख्य प्रकार की हैं। सभी वृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं- क्लिष्ट और अक्लिष्ट। अक्लिष्ट वृत्तियाँ चित्त की शुद्धि में सहायक होती हैं, जबकि क्लिष्ट वृत्तियाँ चित्त की शुद्धि में बाधक होती हैं। ये वृत्तियाँ चित्त को चंचल और व्यथित कर देती हैं। योग दर्शन में चित्त की शुद्धि को ही योग अभ्यास का उद्देश्य माना है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र एवं योगदर्शन नामक ग्रन्थ के प्रथम पाद समाधि पाद के द्वितीय सूत्र में ही स्पष्ट कर दिया है- '*योगश्चित्तवृत्ति निरोधः*' अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। जिन मनुष्यों का चित्त सांसारिक भोग-विलास में लिप्त रहता है, उन मनुष्यों को अपने द्वारा किये गये कर्मों का उपभोग करने के लिए बारम्बार जन्म धारण करना पड़ता है। उनके चित्त में नानाप्रकार की वृत्तियाँ आविर्भूत होती रहती हैं। चित्त की वृत्तियों के अनिरुद्ध रहने से ऐसे व्यक्तियों को मोक्ष प्राप्त नहीं होता है। पतंजलि ने संसार के कारणभूत अविद्याग्रस्त चित्त का स्वरूप बतलाते हुए उसकी भूमियों का वर्णन किया है।[10] चित्त की पांच भूमियाँ निम्नलिखित हैं-

1. **क्षिप्त**- यह चित्त की वह अवस्था है, जिसमें चित्त रजोगुण के प्रभाव में होने के कारण अव्यक्तिक, चंचल एवं सक्रिय रहता है इस अवस्था में साधक का ध्यान किसी एक वस्तु पर केन्द्रित नहीं हो पाता, अपितु वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता रहता है। इस अवस्था में मन पर संयम नहीं रहता है, अतः यह अवस्था योग के अनुकूल नहीं होती है।

2. **मूढ़**- मूढ़ अवस्था वह है, जिसमें तमोगुण की प्रबलता रहती है। चित्त की इस अवस्था में आलस्य, दीनता, भ्रम, निद्रा, मोह एवं भय की प्रबलता रहती है। बुद्धि किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाती है। विचार शून्य चित्त इस काल में सूक्ष्म पदार्थों का चिंतन करने में समर्थ नहीं रहता है। यह काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वशीभूत होकर अनुचित कार्यों में संलग्न रहता है। चित्त की यह अवस्था समाधि के अनुकूल नहीं होती है।

3. **विक्षिप्त**- इस अवस्था में चित्त का ध्यान वस्तु पर जाता है, लेकिन ज्यादा देर तक स्थिर नहीं रह पाता। इस अवस्था में चित्त वृत्तियों का कुछ निरोध होता है, पर पूर्ण शुद्ध नहीं होता है। चित्त की यह अवस्था क्षिप्त और मूढ़ के मध्य की अवस्था है। इसमें रजोगुण का कुछ अंश रहता है पर तमोगुण से शून्य होता है।

4. **एकाग्र**- इस अवस्था में चित्त सत्व गुण के प्रभाव में रहता है। सत्व गुण की प्रबलता के कारण इस अवस्था में ज्ञान का प्रकाश है। चित्त अपने विषय पर देर तक ध्यान लगा सकता है यद्यपि इस अवस्था में सम्पूर्ण रूप से चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं होता है फिर भी यह अवस्था योग में सहायक होती है।

5. **निरुद्ध**- योगसूत्र के अनुसार, यह चित्त की पाँचवी अवस्था है, यह सबसे उत्तम अवस्था है। इसमें चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है, चित्त पूर्णतः शुद्ध हो जाता है। यह गुणातीत की अवस्था है। चित्त (मन) का शुद्धिकरण करना सभी साधना पद्धतियों का उद्देश्य रहा है। गीता में कहा है कि - 'मन को वश में करना वायु को वश में करने के समान कठिन है।[11] धम्मपद में चित्त के विषय में कहा है कि- यह चित्त बड़ा दुदर्श है, बड़ा चालाक है, कठिनाई से दिखाई देने वाला है। जहाँ चाहे वहाँ पहुँचता है। बन्दर की भाँति उछलकूद करता है। ऐसे चित्त की रक्षा करना चाहिए, क्योंकि सुरक्षित चित्त बड़ा सुखदायी होता है। माता-पिता, भाई-बन्धु से अधिक श्रेष्ठ, सन्मार्ग पर लगा हुआ चित्त होता है।[12] बौद्ध मत में चित्त शुद्धि का मार्ग अथवा साधना है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग कहलाती है। आचार्य बुद्धघोष कृत एवं त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा अनुवादित विशुद्धि मार्ग नामक ग्रन्थ चित्त शुद्धि हेतु लिखा गया है। जिसके अंतर्गत भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित साधना पद्धतियों का गहनता से विश्लेषण किया गया है। इस दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ विशुद्धि मार्ग अर्थात्

चित्त को शुद्ध करने का मार्ग कहा जाता है। यह ग्रन्थ साधकों के लिये गुरु जैसा है। आर्य अष्टांगिक मार्ग को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है- 1. शील, 2. समाधि और 3. प्रज्ञा। शील के अंतर्गत सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त एवं सम्यक् आजीविका को रखा गया है। समाधि के अंतर्गत सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि है, जबकि प्रज्ञा के अंतर्गत सम्यक् दृष्टि एवं सम्यक् संकल्प को रखा गया है।

चूँकि सारे दोष चित्त में अवस्थित होते हैं, अतः इस चित्त के स्वभाव और उसकी अंतिम स्थिति को जानना आर्य सत्य में समाहित है। जो आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुशीलन करता है, वही संसार में लिप्त रहने वाली जटा रूपी तृष्णा का अन्त कर, निर्वाण प्राप्त कर सकता है।[13]

आर्य अष्टांगिक मार्ग की उपादेयता-

1. **प्रथम मार्ग सम्यक् दृष्टि**- सम्यक् दृष्टि को यथार्थ दृष्टि या सही दृष्टि कहा जाता है। कायिक, वाचिक एवं मानसिक शुभ-अशुभ कर्मों के सही एवं ठीक-ठीक ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते हैं। भगवान् बुद्ध ने समस्त दुखों का मूल कारण अविद्या को माना है। अविद्या के कारण मिथ्या दृष्टि का प्रादुर्भाव होता है, जो अनात्म है, उसे आत्म माना जाता है और जो अनित्य है, उसे नित्य मान लिया जाता है एवं नश्वर विश्व को अविनाशी तथा दुःखमय अनुभूतियों को सुखमय समझता है। मिथ्या दृष्टि का अन्त सम्यक् दृष्टि से ही संभव है। सम्यक् दृष्टि का सामान्य अर्थ भगवान् बुद्ध के चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान है। ये चार आर्य सत्य ही मानव के चित्त को शुद्ध करने और निर्वाण की ओर ले जाने में सक्षम है7

2. **सम्यक् संकल्प**- राग-द्वेष, हिंसा इत्यादि से रहित संकल्प को सम्यक् संकल्प कहा जाता है। भगवान् बुद्ध के चार आर्य सत्यों का मानव जीवन में पालन करने का निश्चय ही सम्यक् संकल्प है। सम्यक् संकल्प के दो अंग हैं- शुभ संकल्प का पालन एवं अशुभ संकल्प का त्याग करना। आर्य सत्यों के ज्ञान मात्र से ही चित्त शुद्ध नहीं हो जाता है, जब तक कि उनके साथ जीवन बिताने का दृढ़ निश्चय न किया जाए। जो अपने चित्त की शुद्धि करना चाहते हैं, दुखों से मुक्ति एवं निर्वाण को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें आसक्ति से मुक्त होकर, राग-द्वेष और हिंसा का त्याग करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए। यह दृढ़ निशचय ही सम्यक् संकल्प कहा जाता है।

3. **सम्यक् वाणी**- सम्यक् वाणी के प्रयोग से चित्त शान्त और आनन्दित रहता है। मिथ्या वचन बोलने से बचना, चुगलखोरी, कठोर वाणी नहीं बोलना और व्यर्थ की बातचीत से विरत रहना सम्यक् वाणी कहलाता है। जो व्यक्ति अपने चित्त को शुद्ध रखना चाहते हैं उन्हें मधुर बोलना चाहिए, परनिन्दा नहीं करना चाहिए, स्वयं अथवा दूसरों के आचरण एवं व्यवहार में सुधार लाना चाहिए, अहंकार रहित होना चाहिए और वाणी में कटुता एवं कड़वाहट भी नहीं होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को स्त्रियों की चर्चा, देवताओं की चर्चा, भाग्य बताने वालों की चर्चा, भूत-प्रेतों की चर्चा इत्यादि नहीं करनी चाहिए। जो कुछ भी बोले वह करुणापूर्ण होना चाहिए और उससे संबंधित विचार शुद्ध होना चाहिए। जिस वचन से दूसरों को कष्ट हो उसका परित्याग करना वांछनीय है। सत्य एवं प्रिय वचनों का प्रयोग ही 'सम्यक्-वाक्' है। इसलिए कहा गया है कि- मन को शांत करने वाला एक शब्द हजार निरर्थक शब्दों से कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

4. **सम्यक् कर्मान्त्**- चित्त की शुद्धि और निर्वाण की प्राप्ति के लिए सिर्फ सम्यक् वाणी का पालन करना ही पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है। सभ्यभाषी और प्रियभाषी होने के बाबजूद भी कोई व्यक्ति बुरे कर्मों को अपनाकर पथ भ्रष्ट हो सकता है। अतः भगवान् बुद्ध ने सम्यक् वाणी करने का उपदेश दिया है। सम्यक् कर्म का अर्थ है, अशुभ एवं बुरे कर्मों का त्याग करना। भगवान् बुद्ध के अनुसार, बुरे कर्म तीन हैं- हिंसा, स्तेय और इन्द्रिय भोग। सम्यक् कर्म इन तीनों कर्मों का विपरीत एवं प्रतिकूल होगा। हिंसा, चोरी, व्यभिचार रहित कार्य करना ही सम्यक् कर्म है। सम्राट अशोक ने एक शिलालेख में उल्लेख किया है कि- 'मिथ्या विश्वासों पर आश्रित रीतिरिवाज नहीं, बल्कि उनके स्थान पर नौकर-चाकरों पर दया करनी चाहिए, सम्मानीय एवं आदर करने योग्य व्यक्तियों का आदर- सम्मान करना चाहिए और ऐसे ही इत्यादि अन्य सदाचरण युक्त कार्य हैं, जो सभी को सर्वत्र करने चाहिए।[14]

5. **सम्यक् आजीविका**- सम्यक् आजीविका अर्थात् ईमानदारी से जीविकोपार्जन करना। जो भी कार्य मानव, समाज, व्यापार, देश इत्यादि को हानि पहुँचाने वाले सभी कर्म, निषिद्ध कर्म कहलाते हैं। जीविकोपार्जन हेतु बौद्ध धर्म में निम्न जीविका निषिद्ध मानी गयी हैं- शस्त्र का व्यापार, प्राणी का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य (मदिरा या शराब) का व्यापार, विष का व्यापार। स्पष्टतः प्राणी हिंसा संबन्धी जीविका अनुचित है। इत्यादि इन सभी निषिद्ध कर्मों को छोड़कर उचित मार्ग से जीविकोपार्जन करना चाहिए। सम्यक् आजीविका का पालन करने से मन में संतोष और आनन्द भरा रहता है और चित्त मुक्त एवं निर्मल हो जाता है।

6. **सम्यक् व्यायाम**- मन को शान्त रखना कठिन कार्य है, इसलिए मन को स्वच्छ एवं अच्छे कार्यो से परिपूर्ण रखना चाहिए। उसके लिए सदैव प्रयत्नशील एवं सक्रिय रहना चाहिए। सम्यक् व्यायाम उन कार्य अथवा क्रियाओं को कहते हैं, जिनसे अशुभ मन: स्थिति का अन्त होता है, तथा शुभ मन: स्थिति का प्रादुर्भाव होता है। भगवान् बुद्ध ने चार प्रकार के प्रयत्न बतलाए हैं, जो चित्त को शुद्ध एवं शांत रखने में उपयोगी हैं-

(1.) पुराने बुरे विचार को बाहर निकालना।

(2.) नये बुरे विचारों को मन में जाने से रोकना।

(3.) अच्छे भावों को मन में रखना एवं इन सभी भावों को मन में कायम रखने के लिए सतत् क्रियाशील भी रहना ।

7. **सम्यक् स्मृति**- नाशवान व क्षणिक वस्तुओं की स्मृति ही सम्यक् स्मृति है। ज्ञात विषयों का यथार्थ स्मरण ही सम्यक् स्मृति है। काया, वेदना, चित्त और मन के धर्मो की ठीक स्थितियों का ज्ञान अर्थात् उनके मलिन एवं क्षणिक होने के ज्ञान का सदा स्मरण करना सम्यक् स्मृति है। जैसे शरीर को शरीर, वेदना को वेदना, चित्त को चित्त, और चैतसिक एवं मानसिक अवस्था को मानसिक रूप में ही चिंतन करना चाहिए। सम्यक् स्मृति के चार अंग बतलाए गये है-

(1.) कयानुपश्या अर्थात् शरीर को क्षणिक और विनाशी समझने वाला कयानुपश्यी है, (2.) वेदना को सुखात्मक-दुखात्मक और असुखा-दुखा समझने वाला वेदनानुपश्यी है, (3.) चित्त के सराग और विराग रूप को जानने वाला चित्तानुपश्यी है तथा (4.) धर्म को राग, द्वेष, मोह आदि से रहित जानने वाला धर्मानुपश्यी है।

इस प्रकार का सतत् स्मरण ही सम्यक् स्मृति है। इस तरह से वस्तुओं के यथार्थ ज्ञान की स्मृति बनी रहने से मन में बुरे या मिथ्या विचार नहीं आते हैं, और धीरे-धीरे चित्त शुद्ध एवं निर्मल होता जाता है।

8. **सम्यक् समाधि**- उपर्युक्त अभ्यास से जब चित्त शुद्ध, शान्त और स्थिर हो जाता है, तब चित्त समाधि के अनुकूल होता है। कुशल चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं। सम्यक् समाधि वह है, जिससे मन के विषयों को हटाया जा सके। समाधि अर्थात् ध्यान की चार अवस्थाएं हैं- पहली अवस्था में वितर्क, विचार, प्रीति, सुख तथा एकाग्रता पाँचों अंश विद्यमान रहते हैं। दूसरे तथा तीसरे ध्यान में ध्यानांगों का एक-एक अंश कम होता जाता है। अंत में चित्त को ऐसी अवस्था में पहुँचा देता है, जब उसका चित्त ऐसा प्रकाशमान हो जाता है, जो विश्व को आसक्ति रहित, राग एवं द्वेष रहित सर्वथा नये रूप में देख सकता है।[15]

समाधि के चार अवस्थाओं को इस प्रकार से भी समझ सकते हैं-

(1.) **समाधि की प्रथम अवस्था**- इस अवस्था में साधक चार आर्य सत्यों का मनन एवं चिंतन करता है। यह तर्क एवं वितर्क की अवस्था है। अनेक प्रकार के संशय साधक के मन में उत्पन्न होते हैं, जिनका निराकरण वह स्वयं करता है।

(2.) **समाधि की दूसरी अवस्था** - इस अवस्था में तर्क एवं वितर्क की आवश्यकता नहीं रहती है, इस अवस्था में आनन्द एवं शान्ति की अनुभूति होती है।

(3.) **समाधि की तीसरी अवस्था**- इस अवस्था में आनन्द एवं शान्ति की चेतना के प्रति उदासीनता का भाव आता है। आनन्द एवं शान्ति की चेतना निर्वाण प्राप्ति में बाधक प्रतीत होता है। इस अवस्था में शारीरिक विश्राम का ज्ञान विद्यमान रहता है।

(4.) **समाधि की चौथी अवस्था**-इस अवस्था में शरीर के आराम एवं शान्ति का भाव भी नष्ट हो जाता है। दैनिक विश्राम और मन के आनन्द की ओर भी ध्यान नहीं रहता है। इस चौथी अवस्था को प्राप्त हो जाने के बाद व्यक्ति अर्हत की संज्ञा से विभूषित हो जाता है, चित्त की वृत्तियों का निरोध हो एवं समस्त प्रकार के दुखों का क्षय हो जाता है,यह अवस्था सुख-दु:ख से परे निर्वाण की अवस्था है। जिस अवस्था में चित्त पूर्णतया शुद्ध-निर्मल हो हाता है।[16]

उपसंहार-

चित्त (मन) ही सभी कर्मों का अगुआ (प्रधान) है। अशुद्ध या विकार युक्त चित्त (दासता) स्रोत बन जाता है नरक की ओर ले जाता है मनुष्य को दुखों से भर देता है, जबकि शुद्ध चित्त आनन्द और मुक्ति का स्रोत बन जाता है। मन का सही दिशा में उपयोग ध्यान बन जाता है, जबकि मन का गलत या विपरीत दिशा में उपयोग पागलपन बन जाता है। शत्रु शत्रु की अथवा बैरी बैरी की जितनी हानि करता है, उतना कुमार्ग पर लगा हुआ चित्त उससे भी कहीं अधिक हानि पहुँचाता है। जितनी अधिक भलाई न माता-पिता कर सकते हैं, न ही कोई दूसरे भाई-बन्धु, उससे से कहीं अधिक भलाई सन्मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है। चित्त की शुद्धि के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुशीलन किया जाता है। सम्यक् दृष्टि का अर्थ है चार आर्य सत्यों का ज्ञान। इन चार आर्य सत्यों के अनुसार जीवन जीने का दृढ़ निश्चय ही सम्यक् संकल्प है। अनुचित वाणी का त्याग सम्यक् वाणी है। पाप अर्थात् अकुशल कर्मों का त्याग ही सम्यक् कर्मान्त है। जीविकोपार्जन अथवा जीविका निर्वाह के लिए उचित मार्ग का अनुसरण तथा निषिद्ध मार्ग का त्याग सम्यक् आजीविका है। अशुभ विचारों का

त्याग और शुभ विचारों को ग्रहण करना सम्यक् व्यायाम कहलाता है। व्यक्ति अथवा वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के प्रति जागरूक रहना सम्यक् स्मृति है एवं कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। समाधि की अंतिम अवस्था में चित्त पूर्णत: शुद्ध (निर्मल) हो जाता है। चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध हो जाता है और साधक सभी दुखों से मुक्त हो जाता है और मुक्ति का अंतिम चरण चरम शिखर निर्वाण को प्राप्त करता है।

सन्दर्भ सूची–

1. ताराराम (2020), धम्मपद गाथा और कथा, सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली
2. सिंह,पुष्पपाल, पहला संस्करण (2017),राजकमल वृहत् हिंदी शब्दकोश,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं– 314
3. वर्मा, श्याम बहादुर, (2000), वृहद् विश्व सूक्ति कोश, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली, पृ. सं– 337
4. धम्मपद,यमकवग्ग 1, 2 (2015), विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी
5. धम्मपद, चित्तवग्ग 37 (2015), विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी
6. काश्यप, भिक्खु जगदीश (2019), मिलिन्दपंह, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं– 121–123
7. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, (24 अक्टुबर 1993) छठा संकरण, धम्मपदं, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, पृ. सं– 9
   फंदनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं।
   उजुं करोति मेधावी उसुकारो व् तेजनं।7 (धम्मपद 3/1)
8. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, (24 अक्टुबर 1993) छठा संकरण, धम्मपदं, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, पृ. सं– 9/10
   दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं।
   ये चित्त सञ्जमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना।(धम्मपद 3/5)
9. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, (2013), मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, पृ. सं– 41
10. पांडे, डॉ. उर्मिला, (2016) योगसाधना के दो शिखर पतंजलि एवं बुद्ध, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
11. श्रीमद्भगवतगीता– श्लोक 6/34 गीताप्रेस गोरखपुर।
12. धम्मपद 36, 43 (2015), धम्मपद विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी।
13. त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्म रक्षित, (1956), विशुद्धि मार्ग भाग–1, गौतम बुक सेंटर दिल्ली, पृ. सं– 21
14. नरसू, पी, लक्ष्मी, (2011), सत्य प्रकाश, बुद्ध धम्म का सार, सम्यक् प्रकाशन दिल्ली, पृ. सं– 134
15. नरसू, पी, लक्ष्मी, (2011), सत्य प्रकाश, बुद्ध धम्म का सार, सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली पृ. सं– 143
16. सिन्हा, प्रो, हरेन्द्र प्रसाद, (2002), भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,पृ. सं– 120

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्म रक्षित (2010), विशुद्धि मार्ग भाग–1, गौतम बुक सेंटर दिल्ली।
2. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, छठा संकरण (1956) धम्मपद, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर।
3. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, छठा संकरण (1956) धम्मपद, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर।
4. ताराराम (2020), धम्मपद गाथा और कथा, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली।
5. धम्मपद, (2015), विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी।
6. धम्मपद, (2015), विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी।
7. धम्मपद (2015), धम्मपद विपश्यना विशोधन विन्यास इगतपुरी।
8. काश्यप, भिक्खु जगदीश (2019), मिलिन्दपंह, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. नरसू पी, लक्ष्मी, (2011), सत्य प्रकाश, बुद्ध धम्म का सार, सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली।
10. नरसू पी, लक्ष्मी, (2011), सत्य प्रकाश, बुद्ध धम्म का सार, सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली।
11. पांडे, उर्मिला (2016) योगसाधना के दो शिखर पतंजलि एवं बुद्ध, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
12. सिन्हा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, (2002), भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
13. श्रीमद्भगवतगीता, गीताप्रेस गोरखपुर।
14. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द (2013), मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।
15. सिंह, पुष्पपाल, पहला संस्करण (2017), राजकमल वृहत् हिंदी शब्दकोश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
16. वर्मा, डॉ.श्याम बहादुर, संस्करण (2000), वृहद् विश्व सूक्ति कोश, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

ISSN 2278 - 0327

गांधी के विचारों में समावेशी विकास की अवधारणा : वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता

महेश जगोठा
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
हे०न०ब० केन्द्रीय विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

कु० प्रीति
शोधछात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अनूपपुर, अमरकंटक (मध्यप्रदेश)

सार:- भारत का परंपरागत समाज सदा से ही कुटीर उद्योगों पर निर्भर रहा है। जिसके तहत आर्थिक स्रोतों पर सभी लोगों की समरसरता या समानता अक्सर देखने को मिली है। लेकिन वर्तमान में निर्मित आर्थिक व्यवस्था के प्रचलन में इन कुटीर उद्योगों की भारी उपेक्षा हुई है। जिसके परिणाम स्वरूप आर्थिक क्षेत्रों में लगातार धनवान वर्गो का फायदा हुआ है और आर्थिक रूप से असम्पन्न लोगों व मजदूरों की उपेक्षा होकर उनको समान अवसरों से वंचित रखा गया है। प्रस्तुत शोध पत्र मुख्यत: गांधी की सर्वोत्तम कृति सर्वोदय में प्रस्तुत सभी वर्गों के उत्थान से संबंधित विचारों से प्रेरित है। जिसमें हम गांधी के विचारों में अक्सर पाते है कि वे आमजन को आत्मनिर्भर बनाने के लिए लद्यु व कुटीर उद्योगों पर जोर देते हुए धनवान और गरीब वर्गों के बीच की खाई को बांटकर समावेशी विकास को प्रोत्साहित करने की चेष्टा करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र समावेशी विकास के सन्दर्भ में गांधी के विचारों पर केन्द्रित है। इस शोध पत्र में गांधी के इन विचारों का विश्लेषण करके वर्तमान समय की समस्याओं के निदान के रूप में इसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द:- सर्वोदय (सब का उदय) समरसता, वर्गीय प्रतिनिधित्व, सुअवसर अव्यवस्था, सहानुभूति

प्रस्तावना:- युगान्तकारी विचारों के प्रवर्तक महात्मा गांधी आज के स्वार्थ सत्ता एवं साम्प्रदायिक लिप्सा से ग्रसित समाज में एक आध्यात्मिक प्रकाश की तरह है। आज मानव के सम्मुख जो भी समस्याएं हैं उन्हें सुलझाने का एकमात्र तरीका गांधी की ओर वापसी है। यदि हम गांधी के विचारों की सारगर्भिता को देखें तो हम वर्तमान समस्याओं का प्रत्युत्तर गांधी के विचारों में इसलिए नहीं देखते हैं, कि वो कुछ अद्भुत् काल्पनिक विचार दे गये, बल्कि इसलिए कि गांधी जी के द्वारा जो भी विचार दिए गए हैं। उन्हें उनके द्वारा स्वयं भी लागू करने की चेष्ठा की गई, जिस कारण उनके समस्त विचारों का व्यावहारिक प्रयोग एक आमजन के लिए बड़ा सरल व सुगम विकल्प के रूप में नजर आता है। इसलिए भारतीय विकासवादी समाज में गांधीवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसका प्रयोग शायद ही जीवन के किसी क्षेत्र से अछूता हो। उनके विचारों की प्रासंगिकता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि विश्व के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका के प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भारत दौरे के दौरान कहा कि यदि गांधी जी नहीं होते तो में अमेरिका का राष्ट्रपति नहीं होता।

अर्थात् ओबामा की इन बातों से यह सिद्ध होता है कि गांधी के विचारों का प्रभाव सिर्फ भारतीयों पर न होकर विश्व के बहुत बड़े-बड़े व्यक्तित्वों पर भी नजर आता है।

यदि हम गांधी जी के विचारों की बात करें तो व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में जिन समस्याओं व परिस्थितियों का सामना गांधी जी के द्वारा स्वयं किया गया व उनके निदान के लिए उनके द्वारा जो व्यावहारिक व वैचारिक विकल्प तरासे गए वही आज उनके समस्त विचारों का समावेश है। जिनको हम सामाजिक जीवन के अनेक पहलुओं से जोड़कर देख सकते है।

यदि हम गांधी जी के विचारों में समावेशी विकास की अवधारणा को देखे तो गांधी जी के अलग-अलग सिद्धान्तों विचारों में हम समावेशी विचारों की पहचान कर सकते है। गांधी जी न सिर्फ आर्थिक क्षेत्रों में समावेशी विकास यानी अवसर की समानता की बात करते हुए नजर आते है। बल्कि सामाजिक क्षेत्र में भी वो समुचित समानता की बात कर सहयोगात्मक रवय्ये से मिल जुलकर आगे बढ़ने की बात करते हुए पाए जाते है। जहां एक तरफ गांधी कुटीर व लघु उद्योगों के समान विकास के सुअवसर के माध्यम से सभी को समान प्रतिनिधित्व दिलाना चाहते थे। वहीं उनके द्वारा अन्य क्षेत्रों व सरकार की नीतियों में भी अवसर की समानता की वकालत अक्सर व्यापक रूप से देखने को मिलती है। इसके साथ ही गांधी जी विकास के साथ-साथ नैतिकता के समावेश की भी अक्सर बात करते हुए पाये जाते है। इस प्रकार देखें तो समावेशी

विचारों का समस्त गठजोड़ उनके द्वारा 'सर्वोदय' में सभी वर्गों के उत्थान, समाजवाद के तहत समान न्यायिक प्रतिनिधिक वितरण, ट्रस्टीशिप के तहत धन का समान वितरण व वर्ण व्यवस्था की आलोचना के तहत सामाजिक परंपरागत क्षेत्रों में समान हितों की साझी अभिव्यक्तियों व आचरण के तहत देखने को मिलता है।

गांधी के विचारों में समावेशी विकास की अवधारणाः-

यदि हम समावेशी विकास की अवधारणा की बात करें तो यह एक ऐसी अवधारणा है जिसमें समाज के सभी लोगों को समान अवसरों के साथ विकास का लाभ भी समान रूप में प्राप्त हो। अर्थात् सभी वर्ग, क्षेत्र, प्रांत के व्यक्तियों का बिना भेदभाव एक समान विकास के अवसरों के साथ-साथ होने वाला देश का विकास ही समावेशी विकास कहलाता है।

समावेशी विकास जिसे गरीब समर्थित विकास भी कहा जाता है। गांधी जी के बाद से भारत के विकास-विमर्श में एक महत्वपूर्ण विचार बन गया है। इसे काफी लम्बे अर्से से बड़ा व्यापक समर्थन मिला है, क्योंकि यह विकास के दो महत्वपूर्ण विचारों को जोड़ता है, जिसमें एक आय में वृद्धि तो दूसरा प्रगतिशील वितरण को। भारतीय सन्दर्भ में समावेशी विकास शब्द का पहली बार प्रयोग पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यूपीए सरकार द्वारा 2000 के दशक की शुरूआत में किया गया। जिसके बाद आने वाली अन्य सरकारों ने भी इसे अपनी नीतियों का एक हिस्सा बनाया यदि हम समावेशी विकास की अवधारणा के तहत गांधी जी द्वारा व्यक्ति की सामान्य जीवन शैली को देखे तो समावेशी विकास की दिशा में गांधी जी द्वारा व्यक्ति की सामान्य जीवन शैली को आवश्यकताओं के आधार पर मुख्यतः दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

- आधारभूत आवश्यकताएँ
- वास्तविक आवश्यकताएँ

आधारभूत आवश्यकताओं के तहत जहां गांधी जी गरीबी, भुखमरी, स्वास्थ्य, पेयजल सुविधाएँ व शुद्ध पर्यावरण को समावेशी विकास के लक्ष्यों में सम्मिलित करते हैं। वहीं वास्तविक आवश्यकताओं के तहत गांधी जी के आर्थिक विचार अहिंसात्मक मानवीय धर्म से प्रेरित समाज की अवधारणा से ओत-प्रोत है। इसके साथ-साथ गांधी जी के समावेशी विचारों को अनेक आयामों से भी समझा जा सकता है। जिसमें धन के असमान वितरण आधुनिक विकास के चरण में नैतिकता का समावेश जैसे अन्य अनेक आयाम भी इनके समावेशी विकास का एक हिस्सा है। जिसका कुछ विवरण नीचे इस प्रकार से है। जहाँ गांधी जी इसी सन्दर्भ में कहते है, कि-

'दुनिया में दूरी और समय के अंतराल को कम करके भौतिक इच्छाओं को बढ़ाने उनकी प्राप्ति के लिए धरती का कोना-कोना छान मारने की जो अंधी दौड चल रही है। वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। यदि आधुनिक सभ्यता के यही सब लक्षण है और मुझे इसके यही लक्षण समझ आते हैं तो मैं इसे शैतानी सभ्यता कहूँगा।'

अर्थात् गांधी जी विकास की उस सोच के चिर-विरोधी थे जो व्यक्ति के नैतिक विकास को साथ में लेकर न चलता हो, और यही कारण है कि वो पश्चिमी उपभोक्तावादी भौतिकवादी सभ्यता का विरोध करते हुए नजर आते हैं। क्योंकि उनके अनुसार आधुनिक विकास की यही अंधी दौड़ मनुष्य के नैतिक गुणों को कोसों दूर छोड़ती जा रही है। कुल मिलाकर एक पहलू से गांधी जी ने विकास का जो मार्ग दिखाया है वह मनुष्य के स्वभाव और चरित्र को नए सांचे में ढालने पर बल देता है, और विकास की खोज एवं नैतिक गुणों के समन्वय को बनाने की कोशिश करता है।

यदि हम महात्मा गांधी के समावेशी विकास के दूसरे पक्षों पर नजर डालें तो धन की अव्यवस्था और उसके असमान वितरण का जिक्र हमें उनके द्वारा देखने को मिलता है। सर्वोदय में उनके द्वारा कहा गया कि -

'धन की अव्यवस्था के कारण असहानुभूति, असमानता, अनुचित ऐश-आराम, अत्याचार, लड़ाई झगड़ा, युद्ध आदि होते हैं इस धन की अव्यवस्था के उत्पन्न होने का मूल कारण वर्तमान समय में यंत्र, मशीन, कारखान आदि ही हैं। इनके द्वारा एक व्यक्ति हजारों मनुष्यों को अपना नौकर बना लेता है और उन्हें थोड़ी मजदूरी देकर शेष धन अपने लिए रखता है और अंत में उन हजारों मनुष्यों को गरीब बनाकर खुद मालिक बन बैठता है, तब सब तरह के शारीरिक, मानसिक, मेहतन को छोड़कर वह ऐश-आराम, भोग-विलास में अपना समय बिताने लगता है। उधर उन गरीबों को जरूरी खाना, कपड़े तथा दूसरी चीजें भी प्राप्त नहीं होती हैं इससे उनमें असंतोष होता है।'

अर्थात् महात्मा गांधी का यह मानना है कि धन की व्यवस्था और उसका वितरण इस प्रकार से हो जो सभी लोगों को समान अवसर प्रदान कर सके। साथ ही इसके वितरण को इस प्रकार क्रियान्वित किया जाए कि उच्च और निम्नता का अन्तर कम से कम हो सके और निम्न वर्गों के उदय की संभावनाएं भी समान रूप से पैदा की जा सकें।

इसके साथ-साथ महात्मा गांधी के द्वारा ग्रामीण और क्षेत्रीय स्तर पर लघु एवं कुटीर उद्योगों को बड़ा प्रोत्साहन देने की बात की गई, वो चाहते थे कि ग्रामीण और क्षेत्रीय स्तर पर लघु एवं कुटीर उद्योगों को अधिक से अधिक विकसित किया जाए और

सरकार की नीतिगत संसाधनों से विमुख ग्रामीण लोगों को रोजगार की तरफ अग्रसर कर समान अवसर दिया जाए। समावेशी विकास के सन्दर्भ में गांधी जी का स्वरोजगार उत्पन्न करने की बात अति उपयोगी है। आज ग्रामीण क्षेत्रों में लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देकर लोगों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। जिससे आर्थिक क्षेत्रों में भी अवसर की समानता को प्रोत्साहित किया जा सके।

गांधी के विचारों में सम्मिलित समावेश विकास की वर्तमान में प्रासंगिकता:- यदि वर्तमान परिपेक्ष में गांधी की समावेशी विकास की अवधारणा को देखें तो ग्रामीण क्षेत्रों से होता हुआ पलायन आज विकास की मुख्य समस्या बनी हुई है और शहरों की तुलना में ग्रामीण स्तर पर रोजगार मुहैया कराना विकास की एक मुख्य चुनौती के रूप में उभरता जा रहा है। आज यदि हम समावेशी विकास की अवधारणा को अपनाते है तो हमें कही न कहीं अपने विकास मॉडल में ग्रामीण क्षेत्रों में लघु और कुटीर उद्योगों के साथ-साथ कृषि को भी बढ़ावा देना होगा और ग्रामीण स्तर पर विकास योजनाओं में नियमित सुधार कर लोगों को रोजगार उपलब्ध कराकर उनको आत्मनिर्भर बनाना होगा। यदि वर्तमान में पलायन जैसी अनेक समस्याओं पर नजर डालें तो इनके निदान के सन्दर्भ में गांधी जी के समावेशी विचारों की प्रासंगिकता अपने आप में आज बढ़ जाती है।

निष्कर्ष:-

महात्मा गांधी के द्वारा समावेशी विकास के सन्दर्भ में मुख्यत: नीतियों के क्रियान्वयन में सभी वर्गों के उदय की आकांक्षाओं को सम्मिलित करना, साथ ही भौतिक विकास में नैतिक गुणों की अवनति के संतुलन को स्थापित करना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लघु और कुटीर उद्योगों को अधिक से अधिक विकसित कर रोजगार, के अवसर उपलब्ध कराकर स्वरोजगार उपलब्ध कराकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है। यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सरकार की नीतियों का पर्यवेक्षण किया जाये तो ग्रामीण रोजगार के अवसर लगातार खत्म होते हुए नजर आते हैं। ऐसी स्थिति में यदि आज हम गांधी जी के समावेशी विकास की अवधारणा को अपनी विकास नीतियों के अंतर्गत सम्मिलित करते है तो काफी हद तक हम ग्रामीण विकास को बढ़ावा दे सकते हैं और नीतियों के माध्यम से समावेशी विकास के लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं जिसमें सभी वर्गों व जातियों को उनके विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध कराए जा सके। जिस कारण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधी जी के समावेशी विकास की अवधारणा की प्रासंगिकता अपने आप में बढ़ जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. सच्चिदानन्द, और तिवारी प्रतिभा. 'आधुनिक प्रशासकीय सन्दर्भ में गांधी की प्रासंगिकता.' लोक प्रशासन: भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2020.
2. नेगी मीनाक्षी. और शर्मा, नीता बौश. 'किसानों एवं समाज के विभिन्न वर्गों हेतु महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता.' Journal of Acharay Narendra Dev Research Institute.
3. समावेशी विकास का वर्णन समाजिक क्षेत्रों में समावेशी विकास के कदम विवेचना. 20 नवम्बर 2019 www.studyfry.com.
4. चक्रवर्ती, संजय, चंद्रशेखर एस और नारापराज्ञा कार्तिकेय. 'कैसे होगा समावेशी विकास.' अमर उजाला, 1 जून 2018. https://www.amarujala.com/columss/opinion/how-will-inclusive-growth
5. शर्मा, अभिलाषा, और जैन, स्वाति. 'गांधीवाद में समावेशी विकास की ओर बढते कदम.' लोक प्रशासन: भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली की अर्द्धवाषिक शोध पत्रिका, अंक 2, जुलाई-दिस्म्बर 2020.
6. गांधी, महात्मा. सर्वोदय: जॉन रस्किन के सिद्धान्तों पर आधारित. Noida, mdple press pvt.ltd, script edition – 2014
7. गांधी, महात्मा. सर्वोदय, जॉन रस्किन के सिद्धान्तों पर आधारित. Noida, mdple press pvt.ltd, script edition – 2014
8. प्रसाद, उपेन्द्र. गांधीवाद समाजवाद. नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, 2001.
9. अहमद, रजी. महात्मा गांधी की स्वदेशी वापसी के 100 वर्ष: नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2018.
10. कुमार मण्डावत, संजय. 'वैश्विक आतंकवाद का गांधीवादी विकल्पों में समाधान.' International Journal for Innovative Research in Multidisciplinary field, valume-1, 3 Oct 2015.
11. नेगी, मीनाक्षी, और शर्मा, बोरा. 'किसानों एवं समाज के विभिन्न वर्गो हेतु महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता.' Journal of Acharya Narendra Dev Research Institute.
12. प्रसाद सूद, ज्योति. भारतीय राजनीतिक विचारक संशोधित हिन्दी संस्करण., मेरठ, के0 नाथ एण्ड कम्पनी. 2011-12.
13. नाथ, मुकर्जी, रवीन्द्र. समाजिक विचारधारा. नवीनतम संस्करण, दिल्ली, विवेक प्रकाशन 2020.
14. गांधी, महात्मा. हिन्दी स्वराज. नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2020.
15. कुशवाहा, रेनु कुमारी. जाति विहीन समाज का सपना. नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2018.
16. गाबा, ओम प्रकाश. राजनीति विज्ञान विश्वकोष, नई दिल्ली, मयूर पब्लिकेशन, 2014.
17. सिंह, एम0 पी0 और राय, हिमांशु. भारतीय राजनीति चिंतन, दिल्ली, माध्यम बुक सर्विस, 2004.
18. सिंह, महेश प्रसाद. गांधी के सपनों का भारत. नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2018.
19. प्रसाद, राजेन्द्र. गांधी जी की देन. नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2013.
20. स्वरूप, देवेन्द्र. जाति विहीन समाज का सपना. नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2017.
21. गुप्त, विश्व प्रकाश. महात्मा गांधी (व्यक्ति और विचार). नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, 2005.
22. राघाकृष्णन, सर्वपल्ली. गांधी अभिनन्दन ग्रंथ. नई दिल्ली, रावत बुक्स, 2019.

ISSN 2278 - 0327

न्यायमञ्जरी के अनुसार शब्द का गुणत्व साधन

डॉ. सन्तु सिंह
सहायक अध्यापक, संस्कृत विभाग
बाँकुडा विश्वविद्यालय

भूमिका-

भारतीय आस्तिक दर्शनों मे न्यायदर्शन अन्यतम है। न्यायदर्शन द्विविध है, प्राचीनन्याय एवं नव्यन्याय। गौतम महर्षि विरचित है न्यायसूत्र। उसके ऊपर महर्षि वात्स्यायन ने भाष्य लिखा। भाष्य के ऊपर उद्योतकर ने वार्त्तिकग्रन्थ लिखा। उस के ऊपर वाचस्पति मिश्र ने तात्पर्यटीका लिखा। इस क्रम को प्राचीन न्याय कहता है। प्राचीन न्याय का हि अन्यतम ग्रन्थ है न्यायमञ्जरी ग्रन्थ। नैयायिक जयन्तभट्ट न्यायमञ्जरी ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय नवीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है। उस ने इस ग्रन्थ में विशेष विशेष न्यायसूत्रों का व्याख्यान किया है। वस्तुत: उस ने लक्षण सूत्र का व्याख्यान किया है। जयन्तभट्ट *आप्तोपदेश:* शब्द इस शब्दलक्षण न्यायसूत्र का व्याख्यान किया है। इस प्रसङ्ग में ही उन्होंने शब्द का गुणत्व साधन किया है। इस प्रबन्ध में प्रबन्धकर्त्ता जयन्तभट्टकृत न्यायमञ्जरी का अनुसार शब्द का गुणत्व साधन करने का प्रयास किया है।

पूर्वपक्षिओं का शङ्का-

पूर्वपक्षी का मतानुसार शब्द में गुणत्व असिद्ध है। कुछ लोग उसे *शब्दो गुण आश्रितत्वात्* - इस अनुमान से आश्रित होने के कारण गुण कहते हैं। किन्तु आश्रितत्व हेतु से शब्दों में गुणत्व का सिद्धि नहीं होता। क्योंकि शब्द के गुण होने में आश्रितत्व प्रयोजक नहीं है। आश्रित तो सभी छह भाव पदार्थ हो सकते हैं। कणाद के मत में दिक्, काल तथा परमाणु आदि नित्य द्रव्यों को छोड़कर अन्य सभी छह द्रव्य आश्रित माने जाते हैं। और शब्द व्योमाश्रित रूप में प्रत्यक्ष होता नहीं है। क्योंकि अप्रत्यक्ष आकाश में रहने के कारण तदाश्रित रूप में उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है। तब शब्द के गुणत्व में प्रमाण क्या है? अर्थात् शब्द में गुणत्व असिद्ध है। जयन्तभट्ट ने पूर्वपक्षिओं का मत इस तरह संग्रहीत किया है- *यदपि गुणत्वमसिद्धं शब्दस्येति। तत्र केचिदाश्रितत्वाद् गुणत्वमाचक्षते। तदयुक्तम्-*

आश्रितत्वं गुणत्वे हि न प्रयोजकत्वमिष्यते।
षण्णामपि पदार्थानामाश्रितत्वस्य सम्भवात्।।
दिक्कालपरमाण्वादिनित्यद्रव्यातिरेकिण:।
आश्रिता: षडपीष्यन्ते पदार्था: कणभोजिना।। इति।

सिद्धान्ती का समाधान -

यहाँ पर सिद्धान्ती का वक्तव्य यह है कि परिशेषानुमान से शब्द में गुणत्व सिद्ध होता है। शब्द द्रव्य नहीं हैं। शब्द का द्रव्य होने से शङ्का होता है शब्द एक द्रव्य है और अनेक द्रव्य हैं? शब्द एकमात्र आकाश में आश्रित होता है, अत: एक द्रव्य होता है, अत: वह द्रव्य नहीं है। अत: जयन्तभट्ट ने कहा - *किं तर्हि शब्दस्य गुणत्वे प्रमाणं परिशेषानुमिति ब्रूम:। ...... कथं पुनर्न द्रव्यं शब्द एकद्रव्यत्वात्। ... एकद्रव्यं तु शब्द एकाकाशाश्रितत्वात्। तस्मान्न द्रव्यम्।*[2]

शब्द कर्म भी नहीं है, क्योंकि वह शब्दान्तर का जनक होता है। कर्म में समानजातीय की आरम्भकता नहीं होती है। शब्द में सत्ता एवं शब्दत्व आदि सामान्य का सम्बन्ध होने के कारण सामान्य आदि तीनों में अन्तर्भाव नहीं है। इस प्रकार परिशेषानुमान से प्रमाणित होता है - शब्द गुण ही है। जयन्तभट्ट ने न्यायमञ्जरीग्रन्थ में सिद्धान्तपक्ष इस तरह प्रदर्शित किया है- *नापि कर्मशब्द: शब्दान्तरजनकत्वात्। कर्मणो हि समानजात्यारम्भकत्वं नास्ति सत्ताशब्दत्वादिसामान्यसम्बन्धाच्च सामान्यादित्रयप्रसङ्ग: अस्य नास्तीति पारिशेष्याद् गुण एव शब्द:।*[3]

पूर्वपक्षिओं का शङ्का-

पूर्वपक्षी यह शङ्का करता है - शब्द में गुणत्व सिद्ध होने पर शब्द में आकाशाश्रितत्व सिद्ध होता है। क्योंकि गुण सदा द्रव्याश्रित होता है, द्रव्यानाश्रित नहीं होता है। पृथिवी आदि शब्द के आश्रय हो नहीं सकते। इससे गुणत्व सिद्ध होने पर उसमें एक द्रव्यता सिद्ध होती है और एक द्रव्यत्व सिद्ध होने पर उसमें गुणत्व सिद्ध होगा। इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष होता है- *न गुणत्वसिद्धौ*

सत्यामाकाशाश्रितत्वं शब्दस्य भविष्यति गुणस्य द्रव्यानाश्रितस्यादर्शनात् पृथिव्यादीनां च शब्दाश्रयत्वानुपपत्तेः। ततश्च गुणत्वे सत्येकद्रव्यत्वम् एकद्रव्यत्वे सति गुणत्वमितीतरेतराश्रयत्वम्।[4]

पुनः पूर्वपक्षी यह शङ्का करता है– शब्दों में गुणत्व के सिद्ध हो जाने पर शब्द का आकाशाश्रित होने के कारण आकाशात्मक श्रोत्र से उसका ग्रहण होता है। वह फिर देशान्तर गत संयोग विभाग प्रभव शब्द के सन्तान के बिना श्रोत्रदेश से प्राप्ति के अभाव प्रयुक्त सिद्ध हो नहीं सकता है। इसलिए शब्द सन्तान की कल्पना गुणत्वसिद्धिमूलक होती है और सन्तान की कल्पना होने पर समानजातीय का आरम्भक होने के कारण उसमें कर्मता का निषेध होने पर गुणत्व की सिद्धि होती है। अतः समानजातीयारम्भकत्व भी गुणत्व सिद्धि मूलक ही उसमें होता है। इस प्रकार भी अन्योन्याश्रय दोष ही होता– *तथा च समानजातीयारम्भकत्वमपि गुणत्वसिद्धिमूलमेव। गुणत्वे सति शब्दस्याकाशाश्रितत्वात्तदात्मकेन श्रोत्रेण ग्रहणं तच्च देशान्तरगतसंयोगविभागप्रभवस्य शब्दस्य सन्तानमन्तरेण श्रोत्रदेशप्राप्त्यभावान्न सिद्ध्यतीति गुणत्वसिद्धिमूला सन्तानकल्पना, सन्तानकल्पनायाञ्च, समानजात्यारम्भकत्वात्कर्म-व्यवच्छेदे सति गुणत्वसिद्धिरितीतरेतराश्रयत्वमेव।*[5]

सिद्धान्ती का समाधान–

सिद्धान्ती का मतानुसार उक्त स्थलों में अन्योन्याश्रयदोष नहीं है। प्रथमतः गुणत्व सिद्ध होने पर शब्दो में एक द्रव्यता सिद्ध होती है और एक द्रव्यत्व सिद्ध होने पर उसमें गुणत्व सिद्ध होगा– इस तरह पूर्वपक्षी यो दोष प्रदर्शित किया वह ठीक नही है क्योंकि शब्द में आकाशाश्रितत्व श्रोत्रग्राह्यता के आधार पर ही कल्पित होती है। और समानजातीयारम्भकत्व गुणत्व के आधार पर कल्पित होता है। शब्द के आकाशाश्रित न होने पर श्रोत्र से उसका सम्बन्ध नहीं बन पायेगा और अप्राप्त का ग्रहण नहीं होता है। इसलिए शब्द को आकाशाश्रित माना जाता है इसी प्रकार समान जातीय का आरम्भक होना भी उसी श्रावणत्व से सिद्ध होता है। क्योंकि दूरवर्ती शब्द का ग्रहण होता है। गुणत्व प्रयुक्त ही सजातीयारम्भकत्व की कल्पना नहीं होती है। इसलिए अन्योन्याश्रय दोष नहीं होता। फलतः परिशेष अनुमान से सर्वथा शब्द में गुणत्व की सिद्धि होती है। सिद्धान्ती का मत न्यायमञ्जरी में इस तरह लिखा है– *उच्यते नोभयत्राप्येष दोषः, श्रोत्रग्राह्यत्वादेव शब्दस्याकाशाश्रितत्वं कल्प्यते समानजातीयारम्भकत्वं च गुणत्वात्।*[6]

फिर से पूर्वपक्षी यहाँ परं शङ्का करता है महान् शब्द इत्यादि प्रयोग से जाना जाता है शब्द में महत्त्व रहता है। लेकिन शब्द एक गुण है, तब इस शब्द में महत्त्व आदि का योग कैसे? क्योंकि कणाद के अनुयायी तो गुणों को निर्गुण मानते हैं ।

सिद्धान्ती का मत में इसका उत्तर यह है कि कणादानुयायियों का वह कथन समानजातीय गुण गुण में नहीं रहता है– एतदभिप्रायक है। इसलिए दोष नहीं होता है । फलतः शब्द आकाश का गुण है। अतः जयन्तभट्ट ने न्यायमञ्जरी में लिखा– *कथं तर्ह्यस्य महत्त्वादियोगो निर्गुणा गुणा इति काणादाः। अस्ति हि प्रतीतिर्महान् शब्द इति। समानजातीयगुणाभिप्रायं तत्कणादवचनमिति न दोषः। तस्मादाकाशगुणः शब्दः।*[7]

निगमन–

इस प्रबन्ध में न्यायमञ्जरीकार जयन्तभट्ट के मतानुसार शब्द में गुणत्व साधन किया गया है। यहाँ पर पूर्वपक्षियों का मत उपस्थापनपूर्वक खण्डन किया गया। सिद्धान्ती आश्रितत्वहेतु द्वारा शब्दों में गुणत्व का अनुमान किया है। उस मे पूर्वपक्षियों ने दोष का आशङ्का किया है। सिद्धान्ती ने युक्ति से उस दोष का निराकरण किया। सिद्धान्ती ने परिशेषानुमान से शब्द आकाश का गुण इस बात को प्रमाणित किया है। पुनः पूर्वपक्षियों ने अन्योन्याश्रय दोष प्रदर्शित किया। सिद्धान्ती ने पुनः अन्योन्याश्रय दोष का भी निराकरणपूर्वक स्वीय मत प्रकाशित किया है।

सन्दर्भ–

1. गौरीनाथशास्त्रिसम्पादितायां न्यायमञ्जर्यां 321पृष्ठाङ्के
2. तत्रैव
3. गौरीनाथशास्त्रिसम्पादितायां न्यायमञ्जर्यां 321पृष्ठाङ्के
4. गौरीनाथशास्त्रिसम्पादितायां न्यायमञ्जर्यां 322पृष्ठाङ्के
5. गौरीनाथशास्त्रिसम्पादितायां न्यायमञ्जर्यां 322पृष्ठाङ्के
6. तत्रैव
7. गौरीनाथशास्त्रिसम्पादितायां न्यायमञ्जर्यां 322पृष्ठाङ्के

सहायक ग्रन्थ

1. न्यायमञ्जरी, सम्पा. सूर्यनारायण शुक्ल, जयकृष्ण दास हरिदासगुप्त, वाराणसी, 1936
2. न्यायमञ्जरी, सम्पा. गौरीनाथशास्त्री, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1982
3. न्यायमञ्जरी, सम्पा. नागिन जे साहा, एल् डि इन्स्टिट्युट् अफ इन्डोलजी, आहमेदावाद, 1972
4. न् यायमञ्जरी (प्रथम भाग), सम्पा. वशिष्ठनारायण झा, सद्गुरु पाब्लिकेशन, देहली, 1995

ध्वनिकल्लोलिनी के आलोक में ध्वनिविरोधी मतों का अनुशीलन

सतीश नौटियाल
पीएच.डी., संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ध्वनिसम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में ध्वनि की स्थापना के पूर्व ध्वनि के सम्बन्ध में विद्यमान तीन विप्रतिपत्तियों पर विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है तथा ध्वनिलक्षण को प्रस्तुत कर इनका सप्रमाण खण्डन किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकृत कर ध्वनि के विरोध में तीन सम्भावित प्रस्थानों की कल्पना की है-

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।।
केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं
तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्।। [1]

प्रस्तुत कारिका में आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि के विरोध में अभाववाद, भाक्तवाद तथा अनिर्वचनीय (अलक्षणीयवाद) नामक तीन पक्षों को प्रस्तुत किया है, जिसमें प्रायः ध्वनि के विरोध में भाक्तवाद ही स्पष्टतया पूर्व में प्राप्त होता है। एतदर्थ आनन्दवर्धन ने भाक्तवाद के अतिरिक्त अन्य पक्षों में लिट्लकार का प्रयोग किया है तथा भाक्तवाद में '*आहुः*' इस वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया है।

ध्वनिकल्लोलिनीकार आचार्य आनन्द झा ने ध्वन्यालोक में प्रतिपादित ध्वनि के सम्बन्ध में प्राप्त इन तीनों पक्षों का सविस्तार विवेचन किया है, जिसका समालोचन इस प्रकार किया जा सकता है-

अभाववाद-

ध्वनि के काव्यात्मकता के विरोध में प्रस्तुत प्रथम पक्ष अभाववाद है, जिसमें भी क्रमशः 3 पक्ष प्राप्त होते हैं [2]-

1. *तत्र केचिदाचक्षीरन् .... तद्व्यतिरिक्तः कोऽयं ध्वनिर्नामेति।*
2. *अन्ये ब्रूयूः - नास्त्येव ध्वनिः।*
3. *पुनरपरे तस्याभावमन्यथा कथयेयुः।*

अर्थात् अभाववाद के प्रथम पक्ष के अनुसार ध्वनि गुण एवं अलङ्कार आदि तत्त्वों में से ही एक तत्त्व है। द्वितीय पक्ष के अनुसार काव्यशास्त्र में ध्वनिनामक कोई तत्त्व ही स्वीकृत नहीं है तथा तृतीय पक्ष के अनुसार ध्वनि अलङ्कार आदि का ही कोई प्रभेद है परन्तु वह काव्य की आत्मा नहीं है।

आचार्य आनन्द झा ने इन्हीं पक्षों को सूचित करते हुए लिखा है कि कुछ आचार्यों के मत में ध्वनि का अभाव है, जो कि अलङ्कारवादी एवं गुणवादी आचार्य है -

ये न परे ते कतिचन ध्वनेरभावं वदन्ति स्म।
भिन्नां स्वभणिति-रीतिं समाश्रयन्तो हृदा हीनाः।।
अस्मिन्नभावपक्षे पक्षत्रितयं समाविष्टम्।। [3]

अर्थात् ऐसे कुछ लोग जो श्रेष्ठ नहीं थे ध्वनि के अभाव का प्रतिपादन करते थे जो भिन्न प्रकार की प्रतिपादन-शैली का आश्रयण करने वाले होते हुए भी सहृदय नहीं थे। इस अभाववाद के अन्तर्गत तीन पक्ष थे।

आचार्य आनन्द झा ने अभाववाद में प्रस्तुत इन तीन पक्षों का क्रमशः विवेचन इस प्रकार किया है -

अभाववाद में प्राप्त प्रथम पक्ष-

ध्वनि के विपक्ष में प्राप्त विप्रतिपत्तियों में सर्वप्रथम अभाववाद है जिसके भी 3 पक्ष आनन्द झा ने प्रस्तुत किये हैं -

केषाञ्चित् प्रथमोऽयं पक्षस्तत्रावगन्तव्यः।।
शब्दार्थात्मकमेव हि काव्यम्, शाब्दास्त्वलङ्कारा:।
शब्देऽनुप्रासादिप्रमुखा विदिता विपश्चितां स्पष्टम्।।
उपमादयस्तथाऽर्थाः समुपस्कारा अपि प्रथिताः।
संघटनास्थितिमन्तो माधुर्याद्या गुणा अपि प्रथिताः।।
संघटनाभ्योऽभिन्ना उपनागरिकादयो यास्तु।
प्रथितास्ता अपि लोके वृत्तिपदप्रख्यतां याताः।।
वैदर्भीप्रमुखा या रीतिः काव्येषु सन्दृब्धा।
साऽपि प्रथिता विज्ञैर्नैवं प्रथितिर्ध्वनावस्ति।।
तस्मात् प्रसिद्ध्यभावात् ध्वनिर्न मान्यो विशेषज्ञैः।
नाश्वासोऽज्ञकथायां ध्वनिविषयायामतोऽभावः।। [4]

अर्थात् कतिपय अभाववादियों का प्रथम पक्ष ज्ञातव्य है जिनके अनुसार प्रत्येक काव्य शब्द और अर्थ एतदुभयात्मक ही होता है। शब्दगत अनुप्रास, यमक आदि अलङ्कार स्पष्ट रूप से ज्ञात है। अर्थों को अलङ्कृत करने वाले उपमा आदि अलङ्कार भी प्रसिद्ध ही है। वर्णयोजनात्मक संघटना में पर्यवसित होने वाले माधुर्य आदि

गुण भी विद्वानों के लिए प्रसिद्ध है। वे उपनागरिका आदि भी अप्रसिद्ध नहीं जो सामान्य रूप में 'वृत्ति' नाम से पुकारी जाती है और वर्णसंघटनात्मक ही होती है। उनसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। काव्यों में अनुस्यूत होने वाली वैदर्भी आदि रीतियों को भी विज्ञजन जानते है, किन्तु इन अर्थों में ध्वनि की प्रसिद्धि नहीं है। इसलिए प्रसिद्धि के अभाव के कारण ध्वनि को स्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसमें प्रथम पक्ष के अनुसार काव्य शब्दार्थात्मक है तथा काव्यमार्ग में शब्दार्थ के उपस्कारक शब्दगत अनुप्रास आदि अलङ्कार एवं अर्थगत उपमा आदि अलङ्कार प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार काव्यशास्त्र में संघटनारूप धर्म की माधुर्यादि गुणों में स्थिति सभी काव्यज्ञों को अभिप्रैत है। इसके अतिरिक्त काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने उपनागरिका आदि वृत्तियों एवं वैदर्भी आदि रीतियों की भी महिमा का वर्णन काव्यशास्त्र में किया है। परन्तु ध्वनि का विवेचन एवं महिमा-मण्डन किसी भी काव्यशास्त्रीय आचार्य ने नहीं किया है। अत: ध्वनि नामक कोई भी स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है। उसका अन्तर्भाव अलङ्कार आदि स्वीकृत तत्त्वों में स्वीकार करना युक्तियुक्त एवं परम्परानुगुण है। आचार्य आनन्द झा का यह व्याख्यान पूर्णत: ध्वनिकार आनन्दवर्धन के वृत्तिभाग का अनुवादमात्र प्रतीत होता है। आचार्य आनन्द झा ने अभाववाद के प्रथम पक्ष में ध्वनिकार द्वारा प्रदर्शित वृत्तिभाग को ही कारिकामय स्वरूप में उपस्थापित किया है। जैसा कि ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन ने अभाववाद के प्रथम पक्ष को प्रदर्शित किया है-

'तत्र केचिदाचक्षीरन्-शब्दार्थशरीरन्तावत्काव्यम्। तत्र च शब्दगताश्चारुत्वहेतवोऽनुप्रासादयः प्रसिद्धा एव। अर्थगताश्चोपमादयः। वर्णसंघटनाधर्माश्च ये माधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयन्ते। तदनतिरिक्तवृत्तयो वृत्तयोऽपि याः कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः, ता अपि गताः श्रवणगोचरम्। रीतयश्च वैदर्भीप्रभृतयः। तद्वतिरिक्तः कोऽयं ध्वनिर्नामेति।'[5]

अर्थात् कतिपय आचार्यों के मत में शब्द एवं अर्थ काव्य का शरीर है। इसमें शब्दगत चारुत्व के कारण अनुप्रास आदि शब्दालङ्कार प्रसिद्ध है तथा अर्थगत उपमा आदि अर्थालङ्कार प्रसिद्ध है। वर्णसंघटनारूप माधुर्य आदि धर्म भी प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त उपनागरिका आदि वृत्ति एवं वैदर्भी आदि रीति काव्यशास्त्र में प्रसिद्ध है। इनसे अतिरिक्त ध्वनि नामक तत्त्व काव्यशास्त्र में प्रथित नहीं है।

इस प्रकार आचार्य आनन्द झा ने ध्वनिकल्लोलिनी में अभाववाद के प्रथम पक्ष को प्रदर्शित किया है, जो कि ध्वनिकार आनन्दवर्धन का हृदयङ्गम अर्थ का प्रदर्शक है।

अभाववाद के प्रथम पक्ष का खण्डन-

आचार्य आनन्द झा ने अभाववादियों के प्रथम पक्ष के खण्डन में हेतु प्रदर्शित करते हुए कहा है कि जिन आलङ्कारिकों के मत में ध्वनि का अन्तर्भाव अलङ्कार, गुण एवं रीति आदि में होता है उनका वह मत युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि उपमा आदि अलङ्कार उस ध्वनितत्त्व के चारुत्व के हेतु है तथा अलङ्कारों में वाच्यार्थ की प्रधानता होती है तथा ध्वनि में वाच्यार्थ गौण होकर व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता का द्योतक होता है। अत: ध्वनि के लिए अलङ्कार आदि पदों का व्यवहार तर्कसंगत नहीं है -

वाच्यार्थेष्वखिलेष्वथ गौणत्वं मुख्यता व्यङ्ग्ये।
उपमानुप्रासादीन् तच्चारुत्वस्य कारकांस्तस्मात्।।
समुपादाय न कथमपि व्यवहारो ध्वनि-सुसम्पृक्तः।
अर्हो भवितुमनेनेत्यादि-विवरणेन सुस्पष्टम्।।[6]

अर्थात् ध्वनिकाव्य-स्थल में सभी वाच्य अर्थ गौण होते है और मुख्य अर्थ व्यङ्ग्य होता है। उस मुख्य अर्थ की चारुता के सम्पादक उपमा, अनुप्रास आदि को लेकर भी ध्वनि का सम्पादन नहीं किया जा सकता है, इसका स्पष्टीकरण ध्वनिकार ने '*अनेन*' इत्यादि विवरण के द्वारा स्पष्ट भाव से किया है।

आनन्द झा ने अपने इस मत की उपजीव्यता के लिए ध्वनिकार के मत को प्रमाण स्वरूप प्रदर्शित किया है। जिसमें आनन्द झा ने '*अनेन*' इस पद से ध्वनिकार द्वारा प्रयुक्त वृत्तिभाग इङ्गित किया है। ध्वन्यालोक में अभाववादियों के प्रथम पक्ष का खण्डन इस प्रकार है-

'अनेन वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्योऽनुप्रासादिभ्यश्च विभक्त एव ध्वनेर्विषय इति दर्शितम्।'[7]

अर्थात् ध्वनि वाच्यवाचक के चारुत्व के कारणभूत उपमा आदि अलङ्कारों से भिन्न है। अत: ध्वनि के लिए अलङ्कार आदि पदों का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन के आशय को स्पष्ट करते हुए लोचनकार अभिनवगुप्त ने भी अभाववादियों के प्रथम पक्ष का खण्डन किया है, जिसमें आचार्य ने अलङ्कारों के वाच्यवाचकभाव तथा ध्वनि के व्यङ्ग्यव्यञ्जकभाव सम्बन्ध का निर्देश करते हुए अलङ्कार आदि में ध्वनि के अन्तर्भाव का निराकरण प्रस्तुत किया है। जैसा कि उक्त है -

'विभक्त इति। गुणालङ्काराणां वाच्यवाचकभावप्राणत्वात्। अस्य च तदन्यव्यङ्ग्यव्यञ्जकभावसारत्वान्नास्य तेष्वन्तर्भाव इति। अनन्यत्र भावो विषयशब्दार्थः। एवं तद्व्यतिरिक्तः कोऽयं ध्वनिरिति निराकृतम्।'[8]

अर्थात् क्योंकि गुण और अलङ्कार का प्राणभूत तत्त्व वाच्यवाचकभाव है और इस ध्वनि का सार उसके अतिरिक्त व्यङ्ग्यव्यञ्जकभाव है इसलिए ध्वनि का गुण-अलङ्कारों में अन्तर्भाव

उचित नही है। इस प्रकार गुण एवं अलङ्कार से व्यतिरिक्त ध्वनि क्या है इस मत का निराकरण किया गया है।

इस प्रकार से ध्वनिकल्लोलिनीकार द्वारा प्रस्तुत अभाववादियों के प्रथम पक्ष के खण्डन का आधार ध्वनिकार आनन्दवर्धन का विवरण एवं लोचनकार की दृष्टि का समन्वयमात्र है।

अभाववाद में प्राप्त द्वितीय पक्ष-

अभाववाद के द्वितीय पक्ष के अनुसार काव्यशास्त्र में ध्वनि नामक तत्त्व की अवस्थिति ही नहीं है, क्योंकि सम्प्रदाय प्राप्त काव्यशास्त्र की धारा में ध्वनि का समुल्लेख किसी भी आचार्य ने काव्यतत्त्व के रूप में नहीं किया है। उनके अनुसार ध्वनि का तात्पर्य तो वाद्य-यन्त्रों से जन्य रवविशेष के लिए ही किया जाता है। अत: साम्प्रदायिक न होने से ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकृत करना सर्वथा अनुचित है। इसी प्रकार काव्य के आत्मभूत तत्त्व के लिए सहृदयहृदयाह्लादक होना अनिवार्य है तथा सहृदयों के हृदय में आह्लादकता के कारक रूप में ध्वनि की प्रसिद्धि न होने से इसे आत्मभूत रूप में स्वीकार करना सम्प्रदाय-विरोध होगा। एतदर्थ ध्वनि नामक तत्त्व काव्यशास्त्र में नहीं है -

पक्षस्तदा द्वितीयो ध्वनिविरहख्यापक: तूर्णम्।
अन्ये ब्रूयुरितीत्थं ध्वनिकारेणात्र सन्दृब्ध:।।
प्रवहन् ननु वैवर्ण्यं वाद्यसमुत्थो रवो ध्वनि: कथित:।
नोचु: काव्यविद: तं काव्यं ये साम्प्रदायिका विबुधा:।।
यस्मात् सहृदय-हृदयाऽऽह्लादकतामावहन्तौ हि।
शब्दार्थावथ काव्यम्, प्रथितं काव्यस्य लक्षणं शुद्धम्।।
एतत्परम्परागतकाव्यप्रस्थानतो दूरे।
प्रथिते ध्वनिपदवाच्ये सम्भवमर्हन्न काव्यत्वम्।।[9]

अर्थात् ध्वनिकार द्वारा '*अन्ये ब्रूयु:*' इस उक्ति से ध्वनि के अभाव का ख्यापक द्वितीय पक्ष उपस्थित किया गया है। उस पक्ष के अनुसार ध्वनि शब्द प्रसिद्ध अवश्य है किन्तु वह वर्णभाव रहित मृदंग आदि वाद्योत्थित शब्द अर्थ में प्रसिद्ध है परन्तु उस मृदंग, वंशी तथा वीणा आदि के शब्दों को काव्यज्ञ-विद्वान् काव्य नहीं कहते है। अत: सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने वाले शब्द एवं अर्थ ही काव्य है, इस प्रकार का शुद्ध लक्षण ही काव्य पद की अर्हता को धारण करता है। काव्यमार्ग में अतिदूरवर्ती उक्त प्रसिद्ध ध्वनि शब्द के अर्थ में इस काव्यलक्षण का समन्वय सम्भव नहीं है। अत: उसे काव्य नहीं कहा जा सकता है।

आचार्य आनन्द झा द्वारा प्रदर्शित अभाववादियों का द्वितीय मत प्राय: आनन्दवर्धन के ही मत का सार है। केवल आचार्य आनन्द झा ने उस मत के अवसर पर वाद्य समुत्थ ध्वनि के प्रदर्शन से काव्यशास्त्रीय ध्वनि के अभाव का उदाहरण निरुपित किया है। ध्वन्यालोक में अभाववाद का द्वितीय पक्ष इस प्रकार है -

'*अन्ये ब्रूयु:- नास्त्येव ध्वनि:। प्रसिद्धप्रस्थानव्यतिरेकिण: काव्यप्रकारस्य काव्यत्वहाने: सहृदयाहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्। न चोक्तप्रस्थानातिरेकिणो मार्गस्य तत्सम्भवति। न च तत्समन्तात: पातिन: सहृदयान् कांश्चित्परिकल्प्य तत्प्रसिद्धया ध्वनौ काव्यव्यपदेश: प्रवर्तितोऽपि सकलविद्वन्मनोग्राहितामवलम्बते।*'[10]

अर्थात् अन्य आचार्यों के मत में काव्य में ध्वनि नामक तत्त्व की सत्ता नहीं है क्योंकि अलङ्कार आदि प्रसिद्ध प्रस्थान से व्यतिरिक्त काव्य-भेद को स्वीकृत करने में काव्यत्व की हानि है तथा सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्व ही काव्य का लक्षण है। उक्त प्रस्थानों से अतिरिक्त मार्ग में वह सम्भव नहीं है और यदि उस सम्प्रदाय के कतिपय आचार्य ध्वनि में काव्य की प्रवृत्ति स्वीकृत भी करें तो भी ध्वनि सभी विद्वानों का मनोग्राही नहीं हो सकता है।

इस प्रकार ध्वनि के अभाव में समुद्धृत द्वितीय पक्ष के अनुसार ध्वनि नामक तत्त्व का काव्यशास्त्र में आह्लादकरूप में समुल्लेख ही प्राप्त नहीं होता है। अत: ध्वनि का अस्तित्व काव्य में नहीं है।

अभाववाद के द्वितीय पक्ष का खण्डन-

अभाववाद के द्वितीय पक्ष के अनुसार काव्य का तात्पर्य सहृदयों के हृदय की आह्लादजनकता से है। अत: काव्य में शब्दार्थगत अलङ्कार आदि के आह्लादजनकता से उन्हें काव्य के रूप में स्वीकृत किया गया है परन्तु काव्यशास्त्र की धारा में ध्वनि नामक तत्त्व की आह्लादकता एवं स्वीकार्यता सम्प्रदाय प्राप्त नहीं है। अत: ध्वनि नामक तत्त्व काव्य में होता ही नहीं है। इसके खण्डन में आचार्य आनन्द झा ने ध्वनि की लक्ष्यग्रन्थों में सर्वस्वता एवं आह्लादकता का वर्णन करते हुए कहा है कि ध्वनि की स्वीकार्यता केवल लक्षणग्रन्थों में ही नहीं है परन्तु लक्ष्य ग्रन्थों के अनुशीलन से ध्वनि ही काव्य का सर्वस्व तथा मौलिभूत तत्त्व है जिसके उपस्कारक अलङ्कार आदि तत्त्व हैं। अत: ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करना काव्यशास्त्र के प्रस्थानों का विरोध नही हैं अपितु काव्यशास्त्र की सूक्ष्मदृष्टि का उन्मीलन है। जैसा कि आनन्द झा ने लिखा हैं -

चित्रादन्यत् सहृदयहृदयाह्लादकतमं काव्यम्।
नो लक्षणकृन्मात्रप्रसिद्धमिति ध्वनिप्रख्यम्।।
शब्दार्थालङ्कारौ चित्रे काव्येऽपि सम्भवत:।
तस्मान्नालङ्कारे ध्वनिसंज्ञा बीजता मान्या।।
फलत: प्रसिद्धप्रस्थानातिक्रमिणो हि मार्गस्य।
इत्यादिकं यदुक्तं ध्वनिप्रतीपैरपास्तं तत्।। [11]

अर्थात् ऐसे काव्य अप्रसिद्ध नहीं है जो चित्र काव्य से अन्य

होते हुए सहृदयों को अत्यन्त आह्लाद प्रदान करने वाले होते हैं। वे काव्य केवल काव्यलक्षण-विधायी आलङ्कारिक विद्वानों के ही परिचित नहीं है, वे काव्य ध्वनि कहलाते है यह बात बारम्बार कही जा चुकी है। शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार तो चित्रकाव्य में भी हुआ करते है, अत: अलङ्कारों के कारण काव्य का नाम 'ध्वनि' होता है, अलङ्कार ही काव्य-विशेष के ध्वनि नामकरण का बीज है, यह बात नही कही जा सकती है। अत: 'प्रसिद्ध प्रस्थान के अतिरिक्त ध्वनि का कोई मार्ग नहीं है' इत्यादि जो ध्वनि-विरोधियों के द्वारा कहा गया है, वह उचित नहीं है।

आनन्द झा ने अपने इस मत का मूलाधार ध्वनिकार आनन्दवर्धन के 'यदप्युक्तम्' इस वृत्तिभाग को उद्घोषित किया है। जिसका मूल प्रसङ्ग ध्वन्यालोक में इस प्रकार है -

'यदप्युक्तम्-'प्रसिद्धप्रस्थानातिक्रमिणो मार्गस्य काव्यत्व-हानेर्ध्वनिर्नास्ति' इति, तदप्ययुक्तम्। यतो लक्षणकृतामेव स केवलं न प्रसिद्धः, लक्ष्ये तु परीक्ष्यमाणे स एव सहृदयहृदयाह्लादकारि काव्यतत्त्वम्। ततोऽन्यच्चित्रमेव।' [12]

अर्थात् जिन अभाववादियों के मत में काव्यशास्त्र के प्रस्थानों में ध्वनि का उल्लेख न होने से ध्वनि का अस्तित्व ही नहीं हैं, उनका मत सर्वथा अयुक्त है, क्योंकि ध्वनि की प्रसिद्धि केवल लक्षणग्रन्थों में ही नहीं हैं, परन्तु वाल्मीकिरामायण आदि लक्ष्यग्रन्थों के अनुशीलन से ध्वनि ही सहृदयों के हृदय का अभिनन्दक सिद्ध होता है। अत: ध्वनि ही काव्य की आत्मा है।

अभाववाद का समर्थक तृतीय पक्ष-

आनन्द झा के अनुसार अभाववाद के समर्थक तृतीय पक्ष ने चारुत्व के हेतु को काव्यीय तत्त्व स्वीकृत किया है तथा ध्वनि में भी अलङ्कार आदि तत्त्वों के समान 'कमनीयता' इस सामान्य धर्म के कारण ध्वनि का अन्तर्भाव अलङ्कार आदि में ही किया है। अत: उनके मत के अनुसार साम्प्रदायिक आचार्यों ने अलङ्कारों में से ही एक ध्वनि का विशद वर्णन नहीं किया है, परन्तु ध्वनिवादी आचार्य उस प्रभेदमात्र को काव्य की आत्मा स्वीकृत कर रहे हैं, जो कि सर्वथा अनुचित है। क्योंकि किसी का अन्य नामकरण मात्र कर देने से उस तत्त्व में परिवर्तन नहीं होता है। जैसे-विवाह के पूर्व का व्यक्ति विवाह के उपरान्त कन्या पक्ष द्वारा जमाता पद से अभिहित होता है, परन्तु उसके स्वरूप एवं गुणों में परिवर्तन नहीं होता है। अत: ध्वनि नामक तत्त्व अपूर्व नहीं है, अपितु वह अलङ्कार में से ही एक है, जिसे पूर्व आचार्यों ने कमनीयता इस सामान्य धर्म के कारण पृथक् संज्ञा से अभिव्यक्त नहीं किया। एतदर्थ ध्वनि का अतिरिक्त नामकरण करना तथा उसे ही काव्य का सर्वस्व घोषित करना युक्तियुक्त नहीं है -

तर्हि ध्वनेरभावं पुनरपरे वक्तुकामा ये।
तेषां पक्षः पुनरित्यादिग्रन्थेन वर्णितो विशदम्।।
अस्तु ध्वनिः प्रसिद्धो वहतु तथा कामनीयकं स्वस्मिन्।
किन्तु न धत्ते नवतां ध्वनिरिति संज्ञैव नूतना यस्मात्।।
अस्त्यथ यदि चारुत्वं ध्वनौ हृदावर्जकं किञ्चित्।
शब्दार्थालङ्कारादिष्वेवान्तर्गतिस्तस्य।।
नाऽपूर्वसंज्ञयैव हि भवत्यपूर्वं किमप्यत्र।
श्वसुरालयं गतो यदि जमाता कथ्यते लोकैः।। [13]

अर्थात् जो अन्य जन ध्वनि का अभाव स्थिर करना चाहते है उनके पक्ष को 'पुनः' इत्यादि ग्रन्थ के द्वारा ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने विशद रूप में उपस्थित किया है। यदि ध्वनि अप्रसिद्ध नहीं है यह स्वीकार भी कर लिया जाये तो भी वह कमनीयता को धारण नहीं करता है फिर भी ध्वनि कोई नूतन तत्त्व नहीं है, क्योंकि किसी प्राचीन तत्त्व को 'ध्वनि' यह नाम-मात्र दे दिया गया है। यदि ध्वनि में सहृदयों के हृदयों को आकृष्ट करने की क्षमता है, तो ध्वनि का शब्दालङ्कार या अर्थालङ्कार में ही अन्तर्भाव हो जायेगा। नवीन नामकरण मात्र से कोई प्राचीन तत्त्व नूतन नहीं हो जाता है। प्रत्येक विवाहित व्यक्ति ससुराल जाने पर वहाँ के अनेक लोगों द्वारा 'जमाता' इस नूतन अभिधान से अभिहित होता है, परन्तु उस नूतन नाम से अभिहित होने पर वह व्यक्ति नूतन नहीं हो जाता है। अत: जिस प्रकार जितने अलङ्कार उपलब्ध है। वे सभी एक ही साथ प्रकाश में नहीं आये है, किन्तु सभी अलङ्कार के अन्तर्गत ही मान्य है तथा अलङ्कार ही कहलाते है। उसी प्रकार ध्वनि भी कभी प्रकाश में आने के कारण अलङ्कारों के अन्तर्गत ही स्वीकृत किया जायेगा। आनन्द झा ने अभाववाद के इस मत-स्थापन के सन्दर्भ में ध्वनिकार आनन्दवर्धन के 'पुनरपरे' इस पद को सङ्केतित किया है, जो कि ध्वन्यालोक में इस प्रकार है -

'पुनरपरे तस्याभावमन्यथा कथयेयुः-न सम्भवत्येव ध्वनिर्नामापूर्वः कश्चित्। कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तेष्वेव चारुत्वहेतुष्वन्तर्भावात्। तेषामन्यतमस्यैव वा अपूर्वसमाख्यामात्रकरणे यत्किञ्चन कथनं स्यात्।' [14]

अर्थात् कतिपय आचार्य ध्वनि के अभाव को इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं कि ध्वनि नामक तत्त्व काव्य में अपूर्व नहीं हैं, अपितु उसका समावेश भी अलङ्कार आदि में ही होता है, क्योंकि ध्वनि में भी अलङ्कार आदि के समान कमनीयता रूप धर्म सामान्य नहीं हैं। अत: आलङ्कारिकों ने ध्वनि के प्रभेदमात्र होने से उसकी पृथक् संज्ञा नहीं की है। एतदर्थ ध्वनि की पृथक् संज्ञा करना एवं

उसे अलङ्कारों से भिन्न घोषित कर काव्य का आत्मभूत तत्त्व निरूपित करना सर्वथा अनुचित है।

अभाववाद के तृतीय पक्ष का खण्डन-

अभाववाद के तृतीय पक्ष के खण्डन में ध्वनिकल्लोलिनीकार आनन्द झा ने वाच्य-वाचकसम्बन्ध पर आश्रित अलङ्कार आदि तत्त्वों तथा व्यङ्ग्य-व्यञ्जकभाव पर आश्रित ध्वनि का मूल भेद प्रदर्शित किया है, जिससे कमनीयता धर्म सामान्य होने पर भी प्रस्थानभेद से अलङ्कार एवं ध्वनि में भेद स्पष्ट होता है। अत: ध्वनि का समावेश अलङ्कार आदि वाच्य-वाचकधर्माश्रित तत्त्वों में करना गजनिमीलिका व्याख्या ही है –

यत्कामनीयकं नोऽतिवर्त्तमानस्य काव्यस्य।
ध्वनिनाम्नोऽलङ्काराद्यन्तर्भावोऽस्त्विति प्रोक्तम्।।
तद्वाच्य-वाचकत्वाश्रयिणि प्रस्थानभेदेऽथ।
व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावाश्रितध्वनेरप्रवेशान्न।।[15]

अर्थात् यह जो कहा गया है कि कमनीयात्मक सौन्दर्य का अतिक्रमण न करने के कारण ध्वनि काव्य का अन्तर्भाव आलङ्कारिक काव्यों में ही स्वीकृत करना चाहिए वह उचित नहीं है क्योंकि अलङ्कार एवं तत्प्रयुक्त आलङ्कारिक काव्य 'वाच्य-वाचकभाव' सम्बन्ध पर ही आश्रित होते हैं तथा ध्वनित्व 'व्यङ्ग्य-व्यञ्जकभाव' पर आश्रित होता है। अत: ध्वनिकाव्य अलङ्कार-प्रधान काव्य में अन्तर्भुक्त नहीं हो सकता है।

आचार्य आनन्द झा का यह मत ध्वनिकार आनन्दवर्धन के मत का अनुवादमात्र ही है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने ध्वनिलक्षण के निरूपणावसर पर अभाववादियों के तृतीय पक्ष के खण्डन में कहा है –

यदप्युक्तम्-'कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तालङ्कारादि-प्रकारेष्वन्तर्भाव:' इति, तदप्यसमीचीनम्, वाच्यवाचकमात्राश्रयिणि प्रस्थाने व्यङ्ग्यव्यञ्जकसमाश्रयेण व्यवस्थितस्य ध्वने: कथमन्तर्भाव:, वाच्यवाचकचारुत्वहेतवो हि तस्याङ्गभूता:, स त्वङ्गिरूप एवेति प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्।' [16]

अर्थात् ध्वनि एवं अलङ्कार में कामनीयक इस सामान्य धर्म को स्वीकृत कर ध्वनि का अलङ्कार में समावेश करने वाले आचार्य सर्वथा दिग्भ्रमित है, क्योंकि अलङ्कार का प्रस्थान वाच्य-वाचकसम्बन्ध पर आश्रित है तथा ध्वनि की अभिव्यक्ति व्यङ्ग्य-व्यञ्जकभाव से होती है। अत: व्यङ्ग्यव्यञ्जकभाव से अभिव्यक्त ध्वनि के अङ्गभूत वाच्यवाचकधर्म पर आश्रित अलङ्कारों में ध्वनि का अन्तर्भाव करना दुर्व्याख्या ही है।

सन्दर्भ सूची -

1. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, कारिका-01, पृष्ठ – 08
2. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, वृत्तिभाग, पृष्ठ – 9-27
3. ध्वनिकल्लोलिनी, ध्वनिसिद्धि, पृष्ठ – 4
4. ध्वनिकल्लोलिनी, ध्वनिसिद्धि, पृष्ठ –4-5
5. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, वृत्तिभाग, पृष्ठ – 17
6. ध्वनिकल्लोलिनी, ध्वनिसिद्धि, पृष्ठ – 47-48
7. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, वृत्तिभाग, पृष्ठ – 105
8. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, लोचनटीका , पृष्ठ – 105
9. ध्वनिकल्लोलिनी, ध्वनिसिद्धि, पृष्ठ – 06
10. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, वृत्तिभाग, पृष्ठ – 23
11. ध्वनिकल्लोलिनी, ध्वनिसिद्धि, पृष्ठ – 48
12. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, वृत्तिभाग, पृष्ठ – 105
13. ध्वनिकल्लोलिनी, ध्वनिसिद्धि, पृष्ठ – 10
14. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, वृत्तिभाग, पृष्ठ – 26
15. ध्वनिकल्लोलिनी, ध्वनिसिद्धि, पृष्ठ – 48-49
16. ध्वन्यालोक, लोचनसहित, प्रथम उद्योत, वृत्तिभाग, पृष्ठ – 107

परिशीलितग्रन्थसूची

1. झाआनन्द, ध्वनिकल्लोलिनी, कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभङ्गा, 1978
2. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, लोचनसहित सटिप्पण-प्रकाश-हिन्दीव्याख्योपेत, टीकाकार आचार्यजगन्नाथ पाठक,चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 2014
3. उद्भट, काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रह, सम्पादक – मङ्गेश रामकृष्ण तैलङ्ग, प्रकाशक – निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1928
4. दण्डी, काव्यादर्श, व्याख्याकारश्रीरामचन्द्र मिश्र, प्रकाशक – चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 2016
5. पण्डितराज जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, संस्कृत व्याख्याकार – बदरीनाथ झा, हिन्दी व्याख्याकार – मदनमोहन झा, प्रकाशक – चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1955
6. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, सम्पादक – आचार्य मधुसूदन शास्त्री, प्रकाशक – काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1981
7. भामह, काव्यालङ्कार, व्याख्याकार – पि. एस्. सुब्रह्मण्यशास्त्री, प्रकाशक – वेल्लोर प्रिंटिंग हाउस, तंजौर, 1927
8. मम्मट, काव्यप्रकाश, भट्टवामनाचार्य विरचित बालबोधिनी-टीका सहित, परिमलपब्लिकेशन, तृतीय संस्करण, 2012
9. राजशेखर, काव्यमीमांसा, व्याख्याकार – पण्डित मधुसूदन मिश्रा, प्रकाशक – चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1934
10. वामन, काव्यालङ्कारसूत्र, सम्पादक एवं व्याख्याकार – डॉ बेचन झा, प्रकाशक – चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1971
11. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, व्याख्याकार – सत्यव्रत सिंह, प्रकाशक – चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1957
12. सागरनन्दी, नाटकलक्षणरत्नकोश, प्रकाशक – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1972

अन्तर्जालीयस्त्रोत

13. http://www.archive.org
14. http://www.sanskrit.nic.in
15. http://www.wikipedia.org

ISSN 2278 - 0327

रीतिकालीन कवि ठाकुर के काव्य में प्रेम का स्वरूप

डॉ. आशुतोष शर्मा
मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रीतिमुक्त कवि ठाकुर के काव्य की सबसे बड़ी निधि उसमें वर्णित 'प्रेम' है क्योंकि प्रेम करते तो सभी हैं लेकिन उसे अभिव्यक्त करना सबके बस की बात नहीं है। कबीर ने प्रेम को गूंगे के गुड़ के समान कहा –

''अकथ कहानी प्रेम की, कुछ कही न जाय!
गूंगे केरि सरकरा, खाय मुसकाय''।।[1]

अर्थात् प्रेम की कहानी को कहना इतना आसान नहीं जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति गुड़ खाकर उसके स्वाद का आनन्द तो ले सकता है लेकिन दूसरे को बता नहीं सकता, प्रेम भी कुछ ऐसा ही है। कालिदास ने तो प्रेम को जन्म–जन्मान्तरों का व्यापार माना है तो पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने तो प्रेम को और अधिक व्यापक स्वरूप प्रदान करते हुए उसकी तुलना स्वर्ग से की है–

''प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक, अशोका।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोका।।''[2]

प्रेम अपने लौकिक और अलौकिक दोनों ही रूपों में गृहणीय और सदैव आकर्षित करने वाला रहा है क्योंकि प्रेम चाहे व्यक्तिगत हो अथवा ईश्वरीय अपने दोनों ही रूपों में समर्पण की माँग करता है। प्रेमपात्र के प्रति समर्पण, श्रद्धा, भक्ति, एकत्व की भावना ही इस प्रेम को सुन्दरतम् बना देती है। 'प्रेम' को लेकर कितनी ही परिभाषाएँ हमारे सामने आती हैं किन्तु क्या हम किसी भी परिभाषा से पूर्णत: सहमत हो पाते हैं, शायद नहीं क्योंकि मानव हृदय की शाश्वत और अनिर्वचनीय अनुभूति की अभिव्यक्ति भी अनेक तरीकों से हो सकती है। हाँ, इतना अवश्य है कि किसी की अभिव्यक्ति हमें भावानुभूत कर देती है। कवि ठाकुर के काव्य में व्यक्त प्रेम भी हमें, उसकी गहराई और उसकी ऊँचाई के दर्शन करवाता है। कवि ने जब अपने व्यक्तिगत प्रेम की अभिव्यक्ति की तो उसकी छटा ने सबके मन को मोह लिया–

''वा निरमोहिन रूप की रासि जऊ उर हेत न ठानति ह्वै है।
बारहूँ बार बिलोकि घरी–घरी सूरत तौं पहिचानती ह्वै है।
ठाकुर या मन की परतीत है जौ पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत है नित मेरे लए इतनो तौ बिसेष कै जानति ह्वै है''[3]

कवि द्वारा रचित प्रस्तुत पद उनके व्यक्तिगत प्रेम का सूचक है, वह अपनी प्रेमिका को देखने के लिए बार–बार उसकी गली के चक्कर काटता है, लेकिन प्रेम के बदले में प्रेम नहीं मिला, फिर भी आत्मसमर्पण देखते ही बनता है। कवि इतने में भी कहीं खुश है कि *''आवत है नित मेरे लिए इतनो तो बिसेष कै जानति ह्वै है।''* कितनी गहरी बात की है कवि ठाकुर ने, जो प्रेम को इतने उच्च पद पर आसीन कर देता है। कवि ठाकुर का प्रेम देखकर तो आज के आधुनिक युग के उन नवयुवकों का प्रेम याद हो आता है, जो प्रेमिका को देखने के लिए उसके घर के चक्कर तो काटते हैं लेकिन अपने प्रेम में उन्हें विश्वास नहीं हो पाता, वे आत्मसमर्पण न करके प्रेयसी का समर्पण अवश्य ही चाहते है, प्रेयसी के पीछे जासूस लगवाते हैं कि कहीं वह किसी और से प्रेम तो नहीं करती। आज कवि ठाकुर का प्रेम हमें प्रेम करने का सही तरीका सिखाता है। कवि ठाकुर तो प्रेम के सच्चे स्वरूप पर सब कुछ न्यौछावर करने की बात कहते हैं। उनका मानना है कि प्रेम में कपट, अविश्वास और विश्वासघात के लिए कोई स्थान नहीं है, प्रेम का कितना सुन्दरतम् रूप यहाँ अभिव्यक्ति पा गया है–

''धिक कान जो दूसरी बात सुनैं अब एकही रंग रहा मिलि डोरो।
दुसरों नाम कजात कढ़ै रसना जो कहूँ तो हलाहल बोरो।
ठाकुर यो ँ कहतो ँ ब्रजबाल सो हयाँ बनितान को भाव है भोरो।
ऊधो जू वे आँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि तकैँ तन गोरो।[4]

एकनिष्ठ प्रेम की अभिव्यक्ति कर ठाकुर ने प्रेम को सर्वोच्च स्थान पर ला खड़ा किया है क्योंकि आज चंचल प्रवृत्तियों के लोगों की भरमार है जो नित्य नए प्रेम की तलाश में रहते हैं। एक के साथ संतुष्ट ही नहीं हो पाते इसलिए ठाकुर का प्रेम हमें अपने प्रेमी के प्रति ईमानदार होना सिखाता है। एक बार किसी से प्रेम कर लिया तो बस कर लिया, उसमें विश्वासघात न हो, प्रेम को निबाहना चाहिए और यह निबाहन तभी होगा जब हम हृदय की गहराईयों से उसे चाहें, उस पर विश्वास करें और समर्पित भाव रखें कवि भी यही कहते दिखाई देते हैं–

''का करियै तुम्हरे मन को जिहि को अब लौं न मिटो दगा दीबो

पै हम दूसरो रूप न देखि हैँ आनन आन को नाम न लीबो।
ठाकुर एक सो भाव है जौ लगि तौ लगि देह धरे जग जीबो।
प्यारे सनेह निबाहबे कौँ हम तौ अपनो सो कियो अरू कीबो।[5]

प्रेम के निबाहने की बात कहकर ठाकुर ने प्रेम के उदात्त रूप को अभिव्यक्त किया है। प्रेम की एकनिष्ठता, जहाँ नायिका ने तो बस अपने प्रेमी से प्रेम करके उसकी साँवरी मूर्ति को अपने हृदय में बिठा लिया है प्रेमी चाहे उससे प्रेम करे या न करे, उससे मिलने आए या न आए, लेकिन वह केवल उसी से प्रेम करेगी। आज के यान्त्रिक जीवन में जहाँ रिश्ते केवल पैसे के तराजू में तोले जाते हैं, जहाँ आज प्रेमी जनों को प्रेमी पैसे वाला चाहिए, यदि उसके पास पैसा नहीं है या किसी ईश्वरीय विपत्ति के कारण गरीबी आ गई है तो 'प्रिय' बदल जाता है, आज हृदय में बसा प्रेम पैसों वालों के लिए खुला है, इस मान्यता को हृदय में बसाने वालों को ठाकुर का प्रेम अनमोल सीख देता है–

''घरहीं घर घैरू करैँ घरहाइनैँ नावँ धरैँसब गाँव री री।
तब ढोल दै दै बदनाम कियौ अब कौन को लाज लजावँ री री।।
कवि ठाकुर नैन सोँ लगे अब प्रेम सोँ क्यों न अघावँ री री।
अब होन दै बीस बिसै री हंसी हिरदै बसी मूरति सावँरी री''[6]

जहाँ प्रेम में इतनी सच्चाई और गहराई हो वहाँ विश्वास स्वयंमेव ही आ जाता है, इसलिए ठाकुर का प्रेम आशावादी भी है। उसे पूरा विश्वास है कि मैनें जब अपने प्रेमी से ईमानदारी से प्रेम किया है तो प्रतिदान में मुझे भी प्रेम मिलेगा। जीवन में इस तरह का आशावादी दृष्टिकोण होना आवश्यक है क्योंकि यही आशा हमें कठिन से कठिन समय को पार करने का साहस देती रहती है–

''दिल साँचो लगे जेहिको जेहिसौँ तेहिकौँ तितही पहुँचावत है।
बलि हंस चुनै मुकताहल कौँ अरूचातक स्वाति कौँ पावत है।।
कवि ठाकुर यौँ निजु भेद सुनौ अरूझावत सो सुरझावत है।
परमेसुर की परतीत यही मिल्यौ चाहत ताकि मिलावत है।''[7]

प्रेम में ईश्वर पर विश्वास इस तरह का आशावादी दृष्टिकोण कवि की सकारात्मक सोच की ओर संकेत करता है। ईश्वर ने ही इस पूरी पृथ्वी को संभाल रखा है, इस जगत का पालनहार, तारणहार वही है। अपने अनुभवों के बल पर ही मनुष्य इस प्रकार के निष्कर्षों पर पहुँच पाता है कि जो हो रहा है वह ईश्वरीय शक्ति के कारण ही हो रहा है। कवि द्वारा अभिव्यक्त व्यक्तिगत प्रेम जहाँ उसके प्रेम के प्रति समर्पण, आशा, निष्कपटता, एकनिष्ठता को दिखाता है वहीं उसका ईश्वरीय प्रेम ईश्वरीय सत्ता को स्वीकारने और उस पर विश्वास करने की सलाह देता है। ठाकुर के काव्य की गोपियाँ कृष्ण से अत्यंत प्रेम करती है। वे लोक-निंदा तक की चिंता नहीं करती किंतु वही प्रिय जब उनकी उपेक्षा करता है तो वे तनिक भी दोष उसे नहीं देती बल्कि उसे अपने ही भाग्यदोष का परिणाम मानकर सहन करती हैं और कहती हैं–

'' ऊधौ जू दोष तुम्हैं न उन्हैं हम आप ही पाँव पै पाथर मारे।''[8]

ठाकुर ने यद्यपि उद्‌व- गोपी संवाद के माध्यम से प्रेम के अनेक रूपों को वर्णित किया है, प्रेम की सभी दशाएँ सहज ही यहाँ उपलब्ध हो जाती है किन्तु उनकी शैली, अभिव्यक्ति बिल्कुल नई है उनका प्रेम स्वंय का अन्तर्भुक्त प्रेम है इसलिए वियोग पक्ष इतना मार्मिक, हृदय विदारक बन पड़ा है वे स्वंय कहते हैं –

'' पर बीर मिले बिछुरे की बिथा मिलिकै
बिछुरै सोई जानतु है।''[9]

प्रेम में भी वियोग व्यथा और उसमें भी प्रवास विरह अत्यंत असहनीय हो जाता है, प्रिय का प्रेयसी से दूर चले जाना, उसकी राह तकना, उसे न देख पाना और आने की बाट जोहते रहना कुछ ऐसी अवस्थाएँ हैं जो विरह के साक्षात् चित्र उपस्थित कर देती है। ठाकुर ने भी प्रवास विरह का जो वर्णन किया है, वह मानवीय संवेदनाओं को उद्‌बुद्ध करने की क्षमता रखता है–

'' मनभावन प्यारे गोपाल बिना जग जीजतु है पै न जीजतु है।''[10]

ठाकुर की नायिका नायक के लौट आने की बतायी गयी अवधि की दिन गिन-गिन कर व्याकुल हो रही है। उसके नेत्र, प्रिय की प्रतीक्षा कर-कर थक चुके हैं। अवधि के दिन नायिका लगातार अंगुलियों पर गिन रही है, जिससे अंगुली के अगले हिस्सों पर छाले पड़ गए हैं–

'' दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे''[11]

दिनों को गिनते-गिनते छाले पड़ने की स्थिति को भी नायिका झेल ही रही है किंतु अवधि के बीत जाने पर भी जब प्रेमी नहीं आता तो नायिका अत्यंत व्याकुल और व्यथित हो जाती है, इस तरह की सभी अवस्थाएँ प्रेमी हृदय अपने जीवन में देखते हैं किंतु विरह की ऐसी करूण अवस्था प्रेमी जनों को अपने विरह दुःख की स्मृति करा देती है–

'' जो दिन जान लगे परदेस कौँ रौँदि हियो छतिया पै गली करी
औँध के आस बताई दगा करि राखि गए फिर स्वाँस चली करी।''[12]

लेकिन इतने पर भी सुखद क्षणों की स्मृतियाँ अवलम्ब बनकर आ खड़ी होती हैं, ये सुखद स्मृतियाँ कभी तो हृदय को व्यथित करती हैं तो कभी दग्धहृदय को शीतलता प्रदान करती है, प्रिया को प्रिय के वे विलक्षण नेत्र स्मरण हो आते हैं–

''वे परबीन विचक्षन लोग बने सब पै कछु आन भएरी।
चीखे सवाद महा अति मीठे सु सीखे सुभाइ नए ही नए री।

ठाकुर कौन सों का कहिये अब वे चित्त चाहिबो वे समए री।
वे दिन वे सुख बैसे उछाह सु वे सब वीर हिराए गए री।।[13]

और इस स्मरणशीलता के दौरान हृदय विरह की पीड़ा से जलता रहता है, मस्तिष्क भली-भाँति काम नहीं करता, प्रेमी के प्रेम में व्यथित प्रिय को तन की सुधि नहीं रहती और वह सांसारिक पदार्थों में भी गुण - विपरीतता देखता है जैसे सभी सुखद वस्तुएँ दुखद अथवा ताप पहुँचाने वाली लगती हैं, उसे कहीं भी चैन नहीं मिलता। ठाकुर की नायिका भी कृष्ण वियोग में व्याकुल, व्यथित, प्रिय के वियोग में भूमि पर गिर पड़ती है-

'' जब तैं बिलोकि गई रावरो बदन लाल
तब तैं अचेत सी वियोग झार झुरई।
हेम की लता सी चपला सी चारू चाँदनी सी
मदन सताई पै न मैं जनाई भुरई।
ठाकुर कहत भूमि बिकल बिहाल परी
देखियै गोपाल ताहि उपमा न जुरई।'' [14]

वियोगी तन फिर भी प्रिय की आस लगाए बैठा रहता है, उपालम्भ दे देता है किंतु कहीं इससे प्रिय दु:खी न हो जाए, प्रेम पर आँच न आए, इसलिए प्रेमिका अथवा गोपियाँ प्रिय के अनुकूल ही आचरण करती हैं-

'' ठाढे हूजै यामै कछू टेढ़ की न मारी जात
स्थान लौँ अधै हैँ पिक बैनी पल कौ थिरैँ
चाहवारी चोजन सौँ रसभरी मौजन सौँ
हाथिल भई हैँ घनस्याम ग्रंथन मैं
ठाकुर कहत देखौ रसवारे ग्रंथन मैं
प्रेमवारे पंथन मैँ एही ठहरौँ सिरैँ।
साँवरे सरोज से बदन के गुपाल तौ पै
गोपिन की ललनी ते अलिनी भई फिरैँ।''[15]

रीतिकालीन काव्य में हमनें बहुधा प्रेमिका को विरह में व्याकुल-तड़पते दग्ध हृदय के साथ देखा हैं किंतु कवि ठाकुर ने कृष्ण को भी विरह व्याकुल दिखाया है। राधा के प्रेम में दीवानें कृष्ण की अस्त-व्यस्त वेशभूषा द्वारा उनकी उन्मादावस्था का पता चलता है-

''कैसे पीत पटवारो छोर छहरत जात
उलटी मुरलि खोंसे अंग अलसानो सो।
लटपटे पेचन की बाँधे अटपटी पाग
नटखटी नंद को निकाइन निकानो सो।
ठाकुर कहत हित हाँस अभिलावन सों
बित्त कौँ बिसारि चित्त चारू चकवानो सो।
लेख धन्य भाग सोभा सुखन बिसेष देख
गोरी कौँ गुबिंद फिरै देखत दिवानो सो।।''[16]

ठाकुर ने कृष्ण की इस उन्मादक दशा को जगह-जगह वर्णित किया है। कृष्ण का राधा के प्रति प्रेम भी उतना ही गहरा और अनुभूतिजन्य है। कृष्ण की इस प्रेममयी दशा के विषय में डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा लिखते हैं -'' *कृष्ण के मन की व्यथा को चित्रण कर ठाकुर ने सहृदय समाज का ध्यान कृष्ण की प्रेम पीड़ा की ओर आकृष्ट किया है और परम्परागत ढंग से सोचने वालों के लिएएक नवीन मार्ग प्रदर्शित किया है''*[17]

इस प्रकार कवि ठाकुर के काव्य में वर्णित प्रेम हमें व्यक्तिगत प्रेम के दर्शन करवाता है तो कहीं राधा-कृष्ण का प्रेम आध्यात्मिक प्रेम को दर्शाता है। प्रेम में संयोगजन्य अवस्थाएँ उतना अभिभूत नहीं करती जितनी की वियोगजन्य। वैसे तो ठाकुर के काव्य में दोनों ही पक्षों के दर्शन सहज ही हो जाते हैं किंतु वियोगजन्य प्रेम अपनी उत्कृष्टता को प्राप्त करता हुआ अनेक नए मार्गों को प्रशस्त करता दिखाई देता है। आज के सुविधाभोगी यांत्रिक जीवन ने निस्वार्थ प्रेम को कहीं हाशिए पर खड़ा कर दिया है नैतिक मूल्य ताक पर रख दिए है, तब कवि ठाकुर का काव्य हमें नि:स्वार्थ और एक निष्ठ प्रेम की शिक्षा देकर भटकने से रोकता है। दाम्पत्य जीवन की चुहलता, आनंद, बड़ों के प्रति सम्मान, प्रिय के प्रति समर्पण उसका सम्मान कुछ ऐसे ही बीज मंत्र हैं जो प्रेम को उच्च आसन पर विराजमान कर प्रेमी और प्रेमिका को भी समाज में सम्मानजन्य स्थान दिलाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर ग्रंथावली: सम्पादक - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 235
2. मिलन (खण्डकाव्य) - पं. रामनरेश त्रिपाठी
3. ठाकुर ग्रंथावली - संपादक - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद सं. 133
4. ठाकुरग्रंथावली-संपादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद सं. 41
5. ठाकुर ग्रंथावली-संपादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद सं. 63
6. ठाकुर ग्रंथावली-संपादक - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद सं. 172
7. ठाकुर ग्रंथावली-सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद सं.-51
8. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पद संख्या 43
9. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पद सं. - 162
10. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -पद सं. - 33
11. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -पद सं. - 160
12. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पद संख्या -30
13. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -पद संख्या-37
14. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -पद संख्या-158
15. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -पद संख्या-144
16. ठाकुर ग्रंथावली - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -पद संख्या-14
17. रीतिस्वछंद धारा - डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 264

ISSN 2278 - 0327

वैदिक साहित्य में आत्म तत्व का स्वरूप

शुभम कुमार पाण्डेय
शोध छात्र - वेद विभाग
सं.वि.ध.वि. संकाय, का.हि.वि.वि, वाराणसी

वैदिक साहित्य विश्व की सबसे प्राचीन एवं वृहद साहित्य है। इसका आदि ग्रंथ ऋग्वेद है इस साहित्य के अंतर्गत अनेकों प्रकार के विषयों का वर्णन किया गया है । जैसे- ज्ञान-धर्म-कर्म-न्याय-खगोल-प्रकृति चिंतन इत्यादि । इन सभी विषयों के अतिरिक्त इसका प्रधान विषय आत्म तत्व एवं ईश्वर प्राप्ति है इसी को विभिन्न नाम-रूपों में कहा जाता है तथा इसका परम ध्येय ब्रह्म को जानना है। वेद सभी ज्ञानों का मूल है यथा- '*सर्व ज्ञानमयो हि स:*' । आपस्तम्ब ने वेद के दो प्रकार बतलायें है- मंत्रभाग, ब्राह्मण भाग '*मंत्रब्राह्मणयो: वेदनामधेयम्*'।[1] प्रथम भाग का लक्षण है जिसका मनन किया जाय उसे मंत्र कहते हैं ''*मनना त्रायते इति मंत्र:*'' इसी मंत्रात्मक भाग को संहिता भी कहते हैं। दूसरा भाग ब्राह्मण है जिसमें मन्त्रों एवं उनके विनियोगों की व्याख्या विहित है वह ब्राह्मण है।[2] ब्राह्मण भाग के अंतर्गत तीन भाग है ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद। ब्राह्मण भाग में यज्ञों के कर्मकाण्डों का विस्तृत वर्णन है, साथ ही शब्दों की व्युत्पत्तियाँ तथा प्राचीन राजाओं और ऋषियों की आख्यानों तथा सृष्टि-सम्बन्धी विचार हैं।

आरण्यक- इनका अध्ययन-अध्यापन गाँवों से दूर (अरण्यों/वनों) में होता था, अत: इन्हें आरण्यक कहते हैं।[3] गृहस्थाश्रम में यज्ञविधि का निर्देश करने के लिए ब्राह्मण-ग्रन्थ उपयोगी थे और उसके बाद वानप्रस्थ आश्रम में वानप्रस्थी यज्ञ के रहस्यों और दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन करने वाले आरण्यकों का अध्ययन करते थे। उपनिषदों का इन्हीं आरण्यकों से विकास हुआ।

उपनिषद्- उपनिषद् शब्द उप् व नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु में क्विप् प्रत्यय से बना है। जिसका अर्थ ब्रह्मविद्या व उसके प्रतिपादक ग्रन्थ है। उपनिषदों में मानव-जीवन और विश्व के गूढ़तम प्रश्नों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। ये भारतीय अध्यात्म-शास्त्र के देदीप्यमान रत्न हैं तथा इनका मुख्य विषय ब्रह्म-विद्या का प्रतिपादन है। इसके विशेषता को ध्येय मे रख कर हि इसे प्रस्थानत्रयी में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है। वैदिक साहित्य में इनका स्थान सबसे अन्त में होने से ये 'वेदान्त' भी कहलाते हैं। इनमें जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादन के लिए गूढ़ दार्शनिक बातें बतलाई गई है। भारतीय ऋषियों ने गम्भीरतम चिन्तनों से जिन आध्यात्मिक तत्त्वों का साक्षात्कार किया उपनिषद् उनका अमूल्य कोष हैं। यह अनेक शतकों की तत्त्व-चिन्ता का परिणाम है। मुक्तिकोपनिषद् में चारों वेदों से सम्बद्ध 108 उपनिषद् गिनाये गए हैं, किन्तु वर्तमान में 11 उपनिषद् ही अधिक प्रसिद्ध हैं-ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर इनमें छान्दोग्य और बृहदारण्यक अधिक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

आत्मा का लक्षण तथा स्वरूप- [व्याप्तिबोधक] 'आप् ', [भक्षणार्थक] 'अद् ' अथवा [सतत सर्वज्ञ: सर्वशक्तिरशनायादि गमनबोधक] 'अत् ' धातु से 'आत्मा ' शब्द सर्वसंसारधर्मवर्जितो नित्य- निष्पन्न हुआ है। आत्मा के ईक्षणपूर्वक सृष्टि *ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति॥* अर्थात् पहले यह [जगत्] एकमात्र आत्मा ही था; उसके सिवा और कोई सक्रिय वस्तु नहीं थी। जब ईश्वर कि मानसिक संकल्पना हुई तब लोकों की रचना किया। यह जो नाम, रूप और कर्म के भेद से विविध रूप प्रतीत होने वाला जगत है वह पहले यानि संसार की सृष्टि से पूर्व सर्वश्रेष्ठ सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सुधा बिपाशा आदि संपूर्ण संसार धर्मो से रहित नित्य शुद्ध मुक्त स्वभाव अजन्मा अजर-अमर-अमृत-अभय और अब्द रूप आत्मा ही था।

आत्मा शब्द का प्रयोग विशेषकर जीव और ब्रह्म के अर्थ में होता है। इसका यौगिक अर्थ 'व्याप्त' है । जीव शरीर के प्रत्येक अंग मे व्याप्त है और ब्रह्म संसार के प्रत्येक अणु और अवकाश में। इसीलिये प्राचीनों ग्रन्थों मे इसका व्यवहार दोनों के लिये किया है। कहीं कहीं 'प्रकृति' को भी शास्त्रों में इस शब्द से निर्दिष्ट किया गया है। साधारणत: जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनों के लिये या यों कहिए, अनिर्वचनीय पदार्थों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इनमें 'जीव' के अर्थ में इसका प्रयोग मुख्य है और 'ब्रह्म' और 'प्रकृति' के अर्थों में क्रमश: गौण है। आत्मद्रष्टा दार्शनिकों के दो

भेद हैं-एक आत्मवादी और दूसरे अनात्मवादी। प्रकृति से पृथक् आत्मा को पदार्थविशेष माननेवाले आत्मवादी कहलाते हैं। आत्मा को प्रकृति-विकार-विशेष मानने वाले अनात्मवादी कहलाते हैं, जिनके मत में प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा कुछ है ही नहीं। अनात्मावादी आजकल पश्चिमी देश में बहुत हैं। आत्मा के विषय में इनकी धारणा यह है कि यह प्रकृति के भिन्न भिन्न वैकल्पिक अंशों के संयोग से उत्पन्न एक विशेष शक्ति है, जो प्राणियों में गर्भावस्था से उत्पन्न होती है और मरणपर्यंत रहती है। पीछे उन तत्वों के विश्लेषण से, जिनसे यह उत्पन्न हुई थी, नष्ट हो जाती है। बहुत वर्षों पूर्व भारतवर्ष में यहीं बात 'बृहस्पति शिष्य चार्वाक' नामक विद्वान् ने कही थी जिसके विचार चार्वाक दर्शन के नाम से प्रख्यात हैं और जिसके मत को चार्वाक मत कहते हैं । इनका कथन है कि '*तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणभावात्*।'[4] देह के अतिरिक्त अन्यत्र आत्मा के होने का कोई प्रमाण नहीं हैं, अत: चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है। इस मुख्य मत के पीछे कई भेद हो गए थे और वे क्रमश: शरीर की स्थिति और ज्ञान की प्राप्ति में कारणभूत इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार को ही आत्मा मानने लगे। कोई इसे विज्ञान मात्र अर्थात् क्षणिक मानते हैं। वैशेषिक दर्शन में आत्मा को एक द्रव्य माना है और कहा है कि प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, मन, गति, इंद्रिय, तथा अंतर्विकार जैसे-भूख, प्यास, ज्वर, पीड़ादि, सुख, दु:ख इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिंग हैं। अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग वा चिह्न देख पड़े वहाँ आत्मा रहती है। तर्कसंग्रह के अनुसार- '*ज्ञानाधिकरणमात्मा*'[5] ज्ञान के आधार को आत्मा कहते हैं यह जीव प्रत्येक शरीर में रहने वाला भिन्न भिन्न है तथा विभु एवं नित्य कहा है। पर न्यायकार गौतम मुनि के मत से 'इच्छा' द्वेष, प्रयत्न, सुख दु:ख और ज्ञान (*इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदु:खज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्*)[6] ही आत्मा के चिह्न हैं। केशव मिश्र के तर्क भाषा के अनुसार- ''*तत्रात्मत्वसामान्यवानात्मा । स च देहेन्द्रियादिव्यतिरिक्त: प्रतिशरीरं भिन्नोविभुश्च।*''[7] विश्वनाथ पंचानन भट्टाचार्य के अनुसार- ''*आत्मेद्रियाधिष्ठाता कारणं हि सकर्तृकम्।*'' बुद्धि आदि इंद्रियों का अधिष्ठाता आत्मा होता है जिसे जीवात्मा के रूप में कहा गया है इसके अंदर चौदह प्रकार के गुण होते है।

सांख्यशास्त्र के अनुसार आत्मा एक अकर्ता साक्षीभूत प्रसंग और प्रकृति से भिन्न एक अतींद्रिय पदार्थ है। योगशास्त्र के अनुसार यह आत्मा ऐसा अतींद्रिय पदार्थ है जिसमें क्लेश, कर्मविपाक और आशय है। ये दोनों (सांख्य और योग) आत्मा के स्थान पर पुरुष शब्द का प्रयोग करते हैं । मीमांसा के अनुसार कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता एक स्वतंत्र अतींद्रिय पदार्थ है। मीमांसकों में प्रभाकर के मत से 'अज्ञान' और कुमारिल भट्ट के मत से 'अज्ञानोपहत चैतन्य' ही आत्मा है। ब्रह्मसूत्रनुसार- *आत्मा तू प्रमाणादिव्यवहाराश्रय प्रागेव प्रमाणादि व्यवहारत न सिद्धति। सर्वोहि आत्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्तीति।*[8]

वेदांत के मत से नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वभाव ब्रह्म का अंशविशेष आत्मा है। बुद्ध के मत से वह एक अनिर्वचनीय पदार्थ, जिसकी आदि और अंत अवस्था का ज्ञान नहीं है, वह आत्मा है। उत्तरीय बौद्धों के मत से यह एक शून्य पदार्थ है। जैनियों के मत के अनुसार-'चैतन्यलक्षणोंजीव:। कर्मों का कर्ता, फलों का भोक्ता और अपने कर्म से मोक्ष और बंधन को प्राप्त होनेवाला, एक अरूपी पदार्थ हि आत्मा है।

आत्मा का स्वरूप - उपनिषदों में आत्मा के संबंध में विशद विवेचन दिया गया है। आत्मा के स्वरूप का विवेचन भी विशद है। वेदांत में आत्म चैतन्य के उत्तरोत्तर उत्कृष्ट चार स्तर निर्दिष्ट हैं- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय या शुद्ध चैतन्य। आत्मा जब अपने मूल स्वरूप में हो तब वह शुद्ध चैतन्य है। शुद्ध चैतन्य का अर्थ वह स्थिति है जिसमे वह न तो जाग्रत है, न स्वप्न में है और न ही सुषुप्ति में। तीनों ही स्थितियों से परे पूर्ण जागरण या शुद्ध चैतन्य हो जाना ही आत्मा का मूल स्वरूप है।

आत्मा का निरूपण दो प्रकार से किया गया है। स्थूलरूप (जीवात्मा) तथा सूक्ष्म रूप ।

स्थूल रूप आत्मा का स्वरूप वर्णन करते हुए श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि - *देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।*[9] अर्थात् यह आत्मा जब जीव के शरीर में रहता है तब बालक, युवा, वृद्ध के रूप में दिखाई देता है। वह इस शरीर का उपयोग- *श्रोत्रं चक्षु: स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च। अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥*[10] यह श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मनको आश्रय करके- अर्थात् इन सबके सहारे से ही विषयों का सेवन करता है। कठोपनिषद मे भी कहा गया है कि-*आत्मान: रथिनं विद्धि शरीर रथमेव तु॥*[11] स्थूल रूप शरीर में आत्मा को रथी जान, शरीर को रथ समझना चाहिए।

सूक्ष्म आत्मा का स्वरूप

सूक्ष्म आत्मा का स्वरूप के विषय में गीता के द्वितीय अध्याय में कृष्ण ने कहा है कि- यह आत्मा किसी काल मे न तो उत्पन्न होता है और न मरणशील ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर अभावस्वरूप को ही प्राप्त करता है; क्योंकि यह जन्म बन्धन से मुक्त रहने वाला हैं, सर्वदा रहने वाला नित्यस्वरूप हैं, सनातन और

पुरातन है; शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मारा जाने वाला है। क्योंकि इस आत्मा को किसी भी प्रकार के शस्त्रों से काटा नहीं जा सकता और न तो इसको किसी भी प्रकार कि अग्नियों से जलाया जा सकता है, न तो यह गलने योग्य वस्तु ही है कि इसको जल द्वारा गला जा सकता हैं, और न ही वायु के प्रभाव से सुखाया जा सकता हैं, क्योंकि यह आत्मा छेदन रहित है, अदाह्यस्वरूप, अक्लेद्य और नि:सन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहने वाला और अजस्वरूप सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है।

मण्डुकोपनिषद मे आत्मा को अणु रूप मे माना है 'एसो अणुरात्मा'[12]

यदि हम आत्मा के परमाणु से भी सूक्ष्म स्वरूप को समझ सकें तो विज्ञान के नियमों के अंतर्गत यह आत्मा अदृश्य, चैतन्य, अविनाशी, प्रकाश स्वरूप, असीमित ऊर्जावान् है।

कठोपनिषद मे आत्मा के सूक्ष्म रूप का वर्णन करते हुए कहा है कि '*अंगुष्ठमात्र: पुरूषोऽन्तरात्मा*'[13] यह आत्मा अंगूष्ठमात्र स्वरूप वाला है जो पुरुष के हृदयरूपी गुहा में स्थित रहता है।

आत्मा कि सूक्ष्मता के संभंध में श्वेवताश्वतर उपनिषद के अध्याय पांच में कहा गया है कि -

बालाग्रस्तभागस्य शतभा कल्पितस्य च।
भागो जीव: स विज्ञहए: स चनंत्याय कल्पते।।[14]

अर्थात् एक बाल के नोक को अगर हम सौ टुकड़े कर लें, फिर उनमें से एक टुकड़े के पुन: सौ टुकड़े कर लें। उनमें से जो एक टुकड़ा जितना सूक्ष्म हो सकता है, उसके सामान आत्मा का स्वरूप समझना चाहिए। यह कहना भी केवल उसकी सूक्ष्मता का बोध कराने के लिए ही है। वास्तव में चेतन और सूक्ष्म वस्तु के स्वरुप को जड़ और स्थूल कि उपमा से नहीं समझाया सकता क्योंकि बाल कि नोक के 10 हजार भागों में से एक भाग जितना सूक्ष्म, अर्थात् उससे भी सूक्ष्म है यह आत्मा। माण्डूक्योपनिषद् में आत्मास्वरूप को वर्णन करते हैं कि-

'*सर्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म स: अयमात्मा चतुष्पात्।। बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्त:प्रज्ञस्तु घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृत:*॥[15]

इस उक्ति के अनुसार यह आत्मा ही ब्रह्म है तथा यह आत्मा चार पादों वाला है। पुन: आत्मा को तीन भेदों मे विभक्त करते है। इस आत्मा का पहला भेद बहिष्प्रज्ञ है जो बहि`जगत का ज्ञाता, सप्तांग वाला तथा सभी प्रकार के रसों कि अनुभूति कराने वाला वैश्वानर अथवा विश्व-पुरूष है। दूसरा स्वरूप तैजस अन्त:प्रज्ञ प्राज्ञ ईश्वर रूपी है पूर्ण आनन्द को प्राप्त कराने वाला है। इस प्रकार एक ही आत्मा को तीन प्रकार से कहा जाता है।। इसी प्रकार के आत्मा को वेदान्तसार मे तीन प्रकार के प्रपंच रूप मे बाटा गया है। मांडूक्योपनिषद में इस आत्मा को अनिर्वचनीय कहा गया है। वह आत्मतत्त्व अपने स्वरूप से विचलित न होनेवाला, एक तथा मन के समान गतिवाला है। इसे इन्द्रियाँ प्राप्त नहीं कर सकीं। यह स्थिर होने पर भी अन्य सब गतिशील क्रमण कर जाते है। उसके रहते हुए ही [अर्थात् उसकी सत्तामें ही] प्राणियों के प्रवृत्तिरूप का विभाग करता है।[16]

आत्मतत्त्व निरूपण-

माण्डूक्योपनिषद् मे कहते है कि यह सम्पूर्ण आत्मा स्वभाव से ही नित्य बोधस्वरूप और सुनिश्चित हैं- जिसे ऐसा समझ हो जाता है वह अमरत्व (मोक्ष) प्राप्ति में समर्थ होता है। उपर्युक्त मंत्रों से जिस आत्मा का वर्णन किया गया है, वह अपने स्वरूप से कैसा तथा किस प्रकार के लक्षणों वाला है, इस बातको यह मन्त्र बतलाता है

तदेजति तन्नैजति तदूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत:।।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्।।[17]

वह आत्मतत्त्व चलता है और नहीं भी चलता। वह दूर है और समीप भी है। वह सबके अन्तर्गत है और वही इस सब के बाहर भी है और सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, स्नायु से रहित, निर्मल, अपापहत, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयम्भू (स्वयं ही होने वाला) है। उसी ने नित्यसिद्ध संवत्सर नामक प्रजापतियों के लिये यथायोग्य रीति से अर्थों (कर्तव्यों अथवा पदार्थों) -का विभाग किया है। आत्माका सर्वनियन्तृत्व -

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीरा: प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ जो श्रोत्र का श्रोत्र, मनका मन और वाणी का भी वाणी है वही प्राण का प्राण और चक्षुका चक्षु है [ऐसा जानकर] धीर पुरुष संसार से मुक्त होकर इस लोक से जाकर अमर हो जाते है।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्य: शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्यु:। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्ट:।

इस आत्म कि दुरूहता को कहते है - जो बहुतों को तो सुनने के लिये भी प्राप्त होने योग्य नहीं है, जिसे बहुत-से सुनकर भी नहीं समझते उस आत्मतत्त्व का निरूपण करने वाला भी आश्चर्यरूप है, उसको प्राप्त करने वाला भी कोई निपुण पुरुष ही होता है तथा कुशल आचार्य द्वारा उपदेश किया हुआ ज्ञाता भी आश्चर्यरूप है।

आत्मस्वरूपनिरूपण-

न जायते म्रियते वा विपश्चि नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्य: नित्य: शाश्वतोऽयं शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
अणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतु: पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मन:।। [18]

यह विपश्चित् - मेधावी आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है; यह न तो किसी अन्य कारण से ही उत्पन्न हुआ है और न स्वत: ही कुछ [अर्थान्तररूप से] बना है। यह अजन्मा, नित्य (सदा से वर्तमान) शाश्वत (सर्वदा रहने वाला) और पुरातन है तथा शरीर के मारे जाने पर भी स्वयं नहीं मरता।

पुन: कहते हैं-यह अणु से भी अणु और महान् से भी महान् आत्मा जीव की हृदय में स्थित है। निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की उस देखता है और शोकरहित हो जाता है। जो इस प्रकार चेतन आत्मा को अमृतस्वरूप, नित्य, इन्द्रियातीत, सनातन, अक्षर, जितात्मा एवं असंग समझता है, वह कभी मृत्यु के बन्धन में नहीं पड़ता। जिसकी दृष्टि में आत्मा अपूर्व (अनादि), अकृत (अजन्मा), नित्य, अचल, अग्राह्य और अमृताशी है, वह इन गुणों का चिन्तन करने से स्वयं भी अग्राह्य (इन्द्रियातीत) निश्चल एवं अमृत स्वरूप हो जाता है, जो चित्त को शुद्ध करने वाले सम्पूर्ण संस्कारों का सम्पादन करके मन को आत्मा के ध्यान में लगा देता है, वही इस कल्याणमय ब्रह्मा को प्राप्त करता है, जिससे बड़ा कोई नहीं है। सम्पूर्ण अन्त:करण के स्वच्छ हो जाने पर साधक को शुद्ध प्रसन्नता प्राप्त होती है। जैसे स्वप्न से जगे हुए मनुष्य के लिये स्वप्न शान्त हो जाता है, उसी प्रकार चित्त शुद्धि का लक्षण है। शरीर, इंद्रियाँ, मन, अहंकार, अंत:करण ये सब अविद्या के कार्य हैं अर्थात् भौतिक हैं और ये सब जीवात्मा को घेरे रहते हैं तथा उसे सीमित या व्यक्तिनिष्ठ जीव बनाते हैं। साक्षित्व से आत्मा शरीर और मन से उपजने वाली वस्तु और विचार से मुक्त हो जाता है। साक्षित्व ही वेदांत का मार्ग है। इसीलिए वेद और वेदांत कहते हैं कि आत्मवान् बनो।

आत्मा जगत के सारे पदार्थों में व्याप्त है, सारे पदार्थों को अपने में ग्रहण कर लेता है, सारे पदार्थों का अनुभव करता है और इसकी सत्ता निरंतर बनी रहती है, इसलिए इसे आत्मा कहा जाता है। आत्मा को चेतन, जीवात्मा, पुरुष, ब्रह्म स्वरूप, साक्षित्व आदि अनेक नामों से जाना जाता जाता है। आत्म तत्व स्वत: सिद्ध और स्वप्रकाश है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आत्मा अर्थात खुद के होने का अनुभव होता है। 'मैं हूँ' यह ज्ञान होना ही आत्मा के होने को स्वत: सिद्ध करता है। यह संशय या आलोचना का विषय नहीं है और न ही आप अपने 'होने' को 'नहीं होना' सिद्ध कर सकते हो क्योंकि जो सिद्ध करता है वह स्वयं आत्मा है। अर्थात् स्वयं के होने का बोध ही आत्मा है और जैसे-जैसे यह बोध गहराता है वह ज्ञानी से बढ़कर आत्मवान् हो जाता है। शरीर, इंद्रियाँ, मन, अहंकार, बुद्धि और अंत:करण यह सब प्रकृति के कार्य या हिस्से हैं और भौतिक हैं, नश्वर हैं। यह सब आत्मा को घेरे रहते हैं, इसी से आत्मा सीमित और व्यक्तिनिष्ठ है। इस प्रकृति तत्व के घेरे की वजह से ही द्वंद्व, दुविधा और कष्ट तथा भटकाव है। किंतु इसमें जो शुद्ध चैतन्य प्रकाशित हो रहा है वही आत्मा है। जो पुरुष साक्षीभाव में स्थित है तथा जिसे अपने होने का सघन बोध है, वह धीरे-धीरे आत्मज्ञान प्राप्त कर मुक्त होने लगता है। प्राणवानों में श्रेष्ठ बुद्धिमान होता है और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ आत्मवान् होता है और जो ब्रह्म (ईश्वर) को जानने में उत्सुक है वह ब्राह्मण कहा जाता है, लेकिन जिसने ब्रह्म को जान ही लिया, उसे ब्रह्मज्ञानी कहते हैं। यही सनातन धर्म का सत्य है। आत्मा के संबंध में उपनिषदों में गहन गंभीर विवेचन दिया गया है। आत्मा के पदार्थ से बद्ध होने और मुक्ति होकर पुन: बद्ध होने का विवरण और उसकी पदार्थ से पूर्ण मुक्ति का मार्ग भी बताया गया है। आत्मवान् बनने का अर्थ है कि पदार्थ के बगैर इस अस्तित्व में स्वयं के वजूद को कायम करना। यही सनातन धर्म का लक्ष्य है और यही मोक्ष ज्ञान है इसी को वेदों मे कहा गया है।

संदर्भ -

1. आपस्तम्बपरिभाषा, 31
2. भट्टभास्कर,तैत्तरीयभाष्य 1/5/1/
3. तैत्तरीयाण्यक,सायणभाष्य,श्लोक 6.
4. सर्व.द.स.
5. तर्कसंग्रह.द्रव्य विचार
6. न्याय. सू.
7. तर्क भाषा
8. ब्रह्म सू. 2/3/7सू. , 1/1/11सू. ।
9. गीता/2/13
10. गीता.15/9
11. कठो.अ1/ब.3/श्लो3
12. मंडुक.3/1/19
13. कठ. 2 /3 17
14. श्वेता.उप.5/9
15. मांडुक्य.आ/प्र/गौ/का/2श्लो॥ (माण्डू, आ.प्र.,गौ.का.1)
16. ईशादि नौ उपनिषद् शाङ्करभाष्यार्थ मांडु.अलात. प्र. गौ.का. ।।92/93।।
17. ईशादि उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ) मं.8/9
18. कठ. कठ.1/2/18/, कठ.1/2/20/

आधुनिक समय में खिलाड़ियों के समग्र स्वास्थ्य में अष्टांगयोग की उपयोगिता

सतीश कुमार पंवार
शोध छात्र, शारीरिक शिक्षा
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

डॉ. दीपक पाण्डेय
शोध निदेशक
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

शोध सार: आज जहाँ हम आधुनिकता के कारण संसारिक सुविधाओ को बढ़ाने का प्रयास कर रहे है वहीं अपने जीवन मूल्यों को भूलते जा रहे है। हमारी भारतीय संस्कृति और परंपरा के कारण हम विश्व गुरु के नाम से जाने जाते है जिसमे मुख्य रूप से नैतिकता, सदाचार, संयम, संतुष्टि, विवेकपूर्ण जीवन जीना सिखाया गया है और ये जीवन जीने की पद्धति को भारतीय पौराणिक ग्रन्थ वेद, पुराण, उपनिषद्, षड्दर्शन आदि में प्रयोगात्मक रूप से वर्णन किया गया है। वर्तमान समय में योग को खेलों में भी सम्मिलित कर लिया गया है, जिसके अभ्यास से खिलाड़ी पूरी तरह से स्वास्थ्य रह सकते हैं तथा इसको आत्मसात करके व्यक्तित्व विकास स्वयं ही हो जाता है, जिसके कारण व्यक्ति सुख, शांति और समृद्धि प्राप्त करता है। सांसारिक विषय में संतुष्टि होने के बाद समाधि, मोक्ष और कैवल्य तक पहुँचने का मार्ग बताया गया है।

मुख्य बिन्दु: खेल, प्राचीन योग, आधुनिक महत्व, वेद, उपनिषद्, योग साहित्य।

प्रस्तावना– भारतीय दर्शन में योग विद्या का स्थान सर्वोपरि एवं विशेष है। भारतीय ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर योग विद्या से सम्बन्धित ज्ञान भरा पड़ा है। वेदों, उपनिषदों, गीता व पुराणों आदि प्राचीन ग्रन्थों में योग शब्द वर्णित है। खिलाड़ियों की अपनी कुशलता, क्षमता एवं लचीलापन के विकास में योग अभ्यास का विशेष महत्व है। योग का अभ्यास खिलाड़ियों के स्वास्थ्य लाभ में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करता है। योग का ज्ञान मूलत: वेदों में निहित है। दार्शनिक चिन्तन तथा वैदिक ज्ञान का निचोड़ आत्म तत्व की प्राप्ति है। आत्मतत्व की प्राप्ति का साधन योग विद्या के रूप में इनमें (वेद) उपलब्ध है। योगसाधना का लक्ष्य कैवल्य प्राप्ति है। वैदिक ग्रन्थ, उपनिषद् पुराण और दर्शन आदि में योग का वर्णन मिलता है। जिससे यह पुष्टि होती है कि योग वैदिक काल से सृष्टि में उपलब्ध है। दर्शन में योग शब्द एक अति महत्त्वपूर्ण शब्द है जिसे अलग–अलग रूप में परिभाषित किया गया है। योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:।। (योगसूत्र–1/2)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। चित्त का तात्पर्य, अन्त:करण से है। बाह्यकरण ज्ञानेन्द्रियां जब विषयों का ग्रहण करती है। मन उस ज्ञान को आत्मा तक पहुँचाता है। आत्मा साक्षी भाव से देखता है तथा बुद्धि व अहंकार विषय का निश्चय करके उसमें कर्तव्य भाव लाते है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि–
संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो।। (याज्ञवल्क्य स्मृति- 1/44)

अर्थात् जीवात्मा व परमात्मा के संयोग की अवस्था का नाम ही योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है ।

योगस्थ: कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय:।
सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। (गीता–2/48)

अर्थात् हे! धनंजय तुम आसक्ति त्यागकर समत्व भाव से कार्य कर। सिद्धि और असिद्धि में समता–बुद्धि से कार्य करना ही योग हैं। सुख–दु:ख, जय–पराजय, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों में एकरस रहना योग है –

योग: कर्मशुकौशलम् ।।(गीता–2/50)

अर्थात् कर्मो में कुशलता ही योग है। कर्म इस कुशलता से किया जाए कि कर्म बन्धन न कर सके अर्थात् अनासक्त भाव से कर्म करना ही योग है।

योग का महत्व – प्राचीन काल में योग विद्या सन्यासियों या मोक्षमार्ग के साधकों के लिए ही समझी जाती थी तथा योगाभ्यास के लिए साधक को घर त्याग कर वन में जाकर एकांत में वास करना होता था। इसी कारण योगसाधना को बहुत ही दुर्लभ माना जाता था। जिससे लोगों में यह धारणा बन गयी थी कि यह योग सामाजिक व्यक्तियों के लिए नहीं है। जिसके फलस्वरूप यह

योगविद्या धीरे-धीरे लुप्त होती गयी। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से खिलाडियों एवं व्यक्ति के जीवन में बढ़ते तनाव, चिन्ता, प्रतिस्पर्धा से ग्रस्त लोगों को इस गोपनीय योग से अनेकों लाभ प्राप्त हुए और योग विद्या एक बार पुन: समाज एवं खेल के रूप मे लोकप्रिय हो रहा है। आज भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्वभर में योग एवं खेलों पर अनेक शोध कार्य किये जा रहे हैं तथा ओलम्पिक खेलों आदि में जोड़ा गया है। योग के इस प्रचार-प्रसार में विशेष बात यह रही कि यहां यह योग जितना मोक्षमार्ग के पथिक के लिये उपयोगी था, उतना ही साधारण मनुष्य के लिए भी महत्व रखता है और लोग इससे लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

योग जीवन जीने की कला है, साधना विज्ञान है। खिलाड़ियो के जीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी साधना व सिद्धान्तों में ज्ञान का महत्व दिया है। इसके द्वारा आध्यात्मिक और भौतिक विकास सम्भव है। वेद, पुराणों में भी योग की चर्चा की गयी है। यह सिद्ध है कि यह विद्या प्राचीन काल से ही बहुत विशेष समझी गयी है, जो कि वर्तमान में खेलों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। आज खिलाड़ियो का जीवन बहुत जटिल है, इसमें कितनी उलझने और अशांति, तनावमुक्त और अवद्रुय हो चला है। खिलाड़ी में संतुलन एवं एकाग्रता के लिए योग जरूरी है- चाहे वह तैराकी हो, गोल्फ हो, स्विमिंग हो, क्रिकेट या फुटबॉल, इन सभी खेलों के खिलाड़ियों में लचीलापन एवं एकाग्रता की समस्याएं रहती ही हैं।

योग शरीर के जोड़ों और मांसपेशियों के लचीलापन को बढ़ा कर खिलाड़ियों के प्रदर्शन को बेहतर बना देता है। उदाहणार्थ तैराक में एक लचीले शरीर वाला तैराक पानी को काटने में सक्षम होगा, इसके अतिरिक्त एक शूटर को एकाग्रता की आवश्यकता होती है। इसके नतीजतन वह कम श्रम में ही अपने प्रतिस्पर्धी से आगे बढ़ने में कामयाब हो जाएगा। यदि किसी को दिव्य दृष्टि मिल सकती होती तो वह देख पाता कि खिलाड़ियों का हर कदम पीड़ा की कैसी अकुलाहट से भरा है, उसमे कितनी निराशा, भय, व्याकुलता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि हमारा हर पग प्रसन्नता का प्रतीक बन जाए, उसमे पीड़ा का अंग-अवशेष न बचे। इसके लिए हमे इस योग विद्या को समझना होगा कि अपने प्रत्येक कदम पर चिंतामुक्त और तनावरहित कैसे बनते चले और दिव्य शांति एवं समरसता को किस भांति प्राप्त करे। इसी रहस्य को अजागर करना ही योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

आज के आधुनिक एवं विकास के इस युग में योग अनेक क्षेत्रों में विशेष महत्व रखता है जिसका उल्लेख निम्नलिखित विवरण से किया जा रहा हैं-

- स्वास्थ्य के क्षेत्र में
- रोगोपचार के क्षेत्र में
- खेलकूद के क्षेत्र में
- शिक्षा के क्षेत्र में
- खिलाडियों के आत्म विश्वास को बढ़ाने में
- खिलाडियों के शरीर को लचीलापन बनाने में

स्वास्थ्य की समग्रता जीवन साधना की नींव है, खिलाड़ियों के स्वस्थ्य होने पर ही लौकिक एवं अलौकिक संसारिक एवं आध्यात्मिक विकास अर्जित करना हो उसके लिए पहली जरूरत उत्तम स्वास्थ्य ही है और वो उत्तम स्वास्थ्य समग्रता से ही आता है। खिलाड़ियों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्यता ही उसे समग्र स्वास्थ्य की ओर ले जाता है। प्रगतिशीलता और गतिशीलता, यश-सम्मान खिलाड़ियों को एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिए विवश करती हैं इसमें खिलाडी तेजी से दौड़ लगाना शुरू करता है परन्तु इसी के साथ उस देह को भूलता जाता है जो भगवान ने श्रेष्ठ कार्य के लिए प्रदान की हैं, न की स्वार्थ की पूर्ति के लिए। मान सम्मान यश मनुष्य के लिए मानसिक रोगों का कारण बनते देखे गये हैं, जब मनुष्य के स्वार्थ की पूर्ति नहीं हो पाती है तो वह मानसिक रूप से क्षुब्ध महसूस करता है अपने में हीन भावना, नकारात्मक विचार आना और जब दृष्टिकोण में नकारात्मकता आती है तो दूसरो के साथ ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध आदि के भाव प्रकट होते है और खिलाड़ी अपने परिवार समाज में मित्रों के साथ समाजंस्य नहीं बिठा पाता, यह सभी खिलाडी को समाज से दूरी व अलगाव की भावना मन में उत्पन्न करती है। उसके अन्दर की दया, करूणा, स्नेह भाव, सेवा भाव, सहयोग आदि शुष्क होने लगते हैं।

खिलाडी के इस पतन-पराभव का कारण खोजने का यदि हम सच्चे मन से प्रयास करें तो पता चलेगा कि सारी समस्याओं की जड़ खिलाड़ी के समग्र स्वास्थ्य का न होना। आज का युवा वर्ग ऐसे ही दूषित माहौल में जन्म लेता हैं और होश संभालते ही इस प्रकार के दु:ख एवं चिंताजनक परिस्थितियों से रूबरू होता है। स्वास्थ्य ईश्वर की महती अनुकंपा है वह जन्मजात रूप से हर किसी को उपलब्ध है। अच्छा स्वास्थ्य, और अच्छी समझ जीवन के दो सर्वोच्चतम वरदान हैं, संसार के सारे कार्य स्वास्थ्य पर निर्भर हैं, और समग्र स्वास्थ्य से मनुष्य की महती आवश्यकताएं पूर्ण होती है। (आचार्य, श्रीराम, समग्र स्वास्थ्य,पृष्ठ-3)

समग्र स्वास्थ्य का अर्थ- समग्र स्वास्थ्य का अर्थ है पूर्णतया स्वस्थ होना शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य ही समग्र स्वास्थ्य है। आयुर्वेद में कथन है कि-

समदोष: समाग्निश्च समधातु मल क्रिया:।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

(सुश्रुत सूत्र 15/41)

अर्थात् सुश्रुत ने पूर्ण स्वास्थ्य लक्षणों का अत्यन्त वैज्ञानिक वर्णन उपस्थित किया है। जो शरीरेन्द्रियत्वात्म की ओर संकेत करता है। जिस पुरूष के दोष, धातु, मल तथा अग्नि व्यापार सम व समान एवं विकार रहित हो तथा जिसकी इन्द्रियाँ मन तथा आत्मा प्रसन्न हो वही स्वस्थ है।

समग्र स्वास्थ्य के आयाम -

■ **शारीरिक स्वास्थ्यः** शरीर स्वास्थ्य से तात्पर्य शारीरिक क्रियाओं का सामान्यता तथा शारीरिक अंगों की सापेक्ष कार्यत्मकता से होता है। यदि शरीर के बाह्य तथा आन्त्रिक अंग सामान्य रूप से काम करते रहें तो शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा माना जाता हैं

■ **मानसिक स्वास्थ्यः** मानसिक स्वास्थ्य एक मानसिक स्थिति हैं जिसमें व्यक्ति अपने प्रतिदिन के कार्यो को करने में कष्ट अनुभव नहीं करता है। अपने को स्वस्थ समझता है बाह्य तथा आन्तरिक दोनों स्थितियों के सामंजस्य करने में सफल होता है तथा व्यक्तित्व संगठित होता है। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व की सम्पूर्ण क्रिया अभिव्यक्ति करता है।

■ **सामाजिक स्वास्थ्यः** सामाजिक स्वास्थ्य वह शाखा है जो व्यक्ति का सामाजिक तथा समायोजन तथा सम्बन्धों को स्पष्ट करती है। सामाजिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति अपने कार्यों का सही सम्पादन करते हैं। दूसरों का मान-सम्मान करते हैं। दूसरों के हित-अहित की भी सोचते हैं। परस्थितियों से उचित समायोजन करते तथा सद्भावना प्रेम से ओत-प्रोत रहते हैं।

■ **आध्यात्मिक स्वास्थ्यः** आध्यात्मिकता आज के युवा जीवन की आवश्यकता है। यह सार्थक यौवन की राह है। इसे किसी मजहब अथवा धर्म से जोड़ने की जरूरत नहीं है। यह तो जीवन का वह सार्वभौम संदेश है जिसे उपनिषद् के युग के तत्वज्ञानी महामानव देते आए हैं।

डा० लुईकूने के अनुसार पूर्ण निरोग मनुष्य वह है जिसके सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग साम्यावस्था में हो और बिना किसी कष्ट, भार या प्रयास के अपना-अपना कार्य करते है तथा अवयवों का रंग-रूप अपने कार्य-संचालन के योग्य और सुन्दर हो। (पं. श्रीराम जीवेम शरदः शतम्, पृष्ठ-1.30)

उत्तम स्वास्थ्य ही जीवन का सौन्दर्य है। स्वास्थ्य और बल की उपासना की प्रथम कक्षा मानव देह है। शरीर को स्वास्थ्य, बलवान, स्फूर्तिवान, तेजस्वी बनाना आवश्यक है। यही वह आधार है जिसमें जीवन में अन्य स्रोत खुलते हैं। स्मरण रहे स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ्य मन निवास करता है। (आचार्य, श्रीराम, शिक्षा ही नहीं विद्या भी, पृष्ठ-6)

समग्र स्वास्थ्य हेतु योग के प्रमुख अंग-

साधना की विभिन्न पद्धतियों में अष्टांगयोग सार्वभौमिक, सार्वदेशित, सार्वकालिक, प्रामाणिक व वैज्ञानिक माना जाता है, जिसके आठ अंग निम्न हैं-

1. यम- का अर्थ है संयम। यह पाँच हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। यमों के पालन करने से खिलाड़ी उन्नत एवं अनुशासन रहित बनता है बिना यम की पालना के खिलाड़ी की उन्नति संभव नहीं है।

2. नियम- भी पाँच हैं- शौच अर्थात् आन्तरिक और बाह्य शुद्धि, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान। नियमों का पालन करने से खिलाड़ी का जीवन उन्नत और व्यवस्थित होता है।

3. आसन- स्थिरता और सुखपूर्वक एक ही स्थिति में बहुत देर तक बैठने का नाम आसन है। ध्यान के लिए सिद्ध, पद्म, सुख, स्वास्तिक आदि अनेक आसन हैं। आसन करने से साधक के सभी द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं अर्थात् साधक सभी सम और विषम परिस्थितियों में अपने आप को समभाव में रख पाता है। आसन खिलाडियों की अंतःस्त्रावी ग्रंथि प्रणाली नियंत्रित एवं सुव्यवस्थित, मजबूत एवं लचीलापन प्रदान करता है, जो खिलाडियों के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

4. प्राणायाम- श्वास और प्रश्वास की गति के विच्छेद का नाम अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति के सामान्य प्रवाह को रोककर विशेष गति में आने का नाम प्राणायाम है। प्राणायाम करने से खिलाड़ियो में अज्ञानता का आवरण हटता है और मन की योग्यता बढ़ती है अर्थात् मन को किसी एक जगह पर नियन्त्रण करने की सिद्धि प्राप्त होती है। मानसिक मजबूती हमें प्राणायाम से मिलती है। साथ ही प्राणायाम के अभ्यास से खिलाड़ियो के शारीरिक एवं मानसिक क्षमता, हृदय की मॉसपेशियॉ, हड्डियों को मजबूती प्रदान होती है।

5. प्रत्याहार- इन्द्रियों को रूप, रस आदि अपने-अपने विषयों से हटाकर अर्न्तमुखी करने का नाम प्रत्याहार है। जब खिलाड़ी अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों को उनके बाह्य विषयों से विमुख करके उन्हें अन्तर्मुखी कर देता है, तो उनमें शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन में वृद्धि होने लगती है। प्रत्याहार के लाभ के रूप में खिलाड़ियों को अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण या अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से अधिकार प्राप्त होने पर खिलाड़ियों की एकाग्रता में वृद्धि होने लगती है, जो सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

6. धारणा- चित्त को नाभिचक्र, आज्ञाचक्र आदि किसी स्थान में स्थिर कर देना धारणा है। इस साधना के अभ्यास के फलस्वरूप

खिलाडियों की मानसिक क्षमता में विकास एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होने लगती है।

7. ध्यान- किसी स्थान में ध्येय वस्तु का ज्ञान जब तेलधारावत् एक प्रवाह में संलग्न होता है, तब उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान में ध्यान, ध्येय और ध्याता का पृथक्-पृथक् भान होता है। यह उच्च साधना है, जो खिलाड़ियो के सफलता के लिए महत्वपूर्ण है। ध्यान वर्तमान समय में सबसे महत्वपूर्ण है। जिसके पालन से खिलाड़ी अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ्य समृद्ध होकर उन्नति को प्राप्त कर सके।

8. समाधि- जब ध्यान ही ध्येय के आकार में भासित हो और अपने स्वरूप को छोड़ दे तो वही समाधि है। समाधि में ध्यान और ध्याता का भान नहीं होता, केवल ध्येय रहता है। समाधि खिलाड़ियो को शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थ्य, निरोग, एकाग्रता, मन के स्तर पर संयत, शांति व संतुलित एवं सफलता प्राप्ति में महत्वपूर्ण है।

यह अंग सभी प्रकार के साधक के लिए उपर्युक्त हैं जिसका अभ्यास किसी योग्य एवं सुशिक्षित गुरू के मार्गदर्शन में रहकर किये जाने पर लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

विश्वभर के विद्वानों ने इस बात को माना है कि योग के अभ्यास से शारीरिक व मानसिक ही नहीं बल्कि नैतिक विकास होता है। इसी कारण आज सरकारी व गैरसरकारी स्तर के स्कूलों में योग विषय को खेल के साथ अनिवार्य कर दिया गया है। आज सम्पूर्ण विश्व में हर वर्ग का व्यक्ति चाहे वह अमीर हो या गरीब हो, बच्चे, बूढ़े, जवान व्यक्ति, महिलायें चाहे वह किसी भी उम्र की हो, वह सभी शरीर को स्वास्थ्य रखने एवं बीमारियों से बचने के लिए व्यक्ति अपने खानपान और दिनचर्या और योग के मार्ग को अपना रहा है। विवेकानंद आधुनिक शिक्षा के पूर्णत: खिलाफ थे बल्कि वे ऐसी शिक्षा चाहते थे जिसमें व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो। उन्होंने शारीरिक शिक्षा के साथ-साथ संपूर्ण बौद्धिक विकास एवं बौद्धिक ज्ञान के लिए गणित, विज्ञान, धर्मशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र तथा तकनीकी आदि सभी विषयों के अध्ययन करना चाहिये क्योंकि इनके ज्ञान से देश को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। वे कहते थे कि राष्ट्र को ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है जो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु समुद्र तल की तह में जाने तथा साक्षात् मृत्यु का भी सामना करने में सक्षम हो।

उपसंहार: योग जीवन जीने की कला व साधना विज्ञान है। मानव जीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी साधना व सिद्धान्तों में ज्ञान का महत्व दिया है। इसके द्वारा आध्यात्मिक और भौतिक विकास सम्भव है। वेद, पुराणों में भी योग की चर्चा की गयी है। यह सिद्ध है, कि यह विद्या प्राचीन काल से ही बहुत विशेष समझी गयी है। योग समस्त मनुष्य जाति की एक पुरातन विरासत है। मुनष्य समाज में कोई पांच हजार साल से योगाभ्यास करता रहा है। योग के रोग निवारक और उपचारात्मक दोनों फायदे हैं और यह मनुष्य के शरीर और दिमाग दोनों को लाभ पहुंचाता है। वैश्विक स्तर पर भी माना गया है कि बिना किसी नकारात्मक प्रभाव तनाव या शरीर में किसी तरह के असंतुलन लाए बगैर योग का सम्यक् लाभ लिया जा सकता है। अत: आज संसार में हर जगह योग का सहारा लिया जा रहा है। खिलाड़ी एवं साधारण लोग अपनी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए नियमित योगाभ्यास, प्राणायाम, षट्कर्मों का अभ्यास कर रहे है। जिससे वह अनेक बीमारियों से लड़ने में सक्षम हो रहे हैं। इसलिए आज हर जगह पर योग को पहचान मिल रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. आचार्य, श्रीराम शर्मा, समग्र स्वास्थ्य संवर्धन कैसे, युगनिर्माण योजना प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा
2. सिंह, डा. राम हर्ष, स्वस्थवृत विज्ञान, चौखम्बा संस्कृति प्रतिष्ठान, 38 यू.ए. जवाहर नगर, दिल्ली
3. महात्मा जगदीश्वरानन्द, 2002, अरोग्य अभिलाषा, जीवन निर्माण केन्द्र पांचली बागपत मार्ग, मेरठ
4. आचार्य, श्रीराम शर्मा, वाङ्मय, खण्ड-41, जीवेम शरद: शतम्, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा
5. आचार्य, श्रीराम शर्मा, वागंमय, खण्ड-2, जीवन देवता की साधना आराधना, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा
6. आचार्य, श्रीराम शर्मा, शिक्षा ही नहीं विद्या भी, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा
7. वर्णवाल, सुरेश, 2002, योग और मानसिक स्वास्थ्य, न्यूभारती बुक कार्पोरेशन, दिल्ली
8. दशोरा, श्री नन्दलाल, महर्षि पतंजलि कृत पातंजल योग सूत्रयोग दर्शन, प्रकाशक- रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार
9. शिवानंद, स्वामी, योगाभ्यास का मूलाधार, प्रकाशक- दिव्य जीवन संघ
10. निरंजनानंद, परमहंस, योगदर्शन, प्रकाशक- श्री पंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा, बिहार
11. सरस्वती, स्वामी विज्ञानानन्द, 1999, पातंजल योग दर्शन, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति, ऋषिकेश।
12. मिश्र, सुरेन्द्र सिंह, पी. डी. और मिश्र, बीना, 1997, योग का परिचय, सुलभ प्रकाशन लखनऊ
13. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, रोग और योग प्रकाशक बिहार योग भारती मुंगेर
14. दास स्वामी रामसुख, संवत 2061, गीता प्रबोधनी, गीता प्रेस गोरखपुर
15. गोयंदका जयदयाल, 2002, गीता तत्वविवेचनी, गीता प्रेस गोरखपुर,
16. दशोरा नन्दलाल, 2018, पातंजल योगसूत्र, रणधीर प्रकाशन हरिद्वार
17. गोयंदका जयदयाल, 2002, गीता तत्वविवेचनी, गीताप्रेस गोरखपुर
18. शर्मा डॉ० सुरेशचन्द्र, 2016, व्यक्तित्व विकास और भगवद्गीता, मंजुल पब्लिशिंग हाउस

ISSN 2278 - 0327

योगकुण्डलिनी उपनिषद् एवं हठप्रदीपिका में वर्णित कुण्डलिनी जागरण के सहायक योगांग

रंजीत सिंह
पी-एच. डी.शोधार्थी, योग एवं आयुर्वेद विभाग
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)

शोध सार संक्षेपिका

योग न केवल आध्यात्मिक विज्ञान है बल्कि यह एक आध्यात्मिक संस्कृति भी है और इसी संस्कृति का उद्गम स्थान भारत है। यहाँ के प्राचीन ऋषि मुनियों ने इस संस्कृति का निर्माण अत्यंत सोच विचार कर किया था। उन्होंने न केवल बौद्धिक तथ्यों से प्रभावित होकर इस विद्या का निर्माण किया था बल्कि उन्होंने आत्मज्ञान के द्वारा भली भाँति इसको समझ कर तत्कालीन समाज के सामने इसका एक अद्भुत रूप प्रस्तुत किया था। समाज के सर्वांगीण विकास के संदर्भ में उन्होंने इसकी महत्ता को प्रत्यक्ष रूप से लोगों को समझाया था। उस ओर जहाँ जीवन के चरमोत्कर्ष के साधन मौजूद हैं और जहाँ मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधन पूर्ण रूप से विद्यमान हैं और यह सब कुण्डलिनी जागरण के अन्दर अत्यधिक मात्रा में छिपे हुए हैं।

जिस समय कुण्डलिनी को अपने दैनिक व व्यावहारिक जीवन में स्थान दे देगें उस दिन से समस्याओं, तनावों और सदियों से चली आ रही सांसारिक उलझनों की श्रृंखला से मुक्त हो जायेंगे। सदियों से मनुष्य अति भौतिक अस्तित्व की सम्भावनाओं का पता लगा रहा है तथा साथ ही साथ प्रकृति का स्वामी बनने की कल्पना कर रहा है। जब भी मनुष्य को अलौकिक अनुभव होते हैं, तब वह उसके कारण और स्रोत का पता लगाना चाहता है। जीवन पर्यन्त मन, बुद्धि तथा भावनाओं का आत्म के साथ विकास होता है। योग उपनिषदों में वर्णित है कि आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं बन्ध आदि प्रक्रिया का अभ्यास इस प्रकार होना चाहिए कि उनका प्रभाव केवल भौतिक अनुभवों तक ही सीमित न हो। उनके द्वारा एक प्रकार की मानसिक सजगता, एकाग्रता और सन्तुलन विकसित करती है। ये सभी कुण्डलिनी का जागरण में सहायक होते है।

कुट शब्द- कुण्डलिनी, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, सजगता।

प्रस्तावना

योग प्रारम्भ से ही अत्यन्त व्यापक विषय के रूप में जीवन जीने की कला एवं विज्ञान सहमत शैली रहा है। जिसका वर्णन वेदों एवं उपनिषद् आदि ग्रंथों में दृष्टिगोचर होता है। योगोपनिषद् मूलतः यौगिक अथवा आध्यात्मिक शक्तियों के ही कोष हैं। जिनमें मनुष्य की लौकिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों के सूत्र अन्तर्निहित हैं। मनुष्य की मूल शक्तियों में कुण्डलिनी शक्ति प्रमुख मानी जाती है। योगकुण्डलिनी उपनिषद् मुख्यतः कुण्डलिनी शक्ति की अवधारणा पर ही रचित योगोपनिषद् है। इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय में प्राणायाम तथा इसकी सिद्धि हेतु तीन उपायों के रूप में मिताहार, आसन और शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन किया गया है। साथ ही प्राणायाम के प्रकार, तीन प्रकार के बन्ध, योगाभ्यास के दौरान आने वाली बाधाऐं तथा उनसे बचने के उपाय, कुण्डलिनी जागरण, ग्रन्थिभेदन, कुण्डलिनी शक्ति का सहस्त्रार चक्र में प्रवेश तथा प्राणादि का विलीनीकरण एवं समाधि योग आदि के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी है। द्वितीय अध्याय में खेचरीमुद्रा के स्वरूप, लाभ तथा सिद्धियों एवं तृतीय अध्याय में खेचरी मुद्रा तथा साधक के दृष्टिकोण का सोदाहरण वर्णन किया गया है।

प्राचीनकाल से ही भारतीय परम्परा में योग के अनेक भेद किये जाते रहे है। हठप्रदीपिका के अनुसार- 'साधक जैसे-जैसे योग अभ्यास में प्रगति करता है, वैसे-वैसे इस अनुशासन के मानसिक और आध्यात्मिक जीवन से और अधिक परिचित होता जाता है। हठयोग में शारीरिक शुद्धि एवं राजयोग में मानसिक शुद्धि पर बल दिया गया है।'[1] हठप्रदपिका में आसन, प्राणायाम, मुद्रा-बन्ध एवं नादानुसन्धान को प्रमुख हठयौगिक अभ्यास माने गये हैं और इनका अभ्यास राजयोग की प्राप्ति के लिए निर्देशित किया गया है। शरीर शुद्धि हेतु षट्कर्म का अभ्यास वर्णित किया गया है। जिसके अनुसार- धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं

कपालभाँति ये छः शोधन क्रियाएँ कही गई हैं। इन क्रियाओं से शरीर की शुद्धि होती है; आसन, प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में स्थिरता एवं लघुता आती है; मुद्रा एवं बंध के अभ्यास से विचारों में शुद्धता आती है एवं नादानुसन्धान से कुण्डलिनी का जागरण होता है। जिसके परिणाम स्वरूप साधक संसार के सुख और दुःख से मुक्ति हो जाता है।

कुण्डलिनी जागरण के प्रयोजनार्थ ही समस्त यौगिक उपक्रमों का वर्णन यौगिक ग्रंथों में वर्णित हैं। वस्तुतः मनुष्य में अन्तर्निर्हित दिव्यता, सात्विकता, सकारात्मकता एवं श्रेष्ठता का जागरण ही कुण्डलिनी का जागरण है।

कुण्डलिनी का संक्षिप्त परिचय

वर्तमान सन्दर्भ में कुण्डलिनी का अर्थ अलौकिक, आश्चर्यजनक एवं दैवीय शक्ति के प्रकटीकरण को माना जाता है, जिसके जागरण हेतु विविध मादक द्रव्य, तंत्र, मंत्र के विकृत स्वरूप की भ्रांत धारणा प्रचलित है। जबकि कुण्डलिनी जगरण निम्न चेतना से उच्च चेतना के आरोहण की एक क्रमागत प्रक्रिया है। जिसमें समस्त प्राणिक वाहिकाएं अथवा नाड़ी, चक्र, प्राण एवं चेतना के अवरोधकों का निराकरण होकर शुद्ध, सात्विक भावना, चेतना, प्राण एवं दिव्यता का विकास होता है। जिससे आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व परिष्कृत होता है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के अनुसार– 'कुण्डलिनी जागरण के माध्यम से प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए भी आप अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास की गति को अति तीव्र कर सकते हैं।'[2] हठप्रदीपिक[13] में कुण्डलिनी के विविध नाम बताए गए हैं यथा– कुटिलाङ्गी, कुण्डलिनी, भुजङ्गी, शक्तिरीश्वरी, कुण्डल्यरुन्धती आदि।

संपूर्ण योग–तंत्रों का उद्देश्य साधक में उपस्थित सुप्त शक्तियों को जाग्रत करना है। इसी सन्दर्भ में कुण्डलिनी की उपयोगिता का वर्णन हठप्रदीपिका[4] में दृष्टव्य है।

योगकुण्डलिनी उपनिषद् में अन्तर्निहित कुण्डलिनी जागरण के यौगिक उपक्रम–

योगकुण्डलिनी उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध योगोपनिषद् है। यह उपनिषद् तीन अध्यायों में विभाजित है। जिसके प्रथम अध्याय में 87 सूत्र, द्वितीय अध्याय में 49 सूत्र तथा तृतीय अध्याय में 35 सूत्रों का समावेश है। इस प्रकार योगकुण्डलिनी उपनिषद् में कुल 171 सूत्र हैं। इस उपनिषद् में कुण्डलिनी शक्ति का सर्वाधिक वर्णन प्राप्त होता है। इसीलिए इस उपनिषद् का नाम योगकुण्डलिनी उपनिषद् रखा गया है।

मानवीय शरीर में स्थित मुख्यशक्ति ही 'कुण्डलिनी शक्ति' कहलाती है। इस उपनिषद् के अनुसार– विविध विद्वानों ने कुण्डलिनी को 'अरून्धती'[5] भी कहा है। कुण्डलिनी के जागरण के लिए अथवा इसको मूलाधार से आज्ञाचक्र तक लाने के लिए उपनिषद्[6] में दो मुख्य उपाय वर्णित हैं–

1. सरस्वती चालन क्रिया
2. अभ्यास के माध्यम से प्राण का निरोध करना।

सरस्वती चालन क्रिया के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति स्वयं ही गतिमान होने लगती है। दो मुहुर्त तक इस सरस्वती चालन क्रिया का अभ्यास करने के फलस्वरूप यह कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के मुख में प्रवेश कर ऊपर की ओर उठने लगती है। इन दोनों साधनों के फलस्वरूप लिपटी हुई कुण्डलिनी सीधी हो जाती है।[7]

जिस काल में अपान वायु ऊपर की ओर पहुँचकर अग्निमण्डल के साथ युग्मन करती है, तब इस अपान वायु से टकराकर यह अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। प्राण के साथ इस अपान वायु और अग्नि के मिलने के प्रभावस्वरूप शरीररस्थ सभी प्रकार के विकार दग्ध हो जाते है तथा इस अग्नि की ऊष्मा से सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी जाग उठती है और फटकारी हुई सर्पिणी की तरह फुत्कार मारती हुई सीधी हो जाती है।[8]

जाग्रत अवस्था में कुण्डलिनी एक सीधी रेखा में होकर सुषुम्ना नाड़ी के मुख पर आकर उसमें प्रविष्ट हो जाती है। इस समय यह कुण्डलिनी शक्ति रजोगुण उत्पादित ब्रह्मग्रंथि को भेदकर बिजली की भाँति सुषुम्ना नाड़ी के मुंह के अन्दर अवरोहण करती हुई शीघ्रता से हृदयचक्र स्थित विष्णुग्रंथि को भेदकर आगे बढ़ती हुई ऊपर स्थित आज्ञाचक्र में स्थित रूद्रग्रंथि तक पहुँचती है।[9]

भौंहों के मध्य स्थित आज्ञाचक्र को भेदकर यह कुण्डलिनी चन्द्रस्थान स्थित सोलह–दलीय अनाहत चक्र में पहुँचती है। इस स्थान पर यह कण्डलिनी शक्ति शुक्लरूप चंद्र को तपाते हुए क्षुब्धावस्था में वहीं घूमती रहती है।[10] कुण्डलिनी के इस क्षुब्धावस्था में होने की स्थिति में मन को अमृतरसास्वाद प्राप्त होता है, जिससे यह मन पूरी तरह से बाह्य विषयों से विरक्त होकर अंतर्मुखी हो जाता है एवं स्वयंमात्मा में ही आनन्द की अनुभूति करने लगता है। *योगकुण्डलिनी उपनिषद् के अनुसार*– 'यह कुण्डलिनी शक्ति आठ प्रकृतियों (पंच तत्व, मन, बुद्धि और अहंकार) में से व्याप्त होती हुई अन्त में शिव से एकाकार होती है और उन्हीं में विलीन हो जाती है। इस प्रकार प्राण वायु एवं अपान वायु एवं नीचे की ओर स्थित रजोगुण व ऊपर स्थित सतोगुण भी वायु के वेग से उस परम शिव में मिल जाते है। अग्नि के तेज से गली हुई स्वर्ण धातु

जिस प्रकार चहुं ओर फैल जाती है, ठीक वैसे ही जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति की ऊष्मा पाकर यह पंचतत्वों से बना भौतिक शरीर भी दिव्यशक्तिमय हो जाता है।' [11]

हठप्रदीपिका में अन्तर्निहित कुण्डलिनी जागरण के यौगिक उपक्रम-

हठप्रदीपिका[12] के अनुसार- इड़ा या गंगा तथा पिंगला या यमुना नदी के मध्य में स्थित 'तपस्विनी-बालरण्डा' अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति सर्प की भाँति टेढ़ी-मेढ़ी आकृति लिये हुए कन्द के ऊपरी क्षेत्र में स्थित क्लेषशून्य अमरपद या मोक्ष के मार्ग को अपने मुख से ढके हुए सुप्तावस्था में रहती है। इसे पुरूषार्थ के माध्यम से जाग्रत करना चाहिए क्योंकि यही भगवान विष्णु का परमपद है।

हठप्रदीपिका के भाष्यकार स्वामी दिगम्बर एवं डॉ. पीताम्बर झा के अनुसार- 'योगियों का अनुभव है कि वे नाद, बिंदु एवं कला के एक्य की अनुभूति के माध्यम से परम तत्व शिव का साक्षात्कार करते हैं। योगियों द्वारा इस अनुभूति की चरम अवस्था को ही 'कुण्डलिनी योग' कहा जाता है।'[13] यहाँ नाद को अनाहद नाद, बिन्दू को ज्योति एवं कला को संस्पर्श के रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

हठप्रदीपिका के तृतीय अध्याय में कुण्डलिनी जागरण हेतु दश मुद्राओं (महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, विपरीतकरणी, उड्डीयान, वज्रोली तथा शक्तिचालिनी) का वर्णन कया गया है। कुण्डलिनी जागरण में मुद्राओं का विशेष महत्व होता है। स्वामी स्वात्माराम के अनुसार- 'सुषुम्ना के मूल स्थान में सोती हुई कुण्डली को जगाने के लिये पूर्ण प्रयास के साथ मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिये।'[14] इससे पूर्व के अध्यायों में षटकर्म, आसन, प्राणायाम आदि का वर्णन किया है जो कि कुण्डलिनी के जागरण की आधारशिला ही हैं, जिनके क्रमागत अभ्यास से ही कुण्डलिनी जागरण की क्षमता एवं सामर्थ्य का विकास होता है। हठप्रदीपिका में कुण्डली को परिभाषित करते हुए कुण्डलिनी जागरण के उपायों के साथ इनसे प्राप्त परिणामों की चर्चा की विस्तृत विवेचना की गयी है। हठप्रदीपिका के अनुसार- 'जिस प्रकार सर्पो के स्वामी शेषनाग पर्वत वन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी के आधार हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण योग- तन्त्रों का आधार कुण्डली है।'[15] इस शक्ति के जागरण में स्वामी स्वात्माराम गुरू की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख करते हैं। स्वामी स्वात्माराम के अनुसार- 'गुरु के अनुग्रह से जब प्रसुप्त कुण्डली जग जाती है तब सभी पद्म (षट्चक्र) और सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।'[16]

हठप्रदीपिका[17] के अनुसार- कुण्डलिनी के जागरण के उपायों के अंतर्गत वज्रासन एवं अनन्तर भस्त्रिका कुम्भक का वर्णन किया गया हैं इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शीघ्रता से जागती है।

जाग्रत कुण्डलिनी के दिव्यप्रभाव

कुण्डलिनी एक शक्ति है, जिसका ऊर्ध्वगमन मनुष्य के सृजन एवं विनाश दोनों का कारण है। शक्ति की दिशा एवं दशा जब तक सत्व प्रधान होती है तब तक मनुष्य में दिव्यता, सकारात्मकता, सात्विकता आदि का संचय होता रहता है। सत्व प्रधान कुण्डलिनी का प्रभाव ही दिव्य प्रभाव है, जिसका योगकुण्डलिनी उपनिषद् में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। *उपनिषद् के अनुसार*- 'जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति के दिव्यप्रभाव से साधक का शरीर अत्यंत पवित्र होकर, आधिभौतिक शरीर का आधिदैविक शरीर में रूपान्तरण हो जाता है। मानवीय शरीर जड़ता के भाव से परे अत्यंत चिन्मय हो जाता है। अन्य जनों की तुलना में साधक का शरीर ज्ञानमय हो जाता है। साधक 'स्व' का जानकार हो जाता है। साधक को भव-बंधनों से मुक्ति मिल जाती है। साधक काल की सीमा से परे चला जाता है।

साधक को यह भौतिक जगत रस्सी में साँप की भाँति मिथ्या ही दिखाई पड़ता है।'[18] इस प्रकार ब्रह्माण्ड और पिण्ड एवं सूक्ष्म शरीर तथा सूत्रात्मा का एकरूप होने के फलस्वरूप साधक को स्वयं की आत्मा और परमचेतना की एकरूपता का ज्ञान होता है।[19] उपनिषद् में कुण्डलिनी शक्ति को कमल के पौधे की नाल की उपमा दी गयी है। उपनिषद् के अनुसार- 'कमलकन्द की भाँति ही यह कुण्डलिनी मूलकन्द को अपने फण के आगे के भाग से देखकर अपनी पूंछ को मुख में दबाकर सुषुम्ना नाड़ी के प्रवेश मार्ग या ब्रह्मरन्ध्र को ढंककर सुप्तावस्था में रहती है।'[20] इस कुण्डलिनी के जागरण हेतु एक अन्य उपाय के रूप में पद्मासन का वर्णन किया गया है। योगकुण्डलिनी उपनिषद् के अनुसार- 'पद्मासन में बैठकर गुदा भाग को सिकोड़ते हुए, कुम्भक का अभ्यास करके वायु को ऊपर की ओर स्वाधिष्ठान चक्र में उपस्थित अग्नि की ओर ले जाते है तथा उस वायु के आघात द्वारा अग्नि को प्रज्जवलित करने से सुप्तावस्था में स्थित यह कुण्डलिनी जाग उठती है तथा तीनों नाड़ियों- ब्रह्मा नाड़ी, विष्णु नाड़ी, रूद्र नाड़ी को भेदकर षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्त्रार चक्र या कमल तक पहुँचती है और वहाँ स्थित शिव के साथ यह शक्ति एक होकर आनन्दावस्था प्राप्त करती है। यह आनन्दावस्था ही परमानन्द मुक्ति-प्रदाता कहलाती है।'[21]

कुण्डलिनी जागरण से साधक शान्त, सहज, सजग एवं समत्व के भाव में अवस्थित हो जाता है। स्वामी स्वात्माराम हठप्रदीपिका में इस अवस्था को सहज अवस्था नाम से वर्णित करते हैं। स्वामी स्वात्माराम के अनुसार– 'कुण्डलिनी जागृत होने के बाद सम्पूर्ण क्रियाओं से मुक्त हो जाने के बाद साधक को आप ही आप सहजावस्था प्राप्त हो जाती है।[22]

इस अवस्था में पहुँचकर साधक मान–अपमान, सुख–दुःख, राग–द्वेष आदि की भावना से मुक्त हो जाता है। राग–द्वेषादि द्वन्द्वात्मक स्थिति ही मनुष्य के समस्त क्लेश आदि दुःखों का कारक है। हठप्रदीपिका [23] के अनुसार– कुण्डलिनी ही योगियों के लिए मोक्षप्रदाता एवं मूढ़ व्यक्तियों के लिए यही बंधन का कारण है। कुण्डलिनी का जानकार ही वास्तव में योगी है। कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है।

उपसंहार

योगकुण्डलिनी उपनिषद् एवं हठप्रदीपिका दोनों ही ग्रंथ हठयौगिक अभ्यासों से मनुष्य में अन्तर्निहित दिव्य ऊर्ध्वगमन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस व्यष्टि में ही सम्पूर्ण समष्टि का समावेश है। जैसे शरीर में अग्नि है लेकिन वह दिखाई नहीं देती है। किन्तु जब साधक उसका अनभूति के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन कर लेता है। तब वह उस शक्ति, समष्टि अथवा अग्नि का अनुभव कर सकता है। संसार के समस्त दुःख रूप बंधनों से मुक्त हो सकता है। यही यौगिक अभ्यासों का प्रयोजन एवं मनुष्य का प्रयास होता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य केशवलाल वी. शास्त्री. उपनिषत्सञ्चयनम्: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली: 2014.
2. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा. 108 उपनिषद्, प्रथम–ज्ञानखण्ड, द्वितीय–साधनाखण्ड, तृतीय–ब्रह्मविद्याखण्ड: युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा, उत्तरप्रदेष. 2016.
3. पोद्दार, श्री हनुमानप्रसादजी. गोस्वामी, चिन्मयलाल, अग्रवाल एवं शास्त्री. कल्याण उपनिषद् अंक: (तेईसवें वर्ष का विशेषांक), गीताप्रेस, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश. सं. 2071.
4. व्याख्याकार– गोयन्दका, हरिकृष्णदास. ईषादि नौ उपनिषद्: गीताप्रेस गोरखपुर. सं. 2076.
5. भारती, परमहंस स्वामी अनंत. योग उपनिषद् संग्रह (योगप्रभाकर–भाष्य)–प्रथम एवं द्वितीय खण्ड भाग: चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली. 2015.
6. आचार्य पं. श्रीराम शर्मा. कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसद्धि: प्रकाषक युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा.
7. योगिराज पं. राकेश, कुण्डलिनी शक्ति और जागरण: प्रकाशक दुर्गा पॉकेट बुक्स
8. आर्चाय भगवान देव, प्राणायाम–कुण्डलिनी और हठयोग: प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली.
9. सरस्वती, स्वामी सत्यानंद. कुण्डलिनी योग: योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार भारत. 2005.
10. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द. महर्षि घेरण्ड कृत घेरण्ड संहिता: योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार भारत. 2011.
11. स्वामी, दिगम्बरजी एवं झा, डा. पीताम्बर. हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत. 2008.
12. ब्रह्मानंद, स्वामी. हठप्रदीपिका ज्योत्स्ना टीका (आलोचनात्मक संस्करण हिन्दी): कैवल्यधाम योग संस्थान लोनावाला पुणे, महाराष्ट्र. 2002.
13. वेदालंकार, रघुवीर. उपनिषदों में योगविद्या: के. सी. प्रकाशन, दिल्ली. 1991.
14. बन्धु, मनुदेव. उपनिषद् वाङ्मय में योगविद्या: प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली. 2010.
15. कुमार झा, संजय. प्रमुख उपनिषदों के पारिभाषिक शब्द: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली. 2008.
16. पराम्बा, श्रीयोगमाया. उपनिषत्सु प्राणविद्या: प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली. 2016.
17. सरस्वती स्वामी निरंजनानन्द. प्राण एवं प्राणायाम: योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार भारत. 2012.

शोध पत्र एवं पत्रिकाएँ

1. डॉ. अरूण कुमार साव. कुण्डलिनी स्वरूप, जागारण एवं फलश्रुति (साहित्यिक सर्वेक्षण के परिप्रेक्ष्य में एक विवेचनात्मक अध्ययन): साहित्य संहिता, 6 (10), 1–15.
2. चंचल सूर्यवंषी. गायत्री द्वारा कुण्डलिनी जागरण: साहित्य संहिता 6 (5) 13–19.

सन्दर्भ सूची –

1. दिगम्बरजी, स्वामी, झा डा. पीताम्बर. हठप्रदीपिका: कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत: 2008. पृष्ठ संख्या– 45.
2. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द. कुण्डलिनी योग: योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत: 2005. पृष्ठ संख्या– 15.
3. 'कुटिलाङ्गी कुण्डलिनी भुजङ्गी शक्तिरीश्वरी।
   कुण्डल्यरुन्धती चैते शब्दाः पर्यायवाचकाः।। हठप्रदीपिका– 3/104.
4. सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः।
   सर्वोषां योगतन्त्राणां तथाधारो हि कुण्डली।। हठप्रदीपिका 3/1
5. अरून्धत्येव कथिता पुराविद्धिः सरस्वती।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/9.
6. तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्वत्यास्तु चालनम्।
   प्राणरोधमधाभ्यासादृज्वी कुण्डलिनी भवेत्।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/8.
7. मुहुर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयाच्चालयेत्सुधीः।
   ऊर्ध्वमाकर्षयेत्किञ्चित्सुषुम्नां कुण्डलीगताम्।।
   योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/13.

तेन कुण्डलिनी तस्या सुषुम्नाया मुखं व्रजेत्।
जहाति तस्मात्प्राणोयं सुषुम्नां व्रजति स्वत: ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/14.

8. अपाने चोर्ध्वगे याते संप्राप्ते वहिनमण्डले।
ततोऽनलषिखा दीर्घा वर्धते वायुना हता ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/43.
ततो यातौ वहन्यपानौ प्राणमुष्णस्वरूपकम्।
तेनात्यन्तप्रदीप्तेन ज्वलनो देहजस्तथा ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/44.
तेन कुण्डलिनी सुप्ता संतप्ता सम्प्रबुध्यते।
दण्डातभुजङ्गीव नि:श्रवस्य ऋजुतां व्रजेत् ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/45.

9. प्राणस्थानं ततो वह्नि: प्राणापानौ च सत्वरम।
मिलित्वा कुण्डलीं याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृति: ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/65.
तेनाग्निना च सन्तप्ता पवनेनैव चालिता।
प्रसार्य स्वषरीरं तु सुषुम्ना वदनान्तरे ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/66.
ब्रह्मग्रन्थि ततो भित्त्वा रजोगुणसमुद्भवम्।
सुषुम्नावदने शीघ्रं विद्युल्लेखेव संस्फुरेत् ।। योगकुण्डलिनी उप.–1/67.
विष्णुग्रन्थिं प्रयात्युच्चै: सत्वरं हृदि संस्थिता।
ऊर्ध्वं गच्छति यच्चान्ते रूद्रग्रन्थिं तदुद्भवम् ।। योगकुण्डलिनी उप.–1/68.

10. भ्रुवोर्मध्यं तु सम्भिद्य याति शीतांषुमण्डलम्।
अनाहताख्यं यच्चक्रं दलै: षोडषभिर्युतम् ।। योगकुण्डलिनी उप.–1/69.
तत्र शीतांषुसञ्जातं द्रवं शोषयति स्वयम्।
चलिते प्राणवेगेन रक्तं पित्तं रवेर्ग्रहात् ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/70.
यातेन्दुचक्रं यत्रास्ते शुद्धष्लेष्मद्रवात्मकम्।
तत्र सिक्तं ग्रसत्युष्णं कथं शीतस्वभावकम् ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/71.
तथैव रभसा शुक्लं चन्द्ररूपं हि तप्यते।
ऊर्ध्वं प्रवहति क्षुब्धा तदैवं भ्रमतेतराम् ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/72.

11. तस्यास्वादवषाच्चितं बहिष्ठं विषयेषु यत्।
तदेव परमं भुक्त्वा स्वस्थ: स्वात्मरतो युवा ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/73.
प्रकृत्यष्टकरूपं च स्थानं गच्छति कुण्डली।
क्रोडीकृत्य शिवं याति क्रोडीकृत्य विलीयते ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/74.
इत्यधोर्ध्वरज: शुक्लं शिवे तदनु मारूत: ।
प्राणापानौ समौ याति सदा, जातौ तथैव च ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/75.
भूतेऽल्पे चाप्यनल्पे वा वाचके त्वतिवर्धते।
धावयत्यखिला वाता अग्निमूषाहिरण्यवत् ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/76.

12. इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये बालरण्डा च कुण्डली ।। हठप्रदीपिका– 3/106.
गङ्गायमुनयोर्मध्ये बालरण्डां तपस्विनीम्।
बलात्कारेण गृह्णीयात् तद्विष्णो: परमं पदम् ।। हठप्रदीपिका– 3/105.

13. स्वामी, दिगम्बरजी एवं झा, डा. पीताम्बर. हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति लोनावला, पुणे, भारत: 2008. पृष्ठ संख्या– 129.

14. तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं माचरेत्। हठप्रदीपिका– 3/5.

15. सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायक: ।
सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाधारो हि कुण्डली। हठप्रदीपिका– 3/1.

16. सप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च ।। हठप्रदीपिका– 3/2.

17. सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद् दृढम्।
गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् ।। हठप्रदीपिका 3/110.

18. आधिभौतिकदेहं तु आधिदैविकविग्रहे।
देहोऽतिविमलं याति चातिवाहिकतामियात् ।। योगकुण्डलिनी उप.–1/77.
जाडयभावविनिर्मुक्तममलं चिन्मयात्मकम्।
तस्यातिवाहिकं मुख्यं सर्वेषां तु मदात्मकम् ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/78.
जायाभवविनिर्मुक्ति: कालरूपस्य विभ्रम: ।
इति तं स्वरूपा हि मती रज्जुभुजङ्गवत् ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/79.
मृषैवोदेति सकलं मृषैव प्रविलीयते।
रौप्यबुद्धि: शुक्तिकायां स्त्रीपुंसोर्भ्रमतो यथा ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/80.

19. पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि।
स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाषचिदात्मनो: ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/81.

20. शक्ति: कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा।
मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत् ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/82.

21. मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता।
पद्मासनगत: स्वस्थो गुदमाकुञ्चय साधक: ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/83.
वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुम्भकाविष्टमानस: ।
वायवाघातवषादग्नि: स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन् ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/84.
ज्वलनाघातपवनाघातैरून्निद्रितोऽहिराट्।
ब्रह्मग्रन्थि ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यत: ।।
योगकुण्डलिनी उपनिषद्– 1/85.
रूद्रग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।
सहस्त्रकमले शक्ति: शिवेन सह मोदते ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/86.
सैवावस्थ्ज्ञा परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारिणी ।। योगकुण्डलिनी उप.– 1/87.

22. उत्पन्नशक्तिबोधस्य त्यक्तनि: शेषकर्मण: ।
योगिन: सहजावस्था स्वयमेव प्रजायते। हठप्रदीपिका– 3/103.

23. कन्दोर्ध्वं कुण्डलीषक्ति: सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित् ।। हठप्रदीपिका– 3/103.

ISSN 2278 - 0327

योग वासिष्ठ में ज्ञानयोग साधना

मनमोहन सिंह
शोधार्थी, योगविज्ञान विभाग
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

प्रोफेसर (डॉ) सरस्वती काला
विभागाध्यक्ष, योगविज्ञान विभाग
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

शोध सारांश:

परमेश्वर ने मनुष्य को कर्मेन्द्रियाँ एवं ज्ञानेन्द्रियाँ समुचित कर्म करने हेतु ही दी हैं। उन्हें निष्क्रिय रखना या उनसे कोई जीवनोपयोगी कर्म न करके अन्यों के श्रम के फल का उपभोग करना प्राकृतिक दृष्टि से एक असहज कृत्य ही नहीं, बल्कि समाज की दृष्टि से एक अपराध भी हैं। अनासक्त भाव रखने वाला ज्ञानी शुभाशुभ कर्मों को नित्य प्रति करता हुआ भी सांसारिक बन्धनों में नहीं फँसता, परन्तु जिस व्यक्ति ने मन से इच्छाओं का परित्याग नहीं किया हैं, वह बिना कर्म किये ही सर्वदा जगत् रूपी सागर में डूबता रहता हैं।

मुख्य शब्दावली:

ज्ञान, अनासक्त, वासना, मोक्ष, योग।

प्रस्तावना:

अज्ञान जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। यही जीवन की समस्त विकृतियों और कुरूपता का कारण है। वह ज्ञान सम्पन्न नहीं, मूढ़ हैं जो देह के स्थित रहने तक समुचित होकर देह की अवस्था के तहत कर्मेन्द्रियों को व्यवहृत नहीं करते। जो अज्ञानी तत्व को नहीं पहचानते, वह स्वत: अज्ञानवश सहज अवस्थाओं से दूर भागते रहते है। जब तक तिल हैं, तभी तक तेल हैं, उसी तरह जब तक देह है, तभी तक इसकी सहज दशाएँ भी रहेंगी। जो व्यक्ति देह की अवस्था के तहत व्यवहृत कर्म नहीं करता, मानो वह खड्ग से आकाश को काटता है। देश–दशानुसार मिलने वाले सुख–दु:ख का त्यागना ही अनुचित है। चित्त की शान्ति एवं समत्व भावना तो योग द्वारा ही मिलती है न कि कर्मेन्द्रियों को प्रतिष्ठित कर देने से। जब तक देह है, तभी तक ज्ञानपूर्वक सदाचार के सहित कर्मेन्द्रियों द्वारा शरीर की जरूरतें पूर्ण करना चाहिए, मन से नहीं। जब तक सृष्टि है, तब तक कार्यों को करने मे कोई भी दोष नहीं लगता। जब सभी कर्म प्रकृति के अधीन हैं, तो फिर उसमें दोष लगाने की क्या बात है।[1]

योग वासिष्ठकार ने सैकड़ों युक्तियाँ देकर कहते है कि अद्वैत सिद्धान्त का यह अर्थ कदापि नहीं कि मानव, जगत एवं उसके कर्मों को माया कहकर निकम्मा बन जायें एवं स्वत: पौरूष का त्याग कर समाज के लिए भार बन जायें। परमेश्वर ने मनुष्य को कर्मेन्द्रियाँ एवं ज्ञानेन्द्रियाँ समुचित कर्म करने हेतु ही दी हैं। उन्हें निष्क्रिय रखना या उनसे कोई जनोपयोगी कर्म न करके अन्यों के श्रम के फल का उपभोग करना प्राकृतिक दृष्टि से एक असहज कृत्य ही नहीं, बल्कि समाज की दृष्टि से एक अपराध भी हैं। कोई ज्ञानी व्यक्ति सामान्य लोगों को ऐसा विपरीत ज्ञानोपदेश नहीं दे सकता।[2]

अज्ञानी को स्वयं के सभी कर्मों का फल इस कारण भोगना होता हैं, क्योंकि वह वासना के आधार पर कर्म पूर्ण करता हैं। परन्तु ज्ञानी की वासना क्षीण हो जाती हैं, तब उसे किसी भी कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता। वासना के अभाव में सभी क्रियाऐं निष्फल हो जाती हैं, जैसे जल के अभाव में लताऐं सूख जाती हैं। जैसे बेंत का लक्षण यह हैं कि उसमें फल नहीं आता, उसी प्रकार वासना शून्य कर्म निष्फल होता हैं। अनासक्त भाव रखने वाला ज्ञानी शुभाशुभ कर्मों को नित्य प्रति करता हुआ भी सांसारिक बन्धनों में नहीं फँसता, परन्तु जिस मूढ ने मन से इच्छाओं का परित्याग नहीं किया हैं, वह बिना कर्म किये ही सर्वदा जगत् रूपी सागर में डूबता रहता हैं। किसी विशेष– फल प्राप्ति की कामना से जब व्यक्ति किसी कर्म को करता हैं, तो जैसा उसका पुरूषार्थ होता हैं, तदनुसार ही वह फल प्राप्त करता हैं। कार्य का कर्त्ता होने से प्राणी उस फल का भोक्ता होता हैं।[3]

यथार्थ ज्ञान न तो ग्रन्थों के पठन–पाठन से मिलता हैं और न उपदेश एवं प्रवचनादि के सुनने से मिलता हैं। 卐योग वासिष्ठ卐 के अनुसार जगत् से पार होने का केवल एक ही उपाय हैं योग। इस

योग के दो रूप हैं- प्रथम आत्मज्ञान एवं द्वितीय प्राण-निरोध। सहज रीति से प्रथम मार्ग को 'ज्ञानमार्ग' एवं द्वितीय को 'योगमार्ग' कहते हैं। यह दोनों मार्ग अभ्यास से ही सिद्ध हो सकते हैंल्

नाऽभ्यासेन बिना ज्ञाने शिवं विश्रान्तवानसि।
अभ्यासेन तु कालेन भृषं विश्रान्तिमेष्यसि।।

निर्वाण प्रकरण उत्तरार्द्ध सर्ग 155/13

अर्थात् अभ्यास के बिना श्रेष्ठ कल्याणकारी ज्ञान नही मिल सकता। सतत अभ्यास करने वाले को बाद मे निश्चित ही शान्ति मिलती हैं। इस तरह के अभ्यार्थ तीन प्रमुख उपाय कहे गये हैं-

1) तत्व का अभ्यास
2) प्राणों का निरोध
3) मन का निग्रह [4]

भगवान् राम ने जब गुरु वशिष्ठ जी से सांसारिक क्लेशों के भवबन्धन से छुटकारे का उपाय पूछा तो उन्होंने यही कहा कि यह सब बिना 'ज्ञान' प्राप्ति के सम्भव नही। यदि भवसागर से पार होने की इच्छा हैं तो सबसे प्रथम ज्ञान संचय का प्रयत्न करो। योग वाशिष्ठ में इस सम्बन्ध में बहुत बल दिया गया हैं-

ज्ञानान्निर्दुतामेति ज्ञानादज्ञान संक्षयः।
ज्ञानदेव परा सिद्धिर्नान्यस्माद्राम वस्तुतः।।

योग वाशिष्ठ 5/88/12

हे राम, ज्ञान से ही दु:ख दूर होते हैं, ज्ञान से अज्ञान का निवारण होता है, ज्ञान से ही परम सिद्धि प्राप्त होती हैं और किसी उपाय में नही।

ज्ञानवानेव सुखवान् ज्ञानवानेव जीवति।
ज्ञानवानेव वलवांस्तस्माज्ज्ञान मयोभव।

योग वाशिष्ठ 5/12/41

ज्ञानी ही सुखी हैं, ज्ञानी ही जीवित है, ज्ञानी ही बलवान है, इसलिए ज्ञानी बनना चाहिये।[5] योग वासिष्ठ के अनुसार ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र उपाय ले वह ज्ञान केवल वाचिक ज्ञान नहीं है, न वह तर्कमात्र ही है। मोक्ष का अनुभव कराने वाला ज्ञान आत्मा का अनुभव हैं और वह अनुभव वास्तविक होना चाहिए, केवल कथन मात्र नहीं। अतएव ज्ञानी वह है जिसका जीवन आध्यात्मिक जीवन हो। यदि जीवन को ऊँचा बनाने के लिए ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, केवल नाम, यश और जीविका आदि के लिए ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है, तो ऐसे ज्ञानी को योग वासिष्ठ में ज्ञानी न कहकर ज्ञानबन्धु कहा है। आचार्य वशिष्ठ यहाँ पर राम को समझाते हैं कि -

हे पुत्र! मैं ज्ञानबन्धु से अज्ञानी को अधिक अच्छा समझता हूँ। ज्ञानबन्धु वह है जो शास्त्रों का अध्ययन-पाठन और उनकी चर्चा एक शिल्पकार के समान भोगों को प्राप्त करने के लिए करता है, उनके अनुसार चलने के लिए नहीं, जिसके जीवन पर शास्त्रों के ज्ञान का कोई प्रभाव नहीं होता, जो अन्न और वस्त्र मात्र की प्राप्ति को शास्त्र के अध्ययन का उचित फल समझता है। जैसे कि शिल्पशास्त्र को जानने वाला समझता है और जो श्रुति में कहे हुए प्रवृति-मार्ग पर चलना ही अपना धर्म समझता है और ज्ञान से दूर रहता है। आत्मा का ज्ञान ही तो वास्तव में ज्ञान हैं और वस्तुओं के ज्ञान तो ज्ञानाभास है, क्योंकि उनके द्वारा सार वस्तु का ज्ञान नहीं होता। अतएव वत्स! जो लोग आत्मज्ञान को न पाकर और प्रकार के ज्ञानों सें सन्तुष्ट हो जाते हैं वह ज्ञानबन्धु कहलाते हैं, किन्तु अज्ञानी शास्त्रों का अध्ययन-पठन करता है तदनुसार सहज ही स्वान्तः सुखाय श्रद्धापूर्वक शास्त्रविहित कर्मों में प्रवृत रहता है, उनमें ही आसक्त रहता है, अतैव वह आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता है। यही ज्ञानबन्धु से अज्ञानी की विशेषता है।[6]

हे रघुकुलनन्दन! वत्स राम! आत्मा का बोध कराने वाले ज्ञान की सात भुमिकाऐं हैं- सात अवस्थाएँ हैं व सात सीढ़ियाँ है। मुक्ति इन सात भूमिकाओं से परे है। मोक्ष और सत्य का ज्ञान, यह पर्यायवाची शब्द हैं। जिसको सत्य का ज्ञान हो जाता है, वह जीव फिर जन्म नहीं लेता है। सात भूमिकाएँ का वर्णन इस प्रकार है-

शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापति, असंसक्ति, पदार्थभावना और तुर्यगा। इनके अन्त में मुक्ति है जिसको प्राप्त करके शोक नहीं रहता।

- **शुभेच्छा**- वैराग्य उत्पन्न होने पर इस प्रकार की इच्छा कि 'मैं अज्ञानी क्यों रहुँ, क्यों न शास्त्र और सज्जनों की सहायता से सत्य को जानूँ' शुभेच्छा कहलाता है।
- **विचारणा**- शास्त्र के अध्ययन एवं सज्जनों के संग से, वैराग्य और अभ्यास से सदाचार की ओर प्रवृत्ति को विचारणा कहते हैं।
- **तनुमानसा**- शुभेच्छा और विचारणा के अभ्यास द्वारा इन्द्रियों की विषयों के प्रति असक्तता होने से जो मन की स्थूलता का कम होना है, उसको तनुमानसा कहते हैं।
- **सत्वापति**- पूर्वोक्त तीनों भूमिकाओं के अभ्यास से विषयों के प्रति विरक्ति हो जाने पर जब शुद्ध आत्मा में चित्त की स्थिरता होने लगे तब सत्वापति कहलाती है।
- **असंसक्ति**- जब पूर्वोक्त चारों अवस्थाओं का अभ्यास हो जाने के कारण संसार के विषयों मे असंसक्ति होने पर सत्ता के प्रकाश में मन स्थिर हो जाए तब उसको असंसक्ति कहते

हैं।

- **पदार्थभावना**- जब पूर्वोक्त पाँचों भूमिकाओं के अभ्यास से आत्मा में दृढ़ स्थिति हो जाने पर भीतर और बाहर के सब पदार्थों के अभाव की बड़े प्रयत्न से भावना करके उनको असत् समझ लिया जाए, तब पदार्थभावना अवस्था का उदय होता हैं ।
- **तुर्यगा**- पूर्वोक्त छः भूमिकाओं का अभ्यास हो जाने पर और भेद न दिखाई देने पर जो आत्मभाव में अविचलित भाव से स्थिति हो जाती हैं उसको तुर्यगा कहते हैं। इसको ही तुर्या अवस्था कहते हैं और इसी को जीवन्मुक्ति कहते हैं। विदेहमुक्ति तो तुर्या अवस्था से परे का विषय हैं।[7]

निष्कर्ष -

योगवासिष्ठ में निष्काम सन्न्यास के मुकाबले जीवन के अन्तिम समय तक संसार के कर्त्तव्यों को अनासक्त भाव से पूरा करने का प्रतिपादन नहीं किया है, बल्कि उन ज्ञानी कहलाने वालों की भी भर्त्सना की है, जो मात्र किताबी ज्ञान तो पा लेते है, परन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं करते। ऐसे लोगों को लेखक ज्ञानी ना कहकर 'ज्ञानबन्धु' के नाम से संबोधित किया है।

योगवासिष्ठ में कहीं पर भी यह नहीं कहा गया हैं कि व्यक्ति को सभी तरह के जागतिक कर्म एवं साधन-सामग्री का परित्याग करके साधु-वैरागी का अकर्मण्य जीवन व्यतीत करना चाहिए। कोई भी ज्ञानी अपना एवं दूसरों का हित चाहने वाला यह नहीं कह सकता कि ऐसा पराश्रित या निकम्मा जीवन आत्मिक प्रगति की दृष्टि से सराहनीय कहा जा सकता है।

योगवासिष्ठ में कहे गये मार्ग का आचरण करने से व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का तो पूरी तरह से पालन करता है, किन्तु उसके फल या सांसारिक लाभ की ओर से अनासक्त बना रहता है। जगत में कभी दु:ख, कष्ट अथवा अभाव का प्राकट्य नहीं हो सकता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. आचार्य एस0 एस0, (2018 गीता जयन्ती), प्रथम खण्ड, योग वासिष्ठ (वैराग्य, मुमुक्षु व्यवहार एवं उत्पति प्रकरण) पृ0-11
2. आचार्य एस0 एस0, (2018 गीता जयन्ती), प्रथम खण्ड, योग वासिष्ठ (वैराग्य, मुमुक्षु व्यवहार एवं उत्पति प्रकरण) पृ0-12
3. आचार्य एस0 एस0, (2018 गीता जयन्ती), प्रथम खण्ड, योग वासिष्ठ (वैराग्य, मुमुक्षु व्यवहार एवं उत्पति प्रकरण) पृ0-13
4. आचार्य एस0 एस0, (2018 गीता जयन्ती), प्रथम खण्ड, योग वासिष्ठ (वैराग्य, मुमुक्षु व्यवहार एवं उत्पति प्रकरण) पृ0-17
5. आचार्य एस0 एस0, (1996), मनुष्य मे देवत्व का उदय पृ0- 4-11
6. शास्त्री, कें0 पी0, (2019), योग वासिष्ठ (महारामायणम्), वाराणासी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ0-cxii-cxiii
7. शास्त्री, कें0 पी0, (2019), योग वासिष्ठ (महारामायणम्) वाराणासी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ0-cxxiv-cxxv

दशम गुरु साहिबान पर प्रणीत संस्कृत काव्यों का सामान्य परिचय

दिशा
शोधछात्रा, संस्कृत-विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

दशगुरुचरितम्- ''दशगुरुचरितम्'' महाकाव्य जयनारायण यात्री जी की रचना है। यह महाकाव्य सिक्ख धर्म के दसों गुरुओं को आधार बना कर लिखा गया है। इसका विभाजन सर्गों में हुआ है। प्रारम्भ के 2 सर्गों में गुरु नानक देव जी तथा अन्य सर्गों में बाकी नौ गुरुओं का जीवन परिचय तथा उनसे सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाएं वर्णित है। दशम सर्ग गुरु गोबिन्द सिंह जी के जीवन पर आधारित है। इस सर्ग की रचना 158 श्लोकों में की गई है।

लेखक ने गुरु गोबिन्द सिंह जी का जीवन चरित आरम्भ करने से पूर्व भगवान् श्री कृष्ण जी की वन्दना करते हुए अच्छी बुद्धि की कामना की है।[1]

दशगुरुचरितम् ग्रन्थ के अनुसार गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म पटना नगर में हुआ।[2] इनके पिता सिक्खों के नवम गुरु ''गुरु तेग बहादुर जी'' तथा माता गुजरी थी।[3] गुरु गोबिन्द सिंह जी के जन्म के समय इनके पिता जी घर पर नहीं थे परन्तु जब उन्हें पुत्र प्राप्ति की सूचना मिली तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक पुत्र का नाम ''गोविन्दराय'' रखा।[4]

भीखन शाह नामक एक पीर का बालक गोविन्द राय के दर्शनार्थ आना[5], पिता की आज्ञा पाकर गोबिन्द राय का आनन्दपुर आना[6] तथा धनुषबाण, तलवार, त्रिशूल आदि हथियारों को चलाने में तथा घुडसवारी में कुशलता प्राप्त करना[7], गुरु गद्दी पर बैठना[8] आदि वर्णित है बहुत से युवक गुरु गुरुगोविन्द सिंह जी से शस्त्र अस्त्र चलाने की विद्या ग्रहण करने के लिए आते थे जिस के फलस्वरूप गुरु जी के पास एक विशाल सेना एकत्रित हो गई।[9] गुरु जी अपने शिष्यों को सच्चा उपदेश देकर कृतार्थ करते थे।[10] गुरु जी का विवाह वर्णन[12] गुरु जी को चार पुत्रों की प्राप्ति हुई जिनके नाम क्रमशः अजीत सिंह जुझार सिंह, जोरावर सिंह, फतेह सिंह हुए।[13]

नाहन के राजा द्वारा आमन्त्रित किए जाने पर गुरु गोबिन्द सिंह जी नाहन राज्य गए[14], वहां पर पौंटा साहिब का निर्माण,[15] विचित्रनाटक की रचना की तथा अन्य कई नाटक लिखे।[16] पहाड़ी राजाओं से युद्ध वर्णन[17] तथा विजय प्राप्ति के पश्चात् पुनः आनन्दपुर गमन,[18] नादौन का युद्ध[19] हसैनी युद्ध[20] चण्डिका देवी को प्रसन्न करने हेतु गुरु जी द्वारा यज्ञ का आयोजन किया जाना यह यज्ञ लम्बे समय तक चला,[21] पांच प्यारों का चयन करने के लिए परीक्षा लेना,[22] पांच प्यारों की नियुक्ति कर उन्हें अमृत पान करवाना,[23] इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के बाद गुरु जी ने उन सब के और अपने नाम के साथ सिंह शब्द लगाया तथा सिंह बन गए।[24]

अपने प्यारों को पांच ककार केश, कडा, कंघा, कच्छा तथा कृपाण धारण करने का तथा तम्बाकू न पीने अर्थात् नशीले पदार्थों का सेवन न करने का उपदेश दिया।[25] इसके इलावा गुरु जी ने शिष्यों को यह उपदेश दिया कि वे एकमात्र अकाल पुरुष की पूजा करें, वह सदा (वाहिगुरु) पवित्र मंत्र का जाप करें, पराई स्त्री को भूल कर भी न देखें तथा तलवार आदि शस्त्रों को सदैव धारण करें।[26]

तत्पश्चात् पर्वतीय राजाओं द्वारा आनन्दपुर के कीले को तोड़ने का प्रयास करना[27] परन्तु पर्वतीय राजा ने गुरु जी को गौ की सौगन्ध देकर आनन्दपुर छोड़ने को कहा तो उन्होंने ने स्वयं ही उस स्थान को छोड़ने का विचार कर लिया।[28] गुरु जी ने अपनी पत्नियों को मनी सिंह के साथ दिल्ली भेज दिया। इसी समय पर गुरु जी अपने दो छोटे पुत्रों तथा माता जी से बिछड़ गए[29] तथा अजीत सिंह जुझार सिंह दो बड़े पुत्रों के साथ गुरु जी चमकौर आ गए। यहां पर पहाड़ी राजाओं तथा तर्कों ने गुरु जी पर पीछे से आक्रमण कर दिया।[30]

कच्चीगढ़ के युद्ध में गुरु जी के दोनों बड़े पुत्र साहसपूर्वक लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गए[31] तथा दोनों छोटे पुत्रों के द्वारा इस्लाम धर्म अपनाने से इन्कार करने पर सरहिंद के सूबे ने उन्हें दीवार में चिनवा दिया, उनके वियोग में गुरु जी की माता जी ने भी प्राणा त्याग दिए।[33] यह खबर मिलने पर गुरु जी ने किसी

प्रकार से कोई शोक नहीं किया। अपितु प्रसन्नता दर्शायी कि उन्होंने अपने धर्म के आगे प्राणों की चिन्ता नहीं की।[34]

इसके पश्चात् तलवण्डी में रहते हुए गुरु जी ने ''ग्रन्थ साहिब'' की पुन: रचना की।[34] औरंगजेब के पुत्र की युद्ध में सहायता करना,[35] अपने पिता की याद में स्मारक[36], नादेड में रहते हुए धर्म प्रचार करना लोगों को सच्चा उपदेश देना[36] तथा अन्त में गुरु जी के महाप्रयाण की घटना का वर्णन मिलता है कि किस प्रकार एक पठान द्वारा गुरु जी पर आक्रमण किया गया तथा चिकित्सा की जाने पर भी गुरु जी के स्वास्थय में सुधार नहीं आया था।[39] जिसके फलस्वरुप उन्होंने अपना अन्तिम समय जान कर अपने सिक्खों को यह उपदेश दिया की अब से वह ''ग्रन्थ साहिब'' को ही अपना अग्रिम गुरु मानें। ऐसा कह कर वे पुण्यात्मा ज्योति जोत समा गए।[40]

श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरित– 1966 ई. में डॉ. सत्यव्रतशास्त्री जी ने ''श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरित'' काव्य की रचना की। इस काव्य में कुल चार सर्ग हैं।

प्रथम सर्ग–

काव्य में सर्वप्रथम गुरु गोविन्द सिंह जी के जन्म का उल्लेख[41], उनकी बाल लीलाओं का सुन्दर वर्णन, वे बचपन से ही अपनी मित्रमण्डली को दो भागों में बांट करके कृत्रिम युद्ध किया करते थे।[42] पटना में वे छ: वर्ष तक रहे। तत्पश्चात् अपने पिता के निर्देशानुसार आनन्दपुर में आकर रहने लगे।[43] अपने पिता जी को धर्म की रक्षा हेतु बलिदान देने के लिए प्रेरित करना[44] दिल्ली के चांदनी चौंक में गुरु तेग बहादुर जी का बलिदान वर्णन[45], तथा भाई जैता नवम गुरु का सिर लेकर आनन्दपुर पहुंचे तो गुरु गोविन्द सिंह जी ने उनका अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न किया।[46]

तत्पश्चात् प्रमुख सिक्खों ने मिलकर नवम गुरु द्वारा प्रेषित पांच नारियल प्रदान करके गोविन्द सिंह जी को गुरु गद्दी पर विराजमान किया।[47] श्रद्धालु गुरु जी को हाथी घोड़े तथा शस्त्र आदि भेंट किया करते थे।[48] गुरु जी ने आनन्दपुर नगर में एक ''रणजीत नगाड़ा'' स्थापित किया, जिसकी प्रचण्ड ध्वनि सुनकर शत्रु भयभीत हो जाते थे।[49]

द्वितीय सर्ग–

नाहन नरेश के आह्वान पर गुरु जी नाहन गए।[50] तत्पश्चात् गुरु जी का विवाह वर्णन 19 वर्ष की आयु में प्रथम विवाह सुन्दरी से[51] बीस वर्ष की आयु में द्वितीय विवाह जीतो से हुआ[52] तथा तृतीय विवाह साहिबदेवी के साथ हुआ।[53] गुरुजी ने साहिबदेवी को खालसा पन्थ प्रदान का लिया अर्थात् उन्हें ''खालसा की माता'' की उपाधि दी।[54]

नाहन प्रदेश में दुर्ग का निर्माण किया, जिसका नाम ''पौंटा'' रखा।[55] पौंटा में निवास करते हुए शास्त्रों का परिशीलन, पौराणिक आख्यानों का श्रवण[56] करना इनके अतिरिक्त गुरुजी ने संस्कृत, फारसी, ब्रज, पंजाबी आदि भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त की[57], रामराय की मृत्य पर गुरु गोविन्द सिंह जी उसकी पत्नी से सहानुभूति व्यक्त करने के लिए देहरादून गए[58] गुरु जी का पौंटा से पुन: आनन्दपुर लौटना,[59] बिलासपुर में राजा भीमसिंह की सहायता करना,[60] नादौन का युद्ध[61] पहाड़ी राजाओं को वश में करने के लिए औरंगजेब ने अपने पुत्र मुअज्जम को पंजाब भेजा[62] मुअज्जम ने लाहौर में रह कर सेनापति बेग को आदेश दिया की वह शीघ्र ही आनन्दपुर पर आक्रमणकर के गुरु जी को वश में करें, परन्तु गुरु जी महात्मय जान कर मुअज्जम ने आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया।[63] आनन्दपुर पर आक्रमण का भय समाप्त हो जाने पर गुरु जी ने वहां शान्तिपूर्वक निवास किया।[64]

तृतीय सर्ग–

तृतीय सर्ग में गुरु जी के द्वारा विचित्रनाटक ग्रन्थ का रचना[65] पण्डित मण्डली से संस्कृत ग्रन्थों का भाषानुवाद करवाना[66] गुरुजी ने वैशाख महीने के पहले दिन खालसा पन्थ का सृजन किया जो पांच सिक्ख गुरु जी के हाथों अपना सिर कटवाने के लिए आगे आए उन्हें गुरु जी ने पाँच प्यारे की उपाधि से सम्मानित किया।[67] पांच प्यारों की अमृत पान कराने का सुन्दर वर्णन किया गया है।[68] खालसा पंथ धर्मभेद, जातिभेद देशभेद, तथा वर्णभेद आदि से मुक्त था।[69] गुरु जी की कीर्ति पताका को पर्वतीय राजा सहन नहीं कर सके जिस कारण उन्होंने आनन्दपुर पर आक्रमण किया परन्तु गुरु जी को परास्त न कर सकने के कारण उन्होंने दिल्ली के सम्राट औरंगजेब की सहायता ली।[70]

चतुर्थ सर्ग –

गुरु जी द्वारा आनन्दपुर छोड़ते समय सरसा नदी के तट पर शत्रु सेना का आक्रमण[71] गुरु जी का शिष्यों सहित चमकौर ग्राम पहुंचना वहां पर एक मिट्टी के घर में ठहरना[72] चमकौर युद्ध में गुरु जी के पुत्रों का युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त होना[73] जीवित बचे पांच शिष्यों ने गुरु जी से प्रार्थना की कि वे चमकौर से किसी प्रकार निकल जाए तो उस समय तीन सिक्ख गुरुजी के साथ गए[74], तथा शेष दो सिक्ख चमकौर में रहे वे युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।[75] सरहिन्द के अधिकारी को गुरु जी की माता तथा दो पुत्रों के विषय में जानकारी मिलने पर उन्हें बन्दी बनाया गया, गुरु जी के पुत्रों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार न करने

पर उन्हें खड्ग के प्रहार से शहीद कर दिया गया।[76] ''ग्रन्थ साहिब'' का पुनः सम्पादन[77] गुरु जी का नादेड़ ग्राम पहुंचना[78] वहां पर वे माधवदास के घर पर रुके तथा माधवदास गुरु जी के महासत्व बल से प्रभावित होकर उनका दास बन गया[79],एक पठान द्वारा गुरु जी पर तीक्ष्ण कटार से प्रहार किया गया जो उनकी मृत्यु का कारण बना। अपने अन्तिम समय को समीप जान कर गुरु जी ने सिक्खों को आदेश दिया की वे अब से ''ग्रन्थ साहिब'' को ही गुरु माने[80] तत्पश्चात् ''वाहिगुरु जी का खालसा वाहिगुरु जी की फतेह'' (जयघोष) का उच्चारण कर गुरु जी चिर निद्रा में सो गए।[81]

सिंहानाद –

''सिंहनाद'' एक खण्डकाव्य है। इस काव्य में नवम गुरु ''श्रीगुरुतेग बहादुर जी'' तथा दशम गुरु ''श्रीगुरुगोबिन्द सिंह जी'' के जीवन परिचय तथा उनके महत्वपूर्ण घटनाएं वर्णित की गई है। इस महाकाव्य के प्रणेता ''महाकवि डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज'' है तथा ''डॉ. महेशचन्द्र शर्मा गौतम'' इस काव्य के व्याख्याकार अर्थात् संस्कृत पद्यों के हिन्दी व्याख्याकार तथा पंजाबी अनुवादक है। यह काव्य दो भागों में विभाजित है पूर्वार्द्धम् तथा उत्तरार्द्धम्। पूवार्द्ध भाग में ''गुरु तेगबहादुर जी का'' जीवन परिचय वर्णित है तथा उत्तरार्द्ध ''गुरु गोबिन्द सिंह से सम्बन्धित है।

उत्तरार्द्धम्– गुरु गोबिन्द सिंह जी का छोटी आयु में गुरु पद पर विराजमान होना[82] शास्त्र अध्ययन करके ज्ञान में वृद्धि करना[83], गुरु गोबिन्द सिंह जी–पंजाबी, व्रज, संस्कृत तथा फारसी आदि विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता थे।[83]

गुरु जी ने अपना परिचय देने के लिए गुरुमुखी लिपि तथा ब्रज भाषा में विचित्रनाटक की रचना की[84] गुरु गोबिन्द सिंह जी के द्वारा औरंगजेब को ''जफरनामा'' नामक पत्र लिखना[85] गुरु जी घुड़सवारी, तलवार चलाना, निशाना लगाना, भाला फेंकना, चक्र, पैने, तीरों सहित धनुष का प्रयोग करने में तथा युद्ध विद्या आदि सभी कलाओं में निपुण थे।[86]

इनके अतिरिक्त गुरु जी का विवाह संस्कार[87], पुत्रप्राप्ति ''पाओंटा साहिब'' नामक गुरुद्वारे का निर्माण करवाना,[88] गुरु जी किस प्रकार की वेशभूषा धारण करते थे इसका उल्लेख भी मिलता है।[89]

भंगाणी तथा नादौण[90] के युद्ध का उल्लेख, पांच प्यारों की नियुक्ति[100] तथा उन्हें अमृतपान (छकाना) कराना[101] खालसा पन्थ की स्थापना करना,[102] गुरु जी के द्वारा पांच प्यारों से स्वयं को अमृत पान करवा कर खालसा पन्थ में शामिल करने के लिए प्रार्थना करना,[103] गुरु जी के द्वारा अपने नाम के आगे ''सिंह'' शब्द लगाना, खालसा पंथ में शामिल हुए लोगों को पांच ककार अर्थात् दैनिक पहरावे में केश, कंघा, कडा, कच्छा तथा कृपाण सदैव धारण करने का आदेश देना[104] तम्बाकू शराब के सेवन तथा परदारा से सम्बन्ध रखने का निषेध गुरु जी के द्वारा किया गया[105], मूर्त्ति पूजा, समाधि या मकबरों की पूजा का निषेध तथा अनादि अनन्त अकाल पुरुष की उपासना करने का उपदेश दिया गया है,[106] औरंगजेब की सेनाओं द्वारा आनन्दपुर को घेरना,[107] युद्ध वर्णन[108] गुरु जी का 70 सिक्खों तथा परिवार सहित चमकौर के कीले में पहुंचना[109], गुरु जी के पुत्रों का शहीद होना[110], तथा माता जी का पंच तत्वों मे विलीन होना।[111]

युद्ध विजय[111] मुक्तसर नामक तीर्थ की स्थापना[112], गुरु जी का ''दमदमा साहिब'' नामक तीर्थस्थल पर आना[113] गुरु गोबिन्द सिह जी ने ''श्री गुरु ग्रन्थ साहिब'' को संहिता के रूप में पुनः सम्पूर्ण किया[114]

औरंगजेब की मृत्यु[115], गुरु जी ने ''श्री गुरु ग्रन्थ साहिब'' को अग्रिम गुरु के रूप में गुरु पद पर प्रतिष्ठित कर स्वयं इस संसार को छोड़ने का निश्चय किया[116], एक मुसलमान द्वारा गुरु जी के वक्ष पर बरछी से प्रहार किया गया[117] धनुष पर डोरी चढ़ाते समय, घाव पुनः ताजा हो जाने के कारण गुरु जी परमजोत में विलीन हो जाने[118] आदि घटनाओं का वर्णन ''सिंहनाद'' काव्य के उत्तरार्द्ध भाग में किया गया हैं।

सन्दर्भ–

1. पादारविन्दे तव कृष्ण! नत्वा,
   गोविन्दसिंहस्य गुरोः पवित्रम्।
   सर्वार्चनीयं चरितं लिखामि।
   देहि प्रभो मे सुमतिं तदर्थम्।। दशगुरु./10.1
2. रम्यापणाः कांचनपूर्णगेहा, नोद्यानशोभा कविर्णनीया।
   भातीहकौ पूः पटनाभि धाना, तत्रावतारं दशमेश आप।। दशगुरु10.2
3. दशगुरु./10.3
4. दशगुरु./10.6
5. दशगुरु./10.7
6. दशगुरु./10.10
7. दशगुरु./10.11
8. दशगुरु./10.12
9. दशगुरु./10.14
10. दशगुरु./10.16
11. दशगुरु./10.17
12. क) गोविन्दरायस्य कृतो विवाह, स्तेन स्वपत्न्या सममादरेण।
    जातो गृहस्थी गुरु रेष जीतो, भार्या बभूवास्य निशाकरास्या।। दशगुरु/

10.18
ख) जातो विवाह: स गुरो र्द्वितीय: पत्नी मनोज्ञा कुरुतेस्म मुग्धम्।
तं तापस गर्भवती ततोऽभूत, पुत्रोविजातोऽजितसिंहनामा।।
दशगुरु./10.24
13. क) गोविन्दराय, स जुझार सिंह चक्रे गुरु: पूर्वजपुत्रनाम।
जातो सुतं सा सुषुवे द्वितीयं जोरावरेत्यस्य च नामधेयम्।।
दशगुरु./10.73
ख) जीतो सती सा सुषुवे तृतीयं पुत्रं वलिष्ठ विधुमंजुलास्यम्।।
लब्धो जयस्तेन हुसैनियुद्धे, चक्रे गुरु स्तत्फ्तहाभिधानम्।।
दशगुरु/10.82
14. दशगुरु./10.29
15. दशगुरु./10.32
16. दशगुरु./10.39
17. दशगुरु./10.43
18. दशगुरु./10.48
19. दशगुरु./10.74
20. दशगुरु./10.82
21. दशगुरु./10.86
दशगुरु./10.88
22. दशगुरु./10.95
23. दशगुरु./10.98
24. दशगुरु./10.99
25. दशगुरु./10.100
26. दशगुरु./10.101
27. दशगुरु./10.111
28. क) अद्रीय भूपा:कपटं प्रचकु, र्धेनो र्ददु स्ते शपथं च तस्मै।
मुञ्च त्वमानन्दपुर तपस्विन, भूयोनिवर्तस्व यदीहसेत्वम्।।
दशगुरु 10.112
ख) औरंगजेबो लिखित स्म पत्रं, मुंच त्व मानन्दपुरं तपस्विन।
भूयो निवर्तस्व भवेद् यदीच्छा, चक्रे विचारं स गुरु विहातुम।।
दशगुरु.10.113
29. दशगुरु./10.114
30. दशगुरु./10.115
31. दशगुरु./10.119
32. दशगुरु./10.130
33. एतन् निशम्याह गुरु: स्वधर्मे, धन्यौ युवा में तनयौ सहर्षम्।
प्राणान स्वकीयान् जहिथ: स्म वीरौ, शोचामि नाहं तनुमात्र मत्र।।
दशगुरु.10.122
34. दशगुरु./10.133
35. दशगुरु./10.140
36. दशगुरु./10.147
37. दशगुरु./10.149
38. दशगुरु./10.151
39. शिष्या भजन्ते स्म हृदा गुंरु तं, लाभो न जात स्तनुमात्र मेतम्।
कुर्याम कि शुष्यति न व्रण ते, चिन्ताकुला वीक्ष्य वदन्ति सर्वे।।
दशगुरु 10.153
40. दशगुरु./10.151
दशगुरु./10.158
41. सम्प्रस्थिते तेगबहादुरे च दिनेष्वमल्पेषु गतेषु चापि।
प्रासोष्ट पुत्रं शशिकान्तवक्त्रं धर्म्यासु धुर्या गुरुधर्मपत्नी।। श्रीगो.च1.13
42. स बाललीला विविधा: प्रकुर्वन्नावर्जयसन्नात्मजनस्य चेत:।
पक्षे विपक्षे ब्यभजत्स मित्रा-व्याथकरोत् कौतुकयुद्धमेभि:।।
श्रीगो.च/1.20
43. श्रीगो.च./1.38
44. श्रीगो.च./1.47
45. श्रीगो.च./1.62
46. श्रीगो.च./1.74
47. श्रीगो.च./1.78
48. श्रीगो.च./1.80
49. गुरुस्तथाऽऽनन्दपुरे पुरे स्वे प्रातिष्ठिपच्छत्रुभयाय भेरीम्।
मेघौघकल्पां रणजित्समाख्यां भीमां प्रचण्डध्वनिपूरिताशाम्।।
श्री.गो.च1.83
50. एवं सुखं यापयति स्वकालं गोविन्द सिंहे प्रवरे नराणामय।
नाहनन्नरेश:प्रणयात्स्वदेश-मागन्तुमेनं रमणीयमाह।। श्री.गो.च./2.1
51. श्रीगो.च./2.3
श्रीगो.च./2.4
52. श्रीगो.च./2.5
53. श्रीगो.च./2.7
54. श्रीगो.च./2.10
55. श्रीगो.च./2.17
56. श्रीगो.च./2.19
57. अत्र स्थितोऽध्यैष्ट गुरु: प्रवीणो नैका गिर: पण्डितसाहचर्यात्।
पारस्यभाषां सुरभारतीं च पाञ्चालभाषां व्रजभारती च।।
श्रीगो.च.2.20
58. तत्सङ्गमस्यानतिभूयसाऽथ कालेन योगी सुरलोकमापा।
दूनो गुरुश्चापि गत: स दूनं तद्दारशोकं खलु संविभक्तुम्।।
श्रीगो.च./2.31
59. श्रीगो.च./2.23
60. श्रीगो.च./2.36
61. श्रीगो.च./2.44
62. श्रीगो.च./2.73
63. श्रीगो.च./2.83
64. श्रीगो.च./2.85
65. श्रीगो.च./3.2
66. श्रीगो.च./3.3
67. श्रीगो.च./3.28

68. वही./3.32
69. वही/3.46
70. वही./3.48-50
71. एवं स्थितेऽपि प्रतिकूलदैवा-च्छीते ऋतो शीततरे च वायौ।
 सम्प्राप्तवन्तः खलु शिष्यवीरा स्तीरं तटिन्याः सरसाह्वयायाः।।
 श्रीगो.च./4.8
72. वही/4.13
73. वही/4.21,29
74. वही/4.35
75. वही/4.41
76. वही/4.74
77. तत्र स्थितोऽसौ मणिदाससासाहयात् पर्यष्करोद् ग्रन्थवरं पुराणम्।
 परिष्कृते ग्रन्थवरे च शिष्या भंश ननन्दुर्जहसुर्जगुश्च।। श्रीगो.च/4.85
78. वही/4.78
79. वही/ 4.103
80. वही/4.125
81. सदा जयी स्याद् भुवि खालसाख्याः पन्था जयी स्यां्च गुरुः सदैव।
 इत्येवमुच्चैर्वचन ब्रूवाणो ब्रह्ममात्मसायुज्यमसाववाप।।
 श्रीगो.च./4.129
82. अरुढोऽसौ पदं तन्नववयसि हितं स्कन्धयोर्दुर्वहं तं
 भारं तस्मिश्चिकीर्षन् न च कथमपि तं पृष्ठतो जन्महेतुम्।
 मार्गं पित्रा प्रदिष्टं शिवमपि कठिनं भावयंश्च प्रपेदे
 सोद्देश्यं येडत्र जाताः सम-विषय पथे निर्भय पञ्चरन्ति।। सिं.उ./1
83. सिं.उ./2
84. सिं.उ./3
85. सिं.उ./15
86. सिं.उ./4
87. सिं.उ./5
88. सिं.उ./107
89. सिं.उ./उ.6
90. तासामेकां सुशीलां समगुणसुवयोरुपवंशादिकाम्यां
 कन्यां जित्तोऽभिधानामुभयहितधिया जातिवृद्धा अचिन्वन्।
 योगे भोगप्रतिष्ठां गुरुजनविहितां धर्ममूला करिष्यन्
 वाचं मातुश्च सत्यां गुणवति दिवसे तामुपायंस्त धीरः।। सिं.उ./11
91. सिं.उ./12
92. सिं.उ./13
93. सिं.उ./18
94. सिं.उ./21
95. निग्राह्यस्त्वेष तस्मात् सपदि बलवता निर्भयाश्चाशु कार्या
 दीना एताः प्रजाश्च प्रतिभटरहितां्चास्तु युष्मत्प्रभुत्वम्।
 आसंस्ते दत्तहस्ता लघु यवनबलैर्भागिनौ नद्धसैन्याः
 पश्चान्नादौनभूमावपि नहि समरे प्राभवंस्ते विजेतुम्।। सिं.उ./26
96. सिं.उ./43
97. सिं.उ./47
98. सिं.उ./48
99. सिं.उ./66
100. सिं.उ./51
101. सिं.उ./53
102. सिं.उ./57
103. सिं.उ./60
104. सिं.उ./62
105. सिं.उ./74
106. सिं.उ./83
107. शिष्यास्तस्यां दशायामपि धृतधृतयों वञ्चिता वैरिभिस्तै
 र्हीनाः संख्याबलेन प्रलयमुपययुर्युध्यमानाःस्वशक्त्या।
 शिष्टैःखाम्भोधिमात्रैःपरिजनसहितः स्वञ्चित्
 प्राप्तश्चम्कौरदुर्गं बत मुषितधनो लुप्तसाहित्यसम्पत्।। सिं.उ./96
108. सिं.उ./98
109. सिं.उ./100
110. सिं.उ./103
111. सिं.उ./117
112. सिं.उ./118
113. सिं.उ./120
114. सिं.उ./122
115. सिं.उ./125
116. सिं.उ./132
117. सिं.उ./137
118. क) रोपाकांक्षी व्रणोऽभूतकतिपयदिवसैर्यावदन्यस्तु हेत-
 र्दैवेनाकांक्षितः किं प्रतिफलनपरस्तावदासीत पुरस्तात्।
 स ज्यां कोदण्डकोटिं किल कठिनतरा कर्तुकामस्य तस्य
 प्रत्यग्रः सन् प्रयाणाभिमुखमापि गुरु सं व्यधात् सद्य एव।।
 सिं.उ./139
 ख) इत्थं तस्वा सुतेजास्तरुणतपनवत् तापयित्वापि नित्यं
 सर्वं प्रत्यर्थिवर्गं नयपथ विमुखानानयन् सत्पथनञ्च।
 प्प्राप्ते कालेऽथ वर्षे वसुखदिनमहीसंमिते खैस्तकालात्
 मासे दिक्संस्थिते गोनयनसुदिवसे ज्योतिषा योगमाप।। सिं.उ./140

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान

डॉ. अनीता सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
के०एम०जी०जी० (पी०जी०) कॉलेज
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उ०प्र०)

लता शर्मा
शोध छात्रा (इतिहास विभाग)
के०एम०जी०जी० (पी०जी०) कॉलेज
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उ०प्र०)

शोध सारांश

महर्षि दयानन्द केवल एक सामाजिक तथा धार्मिक सुधारक ही नहीं थे। वे भारत के राष्ट्रीय एवं राजनीतिक जागरण के अग्रदूत भी थे। इसी क्रम में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की और यह घोषणा की कि विदेशी सरकार स्व-शासन का स्थान नहीं ले सकती। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को विकसित करने वाली संस्थाओं जैसे कांग्रेस व अन्य क्रांतिकारी संगठनों में आर्य समाज की भागीदारी प्रत्यक्ष रूप से होती रही थी। स्वदेशी व स्वराज्य सम्बन्धी विचारधाराओं तथा आंदोलनों में आर्य समाज के योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती है। इसी कारण आर्य समाज का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में दिया गया योगदान शोध छात्रा ने अध्ययन का विषय माना है और आर्य समाजियों द्वारा किये गये प्रयासों का प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णन किया गया है।

कुंजी शब्द

स्वतंत्रता संग्राम, कॉग्रेस, आर्य समाज, लाला लाजपत राय, भगत सिंह व स्वामी श्रद्धानन्द।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का चिन्तन केवल धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था बल्कि विश्व शांति सामाजिक न्याय, आर्थिक उन्नति और इससे भी ज्यादा राष्ट्रवादी था। उनके हृदय में राष्ट्रीय चेतना विकसित करने वाली भावना इतनी दृढ़ थी कि वेदों का भाष्य करते हुए भी अनेक मंत्रों में राष्ट्रीय स्वाधीनता की कामना की है ''आर्यभिविनय'' में यजुर्वेद के एक मंत्र ''*अदीना: स्याम शरद शतम्*'' की प्रार्थना में स्वामीजी ने लिखा है ''हम सौ वर्ष की आयु में कभी भी पराधीन न हों। यजुर्वेद भाष्य में उन्होंने कहा है कि -''मनुष्यों को चाहिए की अपने पुरूषार्थ से पराधीनता का नाश कर स्वाधीनता का वरण करें। इसे ही विचार महर्षिजी द्वारा रचित अन्य ग्रंथों में प्रदर्शित होते है।''[1]

अपने विचारों में देश के प्रति प्रेम के कारण ही महर्षि जी ने ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज की आलोचना की है। उनके मतानुसार ''इन लोगों में देश के प्रति लगाव न्यून स्तर का है, इन्होंने ईसाईयत को अपनाया है, खान-पान विवाहादि के नियम बदल लिये है। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों का आदर करना तो दूर रहा अपितु उनकी निन्दा करते हैं। समाज में इनके बढ़ते प्रभाव की वजह से महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज की स्थापना का विचार किया।

आर्य समाज की स्थापना

''महर्षि दयानन्द जी ने चैत्र शुक्ला पंचमी संवत् 1932 वि० शनिवार तद्नुसार 20 अप्रैल 1875 (सम्बद्ध 1616) को गिरगांव मुहल्ले में प्रार्थना समाज के निकट एक वाटिका में सांयकाल में एक सभा आयोजित का आर्य समाज की विधिवत स्थापना की गयी।''[2] महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना करते हुए कहा था कि ''समाज को जागृत करने के लिए एक संस्थान की जरूरत है जिससे भारतवर्ष गुलामी की जंजीरें तोड़कर स्वाधीनता प्राप्त कर सकें।''[3]

आर्य समाज ने राष्ट्रीय आंदोलनों को तीन प्रकार के कार्यकर्ता प्रदान किये। प्रथम - लाला लाजपतराय तथा स्वामी श्रद्धानन्द जैसे महान नेता, जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होकर स्वाधीनता प्राप्ति हेतु संचालित राष्ट्रीय आंदोलन मे सक्रिय भाग लिया। द्वितीय - इस प्रकार के कार्यकर्ता श्यामजी कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द तथा मदनलाल धीगंरा आदि थे जो सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास रखते थे तथा तृतीय श्रेणी में हंसराज म० नारायण स्वामी जैसे शिक्षाविद् एवं धर्म प्रचारक थे जिन्होंने शैक्षिणिक धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के कार्यों में जीवन समर्पित कर दिया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व आर्य समाज

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में ए०ओ०हयूम के द्वारा हुई थी। कांग्रेस की स्थापना के समय कांग्रेस में उदारवादियों की बाहुल्यता थी, जिस कारण कांग्रेस की नीतियां व कार्यक्रम भी उदारवादिता पर ही आधारित थी तथा आर्य समाज के नेता कांग्रेस को ''स्वराजवादी नही सुधारवादी संस्था'' मानती थी। कांग्रेस की स्थापना के कई वर्षो बाद आर्य समाज के सदस्यों की सक्रियता बढ़ी, जिसमें प्रमुख नेता के रूप में लाला लाजपतराय व श्रद्धानन्द जी थे।

लाला लाजपतराय

लाला जी शुरूआती वर्षों में कांग्रेस के रवैये से नाखुश थे। उनके कई प्रस्तावों को कांग्रेस समिति ने मानने से इंकार कर दिया था। इस कारण उन्होंने कांग्रेस के प्रति अपनी प्रतिक्रिया लेखों में व्यक्त की थी। सन् 1905 में बिट्रिश राजनीति व संसदीय प्रतिनिधियों के समक्ष भारतीय पक्ष प्रस्तुत करने हेतु गोपाल कृष्ण गोखले के साथ इंग्लैण्ड गये। भारत वापस आने पर सन् 1905 के बनारस कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''अंग्रेज सबसे अधिक घृणा भिखारी से करता है। मेरा विचार है कि भिखारी है भी इस योग्य कि उससे घृणा की जाए, इसलिए हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है कि हम अंग्रेजों को दिखा दें कि हम भिखारी नहीं है।'' [4]

लाला लाजपतराय ने सन् 1907 में सूरत के कांग्रेस अधिवेशन में भी भाग लिया। इस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक ने अध्यक्ष पद हेतु लाला जी का नाम प्रस्तावित किया परन्तु कांग्रेस से मतभेद होने के कारण नाम वापस ले लिया गया। सन् 1908 में तिलक जी के कारावास के बाद उन्हें भी देश निर्वासित किया गया। सन् 1908 में ही माण्डले से लौटने पर आर्य समाज से पृथक रहें तथा अकाल सहायता, छुआछुत उन्मूलन और हिन्दू मुस्लिम संघर्षों के निराकरण आदि कार्यों में संलग्न रहे। परन्तु फिर भी वह ब्रिटिश शासन में संदेहास्पद रहे तथा सरकारी खुफिया दल उनके पीछे घूमने लगा, इसमें क्षुब्ध होकर वह सन् 1914 में नाराज होकर इंग्लैण्ड चले गए। ब्रिटिश सरकार ने संदेह के कारण सन् 1920 तक उनके भारत आगमन पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा प्रथम विश्व युद्ध के समर्थन का उन्होंने विरोध किया।'' [5] 1927 में जब कांग्रेस ने साइमन कमीशन के विरोध का प्रस्ताव पारित किया तब लाला लाजपत राय जी ने कांग्रेस का समर्थन करते हुए विरोध प्रदर्शनों में हिस्सा लिया। अंग्रेजों द्वारा कराये गये लाठीयों के हमले से अक्टूबर 1928 में लाला जी बुरी तरह घायल हो गये। लालाजी ने मरने से पहले बोला था कि ''आज मेरे ऊपर बरसी हर एक लाठी की चोट अंग्रेजों की ताबूत की कील बनेगी।'' अंततः 17 नवम्बर 1928 को लालाजी की मृत्यु हो गयी।

स्वामी श्रद्धानन्द

आर्य समाज के द्वितीय नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी थे जिन्होंने 1888 ई० में कांग्रेस में प्रवेश किया तथा जालन्धर कांग्रेस की क्षेत्रीय ईकाइ के सचिव नियुक्त हुए। स्वामीजी ने सन् 1893 में कई स्थानों पर कांग्रेस के उद्देश्यों के सम्बन्ध में व्याख्यान देने हेतु बख्सी जयसी राम की सहायता की। इस अधिवेशन हेतु वह प्रतिनिधि निर्वाचित हुए परन्तु जनता के चरित्र निर्माण हेतु कुछ न करने के कारण वह कांग्रेस से निराश हुए। इसलिए अधिवेशन के बाद 6 वर्षों तक उन्होंने कांग्रेस आंदोलन में भाग नहीं लिया तथा अपनी शक्ति को एक ईश्वर उपदेश व गुरूकुल की स्थापना में केन्द्रित किया।

सन् 1927 के सूरत अधिवेशन में उन्होंने उदारवादियों तथा उग्रवादियों के मध्य सम्बन्ध मधुर बनाने का प्रयास किया।'' [6] उन्होंने 1905 के स्वदेशी आंदोलन 1919 के रौलेट एक्ट का विरोध व कुछ हर खिलाफत आंदोलन में भाग लिया। इसी क्रम में अछूतों को सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया। सन् 1916 तक वह कांग्रेस आंदोलन से अलग रहे तथा शैक्षणिक कार्यों में व्यस्त रहे। सन् 1916 के लखनऊ अधिवेशन में उन्होंने भाग लिया तथा प्रतिनिधियों के सामने कहा कि हिन्दु मुस्लिम एकता के बिना मुक्ति असम्भव है। सन् 1926 के वर्ष के अंत में बिस्तर पर लेटे स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या एक धर्मान्ध ने कर दी।

स्वराज दल व हिन्दु महासभा

आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता लाला लाजपतराय ने असहयोग आंदोलन की अनिच्छा होते हुए भी पंजाब के लोगों के समर्थन के कारण महात्मा गांधी के इस कार्यक्रम में भाग लेना पड़ा। ''इस आंदोलन के दौरान उन्होंने जेल यात्रा भी की तथा जेल से छूटने के बाद उन्होंने पण्डित मोतीलाल नेहरू के साथ मिलकर स्वराज दल का गठन किया।'' [7]

आर्य समाज के ही प्रसिद्ध नेता भाई परमानन्द ही हिन्दू महासभा के अध्यक्ष रहे। इनके ही विचारों से हिन्दु महासभा को सार्थक मार्ग की प्राप्ति हुई। परमानन्द जी का कहना था कि ''भारत एक हिन्दु राष्ट्र है तथा हिन्दु राष्ट्रवाद ही भारतीय राष्ट्रवाद है।'' [8] ये हिन्दु संगठन के पक्षधर थे तथा इन्होंने असहयोग

आंदोलन को खिलाफत आंदोलन की समस्या से जुड़ने का विरोध किया था। भाई परमानन्द ने भी स्वामी श्रद्धानन्द की तरह हिन्दुओं के लिए शुद्धि आंदोलन चलाया।

क्रांतिकारी आंदोलन

स्वामी दयानन्द जी की विचारधारा से प्रभावित होकर आर्य समाज ने देश मे स्वतन्त्रता की अद्भूत क्रान्ति ला दी। शहीद भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, मदनलाल ढ़ीगरा व ऊधम सिंह आदि अनेक क्रान्तिकारी आर्य समाज रूपी क्रान्तिकारी भूमि की ही ऊपज थे। स्वामी जी के शिष्य पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा ने विदेशों में रह कर भारत की स्वतन्त्रता के लिए अनेक क्रान्तिकारीयों को तैयार किया। ''क्रान्तिकारियों के गुरू पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा जी ही थे जिन्होंने इंग्लैण्ड में ''इण्डिया हाऊस'' की स्थापना की थी।''[9]

वीर सावरकर जी व अन्य प्रमुख क्रान्तिकारी इंडिया हाऊस में रहते थे। आर्य समाज प्रचारक फिजी, मॉरीशस गयाना, टिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका में भी हिन्दुओं को संगठित कर रहे थे। ''आर्य समाज के भाई परमानन्द महान क्रान्तिकारी थे, ये 'हिन्दु महासभा' के अध्यक्ष भी रहे थे।''[10] रास बिहारी बोस ''इंडियन नेशनल आमाी'' जो बाद में ''आजाद हिन्द फौज'' से जुड़े रहे वे भी आर्य समाजी थे। पंडित राम प्रसाद बिस्मिल उत्कृष्ट साहित्यकार कवि एवं महान क्रान्तिकारी थे। इन्होंने ''हिन्दुस्तान रिपब्लिक आर्मी'' की स्थापना की थी। बिस्मिल जी के प्रभाव से उनका पूरा समूह ही आर्य समाजी विचारधारा में आस्था रखता था।

इसी क्रम में भगत सिंह के दादाजी अजीत सिंह का नाम भी आता है। भगत सिंह ने कहा था कि जनेऊ के समय ही मुझे देश को समर्पित कर दिया था। भगत सिंह जलियावाला काण्ड से भावनात्मक रूप से व्यथित हो चुके थे तब उन्होंने ''नौजवान भारत सभा'' बनाई और चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव व राजगुरू से मिलकर लाला लाजपतराय की हत्या का बदला सैंडर्स को गोली मार कर लिया।

ठाकुर रोशन लाल सिंह एवं राजेन्द्र लाहिडी दोनों को आर्य समाज से ही बलिदान होने की प्रेरणा मिली व काकोरी काण्ड में शहादत मिली। लाला लाजपतराय हिन्दु महासभा के अध्यक्ष थे व क्रान्तिकारियों के प्रेरणास्त्रोत भी थे। इन्हीं के विचारों से प्रभावित हो आर्य समाजी श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ की स्थापना की। इस प्रकार आर्य समाजी वीरों की लम्बी सूची है, जिन्होंने देश के लिए प्राणों की आहुति दी थी।

आर्यसमाजी शिक्षणसंस्थाओं का राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान

महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज ने शिक्षा को जीवन की उन्नति का प्रथम मार्ग माना है। शिक्षा के बिना मनुष्य जीवन का विकास असम्भव है और देश व समाज की प्रगति भी शिक्षा पर निर्भर करती है। आर्य समाज ने महर्षि जी द्वारा वर्णित वैदिक शास्त्रों को अपनी शिक्षण संस्थाओं में सम्मिलित किया और समाज में भाषीय एकता को ध्यान में रखते हुए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया क्योंकि स्वामी जी के कथानुसार ''राष्ट्र की एक भाषा होना जरूरी है जो भारतीय समाज को बांध कर रखे और इस महान कार्य हेतु उन्होंने हिन्दी भाषा को चुना क्योंकि यह सहज व सरल और संस्कृत भाषा के समीप है।''[11] आर्यसमाजियों ने समस्त भारत में शिक्षा का प्रचार प्रसार किया और बहुत सारी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की, जैसे–दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज व स्कूल, गुरूकुल, संस्कृत विद्यालय व बाल मन्दिर आदि। इन शिक्षण संस्थाओं में प्रमुख रूप से प्रसिद्ध है:–

1. दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज –

इनकी स्थापना का मुख्य श्रेय लाला लाजपत राय व लाला हंसराय को प्राप्त है। 1886 में इस कॉलेज को लाहौर (पाकिस्तान, वर्तमान) में शुरू किया। इस कॉलेज का मुख्य उद्देश्य वैदिक शिक्षा के साथ पश्चिमी शिक्षा का ज्ञान देना था। उस समय अंग्रेजी शिक्षा सभी लोगों के लिए नहीं थी। समाज का एक बड़ा वर्ग तात्कालिक ज्ञान से दूर था। इसके साथ ही इस कॉलेज का एक और उद्देश्य था कि अंग्रेजी भाषा में शिक्षित करके वर्तमान शासन व्यवस्था में दाखिल होना और सरकार के विरूद्ध लोगों को जागृत करना। 1892 में डी०ए०वी० (पंजाब) की गतिविधियों पर तात्कालिक लेफ्टिनेट सर डेनिस फ्रिटजपेट्रिक को संदेह हो गया क्योंकि डी०ए०वी० प्रबन्धक कमेटी के सदस्य स्वतन्त्रता के लिए गुपछुप तरीके से कार्यरत थे।

इसी क्रम डी०ए०वी० कॉलेज (लाहौर) आंग्ल विरोधी लोगों का घर बन गया था। 1907 में डी०ए०वी० छात्र सरदार अजीत सिंह ''भारत माता सोसाइटी'' के सदस्य बन गये थे। संस्था युवा बालकों में आजादी के लिए जोश भर रही थी। डी०ए०वी० (लाहौर) कॉलेज की पत्रिका ''द आर्य गजेटेड'' में श्याम लाल पुरी छात्र के आलेख में लिखा था कि ''प्रिय भाईयों, अगर हमको अमेरीका जैसी स्वतन्त्रता चाहिए तो हमें अपनी आत्मा में त्याग का समावेश करना होगा। इसके लिए स्वार्थ का त्याग, देश हित का ध्यान रखना होगा जीवन के अन्तिम क्षण तक''[12] इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए डी०ए०वी० के कई छात्र भारतीय स्वतन्त्रता के लिए वचनबद्ध थे। जैसे – गेंदा लाल दीक्षित (डी०ए०वी०इटावा उ०प्र०) कॉलेज, ये मांत्रिवेदी संस्था

इलाहाबाद (1917) नामक क्रान्तिकारी संस्था के सदस्य थे। भाई बाल मुकुद (भाई परमानंद के चचेरे भाई) डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर के छात्र थे, जो लाला लाजपतराय के साथी बने बाद में ये लाला हरदयाल व रास विहारी के साथ दिल्ली क्रान्तिदल (अमीरचन्द समूह) के सदस्य थे, जो लॉर्ड हार्डिंग बम केस 1913 तथा लाहौर बम विस्फोट में शामिल थे। इनको मई 1915 में अम्बाला जेल में फांसी दी गयी। इनके साथ ही प्रताप सिंह भारत (डी०ए०वी० हाई स्कूल, अजमेर) के छात्र थे, इनको भी लॉर्ड हार्डिग बम केस में 1915 शहीदी प्राप्त की इनके इस कार्य में और भी डी०ए०वी० कॉलेज के छात्र सम्मिलित थे जिनका नाम ''बलराज भल्ला (डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर) ये अण्डमान की जेल भेजे 1915 में, दौलतराम (डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर) भी लार्ड हार्डिंग केस में अभियुक्त थे। इनके अलावा और भी डी०ए०वी० कॉलेज के छात्रों का क्रान्तिदल में योगदान था जैसे – भगत सिंह, जसवन्तराय, केशवदेव, जगतराम, हरीराम, लालचन्द फलक, देवी चन्द व दौलतराम आदि।

गांधीजी के स्वदेशी आंदोलन के समय जब पंजाब की जनता आंदोलन में शामिल थी तब डी०ए०वी० कॉलेज ने इसमें भाग नहीं लिया जबकि छात्रों ने खुलकर आन्दोलन में योगदान दिया था तब लाला लाजपतराय ने लाला हांसराज को इसका कारण पूछा था तब उन्होंने कहा था कि ''इस आन्दोलन का प्रभाव कुछ समय तक रहेगा परन्तु इस विद्यालय का उद्देश्य विद्यार्थियों को भविष्य के लिए तैयार कर पूर्ण स्वराज व स्वशासन है। छात्रों को आन्दोलन में जाने पर रोक नहीं है परन्तु शिक्षा का भी ध्यान रखना आवश्यक है।'' इस प्रकार से डी०ए०वी० कॉलेज भारतीय स्वतन्त्रता के योद्धा तैयार करने में निन्तर कार्यशील रहा।

2. गुरूकुल –

इन शैक्षिक संस्थाओं का आधार 1900 में स्वामी श्रद्धानन्द ने रखा। प्रथम गुरूकुल की स्थापना कांगडी में हुई थी। गुरूकुल की शिक्षा का मुख्य विषय वैदिक शिक्षा थी और इस वैदिक शिक्षा का उद्येश्य भारतीय प्राचीन गौरव को पुन: प्राप्त करके विदेशी गुलामी की मानसिकता का नाश करना था। यहां के छात्र अंग्रेजों के विरोध में प्रत्यक्ष रूप से विचार रखते थे। मूलत: आबादी से दूर होने के कारण काकोरी काण्ड के बाद क्रांतिकारी गुरूकुल में ही छिपे थे। इसी कारण समय-समय पर इन गुरूकुलों में अंग्रेजी सरकार निरीक्षण को आते थे, जब गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह शुरू किया और गोखले जी ने आर्थिक सहायता मांगी थी तब गुरूकुल के विद्यार्थियों ने दूध व मक्खन न लेकर रूपये जमा करके सत्याग्रह कोष में जमा किये उसी समय गुरूकुल की हरिद्वार शाखा ने गंगाजी पर ''धुग्धबंदी'' बांध के निर्माण में मजदूरी करके अपनी प्राप्त आय 1500 को दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के सहयोग के लिए भेजा था।''[13] इसी तरह कई गुरूकुल के छात्र भी थे, जो स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल थे जैसे- दीनानाथ पंडित स्वामी सत्यदेव, गोकुल चन्द नागर व बलवन्त सिंह पंडित आदि।

निष्कर्ष–

उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि आर्य समाजियों ने देश की स्वाधीनता के निमित्त सर्वाधिक त्याग और बलिदान किया, किन्तु आर्य समाज ने उसके बदले में कभी किसी मान प्रतिष्ठा व अधिकार की याचना व आकांक्षा तक नहीं की। आर्य समाजियों ने जो कुछ त्याग व बलिदान किया, अपना धर्म व कर्तव्य समझकर महर्षि दयानन्द जी की प्रेरणा से किया था।

सम्बन्धित साहित्य–

1. सरस्वती, स्वामी दयानन्द: ऋग्वेद भाष्य भूमिका, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 2016, पृष्ठ संख्या-158
2. मुखोपाध्याय, देवेन्द्रनाथ: दयानन्द चरित, आर्य साहित्य भवन नई दिल्ली 1946, पृष्ठ संख्या 228
3. विघालंकर, सत्यदेव : राष्ट्रवादी दयानन्द, आर्य साहित्य ट्रस्ट अजमेर 2016, पृष्ठ संख्या-68।
4 विद्यावाचस्पति, इन्द्र : आर्य समाज का इतिहास, भाग-2, वैदिक प्रकाशन अजमेर 2019, पृष्ठ संख्या 135
5 वही : पृष्ठ संख्या 136
6 वही : पृष्ठ संख्या 138
7 लाल लाजपतराय : द आर्य समाज, मनु श्री राम, मनोहरलाल पब्लिकेशन प्रा०लि० नई दिल्ली 1992,पृष्ठ संख्या 153
8 वही : पृष्ठ संख्या 158
9 वही : पृष्ठ संख्या 169
10 अथैया माधुर : स्वामी दयानन्द सरस्वती खण्ड 1, प्रभाव पब्लिकेशन नई दिल्ली 2013, पृष्ठ संख्या-160
11 विद्यालंकर सत्यकेतु : आर्य समाज का इतिहास भाग 3, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या 126
12 अग्रवाल मीना : राष्ट्रीय जीवनी माला, लाला लाजपतराय, डायमण्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2017 पृष्ठ संख्या 132
13 विद्यालंकर सत्यकेतु : आर्य समाज का इतिहास भाग 3, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 2017 पृष्ठ संख्या 256

ISSN 2278 - 0327

समकालीन भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में गाँधी दर्शन

कल्पना
Assistant professor Hindi department
Guru jambheshvar science and technology University Hisar

शोध सारांश

साहित्य जगत में रचनाकारों ने एवं समाज रहने वाले आम जन-जीवन ने व तत्कालीन नेताओं ने भी महात्मा गाँधी से प्रेरणा ली। गांधीवादी विचारधारा मुख्यरूप से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं भारतीय साहित्य तक सीमित नहीं है बल्कि उनका विचार चतुर्दिक केन्द्रित होता है। क्योंकि अनेकों लोगों के लिए उनके निराशा के क्षणों में ये देखना उत्साह और आशा का स्रोत रहा है कि एक दुर्बल व्यक्ति ने न केवल अपने देश में अपितु सारी दुनिया में कितनी शक्ति रखता है। दूसरे लोगों को बड़ा राष्ट्रीय नेता माना जाता है, किसी को मतदान बॉक्स के लिए अथवा प्रजातांत्रिक सरकार की सारी मशीनरी के आधार पर, कुछ अन्य कारणों से भी बड़े नेता कहे गये हैं, किन्तु महात्मा गांधी ने लोगों का नेतृत्व अपनी महान आंतरिक शक्ति के आधार पर और सीधे-साधे आदमियों और औरतों के दिलों को अपील करके किया है।

बीज शब्द

समतुल्य, समरसता, समभाव, परिप्रेक्ष्य, अंतर्भाव, दर्शन

प्रस्तावना

महात्मा गाँधी भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के प्रवर्तक और दिशा निर्देशक रहे हैं। उनके विचार और व्यवहार का गहरा प्रभाव भारतीय साहित्य पर पड़ता है। उन्होंने अपने आचार-विचार, सोच एवं सार्वजनिक आचरण और व्यक्तिगत जीवन में अतुल्यनीय सामंजस्य बिठाते हुए अपने सत्य, अहिंसा व परसेवा और आवश्यकता पड़ने पर सहर्ष सम्पूर्ण त्याग करने के माध्यम से श्रेष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा दी। उनका जीवन खुद ही यानी स्वयं अपने आप में एक सन्देश हैं, इसी कारण उनके सिद्धांत आज भी विश्व मानवता के लिए अपरिहार्य और प्रासंगिक है।

वर्तमान समय में जिस रफ्तार से व्यक्ति की मानसिकता व दिनचर्या दिनों दिन परवर्तित हो रही है, जिससे कि आपसी तनाव एवं मतभेत की स्थिति बड़ी तत्परता के साथ बढ़ती जा रही है। तब ऐसे में गाँधी जी के द्वारा दी गयी अहिंसा संबंधी दी गयी शिक्षा अत्यधिक प्रासंगिक एवं प्रभावशाली हो जाती हैं, क्योंकि आज का मानव जिन-जिन कठिनाईयों से गुजर रहा है, उस मार्ग का निवारण केवल गाँधी मार्ग है। यानी गाँधी द्वारा दिखाया गया पथ ही उस व्यक्ति व समुदाय को मार्ग का सहज अवलोकन करा सकता है।

गांधीजी की अध्यात्मिक प्रेरणा का मूल्यांकन आज विश्व में अपना परचम फैला रहा है। गाँधी दर्शन पर विचार करते हुए माननीय जुमादर लिखते हैं- '*गाँधी का दर्शन कर्तव्य रूप में सफल क्रियान्वित को सर्वोपरि महत्व देता है और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि गाँधी का यह सन्देश उपदेश द्वारा वरन वास्तविक कार्य द्वारा प्रेषित किया गया है।*[1]

यानी गाँधी बनना हर किसी के बस की बात नहीं, यह रास्ता कठिन और एकांकी था और विचारणीय बात यह है कि परस्थितियाँ चाहे जो भी रही लेकिन गाँधी अपने सत्य के मार्ग पर आखिरी सांस तक चलता ही चला गया। श्री के. हजारी प्रसाद ने कहा है '*भारत और मानवता को रत्न बनाता हुआ महात्मा गाँधी बलिदान की प्रतिमूर्ति थे।*'[2] अर्थात् भारतीय आत्मा की उन सब चीजों का त्याग कर दिया जाए तो महात्मा गाँधी के जीवन और दर्शन सार ही थीं जो अनंत काल से भारत की स्वाभाविक विरासत रही हो, तो विश्व के मामले में भारत का प्रभाव कम होने लगेगा।

गाँधी जी ने देश की स्थिति और परिस्थितियों को देखते हुए ही कुटीर उद्योग और श्रम को बढ़ावा दिया है। ताकि सभी व्यक्ति काम प्राप्त कर सकें या रोजगार के अवसर मिल सकें। गांधीजी के इसी श्रम वादी विचारधारा से प्रेरित होकर ही इस संदर्भ में लिखा है-

आलस्य को त्यागों, कर्म को उद्दत हो
आत्म सम्मान पहले

और सब कुछ बाद में
बुद्धिमान से कहा, निर्धनता अपनाओं
अमर आनंद सुख
आत्म सुद्धि करो, श्रम से प्रेम
छिन्नमस्ता मत हो,
इस प्रकार खून-खराबा रोको
भ्रातृत्व और प्रेम की जय
महात्मा गाँधी की जय।[3]

महात्मा गाँधी महान साहित्यकार न होते हुए भी अपनी मेधावी प्रतिभा के कारण तथा घनिष्ठ विचारधारा के चलते उनके कर्म प्रतिष्ठा ने जन मानस पटल पर एक ओर जहाँ सत्य का पाठ पढ़ाया तो दूसरी और साहित्यकारों एवं पत्रकारों के मष्तिस्क में प्रेम व एकता को जागृत किया। साथ ही गाँधी जी यह कार्य प्रणाली व्यक्ति के आम जीवन की भलाई में समाती चली गई। मूल तौर से देखा जाए तो एक और एक और जहाँ गाँधी जी ने साम्प्रदायिकता की बात की जिसकी झलक प्रेमचंद कृत 'कर्मभूमि' उपन्यास में दिखाई देता हैं। चूँकि , अमरकांत का चरित्र गांधीवादी विचारधारा का प्रतीक के रूप में 'कर्मभूमि' उपन्यास में उभरा है। अमरकांत अपने जीवन में इसी गाँधी दर्शन से प्रभावित होकर ही ग्रामोद्योगों का विकास कार्य करते हैं। साथ ही साथ इस उपन्यास में गांव की सफाई कार्य भी इसी गांधीवादी विचारधारा को कारण ही व्यक्ति जन पर दिखाई देता है। वहीं 'रंगभूमि' उपन्यास में भी नायक सूरदास आरंभ से लेकर अंत तक सत्य और न्याय की लड़ाई लड़ता हुआ दिखाई देता है।

सच्चाई तो यह है कि किसी भी देश की राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए ही नहीं बल्कि उसके सामाजिक व आर्थिक तथा नैतिक जीवन के विकास के लिए भी रचनात्मक कार्यो का अनुपालन करना भी आवश्यक जान पड़ता है। सं 1920 से लेकर 1940 के दशक के सभी साहित्यकारों के भीतर यह देखा गया कि वे मूलत: प्रत्यक्ष रूप से हो या अप्रत्यक्ष रूप से ही क्यों न हो , जीवन शैली की विविध गतिविधियों में गाँधी नीति का संपर्क सूत्रपात्र हुआ।

यदि बंगला साहित्य अंतर्गत रवीन्द्रनाथ की बात करें तो उनकी प्रमुख चर्चित गीति नाट्य 'चंडालिका' में गाँधी दर्शन को देखा जा सकता है। साथ ही प्रसाद कृत 'गुंडा' कहानी में भी गांधीवादी विचारधारा को अपना कर युवा अहिंसा की राह पर चलने को तैयार हो जाते हैं। जबकि इस कहानी का नाट्य मंचन पंडित सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सफल प्रयास रहा। यानी भारतीय साहित्यकार कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में गांधीवादी विचारधारा को अपनाकर आगे सत्य का मार्ग को अपनाया। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र के उपन्यासों में भी गाँधी दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। इनके चर्चित उपन्यास 'सुनीता' कि नायिका का जीवन संघर्ष एवं समस्याओं से घिरा हुआ रहता है। वहीं, सुखदा, त्यागपत्र आदि में चित्रित सघर्ष का सामाधान भी दिखाने का प्रयास करते है।

गाँधी जी के इसी प्रभाव के करण ही पश्चिम बंगाल के शान्तिनिकेतन में प्रत्येक वर्ष 10 मार्च को गाँधी पुण्या: व गाँधी दिवस मनाया जाता है। अपने जीवन के अनुशासन का पालन करने वाले गाँधी जी का मूल उद्देश्य यही रहा की 'स्वयं के साथ ही सामने वाले को भी मुक्त रखें।[4]

कहने का आशय यह है कि दक्षिण अफ्रीका से जब पहली बार भारत वापस आते समय शान्तिनिकेतन में गए गांधीजी अपना काम स्वयं करते थे। उनकी इस कार्य शैली को देख समस्त छात्र-छात्राओं को 'स्व' कार्य करने की प्रणाली का मनोबल मिला।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी '*आजाद भारत में गुलाम बनकर रहना पड़ता है*'।

जनता के भीतर यह यथार्थ अभिवक्ति के करण समाज की क्रांति समाज की प्रगति एवं रूढ़िगत मानसिकता से उभरने के कारण ही मुक्ति का स्वर प्रबल हुआ।

भारतीय साहित्यकारों में प्रमुख रूप से गुजराती साहित्यकार उमाशंकर जोशी जी के साहित्य पर भी गाँधी का प्रभाव साफ़ तौर से देखने को मिलता है। उनकी रचना 1931 'विश्वशांति' में अहिंसा और शक्ति के लिए किये गए गाँधी के प्रयत्नों की महिमा का वर्णन है। अपने समय में इन्होंने गाँधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन में भी भाग लिये हैं।

1934 'गंगोत्री' काव्य में इनकी राष्ट्रियता के साथ-साथ वैश्विकता की भावना प्रबल है जो 'विश्वतोमी' या 'विश्वमानवी' जैसे काव्यों में प्रमुख रूप से देखा जाता है जो इस प्रकार है-

व्यक्ति नारहकर मैं विश्वमानव बनूँ,
सिर पर वसुंधरा का धुल धारण करूँ।
(व्यक्तिमाटिन बनू विश्वमानवी,
माथे धरु धुल वासुन्धरानीद्य)[5]

कन्नड़ साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकार विनायककृष्ण गोकाक के साहित्य पर भी गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। गोकाक भी मानवतावाद के पुजारी हैं, साथ-साथ इन्होंने भी विश्वमानवता का सपना गाँधी जी की तरह

ही देखते हैं।

जो उनकी रचना 'समुद्र के इस पार' से 'समुद्र के उस पार' यात्रावृत में भी इनके चिंतन और दृष्टी को साफ रूप से प्रदर्शित करता है। ये प्रकृति प्रेमी भी है। इन्होंने धरती को अपनी माता मानते हैं।

'इन्दिल नाले' काव्य में तथा 'समुद्रगीतेलु' में इनके दृष्टी स्पष्टरूप से देखने को मिलता है, जो इस प्रकार हैं-

तुम आंग्ल मैं भारतीय
हृदय संपदा आएगी कैसे यहाँ
तुम हो सुन्दर पर तुम्हारे सौंदर्य...
मेरे प्राण रहे अपने देश गीत के लिए[6](समुद्रगीतेलु)

मराठीसाहित्यकार केशवसूत (1866-1905) की कविताओं में गाँधीवादी विचारधारा या दर्शन को साफ़ तौर पर देखा जा सकता है। इनकी कविताओं में सामाजिक चेतना और मानवतावादी भावना प्रमुख रूप से प्राप्त होता है। इन्होंने अपनी कविता में 'तुतारी' (बिगुल) में कहते हैं कि- '*मुझे एक ऐशा बिगुल ला दो, जिससे मैं सारे वातावरण को जागृत कर दूँ। सब और एक नई चेतना का उदय कर दूँ।*''[7]

दूसरी और नया सिपाही इस कविता में वे जाति, धर्म आदि सभी बन्धनों को लांघकर मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। इन सारी कविताओं में ही अन्याय अत्याचार निराला की कविताओं में ही इतना प्रखर तथा तेजस्विता मिलती है, परंतु निराला का काल केशवसूत के करीब 35 साल बाद आता हैं।

यदि समकालीन हिदी साहित्यकरों के साहित्य में गाँधी दर्शन की बात करें तो बहुत से ऐसे प्रमुख व विशिष्ट साहित्यकार इस कोटि के अंतर्गत आते हैं, जिन्होंने गाँधीवादी विचारधारा को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया। उनमें से प्रमुख साहित्कार हैं- जैनेन्द्र से लेकर यशपाल हो या फिर प्रताप नारायण मिश्र हो या उपेन्द्रनाथ अश्क ही क्यों न हो, इन सभी साहित्यकारों ने गाँधी दर्शन को व्यवहृत किया तथा उनके व्यक्तित्व को केंद्र में रख कर लेखनी चलाई।

इस प्रकार देखा जाए तो गाँधी दर्शन से प्रभावित होकर ही साहित्यकारों ने प्रेम, सत्य-अहिंसा, एकता प्रेम जीवन की नश्वरता दृष्टिगोचर अपनाते हुए अध्यात्मिक उपन्यासों की रचना की, जिसमें से जैनेन्द्र कृत 'सुखदा'(उपन्यास)'विवर्त' उपन्यास एवं अमृत लाल नागर कृत 'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' प्रमुख उपन्यास इसी गांधीवादी जीवन दर्शन से प्रभावित उपन्यास की श्रेणी में आते हैं।

इसके साथ ही साथ देश विभाजन पर आधारित यशपाल कृत 'झूठा-सच' उपन्यास जीता जागता दस्तावेज है। जैसा हम जानते हैं कि '*झूठा-सच उपन्यास गाँधी जी का हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रयत्न जनता में अशांति, द्वेष उत्पन्न करता है, न की एकता।*'[8]

व्यक्ति विशिष्ट की अमूल्य नीति बन गई है कि वह सब कुछ पाना चाहता है। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, तथा महत्वाकांक्षी भी। जिसके चलते वह सब कुछ पाना चाहता है और यह 'बहुत कुछ पा लेने' की इस प्रक्रिया में अपना नाश भी कर डालता है। ऐसे में उसे यह समझ नहीं आता की क्या करें और कैसे करें?

जानकी गाँधी जी विचार धारा के माध्यम से इसी द्वंद्वात्मक परिस्थिति का निवारण भी पाया गया है। जैसा कि अमृतलाल कृत 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में रामदास के विचारों के माध्यम से देखा जा सकता है-

'*सेवा करना और सेवा लेना दोनों ही मनुष्य के जन्म सिद्ध अधिकार हैं।*[9]

यहाँ तक की भगवती प्रसाद वाजपेयी जी के 'पतवार' का पालन में आदर्शवादी दृष्टिकोण को दर्शाया गया है। वाजपेयी जी 'पतवार' का पात्र पालन दिलीप व्यक्ति सुखों को सामाजिक हित के समक्ष तुच्छ मानता हुआ कहता है-'मैं व्यक्तिवादी दृष्टीकोण को समाज के लिए सर्वथा भयावह मानता हूँ।'[10]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से गाँधी शिक्षा, उनके सिद्धांत, विचारधारा आदि विविध मान्यताओं को ख्याति दी है। एक ओर जहाँ मैथलीशरण गुप्त है, जिन्होंने गांधीजी की भाषा आदि सूत्र से प्रभावित होकर 'राष्ट्रीय भाषा सूत्र' तक को अपनाया। 'गाँधी से प्रभावित होकर पं. सहदेव ने खादी कपड़ा और टोपी पहनना शुरू कर दिया। इसी पं. सहदेव ने बाद में 'वाक्रा' शहर में 'गाँधी आश्रम' की स्थापना की।[11] कुल मिलाकर कहा जाय तो भारतीय साहित्य, शिक्षा और साहित्य में गाँधी का योगदान अति सराहनीय रहा है।

निष्कर्ष

गांधीवादी विचार से प्रभावित साहित्यकरों की रचना में त्याग परोपकार आदि आदर्शों का महत्व देखने को मिलता है। गाँधी दर्शन में मन, वचन, व कर्म की एकता तथा निष्काम कर्म का सन्देश गीत का प्रभाव ही पूरे भारतीय साहित्य में किसी न किसी रूप में विराजमान है। हिंदी उपन्यासों में आधुनिक मानव

की परिवर्तित धार्मिक मान्यताओं एवं प्रेम के स्थान में स्वछंद वृत्ति का चित्रण किया गया है। गाँधी के विचारों एवं अनुभवों को रचनाकारों ने अपनी पैनी दृष्टि के आधार पर आंकते हुए कलम चलाई है। विभिन्न समुदायों के बीच तमाम विपरीत परिस्थितियों में धैर्य का पाठ पढ़ाने वाले गाँधी के विचार एवं जीवन ने मानव जीवन में प्रेरणा बनकर उभरी। साथ ही गाँधी वादी विचारधारा ने मानव जीवन से लेकर विविध आयाम जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में भी छू कर साहित्य के रंग को पिरोया है। विश्व के आधी आबादी से अधिक ऐसे कई सतांश लोग हैं जिन्होंने गाँधी दर्शन को चिंतन-मनन एवं सृजन कर विश्व बन्धुत्व कि भावना को स्थापित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ.अखिलेश्वर प्रसाद दुबे, गाँधी दर्शन की रुपरेखा, प्रकाशन- नोर्थें बुक सेण्टर, प्रकशन वर्ष-2003, पृष्ठ-34-35
2. http://www.deshbandhu.co.in/vichar
3. www.hindikavitakosh.com
4. आधुनिक मराठी साहित्य की प्रवृतिमूलक इतिहास, सूर्यनारायण रणसुभे, कानपुर, प्रकाशन वर्ष-1976, पृ.सं-5
5. बूंद और समुद्र, उपन्यास, अमृतलालनागर, प्रकाशन- किताब महल, इलाहाबाद,, प्रकाशन वर्ष-1956, पृ.सं- 264
6. http://satyagrah.scroll.in
7. भारतीय साहित्य के निर्माता उमाशंकर जोशी ,भोलभाई पटेल : साहित्य आकादमी (2010), पृष्ट सं-11
8. झूठा सच, यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-76, प्रथम सं. 2010
9. भारतसिन्धुरस्मी, विनायक कृष्णा गोकाक: बी.आर पब्लिशिंग कारपोरेशन (1 जनवरी 1992) पृष्ट सं -33
10. पतवार,भगवती प्रसाद वाजपेयी, उपन्यास, भूमिका, पृष्ठ- 4-5, प्रकाशन-किताब घर, दिल्ली, प्रथम सं.-1986
11. धीरेन्द्रमोहन, महात्मा गाँधी का दर्शन, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पटना, बिहार,प्रकाशन वर्ष-1973, पृष्ठ-34

ISSN 2278 - 0327

एक सांस्कृतिक पड़ताल : नाटककार भारतेन्दु

डॉ. पूनम शर्मा
माता सुन्दरी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी भारतेन्दु, भारतीय संस्कृति के प्रहरी के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके द्वारा रचित सम्पूर्ण साहित्य और उनका व्यक्तित्व संस्कृति की रक्षा में, उसके उन्नयन में हिस्सेदारी निभा रहा है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी आत्मा होती है और उस आत्मा की रक्षा करना सभी राष्ट्रवादियों का कर्त्तव्य। भारतेन्दु इस कवि-कर्म को ईमानदारी से निभा कर गए हैं। समय की नब्ज को टटोल, मर्ज ढूंढ कहीं गहरे में उस मर्ज़ पर औषधी का लेप लगाने का प्रयास उनका नाट्य साहित्य करता दिखाई देता है। भारतेन्दु के समय में परिस्थितियाँ विपरीत थीं परन्तु उन विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की चेष्टा वे लगातार करते रहे। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को बचाए रखने उसे उत्तरोत्तर विकास की ओर ले जाने का कार्य भाषा करती है और भाषा को जीवन्त बनाए रखने का कार्य उसके प्रयोक्ताओं पर निर्भर करता है, उस भाषा के माध्यम से साहित्य सृजन करने वालों पर निर्भर करता है। किसी भी देश की संस्कृति को गहनता और गंभीरता से समझने के लिए सर्वप्रथम उस राष्ट्र की भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है और भारतेन्दु बाबू इस बात को भलि-भाँति जानते थे और चाहते थे कि सभी भारतवासी इस बात को समझें-

> *'' निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल*
> *बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को सूल।''*[1]

अक्षरक्ष: सत्य प्रस्तुत कथन कितनी गहरी बात कह देता है ह्रदय की पीड़ा को अपनी भाषा में ही कहा जा सकता है और मिटाया जा सकता है। भारतेन्दु को विचारों की संवाहिका भाषा के छिन जाने का खतरा दिखाई दे रहा था। वे साम्राज्यवादी शक्तियों की स्वार्थ लोलुप प्रवृत्ति को समझ गए थे, वे जानते थे कि किसी भी राष्ट्र को पंगु बनाने के लिए सबसे पहले उसकी संस्कृति को नष्ट करना आवश्यक है जो अंग्रेज कर रहे थे, इस अमूर्त सत्य को मूर्त रूप में भारतवासियों तक लाना आवश्यक था। भारतेन्दु ने अपने बलिया के ददरी मेले के व्याख्यान में यह बात कही भी कि - '' *परदेसी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।*'' अपनी भाषा पर भरोसा रखने की बात वे लगातार करते रहे। भाषा पर अंग्रेज़ियत का खतरा उन्हें दिखाई दे रहा था, जहाँ अंग्रेज़ भारतीयों को अपने काम-काज के लिए अंगेजी सिखा रहे थे और भारतीय भी उनके बहकावे और लालच में आकर स्वयं ही उनके गुलाम बनने के लिए तैयार थे। स्वत्व और निज की पहचान अवश्यम्भावी है। भारतेन्दु ने सदैव इसी बात पर ज़ोर दिया। भारतेन्दु के समय में आम व्यक्ति में शिक्षा का अभाव था और इसी शिक्षा के अभाव के कारण भारतीय मानसिकता छिन्न-भिन्न हो रही थी। राष्ट्र की अखण्डता और संस्कृति को बचाए रखने के लिए भारतेन्दु ने सरल, सहज शैली में नाटकों के माध्यम से अपनी बात कही। अपने नाटकों में भारत के अतीत का गौरवगान कर, भारतीय संस्कृति से सभी को परिचित करवाया -

> *''भारत के भुज-बल जग रक्षित।*
> *भारत विद्या लहि जग सिच्छित।।*
> *भारत तेज जगत बिस्तारा।*
> *भारत भय कम्पत संसारा।।*
> *जाके तनिकहिं भौंह हिलाए।*
> *थर-थर कम्पत नृप् डरपाए।*
> *जाके जय की उज्जल गाथा।*
> *गावत सब महि मंगल साथा।।*
> *भारत किरिन जगत उँजियारा*
> *भारत जीव जिअत संसारा।।*
> *x x x x*
> *तब रह्यौ महिमण्डल माहीं।।''* [2]

अतीत के गौरव गान के साथ-साथ भारतेन्दु की चिन्ता का प्रश्न यह बना ही रहा कि 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो' और इस

उन्नति के लिए उन्होनें सबसे पहले अपने तत्कालीन यथार्थ को समझने की आवश्यकता पर बल दिया। भारत की स्थिति दयनीय थी, इस दयनीय दशा के लिए कौन-से कारक ज़िम्मेदार हैं वे कहते हैं - *'' यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन, अंगरेज, फरासीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं। सब के जी में यही है कि पाला हमीं पहले छू लें। उस समय हिन्दु काठियावाड़ी खाली खड़े खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इन को, औरों को जाने दीजिए, जापानी टट्टुओं को हांफते हुए दौड़ते देखकर भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जाएगा फिर कोटि उपाय किए भी आगे न बढ़ सकेगा।''*[3] बलिया में दिया गया उनका यह भाषण इस बात का प्रमाण है कि उन्होनें केवल तत्कालीन अवस्था को पहचान कर भारतीय संस्कृति को बचाने की चिन्ता ही व्यक्त नहीं की बल्कि वे सभी उपाय भी भारतीयों के सम्मुख रखे जो उन्हें उन्नति की ओर ले जा सकते थे। भारतीय संस्कृति और भारतेन्दु की रचनाधर्मिता के मूल में मनुष्य है। राम-विलास शर्मा भी लिखते हैं- *''वन, प्रकृति, पुरातत्त्व इन सबसे बढ़कर उनके अध्ययन का विषय था- मनुष्य। हर जगह वह लोगों की अशिक्षा और कुसंस्कार देखकर कुढ़ते थे और देशोन्नति के लिए नए-नए उपाय सोचते थे''*[4] देश के कर्णधारों की भी उन्हें विशेष् चिन्ता थी- *''लड़कों को छोटेपन ही में ब्याह कर के उनका बल, वीर्य, आयुष्य, सब मत घटाइए। आप उनके माँ-बाप हैं या उनके शत्रु हैं। वीर्य उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिए, विद्या कुछ पढ़ लेने दीजिए, नोन, तेल, लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिए तब उनका पैर काठ में डालिए।''*[5]

भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी संस्कृति का हमला हो चुका था इसलिए भारत के सभी वासियों चाहे पुरूष हों अथवा स्त्री सभी को समान रूप से आगे आने की आवश्यकता है। भारतेन्दु ने आह्वान किया। सभी भारतवासियों को पश्चिमी संस्कृति के दंश से सावधान किया, पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति का बाज़ार भारतमें पैर पसार रहा था। भारतेन्दु ने 'अंधेरनगरी' नाटक में इस बाज़ार के यथार्थ को खोल कर रख दिया, जहाँ भारतीय संस्कृति के बीज मंत्र कर्म को अकर्मव्यकता की ओर धकेल दिया गया जहाँ 'टके सेर भाजी टके सेर खाजा' अर्थात् भाजी यानी मूल्यहीन वस्तुएँ खाजा अर्थात् मूल्यवान उपादान, सभी का मूल्य समान है। जहाँ गोवर्धनदास भी कर्म के महत्व को भूल कहता है- *'' गुरूजी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े है कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना मजे में आनन्द से राम भजन करना।''*[6] छोटे-छोटे स्वार्थो के वशीभूत हो मनुष्य, संस्कृति की अस्मिता को संकट में डाल देता है लोभ, भोग से जुड़ी मानव की स्वाभाविक वृत्तियाँ किस कदर उसके अस्तित्व को संकट में डाल सकती हैं इसका जीवंत उदाहरण है 'अंधेर नगरी'। यहाँ भारतेन्दु कर्म की महत्ता को प्रतिष्ठित कर अकर्मण्यता, आलस्य से पथभ्रष्ट भारतीयों को एक बार फिर अपने अतीत की ओर मुड़ने की प्रेरणा देते हैं। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति के केन्द्र में मनुष्य है, उसी प्रकार उसकी एकता और अखण्डता भी सर्वोपरि है 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारत दुर्देव गाता है-

'' फूट बैर औ कलह बुलाऊ'', ल्याऊँ सुस्ती जोर'' [7]

'अंधेर नगरी' नाटक में भी किस प्रकार भारत की एकता और अखण्डता पर चोट की गई है देखिए- *'' ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर''*[8] भारत की एकता और अखण्डता बनी रहे, कोई भी विदेशी शक्ति आकर उसे खण्डित न कर सके। गुणाकर मूले का विचार इस संबंध में दृष्टव्य है- *'' हरमहान कृतिकार एक महान द्रष्टा भी होता है। भारतेन्दु कल्पनालोक के रचनाकार नहीं थे, पर भारतीय समाज के भविष्य के बारे में उनके कुछ ठोस सपने अवश्य थे। उनके ये सपने सांस्कृतिक उत्थान के बारे में थे, आर्थिक व औद्योगिक उन्नति के बारे में थे।''* देश की एकता ही हमें विदेशी संकट से बचा सकती है इसलिए भारतेन्दु बार-बार मिलकर एक-चित्त होने की बात कहते हैं। नाटक 'भारत-दुर्दशा' में जब सात सभ्यों की कमेटी बैठती है और सब अपनी-अपनी राय प्रकट करते हैं तो भारतेन्दु पहले देशी के मुख से कहलवाते है- *'' हाय! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक-चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो, जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो।''*[9]

उन्नति करने के लिए सबका मिलकर चलना आवश्यक है, भारतेन्दु यह समझ चुके थे और अपने नाटकों के माध्यम से यही मंत्र भारतीयों को बार-बार देते रहते थे। भारतीय संस्कृति धर्म की आबोहवा से प्रफुल्लित होती है इसलिए अपने धर्म की रक्षा करना प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य। अपने नाटक 'नीलदेवी' में भारतेन्दु ने इस धार्मिक संघर्ष को दिखाया है जहाँ आर्यजाति धर्मप्रिय है और युद्ध में धर्मनीति से ही लड़ना चाहती है किन्तु अब्दुरशरीफकी कोई युद्धनीति नहीं। वह केवल छद्म से इस युद्ध को जीत लेना चाहता है और धोखे से राजा सूर्य देव को मार भी डालता है भारतेन्दु इन छद्मवेश धारी आतंकियों से भारतीयों को सावधान कर रहे थे और तैयार कर रहे थे भारतीय स्त्रियों को जो

आगे आएँ। नाटक में नीलदेवी, सूर्यदेव को समझाने की कोशिश भी करती है किन्तु धर्मयुद्ध की हठ सूर्यदेव नहीं छोड़ते, यदि उन्होनें उसी समय नीलदेवी की बात मानी होती तो शायद भारत का इतिहास कुछ और होता। इस्लाम और इसाईयत संस्कृति किस प्रकार धोखा देकर सबकुछ हड़प लेना चाहती है यह इसका जीवन्त प्रमाण है। इस संस्कृति की स्वार्थलोलुप प्रवृति और दूसरे को लाचार कर देने की कूटनीतिक चालों से भारतेन्दु अनभिज्ञ नहीं थे, उनकी संकीर्ण मानसिकता को शब्दों का जामा पहना भारतेन्दु बार-बार भारतीयों को चेता रहे थे-

''काफिर काला नीच पुकारूँ तोडूँ पैर औ हाथ।
दूँ उनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ।।
कौड़ी-कौड़ी को करूँ, मैं सबको मुहताज।
भूखे प्राण निकालूँ इनका, तो मैं सच्चा राज।।''[10]

दूसरे देश में शासन करने की नारकीय सोच हाथ-पैर तोड़, कायर बना देने की कोशिश कहीं न कहीं उनकी क्रूर मानसिकता का संकेत देती है। इन छद्मवेशधारियों से भारतीय संस्कृति को छिन्न-भिन्न होने से बचाने की कोशिश भारतेन्दु लगातार कर रहे थे इसलिए संघर्ष की स्थिति पैदा करने का भरसक प्रयत्न भारतेन्दु द्वारा किया जा रहा था। भारतीय संस्कृति और उसके अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष अनिवार्य है परन्तु उन्हें यह भी ज्ञान था कि इस समय भारतीय द्वन्द्व चेतना थकी-हारी, निराश है वह इन प्रतिघाती शक्तियों के मकड़जाल में फँस चुकी है इसलिए विरोध का मूर्त रूप हमें 'भारतदुर्दशा' और 'अंधेरनगरी' में दिखाई नहीं देता परन्तु बेशक से भारतीय जनता इन विरोधी शक्तियों का विरोध करने में अपने आप को असमर्थ समझ रही थी परन्तु भारतेन्दु इनकी शक्ति को भूले नहीं थे इसलिए वे लगातार भूली-बिसरी शक्तियों का स्मरण कराने का प्रयास कर रह थे उन्होनें अपने नाटकों में उस अमूर्त द्वन्द्व विचार को स्थापित किया जो भारतीय जनता को झकझोर सकता था। 'भारतदुर्दशा' में भारत-भाग्य का अपने-आप को कटार मार लेना ऐसा दृश्य था जो किसी भी भारतीय को सोचने पर मजबूर कर रहा था *'' रोअहूँ सब मिलि के आवहू भारत भाई, हा! हा ! भारत दुर्दशा न देखि जाई।"* योगी द्वारा गायी गई करूण लावनी, उस थकी-हारी चेतना को जगाने का भगीरथ प्रयास कर रही थी। भारतेन्दु की दूरदृष्टि देख रही थी कि व्यापारिक बुद्धि वाले अंग्रेज राज में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों की कोई कीमत नहीं है इसलिए इन्हें नष्ट कर यहाँ आलस्य, अंधकार, रोग, सिफारिश फैशन का बोलबाला किया जा सकता है किन्तु भारतेन्दु, व्यवस्था परिवर्तन के हिमायती थे, इसी व्यवस्था-परिवर्तन की प्रेरणा वे अपने नाटकों के माध्यम से देते रहते थे। अपनी संस्कृति और राष्ट्र को सर्वोपरि मानने वाले भारतेन्दु पर राजभक्त और अवसरवादी होने के आरोप लगा दिए जाते हैं और प्रमाणस्वरूप बलिया वाला भाषण का अंश - *'' इतना पाकर भी जो मनुष्य इस संसार-सागर के पार न जाय उसको आत्म हत्या करनी चाहिए। वही दशा इस समय हिन्दुस्तान की है। अंग्रेजों के राज्य में सब प्रकार का सामान पाकर, अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करें तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है।''* दिया जाता है किंतु समसामयिक परिस्थितियों से अवगत कराना, अपनों को चेताना यदि अवसरवादिता है तो फिर क्या ही कहा जाए आगे का उनका कथन *'' .... सब बात में उन्नति हो। धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल-चलन में, शरीर के बल में, मन के बल में, समाज में, बालक में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरूष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति, सब देश में उन्नति करो।''*[11] तब कहाँ से उन्हें राजभक्त कहा जा सकता है उनके द्वारा कही गई बातें ही ऐसे विरोधियों का मुँह बन्द कर देती है। भारतेन्दु पर राजभक्त अथवा अवसरवादी होने के आरोप लगाने से बेहतर तो इनकी बातों को अक्षरक्षः समझने की कोशिश करनी चाहिए। उनका भरसक प्रयास सत्य के शुभफल और असत्य से प्राप्त होने वाले कुफलों की ओर संकेत करने का था इसलिए उन्होनें अंग्रेज़ी संस्कृति ओर साधनों से जो अच्छा सीखा या प्राप्त किया जा सकता है, प्राप्त करने पर ज़ोर दिया। भारतीय संस्कृति धर्म की संरक्षक है पाखण्ड और अंधविश्वास की नहीं। धर्मान्ध लोगों ने धर्म को भी ऐशो-आराम का साधन बना लिया और जनता को धर्म के नाम पर पददलित करने का हर संभव प्रयास किया जा रहा था। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' प्रहसन में भारतेन्दु ने धार्मिक दुष्कृत्य करने वालों का भण्डाफोड़ किया जहाँ धर्म साधन बनकर रह गया और साधु-पंडे, पुरोहित पापाचार में लिप्त भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते नज़र आ रहे थे।

'' पुरोहितः वाह, भगवान करें, ऐसी पूजा नित्य हो, अहा ! राजा धन्य है कि ऐसा धर्मनिष्ठ है, आज तो मेरा घर मांस और मदिरा से भर गया। आहा! और आज की पूजा की कैसी शोभा थी, एक ओर ब्राह्मणों का वेद पड़ना, दूसरी ओर बलिदान वालों का कूद-कूद कर बकरा काटना, 'वाचं ते शुधामि' तीसरी ओर बकरों का तड़पना और चिल्लाना, चौथी ओर मदिरा के घड़ों की शोभा और बीच में होम का कुंड, जिसमें मांस का चट-चटाकर

जलना और उसमें से चिर्राहिन की सुगन्ध का निकलना, वैसा ही लोहू का चारों और फैलना ओर मदिरा की छलक तथा ब्राह्मणों का मद्य पीकर मागल होना, चारों ओर घी और चरबी का बहना।''[12]

धर्म के नाम पर होने वाले पापाचारों का खुल कर विरोध करने वालों में भारतेन्दु अग्रणी थे। क्या इस तरह के कृत्य भारतीय संस्कृति की रक्षा और उसकी उन्नति में कहीं कोई योगदान दे सकते हैं। इन पापाचारों और पापाचारियों से धर्म और संस्कृति की रक्षा करना आवश्यक था जो जनता को धर्मभीरू बना उन्हें अकर्मण्य बना रहे थे। माँस खाने के लिए उनके पास शास्त्र के प्रमाण थे। मांसाहारी और शाकाहारी के बीच की जिद्धोजहद नाटक में देखी जा सकती है '' *............... खूब मजे में मांस कचर-कचर के खाना ओर चैन करना। एक दिन तो आखिर मरना ही है किस जीवन के वास्ते शरीर को व्यर्थ वैष्णवों की तरह क्लेश देना। इससे क्या होता है,''*[13]

भारतेन्दु यहाँ पश्चिम की उस विज्ञापन संस्कृति को हमारे सामने ला खड़े करते हैं जो हमें यह बताती है कि हमें क्या खाना चाहिए? कब खाना चाहिए? भारतेन्दु की दूरदृष्टि ने 150 वर्ष पहले ही विशेषज्ञों और विज्ञापनों के कुप्रभावों की पोल खोल दी थी और आश्चर्य नहीं कि आज हमारे सब कार्यों में Expert की राय कितनी जरूरी है, हम विज्ञापन देखकर पहनना और खाना पसंद करते हैं। विज्ञापन ही हमें बताते हैं कि आज का Trend क्या है? और उन्हीं के अनुरूप हमारा जीवन चल रहा है जिस संस्कृति के बलात्-छिन्न का डर भारतेन्दु को था वही हुआ भी। आज का युवा पश्चिमी संस्कृति में रंगा होकर न तो पूर्ण भारतीय बन पाया और न ही अंग्रेज। हमारी पहचान, हमारा अस्तित्व, हमारे पहनने ओढ़ने का ढंग सभी वे विशेषज्ञ तय करते हैं जो उन वस्तुओं का उत्पादन कर रहें हैं जो हमारे बाज़ार में बिकनी चाहिए। भारतेन्दु की चिन्ता थी कि धर्म के सार तत्व को न पहचानकर माँस, मदिरा को ही जीवन का आवश्यक अंग बनाया जा रहा था और ऐसे लोग धर्मशास्त्रों में प्रमाण एकत्रित करने की कृत्रिम कोशिश कर रहे थे। भारतेन्दु तो 'सार-सार सब गहि लहाँ थोथा दिये उड़ाय' के पक्षधर थे जो उन्नति के साधन हैं उन्हें ग्रहण करना ही चाहिए किन्तु भारतीय स्वयं छद्मवेशधारी अंग्रेज़ों के चंगुल में फंसे अंग्रेजी खानें, अंग्रेजी पहनने और अंग्रेजी सोच के वायवी आकाश में हिचकोले ले रहे थे। भारतीय संस्कृति उन महान संस्कृतियों में है जो किसी का बुरा नहीं चाहती और सभी को उन्नति करते देख हर्षित होती है जहाँ सत्य, निष्ठा, मानवता, एकता, धर्म और सद्भावना का बोलबाला है, जहाँ वीरता दूसरे को पददलित करने में नहीं अपने को बचाए और बनाए रखने के लिए दिखाई जाती है जहाँ सभी के जख्मों पर मरहम लगाया जाता है फिर ऐसी संस्कृति को पददलित कैसे किया जा सकता है? साम्राज्य की भूख कभी समाप्त नहीं होती इसलिए यह सांस्कृतिक लड़ाई आज तक चली आ रही है। इसके लिए किसी एटमबम या परमाणु बमों की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है, मानवता, प्रेम और विवेक की,'जियो और जीने दो' के मूल मंत्र की, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की। इन विचारों को शिरोधार्य कर यदि हम कर्त्तव्य पथ पर चलते रहे तो सभी संस्कृतियों का अस्तित्व बचा रह सकता है, जो भारतेन्दु की मंगल कामना थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : मदन गोपाल, पृ. 94
2. भारतेन्दु हरिचन्द्र : ग्रन्थावली: सं. ओमप्रकाश सिंह भारत दुर्दशा पृ. 114
3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : ग्रन्थावली सं. ओमप्रकाश सिंह, लेख भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो, पृ. 7
4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : और नवजागरण की समस्याएँ रामविलास शर्मा, पृ. 50
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : ग्रन्थावली: सं. ओमप्रकाश सिंह, लेख भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो, पृ. 8
6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : ग्रन्थावली: सं. ओमप्रकाश सिंह, अंधेर नगरी, पृ. 297
7. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : ग्रन्थावली: सं. ओमप्रकाश सिंह, भारत दुर्दशा, पृ. 117
8. वही, अंधेर नगरी, पृ. 289
9. वही, भारतदुर्दशा, पृ. 119
10. वही, भारतदुर्दशा, पृ. 121
11. भारतेन्दु ग्रन्थावली: सं. ओमप्रकाशसिंह, लेख भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो? पृ. 9
12. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भाग - 1, पृ. 70
13. वही, पृ. 53

ISSN 2278 - 0327

उर्वशी का कथालोक

डॉ. अर्चना गौड़
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

'उर्वशी' की कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है। इसका सम्यक् और पूर्ण २परिचय प्रदान करने के लिए इसे अंकानुसार देना ही अधिक उपयुक्त है, अत: यहाँ यह इसी क्रम से दी जा रही है।

प्रथम अंक

सूत्रधार और नटी के परस्पर संवाद से उर्वशी की प्रेम-कथा प्रारंभ होती है। सूत्रधार और नटी पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर के एक मनोरम उद्यान में चाँदनी रात का रसपान कर रहे हैं। जगती के कण-कण में चंद्रमा की रजत-रश्मियां व्याप्त हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश चंद्रमा की किरण रूपी करों से संपूर्ण धरा को अपने आलिंगन-पाश में बद्ध कर लेना चाहता है। इस प्रकार प्रकृति के उद्दीप्त आलंबन को आधार लेकर कवि ने आगामी पुरुरवा-उर्वशा की प्रेम-कथा का संकेत दे दिया है।

मादकता के इन शांत क्षणों में ऊपर आकाश में रशनाओं एवं नूपुरों की ध्वनि सुनाई देती है। बहुत सी अप्सराएँ एक साथ नीचे उतरती हुई दिखाई देती है। नटी का विचार है कि ये अपसराएं 'फूलों की सखियाँ' तथा 'विधु की प्रेयसियां' है। सूत्रधार नटी को समझाता है कि ये न तो फूलों की सखियां है और न ही चंद्रमा की प्रेमिकाएँ है अपितु 'अमुक्त प्रेम को जीवित प्रतिभाएँ' तथा कामासक्त मन की कामनाएँ है। अत: ये धरती और प्रेम का स्पर्श-पान करने के लिए आती है। इसी बीच तीन अप्सराएँ - सहजन्वा, रम्भा और मेनका पृथ्वी पर उतर आती है। नटी और सूत्रधार वृक्ष की छाया में जाकर अदृश्य हो जाते हैं और अप्सराएँ फूल, हरियाली और झरनों के पास घूम कर गाती और आनंद मनाती है।

सम्वेत गान गाने के पश्चात् परियों का परस्पर वार्तालाप दिखाया गया है, वास्तव में यह वार्तालाप मूल कथा तक पहुँचने की भूमिका है। मेनका प्रश्न करती है -'धरती और अम्बर में क्या भेद है?' रम्भा उत्तर देती है कि 'मर्त्यलोक मरने वाला है पर सुरलोक अमर है।' मेनका पुन: रम्भा के उत्तर का स्पष्टीकरण करती हुई कहती है कि हम अमर होते हुए भी बड़ी अभागिनी हैं क्योंकि हमें व्यंजनों की गंध लेकर ही तृप्त होना पड़ता है। हमारी रसना भूतल-वासियों की तरह पदार्थों का रसना द्वारा मधुर स्वाद लेने में असमर्थ है। इस दृष्टि से धरावासी धन्य-भाग्य हैं। यद्यपि इनका जीवन अत्यंत क्षणिक है मगर फिर भी वे अपने दो दिन के जीवन में धधक-धधक बीते हैं।

मेनका द्वारा पृथ्वी की अमित महिमा सुनकर सहजन्या मेनका पर व्यंग्य कसती है कि मुझे अब पता लगा कि तुम धरती की इतने मुक्तकंठ से प्रशंसा क्यों कर रही हो? संभवत: उर्वशी की तरह 'तुम्हारा भी मन कहीं फँसा है? मिट्टी का मोहन कोई अंतर में आन बसा है?'

मेनका को उर्वशी की प्रेम-कथा का ज्ञान नहीं था। अत: सहजन्या बताती है कि एक दिन उर्वशी अपनी सखियों के साथ कुबेर के घर से वापिस इन्द्रपुरी को लौट रही थी। इसी बीच एक राक्षस बाज की तरह उर्वशी पर झपटा और उसे अपनी भुजाओं में समेट कर आकाश में उड़ गया। उर्वशी ने आत्मरक्षा के लिए बड़ा शोर बचाया। क्रन्दन-ध्वनि सुनकर एक राजा उर्वशी की रक्षा करने दौड़ा। राजा और राक्षस दोनों का परस्पर मल्ल-युद्ध हुआ और अंततोगत्वा उर्वशी को उसने उस 'काल-कवल' से मुक्त कर दिया मगर विधि की विडंबना देखिए! उर्वशी उस दैत्य के बाहु-पाश से तो मुक्त हो गई लेकिन उस पुरुषरत्न के प्रेम में फँस गई। यह प्रेम एकांगी नहीं था। धरती पर राजा पुरुरवा विरह की आग से दग्ध हो रहा था और स्वर्गलोक में उर्वशी उस काम-मूर्ति की कठोर बाँहों में अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए व्याकुल हो रही थी। रंभा उर्वशी के इस प्रेम की भर्त्सना करती है। वह कहती है - हम अप्सराओं का जन्म इसलिए नहीं हुआ कि हम किसी एक ही होकर रहे; हम अपने प्रेम की सुरभि किसी एक के लिए

नहीं संजोती, अपितु हम तो 'रचना की वेदना जगा-जग में उमंग भरती है, कभी देवता कभी मनुष्य का आलिंगन करती है।' अत: हमारा आवास तो न जाने कितनों की बाँहों में है फिर भला 'कैसे हम बंधे रहें किसी भी नर की दो बाँहों में।' इसके साथ-साथ रंभा मेनका के सम्मुख एक और प्रबल तर्क उपस्थित करती है कि हम अप्सराओं को धरती पर रहने वाले पुरुषों से इसलिए भी प्रेम नहीं करना चाहिए कि यहाँ रह कर नारी को माता बनना पड़ता है। इससे उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो जाता है और वह अस्थि-पिंजर मात्र रह जाती है। अत: उर्वशी को चाहिए कि वह पुरुष-प्रेम को अपने हृदय से उसी प्रकार उतार फेंके जिस तरह सर्प केचुली को त्याग देता है। मेनका रंभा के इस दम्भ का प्रबल उत्तर देती है। वह कहती है -

'मां बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है?
गलती है हिमशिला, सत्य है, गठन देह की खोकर
पर, हो जाती वह असीम कितनी यशस्विनी होकर।'

इसी बीच उनकी एक सखी चित्रलेखा का आगमन होता है। वह बताती है कि जब से उर्वशी वे पुरुरवा को देखा है वह बड़ी बेचैन है। आज मुझसे कहने लगी कि 'यदि आज कान्त को अंक नहीं पाऊँगी, तो शरीर को छोड़ पवन में निश्चय मिल जाऊँगी' मुझे रोको मत। स्वर्ग में मेरे लिए कहीं भी आनंद की किरण नहीं है। स्वर्ग तो स्वप्नों का जाल है ओर मैं सत्य का स्पर्श पाने के लिए बैचेन हूँ। अत: हे 'चित्रेलेखे! मत देर लगाओ, जैसे भी हो मुझे आज प्रिय के समीप पहुंचाओ।' फिर भला सखियों! मैं क्या कर सकती थी? आज संध्या के समय मैंने उसे खुद अच्छी तरह फूलों से सजाया और सब की आँख बचाकर उसे सुरपुर से बाहर ले आई। धीरे-धीरे उस लोक से उतर कर मैं उसे राजा पुरुरवा के उपवन में छोड़ कर आई हूँ। यद्यपि राजा के महल में एक और भी रानी है, मगर उस विषय में हमें किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए क्योंकि राजाओं का प्रेम किसी एक घाट पर बँध कर नहीं रहता, वे तो नित्य अपनी सुंदरताओं पर मरते ही रहते है।' और फिर उर्वशी का सौंदर्य तो अनुपम एवं शाश्वत है, इसलिए यह (पहली पत्नी) कुल की रानी भले ही बना रहे मगर उर्वशी तो पुरूरवा के हृदय की रानी बनकर ही रहेगी।

लेकिन एक बात है, राजा की व्यग्रता एवं हृदय की बेचैनी से रानी ने यह अनुमान लगा लिया है कि उसके पति अवश्य किसी के प्रेम-पाश में फँस गए हैं, इसलिए पति का प्रेम पाने के लिए चन्द्र-देवता का आराधन कर रही है। इस प्रकार चित्रलेखा तथा अन्य अप्सराओं में संवाद करते-करते रात्रि के केवल चार प्रहर शेष रह जाते हैं। अत: वे मुक्त अम्बर में उड़ जाती है।

द्वितीय अंक

प्रस्तुत अंक की कथा दो तथ्यों को लेकर चली है -

क. पतिव्रता स्त्री की गति और

ख. पुरुष का स्वभाव।

प्रतिष्ठानपुर के राजभवन में महारानी औशनरी अपनी दो अंतरंग सखियों के साथ बैठी हुई वार्तालाप कर रही है। उसे अपनी सखी निपुणिका से पता चलता है कि महाराज से मिलने के लिए स्वर्ग से उर्वशी नाम की एक अप्सरा आई थी, उसके साथ वे कहीं चले गये। उसका सौंदर्य अप्रतिम था, ऐसा लगता था जैसे सर्प के मुख से कान्तिमान मणि बाहर निकली हो। बस क्या बतलाऊँ वह तो 'नर के सुप्त शान्त शोणित में आग लगाने वाली' थी। उस चंद्रमुख को देखकर महाराज पुरूरवा के हृदय में समुद्र के समान ज्वारा-भाटा सा आ गया। उन्होंने दौड़कर उसे अपनी बाहों में भर लिया और वह भी 'पर्वत के पंखों में सिमटी गिरिमल्लिका-लता-सी' महाराज के हृदय में समा गई। महाराज ने उर्वशी से प्रार्थना की कि हे उर्वशी! मैं तुम्हारे मधुमत्त यौवन के सामने बिक चुका हूँ। अत: मुझे वचन दो कि तुम जीवन भर मुझे मिलन-सुख का यह अमित आनंद देती रहोगी।

निपुणिका की यह बात सुनकर औशीवरी का हृदय सन्न रह जाता है। वह सोचती है कि 'जीते जी यह मरण झेलने से अच्छा मरना है।' परंतु पतिव्रता स्त्री मर भी तो नहीं सकती क्योंकि राजा मंत्रियों से कहकर गए हैं कि हम एक वर्ष पर्यन्त गन्धामादन पर्वत पर विचरण करेंगे और लौटने के उपरान्त 'नैमिषेय यज्ञ' (पुत्रेच्छा-यज्ञ) करेंगे। अत: इसी धर्म की रक्षा के लिए तुम्हारा जीना परमावश्यक है। यह सुनकर औशीनरी और अधिक व्याकुल हो उठती है। वह कहती है कि ये प्रवंचिका अप्सराएँ बड़ी कठोर-हृदया होती हैं। अपने क्षणिक विनोद के लिए ये धर्म-गृहिणियों के प्राण ले लेती हैं।

निपुणिका और मदनिका औशीनरी को धीरज बंधाती हुई कहती है कि हे सखी! अपने धीरज के बांध को यूँ मत तोड़ो। पुरुषों का स्वभाव बड़ा विचित्र होता है। उनके हृदय में जब नारी के प्रेम की प्रथम रश्मि आलोकित होती है तब 'दुर्लभ स्वप्न समान रम्य नारी नर को लगती है।' उस समय 'अजय-केसरी सा पुरुष बेसुध होकर उसके चरणों में गिर जाता है। यही एक ऐसा क्षण है जब नारी पुरुष से जो कुछ भी चाहे वही वस्तु ले सकती है। वह चाहे तो -

'उडुओं की मेखला, कौमुदी का दुकूल मंगवा ले
रंगवा ले उंगनियां पर्दो की ऊषा के जावक से
सजवा ले आरती पूर्णिमा के विधु के पावक से।।'

इस पर भी पुरुष की प्रकृति बड़ी निराली है। वह संघर्षशील होता है। वह नित्य नई प्रतिमाओं का प्यार पाने के लिए बैचैन रहता है। भवनिका के मुख से पुरुष की इस प्रकृति का बड़ा ह्रदयग्राही एवं वैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत कराया गया है-

'नयी सिद्धि-हित नित्या नया संघर्ष चाहता है नर,
नया स्वाब नव अव नित नूजन हर्ष चाहता है नर।
....
ग्रीवा में झूलते कुसुम पर प्रीति नहीं लगती है।
जो पद पर च? गई, चाँदनी फीकी वह लगती है।'

लेकिन -

'प्रियतम को रख सके निमक्जित जो अतृप्ति के रस में,
पुरुष बड़े सुख से रहता है उस प्रमदा के बस में।'

अब औशीनरी की समझ में आता है कि प्रियतम मेरे हाथ से कैसे निकल गए। उसने तो एक पतिव्रता नारी का धर्म पालन करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करके तृप्त करने का प्रयत्न किया। यदि वह भी अतृप्ति का मार्ग अपनाती तो उसके प्रियतम कभी भी उसे छोकर नहीं जाते।

इसी बीच कंचुकी का प्रवेश होता है। वह बताता है कि जो सैनिक भट्टारक (पुरूरवा) को गन्धमादन तक छोड़ने के लिए गए थे वे संक्षेम राजा को छोड़कर वापिस नगर में लौट आए हैं। महाराज ने उनके हाथ आपके लिए यह संदेश भेजा है - 'यहाँ का जलवायु बहुत सुखद है। यहाँ की स्वास्थ्यदायी पवन, शीतल जल वाली झीलें, लंबे-लंबे चीड़ के वृक्ष और पहाड़ों पर हिमराशि मुझे काफी रुचती है लेकिन एक वंशधर के बिना सब कुछ सूना लगता है। हे प्रियतमे! क्या कभी अपने घर में प्रेम का दीपक नहीं जलेगा? क्या यह दिव्य ऐन-वंश आगे नहीं चल सकेगा? अत: तुम ईश्वर से पुत्रेच्छा की प्रार्थना करती रहो। देखना, तुम्हारी धर्म-साधना में कहीं किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होनी चाहिए। मैं भी, यहाँ ईश्वर के आराधन में रत्त रहकर कुल-दीपक की ऐषणा करता रहूँगा।'

राजा का यह विचित्र संदेश सुनकर रानी बेबसी में मुस्कराने लगती है। वे तो अप्सरा के साथ रमण करने को ईश्वर की साधना बताएं और मैं इस सूने भवन में पुत्रेषणा करती रहूं? वैसा विलक्षण न्याय है? पति के संसर्ग बिना पुत्र क्या आकाश से टपक पड़ेगा? नारी कितना असहाय है? वह अन्य किसी को अपना दु:ख-दर्द भी तो नहीं बता सकती। अपनी हूक को जिह्वा पर लाना भी उसको शोभा नहीं देता। फिर भी -

'प्रियतम जहाँ भी हों, बिछे सर्वत्र पथ में फूल हों।'

तृतीय अंक

यह अंक उर्वशी रूपी काव्य-वृक्ष का तना है। इसमें एक ओर जहाँ काव्यत्व की निर्मल लहरियां है वहाँ दूसरी और दर्शन की गहन गंभीरता भी है।

अंक का प्रारंभ गन्धमादन-पर्वत पर बैठे हुए पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम-प्रसंग से होता है। उर्वशी अपने पुरावृत्त को दोहराती हुई कहती है कि जब मैं तुम्हारा प्रथम-दर्शन करके सुरपुर लौटी तो अहर्निश तुम्हारा दिव्य रूप मेरी आँखों पर छाया रहता था। समय काटते नहीं कटता था। ऐसा लगता था जैसे किसी विशाल अजगर ने इसे अपने आक्रोश में दबा लिया हो। दूसरी ओर पुरूरवा की भी यही दिशा थी। वह कहने लगा कि तुम्हारे जाने पर मुझे ऐसा लगा जैसे 'छूट गये हों प्राण उन्हीं उज्ज्वल मेघों के वन में।' कई बार इच्छा हुई कि इंद्रदेव से तुम्हारी भीख मांग लूँ मगर फिर 'मन ने टोका' 'क्षत्रिय भी भीख माँगते है क्या? और प्रेम क्या कभी प्राप्त होता है भिक्षाटन से।' लेकिन मुझे अपने प्रेम पर पूर्ण विश्वास था, इसलिए ह्रदय बार-बार कहता था कि तुम भूतल पर जरूर आओगी। उर्वशी ने कहा कि मैं चली तो आई मगर स्वयं चली आने में मुझे उस स्वाद की उपलब्धि नहीं हुई जो उन नारियों को होती है, 'जिन्हें प्रेम से उद्वेलित विक्रमी पुरुष बलशाली, रण से लाते जीत या कि बल सहित हरण करते हैं।' पुरूरवा इन दोनों कर्मों की भर्त्सना करता है और प्रेम की आंतरिक गहराई तक पहुँचने की इच्छा प्रकट करता है। उर्वशी यह सुनकर स्तब्ध हो जाती है क्योंकि देवों की जिस शीतलता को छोड़कर वह इस धरा पर आई थी यहाँ पुरू के चित्त में भी उसी का अंश दृष्टिगोचर होने लगा। भयाक्रांत होकर उर्वशी कहती है -

'तन से मुझ को कसे हुए अपने दृढ़ आलिंगन में,
मन से, किन्तु विषण्व दूर तक कहाँ चले जाते हो।'

पुरूरवा नहीं जानता कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। परंतु इसके ह्रदय में, इस सूक्ष्म भावना का उदय होता है कि 'रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।' शारीरिक सौंदर्य से परे हटकर जब मैं तुम्हें एकावत मन से देखता हूँ तो मेरे भाव व्यष्टि से समष्टि की ओर चल पड़ते हैं और त्रिलोक में मुझे केवल तुम्हारे ही सौंदर्य के दर्शन होते हैं। उस समय यह सिंह पुष्प के समक्ष शक्ति के रहते हुए भी निरूपाय होकर गिर जाता है लेकिन तुम यह मत समझना कि प्रेम की इस व्यापकता के कारण में 'तुम्हें छोड़कर आकाश में

विचरण करूँगा'; क्योंकि मैं मरणशील प्राणी हूँ। देवतत्त्व का संतोष एवं शीतलता मेरे लिए दुष्प्राप्य हैं। क्योंकि-

'देवताओं की नदी में ताप की लहरें न उठतीं
किन्तु, नर के रक्त में ज्वालामुखी हुंकारता है'

पुरू के चित्त में देवतत्त्व की चाह देखकर उर्वशी और अधिक बेचैन हो उठती है, क्योंकि देवों की जिस शीतलता को छोड़कर वह नर के उत्तप्त रुधिर को अपना समर्पण करने आयी थी यदि वह भी देव-लालसा में डूब गया तो जगती पर मेरा आना व्यर्थ हुआ। अत: उर्वशी पुरूरवा के चित्त में इस धारणा का उपस्थापना कराना चाहती है कि तुझ में मनुजत्व और देवतत्त्व दोनों ही निवास करते हैं –

'यह तो नर ही है, एक साथ जो शीतल औ ज्वलित भी है,
मन्दिर में साधक व्रती, पुष्प वन में कंदर्प ललित भा है।'

इस पर भी यदि तुम अपनी मधुर कांति से मुझे मोहित कर लोगे तो फिर तुम मनुज नहीं, देवता हो जाओगे। पुरुरवा 'बुद्धिवादी' बन कर उर्वशी के इस कथन पर विचार करना चाहता है। उर्वशी 'रक्त' के सामने बुद्धि की हेयता सिद्ध करती है-

'रक्त बुद्धि से अधिक चली है और अधिक ज्ञानी भी,
क्योंकि बुद्धि सोचती ओर शोणित अनुभव करता है।
निरि बुद्धि की निर्मितियां निष्प्राण हुआ करती है;
चित्त और प्रतिभा, इनमें जो जीवन लहराता है
वह सूझों से नहीं पत्र पाषाणी में आया है
कलाकार के अन्तर के हिलकोरे हुए रुधिर से।'

अत: इस वैराग्यवादी भावना को छोड़कर 'रक्त की भाषा' को पड़ा और इस पर पूर्ण रूप से विश्वास करो।

पुरुरवा इस बात को स्वीकार करता है कि रक्त बुद्धि से अधिक बली है, लेकिन रुधिर एवं त्वचा को आनंद ही सब कुछ नहीं है। हमें इससे भी ऊपर उठकर ऐसे स्थान पर जाना है 'जहाँ न उठते प्रश्न, न कोई शंका ही जगती है।' अत: देह-धर्म से ऊपर उठकर हमें अंतरात्मा तक उठना चाहिए। मगर यह पथ बड़ा दु:साध्य है, क्योंकि –

'पहले तो मधुसिक्त भ्रमर के पंख नहीं खुलते हैं,
और खुले भी तो उड़ान आधी ही रह जाती है
नीचे उसे खींच लेता है आकर्षण बधुबन का।'

अत: यह प्रेम ही नर की ऊर्ध्व प्रगति में बाधक है। उर्वशी से यह नहीं देखा जाता। वह नर के मर्मान्तर कठोर आंलिगन-पाश की भूखी है। इसलिए वह अपने प्रेमी से करबद्ध याचना करती है-

'पर, मैं बाधक नहीं, जहाँ भी रहो, भूमि या नभ में,
वक्षस्थल पर इसी भाँति मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो बस इसी भाँति उर-पीड़क आलिंगन में
और जलाते रहो अधर-पुट को कठोर चुम्बन में।'

फिर पुरुरवा का 'विराग' से ध्यान मोड़ने के लिए उद्दीपन रूप में रात्रि का उल्लेख करती है। इस प्रकार पार्थिव एवं आत्मिक प्रेम में काफी देर तक संघर्ष चलाता रहता है। पुरुरवा के मन में 'एक और देवत्व की ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ, दूसरी ओर उफनाते हुए रक्त की अप्रतिम पुकार और पग-पग घेरने वाली ठोस वास्तविकता अभेद चट्टानें, जो हुक्म नहीं मानतीं, जो पिघलना नहीं जानती'-उठती है। वह 'हवा और पत्थर के दो छोरों के बीच झटके खाता है, और झटका खाकर, कभी इस ओर, और कभी उस ओर को मुड़ जाता है –

कभी प्रेम! कभी संन्यास!

और संन्यास प्रेम को बर्दाश्त नहीं कर सकता, न प्रेम संन्यास को, क्योंकि प्रकृति और परमेश्वर संन्यास है और मनुष्य को सिखलाया गया है कि एक ही व्यक्ति परमेश्वर और प्रकृति, दोनों को प्राप्त नहीं कर सकता –

'उर्वशी पूछती है, क्या ईश्वर और प्रकृति दो है?
क्या ईश्वर प्रकृति का प्रतिबल है, उसका प्रतियोगी है?
क्या दोनों एक साथ नहीं चल सकते?
क्या प्रकृति ईश्वर का शत्रु बनकर उत्पन्न हुई है
अथवा, क्या ईश्वर ही प्रकृति से रुष्ट है?'

काफी विस्तार से उर्वशी इन प्रश्नों का समाधान करने का समाधान करने का प्रयत्न करती है तथा पुरुरवा के चित्त में प्रकृति और संन्यास में अभेद स्थापित करने का प्रयत्न करती है। उसका विचार है कि परमज्योति त्रिलोक के स्थूल और सूक्ष्म-दोनों तत्त्वों में विद्यमान है। अत: मनुष्य कर्म करते हुए भी उसको प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार दोनों में आवेशित उद्गारों का यह क्रम काफी देर तक चलता रहता है। लेकिन फिर भी, पुरुरवा के लिए उर्वशी और उसके विचार रहस्यमयी बने रहते हैं। उसे लगता है कि उर्वशी से उसका जन्म-जन्मांतर का संबंध है। वे कहते हैं –

'आगे तुम जहाँ-जहाँ जाओगी,
साथ चलूंगा मैं सुगन्ध से खिंचे हुए मधुकर-सा।'

प्रेमालाप के इन मधुरिम क्षणों में, देखते-देखते एक वर्ष व्यतीत हो जाता है। यह वर्ष ऐसे कट गया जैसे अभी दो पल ही बीते हों। पुरुरवा यज्ञ-हेतु राजभवन जाने के लिए तत्पर हैं, अत:

अनिश्चित काल के लिए युगल प्रेमी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

चतुर्थ अंक

इस अंक में च्यवन-सुकन्या के आश्रम में पुरुरवा-उर्वशी के पुत्र आयु का पालन-पोषण होता हुआ दिखाया गया है। आयु का जन्म तब हुआ था जब उसके पिता उसकी माँ से अलग रहकर यज्ञ कर रहे थे। उर्वशी का ऋषि भरत का शाप था कि तुझे पति और पुत्र दोनों एक साथ नहीं मिल सकते। शाप का कारण यह था कि एक बार देवलोक में उर्वशी पुरुरवा के प्रेम में ध्यानावस्थित थी। इसी बीच भरत-ऋषि भिक्षा के लिए उर्वशी के लिए द्वार पर आये। भरत के बार-बार पुकारने पर भी वह ध्यान-समाधि से अलग हटकर उनके आदर-सम्मान को नहीं उठी। क्रोध में आकर भरत ने शाप दिया कि हे उर्वशी! तू जिसके ध्यान में इतनी डूबी हुई है कि तुझे मेरे आगमन का भी ध्यान नहीं है तो जा, तू उसी के लिए मर्त्यलोक में अपने प्रेमी के साथ प्रेम-क्रीड़ा करके धरती के प्रेम की पीड़ा सह। मगर, ध्यान रख, तुझे प्रेमी तथ पुत्र में से एक का ही सुख उपलब्ध हो सकता है। यह सुख भी तू केवल तब तक पा सकेगी, जब तक तेरे प्रियतम तुम दोनों के परस्पर संयोग से जनित पथ को नहीं देखेंगे। जिस दिन वे पुत्र के दर्शन कर लेंगे उसी क्षण तुझे अपने पित तथा पुत्र दोनों को छो ?कर इंद्रलोक में पुनः आ जाना पड़ेगा। इसलिए पुत्रोत्पत्ति का समाचार पति को नहीं दिया था और उसे च्यवनाश्रम में रख छोड़ा था।

च्यवन ऋषि बहुत बड़े तपस्वी थे। एक बार वे नर्मदा तट पर घोर तप करते हुए बहुत दिनों तक समाधिस्थ रहे। इनके शरीर को दीमकों ने ढ़ंक लिया, केवल आँखें चमकती रहीं। उनके इस आश्रम में एक बार राजा ययाति की कन्या सुकन्या पहुँची और इनकी आँखों को जुगनू समझकर कौतूहल से ही मुनिवन की पलकें खींच लीं। ऋषि उसके इस व्यवहार से क्रुद्ध हो उठे। उनके क्रोध को देखकर सुकन्या तनिक भी नहीं हिला और प्रायश्चित करती हुई आँखें झुकाकर खड़ी रह। सुकन्या का सौम्य-मुख देकर ऋषि का क्रोध हवा हो गया। उन्होंने समझा कि सुकन्या को परब्रह्म से प्रसन्न होकर सिद्धि के रूप में मेरे पास भेजा है। वे सुकन्या से जीवन-संगिनी बनने की याचना करने लगे। सुकन्या ने ऋषि के पवित्र प्रेम से प्रभावित होकर उन्हें अपनाप पति स्वीकार कर लिया। इस प्रसंग से सुकन्या के मुख से तथा-कथित प्रेम-संन्यास का समन्वय दिखाया गया है। संन्यासी होते हुए भी जब च्यवन सुकन्या को अपनी भुजा-पाश में बद्ध करने के लिए लालायित हो उठते हैं, तब हमें यहाँ प्रकृति और संन्यास का अन्योन्याश्रित संबंध दृष्टिगत होता है।

सुकन्या को जब उर्वशी की सखी चित्रलेखा से उर्वशी के शाप का ज्ञान होता है, तो वह बड़ी चिंतित होती है। वह उर्वशी से कहती है कि भरत ने यह बड़ा भयंकर शाप दिया हे, क्योंकि -

'कौन भामिनी है, जो अंगज पुत्र और प्रियतम में
किसी एक को लेकर सुख से आयु बिता सकती है?
कौन पुरन्ध्री तज सकती है पति के लिए तनप को
कौन सती सुत के निमितत स्वामी को त्याग सकेगी।'

इस प्रकार चित्रलेखा-सुकन्या; सुकन्या-उर्वशी एवं उर्वशी-चित्रलेखा के बीच भरत के शाप, मातृत्व तथा शाप की कठोरता के विषय में काफी संवाद होता है। उर्वशी इस बात को स्वीकार करती है कि माता वह नहीं है जो पुत्र को जन्म देती है, अपितु असली मायने में माता वही है जो छाती से लगाकर बच्चे का पालन-पोषण करती है। अतः आयु की माता उर्वशी नहीं सुकन्या ही है क्योंकि जन्म देने वाले से पालने वाला बड़ा है।

पुरुरवा के पास जाने से पूर्व सुकन्या उर्वशी से आयु के भविष्य के बारे में पूछती है। उर्वशी अपने स्वार्थ को पीछे हटाकर सुकन्या को यह पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करती है कि जब तुम उचित समझो तब आयु को उसके पिता के पास भेज देना। मेरे ऊपर तो जो पहाड़ टूटेगा उसे एक न एक दिन तो झेलना ही है क्योंकि अपने पुत्र के सुवर्णमयी भविष्य को मैं अपने सुख के लिए गहन गर्त्त में नहीं डाल सकती।

सुकन्या उर्वशी को धीरज बंधाते हुए कहती है कि हे सखि! तुम प्रियतम के पास रहकर आयु की चिंता मत करना। यह मेरी आँखों का तारा है। इस आश्रम में मैं बच्चे को किसी प्रकार भी तुम्हारा अभाव नहीं होने दूंगी। शैशवास्था में यह पशु पक्षियों के साथ आनंदपूर्वक क्रीड़ा करेगा; बड़ा होकर गौओं को चराने जाएगा; यज्ञ-वेदी पर बैठकर मंत्रादि का उच्चारण करके पण्डित हो जाएगा। अतः -

'शस्त्र-शास्त्र-निष्णात, अंग से बली, विभाजित मन से
जब अपना यह आयु पूर्ण कैशोर प्राप्त कर लेगा,
पहुँचा दूँगी स्वयं इसे ले जाकर राजभवन में।
तब तक जा, पीयूष पान कर तू मृण्मयी मही का
चिंता-हित अशंक, आयु को कोई त्रास नहीं है।'

इस प्रकार 'आयु' की तरफ से निश्चिंत होकर उर्वशी प्रिय के आलिंगन में बंधने के लिए राजभवन में चली जाती है।

पंचम अंक

उर्वशी राजा पुरुरवा के पास चली आती है। वहाँ आए हुए

उसे सोलह वर्ष हो गए। एक रात राजा को एक विचित्र स्वप्न आता है। पुरुरवा इस स्वपन को देखकर बड़े व्यग्र हो उठते हैं। राज-दरबार लगाकर इसे अपने महामात्य तथा राज-ज्योतिषी विश्वमना के सामने कहते हैं। स्वप्न यों था -

'प्रतिष्ठानपुर में काफी शोर मचा हुआ है। पुरवासी कहीं से वट-वृक्ष का नया पौधा लाए हैं और उसे कच्चे दूध से पूज रहे हैं। मैं भी दुग्ध-कलश लेकर उसकी अर्चना-हेतु जाता हूँ, मगर कोई भी नगर-निवासी मेरी तर? नहीं देखता। निराशा से भरकर मैं हाथी पर बैठकर प्रतिष्ठानपुर से बाहर किसी जंगल में चला जाता हूँ। वन में हाथी से उतर कर मैं जब इधर-उधर देखता हूँ तो इसी बीच हाथी लोप हो जाता है। निर्जन वन में भटकता हुआ मैं च्यवन ऋषि के आश्रम में पहुँच जाता हूँ। वहाँ मैंने एक ऋषिकुमार को देखा। उसका व्यक्तित्व बड़ा भव्य था। उसे अपने अंक में समेट लेने को मैं व्याकुल हो उठा, लेकिन जैसे ही मैंने उसे पकड़ने के लिए अपने कदम बढ़ाए, वैसे ही वह न जाने किस अंधकार में समा गया। फिर मुझे हर लता-कुंज में मेरी परम प्रियतमा उर्वशी का मुख दिखाई देने लगा, मगर जिस तरफ भी स्पर्श करने के लिए बढ़ता था उसी तरफ वह कुसुम-आनन पुष्प-पत्तों की हरियाली में छिप जाता था। इस प्रकार चकित, विस्मित और भयभीत होकर मैं अवनीतल को छोड़कर उर्ध्वगगन पर पहुँच जाता हूँ और प्रात: आँख खुलने तक जलद-खण्ड सा तैरता रहता हूँ।'

पास मैं बैठी उर्वशी इस स्वप्न को सुनकर असंज्ञ हो जाती है, क्योंकि उसके समक्ष संपूर्ण पुरावृत्त चित्रपट के समान आँखों के सामने घूमता हुआ दिखाई देता है। ज्योतिषी विश्वमना अंक-गणना करने के पश्चात् राजा को फलादेश देते हैं कि मेरी गणना के अनुसार -

'..................................आज संध्या तक
आप प्रव्रजित हो जाएँगे अपने वीर तनव को
राज-पाट वन-घाम सौंप, अपना किरीट पहनाकर।'

फलादेश देने पर विश्वमना स्वयं चकित है कि जब राजा के कोई पुत्र ही नहीं है तो संध्या तक कौन राजा बनेगा और राजा पुरुरवा कैसे प्रव्रजित हो जाएँगे?

इसी बीच सुकन्या 'आयु को लेकर दरबार में उपस्थित हो जाती है और संपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन कर देती है। शाप-वश उर्वशी धरती को छोड़कर सुरपुर में चली जाती है। पुरुरवा उर्वशी को अपने पास न पाकर बेचैन हो उठता है। सुकन्या भरत-शाप की घटना बताकर राजा को शांत करने का प्रयत्न करती है, मगर पुरुरवा का चित्त अशांत हो जाता है। वह देवलोक को भस्मीभूत करने के लिए स्यन्दन को सज्जित करने की आज्ञा देता है। राजा के इस भयंकर रौद्र रूप को शांति करने के लिए भविष्यवाणी होती है। उसे आत्मज्ञान होता है कि देवता मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है तो क्या तुम शैतान-प्रवृत्ति के द्वारा अपनी ही श्रेष्ठ-प्रवृत्ति का हनन करना चाहते हो।

धीरे-धीरे पुरुरवा का चित्त प्रतिक्रिया की भावना से शांत हो जाता है, मगर उर्वशी के बिना इस राजभवन में अपने आपको रखने में असमर्थ देखकर 'आयु' के मस्तक पर किरीट रखकर तत्क्षण वनों में चला जाता है।

राजभवन में यह सब कुछ देखते-देखते ही संपूर्ण हो गया। जब पुरुरवा की रानी औशीनरी को इस संपूर्ण घटना का पता लगता है तो वह स्तम्भित हो जाती है। पति का बिना किसी पूर्वसूचना के सदा के लिए चला जाना उसे बहुत अखरता है, मगर नारी की विवशता को देखकर वह बेचारी शांत हो जाती है और आयु को ही अपने अंक से लगाकर धन्य हो जाती है।

ISSN 2278 - 0327

वर्तमान शिक्षा में जैनदर्शन शिक्षणविधियों का प्रभाव

डॉ. डम्बरुधर पति
सहायक आचार्य (शिक्षाशास्त्रविभाग)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
भोपाल परिसर, भोपाल. म.प्र

आधुनिक भारत में आधुनिक शिक्षा किसी एक धर्म या परम्परा को लेकर नहीं बनाई गई। अपितु सर्वधर्म समन्वय भाव से शिक्षा से लेकर मानव के व्यावहारिकपक्षों को भी जोड़ा गया है। अर्थात् प्रत्येक धर्म का निष्चित रूप से शिक्षा में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव है। प्रत्येक धर्म का लक्ष्य एक है। जिस लक्ष्य को स्वीकार करते हुए अलग अलग उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है। उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए विविध विधि-प्रविधियों की व्यवस्था की गई है। प्राचीन परम्परा से वर्तमान तक शिक्षा के विभिन्न अंग-उपांग के विकास के लिए विविध पक्ष को स्वीकार किया गया है। समयानुकूल भी शिक्षा का क्रम में परिवर्तन आया है। यथा- वैदिककालीन शिक्षा में वेदादि पठन के साथ छात्रों का दिनचर्या भी गुरुकूलानुसार होती थी। तदनु जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ब्रिटिषकालीन शिक्षा, विविध भारतीय आयोग तथा स्वतन्त्रता के बाद भारतीय संस्कृति के आधार पर आयोग का निर्माण शिक्षा के लिये बनाया गया है।

प्राचीन परम्परा से आज तक शिक्षा के विविध व्यवस्थाओं के एक हि मुख्य लक्ष्य है, छात्रों को ज्ञान देना तथा ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में अनुपालन के लिए प्रेरणा देना। इस लिए समयानुसार विविध उद्देश्य तथा विधियों का प्रयोग किया गया है। समयानुकूलीन प्रत्येक उद्देश्य तथा विधियों के सामुदायिक स्वरूप का प्रभाव वर्तमान शिक्षा प्रणाली में झलकता है। यथा जैन दर्शन के शिक्षा उद्देश्य तथा विधियों का। मन में प्रश्न प्रस्फुटित हो रहा है, जैन दर्शन के शिक्षोद्देश्य तथा विधि क्या है? और वर्तमान शिक्षा में प्रभाव कैसे ? इसका विशद विवरण निम्नलिखित है।

जैन दर्शन के शिक्षोद्देश्य-

1. **चपलता रहित होना-**
   विद्यार्थियों को चार प्रकार चपलताओं का त्याग करना,
   यथा-क. गति चपलता-शीघ्रता से न चलना।
   ख. स्थिति चपलता- हाथ पैर आदि व्यर्थ में न हिलाना।
   ग. **भाषा चपलता-** असत्य और असम्बद्ध भाषण न करना।
   घ. **कार्य चपलता-** एक कार्य समाप्ति से पूर्व दूसरा कार्य करने में चपलता।
2. किसी का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिए।
3. शीघ्र शान्त होने वाला क्रोधी।
4. मित्रता का निर्वाह।
5. अनहंकारी।
6. स्वाध्यय पर बल।
7. कलह से निवृत्त।
8. संयम।
9. सम्यक् चरित्र निर्माण।
10. सम्मान।

इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य निर्माण किया गया है। न केवल विद्यार्थियों के लिए अपितु सामाजिक व्यक्तियों के लिए भी निर्देश था। यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार करेंगे तब क्या यह 10 उद्देश्य केवल जैन धर्मालम्बी छात्रों के लिए है? अन्य धर्म के व्यक्ति इससे विपरीत कार्य करेंगें? अत: आधुनिक शिक्षा में भी पूर्णतया इस उद्देश्यों को समाहित किया जाता है एवं पूर्णरूप से वर्तमान शिक्षा में प्रभाव है। इस उद्देश्यों में उपदेशानुकूल वाक्य निहित है। यथा-

1. चपलता रहित होना-

''चपलता'' यह गुण प्रायश: छात्रों का हि है। शीघ्रातिशीघ्र प्रत्येक कार्य को सम्पादन करते हैं। जो कि सफल नहीं हो पाते हैं। अत: चार प्रकार के चपलता से रहित हो कर कार्य करने का निर्देश जैन दर्शन में कहा गया विशेषत: ज्ञान प्राप्ति में इसका महत्त्व अधिक है। कारण ज्ञान एक सूक्ष्म तत्व है। यदि शीघ्रता के साथ उस ज्ञान को प्राप्त करना चाहेगें तब निश्चित रूप से असफल रहेगें। अत: यह शिक्षोद्देश्य पूर्णतया सिद्ध है।

2. स्वाध्ययन पर बल– न केवल एक धर्म के आधार पर निर्देश दिया गया है अपितु समूह भावना से शिक्षा के प्रति प्रेरणा इस उद्देश्य से दिया जा रहा है। वैदिक काल में भी ''स्वध्यायान्मा प्रमद:'' वाक्य का प्रयोग किया जाता था। अर्थात् आजीवन स्व पठन के उपर ध्यान देना चाहिए। यह निर्देश भी एक उद्देश्य है।

अर्थात् विचारों से व्यक्त हो रहा है– यदि वर्तमान शिक्षा को गुणात्मक रूप से परिवर्तन करना हम चाहते हैं तब यह जैन दर्शन के शिक्षोद्देश्य भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जिसे शिक्षा में प्रयोग किया जा सकता है।

परं प्रश्न यह आता है– आज के समाज में इस प्रकार के उद्देष्यों को छात्र कैसे प्राप्त प्राप्त करेगें। इस उद्देश्यों को प्राप्त कराने के लिए विविध विधियों का प्रयोग किया गया है। यथा–

1. स्वाध्याय विधि.
2. प्रश्नोत्तर विधि
3. प्रमाण विधि
4. निक्षेप विधि
5. निसर्ग विधि
6. पाठ विधि
7. श्रवण विधि
8. पदविधि
9. व्याख्या विधि
10. शास्त्रार्थ विधि
11. कथा, रूपक, तुलना, उदाहरण विधि
12. संगोष्ठी विधि

इसका विशद विवरण विविध ग्रन्थों में भी प्राप्त होतें हैं। तथापि समान्य चर्चा निम्नलिखित है। यथा–

1. स्वाध्याय विधि–

स्वाध्याय से मन का निरोध होता है तभी इन्द्रयों का निरोध होता है। सतत् स्वाध्याय से ही व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियाँ विकसित होती है। अच्छी तरह से श्रमपूर्वक अभ्यस्त विद्या ही ऐहिक और पारलौकिक कार्यों को सफल करती है। स्वाध्याय के पांच भेद हैं– वाचाना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा आम्नाय तथा धर्मोपदेश।

2. व्याख्या विधि–

शब्दों द्वारा सामान्य या विशेष रूप से जितना भी व्याख्यान किया जाता है, वह सब भाषा के अन्तर्गत आता है। क्योंकि भाषा ही अभिव्यक्ति का माध्यम है। ग्रन्थों के स्पष्टीकरण के तीन मार्ग हैं– भाषा, विभाषा तथा वार्तिक। व्याख्या की अन्य विधियाँ पंजिका, पद्धति तथा चूलिका आदि है।

3. शास्त्रार्थ विधि–

इसका दूसरा नाम विजिगीषु कथा भी है। जैन न्याय के सभी ग्रन्थों में इसका निरूपण पाया जाता है। इस विधि में पूर्व पक्ष तथा उत्तर की स्थापना पूर्वक विषयों की जानकारी प्राप्त की जाती है। जैन दर्शन में शास्त्रार्थ के दो रूप उपलब्ध होते हैं–

1. पत्र परीक्षा
2. ग्रन्थ परीक्षा।

इन शिक्षण विधियों के वैज्ञानिक विवेचन से स्पष्ट होता है कि इनमें से अधिकांश विधियाँ समानान्तर प्रचलित शास्त्रों के शिक्षणार्थ भी प्रयुक्त होती थी।

वर्तमान समय में भी इनका प्रयोग देखा जा सकता है। जो नूतन विधियाँ सम्प्रति प्रचलित है वे भी इन विधियों का ही विकसित तथा परिष्कृत रूप है। जैन परम्परा का यह विषिष्ट निहितार्थ है।

सन्दर्भग्रन्थ–

1. डॉ. एल. के. ओड–शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि–राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. डॉ. एस.एस.माथुर– शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार–अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

नारी सह-शक्तिकरण : मानवीय मूल्य

डॉ. मुनेश देवी
शोध निर्देशिका, विभाग: संस्कृत
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

डीम्पल
शोध छात्रा, विभाग: संस्कृत
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

सारांश:- आधुनिक संस्कृत साहित्य का प्रादुर्भाव पंडित अम्बिका-दत्त व्यास से माना जाता है। परन्तु आधुनिक संस्कृत साहित्य के आयोजक और समीक्षक 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आधुनिक संस्कृत साहित्य का उन्मेष स्वीकार करते हैं। डॉ० शुक्ल 20वीं शताब्दी के द्वितीय दशक को संस्कृत साहित्य का नवजागरण काल कहते हैं। वस्तत: संस्कृत में प्रभूत साहित्य सर्जन हुआ और साहित्यसजना का यह प्रवाह वर्तमान समय तक निरन्तर होता आया है।

मुख्य शब्द:- आधुनिकता, प्रतिक्रिया, सम्प्रत्यय, समतामिक्ता

प्रस्तावना:- अब आधुनिक साहित्य की बात होती है तो आधुनिकता का प्रश्न स्वत: उपस्थित हो जाता है। आधुनिकता का अर्थ प्राय: परम्परा से भिन्न माना गया है। परन्तु आधुनिकता और आधुनिक संस्कृत साहित्य पर कुछ विचार करनाआवश्यक है। डॉ. शुक्ल आधुनिकता का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं - "आधुनिकता अर्थविस्तार एवं कार्यक्षेत्र की दृष्टि से अत्यंत व्यापक शब्द है और इसकी कालसीमा का निर्धारण करना सरल कार्य नहीं है। साधारणतया आधुनिकता से यही अर्थ लिया जाता है कि जिसमें पुरातन के प्रति विद्रोह और नवीन के प्रति आकर्षण हो, किन्तु इस प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया लो चिरतन काल से चली आ रही हैं"।[1] इसी विषय पर आचार्य श्रीनिवास रथ का मानना है कि वैचारिक धरातल पर आधुनिकता का पर प्रश्न आधुनिक साहित्य से भिन्न एक स्वतन्त्र प्रश्न है।

संस्कृत साहित्य की सुदीर्घ परंपरा में जीवन और जगत के बदलते हुए परिदृश्य और नवनवोन्मेशशालिनी प्रतिभा के अनुरूप साहित्यिक अभिव्यक्ति के धरातल भाषिक संरचना की नवीनता के साथ बदलते रहते हैं। इस प्रकार बदलते हुए परिवेश में प्रत्येक समसामयिक नव आन्दोलन यो तो अपने काल में आधुनिक ही कहलाता है परन्तु आधुनिकता के अधुनातम संप्रत्यय से उसका सम्बन्ध हो यह आवश्यक नहीं"।[2]

प्रो०कमलेश दत्त त्रिपाठी आचार्यश्रीनिवासरथ की संस्कृत काव्यधारा को समसामयिकता का जागरूक स्वर मानते हैं। प्रो. रथ की कविता को प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं:- "समकालीनकविता आधुनिकता एवं पारंपरिकता के संतुलन को बनाए हुए है। आधुनिकता एवं पारम्परिकता के इस संतुलन के प्रति चिंता आधुनिक सचेत संस्कृत कवि की प्रमुख चिंता है। श्रीनिवास रथ इस सावधान दृष्टि के सचेत कवि हैं।"[3] आधुनिक संस्कृत साहित्य के सर्जक एवं समीक्षक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी अपने ग्रन्थ "संस्कृत साहित्य 20वीं शताब्दी" में समसामयिकता और आधुनिकता पर विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं:-"इस काल की संस्कृत रचनाओं में इतिहास-पुराण से सम्बद्ध विषयों के अतिरिक्त आधुनिक इतिहास एवं आधुनिक जीवन से भी सन्दर्भ, दृश्यालोक या विषय उठाए गए हैं पर मिथक का प्रस्तुतीकरण आज की संवेदना को छू सके, ऐसी दृष्टि रचनाकार में नहीं दिखाई देती।[4]

प्रो०त्रिपाठी जी की समीक्षात्मक एवं विश्लेष्णात्मक दृष्टि यह स्वीकार करती है कि समकालीन संस्कृत लेखन में पारम्परिक विधान तथा जीवन दृष्टि के साथ आधुनिकता का कहीं-कहीं साभिप्राय समागम हुआ है।

इन सभी आचार्यों तथा अन्य भी समीक्षाओं को दृष्टिपथ पर रखते हुए इस लेख के माध्यम से कुछ रचनाकारों की रचनाओं के आधार पर आधुनिकता और जीवन मूल्य के प्रश्न पर विचार करने का प्रयास किया गया है। वस्तुत: हमारी मूल्य चेतना का विकास इस बात पर निर्भर करता है की हम दूसरों को तथा उनके साथ अपने संबंधों को किस दृष्टि से देखते हैं। इन दूसरों में घर, परिवार, सामाजिक, सार्वजनिक और राजनीति के संपर्क मे आने वाले सभी लोग आते हैं। आधुनिक संस्कृत कवियों की चेतना इन सभी क्षेत्रों को बहुत गंभीरता से देखती है। जहाँ एक और कवि समाज की विपरीत धारा और उसके दुष्परिणाम, दूषित विवाह रीति, दूषित राजनीति आदि विषयों को उजागर करता है वही सर्वधर्म समभाव,

नवजीवन संस्कार, आशावाद की दार्शनिकता, आतंकवाद की भर्त्सना, राष्ट्रवाद की गुणगान तथा सत्यमेव जयते की परंपरा के साथ भारतीय सांस्कृतिक निधि के संरक्षण की ओर सावधान दिखाई देता है।

वस्तुत: आधुनिक संस्कृत कविता पारम्परिक धरोहर की संरक्षिका, और नृतन के संरक्षण की और बढ़ती काव्यधारा है जिसमें आधुनिक मानवतावादी सोच से उपजे मूल्य यथा:- लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था, सामाजिक न्याय, व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सभी को सम्मान पूर्वक जीवन जीने और आगे बढ़ने का अधिकार इत्यादि विषय गंभीरता से अभिव्यक्त होते हैं।[5]

अक्षरा अघ्न्या देववाणी संस्कृत अपनी जीविनदायिनी शक्ति द्वारा हम सब भारतवासियों को परिपुष्ट एवं परिवृद्ध करती है, तभी तो भारत एवं भारतीयता की ध्वजा सम्पूर्ण विश्व में फहराने हेतु अत्यन्त सहायिका संस्कृत भाषा जीवनमूल्यों रूपी अमूल्य मणियों से परिपूर्ण है। आज के भौतिकवादी एवं अर्थप्रधान युग में यत्र तत्र सर्वत्र टकाधर्म टकाकर्म का डिण्डिमनाद सुनने को मिल रहा है। साथ ही साथ नैतिकमूल्यों का अतिह्रास दृष्टिगत हो रहा है। उस समय संस्कृत भाषा ही अपनी त्रिकालातीत आशीर्वादात्मक छाया से सान्त्वना प्रदान करती हुई सम्बल प्रदान करती है। यथा-'' *वृत्तं यत्नं संरक्षेत वित्तमेति च याति च*''[6] इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करती हुई आज के युवा वर्ग हेतु मार्ग प्रशस्त करती है।

प्रस्तुत लेख में आज के युग की ज्वलन्त समस्याओं यथा निराशा, तनाव, तज्जन्य कर्महीनता, अनाचरण, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण, अधर्म की भावना, Brain Drain (मस्तिष्क परिवर्तन) एवं असहिष्णुता, आतंकवाद एवं जातिवाद की समस्याओं को विवेचित कर मूल संस्कृत ग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा उनके निवारण के उपाय बताए हैं तथा आज के युवा वर्ग हेतु मूलोद्देश्य तथा लक्ष्यसिद्धि एवं आत्मानुशासन के उपाय भी संस्कृत भाषा के माध्यम से बताने का प्रयास किया गया है।

इस लेख में वैदिक एवं लौकिक साहित्य के उद्धरणों की वर्तमान युग के जीवनयापन में सटीकता को स्पष्ट करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है ''यदिहास्ति तदन्यत्र यदिह नास्ति न तत्क्वचित्''[7]

मानवीय जीवन की बहुविध उन्नति को लक्ष्य में रखते हुए भारतीय ऋषि- परम्परा जिन बहुमूल्य सोपानों निर्धारण किया उनमें पुरुषार्थ-चतुष्टय भी महत्त्वपूर्ण रहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूपी इन चतुर्विध पुरुषार्थों में धर्म तो भारतीय संस्कृति का प्राण ही माना जाता है। समस्त संस्कृत वाङ्मय में इस धर्म का स्वरूप सर्वथा ''मूल्यपरक ही रहा है।''[8] '' *ध्रियते लोकोऽनेन धरति लोकं वा इति*''[9] के रूप में इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ प्रस्तुत करते हुए आप्टे महोदय कहते हैं कि ''जो व्यक्ति को देश-कालानुरूप प्रेरणा देकर सम्मान से रहना सिखाता है वहीं धर्म है।''

इस देश-कालादि के अनुरूप आचरण की सामाजिक एवं सास्कृतिक मूल्यपरक को स्पष्ट करते हुए मनुस्मृतिकार ने धर्म के दश तत्त्वों का उल्लेख किया है:-

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[10]

अर्थात् वे मूल्य जिनसे मानव समाज एवं संस्कृति महनीय बनती है वही धर्म है। ''धार्यते लोकमिति धर्म:'' इस व्युत्पत्ति भी कुछ ऐसा ही निर्देश करती है कि-''परिवार, समाज और राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने वाले मूल्यपरक कर्तव्य ही संस्कृत में धर्मपद वाच्य है।'' चाणक्य ने भी ''धर्मण धार्यते लोक:'' के रूप में मानव व्यवहार के लिए उचित मल्यपरक तत्त्वों को ही धर्म के रूप में स्वीकार किया है। सामाजिक सार्वभौमिकता से निरपेक्ष, एकमात्र निजी आस्था पर आधारित रहने वाले (RELIGION) रिलीजन रूपी ''धर्म'' से नितान्त भिन्न भाव रखने वाले ''धर्मपद'' की सर्वाधिकधर्मनिरपेक्ष व्याख्या प्रस्तुत करते हुए महर्षे कणाद कहते हैं कि-

यतोऽभ्युदयनि: श्रेयसंसिद्धि: स धर्म:।[11]

अर्थात् समता, सहिष्णुता, शान्ति, सद्भाव, धैर्य, क्षमा जैसे जिन तत्त्वों से समान व व्यापक कल्याण होता हो एवं अनन्त तथा परम सुख की प्राप्ति होती हो वही धर्म है। '' *वेदोऽखिलो धर्ममूलम्*''[12] के रूप में जिन वेदों को धर्म का मूल प्रतिपादित किया गया है, उन वेदों को ही मानवीय मूल्यपरक सिद्ध करते हुए तैत्तिरीय संहिता के भाष्य में लिखा है कि 'इच्छित कल्याण की प्राप्ति एवं अनिच्छित अकल्याण के परिहार के अलौकिक उपायों को बताने वाले ग्रन्थ ही वेद हैं''

संस्कृत जगत् में व्यापक तौर पर धर्म के निश्चित स्वरूप का प्रतिपादन ही इस तथ्य का प्रमाण है कि यहाँ धर्म का अर्थ साम्प्रदायिक आस्था पर आधारित स्वेच्छाचारी, निरंकुशता बिलकुल नहीं रहा है, अपितु समाज के व्यापक कल्याण में उपयोगी, मूल्याधारित समस्त तत्त्वों को धर्म माना जाता रहा है जिन्हें तर्कों की कसौटी पर परख कर कर्तव्यभाव से मानवता के कल्याण के लिए स्वीकार किया जा सकता है-

यस्तर्केण अनुसन्धते स धर्म वेद नेतर:।[13]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पुरुषार्थ-चतुष्टय में आरम्भिक

पुरुषार्थ के रूप में धर्म का प्रतिपादन संभवत: मनुष्यों को मानवीय मूल्यों एवं कर्तव्यभाव से अवगत कराने हेतु ही रखा गया ताकि कर्तव्यभाव से मूल्याधारित अर्थोपार्जन को अपनाकर मानव नि:श्रेयश की ओर अग्रसर हो सके।

'*हितं संपादयति इति साहित्यम्*'[14] इसका अर्थ यह है कि साहित्य शब्द में हित का भाव है। प्राचीन यूनानी विचारकों ने हमेशा से साहित्य की उत्कृष्टता को स्वीकारा है। प्लेटो और अरस्तु का साहित्य इसका उदाहरण है। टालस्टायँ के साहित्य में भी नैतिकता और धर्म को एक दूसरे के लिए आवश्यक माना गया है । भारतीय साहित्य इन सबसे परे 'सर्वे भवन्तु सुखिन: ' और 'सर्वधर्म समभाव' में आस्था रखता है। परमार्थ ही उपनिषदों का भी सार रहा है। भारतीय साहित्य में जीवन मूल्यों के अन्तर्गत संस्कृति, समाज, दर्शन, मनोविज्ञान आदि सम्मिलित हैं। धर्म भारतीय साहित्य और संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। ऋग्वेद की ऋचाओं में सांसारिक समृद्धि और जीवन की याचना संबंधित प्रार्थनाएँ मिलती हैं।[15]

पंचतंत्र व हितोपदेश जैसे लोक साहित्य में मनुष्य की शक्ति व ऐश्वर्य संबंधी मूल्यों का महत्व देखा जा सकता है। सत्य यही है कि साहित्य में समाज का ही प्रतिबिम्ब होता है। जीवन मूल्य के अन्तर्गत भारत में संस्कृति, समाज, दर्शन, मनोविज्ञान आदि को किसी ना किसी रूप में सम्मिलित किया गया है। किसी राष्ट्र एवं देश की संस्कृति बोध से ही वहाँ के समाज के जीवन मूल्यों का पता लगाया जा सकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्य शब्द को जीवन से जोड़कर मूल्य मीमांसा विज्ञान पर विशेष बल दिया जाने लगा है।[16]

वर्तमान युग में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो चुकी हैं जब मानव मूल्य पीछे छूट रहे हैं और मनुष्य निरर्थकता की ओर अग्रसर है। यह संकट केवल पश्चिम या पूर्व का नहीं बल्कि समस्त संसार में विभिन्न धरातलों पर और विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है। विश्व सिकुड़ रहा है ऐसे समय में भारत और पाश्चात्य मूल्यों में टकराव कोई मायने नहीं रखता। जीवन परिवर्तनशील है साथ ही जीवन मूल्यों में भी बदलाव आएगें। कुछ शाश्वत जीवन मूल्य हैं जो कभी नहीं बदलेंगे और उनको उत्तर आधुनिकतावादियों को अपने कंधों पर ही ढोना होगा।

संस्कृत साहित्य और जीवन मूल्य – दोनों परस्पर पर्यायरूप हैं। वेदों से लेकर अधुनापर्यन्त रचित संस्कृत साहित्य वस्तुत: जीवनमूल्यों के लिए आधाररूप हैं। जीवनमूल्य अर्थात् जीवन जीने का सलीका जिसे सीखने तथा समझने के लिए संस्कृत साहित्य का अध्ययन निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। उदाहरण के रूप में, यहाँ पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश – इन दोनों रचनाओं का नामत: निर्देश प्रसंग के अनुकूल है। इन कृतियों में लघु कथाएँ सरल तथा सुबोध भाषा में लिखी गई हैं और उन कथाओं के माध्यम से बताया गया है कि मानव जीवन बहुमूल्य है और इस मानव जीवन में हीं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष धन अन्य बहुमूल्य वस्तुओं से पुन: जीवन नहीं मिल सकता। अत: मानव को जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। इन रचनाओं में प्रत्येक कथा एक सन्देश देती है। जैसे, लालच नहीं करना चाहिए, एकता में ही शक्ति है, सदैव सोच समझकर कार्य करना चाहिए इत्यादि।

इस प्रसंग में सतवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्ध में बाणभट्टरचित गद्यकाव्य ''शुकनासोपदेश''[17] का योगदान सराहनीय है। इसमें कवि ने शुकनास तथा युवा चन्द्रापीड के माध्यम से समझाया है कि जब प्रचुर धनसम्पत्ति तथा सामर्थ्य की प्राप्ति होती है तब विवेकी पुरुष ही उचित व्यवहार कर सकता है। इसी प्रकार आधुनिक युग में मानव के पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक साधन विकल्प रूप में विद्यमान हैं। उनमें से किसी एक उचित विकल्प के चयन की योग्यता प्राप्त करने के लिए संस्कृत साहित्य अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वर्तमान में किए गए चयन से ही मनुष्य का भविष्य निर्धारित होता है।

सन्दर्भ सूची:

1. मनुस्मृति–2/ 3
2. शुक्ल यजुर्वेद– 36/17
3. निरूक्त–यास्क
4. सामवेद–उत्तराचिक, अध्याय 13, खण्ड–4
5. बृहद्देवता, अध्याय–7
6. गौतम धर्मसूत्र– 1/ 1
7. ऋग्वेद–10/191/3
8. यजुर्वेद–32/8
9. बृहदारण्यकोपनिषद् –प्रथम अध्याय
10. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षा वल्ली, अनुवाक् 11
11. कठोपनिषद्, अध्याय–1, वल्ली– 1
12. कठोपनिषद्, अध्याय–1, वल्ली–1
13. ऋग्वेद–1/1/9
14. यजुर्वेद–12/191/2
15. ऋग्वेद–10/191/2
16. ऋग्वेद–10/191/ 4
17. अथर्ववेद–3/30/2

ISSN 2278 - 0327

योग दर्शन में प्राणायाम की उपयोगिता

डॉ. सुभाष चन्द सैनी
शोध निर्देशक, संस्कृत विभाग
श्रीखुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़

सुमन
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग
श्रीखुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़

सरांश

योगाङ्गों में 'प्राणायाम' विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। महर्षि पतञ्जलि ने प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा है, 'आसन की स्थिरता होने पर श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति का नियमन करना अर्थात् प्राण को रोककर सम कर देना प्राणायाम हैं।' भाष्यकार के अनुसार आसनों की सिद्धि के पश्चात् ही प्राणायाम का अभ्यास किया जाना चाहिए अर्थात् उठते-बैठते या चलते-फिरते यदि कोई व्यक्ति प्राणायाम करना चाहे तो यह उचित रीति नहीं है। अत: प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए साधक को एक निश्चित आसन में ही बैठना चाहिए।

प्राणायाम: अर्थात् प्राणस्य आयाम:। साधारण प्रयोग में हम प्राण का अर्थ मात्र प्राणवायु से करते हैं जो कि श्वास-प्रवास से शरीर में प्रविष्ट एवं उच्छ्वसित होती है। परन्तु प्राणायाम का उद्देश्य मात्र प्राणवायु का नियमन नहीं है अपितु शरीर में विद्यमान प्राणी की समस्त इन्द्रियगण की वृत्तियों के व्यापार को गति देने वाली जीवनी शक्ति का नियन्त्रण करना है। इसका सम्पूर्ण विवेचन मैं अपने शोध पत्र में करूंगी।

योगदर्शन में प्राणायाम की उपयोगिता

योगदर्शन में प्राणायाम के मुख्य रूप से तीन भेद बताए गए हैं-' *बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिदेशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः*।'[1] अर्थात् देश, काल तथा संख्या के आभार पर श्वास-प्रश्वासों की स्वाभाविक गतियों को दीर्घ और सूक्ष्म गति से बाह्यवृत्ति (रेचक), आभ्यन्तरवृत्ति (पूरक) और स्तम्भवृत्ति (कुम्भक) में नियमन।[2]

1. बाह्यवृत्ति प्राणायाम- अन्दर से निकलने वाले स्वाभाविक कई प्रश्वासों को एक प्रश्वास बनाकर उनकी गति का नियमन करना बाह्यवृत्ति प्राणायाम कहलाता है।[3] टीकाकारों ने इसे रेचक की संज्ञा दी है। इस प्राणायाम में प्रश्वास को इतना सूक्ष्म अर्थात् मन्द गति से छोड़ा जाता है कि समीपस्थ व्यक्ति को इसके निकलने का शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता। प्रश्वास सूक्ष्म के साथ दीर्घ भी होता है।

2. आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम- बाहर से भीतर जाने वाले स्वाभाविक कई श्वासों को एक प्रश्वास बनाकर नासापुटों से धीरे-धीरे नियमित रूप से भीतर ले जाना ही आभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम है। इसे पूरक भी कहा जाता है।[4]

3. समस्तवृत्ति प्राणायाम- स्वाभाविक रूप से चलते श्वास-प्रश्वास को सहसा जहाँ का तहाँ रोक देना स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम कहलाता है।[5]

यद्यपि एक चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम का भी वर्णन योगसूत्र में मिलता है - *बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी प्राणायाम*। परन्तु यह तृतीय प्रकार के प्राणायाम का एक ही भेद है क्योंकि इसमें भी श्वास-प्रश्वास की गति का पूर्ण निरोध होता है तथा शरीरस्थ प्राण निष्क्रिय हो जाता है। दोनों में अन्तर स्पष्ट करने के लिए भाष्यकार ने कहा है कि तृतीय प्राणायाम तो एक बार के प्रयत्न से सम्भव है परन्तु चतुर्थ प्राणायाम के लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है।[6]

प्राणायाम की उपयोगिता

मानव-जीवन की सुरक्षा तथा आरोग्य प्राप्ति के लिये हमारे तप:पूत ऋषि- महर्षियों ने अनेक उपाय शास्त्रों में निर्दिष्ट किये हैं। उनमें प्राणायाम की साधना भी एक महत्वपूर्ण उपाय है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए ही नहीं, अपितु शरीर की शुद्धि तथा आरोग्य-लाभपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिये भी है। इसकी उपयोगिता तो इसी से सिद्ध है कि इसका विश्लेषित वर्णन उपनिषदों, पातञ्जलादि योग-ग्रन्थों, चिकित्साग्रन्थों तथा प्राय: समस्त पुराणों में अनेकत्र चर्चित है। श्रौत-स्मार्त प्रत्येक कर्मकाण्ड के प्रारम्भ में प्राणायाम-विधान की आवश्यकता होती है, क्योंकि दैनिक कृत्य-संध्या-वन्दनादि तथा विविध संस्कारों, यज्ञों आदि में प्रथमत: प्राणायाम का ही विनियोग किया जाता है।

यह तो हुआ इसका आध्यात्मिक प्रयोजन, किंतु केवल इसी

प्रयोजन के लिये ही यह नहीं किया जाता, अपितु इससे शरीर की शुद्धि तथा आरोग्यपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति भी होती है।

अतः इस महिमामय शरीर-रक्षक प्राणायाम के विषय में जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक मानव का पुनीत कर्त्तव्य है।

प्राणायाम शब्द दो पदों के योग से बना है- प्राण और आयाम। इन दोनों पदों में दीर्घसन्धि करने पर प्राणायाम शब्द की निष्पत्ति होती है। यहाँ प्राण शब्द का अर्थ है- अपने शरीर से उत्पन्न वायु और आयाम का अर्थ है - निरोध (रोकना)। अर्थात् प्राणवायु को रोकना। जैसा कि कूर्म आदि पुराणों में कहा गया है कि -

प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधम्।।[7]

अर्थात् प्राणवायु का निरोध करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम आसनबद्ध होकर करना चाहिये। पातञ्जल योगदर्शन में इसका प्रामाणिक और विशिष्ट लक्षण किया गया है -

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः।[8]

यहाँ आशय यह है कि पद्मास्जादि सुस्थिर आसन में स्थित बाह्य वायु का आचमन-श्वास और कोष्ठगत वायु का निःसारण-प्रश्वास, इन दोनों का गति-विच्छेद अर्थात् उभयाभाव प्राणायाम की सामान्य परिभाषा है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि इस लक्षण के द्वारा कुंभक में तो दोष नहीं है, किंतु पूरक और रेचक में आये अतिव्याप्ति दोष के निवारणार्थ स्वाभाविक श्वास प्रश्वासरूप विशिष्टाभाव यह जोड़ना चाहिए।

यह प्राणायाम इतना व्यापक है कि धर्मसूत्रों एवं पुराणों में इसके विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। कहीं पाँच प्राणादि वायुओं में प्रथम का ही आयाम-निरोध निरूपित किया गया है। यहाँ यह माना जा सकता है पाँचों वायुओं का प्रतिनिधित्व प्रथम वायु प्राण में ही हो। कहीं पाँचों में प्राथमिक दो प्राण-अपानवायु का आयाम और कहीं वायुओं का स्थान में धारण प्राणायाम माना गया है।

इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो दस प्रकार के वायु का क्रम से अभ्यास करने पर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। वहाँ भी प्रथम वायु प्राण दसों का प्रभु होता है। इस प्रकार प्राणायाम का विचार क्रमशः कूर्म, शिव और अग्निपुराण में केवल प्राण के ही आयाम से निर्दिष्ट है।[9]

बौधायान धर्मसूत्र-वृत्ति में श्वास-निरोधमात्र प्राणायाम कहा गया है। इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद्, स्कन्द-मार्कण्डेय-पुराणों में प्राण-अपान-वायु का निरोध प्राणायाम कहा गया है। जैसा कि तत्तत् स्थानों में प्राणायाम का लक्षण इस प्रकार -

प्राणापानसमायोगः प्राणायामो भवति।[10]
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः।[11]
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः।[12]

संदर्भ सूची -

1. यो.सू., 2/50
2. स तु प्राणायामो - रेचककुम्भकपूरकभेदात्। यो.वा., पृ. 265
3. यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्याभावः स बाह्यः। व्या.भा. 264
4. बाह्यस्थितं घ्राणपुटेन वायुमाकृष्य तेनैव शनैः समन्तात्। नाडीश्च सर्वाः परिपूरयेद् यः स पूरको नाम महानिरोधः।। भा. 270
5. तृतीयः स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः सकृत्प्रयत्नाद् भवति। व्या.भ., 284
6. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः। यो.सू., 2/51
7. कूर्म.उ., 11/30, वायु.उत्तर., 27/21, अग्नि., 372/6
8. पातञ्जलयोगदर्शन, 2/49
9. कूर्म.उ., 11/30, वायु.उत्तर., 27/21, अग्नि., 372/6
10. शाण्डिल्योपनिषद्, 2/6
11. स्कन्दः माहेश्वर-खण्ड में कौमारिका खण्ड, 55/29
12. मार्कण्डेय. 39/12

मीमांसाभाष्यानुमत कारकतत्त्वविमर्श

राहुल आर्य
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश-

शास्त्रं हि शास्त्रान्तरानुबन्धि यह भणिति शास्त्र समाज में प्रथित है, जो कि भारतीय ज्ञानपरम्परा के चिन्तनस्वरूप का बोध कराती है। भारतीयज्ञानपरम्परा में विभिन्न आगम (शास्त्र) एवं दर्शन परस्पर संबद्ध होकर चिन्तन करते हुए प्रज्ञाविवेक की प्राप्ति कराते हैं। परस्पर शास्त्र स्व-स्व प्रतिपाद्य विषयों का प्रतिपादन करते हुए अन्यान्य शास्त्रों के प्रतिपाद्य विषयों का भी यथा प्रसङ्ग प्रतिपादन करते है। अत: प्रस्तुत शोधपत्र में मीमांसाशास्त्र ने जो अपने मुख्यप्रतिपाद्य के प्रतिपादन प्रसङ्ग में व्याकरण के कारकतत्त्व विषय का जो विवेचन किया है, वही इस शोधपत्र में विवेचित है।

विषयप्रवेश-

कोई भी शास्त्र अपने सहयोगियों से विच्छिन्न होकर नहीं चल सकता। उसे अपने विषय के प्रतिपादन के समय अन्य शास्त्रों की चर्चा करनी ही पड़ती है। चाहे उसका लक्ष्य शास्त्रान्तर के विषयों का निरसन करना हो या अपने मत की पुष्टि का अन्वेषण करना हो- दोनों ही स्थितियों में एक शास्त्र में दूसरे शास्त्र की चर्चा होती है। इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों के सहयोग-संपर्क से किसी विषय का सर्वांगपूर्ण अध्ययन सम्भव है। इसी से प्रज्ञा में विश्लेषणशक्ति आती है। भर्तृहरि वाक्यपदीय में लिखते हैं-

प्रज्ञा विवेकं लभते भिन्नैरागमदर्शनैः।
कियद्वा शक्यमुन्नेतुं स्वतर्कमनुधावता॥ [1]

मनुष्य केवल एक शास्त्र में सीमाबद्ध होकर कहाँ से विवेक पा सकता है? भाषा के अध्ययन में पद तथा पदार्थ का विवेचन मुख्य है, जिसका सम्बन्ध क्रमश: व्याकरण तथा वैशेषिक दर्शन से है। इन दोनों शास्त्रों के विषयों की आवश्यकता सभी शास्त्रों को न्यूनाधिक रूप में होती है।'*काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्*'- लोकोक्ति। इनमें भी भाषा का सीधा सम्बन्ध व्याकरणशास्त्र से ही है, जिसके अभाव में पद-साधुत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए शास्त्रान्तर में प्रवेश करने के लिए व्याकरण का अध्ययन सर्वप्रथम अनिवार्य योग्यता है। अपने पाठकों को इसलिए व्याकरण में अधीती मानकर अन्य शास्त्रकार स्वाभाविक रूप से व्याकरण के विषयों की चर्चा अपने प्रतिपाद्य विषयों के प्रसंग में करते हैं। कुछ शास्त्रों में तो इसकी अनिवार्यता है। कुछ शास्त्र उदाहरण के रूप में यह चर्चा करते हैं तो अन्य शास्त्रों को व्याकरण के सिद्धांत निरसन-योग्य प्रतीत होते हैं।

मीमांसाशास्त्र के शाबरभाष्य में अनेकत्र कारकसामान्य तथा कारकविशेष की विवेचना हुई है।[2] कारकों का क्रिया के साथ सम्बन्ध होता है किन्तु द्रव्य के साथ अन्वय वे नहीं लेते- सभी द्रव्य क्रिया की निष्पत्ति के साधन होते हैं किन्तु वे परस्पर अन्वित न होकर क्रिया द्वारा एक फल के अधीन कारक बनते हैं। अधिकरण इसलिए कारक है कि कर्ता आदि कारकों को धारित रखता है, यदि वे अधिकरण द्वारा न हों तो क्रिया की निष्पत्ति नहीं कर सकते। कर्ता कारणादि सभी कारकों को समाहित या संघबद्ध रखता है अन्यथा वे अपनी-अपनी क्रिया को सम्पन्न नहीं कर सकते।[3]

करता हुआ ही द्रव्य कारक कहा जाता है और कोई कारक क्रियेतर को नहीं कर सकता, अत: किसी कारक का द्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं पाया जाता। द्रव्य निष्पन्न या सिद्ध करते हैं, अत: वे परस्पर सापेक्ष नहीं रहते। वे क्रिया के प्रति गुणीभूत रहते हैं, अत: परस्पर समान होने से भी उनका सम्बन्ध अघटित है '*गुणानां च परार्थत्वादसम्बन्ध: समत्वात् स्यात्*'[4]। परस्पर कारकों का सम्बन्ध होने पर विधि की प्रवृत्ति नहीं हो सकती- क्रिया ही विधि है जिसके साथ ही अन्वय होने पर कारकत्व व्यवस्थित है। मीमांसक विधि के अधीन विचार करता है, अत: विधि की अन्यथानुपपत्ति से कल्पित होता है कि क्रिया के साथ ही कारकों का सम्बन्ध है। क्रिया भी कारकों के बिना साध्य नहीं हो सकती, अत: अर्थापत्ति से ही क्रियासम्बन्ध कल्पनीय है। कारक भूत या

सिद्ध होते हैं और क्रिया उनके द्वारा साध्य या भव्य रहती है। अत: क्रियाकारकभाव सम्बन्ध व्यवस्थित है।[5]

शबर का एक स्थान पर कथन है कि कारक क्रिया से सम्बद्ध होता है, द्रव्य से नहीं।[6] कारकविभक्ति में युक्त किसी भी शब्द का क्रियान्वित होना अनिवार्य है। इसे शबर कई उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं,[7] जैसे '*चतुरो मुष्टीन् निर्वपति*' में '*चतुर:*' शब्द मुष्टि से सम्बन्ध न होकर '*निर्वपति*' से सम्बद्ध है। इसी प्रकार '*हिरण्मयौ प्राकाशौ अध्वर्यवे ददाति*' में प्राकाश कर्मतया दान-क्रिया से अन्वित है। कारकविभक्तिओं के क्रियोपकारक होने पर भी यह बात नहीं कि सभी कारक समान हों। प्रत्येक कारक का क्रियासिद्धि के प्रति अपना विलक्षण ढंग है, जिससे उनमें एक-दूसरे की समानता का प्रसंग नहीं आता है।[8] इस तथ्य उपपत्ति शबर ने की है कि 'यजते' क्रिया के कर्ता अध्वर्यु तथा यजमान दोनों हैं, किन्तु अध्वर्यु के अर्थ में 'यजते' यजमान-पदार्थों के सम्पादन का अभिधान करता है। इसीलिए कारक का सम्बन्ध कर्म (क्रिया) मात्र से है, कर्मगुण से नहीं।[9] कारकों में इसीलिए परस्पर विशेषण-विशेष्य भाव नहीं हो सकता- '*अप्सु अवभृथेन चरन्ति*' इसमें दोनों ही शब्द 'चरन्ति' से सम्बद्ध हैं, परस्पर सम्बद्ध नहीं।[10]

कारकविभक्ति के वचन के सम्बन्ध में शबर का कथ्य है कि जब वचन विवक्षित हो तब कारक-व्यापार का संचालन वचनानुसार एक, दो या अनेक के द्वारा होता है। यहाँ भी कारकार्थ विभक्ति के द्वारा अभिहित होता है। विभक्ति वचन के साथ-साथ कारकार्थ का भी अभिधान करती है।[11] इसीलिए जहाँ विभक्ति में वचन विवक्षित नहीं रहता, कारकार्थ का अभिधान करने के कारण उसके (विभक्ति के) आनर्थक्य का प्रसंग नहीं आता।[12] उदाहरणार्थ '*ग्रहं सम्मार्ष्टि*' में ग्रह का एकत्व अविवक्षित है तथापि विभक्ति सार्थक है, क्योंकि कारकार्थ का बोध कराती है जिससे ग्रह तथा मृजि-क्रिया के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है- सभी ग्रहों के सम्बन्ध से मृजि-क्रिया की सिद्धि होती है। इसलिए कार्य का संबंध करने मात्र से है कर्म पुणे से नहीं कारकों में इसलिए सदस्य पर विशेषण विशेष्य भाग नहीं हो सकता अब सो आदित्य थे ना जयंती इसमें दोनों ही शब्द जयंती से संबंध है परस्पर संबंध नहीं कारक विभक्ति के वचन के संबंध में शबर का तथ्य है कि जब वचन विवक्षित हो तब कारक व्यापार का संचालन बचना अनुसार एक दो या अनेक के द्वारा होता है यहां भी का कारक विभक्ति के द्वारा अभिजीत होता है विभक्ति वचन के साथ-साथ कारक आगत का भी अभिधान करती है इसलिए जहां विभक्ति में वचन विवक्षित नहीं रहता का कागज का अभिधान करने के कारण उसके विभक्ति के आनंद थक्के का पसंद नहीं आता उदाहरणार्थ अभी वक्त जीत है तथापि विभक्ति सार्थक है क्योंकि कारक अंगद का बोध कराती है जिससे ग्रह तथा निजी क्रिया के बीच संबंध स्थापित होता है सभी ग्रहों के संबंध में से म्यूजिक रिया की सिद्धि होती है

शबर भी वैयाकरणों से समान षष्ठी तथा संबोधन को कारक नहीं मानते।[13] कारकलक्षणा विभक्ति जहाँ क्रिया-सम्बन्ध का अभियान करती है, षष्ठी विभक्ति से गुण-सम्बन्ध मात्र बोधित होता है। *इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्*[14] में षष्ठी विभक्ति देवता तथा स्तुति के बीच सम्बन्ध-बोध कराती है। षष्ठी की एक विलक्षणता है कि अचेतन पदार्थों के बोधक शब्दों में लगने पर कभी-कभी द्वितीया-तृतीया आदि विभक्तिओं का भी अर्थ देती है; यथा- '*शाकस्य देहि, घृतस्य यजते, सोमस्य पिबति*'। सम्बोधन अनुवचन या निर्देश मात्र के लिए प्रयुक्त होता है, जिससे स्तुति अभिहित होती है।

शाबरभाषा में कारकविशेषों का वर्णन यत्र-तत्र विभक्तिओं को आधार मान कर किया गया है। क्योंकि ब्राह्मण-वाक्यों में स्थित विधियों के गौण-प्रधानभाव का निर्णय तत्रत्य विभक्तियों के द्वारा किया जाता है, अत: मीमांसादर्शन में इनका बड़ा महत्त्व है। हम कुछ उदाहरण ले सकते हैं। सामान्यतया कर्मकारक में होने वाली द्वितीया से बोधित पदार्थ प्रधान होता है, क्योंकि वह कर्ता का ईप्सिततम है। तथापि कुछ ऐसी स्थितियाँ भी हैं जहाँ मीमांसकों की दृष्टि में वह प्रधान नहीं होता; यथा-'*स्त्रुचं सम्मार्ष्टि, अग्निं सम्मार्ष्टि*।' '*सक्तून् जुहोति*' में आख्यात के द्वारा प्रधानकर्म का बोध होता है, जिससे सम्बद्ध द्रव्य (सक्तु) अप्रधान हो जाता है। होम-क्रिया प्रधान है, यदि वह सक्तुओं के लिए हो तो सक्तु अपने आप में निष्प्रयोजन होंगे ही, होम को भी निरर्थक कर देंगे। उक्त वाक्य का यही अर्थ हो सकता है कि होम के द्वारा सक्तुओं का संस्कार किया जाए, जो संभव नहीं है। कर्मविभक्ति में सक्तु की स्थिति से यही विसंगति होती है। अत: इसके विपरीत होम-क्रिया के सम्पादन में सक्तु की सहायता (साधकतमता) अपेक्षित मानकर उसका करण-परिणाम करना आवश्यक है। अपूर्व की उत्पत्ति होम से ही होती है, सक्तु से नहीं- भले ही वह द्वितीया विभक्ति में ही क्यों न रहे।

अत: निष्कर्ष निकलता है कि सक्तु की द्वितीया विभक्ति केवल सक्तु तथा होम के बीच सम्बन्ध का बोध कराती है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं करती। जहाँ भी द्रव्य तथा कर्म के बीच सम्बन्ध हो, द्रव्य कर्म के प्रति गुणभूत हो जाता है (भूतं

भव्यायोपदिश्यते)। अत: द्वितीया होने पर भी सक्तु के गुणभूत होने से इसमें करण-परिणाम करना पड़ता है।

इस प्रकार मीमांसाशास्त्र अपने प्रतिपाद्य विषयों का प्रतिपादन करता हुआ व्याकरण के कारक, विभक्ति, लिङ्ग तथा लकारादि विषयों का प्रासङ्गिक रूप से पुष्कल प्रतिपादन करता है।

सन्दर्भ सूची -

1. वाक्यपदीय, 2/486
2. Dr.G.V. Devasthali, Mimamsa : The Vakyashastra of Ancient India, Chap. IX. Para 9-27
3. अधिकरणं हि कर्त्रादीनि धारयति। तान्यधार्यमाणानि न शक्नुवन्ति क्रियामभिनिर्वर्तयितुम्। तथा कर्ता कारणादीनि समाधत्ते। तान्यसमाहितानि न शक्नुवन्ति स्वं स्वमर्थमभिनिर्वर्तयितुम्॥ मीमांसाभाष्य 3/1/12
4. मीमांसा सूत्र 3/1/22
5. कारकं ह्युच्यते कुर्वन्नाक्रियां तत् करोति च।
   तस्मान्न द्रव्यसम्बन्ध: कारकस्यास्ति कस्यचित्॥
   निष्पन्नत्वाविशेषाच्च नापेक्षैषां परस्परम्।
   गुणानां च परार्थत्वादसम्बन्ध: समत्वत:॥
   न चाप्यन्योन्यसम्बन्धे विधिरेषां प्रवर्तते।
   तदधीना वयं चेति क्रियासम्बन्धकल्पना॥
   क्रियापि न विना कैश्चित् साध्यते कारकै: क्वचित्।
   भूतभव्यवशत्वेन क्रियाकारकसंगति:॥ वहीं, तन्त्रवार्तिक
6. शाबरभाष्य, 10/2/65
7. शाबरभाष्य, 10/3/63-64
   सवार्णि च प्रधानस्योपकुर्यु:। भिनानि च कार्याणि कुर्यु:। तद् यथा कारकाणि कर्त्रादीनि सर्वाणि तावत् क्रियाया उपकुर्वन्ति। अथ च प्रतिकारकं क्रियाभेद:। शाबरभाष्य, 11/1/7
9. कारकस्य च कर्मणा सम्बन्धो न कर्मगुणेन। शाबरभाष्य-11/2/2
10. शाबरभाष्य-10/6/25
11. 'तुलनीय-सुपां कर्मादयोऽप्यर्था: सङ्ख्या चैव तथा तिङाम्' पा० सू० 1/4/21 पर भाष्य।
    सङ्ख्याकारकबोधयित्री विभक्ति:।
12. Mimamsa : The Vak. Sas. of Anc.Ind., Chap. IX, para 21
13. शाबर० 3/1/12
14. ऋ०1/32/1

ISSN 2278 - 0327

भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ

अनुराधा शर्मा
शोध छात्रा, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं-341306 (नागौर-राजस्थान)

भारतीय ऋषि विगत लगभग हजारों वर्षों से यही प्रतिपादित करते आएं हैं कि मानव-मात्र के कल्याण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यक्ति सदैव आत्मतत्त्व से ओत-प्रोत होकर अपना आचरण करे और इसी के लिए उसे प्रयत्नरत रहना चाहिए। मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए-'*इह कर्माणि कुर्वन् एव*' अर्थात् कर्म करते हुए ही जीवन का उपभोग करना है। मनुष्य के लिए कर्म की महत्ता अपरिहार्य है। जो अत्यन्त ज्ञानी हैं और महान् आध्यात्मिक संत हैं, उन्हें भी लोकसंग्रह की दृष्टि से शिवत्व प्रधान कर्म करना होगा। आत्मतत्त्व से शुद्ध किए गए तथा प्रसूत संस्कार ही जीवन को सुखमय, आनन्दमय एवं समृद्ध बना सकने में समर्थ हो सकते हैं।

वस्तुत: भारतीय मनीषा का विश्वास जिस संस्कृति पर है, उसका उद्देश्य है मानव को पुरुषार्थी बनाना। पुरुषार्थहीन संस्कृति न तो श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करती है और न उससे आत्महित ही होता है। ऐसी संस्कृति सर्वकल्याणकारी तो हो ही नहीं सकती। भारतीय मनीषा का विश्वास जिस संस्कृति पर है, उसका लक्ष्य सर्वकल्याण है-

सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दु:खभाग्भवेत्।।

सारे धर्मशास्त्र, गीता, उपनषिद्, वेदांत, योग, सांख्य, न्याय, मीमांसा आदि कर्म की प्रधानता व अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं और कर्म की महिमा की व्याख्या अपनी-अपनी तरह से करते हैं, लेकिन व्याख्या की इस विभिन्नता में भी एक तत्त्व पर सर्व-सहमति है कि कर्म ऐसा होना चाहिए जो अविद्या और अज्ञान से मुक्ति दिला सके तथा मानसिक विक्षेपों को शांत करते हुए मानव को सर्वकल्याण के पथ पर ले जा सके।

पुरुषार्थ के संदर्भ में जिस बात पर भारतीय दर्शन विशेष बल देता है, वह है 'बुद्धि' और 'भाव'। बुद्धि की शुद्धता और श्रेष्ठ कोटि के भाव में रहने का अभ्यास ही व्यक्ति को पाखण्डपूर्ण पुरुषार्थ से बचा सकता है। जब तक बुद्धि ठीक न हो, विवेक जाग्रत न हो तब तक मानव अपने जीवन में कुछ भी कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकता। वैसे तो तत्त्वज्ञानियों ने बुद्धि को भी अनेक भागों में विभाजित किया है, जैसे कि विवेक, मेधा, प्रज्ञा इत्यादि, लेकिन इन सभी को सामान्य भाषा में हम बुद्धि ही कहते हैं तथा भारतीय दार्शनिक इसे मेधाशक्ति कहकर सम्बोधित करते हैं। संस्कारवान बनने के लिए श्रेष्ठ मेधाशक्ति चाहिए और इसीलिए ऋषि की याचना है-

मां मेधां देवगणा: पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु।।[1]

इसका शाब्दिक अर्थ है, ''जिस परमपवित्र मेधाशक्ति (धारणायुक्त बुद्धि) की उपासना देवगण और पितृगण करते हैं, उस मेधा से आज मुझको भी मेधावी बनाओ।'' ऋषि की चाह ऐसी मेधाशक्ति पाने की है जो दिव्यता से परिपूर्ण है, जो विद्वानों से पूजित है। भारतीय दर्शन की यह स्पष्ट मान्यता है कि हर व्यक्ति में असीम व अनन्त शक्ति छिपी हुई है, पर उसे इन शक्तियों की विस्मृति हो गई है। स्वयं के संकल्प बल से, पुरुषार्थ से इन सुप्त शक्तियों को जाग्रत किया जा सकता है और उन अनन्त सम्भावनाओं को खोजा जा सकता है, जो विकास के मार्ग में सहायक है।

वेदों व उपनिषदों में पुरुषार्थ-

भारतीय दार्शनिकों की स्पष्ट मान्यता यह रही है कि मानव अपने कर्म से ही अपने भाग्य का निर्माण करता है। व्यक्ति का पौरुष, उसका संकल्प बल, उसका श्रम, उसका विवेक और उसकी कर्मठता ही उसका भाग्य है-

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी:।[2]

भारतीय उद्गाता ऋषि ऋग्वेद में बार-बार यह कहता है कि-

अयं मे हस्तो भगवानयं में भगवत्त:।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शन:।।[3]

अर्थात् ''यह मेरा हाथ ऐश्वर्यशाली है, यह मेरा हाथ और

भी अधिक सौभाग्यशाली है। यह मेरा हाथ सभी रोगों को दूर करने वाला है। यह हाथ अपने प्रभाव से सर्वकल्याण करने वाला है।''

अपने पौरुष पर ही भरोसा होना चाहिए। समस्त ऐश्वर्य तो केवल स्वयं के अर्जन से ही प्राप्त होंगे।

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिः न किःर्यध्नन्ति हन्ति य।
अग्ने सुवीर एधते।।[4]

''हे परमात्मन्! जो अच्छे कल्याणकारी कर्मों को करता हुआ जीवित रहता है, उसे कोई मार नहीं सकता, वह सुन्दर वीर व्यक्ति समृद्धि को प्राप्त होता है।'' सुखमय जीवन के लिए शुभ कर्मों की अनिवार्यता पर ऋषियों ने सदैव बल दिया है। सत्कर्म ही समृद्धि का कारण है-

उद्यानं ते पुरुष नावयान।
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।।[5]

''हे पुरुष, तु सदा उद्यमी बन, तू अवनति को न प्राप्त हो। तुझे जीवन में दक्षता प्राप्त हो, पुरुषार्थ प्राप्त हो।'' यह ऋषि की कामना जिसका वर्णन अथर्ववेद में प्राप्त होता है। हमारे ऋषि बार-बार यही कहते हैं कि जीवन में पुरुषार्थ और संघर्ष की शक्ति से सम्पन्न होकर ही मनुष्य उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

ईशावास्योपनिषद् में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है-

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।[6]

अर्थात् लोक में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करें।

तैत्तिरीयोपनिषद् में पुरुषार्थ के महत्त्व को इंगित करते हुए कर्मों से देवभाव की प्राप्ति कही गयी है-'' *कर्मणा देवानपियन्ति*''[7]

महोपनिषद् में कहा गया है कि श्रेष्ठ पौरुष रूप अभ्यास और वैराग्य का आश्रय प्राप्त करके, चित्त को अचित्ततावस्था में ले जाकर मन का दमन करना चाहिए।[8]

योगवासिष्ठ में पुरुषार्थ-

डॉ. एस.एन. दासगुप्ता के शब्दों में-''योगवासिष्ठ की विशेष देन यह है कि वह पुरुषार्थ एवं उसकी महान् सम्भावनाओं और उसके प्रारब्ध कर्म के बंधन इत्यादि को नाश करने की उसकी शक्ति पर विशेष बल देता है''।[9]

शास्त्र के अनुकूल सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति और निरतिशयसुख की प्राप्ति के लिए जो आवश्यक कर्त्तव्य साधनचतुष्टयसम्पत्ति[10] और श्रवणमननादि साधन हैं उनमें सदा आलस्य त्याग करके तत्पर रहने को ही पंडितजन 'पौरुष' कहते हैं और उसी से परमपुरुषार्थ की सिद्धि होती है।[11]

साधूपदिष्टमार्गेण यन्मनोऽगविचेष्टितम्।
तत्पौरुषं तत्सफलमन्यदुन्मत्तचेष्टितम्।।[12]

योगवासिष्ठ के अनुसार शास्त्रज्ञ महात्माओं के कथितमार्ग से जो मन और वाणी आदि इन्द्रियों की चेष्टा है उसी का नाम 'पुरुषार्थ' है, क्योंकि ऐसे कर्म ही सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

अर्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः।
प्रोक्ता पौरुषशब्देन सर्वमासाद्यतेऽनया।।[13]

सत् अर्थ प्राप्त करने वाले कार्यों के प्रयत्न में तत्पर रहने को पंडितजन 'पौरुष' कहते हैं और इसी से सब कुछ मिलता है।

पुरुषार्थ के रूप -

संवित्स्पन्दो मनःस्पन्द ऐन्द्रियस्पन्द एव च।
एतानि पुरुषार्थस्य रूपाण्येभ्यः फलोदयः।।[14]

महर्षि वसिष्ठ पुरुषार्थ के रूपों के विषय में बतलाते हुए कहते हैं कि संवित्स्पन्द, मनःस्पन्द और ऐन्द्रियस्पन्द ये पुरुषार्थ के रूप हैं।

1. **संवित्स्पन्द**-आत्मा में पुरुषार्थ और उसके साधन की इच्छा होना 'संवित्स्पन्द' है।
2. **मनःस्पन्द**-संवित्स्पन्द से पुरुषार्थ साधन की इच्छा यत्न मन में होना ''मनःस्पन्द'' है।
3. **ऐन्द्रियस्पन्द**-मनःस्पन्द से कर्मेन्द्रिय की अंगों की संचालनार्थ प्रवृत्ति होना 'ऐन्द्रियस्पन्द' कहलाता है।
4. **कार्यबाह्योपकरणास्पन्द**-ऐन्द्रियस्पन्द से शरीर तथा इन्द्रियों की कार्य में प्रवृत्ति अर्थात् सम्पूर्ण शरीर की कार्य में प्रवृत्ति होती है।

ये पुरुषार्थ के रूप हैं, इन्हीं से फल का उदय होता है। साक्षी चेतन में जैसी विषय की स्फूर्ति होती है वैसा ही मन होता है और मन की इच्छा के अनुसार इन्द्रियों के स्पन्द के अनुकूल शरीर की क्रिया होती है और क्रिया के अनुसार फल सिद्धि होती है।

पौरुष के भेदः

योगवासिष्ठ में दो दृष्टियों से पौरुष शक्ति का भेद वर्णित किया गया है-

1. पूर्वजन्म और इस जन्म के पौरुष के आधार पर भेद।
2. शास्त्रों की अनुकूलता और प्रतिकूलता के आधार पर भेद।

पौरुष शक्ति का इन दो दृष्टियों से भेद करने के साथ ही इन दोनों का अवान्तर भेद भी किया गया है जो इस प्रकार है-

1. पूर्वजन्म और इस जन्म के पौरुष के आधार पर भेद

- प्राक्तन पौरुष (पूर्वजन्मकृत पौरुष)
- अद्यतन पौरुष (ऐहिक पौरुष)

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि इन दोनों पौरुषों में से अद्यतन पौरुष अधिक बलवान होता है। अद्यतन पौरुष अर्थात् इस जन्म के पौरुष से प्राक्तन पौरुष अर्थात् पूर्वजन्म का पौरुष शीघ्र ही पराजित हो जाता है

प्राक्तनं चैहिकं चेति द्विविधं विद्धि पौरुषम्।
प्राक्तनाद्यतनेनाशु पुरुषार्थेन जीयते।। [15]

पूर्वजन्म के और इस जन्म के पुरुषार्थ में परस्पर विरोध रहता है। इनमें से जो अल्पबल वाला होता है वह हार जाता है। वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि जैसे गतदिन का अजीर्ण आज के लंघन या औषध आदि से शांत हो जाता है, वैसे ही इस जन्म के शुभ पौरुष से पूर्वजन्म का अशुभ पौरुष नि:संदेह शांत हो जाता है।[16] अत: पुरुष को चाहिए कि वह शास्त्रोक्त प्रयत्न से, सज्जन महात्माओं के सम्बन्ध द्वारा ऐसा उद्योग करे कि इस जन्म का पौरुष पूर्व जन्म के पौरुष को शीघ्र जीत ले। पूर्वजन्म और इस जन्म के दोनों पुरुषार्थरूपी फल उत्पन्न करने में समर्थ वृक्ष, पुरुष रूपी जंगल में उत्पन्न हुए हैं। उनमें से एक को जड़ से नष्ट करने पर दूसरे की उत्पत्तिरूप विजय प्राप्त होती है। [17]

2. शास्त्रों की अनुकूलता और प्रतिकूलता के आधार पर भेद:

- शास्त्रों के अनुकूल पौरुष
- शास्त्रों के विरुद्ध पौरुष

योगवासिष्ठ के अनुसार इन दोनों अर्थात् शास्त्रानुकूल और शास्त्र विरुद्ध पौरुष में से, शास्त्र विरुद्ध पौरुष अनर्थ के लिए होता है और शास्त्रानुकूल पौरुष परमपुरुषार्थ के लिए होता है–

उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति द्विविधं पौरुषं स्मृतम्।
तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्याय शास्त्रितम्।। [18]

वसिष्ठ ऋषि का स्पष्ट कथन है कि मनुष्य को परमपुरुषार्थ का आश्रय लेकर शुभ पौरुष से, विघ्न करने के लिए उद्यत जो अशुभ पौरुष है, उसको जीत लेना चाहिए। उत्तम पौरुष के लिए तब तक प्रयत्न करते रहना चाहिए जब तक अशुभ पौरुष स्वयं शांत न हो जाए।[19] जिस पुरुष का पुरुषार्थ शास्त्र के अनुकूल है, वही अभिमत फल समूहों की सिद्धि के लिए होता है और शास्त्र के विरुद्ध पुरुषार्थ अनर्थ के लिए होता है। [20]

स च सच्छास्त्रसत्संगसदाचारैर्निजं फलम्।
ददातीति स्वभावोऽयमन्यथा नार्थसिद्धये।। [21]

योगवासिष्ठ के अनुसार पौरुषयत्न यदि सत्शास्त्र, सत्संग और सदाचारसहित होता है तो वह अपना फल देता है, यह उसका स्वभाव है, अन्यथा अर्थ की सिद्धि नहीं होती। इसलिए विंध्याचल के फूटने वा प्रलय वायु के बहने पर भी बुद्धिमान को शास्त्रानुकूल पुरुषार्थ को नहीं त्यागना चाहिए। जो पुरुष सदा प्रयत्न करने में कुशल हैं और नित्य ही सज्जन, ज्ञानी महात्माओं के आचार में विहार करते हैं, वह जगत् के मोह से ऐसे निकल जाते हैं जैसे सिंह पिंजरे से निकल जाता है। [22]

परम पुरुषार्थ–

पुरुष में आत्मा का आविर्भाव अन्य सभी प्राणियों से अधिक है। उसमें ज्ञान भी है और प्रज्ञान भी है। जीव के आत्मज्ञान का प्रारम्भ मनुष्य योनि में पहुंचने पर ही होता है। मनुष्य जानता है, देखता है, बोलता है और साथ ही वह यह भी समझता है कि मैं जान रहा हूं, देख रहा हूं, बोल रहा हूं। पशु जानते हैं, देखते हैं और बोलते हैं परन्तु वे ये नहीं समझते कि हम जान रहे हैं, देख रहे हैं और बोल रहे हैं। इस तरह मनुष्य और इतर प्राणियों में ज्ञान के विकास का तारतम्य है। मनुष्य में ज्ञान का अत्यन्त विकास है। इसी एक अद्भुत विलक्षणता के कारण परमात्मा को यह देह सबसे अधिक प्रिय है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि ''पुरुष में अर्थात् मनुष्य शरीर में विवेकी पुरुष इन्द्रियशक्ति, मन:शक्ति आदि के आश्रय से मुझ आत्मतत्त्व का पूर्णत: साक्षात्कार कर लेते हैं। मैंने एक पैर, दो पैर, तीन पैर, चार पैर, बहुत पैर और बिना पैर वाले–अनेकों प्रकार के शरीर का निर्माण किया है, परन्तु उन सब में मुझे सबसे अधिक प्रिय यह पुरुष शरीर अर्थात् मनुष्य शरीर ही है। क्योंकि इस देह में बुद्धिमान पुरुष एकाग्रचित्त होकर, अनुमान से अग्राह्य अर्थात् अहंकार के विषयों से भिन्न, सर्वप्रवर्तक ईश्वर का स्पष्ट साक्षात्कार कर सकते है। [23]

संसार की विविध योनियों में भटकते हुए जीव को, अनेकानेक पुण्यकर्मों के प्रभाव एवं परमेश्वर के महान् अनुग्रह से ही यह शरीर प्राप्त होता है। इसकी सर्वोत्कृष्टता और दुर्लभता के विषय में भगवान् ने स्वयं ही कहा है–

अस्मिंल्लोके वर्तमान: स्वधर्मस्थोऽनघ: शुचि:।
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया।।
स्वर्गिणोऽप्येतदिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा।
साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम्।। [24]

अत: वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि मनुष्य जन्म पाकर भी जिसने अपने कल्याण के लिए यत्न नहीं किया तो, इससे अधिक शोक क्या हो सकता है। वसिष्ठ ऋषि आत्मतत्त्व के चिन्तन को परमपुरुषार्थ मानते हैं। वे कहते हैं कि जो व्यक्ति शास्त्रानुकूल श्रवण, मनन आदि चेष्टाओं द्वारा आत्मतत्त्व के चिन्तनरूप परमपुषार्थ

को नहीं करते उन पुरुषों को धिक्कार है।[25] अपार संसाररूप सागर को जो ब्रह्मज्ञान से बाधित करके और सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्ममय करके संसाररूप समुद्र में प्रवेश करता है, वही परमपुरुषार्थ कहा गया है–

अपावारमाक्रम्य प्रमेयीकृत्य सर्वत:।
संसाराब्धिं गाहते य: स एव पुरुष: स्मृत:।। [26]

देवी–भागवत में कहा गया है कि–''इस अस्थिर एवं अनित्य मनुष्य देह को प्राप्त करके इसके द्वारा नित्य, शाश्वत, सत्यतत्त्व को जानकर अवश्य ही आत्मकल्याण कर लेना चाहिए क्योंकि मनुष्य जन्म का मुख्य कर्त्तव्य यही हैं–

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुर:।
तस्मिन् प्राप्ते तु कर्त्तव्यं सर्वथैवाऽऽत्मसाधनम्।। [27]

महर्षि शुक–मुनि ने श्रीमद्भागवत में कहा है कि–''यह मनुष्य योनि ज्ञान और विज्ञान का मूल स्रोत है। जो इसे पाकर भी अपने आत्मस्वरूप परमात्मा को नहीं जान लेता, उसे फिर कहीं, किसी भी योनि में शांति नहीं मिल सकतीं–

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम्।
आत्मानं यो न बुध्यते न क्वचिच्छममाप्नुयात्।। [28]

अत: विवेकी पुरुषों को इस अतीव दुर्लभ मनुष्य जीवन के मुख्य उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर, उसके अनुकूल पौरुष करते हुए, आत्मज्ञान को सम्पादन करके इस मानव–जीवन को सफल करके कृतकृत्य होना चाहिए। यही जीवों के सकल दु:खों की निवृत्ति का उपाय है। आत्मज्ञान ही विश्व के जीवों को शाश्वत् शांति प्रदान करता है। यही मानव–जीवन का सर्वोच्य लक्ष्य है। इसकी सफलता के लिए मनुष्यों को सद्विद्या का अभ्यास, सत्–शास्त्रों का श्रवण और सत्पुरुषों एवं विद्ज्जनों का संग करना चाहिए। अत: योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ ने पुरुष का यही कर्त्तव्य बतलाया है–

बुद्ध्वैव पौरुषफलं पुरुषत्वमेतद्,
आत्मप्रयत्नपरतैव सदैव कार्या।
नेया तत: सफलतां परमामथासौ,
सच्छास्त्रसाधुजनपंडितसेवनेन।। [29]

संदर्भ सूची–

1. यजुर्वेद, 32/4
2. हितोपदेश, प्रस्ताविका श्लोक 32
3. ऋग्वेद, 10/60/12
4. ऋग्वेद, 8/84/9
5. अर्थर्ववेद, 8/1/6
6. ईशा., म. 2
7. तै., 2/8/3
8. महो., 4/93
9. भारतीय दर्शन का इतिहास भाग–2, पृ. 211
10. साधनानि–नित्यानि–त्यवस्तुविवेकेहा– मुत्रार्थ–फल–भोगविराग–शमादिषट्कसम्पत्ति मुमुक्षत्वानि वेदान्तसार, 15
11. योग., 2/6/32
12. योग., 2/7/24
13. वही, 2/7/24
14. वही, 2/7/4
15. योग., 2/4/17
16. योग., 2/5/12
17. योग., 2/6/25
18. योग., 2/5/4
19. योग., 2/4/19
20. वही, 2/4/19
21. योग., 2/5/25
22. योग., 2/6/28
23. श्रीमद्भागवत्, 11/7/21–23
24. श्रीमद्भागवत्, 11/20/11,12
25. योग., 2/5/22
26. वही, 5/76/14
27. देवी–भागवत, 6/30/24
28. श्रीमद्भागवत्, 6/16/58
29. योग., 2/6/41

सहायक ग्रंथ–सूची

1. योगवासिष्ठ सुधा : स्वामी विष्णु शरणानन्द, मानसी प्रकाशन, मेरठ, 1998
2. संक्षिप्त योगवासिष्ठ : गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2060
3. ऋग्वेद संहिता (सायण भाष्य) : अनुवादक–पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003
4. यजुर्वेद संहिता : परोपकारिणी सभा सं., षष्ठ संस्करण
5. अथर्ववेद संहिता (सायण भाष्य : सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादाबाद, सं. 1987
6. तैत्तिरीयोपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2050
7. ईशावास्योपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2050
8. गीता रहस्य : बालगंगाधर तिलक, भाग 1 व 2 पूना, 1948
9. भारतीय दर्शन का इतिहास भाग–2: डॉ. एस.एन., दासगुप्त, अनुवादक–श्री एम.पी. व्यास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर–4, द्वितीय संस्करण, 1989

कोविड - 19 से बचाव तथा उपचार में योगाभ्यास की भूमिका

निधि शुक्ला
पी-एच. डी. शोधार्थी, योग विभाग
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर

भावना श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक, योग विभाग
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर

संक्षेपिका -

वर्तमान में कोविड-19 भारत ही नहीं पूरे विश्व में महामारी के रूप में अपनी जड़े फैला चुका है। इससे दुनिया में लाखों की संख्या में लोग संक्रमित हुए है तथा हजारों की संख्या में मौते भी हुई है। दिन प्रतिदिन संक्रमण तथा मौतों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। यह एक ऐसा रोग है जिसका इस धरा पर उपचार खोज पाना संभव नहीं हुआ है। स्वास्थ्य विद्वानों का मत है कि सावधानी व सुरक्षा ही इसका उपचार है। इससे बचने के लिए आयुष मंत्रालय तथा अनेक विद्वानों ने मास्क लगाना, हाथों को धुलते रहना, सामाजिक दूरी बनाए रखना, मांसाहार से दूरी आदि विभिन्न मार्ग बताए है, जिन्हें अपनाकर इस भयावह महामारी के चपेट में आने से बचा जा सकता है। शोधों के अनुसार यह रोग बुजुर्गों, बच्चों, अन्य रोग से ग्रसित जैसे अस्थमा, मधुमेह व हृदय रोग तथा रोग प्रतिरोधकता की कमी वाले व्यक्ति को अधिक संक्रमित करता है। अत: अनेक सुरक्षात्मक उपायों के अतिरिक्त योग एक ऐसा माध्यम है जिसके कुछ योगाभ्यासों से रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है तथा श्वसन प्रणाली को मजबूत किया जा सकता है क्योंकि यह रोग श्वसन तंत्र को ही अधिक प्रभावित करता है। इस शोधप्रपत्र में महामारी से बचाव तथा सुरक्षा के लिए उपयुक्त तथा प्रभावशाली योगाभ्यासों को विज्ञान सम्मत विधि से वर्णित किया जाएगा तथा योग द्वारा कोविड-19 से बचने व सभी को बचाने की जागरूकता का प्रयास है।

मुख्य शब्द- कोविड-19, महामारी, योगाभ्यास, श्वसन तंत्र, रोग प्रतिरोधकता।

प्रस्तावना -

कोविड-19 एक ऐसे वायरस परिवार से है जो कि सामान्य खाँसी जुकाम से लेकर गंभीर श्वास रोगों का भी कारण है। वर्तमान में सारी दुनिया में व्याप्त कोरोना नामक महामारी की शुरूआत चीन के वुहान नामक शहर में 2019 में होने के कारण इसे कोविड-19 अर्थात् कोरोना वायरस ऑफ डिसीस के नाम से जाना जाता है। कोरोना वायरस मानव बाल की तुलना में 900 गुणा सूक्ष्म है। डब्ल्यु. एच. ओ. ने इसका नामकरण वैश्विक एजेंसी विश्व पशु स्वास्थ्य संगठन तथा खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार किया। वैश्वीकरण के युग में वुहान के पश्चात् यह वायरस संपर्क में आने से व्यवसायियों, कर्मचारियों, पर्यटकों तथा अन्य यात्रियों से दुनिया के विभिन्न देशों, राज्यों तथा शहरों में व्याप्त हो गया।

इस वायरस के संदिग्ध की जाँच के लिए पॉलीमरेज चेन रिएक्शन टेस्ट किया जाता है। इस परीक्षण के लिए रोगी के श्वसन या रक्त के नमूनों की आवाश्यकता होती है तथा परीक्षण के कुछ घंटों से कुछ दिनों के पश्चात् परीक्षण का परिणाम ज्ञात हो जाता है।

वायरस के लक्षण

1. सामान्य खासी तथा बुखार (100 डिग्री फेरेनहाइट/ 37.7 डिग्री सेल्सियस)
2. श्वास लेने में बाधा का अनुभव
3. गले में खराश
4. थकान एवं कमजोरी
5. डायरिया तथा अनेकों मामलों में कोरोना बिना लक्षणों का भी देखने में मिलता है।

कोविड-19 के कारण -

कोरोना नामक वायरस हवा में बूंदों के माध्यम से एक रोगी से दूसरे रोगी तक पहुंचता है अर्थात् जब एक संक्रमित व्यक्ति खाँसता अथवा छींकता है तो उसके थूक के छिटों से वायरस 3-6 फीट के दायरे में संचरित हो जाता है।

कोरोना का संक्रमण मुँह, नाक तथा आँखों के माध्यम से शरीर के भीतर प्रवेश करता है। तत्पश्चात् फेफडों की तरफ श्वास के माध्यम से पहुँचता है। जब फेफड़ों में उपस्थित एल्वोलाई (जो कि फेफड़ों में वायु के आदान-प्रदान के लिए जिम्मेदार है) तक संक्रमण पहुँचता है तो इनमें सूजन आ जाती है और न्युमोनिया का कारण बनता है। फेफडों में आक्सीजन की कमी तथा

कार्बनडाईआक्साइड की अधिकता होने से आक्सीजन के स्थान पर बलगम एकत्रित होने लगता है जिससे श्वसन में तकलीफ होने लगती है व सीने में दर्द की अनुभूति होती है। फेफडों में पहुंचकर यह वायरस श्वसन तंत्र की कोशिकाओं पर हमला कर एसीई 2 नामक एक प्रोटीन को उत्पादित करता है, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम करता है तथा कोशिका से आनुवांशिकी को निर्धारित करने वाले तत्व को हटाने लगता है। यह आर.एन.ए. सामान्य स्थिति में विभिन्न प्रकार के प्रोटीन को जोड़े रखने का कार्य करता है। जब यह वायरस श्वसन तंत्र में प्रवेश करती है तब वह अपनी संख्या को भी बढ़ाने लगता है तथा संक्रमित कोशिका के साथ-साथ अन्य पड़ौसी कोशिकाओं को भी प्रभावित करने लगती है। वायरस को ऊपरी श्वास नलिका, श्वास नली तथा ट्रेकिया से ब्रोंकाई से होते हुए एल्वोलाई तक पहुंचने में कुछ समय लगता है। वायरस रक्त में मिलकर शरीर के अन्य हिस्सों हृदय, गुर्दे तथा यकृत तक भी पहुँच जाता है तथा इसके प्रतिरोध में शरीर की रोग प्रतिरक्षा प्रणाली सक्रिय होती है तथा अत्यधिक प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप इन अंगों में सूजन आ जाती है।

जब कहीं संक्रमण हो जाता तो शरीर में रोगप्रतिरोधक के लिए अलार्म का कार्य करने वाले प्रोटीन जिसे साइटोकिन्स कहते है वह सक्रिय हो जाता है तथा संक्रमित स्थान पर प्रतिरोधकता का बढ़ाते है।

कोविड-19 से बचाव हेतु योगाभ्यास

योग सही तरह से जीवन जीने का विज्ञान है, इसे प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा दैनिक जीवन में शामिल किया जाना चाहिए। योग व्यक्ति के जीवन से जुड़े भौतिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक, आत्मिक आदि समस्त पहलुओं पर कार्य करता है। योग का अर्थ एकत्व है। आध्यात्मिक स्तर पर इस एकत्व का तात्पर्य सार्वभौमिक सत्ता का व्यक्तिगत चेतना का एक होने से है। व्यवहारिक स्तर पर योग शरीर, मन और आत्मा का एकत्व है। योग का उद्देश्य जीवन के अंतिम लक्ष्य समाधि को प्राप्त करना है तथा इसी की प्राप्ति के लिए विभिन्न योग ग्रंथों में अभ्यास वर्णित है जिनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा-बंध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग आदि का अभ्यास सम्मिलित है। समाधि के प्राप्ति में सबसे प्रारंभिक चरण शरीर का स्वास्थ्य है क्योंकि स्वस्थ शरीर के बिना अन्य साधना मार्ग पर उन्नति संभव नहीं है। वर्तमान में कोविड-19 के कारण व्यक्ति का शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है। जिसे योग के माध्यम से संतुलित किया जा सकता है।

कोराना से बचाव के लिए हमें शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहने की आवश्यकता है। अर्थात् शरीर के साथ-साथ मन को भी स्वस्थ बनाए रखने हेतु दोनों प्रकार के अभ्यासों की आवश्यकता है। शरीर और मन की स्वस्थता के लिए अनेक योग ग्रंथों में योगाभ्यास वर्णित है जिनमें से चयनित योगाभ्यासों का वर्णन प्रस्तुत शोध में किया जा रहा है। यह अभ्यास कोविड से बचाव तथा उपचार में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं।

षठकर्म - कोरोना का संक्रमण मार्ग नासिका, आँख तथा मुँह से होता हुआ फेफड़ों तक जाता है अत: इन मार्गों को शुद्ध करने के लिए योग में शोधन क्रियाओं के अंतर्गत नेति, त्राटक तथा कपालभाति का अभ्यास वर्णित है। ये अभ्यासों को विशेष सावधानियों को रखते हुए प्रतिदिन किया जा सकता है। यह कोरोना संक्रमण के साथ नाक, कान, आँख तथा गर्दन के सभी रोगों के उपचार में भी उपयोगी है।

नेति- यह दो प्रकार की वर्णित है- जलनेति व सूत्रनेति। जलनेति में जल को गुनगुना कर उसमें थोड़ा से नमक मिलाया जाता है तत्पश्चात् एक टोटी वाले लोटे की टोटी को गर्दन को किसी एक दिशा में घुमाकर, नासाछिद्र में लगाए तथा जल को दूसरे नासा से प्रवाहित होने दे। तथा सूत्र नेति में धागों से बने सूत्र को एक नासिका छिद्र से डालकर उसे मुख से निकालना चाहिए। इनका प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए। इन कियाओं से नासा मार्ग तथा गले की शुद्धि हो जाती है। तथा संक्रमण की संभावना नहीं रहती।

त्राटक- किसी एक बिंदु पर एकटक बिना पलक झपकाए तब तक देखते रहना जब तक आखों से अश्रुधारा प्रवाहित न हो, यह अभ्यास ही त्राटक कहलाता है। यह आखों को स्वस्थ बनाता है।

कपालभाँति- योग ग्रंथों में वातकम्, व्युतकम् तथा शीतकम् कपालभाँति का वर्णन है तथा सबकी भिन्न विधियाँ है। अत: वातकम् कपालभाँति में निष्क्रिय श्वसन तथा सक्रिय व तीव्र नि:श्वसन किया जाता है। जिससे फेफड़ों की क्षमता में वृद्धि होती है। एल्वोलाइस की श्वसन क्षमता बढ़ती है। इसी प्रकार शीतकम् तथा व्युत्कम् कपालभाँति भी नासिका तथा मुख के साथ कपाल की शुद्धि करते है।

आसन - कोरोना के संक्रमण को ध्यान में रखते हुए अपनी रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाने वाले तथा श्वसन तंत्र को मजबूत करने वाले आसनों का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए। रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाने वाले योगाभ्यासों में- पवनमुक्तासन भाग 1,2,3 शरीर की प्रत्येक नाडियों में प्राण के प्रवाह को सुव्यवस्थित करता है, साथ ही सूर्यनमस्कार का अभ्यास भी प्रतिदिन 3-5 चक्र करना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रज्ञायोग का नियमित अभ्यास शरीर को रोग मुक्त

रखता है। साथ ही फेफडों की क्षमता वर्धक आसन जैसे-हस्तोत्थानासन, भुजंगासन, धनुरासन, गोमुखासन, उष्ट्रासन, नटराजासन, चन्द्रासन, सर्पासन, ताडासन, तिर्यक् ताडासन, कटिचक्रासन का अभ्यास लाभदायक सिद्ध होगा। ये अभ्यास फेफड़ों में जमे कफ को समाप्त करने अन्य रोग दमा, उच्चरक्तचाप, किसी प्रकार की सर्जरी अथवा घाव होने पर आसनों का अभ्यास योगशिक्षक के मार्गदर्शन में ही करना उचित होता है।

प्राणायाम – विदित है कि कोरोना श्वसन तंत्र को प्रभावित करता है अत: श्वसन को मजबूत बनाने वाले अभ्यासों में सर्वप्रथम नाडियों की शुद्धि के लिए नाडीशोधन तथा अनुलोम विलोम का अभ्यास लाभदायक है। साथ ही वक्ष शक्ति विकास के लिए वक्षीय श्वसन व उदरीय श्वसन, यौगिक श्वसन का भी अभ्यास भी करना चाहिए। तत्पश्चात् सूर्यभेदी, भ्रामरी, भ्रस्तिका, उज्जायी का अभ्यास करें। वातावरण में अधिक ऊष्णता होने पर भ्रस्तिका व सूर्यभेदी का अभ्यास दीर्घकाल तक न करें। उज्जायी गले पर सकारात्मक प्रभाव डालती है तथा भ्रामरी, मस्तिष्क को प्रभावित कर तनाव तथा चिंता से मुक्ति दिलाने में सक्षम हैं। अत: प्राणायाम शरीरिक लाभ के साथ कोरोना से बचाव के लिए मानसिक शक्ति भी देता है, अन्य चिंता जनित रोगों से बचाता है।

प्रत्याहार – प्रत्याहार का तात्पर्य अपनी इन्द्रियों को निग्रहित करने से है, जो कि कोरोना से बचाव तथा रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। तला भुना, बासा, डिब्बा बंद भोजन, अत्यधिक मसालेदार, तैलीय भोजन रोगप्रतिरोधकता को कम करते है अत: जिह्वा के नियंत्रण का अभ्यास प्रत्याहार है। इसके अतिरिक्त योग शास्त्रों में वर्णित पथ्य भोजन का सेवन करने से रोगप्रतिरोकता बढती है जिनमें ताजे फल, सब्जी, हरी शाक तथा अन्य औषधियों को सेवन करना चाहिए।

धारणा तथा ध्यान – धारणा तथा ध्यान का अभ्यास भी वर्तमान कोरोना की परिस्थियों में अत्यधिक प्रभावी सिद्ध होता है क्योंकि ये अभ्यास व्यक्ति की उर्जा को सकारात्मक दिशा में केन्द्रित करते है, तथा नकारात्मक से भरे विचारों को आने से रोकते हैं। इनका अभ्यास एकाग्रता प्रदान करता है साथ ही मस्तिष्क में सकारात्मक तरंगों को उत्पन्न कर विचारों को शांत करता है।

योग अभ्यास गहन विश्राम का उपयोग करते हैं जो प्रतिरक्षा दमन को रोकने के लिए सभी तनावों और तनावों से मुक्त कर सकता है जो अन्यथा संक्रामक बैक्टीरिया और वायरस के हमले की प्रतिक्रियाओं को कमजोर कर देता। हमें तनाव को कम कराने के लिए अभ्यास करने की आवश्यकता होती है।

उपसंहार –

योग की सहायता से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता हैं। जिससे रोगों से लड़ने में मदद मिलती हैं। षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की सहायता से शरीर को विषाणुओं से बचाया जा सकता हैं। उपरोक्त अभ्यास से शरीर के प्रत्येक संस्थान मजबूत होता है। चूँकि योग के द्वारा समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति होती हैं। इसलिए दिन प्रतिदिन योग के अभ्यास से समस्त समस्याओं का निदान होता है।

संदर्भ सूची

1. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद, घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2020, पृ सं.-35
2. गोयन्दका, हरिकृष्णदास, महर्षि पतंजलिकृत योगदर्शन, गोरखपुर गीताप्रेस, वि.सं.-2066, पृसं 53
3. गोयन्दका, हरिकृष्णदास, महर्षि पतंजलिकृत योगदर्शन, गोरखपुर गीताप्रेस, वि.सं.-2066, पृ सं-19
4. 2019 Novel Coronavirus (20197-nCoV) situation Summary" centers for disease control and Prevention (CDC), 31 january, दृश्य 15 मई 2021
5. Hassen, Margaret Trexler, Novel Coronavirus Information Center: Expert guidance and commentary" दृश्य तिथि 14 मई 2021
6. Corona virus About symptoms and diagnosis centers for disease control and prevention(CDC), united state, 30 जनवरी 2021
7. m.economictimes.com
8. AFP wy january 2020, Doctor] nurses describe treating coronavirus patient, दृश्य 15 मई 2010
9. Nagendra H. R. (2020). Yoga for COVID-19. International journal of yoga, 13(2), 87-88. https://doi.org/10.4103/ijoy.IJOY 27 20
10. Zhang, Y., & Ma, Z. F. (2020). Impact of the COVID-19 pandemic on mental health and quality of life among local residents in Liaoning Province, China: A cross sectional study. International journal of environmental research and public health, 17(7), 2381.
11. Ransing, R., Pinto da Costa, M., Adiukwu, F., Grandinetti, P., Schuh Teixeira, A. L., Kilic, O., Soler-Vidal, J., & Ramalho, R. (2020). Yoga for COVID-19 and natural disaster related mental health issues: Challenges and perspectives. Asian journal of psychiatry, 53, 102386. https://doi.org/10.1016/j.ajp.2020.102386

ISSN 2278 - 0327

भारत के पड़ौसी देशों से सम्बन्ध

(1920-30 अभ्युदय के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. आशा यादव
एसो. प्रो., विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग
एम. एम. (पी. जी.) कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ. प्र.)

अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थापित करने हेतु प्रत्येक देश के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपनी विदेश-नीति का निर्धारण अपने हितों की पूर्ति के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने, अन्य राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने तथा आपातकाल में अधिक मदद प्रदान करने आदि तत्वों को ध्यान में रखकर निश्चित करें परन्तु पराधीन भारत की भारत सरकार इंग्लैड की सरकार के अधीनस्थ थी, अत: उनकी विदेश नीति का निर्धारण भी इंग्लैंड द्वारा ही किया जाता था। ब्रिटिश मंत्रिमंडल द्वारा साम्राज्य के हित में जो निर्णय लिए जाते थे, वही भारत सरकार को मान्य होते थे।[1] चाहे भारतीय सीमा का प्रश्न होता या चाहे पड़ौसी देशों से सम्बंधों का अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत के प्रतिनिधित्व का प्रश्न, भारतीय लोकमत और हितों की उपेक्षा की जाती। विदेशों में भारतीयों के मान-सम्मान के प्रश्न पर भी भारत की अपनी कोई स्वतंत्र राष्ट्र अथवा आज जैसी विदेश नीति नहीं थी। अत: तत्कालीन भारत सरकार की विदेश नीति इस दृष्टिकोण से कोई अपनी विदेश नीति न थी, फिर भी राष्ट्रीय प्रेस ने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए सरकार की आलोचना की और सुझाव भी दिए क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास था कि भारत के भाग्य के फैसले पर ईरान, मिस्त्र और अरब देशों की राष्ट्रीयता अवलम्बित थी।[2] भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् ही इन राष्ट्रों को राजनैतिक स्वतंत्रता मिल सकती थी और पड़ौसी देश चीन, अफगानिस्तान आदि भी आर्थिक दासत्व से मुक्ति पा सकते थे। राष्ट्रीय प्रेस ने तुर्की की समस्या की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया और स्पष्टता से अपनी बात रखी। साथ ही, स्वयं भारत जब तक ब्रिटिश साम्राज्य से बाहर नहीं निकल जाता, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसक राय का कोई मूल्य नहीं था।[3]

पड़ौसी देशों के प्रति नीति-

'अभ्युदय' ब्रिटिश राजनीति को वालों से भारतीय को परिचित कराना अपना कर्त्तव्य समझता था। पड़ौसी देशों की स्थिति, उनके ब्रिटेन के साथ संबंध तथा उनके हितों, प्रवासी भारतीयों की स्थिति एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति पर वह खुलकर चर्चा करता था। इस नीति के अन्तर्गत उसने समय-समय पर लेख लिखे और उनकी स्थिति से भारतीयों को अवगत कराया। अफगानिस्तान, चीन, मिस्त्र और तुर्की समस्या पर अफगानिस्तान 1920-30 ई. के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अफगानिस्तान का महत्व बढ़ रहा था। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ उसे मध्य एशिया की राजनीति का केन्द्र समझने लगे थे। उनको भय होने लगा था कि अफगानिस्तान, तुर्की, मिस्त्र, पारस आदि देशों का एक मुस्लिम गुट बन जने से तुर्की पुन: बलशाली हो जाता।[3]

यूरोपीय ईसाई राष्ट्र यह नहीं सहन कर सकते थे कि उनके बराबर में कोई खड़ा रह सके।[4] इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान में इंग्लैंड एवं रूस दोनों के ही राजनीतिक स्वार्थ थे। ये दोनों कई वर्षों से काबुल पर कब्जा करना चाहते थे। भारत और अफगानिस्तान का घना संबंध था, अत: भारत पर कब्जा रखने के लिए स्वभावत: इंग्लैंड काबुल को अपने कब्जे में करना चाहता था इसीलिए भारत अफगानिस्तान की सीमा भी अंग्रेजों के लिए सदा चिन्ता का विषय रही थी।[5] रूस भी इस बात से अनभिज्ञ नहीं था और यही कारण था कि भारत के प्रति उसने अपनी सब चालें अफगानिस्तान की तरफ घुमा दी थी। अतएवं इंग्लैंड के लिए यह किया जाय और बढ़ते हुए रूस के कदमों को रोका जाय जिससे भारत को सुरक्षित रखा जा सके परन्तु इंग्लैंड द्वारा जितने अधिक प्रयत्न किए जा रहे थे, रूस के कारण वे प्रयत्न निरन्तर विफल होते जा रहे थे।[6] इसी समय रूस एवं जर्मनी के साथ अफगानिस्तान ने जो संधि की उसके कारण भी इंग्लैंड अत्यधिक भयभीत था। इन संधियों का तात्पर्य यही था कि अफगानिस्तान इंग्लैंड के अतिरिक्त अन्य देशों से भी मित्रता बनाए रखना चाहता था। यह इंग्लैंड के लिए असत्स था क्योंकि संधि के पश्चात् अफगानिस्तान इंग्लैंड की मदद न करके रूस की मदद

करता। तुर्की और रूस पहले ही प्रतिज्ञाबद्ध थे कि एक दूसरे पर आक्रमण न करेंगे और साथ ही ईरान की रक्षा भी करेंगे। 27 मई 1928 को तुर्क- अफगान संधि से तुर्की, ईरान, अफगानिस्तान और सोवियत संघ में पहले की अपेक्षा अधिक मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हो गए। अत: यह संधि और संबंध इंग्लैंड के लिए घातक थे। इन संधियों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसकी स्थिति को भी धक्का लगा।[7] 'अभ्युदय' पत्र भारत सरकार के काबुल पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अधिकार के विरूद्ध था। ब्रिटिश सरकार भारत को एशिया महाद्वीप का केन्द्र बिन्दु मानती थी, उसी से महाद्वीप के राजनीतिक सूत्रों का संचालन करना चाहती थी, अत: भारत की सुरक्षा भी आवश्यक थी। रूसी आक्रमण से भारत की उत्तर पश्चिम सीमा की सुरक्षा का सरल उपाय काबुल पर नियंत्रण था। राष्ट्रीय प्रेस साम्राज्यवादी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारत को विस्तारवादी कार्यों में प्रयोग की विरोधी थी।[8]

चीन-

चीन भी भारत का पड़ौसी देश है। भारत की सीमाएं उससे मिलती हैं। अत: एक दूसरे पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। 'अभ्युदय' पत्र चीन की स्वतंत्रता एवं अखंण्डता का पक्षधर था।[9] चीन इस समय (1920-30) राष्ट्रविरोधनी शक्तियों-ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और अमेरिका, से जूझ रहा था। चीन का कुओमितांग दल इन शक्तियों के विरूद्ध संघर्षशील था और यह दल जन-सरकार स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। यही कारण था कि उसकी सफलता में संसार और विशेष रूप से पराधीन राष्ट्र सहानुभूति रखते थे। सम्भवत: उसकी स्वतंत्रता में भारतीय अपनी स्वतंत्रता का भाव देख है थे। अत: भारत की सहानुभूति भी चीन के साथ थी। राष्ट्रीय प्रेस ने स्वार्थी विदेशी शक्तियों के झूठे प्रचार के विरूद्ध विश्व और विशेष रूप से भारत को चीन की वास्तविक शक्ति से परिचित कराया।[10]

चीन का विदेशी शक्तियों के विरूद्ध आंदोलन छेड़ने के पीछे बहुत बड़ा उद्देश्य था। एक ओर विदेशियों द्वारा किए गए अपमान अन्याय और अत्याचारों से चीनी ऊब गये थे और युवा चीनी वर्ग विदेशियों के जुए को अपने कंधों से उतार फेंकने के लिए उतावला को गया था। दूसरी ओर, शोषक राष्ट्रों को अपने हितो के कारण चीनियो की ये बात पसंद नहीं थी क्योंकि चीनियों की नीति के कारण था कि वे चीनियों के आंदोलन को हर कीम पर कुचलना चाहते थे। वे आंदोलन की विद्रोह की संज्ञा देते थे। चीन मानो भेडियों के बीच गरीब मेमना का बन गया था।[12]

समाचारपत्रों तथा समाचार एजेन्सियों पर इन राष्ट्रों के वर्चस्व के कारण जो सूचनाएँ विश्व को मिल रही थी, उनसे यही प्रतीत होता था मानो चीन वास्तव में विद्रोह था जो साम्यवाद के प्रभाव के कारण इन राष्ट्रों का विरोध कर रहा था। अतएव वास्तविक स्थिति का पता लगाना असम्भव सा हो गया था परन्तु यह अवश्य स्पष्ट था कि चीन क्रान्ति के कगार पर था।[13] विदेशी शक्तियों के लिए चीनियों को व्यक्तिगत और राष्ट्रीय तौर पर कष्ट देना और उनका अपमान करना साधारण बात थी। बहुत से चीनी तो विदेशी शक्तियों के द्वारा मारे भी जा चुके थे किन्तु इन घटनाओं के बाद भी अपराधियों को चीनी अधिकारी दंड नहीं दे सकते थे क्योंकि अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और जापान को यह अधिकार 1898-99 ई० में प्राप्त हो गए थे।[14]

विदेशी शक्तियों द्वारा और विशेष रूप से, तीन राष्ट्रों का, जो चीन पर आधिपत्य चाहते थे, चीन में लड़ने का मुख्य कारण यह था कि उनको अपने नागरिकों की (जो चीन में रह रहे थे) रक्षा का अधिकार मिले, जो जमीन उनके प्रभाव क्षेत्र में आ गई थी उस पर उनका पूर्ववत् अधिकार बने रहे तथा चीनियों की किस्मत का फैसला अब भी उनके हाथ में रहे। ये विदेशी राष्ट्र चीन में ही बने रहना चाहते थे जिससे चीनियों को आपस में लड़ाते रहें और सुरक्षा के नाम पर हस्तक्षेप करते रहें।[15] अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ये तीनों राष्ट्र चाहते थे कि उनके अपने सिवा कोई चीन में प्रवेश न कर पाये। यह नीति चीन में आंदोलन का कारण बनी। शीघ्र ही चीन के आंदोलनकारियों को अपने इन शत्रुओं की परस्पर ईर्ष्या के कारण इनके दबदबे से मुक्ति पाने हेतु उपयुक्त अवसर भी मिल गया। यद्यापि चीन स्वतंत्र था किन्तु उसे पहले अनेक अपमानजनक संधियाँ करनी पड़ी थी और विदेशियों को विशेषधिकार देने पड़े थे। अब चीनी अपमानजनक संधियों से मुक्ति पाना चाहते थे। वे अपने क्षेत्र में विदेशी सेना के संगठन के पक्ष में नहीं थे और न ही वे तलवार की नोंक पर कोई समझौता करना चाहते थे। चीन समझौता चाहता था तो एक स्वतंत्र की राष्ट्र की तरह स्वतंत्रता के आधार पर। इन विदेशी शक्तियों के दबाब एवं दमन के बावजूद चीनी अपने मत पर अडिग रहे थे क्योंकि उनका मानना था ''दाबै सो दबे नीच।'' चीनियों का समझौता न करना ही उचित था क्योंकि यदि विदेशी राष्ट्रों को एक न्याययुक्त बात करने से, सेना हटाने में अपनी शान जाती दिखाई दे रही थी, तो चीनी ही इस बात को कैसे स्वीकार कर सकते थे कि तोपों और तलवारों की छाँह में वे इन विदेशी शक्तियों के साथ अपनी स्वतंत्रता और अपने प्रदेश के संबंध में समझौता करें।[17]

वास्तविक बिल्कुल यही थी। चीनियों की उन्नति के मार्ग में इन राष्ट्रों के द्वारा सदा रोडे अटकाये गए। नई-2 दमनकारी नीतियों द्वारा चीन को तबाह करने का प्रयत्न किया गया, उसकी आर्थिक स्थिति तहस-नहस की गई और ये सब सवार्थवश किया गया। अत: 'अभ्युदय' एवं राष्ट्रीय प्रेस का मानता था कि ऐसी दशा में यदि चीनी इन विदेशियों के प्रतिघृणा रखते थे इसमें आश्चर्यचकित होने की बात नहीं थी किन्तु चीनी शान्त थे और शान्तिपूर्वक व्यवहार ही करते थे।[18] चीन के संबंध में ब्रिटिश सरकार ने जो नीति ग्रहण की थी, उससे ब्रिटेन की मजदूर सरकार भी बड़ी अप्रसन्न थी। उसने इंग्लैंड के प्रधानमंत्री मिस्टर बाल्डविन के पास अपील भी की थी किन्तु अपील केवल रोदन सिद्ध हुई।[19]

'अभ्युदय' आरम्भ से ही विदेशी शक्तियों द्वारा चीन को अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु व्यर्थ ही सताएं जाने की बात कर रहा था। उसने भारत की सेना को चीन में भेजने पर भी आपत्ति की। इसके दो कारण थे-पहला तो यह कि जब जापान इंग्लैंड का मित्र था तो रक्षा का भार भी उसी पर छोड़ा जा सकता था। सेना यदि ब्रिटेन वास्तव में चीन के साथ शांतिपूर्वक समझौता चाहता था तो उसका सबसे प्रथम कर्त्तव्य यही था कि वह शंघाई से अपनी फौजें वापस बुला देता।[20] फौजें हटाने के बाद ही ब्रिटेन को चीन के सामने न्यायानुमोदित शर्तें रखनी चाहिए थी। इससे ब्रिटेन को यह लाभ होता कि यदि चीन शर्तों को नहीं मानता तो संसार की सहानुभूति ब्रिटेन के साथ होती, किन्तु बिना फौज हटाने शर्तों का मनवाना और शांति की अभिलाषा प्रकट करना दिखाने के लिए शुभकांक्षामात्र ही थी।

चीन का समर्थन महात्मा गाँधी जी ने भी किया और चीनियों को मूल्य चुकाने के लिए तैयार रहने को कहा। चीनी ग्रहयुद्ध विदेशी षड्यंत्रों एवं विदेशी अधिक स्वार्थों का ही परिणाम था। चीन में प्रजातंत्र स्थापित न हो सके और चीन सदैव निकम्मा ही बना रहे, इसके लिए विदेशी शक्तियों द्वारा खूब पैसा खर्च किया गया। साम्राज्यवादी राष्ट्र आर्थिक लाभ के लिए किसी भी पाप को करने में संकोच नहीं करते और न ही किसी संधि का ही पालन करते। इसी नीति को उन्होंने चीन में इस्तेमाल किया।[21]

विदेशी राष्ट्रों के स्वार्थों के कारण चीन का राष्ट्रीय दल बराबर सफलता पा रहा था। स्वतंत्र चीन का जन्म हो रहा था, यद्यपि प्रसनकाल की वेदनाओं से वह पीड़ित था, पर चीन की राष्ट्रीय सरकार ही विजय प्राप्त करेगी-ऐसी 'अभ्युदय' पत्र को पूरा विश्वास था।[22] 'अभ्युदय' चीन को एशिया का वक्षस्थल मानता था जिससे एशिया के स्वाधीन जीवन का रक्त, संचालन होता था। चीन की स्वाधीनता एशिया के लिए कल्याणकारी होगी और एशिया को विदेशियों, की अधीनता से मुक्त करेगी। संसार के सब दीन दु:खी राष्ट्र इसीलिए चीन के स्वाधीनता संग्राम में चीनियों की सफलता की कामना करते थे।[23] भारतीय राष्ट्रीय हिन्दी प्रेस का प्रचार और भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई, जब फरवरी 1929 में चीन और ब्रिटेन में समझौता हो गया। इस समझौता के अनुसार चीनी प्रदेश पर चीनियों का पूर्ण अधिकार ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया।[24] यह सिद्ध हो गया कि अंग्रेज सब प्रकार की लड़ाई में कुशल होते हुए भी कुशल राष्ट्रीयता का दमन करने की शक्ति नहीं रखते।[25]

मिस्त्र

न केवल एशिया में अपितु अफ्रीका महाद्वीप में भी ब्रिटेन अपने कदम मजबूत कर रहा था। अफ्रीका स्थित मिस्त्र अंग्रेजों का एक शक्तिशाली उपनिवेश था। एक तो मिस्त्र में बहुत सारी अंग्रेजी सम्पत्ति लगी हुई थी, दूसरे मिस्त्र की सीमाओं से लगा हुआ सूडान भी अंग्रेजी साम्राज्य के लिए आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि सूडान संसार के रूई उत्पन्न करने वाले नये क्षेत्रों में से एक था जो लंकाशायर के कारखानों के लिए महत्वपूर्ण था। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश साम्राज्य के स्वार्थी और आर्थिक हितों का मिस्त्र से टकराव निश्चित था। ब्रिटेन अपनी पाशविक शक्ति से मिस्त्र पर अधिकार बनाये रखना चाहता था जबकि मिस्त्र अपनी स्वाधीनता प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील था।

एक ओर मिस्त्र अंग्रजों की बर्बरता से पीछा छुड़ाना चाहता था, दूसरी ओर अंग्रेज संधि के अनुसार और अधिक समय तक उसके सर्वेसर्वा बने रहना चाहते थे।[27] तो तीसरी ओर इटली भी मिस्त्र पर आँख जगाए बैठा था।[28] मिस्त्र भी इस स्थिति से परिचित था। वह भली-भाँति जानता था कि यदि इंग्लैंड मिस्त्र को खाली भी कर देता तो उसका स्थान इटली ले लेता क्योंकि भूमध्यसागर में इटली की शक्ति बढ़ रही थी। वह अधिक से अधिक अपना विस्तार कर रहा था। अत: मिस्त्र पर भी अधिकार कर सकता था।

स्वेज नहर के कारण मिस्त्र का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व बढ़ गया था। इटली एवं इंग्लैंड ही नहीं, अन्य यूरोपीय राष्ट्र एवं एशियाई राष्ट्र भी इसी कारण मिस्त्र में रूचि लेने लगे थे।[30] अत: मिस्त्र को स्वतंत्रता देने के पश्चात् क्या मिस्त्र स्वतंत्र रह पायेगा- इसका ब्रिटेन को विश्वास न था। इसलिए भी वह मिस्त्र को स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं था।[31] और यह भी सच था कि मिस्त्र के लोग जानते थे कि स्वतंत्रता का उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता था जबकि

ब्रिटेन से मुक्त होने पर कोई भी उस पर अपना अधिकार न जगा पाये।[32] वह विदेशियों के हित की रक्षा की जिम्मेवादी और उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर रखने को तैयार न था। अत: अभ्युदय पत्र का विश्वास था कि यदि इस समय अंग्रेज मिस्र को स्वराज्य दे देते और मिस्रवालों और उनके नेताओं के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करते हो अति उत्तम होता।[33] इससे शांति स्थापित होती और मिस्र का विकास भी होता। साथ ही अंग्रेजों को मिस्र के झंझट से भी मुक्ति मिलती। अंग्रेजों के आर्थिक हितों का संरक्षण हो जाता। अन्तर्राष्ट्रीय जग में उसकी बदनामी न होती क्योंकि मिस्र के साथ उसके अच्छे संबंध स्थापित होने से वह विश्व में प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर सकता था।

तुर्की समस्या

खिलाफत की समस्या भी इस समय भारत में उग्र रूप में उपस्थित थी। मुसलमान चाहते थे कि तुर्की की स्थिति वहीं हो जो युद्ध से पहले थी।[34] दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार की तुर्की के प्रति नीति बिल्कुल अस्पष्ट थी। एक ओर तो कहा जाता था कि भारत सरकार तुर्की से सहानुभूति रखती है और खिलाफत के प्रश्न को हल करना चाहती है, दूसरी ओर अली बंधुओं और महात्मा गाँधी को इसलिए कैद किया गया कि वे तुर्की की पूर्व स्थिति के समर्थक थे।[35]

प्रथम महायुद्ध के समय भारत सरकार द्वारा आश्वासन दिया गया था कि तुर्की को किसी भी प्रकार का आघात नहीं पहुँचाया जायेगा, उसकी भूमि नहीं छीनी जायेगी और धर्म को भी ठेस नहीं पहुँचाई जायेगी। सरकार द्वारा मध्य पूर्व में भी हिन्दू मुसलमान सैनिक भेजते समय भी यही प्रतिज्ञा दोहराई गई थी। वाइसराय द्वारा भी उनका अनुमोदन किया गया किन्तु तुर्की के साथ संधि करते समय सब बातें भुला दी गई और तुर्की का अंग-अंग कर दिया गया।[36]

ब्रिटिश सरकार द्वारा तुर्की और यूनानियों के युद्ध में भी तटस्थ रहने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु बाद में उसने यूनानियों को मदद पहुँचाई और तुर्की को क्षति। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने एक बार नहीं, अनेकों बार प्रतिज्ञाएँ कर मुसलमानों के साथ वादा खिलाफी की।[37]

इस अन्याय से केवल मुसलमान ही नहीं अपितु सभी भारतीय क्षुब्ध थे। भारतीय मुसलमान तो ब्रिटिश सरकार के इन कार्यों को प्रतिज्ञाभंग मानते थे। उनकी धारणा बन गई थी कि ब्रिटिश सरकार तुर्की व इस्लाम के विरूद्ध थी। उनको विश्वास हो गया था कि साम्राज्यान्तर्गत मुसलमानों के प्रति इंग्लैंड का जो व्यवहार था वह ढ़कोसला मात्र था क्योंकि ब्रिटिश सरकार की तुर्की विरोधी नीति के कारण ही तुर्की साम्राज्य को भारी-क्षति उठानी पड़ी थी। अत: यह निश्चित था कि ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनी नीति बदलने पर ही भारतीय मुसलमान सन्तुष्ट हो सकते थे अन्यथा नहीं।[38]

तुर्की के साथ हुई संधि के कारण मुसलमानों के धार्मिक स्थल दूसरों के हाथों में चले गए। खलीफा के साम्राज्य को छाँटकर छोटा कर दिया गया। उसके क्षेत्र ब्रिटिश और फ्रांस के संरक्षण में दे दिए गए। खलीफा की शक्ति को कम कर दिया गया। अत: ब्रिटिश सरकार की इस्लाम विरोधी नीति के कारण भारत के मुसलमानों के लिए तो भारत 'शत्रु देश' हो गया।[39] इसीलिए क्षुब्ध होकर वे ब्रिटिश छत्रछाया को छोड़कर अफग़ानिस्तान जाने को तैयार हो गए थे।[40]

अफगानिस्तान का अमीर भी तुर्की के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति से खुश नहीं था, अत: उसने खिलाफत के फैसले से असन्तुष्ट मुसलमानों को अफगानिस्तान में आकर बसने को कहा।[41] खिलाफत के प्रश्न ने ब्रिटिश सरकार को भी संकट में डाल दिया परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय लाभ के लिए उसने पुन: भारतीय जनमानस की अवहेलना की क्योंकि उसे पूरा विश्वास था कि संकट की घड़ी में भारतीय, अनेक विरोधों के बावजूद, ब्रिटिश सरकार का साथ देंगे। अत: अन्तर्राष्ट्रीय वायदों एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के संदर्भ में ही उसने इस समस्या को हल दिया और 31 करोड़ भारतीयों की भावनाओं की बलि दे दी। राष्ट्रीय प्रेस भी आरम्भ से ही इस संधि के प्रति आस्थावान न थी। वह ब्रिटिश प्रतिज्ञा को अर्थहीन मानती थी।[42]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 1. अभ्युदय, 29 जुलाई 1922, पृष्ठ-4, कॉलम-3
   2. मजूमदार, आर.सी; स्ट्रगली फॉर फ्रीडम (हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इंडियन पिपुल, खण्ड-II)
2. 1. अभ्युदय, 12 फरवरी 1927, पृष्ठ-1, कॉलम-5
   2. अभ्युदय, 16 फरवरी 1929, पृष्ठ-7, कॉलम-2
   3. गुप्ता, एम०जी०, इंडियाज फॉरन पॉलिसी, पृष्ठ-68
3. अभ्युदय, 28 जुलाई 1928, पृष्ठ-6, कॉलम-4
4. अभ्युदय, 16 जून 1928, पृष्ठ-3, कॉलम-5
5. मजूमदार, आर.सी., पृष्ठ-812
6. अभ्युदय, 16 जून 1928, पृष्ठ-6, कॉलम-1
7. अभ्युदय, 22 जनवरी 1927, पृष्ठ-4, कॉलम-1, 2
8. अभ्युदय, 26 अक्टूबर 1929, पृष्ठ-2, कॉलम-1, 2
9. 1. अभ्युदय, 29 जनवरी 1927, पृष्ठ-2, कॉलम-1

2. भटनागर, रामरतन, दि राइज एंड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृष्ठ–387
10. अभ्युदय, 15 जनवरी 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–1
11. चीन की रफ्तार र 13 विदेशी राष्ट्र इस प्रकार कर लगाते थे कि चीन का बाजार उनके हाथों में रहे। 40 से भी अधिक बडे–2 शहर एवं प्राय: सभी बन्दरगाह इनके हाथों में थे। इन राष्ट्रों के किसी मनुष्य पर चीन का कानून नहीं चलाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त समुद्रतट पर विदेशी राष्ट्रों के जंगी जहाज गश्त लगाते थे एवं नदियों में विदेशियों के गनवोट पहरा देते थे। स्थान–स्थान पर इन राष्ट्रों के कारखाने थे जिनमें चीनी भाईयों पर अत्याचार होता था।
अभ्युदय, 15 जनवरी 1927 पृष्ठ–2, 3, कॉलम–1
12. अभ्युदय, 21 मई 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–2
13. 1. अभ्युदय, 4 जुलाई 1925, पृष्ठ–4, कॉलम–1, 2
2. अभ्युदय, 5 मार्च 1926, पृष्ठ–3, कॉलम–4
14. अभ्युदय, 20 जून 1925, पृष्ठ–4, कॉलम–4, 5
15. अभ्युदय, 20 अप्रैल 1929, पृष्ठ–2, कॉलम–2, 3
16. अभ्युदय, 20 जून 1925, पृष्ठ–4, कॉलम–4
17. अभ्युदय, 12 फरवरी 1927, पृष्ठ–1, कॉलम–4, 5
18. अभ्युदय, 21 मई 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–1, 2
19. अभ्युदय, 20 जून 1925, पृष्ठ–4, कॉलम–5
20. 1. अभ्युदय, 21 मई 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–2
2. भटनागर, रामरतन, पृष्ठ– 387
21. अभ्युदय, 21 मई 1927, पृष्ठ–1, कॉलम–4, 5
22. अभ्युदय, 25 दिसम्बर 1926, पृष्ठ–2, कॉलम–3
23. 1. अभ्युदय, 15 जनवरी 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–3
2. अभ्युदय, 16 फरवरी 1929, पृष्ठ–2, कॉलम–5
24. पूर्वाक्त, पृष्ठ–2, कॉलम–1
25. अभ्युदय, 22 जनवरी 1927, पृष्ठ–2, कॉलम–5
26. अभ्युदय, 5 मई फरवरी 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–4
27. 1. अभ्युदय, 7 अप्रैल 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–5
2. भटनागर, रामरतन, पृष्ठ–388
28. 1. अभ्युदय, 3 मार्च 1928, पृष्ठ–2, कॉलम–5
2. अभ्युदय, 8 अक्टूबर 1927, पृष्ठ–3, कॉलम–4, 5
29. अभ्युदय, 24 जुलाई 1926, पृष्ठ–4, कॉलम–2
30. अभ्युदय, 3 जुलाई 1929, पृष्ठ–4, कॉलम–2
31. अभ्युदय, 7 नवम्बर 1925, पृष्ठ–6, कॉलम–2
32. अभ्युदय, 3 जुलाई 1929, पृष्ठ–2, कॉलम–3
33. 1. अभ्युदय, 3 सितम्बर 1927, पृष्ठ–4, कॉलम–2
2. अभ्युदय, 7 सितम्बर 1927, पृष्ठ–5, कॉलम–5

कुण्डलिनी शक्ति का हठयोगिक ग्रंथों के परिपेक्ष्य में एक अध्ययन

रिंकू
(सहायक प्रोफेसर) एफ० सी० कॉलेज फॉर वूमन
हिसार, हरियाणा, इंडिया

अंजू बाला
(सहायक प्रोफेसर) एफ० सी० कॉलेज फॉर वूमन
हिसार, हरियाणा, इंडिया

सारांश:– कुण्डली शक्ति को ऊर्जा कहा जाता है। कुण्डलिनी शक्ति कुण्डल रूप में रहती है। जब कुण्डलिनी शक्ति सुप्त अवस्था में रहती है तो यही ऊर्जा जब यही ऊर्जा जाग्रत अर्थात् ऊर्ध्वगामी होकर शिव से मिलने के लिए सुषमना मार्ग से यात्रा करती है। तो उस ऊर्जा को ही कुण्डलिनी प्रबुद्ध कहते है। हठयोग का मानना है कि व्यक्ति के भीतर असीम ऊर्जा छुपी है और वह ऊर्जा कुण्डलिनी ही है, जिसके माध्यम से व्यक्ति परम चेतना के साथ युक्त हो सकता है तथा स्वयं के शिव तत्व को अनुभव कर सकता है। कुण्डलिनी अर्थात् ऊर्जा ही वह शक्ति है। जिससे इस पिंड और पर पिंड ब्रह्मांड का निर्माण हुआ है। जब हम सुक्ष्म रूप से देखते है तो हर धर्म सम्प्रदाय में संसार का कारण ऊर्जा को माना जाता है। उसी को अलग–अलग नाम से सम्बोधित किया जाता है। उसी को हम परमेश्वर या ब्रह्म कहते हैं। हठयोग में इस ऊर्जा को कुण्डलिनी कहते हैं। हठयोग समाज को यह शिक्षा दे रहा है कि हमारा शरीर मंदिर है। इस मंदिर में शिव तथा शक्ति दोनों का स्थान है। हम अपने इस शरीर रूपी मंदिर को विभिन्न क्रियाओं योगाभ्यास के माध्यम से व्यक्ति स्वच्छ कर सकता है जिससे उसे उस मंदिर के भीतर शिव और शक्ति के दर्शन हो सके। हठयोग को अपनाकर व्यक्ति जीवन में कुण्डलिनी जागृत कर पाए या ना कर पाए परंतु शारीरिक व मानसिक सुख को अवश्य प्राप्त कर सकता है। जो आज के वर्तमान युग में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

मूल शब्द:– कुण्डलिनी, चक्र, प्राण, नाडियाँ, बंध, ऊर्जा, शक्ति, नाद, ध्यान।

परिचय:– मानव स्वभाव से चिंतनशील प्राणी है। इसी चिंतनशील स्वभाव के कारण नचिकेता के मन स्थूल तथा सूक्ष्म जगत को जानने की इच्छा हुई। उसकी इस जिजीविषा कारण उसे दो मार्गों के यात्रा करवाई, एक मार्ग अंदर की ओर सूक्ष्म तथा दूसरा मार्ग बाहर की ओर स्थूल मार्ग की यात्रा करवाई। जो सूक्ष्म मार्ग की यात्रा करते है वे योगी कहलाए। जो बाहर के मार्ग पर गए उन्होंने पदार्थ के भीतर देखा तो पदार्थ के भीतर एक कंपन दिखा जिसे विज्ञान के अनुसार स्ट्रिंग थ्योरी कहते हैं। जो सूक्ष्म मार्ग की तरफ गए उन्हें ऊर्जा का कंपन अनुभव नहीं हुआ। आज विज्ञान भी इस बात को करता है सब ऊर्जा ही है तथा सब ब्रह्मांडीय ऊर्जा का रूपांतरण है। उपनिषदों में वर्णन मिलता है कि –

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिद: पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाशिष्यते।। [1]

यह सच्चिदानन्दधन, वह परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण है। यह जगत भी पूर्ण है क्योंकि परब्रह्म से ही यह पूर्ण जगत उत्पन्न हुआ है। क्योंकि पूर्ण को निकाल लेने पर पूर्ण ही बच जाता है।

जन्माघस्य यत: [2]

जिस ऊर्जा से इस जगत की उत्पत्ति तथा विनाश होता है। उसे ही ब्रह्म, ईश्वर तथा ऊर्जा कहते है। शरीर के स्तर पर जब इस ऊर्जा से शरीर का निर्माण होता है तो इसे कुण्डलिनी कहते हैं। सिद्धसिद्धांतपद्धति में इसी कुण्डलिनी को संवित अर्थात् चेतन स्वरूप बताया गया है।

या देवी सर्वभूतेषु चेतना रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तयै नमस्तयै नमो नम:।। [3]

में उस देवी को बार–बार नमस्कार करता है जो सभी प्राणियों में चेतना के रूप में स्थित है। यही चेतना अर्थात् कुण्डलिनी से तीनों गुण उत्पन्न होते है।

कुण्डलिनी का अर्थ– हठयोगी ग्रंथों में कुण्डलिनी के लिए बहुत से पर्यायवाची शब्दों को बताया जाता है।

कुटिलंगी कुण्डलिनी भुजड़ी शक्ति ईश्वरी
कुंडली अरूधाते चेते शब्दा: पर्यायवाचका:।। [4]

हठयोग में कुण्डलिनी को कुटिलांगी, भुजंगिनी शक्ति, कुण्डलिनी, ईश्वर, अरूंधति आदि नामों का वर्णन मिलता है। कुण्डलिनी शक्ति मध्यमार्ग के द्वारा यात्रा करती हुई शिव तक पहुंच जाती है कुंडल का अर्थ होता है। घेरा तथा मंडल। इस शक्ति को

कुंडल कहते है। क्योंकि कुंडल गोल होता है और ऊर्जा की भी यही विशेषता होती है कि यह अपना कार्य वृत्ताकार रूप में सम्पन्न करती है तथा पुनरावृत्ति होती रहती है।

सत्वं रजस्तम श्रेति गुणत्रय त्रसूतिका [5]

जब यह कुण्डलिनी सत्व रूप में रहती है तो यही ज्ञान का तथा मोक्ष का कारण बनती है। जब यह कुण्डलिनी रज रूप में बहती है तो कर्मयोगियों को कर्म के लिए प्रेरित करती है। जब यह तमस रूप में बहती है तो अज्ञानियों के लिए बंधन का कारण बनती है। यही एक ऊर्जा समाप्ति स्तर पर ब्रह्मांडीय स्पर पर व्यप्ति तथा पिंड स्तर पर यही ऊर्जा कुण्डलिनी कहलाती है।

सा कुण्डलिनी प्रबुद्धा-अप्रबुद्ध चेतीर्दिविधा [6]

जब कुण्डलिनी हमारे शरीर में वृत्ताकर रूप में बहती है अर्थात् एक संस्कार के रूप में चलती है। आहार, मैथुन तथा निद्रा में यही लगी रहती है तो इस शक्ति का सोना अप्रबुद्ध कहते है तथा प्रबुद्ध अवस्था में वह ऊर्ध्वगामी होकर शिव से मिलने के लिए कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग से यात्रा करती है।

कुण्डलिनी का प्रतीकः- कुण्डलिनी को सर्प के प्रतीक के रूप में जाना जाता है। क्योंकि सर्प ही केवल एक ऐसा जीव है जिसके पैर ना होते हुए भी वह चलता है। गति करता है। ऐसी ही कुण्डलिनी शक्ति के साथ भी होता है। कुण्डलिनी शक्ति बिना पैर मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक की यात्रा करती है। कुण्डलिनी को सर्प के प्रतीक के रूप में भी इसलिए भी दिखाया जाता है क्योंकि सर्प का सम्बन्ध जागरूकता से है। उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है तो चेतना की जरूरत होती है। जिस प्रकार सर्पों के स्वामी शेषनाग वन, पर्वत सहित पूरी पृथ्वी के आधार है। उसी प्रकार सम्पूर्ण योग तंत्रों का आधार कुण्डलिनी है।

हमारे शास्त्रों के अनुसार शेषनाग के हजारों फन है। चुम्बकत्व के कारण पृथ्वी फन पर टिकी हुई है। शास्त्रों को कहना है कि शेषनाग के हिलने से भूकंप आता है। हमारे वैदिक ग्रंथों में चुम्बकत्व को ही शेषनाग कहा गया है। कुण्डलिनी शक्ति को शरीर का आधार भी कहा जाता है। कुण्डलिनी शक्ति तथा चार अन्य शक्तियों से पिंड शरीर की उत्पत्ति होती है।[7]

परम शिव में स्थित कुण्डलिनी का दूसरा नाम प्राण शक्ति है। पूर्णता, प्रबलता, प्रोच्चलता, प्रतिबिबंता, प्रत्यंमुखता ये पाँच कुण्डलिनी के गुण बताए गए है। प्राणायाम के अभ्यास से कुण्डलिनी ऊर्ध्वगामी होकर ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचती है। तभी पूर्णता आती है। योगी की शरीर में यह शक्ति ज्योति के रूप में प्रतिबिंबित होती है। फलतः उसमें अलौकिक प्रबलता प्रकट होती है। यह शक्ति, मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपुर से होकर सहस्त्रार तक पहुंचती है।[8]

आसन एवं कुण्डलिनी जागरण

हठप्रदीपिका में आसन को प्रथम अंग के तौर पर माना गया है। हठयोगियों का मानना है कि शरीर पर नियंत्रण पाकर ही मन को नियंत्रित किया जा सकता है। हठयोग में जब नियमित रूप से आसनों का अभ्यास किया जाता है तो शरीर में स्थिरता प्रदान करते है तथा प्राणों का प्रवाह नाड़ियों में आसानी से होता है।[9]

आसनों का अभ्यास शारीरिक दृढ़ता स्थिरता के लिए किया जाता है। आसनों के अभ्यास में एक बात ध्यान रखी जाती है कि शरीर की स्थिति का आसन कहते है। जब हम किसी भी शारीरिक स्थिति में सुखपूर्वक तथा बिना किसी तनाव के बैठते है तो उसे आसन कहते है। [10]

आसनों का उद्देश्य हमें शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से मुक्ति देना होता है। आसानों के अभ्यास से शरीर की माँसपेशियों में खिंचाव उत्पन्न कर उन्हें लचीला बनाते है तथा शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालते है। आसन हमारे शरीर के तंत्रों के क्रियाकलापों के मध्य सामंजस्य स्थापित करते है तथा मालिश के द्वारा शरीर के अंगों की कार्य क्षमता को बढ़ाते है। कुण्डलिनी जागरण की घटना अपने आप घटित नहीं होती है। अपितु कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए विभिन्न योगिक अंगों का अभ्यास किया जाता है। आसन का अभ्यास कुण्डलिनी जागरण से पूर्व किया जाता है क्योंकि आसनों के अभ्यास से शरीर व्याधि से मुक्त हो जाता है तथा कुण्डलिनी जागरण के लिए शरीर तथा मन को तैयार करता है।[11]

मत्स्येन्द्रासनः-

मत्स्येन्द्रासन का अभ्यास करने से पेट की जठराग्नि बढ़ जाती है। यह अस्त्र के समान रोगों को नष्ट करती है। मत्स्येन्द्रासन के अभ्यास से कुण्डलिनी शीघ्र ही जागृत हो जाती है तथा यह अभ्यास चन्द्रमण्डल को स्थिर करता है। ऐसा माना जाता है तालुमूल में चन्द्र स्थित है चन्द्र से अमृत का स्त्राव होता है। जो नाभिमण्डल में स्थित सूर्य द्वारा सोरत लिया जाता है। मत्स्येन्द्रासन के अभ्यास से सूर्य तक पहुंचने वाला अमृत चन्द्र से सूर्य तक नहीं पहुंच पाता तथा चन्द्रमण्डल स्थिर अमृत का शोषण नहीं हो पाता है। [12]

सिद्धासनः-

एक पांव की एड़ी को शिश्न में लगाकर तथा दूसरी एड़ी को शिश्न पर दृढ़ता पूर्वक रखते है। चिन को हृदय से अच्छी तरह से लगाकर भूमध्य में अपनी दृष्टि को स्थिर करके बैठना चाहिए। सिद्धसन मोक्ष के द्वार को भेदन तथा मोक्ष की प्राप्ति करवाता है।

भद्रासनः–

भद्रासन का अभ्यास सभी रोगों को दूर करता है। इस स्थिति में मूलाधार चक्र उत्तेजित हो जाता है। प्राणिक स्तर पर यह कहा जाता है कि प्राणों को ऊर्ध्वगामी तथा संयमित करने के लिए इस आसन का अभ्यास किया जाता है। भद्रासन के अभ्यास से इसका प्रभाव मूलाधार, स्वाधिष्ठान ओर मणिपुर क्षेत्र मे दबाव पड़ता है तथा मस्तिष्क की उत्तेजना को शांत करने का उत्तम उपाय है।[14]

वज्रासनः– दोनों पांवों को घुटने से मोड़कर दोनों पंजों को गुदा के दोनों ओर लगाने से वज्रासन होता है। इस आसन के अभ्यास से वज्र नाड़ी पर प्रभाव पड़ता है। वज्र नाड़ी मस्तिष्क से प्रजनन तथा मूत्र निष्कासन प्रणाली के स्नायिक आवेगों को शरीर के अंगों तक ले जाना ऊर्जा प्रवाह पथ है। इसके अभ्यास से यौन इच्छा नियंत्रण में रहती है और उसकी चेतना विकास की ओर बढ़ने लगती है। वज्रासन के अभ्यास के दौरान हमारी रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रहती है। कमर को सीधी रखने के लिए कोई प्रयास नही करना पड़ता है। सेक्रल इन्फेक्शन एवं साइटिका से पीड़ित व्याक्तियों के लिए यह एक सर्वोत्तम ध्यानात्मक आसन है। इस आसन में प्राण का प्रवाह बिना किसी रूकावट के सुचारू से होता है। सुषुम्ना की जागृति के लिए कुण्डलिनी योग में इस आसन का अभ्यास किया जाता है। [15]

भद्रासनः– इस आसन के अभ्यास से सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते है। दोनों एड़ियों को अण्डकोश के नीचे पलट कर रखा जाता है। नासिका अग्र दृष्टि तथा जालंबधर बंध लगाया जाता है। [16]

भुजंगासनः– इस आसन के अभ्यास के दौरान शरीर के नाभि से ऊपर उठा ले। हथेलियों को जमीन पर टिकाकर सिर को ऊपर ऊँचा उठाकर रखना चाहिए। इस आसन के अभ्यास से पेट की अग्नि उदीप्त होती है तथा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। भुजंगासन के अभ्यास से कुण्डलिनी जागृत होकर सर्प के समान ऊपर उठती है।[17]

पाचन शक्ति इस आसन के अभ्यास से तीव्र होती है। वृस्क के ऊपर स्थित ग्रँथियों की मालिश होती है। उनकी कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है। बहुत प्रकार के अनुसंधानों में पाया गया है कि आसन शरीर के अंगों तथा तंत्रिका तंत्रों को सुदृढ़ बनाता है। आसनों के अभयास से शरीर को शक्ति प्राप्त हो जाती है तथा शरीर के अंगों की कार्य करने की क्षमता के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। मणिपुर, अनाहता विशुद्धि चक्र पर भुजंगासन का प्रभाव शक्तिशाली रूप से पड़ता है। हमारे भीतर जो देवी अर्थात कुण्डलिनी, भुजङ्गिनी इसी से जागृत होती है। [18]

प्राणायाम एवं कुण्डलिनी जागरण

नाड़ी शुद्धि प्राणायामः– हठयोग में नाड़ियों की शुद्धि के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम का वर्णन मिलता है। हठयोग में सूर्य नाड़ी का संबंध प्राण ऊर्जा से है। जिसका सम्बन्ध हमारे स्थूल शरीर से है तथा चन्द्र नाड़ी का सम्बन्ध हमारे मन से है। नाड़ी शोधन प्राणायाम के द्वारा मन एवं शरीर के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। इससे हमारे दोनों नथूनों में प्राणों को प्रवाह एक समान होता है। यह सम्पूर्ण प्राणिक तंत्र अर्थात नाड़ियों एवं चक्रों को शुद्ध करता है।[19]

भस्त्रिक प्राणायामः– पद्मासन में बैठने से गर्दन, सिर, छाती एक सीध में रहते है। शारीरिक स्थिरता तथा मन में स्थिरता लाती है। भस्त्रिका प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना के मुख पर मौजूद कफ का निवारण करता है। जिसके कारण कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग से ऊर्ध्वागामी होती है। [20]

भस्त्र का अर्थ होता है धौकनी, जिस प्रकार लौहार धौकनी के सहारे हवा देकर ताप व ऊर्जा उत्पन्न करता है। उसी प्रकार प्राणायाम का अभ्यास हमारी प्रत्येक कौशिका तक पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन को पहुँचाता है तथा पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा की आपूर्ति होने के कारण कौशिकाओं को कार्य सुचारू रूप से चलता है। प्राणायामक के अभ्यास से माईटोकांडिया को ऑक्सीजन की प्राप्ति होने पर वह ऊर्जा का उत्पादन करता है और इसी ऊर्जा से कुण्डलिनी का जागरण होता है। [21]

बंध एवं कुण्डलिनी जागरण

बंधों के अभ्यास से ऊर्जा के विशिष्ट प्रवाह को एक स्थान पर बांधा जाता है। विष्णुसहस्रनाम इसी ऊर्जा को विष्णु कहकर संबोधित करते है और कहते है कि विष्णु हर जगह विद्यमान है। सब विष्णु रूपी ऊर्जा का ही रूपांतरण है। यह ऊर्जा अनंत रूप में रहती है। [22]

मूल बंधः– मूलबंध के अभ्यास से अग्नि मंडल में स्थित अपान वायु ऊपर उठने लगती है तथा कंद में स्थित कुण्डलिनी रूपी अग्नि के लिए धौकनी का काम करता है जब हम पेरिनम मसल्य का कान्ट्रेक्शन करते है तो उस कान्ट्रेक्शन का प्रभाव पड़ने से कुण्डलिनी ऊर्ध्वगामी होती है। यह कुण्डली ऊर्जा ही अपान ऊर्जा होकर अधोगामी होती है। मूलबंध एक साथ कई स्तर पर लगाया जाता है। शारीरिक पेशियों का संकुचन यह स्थूल स्तर पर करता है तथा चक्रों का संकुचन यह सूक्ष्म स्तर पर करता है। यह बंध केवल गर्भाशय ग्रीवा की पेशियों, मूलाधार पिंड की पेशियों का संकुचन नहीं है बल्कि यह मूलाधार चक्र का भी संकुचन करता है। प्रवर्तन बिन्दु तो केवल मूलाधार पिंड या गर्भाशय ग्रीवा है। जो हमारी

सहायता मूलाधार का अध्यात्मिक केन्द्र को निर्धारित करने में करते है। जब कुण्डलिनी शक्ति अपनी निद्रा का त्याग करके जाग्रत होती है त बवह चेतन के प्रसार की वाहिका बनती है। जो व्यक्ति को अपनी अन्तर्जात संभावनाओं को पूरी तरह जन्म-मृत्यु के पार ले जाकर दिव्यता के स्तर पर पहुँचा देती है।[23]

उड्डियान बंध में पेट की मांस पेशियों को संकुचित किया जाता है। पेट की मांस पेशियों ही संकुचित नहीं होती अपितु मूलाधार तक की मांस पेशियों पर इसका प्रभाव पड़ता है। इस बंध के अभ्यास से अपान ऊर्जा को बल मिलता है तथा वह ऊर्ध्वगामी हो जाती है। इस बंध को अभ्यास हमेशा जालन्धर बंध के साथ किया जाता है। व्यक्ति के प्राण उसकी नाभि में स्थित है तथा मुत्यु के समय उनके प्राण यही से निकलते है। जब साधक उड्डियान बन्ध लगाए रहता है तब वह ऊर्जा के स्पंदन व उसकी को रोक देती है तथा प्राण नाभि के रूक जाता है तथा नाभि में रूक जाता है तथा यह प्राण मुत्यु रूपी हाथी के लिए सिंह के समान बन जाता है।

जालंधर बन्धः- जाल का अर्थ है कोई जालीदार रचना नाड़ियों की और मूल का अर्थ है रोकना, वह बन्ध जो नाड़ियों के माध्यम से जाते हुए बिन्दु को रोक लेता है। ऐसा माना जाता है कि हमारे आज्ञा से एक बिन्दु या हार्मोन निकलता है। जो हमारी जठराग्नि में जाकर भस्म हो जाता है। जालंधर बन्ध द्वारा उस बिन्दु के भस्म होने से बचाया जाता है। जालंधर बन्ध के दौरान प्राण की ऊर्ध्व गति रोक दी जाती है तथा जिसने बिन्दु को स्त्रावित करने के चन्द्रमण्डल को ऊर्जा नहीं मिलती है तथा वह बिन्दु उसी स्थान पर रहकर रूद्रग्रन्थि का भेदन करता है। जालंधर बन्ध का अभ्यास हमारे 16 आधारों का नियंत्रण करता है।[24]

जालंधर बन्ध का अभ्यास सही तरीके से किया जाए तो कण्ठ में बन्ध का अनुभव नहीं होता बल्कि छाती तथा मस्तिष्क के भीतर एक दबाव उत्पन्न होता है। यह प्राणशक्ति को प्रभावित करने वाला दबाव होता है। यौगिक मान्यताओं के अनुसार प्राण की गति ऊर्ध्वगामी होती है। लेकिन बन्ध के कारण वह प्राण की गति को नीचे की ओर बनाता है। प्राणों की प्रवाह की दिशा में परिवर्तन ला देता है। जालन्धर बन्ध के कारण प्राण शक्ति नीचे की ओर बहने लगती तथा उड्डियान बन्ध के कारण अपान वायु की गति ऊर्ध्वगामी बन जाती है। इन दोनों वायुओं का मिलन मणिपुर चक्र में होता है। इसके फलस्वरूप इस स्थान पर उत्तेजना तथा जाग्रति की स्थिति आती है। जालंधर बन्ध के फलस्वरूप मस्तिष्क में एक जबरदस्त दबाव उत्पन्न होता है। इस दबाव के फलस्परूप मस्तिष्क के सुषुप्त केन्द्र तथा आज्ञा चक्र जाग्रत हो जाते है। कुण्डलिनी योग में जालंधर बन्ध का अभ्यास विशेष रूप से प्राणों की दिशा बदलने तथा आज्ञा बिन्दु और सहस्त्रार चक्रों की जाग्रति के लिए किया जाता है। कुण्डलिनी योग के अनुसार बिन्दु चक्र से एक हार्मोन स्त्रावित होता है और यह हार्मोन कण्ड से होकर शरीर के अन्य भागों तक पहुंचता है तथा शरीर को वृद्ध बनाता है। लेकिन जालंधर बन्ध के कारण यह हार्मोन पेट तक नहीं पहुंच पाता तथा शरीर वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होता और मृत्यु की प्राप्ति भी नहीं होती।[25]

कुण्डलिनी और चक्र

हठयोगिक ग्रंथों में चक्रों का वर्णन मिलता है। मुख्य रूप से 6 चक्र माने जाते है।[26] चक्र का अर्थ पहिये से होता हैं जिसका कार्य ऊर्जा पैदा करना होता है। चक्रों को ऊर्जा का केन्द्र कहा जाता है। क्योंकि चक्रों के अन्दर से ही ऊर्जा अर्थात् कुण्डलिनी का प्रवाह होता है। कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया के दौरान शक्ति एक चक्र से दूसरे चक्र के पास जाती है तथा दूसरा चक्र इस ऊर्जा का स्थानांतरण दूसरे चक्रों को कर देता है। इसी कारण चक्रों को ऊर्जा का केन्द्र कहा जाता है। सभी चक्र बहुत सी सूक्ष्म नाड़ियों के समूह होते हैं। जो सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर स्थित है। ये सभी नाड़ियां आपस में मिलकर चक्रों का निर्माण करती है। इन सभी नाड़ियों या चक्रों का सम्बंध मस्तिष्क में स्थित न्यूरान से भी होता है जो सोया हुआ है। लेकिन चक्रों के जाग्रत होने पर मस्तिष्क का वह हिस्सा जाग जाता है तथा सामान्य व्यक्ति के अन्दर एक असाधारण प्रतिमा का उदय होता है। मस्तिष्क में स्थित इन न्यूरॉन्स का संबंध हमारे शरीर के प्रत्येक अंग से होता है। इसलिए एक-एक चक्र के जागरण के साथ उस चक्र से जुड़े अंगों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। हमारा प्राणिक शरीर चक्रों से ऊर्जा प्राप्त करता है। चक्र अति सूक्ष्म तथा अति शक्तिशाली ऊर्जा के स्रोत है। चक्र ब्रह्माण्डीय प्राण को ग्रहण करके उसे संरक्षित करते है तथा ऊर्जा के विभिन्न स्तरों पर बाँट देते है तथा शरीर के लिए उपयोगी ऊर्जा के स्रोत बन जाते है। चक्रों की खोज भारत तथा विश्व के योगियों, ऋषियों तथा वैज्ञानिकों के द्वारा की गई थी। भारतीय महान विद्वानों के द्वारा चक्रों की खोज शरीर की चीर की नहीं बल्कि आत्मदर्शन के द्वारा की गई है। इन केन्द्रों के ज्ञान अथवा चक्रों के ज्ञान के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति के अद्भुत विज्ञान का पता चला। कुण्डलिनी जागरण चक्रों के जागरण के संबन्धित है। चक्र की अपनी विशेष गति तथा वेग होता है। ऊर्जा परिपय में मौजूद निम्न स्थान पर स्थित चक्र निम्न आवृति के साथ कार्य करते है तथा वे स्थूल है तथा सजगता को स्थूल अवस्था को उत्पन्न करने का कार्य करते

है। लेकिन जो चक्र ऊर्जा परिपय में उच्च स्थान पर होते है। वे मेधा एवं सजगता की सूक्ष्म अवस्था को उत्पन्न करते है। हठयोग एवं क्रियायोग के विभिन्न अभ्यास चक्रों को एक-एक कर जाग्रत करते है। जब इन अभ्यासों के द्वारा चक्रों को जागृत किया जाता है तो प्राणिक स्तर पर उच्च एव अपेक्षाकृत स्थिर हो जाता है।[27]

निष्कर्ष- कुण्डली वह शक्ति है। जिस से इस संपूर्ण संसार का उदय हुआ है। जब हम सूक्ष्म रूप में देखते है तो हर सम्प्रदाय व धर्म में ऊर्जा को संसार का कारण माना जाता है। मानव जीवन का उद्देश्य स्वास्थ्य की प्राप्ति रहा है। हठयौगिक ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हमें यह पता चलता है कि ''शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्'' अर्थात् शरीर ही वह माध्यम है जिसके द्वारा धर्म को साधा जा सकता है। हठयोग का उद्देश्य कुण्डलिनी जागरण है जिसके माध्यम से व्यक्ति को समाधि की प्राप्ति होती है। परंतु इसके साथ कुण्डलिनी जागरण से पूर्व जितने भी अभ्यास क्रियाएं की जाती है। उनके माध्यम से समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। कुण्डलिनी जागरण तो हर एक व्यक्ति को करना चाहिए क्योंकि कुण्डलिनी जागरण कोई अनायास प्रक्रिया नहीं बल्कि कुण्डलिनी जागरण तो एक संयमित साधनात्मक जीवन का परिणाम है। हठयौगिक ग्रंथों में कुण्डलिनी जागरण के लिए यम नियम से लेकर समाधि तक की प्रक्रिया बताई गई है तभी कुण्डलिनी का जागरण होता है। हठयोग का मानना है कि हमारे शरीर रूपी मंदिर में उस शून्य परमात्मा का अवतरण तभी हो सकता है। जब नाड़ियाँ मलों से रहित हो। जब हम विभिन्न क्रियाओं के द्वारा नाड़ियों की शुद्धि करते हैं तो हठसिद्धि के लक्षण दिखाई देने लगते है। जो कि हमारे समग्र स्वास्थ्य का प्रतीक है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर व्यक्ति के द्वारा अभूतपूर्व कार्यों को संपादित किया जाता है। ऊर्जा एक ही है या तो आप उसे महान कार्यों में लगाकर इहलोक एवं परलोक की सिद्धि प्राप्त कर सकते है या फिर निकृष्टतम कार्यों में लगाकर स्वयं का जीवन बर्बाद कर सकते हैं। हठयोग के माध्यम से हमें यह पता चला कि ऊर्जा जाग्रत होती है। तब शरीर को विभिन्न तलों पर उसकी क्या अभिव्यक्ति होती है और व्यक्ति के जीवन में क्या-क्या अमूल्य परिवर्तन होता है। हठयोग के माध्यम से हमने यह भी जाना कि कुण्डलिनी जागरण जैसी प्रक्रियाएं गुरू के सानिध्य में उनके उपदिष्ट मार्ग के अनुसार ही करनी चाहिए। कुण्डलिनी जागरण के द्वारा व्यक्ति को अपने जीवन को उत्कृष्ट स्तर पर ले जाना चाहिए।

सन्दर्भ सूची -

1. गोयन्दका ऐच० (2019) ईशादी नौ उपनिषद गीता प्रैस पृ०, 27
2. गोयन्दका ऐच० (2019) ब्रह्म सूत्र, गीता प्रैस, पृ० 23
3. पाण्डेय, आर० (2013) श्री दुर्गासप्तशती गीता प्रैस गोरखपुर, पृ० 112
4. दिगंबर एस० (2017) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम, पृ० 116
5. राघव आर० एस० (2015) शिव सहिता चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ० 77
6. भारती प० (2019) सिद्धसिद्धांत पद्धति चौखम्बा अरियटालिया, पृ० 76
7. दिंगबर एस० (2017) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम, पृ० 87
8. भारती प० (2019) सिद्धसिद्धांत पद्धति चौखम्बा आरियंटालिया, पृ० 7
9. दिगंबर एस० (2017) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम, पृ० 9
10. स्वामी विवेकानन्द (2019) पातंजल योगसूत्राणि साक्षी प्रकाशन पृ० 97
11. सरस्वती कला (2018) योग चिकित्सा के सिद्धांत किताब महल पृ० 55-56
12. दिगंबर एस० (2017) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम, पृ० 14
13. दिगंबर एस० (2017) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम, पृ० 17
14. राघव, आर० एस० (2015) शिव सहिता चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान पृ०45
15. सरस्वती एस० एस० (2015) आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ० 198
16. सरस्वती, एस० एस० (2005) कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ० 214
17. स्वामी कैवल्यधाम एस० एल०(2019) योग थैरेपी, यूनिक ऑफसेअ, पृ० 115
18. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (2013) थेमिंग द कुण्डलिनी, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ० 135
19. सरस्वती एस० एस० (2005) कुण्डलिनी, योग योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ० 219
20. दिंगबर एस० (2017) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम, पृ० 64
21. डॉ० स्वामी कर्मानन्द सरस्वती (2013) रोग और योग योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ० 81
22. स्वामी बुद्धनन्द (2013) मूल बंध, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ० 48
23. सरस्वती एस० बी. (2019) मूलबंध अनंत रहस्यों की कुंजी योग पब्लिकेशन ट्रस्ट पृ० 9
24. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (2006) आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग पब्लिकेशन, ट्रस्ट पृ० 434
25. सरस्वती, एस0 एन0 (2011) घेरण्ड सहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पृ० 215
26. भारती, प० (2019) सिद्धसिद्धांत पद्धति, चौखम्बा औरियंटलिया, पृ० 37
27. सरस्वती, एस० एन० (2019) प्राण एवं प्राणायाम योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, 27

ISSN 2278 - 0327

स्वामी श्रद्धानंद जी व आर्य समाज के पारस्परिक संबंधों का ऐतिहासिक वर्णन

अर्चना
शोध छात्रा (इतिहास विभाग)
एम० एम० (पी० जी०) कॉलेज, मोदीनगर
गाजियाबाद (उ० प्र०)

डॉ. आशा यादव
एसो० प्रो०, विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग
एम० एम० (पी० जी०) कॉलेज, मोदीनगर
गाजियाबाद (उ० प्र०)

शोध सारांश-

आदिकाल से ही भारत में जब -जब राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में हास हुआ और सुधार या क्रांति की आवश्यकता हुई तब-तब इस धरा पर किसी न किसी महान आत्मा का अवतरण हुआ है। जैसे- राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और महर्षि दयानंद जी। ऐसे ही एक महान व्यक्ति हुए हैं- स्वामी श्रद्धानंद जी। स्वामी जी ने आकर समाज और देश के सर्वतोमुखी विकास का सतत प्रयास किया है। धर्म, समाज और शिक्षा के क्षेत्र में एक अद्भुत क्रांति को जन्म दिया है। समाज में व्याप्त बुराइयों का विरोध किया है तथा आर्य समाज के विकास में अपना पूर्ण रूप से योगदान दिया है।

इस शोधपत्र में स्वामी श्रद्धानंद जी पर स्वामी दयानंद जी के प्रभाव का जादू, स्वामी श्रद्धानंद जी का आर्य समाज में प्रवेश, आर्य समाज में प्रवेश के पश्चात स्वामी श्रद्धानंद जी का जीवन परिवर्तन तथा स्वामी श्रद्धानंद जी के द्वारा आर्य समाज का प्रचार-प्रसार का वर्णन किया गया है।

कुंजी शब्द- आर्य समाज, सत्यार्थ प्रकाश, शास्त्रार्थ, सधर्म प्रचारक।

प्रस्तावना-

स्वामी श्रद्धानंद जी का जीवन बहुआयामी रहा है। युवावस्था के आरंभ में स्वामी जी ने मद्यपान, द्युत क्रीडा और वैश्यागमन यह सब किया है। यह सभी बातें सुनी -सुनाई नहीं है, बल्कि स्वयं स्वामी श्रद्धानंद जी ने स्वयं के द्वारा लिखित पुस्तक 'कल्याण मार्ग का पथिक' में लिखी है तथा उनका जीवन परिवर्तन कैसे हुआ, स्वामी जी ने यह भी लिखा हुआ है। स्वामी श्रद्धानंद जी ने अपने उस जीवन परिवर्तन का श्रेय महर्षि दयानंद सरस्वती जी को दिया है ।

आर्य समाज का परिचय -

आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ और प्रगतिशील। अत: आर्य समाज का अर्थ हुआ श्रेष्ठ और प्रगतिशील समाज, जो वेदों के अनुकूल चलने का प्रयास करते हैं तथा दूसरों को उस पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। महर्षि दयानंद जी ने उसे वेद मत को चिर से स्थापित करने के लिए आर्य समाज की नींव रखी। आर्य समाज के सब सिद्धांत और नियम वेदों पर आधारित है। आर्य समाज के अनुसार फलित ज्योतिष, जादू-टोना, जन्मपत्री, श्राद्ध, तर्पण, भूत-प्रेत, देवी-जागरण मूर्ति पूजा और तीर्थ यात्रा आदि सब मनगढ़ंत है।

आर्य समाज एक हिंदू सुधार आंदोलन है, जिसकी स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने 1875 ई0 में मुंबई में मथुरा के स्वामी विरजानंद जी की प्रेरणा से की थी। यह आंदोलन पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदू धर्म के सुधार के लिए प्रारंभ हुआ था। 'महर्षि दयानंद जी का जन्म ऐसे समय में हुआ जब चारों और अज्ञान व अविद्या का साम्राज्य था। महर्षि ने आकर समाज और देश के सर्वतोमुखी विकास का सतत प्रयास किया। भारतवासियों को स्व-राज्य, स्व- संस्कृति,स्व-भाषा एवं स्वाधीनता का मूल मंत्र दिया। आर्य समाज की स्थापना करके प्रबल विरोध किया'।[1]

स्वामी श्रद्धानंद जी का पारिवारिक परिवेश व शिक्षा दीक्षा-

'स्वामी श्रद्धानंद जी का जन्म 2 फरवरी 1856 ई0 को पंजाब के जालंधर शहर के पास तलबन नामक गांव में हुआ था। इनके बचपन का नाम बृहस्पति रखा गया। जब बालक बृहस्पति 3 वर्ष के हुए, तो उनके पिता नानक चंद जी ने उनका पुन: नामकरण किया तथा सरल सा नाम मुंशीराम रखा गया। मुंशीराम कुल छ: भाई-बहन थे'।[2] इनके पिता नानकचंद जी ब्रिटिश

पुलिस में अधिकारी थे तथा इस कारण तबादलों के चलते यह अपने परिवार के साथ एक से दूसरे स्थान पर जाते रहते थे। स्वामी श्रद्धानंद जी ने संवत 1935 विक्रमी इलाहाबाद के म्योर सेंट्रल कॉलेज में एम० ए० कक्षा में प्रवेश लिया, परंतु अस्वस्थता के कारण पढ़ाई पूरी नहीं कर सके थे।

महर्षि दयानंद जी से मिलने के बाद स्वामी श्रद्धानंद जी का जीवन ही परिवर्तित हो गया। इन्होंने ही स्वामी श्रद्धानंद जी की नास्तिकता को आस्तिकता में परिवर्तित कर दिया।

स्वामी दयानंद के प्रभाव का जादू -

अपनी युवावस्था की कहानी स्वयं स्वामी श्रद्धानंद जी ने स्वयं के द्वारा लिखित पुस्तक 'कल्याण मार्ग का पथिक' में लिखी है। युवावस्था में वह कैसे थे और स्वामी दयानंद जी से मिलने के बाद,उनका जीवन कैसा परिवर्तित हो गया, यह भी स्वयं स्वामी श्रद्धानंद जी ने लिखा है। महर्षि दयानंद जी के उपदेशों से मुंशीराम जी इतने प्रभावित हुए, कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। युवावस्था के प्रारंभ में जो युवक माता-पिता के लाड-प्यार एवं परिस्थितिजन्य वातावरण के कारण नितांत नास्तिक हो चुका था, वह कालांतर में कितना आस्तिक बन गया, स्वामी श्रद्धानंद जी इसके अनुपम उदाहरण है'।[3]

''14 श्रावण संवत् 1936 के दिन स्वामी दयानंद बांसबरेली पधारे। पहले ही दिन दर्शन के बारे में स्वयं श्रद्धानंद जी ने लिखा है- कि उस दिव्य आदित्यमूर्ति को देखकर कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई; परंतु जब पादरी टी० के० स्कॉट और तीन अन्य यूरोपियनो को उत्सुकता से बैठे देखा, तो श्रद्धा ओर भी बढ़ गई। अभी 10 मिनट भी वक्तव्य नहीं सुना था कि मन में विचार आया, कि यह विचित्र व्यक्ति है, जो कि केवल संस्कृतयज्ञ होते हुए ऐसी युक्ति युक्त बातें करता है कि विद्वान् भी दंग रह जाए। व्याख्यान परमात्मा के निज नाम 'ओ३म' पर था। वह पहले दिन का आत्मिक आनंद मैं कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निगमन कर देना ऋषि आत्मा का ही काम था'।[4]

वस्तुत: स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन में महर्षि दयानंद के दर्शनों के उपरांत पूर्ण रूप से परिवर्तन आ चुका था। उनके मन, कर्म, वचन और स्वभाव में बदलाव से लोग उन्हें मुंशीराम के स्थान पर महात्मा मुंशीराम के नाम से पुकारने लगे थे।

महर्षि दयानंद जी के चरणों में अपने जीवन का सादर समर्पण करते हुए स्वामी श्रद्धानंद जी ने एक स्थान पर कहा है -

ऋषिवर ! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे 41 वर्ष हो चुके हैं, परंतु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय पटल पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरण मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। तुमने कितनी गिरी हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है? परमात्मा के बिना, जिनकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचार रहे हो, कौन कह सकता है? कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परंतु अपने विषय में मैं कह सकता हूं कि तुम्हारे सत्संग ने मुझे कैसे गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया है। मैं क्या था? मैं क्या बन गया? और अब मैं क्या हूं? वह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है'।[5]

आर्य समाज में प्रवेश-

लाहौर में ब्रह्मा मंदिर में शिवनाथ शास्त्री जी का व्याख्यान था। इनके शब्दों ने स्वामी श्रद्धानंद जी को अपनी और खींच लिया। ब्रह्म समाज के संबंध में जितनी भी पुस्तकें उस समय वहां मिली, सब उन्होंने खरीद ली। पांच- छ: दिन खूब मन लगाकर सब पुस्तके पढ़ी। ब्रह्म समाज के उस समय के प्रधान लाला काशीराम जी ने पुनर्जन्म के विरुद्ध अपनी लिखी हुई पुस्तक स्वामी श्रद्धानंद जी को दी, उसको पढ़ने से मन में कुछ संदेह उत्पन्न हो गया। बातचीत के बाद भी जब संदेह की समाप्ति नहीं हुई, तो बरेली में पादरी स्कॉट के साथ महर्षि दयानंद जी के इस संबंध में हुए शास्त्रार्थ का स्मरण हो आया और सहसा यह विचार पैदा हुआ कि सत्यार्थ प्रकाश में इसका समाधान मिल जाएगा। वहां से सीधे बच्छोवाली आर्य समाज मंदिर में सत्यार्थ प्रकाश खरीदने गए। पुस्तक भंडार उस समय बंद था। तब श्रद्धानंद जी पुष्तकाध्यक्ष लाला केशवराम जी के घर का पता लेकर 2 घंटे भटकने के बाद उनके घर पहुंचे। वहां पता चला कि लाला केशवराम जी तार-घर चले गए हैं। स्वामी जी तार-घर गए, तो पता चला कि जलपान के लिए अपने घर चले गए, फिर स्वामी जी उनके घर चले गए। घर पता चला कि दोबारा तार-घर चले गए हैं, डेढ़ घंटे बाद घर वापस आएंगे, तो डेढ़ घंटा वही इंतजार किया और घर आते ही लाला केशवराम जी को जा घेरा और कहा कि 'महाशय जी' मुझको सत्यार्थ प्रकाश खरीदना है तथा अपना पूरे दिन का वृतांत बताया। तब केशवराम जी बोले, चलिए- महाशय जी! पहले आपको पुस्तक दे दूं। तत्पश्चात स्वामी श्रद्धानंद जी पुस्तक खरीदकर घर आए तथा भोजन करने के पश्चात घूमने न जाकर बत्ती जलाकर सत्यार्थ प्रकाश के साथ तन्मय हो तथा सोने से पहले ही भूमिका और पहला समुल्लास पूरा

कर लिया।

'उस समय आर्य भाई अपनी मंडली में नए लोगों को शामिल करने के लिए विशेष यत्नशील रहते थे। मुंशीराम जी के मित्रों को उनको आर्य समाजी बनाने की विशेष चिंता थी। भाई सुंदरदास जी ऐसे मित्रों में अन्यतम थे। वह संवत 1941 माघ मास के एक रविवार को बड़े सवेरे ही मुंशीराम जी के डेरे पर पहुंच गए। मुंशीराम जी सामने सत्यार्थ प्रकाश का आठवां समुल्लास खोले हुए विचार – विशेष में मग्न थे। उन्होंने आते ही पूछा– कहिए किस चिंता में है? कुछ निश्चय किया या नहीं? मुंशीराम जी ने उत्तर दिया– हां पुनर्जन्म के सिद्धांत ने फैसला कर दिया है। आज मैं सच्चे विश्वास से आर्य समाज का सभासद बन सकता हूं। भाई सुंदरदास जी का चेहरा खिल उठा'।[6]

आर्य समाज और जीवन परिवर्तन–

पंडित गुरुदत्त जी आर्य समाज जालंधर के एक सक्रिय और कर्मठ कार्यकर्ता थे। मृत्यु के समय भी स्वामी दयानंद जी के मुखमंडल पर व्याप्त स्निग्ध शांतिमय शीलता, सौम्यता और होठों पर खेलती मधुर मुस्कान ने गुरुदत्त जी को मानो झकझोर डाला था। उसी क्षण उन्होंने यह निश्चय कर लिया था, कि वह आजीवन स्वामी दयानंद जी के बताए गए मार्ग का अनुसरण करेंगे। जो दिव्य ज्योति उन्होंने प्रज्वलित की है, उसका प्रकाश हर मन तक पहुंचाने की आजीवन चेष्टा करेंगे। जालंधर में ही स्वामी श्रद्धानंद जी का पंडित गुरुदत्त जी के साथ परिचय हुआ तथा परिचय निकटता में बदलता चला गया। पंडित गुरुदत्त जी ने मुंशीराम जी को स्वामी दयानंद जी के द्वारा प्रतिपादित आर्य समाज के प्रत्येक सिद्धांत को न केवल विस्तारपूर्वक समझाया वरन यह भी कहा कि इस पर चलने के बाद मानव का कल्याण हो सकता है,आर्य जाति की क्षीण होती काया लहलहा सकती है।

मुंशीराम जी ने भी सोचा कि जब तनिक सी देर में मेरी कायापलट हो सकती है, तो थोड़ा–सा प्रयास करने पर समाज को भी सुधारा जा सकता है। बस वे कमर कस कर इस महान यज्ञ में अपने तन, मन, धन की आहुति चढ़ाने में लग जाएं। गुरुदत्त जी ने स्वामी जी द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश का पाठ करने और स्वाध्याय पर बल दिया। अब स्वामी श्रद्धानंद जी प्रात: प्रभात फेरी निकालते, नगर के विभिन्न मोहल्लों में सत्यार्थ प्रकाश की कथा करते और रविवार को देहातों में प्रचार के लिए जाया करते थे। मुंशीराम जी ने शुद्धि के कार्य पर भी ध्यान दिया, जिसके कारण पौराणिक लोग उनके बहुत विरुद्ध हो गए। तब भी वह उत्साहपूर्वक कार्य करते रहे। उनका निजी जीवन आर्य मान्यताओं के अनुरूप था। मांस–भक्षण, धूम्रपान, ताश आदि का परित्याग कर दिया। वह प्रतिदिन संध्या हवन करते और वेदों के स्वाध्याय में भी समय लगाते।

आर्य समाज का सभासद बनने पर उन्होंने आठवें समुल्लास को समाप्त कर तथा नवें समुल्लास को प्रारंभ किया। नवें समुल्लास ने मुक्ति विषय में बहुत से संशयो की निवृत्ति करके मनुष्य जीवन के प्रमोददेश्य के रहस्य को खोल दिया। तत्पश्चात उन्होंने दशम समुल्लास को हाथ लगाया। उस समुल्लास में मांस भक्षण के विषय में जीवन में एक और हलचल मचा डाली जिसने मांस–भक्षण के व्यसन से भी मुक्ति दिला दी। 'एक दिन श्रद्धानंद जी को टहलते हुए, एक आदमी मांस का टोकरा लिए हुए जाते दिखाई दिया। टोकरे में भेड़ बकरियों की लटकती हुई टांगे तथा उधड़ी खाल एक भयानक दृश्य उपस्थित कर रही थी। न जाने क्यों? उस दृश्य ने उनका दिल दहला दिया। वह बाल्यावस्था से ही मांसाहारी थे। मुंशीराम के पिता क्षत्रिय के लिए मांस भक्षण स्वभाविक समझते थे। उसी दिन शाम को भोजन के लिए सभी साथियों के साथ बैठे। अन्य खाद्य वस्तुओं के साथ ही मांस भी कटोरे में आया ही था, उसे देखकर उन्हें ऐसी घृणा हुई कि मांस के कटोरे को उठाकर दीवार पर फेंक मारा। उनके सभी साथियों को लगा कि मिशशर ने खाना अच्छा नहीं बनाया तथा वह सब मिशशर को ही भला बुरा कहने लगे। उन्होंने यह कहकर सब को रोका– मिशशर बेचारे को कुछ मत कहो। एक आर्य के मत में मांस–भक्षण भी महापापों में से एक है। मैं मांस का अपनी थाली में रखा जाना सहन नहीं कर सकता। तत्पश्चात मांस भक्षण का व्यसन यहां तक छूट गया कि मांसाहारियो की पंक्ति और उनके साथ खाने से भी चित्त खिन्न होने लगा'।[7]

मुंशीराम जी महर्षि के ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश से अत्यधिक प्रभावित थे। उसी विषय में लिखते हुए उन्होंने यह भाव प्रकट किए हैं–

'पंडित गुरुदत्त के थोड़े से ही सत्संग ने मेरी काया पलट दी। मुझे जालंधर आर्य समाज के उत्सव की समाप्ति के दूसरे दिन से ही स्वाध्याय का अभ्यास हो गया। पंडित गुरुदत्त जी की यह साक्षी मेरे लिए बहुत उत्तेजक हुई कि ऋषि दयानंद के ग्रंथों की प्रत्येक नयी आवृत्ति पर नए भाव विदित होते हैं'।[8]

आर्य समाज का प्रचार–प्रसार–

अग्निना अग्नि: समिध्यते। एक अग्नि से दूसरी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन में महर्षि के दर्शनों के उपरांत पूर्ण रूप से परिवर्तन आ चुका था। उन्होंने सधर्म

प्रचारक नामक एक साप्ताहिक पत्र महर्षि के मंतव्यो का प्रचार-प्रसार करने हेतु निकालना शुरू किया। मुंशीराम जी को आर्य समाज का अप्रतिद्वंदी नेता बनाने में सधर्म प्रचारक पत्र का बहुत बड़ा हिस्सा है और उनके द्वारा होने वाली आर्य समाज की सेवा का वह प्रधान साधन रहा है।

'चैत्र मास संवत 1943 में श्री मुंशीराम जी, रोग शय्या पर पड़े हुए पिताजी से मिलने के लिए तलबन गए हुए थे। वहां से जालंधर आते ही आर्य भाइयों ने आ घेरा। उनसे मालूम हुआ कि अमृतसर का पंडित श्यामदास वहां आया हुआ है, जिसने आर्य समाज को शास्त्रार्थ के लिए बार-बार ललकारा है। मुंशी राम जी ने उसी समय शास्त्रार्थ की स्वीकृति का पत्र लिखा। कुछ लिखा-पढ़ी के बाद पंडित श्यामदास जी मूर्ति पूजा और अवतारवाद के खंडन पर शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हुए। स्वामी श्रद्धानंद जी ने आपने ही यहां मुंशी गिरी करने वाले काशीराम को शास्त्रार्थ के लिए पंडित लाने के लिए लाहौर भेजा, लेकिन पंडित न मिलने पर काशीराम निराश होकर अमृतसर आ गए। पंडित धर्म चंद्र जी काश्मीरी उस समय अमृतसर आर्य समाज के प्रधान थे। उन्होंने लाजपत नाम के जिस ब्राह्मण युवक को छात्रवृत्ति देकर पढ़ाया था, उसको ही काशीराम के साथ भेज दिया। लाजपत अच्छे वक्ता तो न थे, पर संस्कृत बोल लेते थे। संस्कृत में ही शास्त्रार्थ करने की शर्त थी। रात में शास्त्रार्थ की तैयारी की गई। शास्त्रार्थ प्रारंभ होने के पश्चात श्यामदास जनता पर प्रभाव डालने के लिए हिंदी में बोलने लगे। तब स्वामी श्रद्धानंद जी खड़े हुए और लगे खुद ही शास्त्रार्थ करने। पंडित ने आग्रह किया कि लाजपत को ही शास्त्रार्थ करना चाहिए पर स्वामी श्रद्धानंद जी का एक ही जवाब था कि जब पंडित जी ने ही खुद शास्त्रार्थ की शर्त का पालन नहीं किया, तो उनको कोई अधिकार नहीं है, कि दूसरे पक्ष को शर्त पालन के लिए बाधित करें। शास्त्रार्थ का परिणाम आर्य समाज के लिए बहुत शुभ हुआ तथा श्यामदास के व्याख्यानो का खंडन होने लगा। इससे एक प्रत्यक्ष लाभ तो यह मिला कि तीस- पैंतीस नए सभासद मिल गए'।[9]

स्वामी श्रद्धानंद जी ने 'सधर्म प्रचारक नामक एक साप्ताहिक पत्र महर्षि दयानंद के मंतव्यो तथा आर्य-समाज का प्रचार- प्रसार करने हेतु निकालना शुरू किया। स्वामी श्रद्धानंद जी को आर्य समाज का प्रतिद्वंदी नेता बनाने में सधर्म प्रचारक पत्र का बहुत बड़ा हिस्सा है और उनके द्वारा होने वाली आर्य समाज की सेवा का वह प्रधान साधन रहा है। उस समय आर्य समाज का खूब प्रचार-प्रसार हो रहा था तथा सर्वसाधारण तक शास्त्रार्थो की प्रमाणिक रिपोर्ट पहुंचाने के लिए किसी साधन की आवश्यकता थी। इस परिस्थिति में मुंशीराम जी के हृदय में जो भाव पैदा हुए उनके संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है, कि 'मुझे इन दिनों में अपने विचार सर्वसाधारण तक पहुंचाने के लिए किसी साधन की आवश्यकता अनुभव होने लगी'। वैशाखी के आनंदोत्सव के शुभ दिन संवत 1946 में सधर्म प्रचारक पत्र का जन्म हुआ। स्वामी श्रद्धानंद जी और देवराज जी पत्र के संयुक्त संपादक नियुक्त किए गए और स्वामी श्रद्धानंद जी पर ही मैंनेजरी का सब काम डाला गया'।[10]

सधर्म प्रचारक ने आर्य - जगत को भातृभाव की एक माला में पिरोकर उनमें संगछध्व, संवदध्व, सं वो मनांसि जानताम् के वैदिक आदर्श को स्थापित करने का यशस्वी कार्य किया। धर्म मार्ग पर चलते हुए उसने कोई कमजोरी नहीं दिखाई, पाप के साथ कभी समझौता नहीं किया, भय के कारण वह कभी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुआ। लोभ-लालच में फंसकर वह कभी दबा नहीं और बड़े से बड़े का भी उसने कभी रोब दबाव नहीं माना। समाचार पत्रों की उस समय की प्रचलित लेखन शैली को उसने बदल दिया। गंदे विज्ञापन, ओच्छी भाषा, कमीने आक्षेप और व्यक्तिगत निंदा उस समय संपादकीय धंधे की सफलता के प्रधान साधन माने जाते थे। स्त्रियों के समानाधिकार और शिक्षा के लिए समान अवसर तथा साधन पैदा करने के लिए भी सधर्म प्रचारक ने शुरू से ही कुछ ऐसे आंदोलन किए, जैसे कि उसका जन्म ही उसके लिए हुआ था। प्रचारक कि ऐसी लेखमाला और आंदोलन का ही परिणाम जालंधर स्थित पंजाब का सुप्रसिद्ध 'कन्या महाविद्यालय' है। आर्य समाज के आचारहीन पदाधिकारियों को भी जगह-जगह पर सावधान किया गया।

प्रचलित जन्मगत छुआ-छूत को खान-पान तक में से दूर करने की आवश्यकता पर भी एक सुंदर भावपूर्ण टिप्पणी है। ब्रह्मचर्य पर भी एक अच्छा लेख है। सबसे महत्वपूर्ण विषय यह है कि देवनागरी लिपि तथा हिंदी भाषा को तमाम देश की भाषा बनाना आर्य समाजियों का कर्तव्य बताया गया और उस कर्तव्य पालन के लिए उनसे आग्रह किया गया।

यद्यपि मुंशीराम जी को वेद एवं संस्कृत भाषा का अध्ययन करने का उस प्रकार से अवसर नहीं मिला था, जिस प्रकार शास्त्रीय भाषा के पांडित्य वे प्रदर्शन करते, जबकि पैसे से वह वकील थे। पुनरपि उनका स्वाध्याय और चिंतन मनन इतना अथाह था कि वे पौराणिको, ईसाइयों और मुसलमानों को समय-समय पर शास्त्र-चर्चा एवं धर्म-निर्णय हेतु शास्त्रार्थ करने के लिए

ललकारते रहते थे।

निष्कर्ष-

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि स्वामी श्रद्धानंद जी और आर्य समाज का संबंध बड़ा ही घनिष्ट रहा है। स्वामी श्रद्धानंद जी की प्रारंभिक युवावस्था तथा महर्षि दयानंद जी से भेंट के बाद का जीवन, दोनों ही अवस्थाओं में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। श्रद्धानंद जी के द्वारा आर्य समाज में प्रवेश करने पर जो बची-कूची बुराइयां उनके चरित्र में थी, उनका नाश हो गया। तत्पश्चात स्वामी श्रद्धानंद जी ने अपना पूरा जीवन देश वआर्य समाज के उत्थान में लगा दिया। उन्होंने समाज में प्रचलित सभी बुराइयों को दूर करने का भरपूर प्रयास किया तथा उनको अपने प्रयास में काफी सफलता भी प्राप्त हुई।

संदर्भ सूची-

1. डॉ० विनोदचंद्र विद्यालंकार- स्वामी श्रद्धानंद एक विलक्षण व्यक्तित्व, आर्य धर्मार्थ न्यास, राजस्थान (2008), पृष्ठ संख्या-13
2. डॉ० पवित्र कुमार शर्मा - ऐसे बने थे स्वामी श्रद्धानंद, इंडिया पेपरबैक्स, नई दिल्ली (2019), पृष्ठ संख्या-11
3. अशोक कौशिक- स्वामी श्रद्धानंद, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली (2012), पृष्ठ संख्या-7
4. स्वामी श्रद्धानंद- कल्याण मार्ग का पथिक, विजयकुमार गोविंदराम हासानंद प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली (2015), पृष्ठ संख्या-90
5. पंडित सत्यदेव विद्यालंकार- स्वामी श्रद्धानंद, श्री स्वामी श्रद्धानंद अनुसंधान प्रकाशन केंद्र, हरिद्वार (2003) पृष्ठ संख्या-56, 57
6. स्वामी श्रद्धानंद- कल्याण मार्ग का पथिक, विजयकुमार गोविंदराम हासानंद प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली (2015), पृष्ठ संख्या-119
7. पंडित सत्यदेव विद्यालंकार- स्वामी श्रद्धानंद, श्री स्वामी श्रद्धानंद अनुसंधान प्रकाशन केंद्र, हरिद्वार (2003) पृष्ठ संख्या-96
8. डॉ० ऋचा सक्सैना, गुरुकुल शोध प्रभा ; अंक-1 सन 2019, पृष्ठ संख्या-67
9. पंडित सत्यदेव विद्यालंकार- स्वामी श्रद्धानंद, श्री स्वामी श्रद्धानंद अनुसंधान प्रकाशन केंद्र , हरिद्वार (2003) पृष्ठ संख्या-127,128,129
10. स्वामी श्रद्धानंद- कल्याण मार्ग का पथिक, विजयकुमार गोविंदराम हासानंद प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली (2015), पृष्ठ संख्या-224

ISSN 2278 - 0327

शाब्दबोध तथा उसकी प्रक्रिया : एक अध्ययन

भास्कर उप्रेती
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश– भारतीय ज्ञान परम्परा प्राचीन काल से अद्यावधि निरन्तर चली आ रही है। जिसके अन्तर्गत प्राय: सभी तथ्यों का सूक्ष्मावलोकन देखने को मिलता है। भाषिक–विमर्श भी प्रारम्भ से ही भारतीयों के मूलभूत चिन्तन का विषय रहा है। जिसमें 'शाब्दबोध' एक महत्त्वपूर्ण विषय है। शब्द के द्वारा उत्पन्न होने वाला बोध अथवा ज्ञान शाब्दबोध कहलाता है। शाब्दबोध पर वैयाकरणों, नैयायिकों तथा मीमांसकों के भिन्न–भिन्न मत प्राप्त होते हैं। विषय की जटिलता की प्रतीति विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के मतवैभिन्य से ज्ञात होता है। इस शोधपत्र के माध्यम से शाब्दबोध विषयक सिद्धान्तों का सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा।

भूमिका– संस्कृत ज्ञान परम्परा में भाषा विषयक चर्चा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। शब्दतत्त्व तथा अर्थतत्त्व की सूक्ष्मता का विवेचन हमें वेद, ब्राह्मण, उपनिषदादि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यद्यपि वैदिक वाङ्मय में वाक्शक्ति के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का यत्र–तत्र उल्लेख प्राप्त होता है तथापि उन तथ्यों को एकत्र करके उन्हें दार्शनिक रूप देकर व्याकरण–दर्शन की स्थापना का श्रेय पतञ्जलि, भर्तृहरि, हेलाराज तथा नागेश प्रभृतिवैयाकरणों को जाता है।[1]

महाभाष्यकार के मतानुसार शब्द का मुख्य प्रयोजन अर्थावबोधन है[2] तथा अर्थ के साथ इसका सम्बन्ध सिद्ध अर्थात् नित्य माना है।[3] महाभाष्य की प्रदीप टीका के अनुसार शब्द सर्वार्थबोधक है तथा अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त है किन्तु यदि शब्द को लोकव्यवहार में किसी अर्थ विशेष के लिए नियंत्रित कर दिया जाता है तो वह उसी निश्चित अर्थ का बोध कराता है, अन्य का नहीं।[4] आस्तिक दर्शनों में वैशेषिक दर्शन को छोड़कर शेष सभी शब्द को प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं। भर्तृहरि के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि का कोई भी प्रत्यय अर्थात् ज्ञान शब्द से सम्बद्ध होकर ही भासित होता है–

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य: शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिवज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥[5]

न्यायकोश की व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द के द्वारा जनित ज्ञान ही शाब्दबोध कहलाता है।[6] शाब्दबोध आप्तपुरुषों के व्यवहार, आवाप, उद्वाप, अन्वयव्यतिरेक, उपदेश आदि के द्वारा होता है। शिशु सर्वप्रथम ज्ञान की प्राप्ति लोकव्यवहार अथवा वृद्धव्यवहार से करता है। वह आवाप–उद्वाप तथा अन्वयव्यतिरेक सिद्धान्त के द्वारा वृद्धजनों के व्यवहार से अर्थावबोधन करता है। आवाप शब्द का अर्थ है– वाक्य में नए शब्दों का सम्मिश्रण तथा उद्वाप शब्द का अर्थ है– वाक्य में विद्यमान पद का परित्याग। उदाहरणार्थ जब उत्तमवृद्ध, मध्यमवृद्ध को आदेश देता है कि 'गामानय' अर्थात् गाय को लाओ तब वह गाय नामक पशु विशेष को लाता है। इस प्रक्रिया को देखकर समीप में बैठा हुआ शिशु वाक्यार्थ समझता है– 'सास्नादिमान पशु विशेष को लाना'। तत्पश्चात् 'गां बधान' (गाय को बांधो) एवं 'अश्वमानय' (घोड़े को लाओ) वाक्यों से उत्तमवृद्ध द्वारा मध्यमवृद्ध को आज्ञा दिए जाने पर वह क्रमश: गाय को बांधकर घोड़े को लाता है। आवाप तथा उद्वाप के माध्यम से शिशु ने 'गामानय' पद में से 'आनय' को हटाकर 'बधान' शब्द को उसमें सम्मिलित किया। इस प्रकार गाय शब्द दोनों स्थानों पर यथावत् विद्यमान रहा किन्तु दूसरे वाक्य में लाने के स्थान पर बांधना अर्थ हो गया। 'अश्वमानय' (घोड़े को लाओ) इस वाक्य में 'आनय' पद पूर्ववत् समान है किन्तु गाय के स्थान पर घोड़े को लाया जाता है। अतएव 'गो' पद का अर्थ 'गाय' तथा 'आनय' पद का अर्थ 'लाना' 'बधान' पद का अर्थ 'बांधना' तथा 'अश्व' का अर्थ 'घोड़ा' इस प्रकार शिशु को शाब्दबोध हुआ।

वाक्यपदीयकार के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रतिभा के अनुसार ही शीघ्रता से अथवा विलम्ब से अर्थ का ग्रहण करता है।[7] शुद्धि–अशुद्धि का ज्ञान भी मनुष्य को अपनी प्रतिभा के अनुसार ही होता है। स्थूल वस्तुओं का अर्थ दृश्य होने के कारण अशुद्ध ज्ञान भी समयानुसार ज्ञानवृद्धि होने पर शुद्ध हो जाता है किन्तु सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान अदृष्ट होने के कारण व्यक्ति की प्रतिभा पर ही आश्रित रहता है तथा सूक्ष्म तत्त्वों के विषय में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक विचार करता है। भर्तृहरि के मतानुसार वस्तुत: अर्थ के विकास का मूल कारण शाब्दबोध ही है। प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिभा, अर्थग्रहण की शक्ति, अनुभव तथा ज्ञानादि सभी भिन्न–भिन्न हैं अतएव अर्थ का बोध भी सभी को भिन्न–भिन्न प्रकार से होता है।[8]

नागेश भट्ट के मतानुसार वृत्तिज्ञान ही अर्थज्ञान का प्रमुख साधन है। वृत्तिज्ञान के बिना शाब्दबोध असम्भव है–'तत्रागृहीतवृत्तिकस्य शाब्दबोधादर्शनात्'[9]

शाब्दबोध हेतु यह ज्ञान अत्यावश्यक है कि कौन-सा शब्द किस अर्थ का बोधन कराता है? यह वृत्तिज्ञान शक्तिग्रह अथवा शक्तिज्ञान के नाम से भी जाना जाता है। शक्तिग्रह के विषय में वैयाकरणों, साहित्यिकों, नैयायिकों ने विभिन्न रूपों में उल्लेख किया है। शब्दशक्तिप्रकाशिका में शक्तिग्रह के आठ साधनों का उल्लेख प्राप्त होता है।[10] व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष (प्रकरण), विवरण, ज्ञातपद का साहचर्य। एक ही व्यक्ति एक ही शब्द के अर्थ को आयु की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में अलग-अलग समझता है। भिन्न-भिन्न दो शास्त्रों में एक ही तत्त्व के अलग-अलग अर्थ दिखाई देते हैं अतएव भर्तृहरि का कथन है-

एकस्यापि च शब्दस्य निमित्तैरव्यवस्थितैः।
एकेन बहुभिश्चार्थो बहुधा परिकल्प्यते॥ [11]

शब्द से उत्पन्न होने वाला ज्ञान अथवा बोध शाब्दबोध कहलाता है।

पद-ज्ञानं तु करणं, द्वारं तत्र पदार्थ-धीः।
शाब्दबोधः फलं तत्र, शक्ति-धीः सहकारिणी॥[12]

शब्द दो प्रकार का है-ध्वन्यात्मक तथा वर्णात्मक। 'भेरी', 'मृदङ्गादि' से उत्पन्न शब्द को 'ध्वन्यात्मक' तथा संस्कृतभाषा आदि के शब्दों को 'वर्णात्मक' की सञ्ज्ञा दी गई है। इन दोनों प्रकार के शब्दों से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को 'शाब्दबोध', 'वाक्यार्थबोध', 'अन्वयबोध' इत्यादि की सञ्ज्ञा दी गई है।[13] शाब्दबोध प्रक्रिया में प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा पद का ज्ञान असाधारण कारण अर्थात् करण है, पदार्थ का बोध व्यापार तथा शाब्दबोध फल है तथा शक्तिग्रह का बोध होना सहकारी कारण माना गया है। शाब्दबोध विषयक वाद भारतीय दार्शनिकों के लिए प्रारम्भ से ही एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। विषय की गहनता की प्रतीति विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के मतों में भिन्नता से प्रतीत होती है। अनेक स्थानों पर तो एक ही दर्शन सम्प्रदाय के विभिन्न आचार्यों के मतों में भी भिन्नता दिखाई देती है। मीमांसा दर्शन में शबरस्वामी के द्वारा सर्वप्रथम शाब्दबोध प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया। कालान्तर में कुमारिल भट्ट ने इसे और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया। तदनन्तर उदयनाचार्य ने न्यायदर्शन तथा भट्टोजिदीक्षित एवं कौण्डभट्ट ने व्याकरणदर्शन के अनुसार शाब्दबोध विषय पर अपने वाद प्रस्तुत किए। शाब्दबोध की प्रक्रिया पर प्रमुखतः वैयाकरणों, नैयायिकों तथा मीमांसकों के वाद प्रमुखतया प्राप्त होते हैं।

मतभेद का मुख्य कारण वाक्य में मुख्यविशेष्य पद का निर्धारण करना है। नैयायिकों के अनुसार वाक्य में जो प्रथमान्त पद है, वही शाब्दबोध में मुख्यविशेष्य होता है यथा- '*चैत्रः ग्रामं गच्छति*' वाक्य में ग्राम-गमन रूपी क्रिया का आधार चैत्र होगा। '*ग्रामनिष्ठसंयोगानुकूलकृत्याश्रयः चैत्रः*'। यहां पर प्रथमान्त 'चैत्र' पद का ही अर्थ मुख्यविशेष्य है तथा पद में संयुक्त प्रथमा विभक्ति का प्रयोग साधुता के लिए है। 'शक्तं पदम्' इस परिभाषा के अनुसार 'चैत्र' भी एक पद है।

वैयाकरणों के अनुसार वाक्य में धात्वर्थ अर्थात् क्रियापद ही मुख्यविशेष्य तत्त्व होता है-'*धात्वर्थमुख्यविशेष्यकः*'। इनके मतानुसार फल तथा व्यापार धातु के ही अर्थ हैं। यथा- '*चैत्रः ग्रामं गच्छति*' वाक्य में 'चैत्र' द्वारा की जाने वाली '*ग्राम-गमन*' रूपी क्रिया ही वाक्य का मुख्य आधार अथवा मुख्यविशेष्य है। '*चैत्रकर्मक ग्रामनिष्ठसंयोगजनको व्यापारः*'। इस प्रकार यहां पर धात्वर्थ मुख्यविशेष्य है तथा अन्य कर्ता इत्यादि उसके विशेषण हैं। अतः वैयाकरण शाब्दबोध को धात्वर्थमुख्यविशेष्यक अथवा आख्यार्थकर्तृप्रकारक मानते हैं।

मीमांसकों के मतानुसार कार्य की उत्पत्ति के अनुकूल कारण (उत्पादक) का जो व्यापारविशेष है वह भावना कहलाता है। इनके अनुसार शाब्दबोध में इसी भावना की प्रधानता होती है। अतएव मीमांसक शाब्दबोध को 'भावनामुख्यविशेष्यक' मानते हैं। यथा- 'चैत्रः पचति' इस पद में 'पचति' क्रियापद का 'ति (लिडत्व)' भावना को व्यक्त करता है, यही चैत्र को ग्राम-गमन की प्रेरणा देता है। यहां पर शाब्दबोध इस प्रकार होगा- '*चैत्राभिन्नैककर्तृका वर्तमानकालिका पाकानुकूला भावना*'। यद्यपि यह शाब्दबोध भी वैयाकरणों के समान ही क्रियापद से होता है किन्तु वैयाकरण इसे 'धातु' से बोधित तथा मीमांसक 'आख्यात अथवा भावना' से बोधित मानते हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 54
2. अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। म.भा.
3. सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे। म.भा. (पस्पशाह्निक्)
4. सर्वार्थाभिधानशक्तियुक्तः शब्दो यदा विशिष्टेऽर्थे संव्यवहाराय नियम्यते, तदा तत्रैव प्रतीतिं जनयति नान्यत्र। म.भा. प्रदीप 1.2.22
5. कारिका-114 ब्रह्मकाण्ड वा.प.
6. अत्र व्युत्पत्तिः शब्दाज्जायमानो बोधः शाब्दबोध इति। न्यायकोश पृ.873
7. अभ्यासात् प्रतिभाहेतुः शब्दःसर्वोऽपरैः स्मृतः।
बालानां च तिरश्चां च यथार्थप्रतिपादने॥ (वा.प. 2.119)
8. अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, डा. कपिलदेव द्विवेदी, पृ.100
9. मञ्जूषा पृ.12
10. शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च। वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥ शब्दशक्तिप्रका., श्लो. 20
11. वा.प. 2.139
12. भाषा परिच्छेद कारिका-81
13. समासशक्ति तथा शब्दशक्ति, डा. रणजीत कुमार मिश्र, पृ.129

ISSN 2278 - 0327

प्रयोगवाद तथा नयी कविता

डॉ. ब्रह्मानन्द मिश्र
(हिन्दी प्राध्यापक)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
एकलव्य परिसर, सिपाई पारा, अगरतला त्रिपुरा

प्रयोगवाद का आरम्भ सन् 1943 ई . में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ' अज्ञेय ' के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'तार सप्तक' से माना जाता है। तार सप्तक में इन कवियों को शामिल किया गया है–

1. अज्ञेय 2. रामविलास शर्मा 3. गजाननन माधव मुक्तिबोध 4. प्रभाकर माचवे 5. नेमिचन्द्र जैन 6. गिरिजा कुमार माथुर 7. भारतभूषण अग्रवाल

सन् 1951 ई . में प्रकाशित दूसरे सप्तक में निम्न कवि है–

1. शमशेर बहादुर सिंह 2. भवानी प्रसाद मिश्र 3. शकुन्तला माथुर 4. हरिनारायण व्यास 5. नरेश मेहता 6. धर्मवीर भारती 7. रघुवीर सहाय

सन् (1959) ई में सम्मिलित तीसरे सप्तक प्रमुख कवि है–

1. प्रयागनारायण त्रिपाठी 2. मदन वात्स्यायन 3. विजयदेव नारायण साही 4. कुँवर नारायण 5. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 6 . केदार नाथ सिंह 7 . कीर्ति चौधरी

सन् 1979 ई . प्रकाशित चौथे सप्तक में निम्न कवि है –

1. अवधेश कुमार 2. राजकुमार कुंभज 3. स्वदेश भारती 4. नन्द किशोर आचार्य 5. सुमन राजे 6. श्रीराम वर्मा 7. राजेन्द्र किशोर

अज्ञेय जी ने दूसरा सप्तक की भूमिका में लिखा है –

(1) प्रयोग का कोई वाद नहीं है हम वादी नहीं रहे, नहीं है, न प्रयोग अपने – आप में इष्ट या साध्य है ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है , कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नही है अत: हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें 'कविता वादी' कहना। प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है। वह साधन है और दोहरा क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है दूसरा वह उस प्रेरणा की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन हैं।

'प्रयोगवाद' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवादी रचनाएँ शीर्षक निबन्ध में किया। और बैठे ठाड़े का धंधा कहा है।

नयी कविता का सामान्य परिचय – (1954)

'नयी कवित' नाम अज्ञेय का दिया हुआ है उन्होंने अपनी एक रेडियों वार्ता में इस पद का सर्वप्रथम प्रयोग किया था, जो बाद मे नये पत्ते के जनवरी–फरवरी, 1953 अंक में नयी कविता शीर्षक से प्रकाशित हुई।

डॉ. जगदीश गुप्त इस बात पर बल देते है कि 'कविता में नवीनता की उत्पत्ति सच्ची कविता लिखने की आकांक्षा से ही होती है। और धर्मवीर भारती ने नयी कविता को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। नयी कविता में व्यक्ति स्वातन्त्र्य की भावना भी प्रबल रही। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता की अपनी कोई विशेष दार्शनिक धारा या विचारधारा नहीं रही। उनके अनुसार नयी कविता मूलत: एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की पर्सनल – सिचुएशन की कविता है।

प्रमुख कवि

1. अज्ञेय
2. रामविलास शर्मा
3. प्रभाकर माचवे वलवंत
4. गिरिजा कुमार माथुर
5. भारत भूषण अग्रवाल
6. भवानी प्रसाद मिश्र
7. धर्मवीर भारती
8. रघुवीर सहाय

हिन्दी के प्रख्यात कविता अज्ञेय के सम्पादन में 'तार सप्तक'

नाम का एक काव्य - संग्रहसन 1943 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सात कवियों की कविताएँ संग्रहित थी - गजानन माधव मुक्ति बोध , प्रभाकर माचले, गिरिजा कुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द जैन, रामविलास शर्मा और अज्ञेय (जब यह संग्रह - प्रकाशित हुआ था, तब इनमें से अज्ञेय को छोड़कर शेष सभी कवि प्रगतिवादी विचार धारा से प्रभावित थे कुछ तो सीधे सीधे अपने को कम्युनिष्ट कहते थे। अज्ञेय भी प्रगतिवादियों से बहुत दूर नहीं थे इसके बावजूद इस संग्रह से काव्य में प्रयोग की चर्चा आई। इसी क्रम में नयी कविता काव्य की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है, नयी कविता का आरम्भ कब से है? इसके बारे में स्वयं नयी कविता के कवि भी आपस में सहमत नहीं हैं। कुछ कवि आलोचक प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग - अलग काव्यधारा मानते हैं जबकि कुछ विद्वानों के अनुसार प्रयोगवाद का ही विकास नयी कविता के रूप में हुआ।

डॉ. रामविलास शर्मा कविता की शुरुआत 'नयीकविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। जिसके प्रथम अंक का प्रकाशन सन् 1954 ई. में हुआ था। गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग-अलग कृत्रिम वर्गों में देखना असंगत मानते हैं। उनके अनुसार प्रयोगवाद और नयी कविता आधुनिकता की भिन्न स्टेज है। तीसरा सप्तक (1959) की भूमिका में अज्ञेय प्रयोगवाद या प्रयोगशीलता शब्दों की अपेक्षा नयी कविता शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित समझते हैं।

प्रयोगवाद तथा नयी कविता के काव्य भाषा का स्परूप -

प्रयोगवादी काव्य की भाषा छायावाद से भिन्न तो है ही, वह प्रगतिवादी कविता से भी भिन्न है। छायावादी कविता की भाषा में कोमलता और सुकुमारता के गुण थे तो प्रगतिवादी कविता में पहली बार कविता की भाषा की बोलचाल के निकट लोने की कोशिश की गयी। प्रयोगवाद में शब्द-प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया गया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार प्रयोगवादी कवियों की भाषा अधिक सहज और सरल बनी। उसमें अधिक पारदर्शिता और संप्रेषणीयता आई। भाषा में गेयता और आलंकारिता कम हुई। सभी प्रयोगवादी कवियों की भाषा एक-सी नहीं है। अज्ञेय की भाषा आरम्भ में दुरुह और बौद्धिक अधिक थीं, बाद में भाषा बोलचाल के नजदीक आई। गिरिजा कुमार माथुर की भाषा में गेयता का तत्व अधिक रहा है। आरम्भ में उनकी भाषा पर छायावाद का असर देखा जा सकता है। बाद में उनकी कविता की भाषा में बोलचाल का ज्यादा स्वाभाविक रूप दिखाई देता है। शमशेर के शब्द प्रयोग यद्यपि सरल है परन्तु अर्थ की दृष्टि से अधिक गहन है। वे सिर्फ शब्दों तक ही अपनी कविता के अर्थ को नहीं बाधते बल्कि उसमें आगे उनकी कविता में शब्दों के बीच में मौन अंतराल में काव्यार्थ छिपा होता है। नयी कविता काव्य भाषा का स्वरूप इसी क्रम में नयी कविता काव्या का भाषा स्वरूप पर जगदीश गुप्त ने खड़ी बोली की विकास परम्परा पर विचार करते हुए नयी कविता के भाषागत 'वैशिष्ट्य' पर प्रकाश डाला है। इनका मानना है कि नयी कविता में गद्य और पद्य की भाषा इतनी अधिक निकट आ गई है कि दोनों की विभाजन रेखा कही सर्वथा विलुप्त होती हुई दिखाई देती है।

दूसरे शब्दों में, नयी कविता बोलचाल की भाषा के निकट है नयी कविता के प्राय: सभी कवियों ने इसे स्वीकार किया है। शमशेर, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह की काव्यभाषा के रूप अलग - अलग है परन्तु उन्होंने भाषा का सर्जनात्मक इस्तेमाल किया है। रघुवीर सहाय की भाषा में निजता के साथ - साथ सरलता और सहजता है। केदारनाथ सिंह काव्य घेतना मूलत: गीतकार की साथ ही विवात्मकता की और अधिक झुकाव होने के कारण उनकी भाषा पारदर्शीदर्पण की तरह चमकीली उजली है।

प्रयोगवाद काव्य का सौन्दर्य बोध -

प्रयोगवाद में वस्तुपक्ष की अपेक्षा रूप- पक्ष पर अधिक बल दिया गया है अज्ञेय ने भी कहा था कि प्रयोगवादी कविता में सौन्दर्य पक्ष और रूप- विधान उत्कृष्ट होता है । प्रयोगवाद केवल कलापक्ष पर ही जोर नहीं देता बल्कि अन्तर्वस्तु की दृष्टि से भी वह पहले की कविताओं से भिन्न हैं। इस भिन्नता को निश्चय ही हम भाषा और शिल्प दोनों स्तरों पर भी देख सकते है।

नयी कविता काव्य का सौन्दर्य बोध -

नयी कविता आन्दोलन छायावादी और प्रगतिशील आन्दोलनों से भिन्न था। जैसा कि डॉ. नामवर सिंह का मानना है, छायावाद के सभी कवि एक ही तरह की 'व्यापक भावभूमि' पर तथा प्रगतिवादी एक ही तरह की व्यापक विचारभूमि पर अवस्थित थे, लेकिन नयी कविता के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। विचारों और अनुभूतियों के स्तर पर दो भिन्न ध्रुवों पर रहने वाले कवि भी नयी कविता आन्दोलन में शरीक थे। लेकिन काव्य के रूप और शिल्प की दृष्टि से उनमें ऐसा ध्रुवीकरण नही थे। नये कवि काव्य की प्रचलित शैलियों और रुढ़माध्यामों में परिवर्तन चाहते थे। परिवर्तन की यह आकांक्षा, नये जीवन- मूल्यों और जीवन स्थितियों से जुड़ी थी। इसने नयी कविता को नये शिल्प और नयी भाषा की खोज की ओर प्रवृत किया।

प्रयोगवाद काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ -

प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी हैं। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं। ये कवि मध्यवर्गीय व्यक्ति- जीवन की समस्त जड़ता, कुंठा, अनास्था, पराजय और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्घाटित करते हैं। यों तो मध्यवर्गीय व्यक्ति- जीवन की पीड़ा के अनेक स्तर इन कविताओं में उभरे है, किन्तु विशेषतया दमित कामवासना का ही प्राधान्य लक्षित होता है। इनकी काम-संवेदना जितनी ही तीव्र है उतनी ही सामाजिक बंधनों की सीमाएं कठोर है।

प्रयोगवाद ने बड़ी- बड़ी घटनाओं, बड़े- बड़े संघर्षों, बड़े- बड़े व्यक्तियों या समुदायों, बड़े- बड़े जीवन- प्रसंगों के विशाल फलक पर इतिवृत्तात्मक काव्य का निर्माण नहीं किया, बल्कि उसने व्यक्ति के अंत: संघर्षो क्षणों की अनुभूतियों और सूक्ष्य से सूक्ष्म, छोटी- से छोटी संवेदनाओं और मन की विभिन्नस्थितियों को लेकर छोटी- छोटी तीव्र प्रभावशाली कविताएं लिखी, फलेश दिये । कला में मूल प्रश्न विषय की महत्ता या लघुता का नहीं, मूल प्रश्न है उसे ईमानदारी के साथ जीकर व्यक्त करने का।

नयी कविता काव्य धारा की प्रवृत्तियाँ-

'नयी कविता' भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परम्परागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प विधानों का अन्वेषण किया गया। यह अन्वेषण साहित्य में कोई नयी वस्तु नहीं है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो प्राय: सभी नये वाद या नयी- नयी धाराएं अपने पूर्ववर्ती वादों या धाराओं की तुलना में कुछ नवीन अन्वेषण की प्यास लिए दिखाई पड़ती है। साहित्य की यह नवीनता सदैव श्लाघ्य है नयी कविता की प्रवृतियों की परीक्षा करने पर उसकी सबसे पहली विशिष्टता जीवन के प्रति उसकी आस्था में दिखाई पड़ती है एवं जीवन का पूर्ण स्वीकार करके उसे भोगने की लालसा है।

नयी कविता में क्षणों की अनुभूतियों को लेकर बहुत- सी मर्मस्पर्शी और विचार- प्रेरक कविताएं लिखी गयी है। ये कविताएं कुछ क्षणों का, लघु प्रसंगों का, लघुदृश्यों का चित्रण नहीं करती, बल्कि कुछ संगत और असंगत विम्बों के माध्यम से क्षणों की परिधि में उफनते जीवन की संश्लिष्टता को मूर्तिमान कर देती है। ये कविताएँ आकार में छोटी होती है। और प्रभाव में अत्यन्त तीव्र। कुछ आलोचकों ने यह आरोप लगाया है कि नयी कविता में चित्रित जीवन बोध या सत्य विदेशी- दर्शन और कविता से उधार लिया गया है और यह कविता यहां के लोगों के जीवन - सत्यों को न ग्रहण कर परोक्ष भाव से पश्चिम के जीवन- सत्यों को ग्रहण करती हैं।

सन्दर्थ ग्रन्थ सूची-

1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2) डॉ. नगेन्द - हिन्दी साहित्य का इतिहास।
3) कृष्ण शंकर शुक्ल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास।
4) डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।
5) नन्द दुलारे वाजपेयी-आधुनिक हिन्दी साहित्य।
6) रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' - हिन्दी साहित्य का इतिहास।
7) सरस्वती पाण्डेय व गोविन्द पाण्डेय-हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास ।

ISSN 2278 - 0327

राष्ट्रीय एकता का प्रतीक : संगीत

दर्शना
पी-एच.डी. शोधार्थी, संगीत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. जितेंद्र मलिक
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग
जी.सी.डब्ल्यू. सेक्टर 14, गुरुग्राम

सार संक्षेपिका

भारत एक विशाल देश है। यहाँ अलग-अलग धर्मों के लोग रहते हैं। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति अनूठी है। संगीत भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग है। जैसे-जैसे संस्कृति का विकास हुआ साथ ही इस सर्वश्रेष्ठ कला (संगीत) का भी विकास हुआ। संगीत मनुष्य के हृदय की अनुभूतियों को उजागर एवं व्यक्त करने का अनुपम माध्यम रहा है। भारतीय संगीत की उत्पत्ति की अगर बात की जाए तो इसकी उत्पत्ति एवं विकास से संबंधित अनेकों धार्मिक मत प्राप्त होते हैं। जिनमें से एक मत यह है कि ब्रह्मा को संगीत कला का जन्मदाता माना गया है। उनके द्वारा यह विद्या शिव को तथा शिव से यह नारद, गंधर्व तथा किन्नर आदि जातियों को प्राप्त हुई।

संगीत संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। आज संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो संगीत से प्रभावित न हुआ हो। अत: संगीत प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। जितना प्रभाव संगीत का मनुष्य के जीवन पर है, उतना ही प्रभाव जीव-जंतुओं तथा पेड़-पौधों पर भी पड़ता है। इस प्रकार संगीत से प्रभावित होकर हम एक व्यक्ति, वर्ण, समाज, विशेष से ही नहीं अपितु दूसरे प्रान्तों और देशों से भी जुड़े हुए होते हैं जिससे न केवल राष्ट्रीय एकता अपितु अंतराष्ट्रीय एकता का भी विकास होता है, अत: इस प्रकार एकता की भावना को बढ़ावा मिलता है।

संगीत ही एकमात्र ऐसा विषय है, जो केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं वरन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सद्भावना, मानवता, सहिष्णुता जैसे उदात्त भावों को उजागर करने में सहायक है। देशों तथा विदेशों में भारतीय संगीत की महश्रा बढ़ती जा रही है।

मुख्य शब्द:- संगीत, राष्ट्रीय, एकता, संस्कृति।

भूमिका:-

भारत देश भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का देश है, जो संपूर्ण विश्व में अपनी अद्वितीय पहचान बनाए हुए हैं। यहाँ की संस्कृति और भाषा भले ही अलग-अलग हो परंतु फिर भी संपूर्ण राष्ट्र एकता के सूत्र में बंधा हुआ है। राष्ट्रीय एकता के अर्थ की अगर बात की जाए तो इससे अभिप्राय है -एक देश अथवा राष्ट्र के संपूर्ण घटकों में अलग-अलग विचारों तथा विभिन्न आस्थाओं के होते हुए भी आपसी सहयोग, प्रेम, भाईचारे एवं राष्ट्रीय एकता का बना रहना। राष्ट्रीय एकता में केवल शारीरिक समीपता को ही महत्व नहीं दिया जाता अपितु इनके माध्यम से बौद्धिक, वैचारिक, मानसिक एवं भावनात्मक निकटता की समानता का होना अत्यंत आवश्यक है। वैदिक काल से लेकर अब तक संगीत कला ही सर्वश्रेष्ठ एवं उच्च कोटि की कला है। यह कला मानों बिखरे हुए मोतियों को एक माला में पिरोने का सुदृढ़ कार्य कर रही है। संगीत कला बहती हुई उस पवित्र नदी के समान है, जो अपने निश्चित स्थान से निकलकर अलग-अलग खेतों, खलिहानों, नदियों, पर्वतों एवं झरनों आदि के अपने अंदर आत्मसात किए हुए, बिना किसी स्वार्थ के आगे बढ़ती हुई चली जाती है। ठीक उसी प्रकार संगीत कला ने सभी धर्मों एवं मतों को एकता के सूत्र में बाँध रखा है।

मुहम्मद इकबाल का मशहूर गीत ''सारे जहाँ से अच्छा '' में राष्ट्रीय एकता के भाव बखूबी झलकते हैं, जैसे-

''सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्तां हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी ये गुलिस्तां हमारा
मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी है हम, वतन है हिंन्दोस्तां हमारा''

इस प्रकार जब भी हम यह गीत सुनते और गाते हैं तो हमारे अंदर दूसरे धर्म, वर्ग एवं संप्रदायों के प्रति भी सम्मान की भावना बढ़ती है। जो हम सबको राष्ट्रीय एकता के मजबूत धागे में बाँधती है।

राष्ट्रीय एकता का अर्थ एवं परिभाषा:

वास्तव में अगर देखा जाए तो राष्ट्रीय एकता भावात्मक एकता का ही दूसरा नाम है। यह कोई बाह्य तत्व न होकर

आंतरिक तत्व ही है, जो किसी भी देश अथवा राष्ट्र विशेष के लोगों की भावनाओं में आत्मसात रहती है। राष्ट्रीयता अर्थात् अपने राष्ट्र के प्रति मान-सम्मान, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम आदि भावों का समन्वय होना, राष्ट्रीयता के भावों को दर्शाता है। भाषा, धर्म, जाति, वर्ग विशेष से ऊपर उठकर अपने देश और देशवासियों के लिए आपसी प्यार, सहयोग, बंधुत्व जैसे नैतिक गुणों को अपने अंदर आत्मसात करना इत्यादि के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ाया जा सकता है।

अत: राष्ट्रीय एकता से अभिप्राय किसी भी राष्ट्र के नागरिकों में विद्यमान एकता की भावना से है। यह राष्ट्रीय एकता की भावना राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण लक्षण होता है और इसके बिना एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है। भले ही एक देश में रहने वाले नागरिकों का खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, जाति-धर्म, एवं रीती-रिवाज व परंपराएं अलग है लेकिन इतनी विभिन्नताएँ होते हुए भी जरूरत पड़ने पर हमारे देश के नागरिक एक होकर राष्ट्रहित एवं भलाई के लिए अनेकों नेक कार्य समय-समय पर करते रहते हैं और यह सब राष्ट्रीय एकता की भावना को भली-भांति दर्शाता है।

रॉस के अनुसार- ''राष्ट्रीयता एक भाव अथवा प्रेरणा है, जिससे प्रभावित होकर व्यक्ति अपने राष्ट्र से प्रेम करता है और उसके विकास में सहायक होता है।''

संगीत का अर्थ एवं परिभाषा:

संगीत की अगर बात की जाए तो यह ऐसी अद्वितीय एवं अनूठी कला है, जो भारतीय संस्कृति की आत्मा है। भारतीय संस्कृति के प्रारंभ तथा इसके उद्भव काल से संगीत कला इसका अभिन्न अंग रही है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति इतना व्यस्त हो गया है कि उसके तनाव को दूर करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम संगीत कला ही है, जो मनुष्य के मनव हृदय को रंजकता प्रदान करती है,उसे आत्मिक सुख की अनुभूति प्रदान करती है।

संगीत शब्द की उत्पत्ति 'गीत' शब्द में 'सम' उपसर्ग लगाने से हुई है। सम से अभिप्राय सुचारु रूप से अर्थात् उचित ढंग से तथा गीत शब्द का अर्थ गायन से है अर्थात् ऐसा गीत जो उचित रूप से गाया जाए, वह संगीत है। भारतीय संगीत परंपरा की अगर बात की जाए तो इसके मनीषियों के अनुसार संगीत में तीन कलाओं का समावेश माना गया है। जैसे-

''*गीतम् वाद्यं च नृत्यम् त्रय संगीतमुच्यते*।''[1]

अभिप्राय यह है कि गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं के समूह को संगीत कहा गया है।

गीतवादित्रनृत्यानां रक्ति: साधारणो गुण:।
अतो रक्तिविहीनं यन्न तत् संगीतमुच्यते।।[2]

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों का साधारण गुण 'रक्ति' अर्थात् मनोरंजन करने की प्रकृति है। अभिप्राय यह है कि जिस संगीत में यह रक्तिगुण नहीं है, उसे संगीत कहना उचित नहीं है। संगीत का जो रंजकत्व गुण है अर्थात् जो रंजकता एवं आनंद की अनुभूति कराता है, सभी ग्रंथकारों ने इसका महत्व बताया है। अत: संगीत मनुष्य को वास्तव में ही सुख की अनुभूति करवाता है। संगीत लोगों को जोड़ने का कार्य करता है, जिससे राष्ट्र को और अधिक मजबूत किया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर अगर देखा जाए तो संगीत राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को विकसित कर रहा है और साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तरपर भी राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देने में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।

वैसे तो इस भावना को मजबूत करने में संगीत का योगदान प्रारंभ से ही रहा है। प्राचीन काल में जितने भी ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे गए वो सब संगीतमय ढंग से रचे गए थे और इनका प्रभाव मानव जीवन पर सकारात्मक रूप से पड़ा। इन ग्रंथों में जो भी गूढ़ तथ्य, अच्छी-अच्छी शिक्षाएं हमें प्राप्त हुई है, वो सब कहीं न कहीं हमें आपस में जोड़ने का कार्य करते हैं। ये सिर्फ एक व्यक्ति, वर्ग, समाज, राज्य, देश को ही नहीं अपितु अन्य देशों को भी प्रभावित करती है अर्थात् राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी एकता को स्थापित करती है।

भारत के मध्यकालीन भक्त कवियों की अगर बात की जाए, इन सभी ने अपनी संगीतात्मक रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करने मे अति महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जिनका प्रभाव वर्तमान समय में भी मानव जीवन पर सकारात्मक रूप से पड़ता है। क्योंकि आज का जो विद्यार्थी वर्ग है वह चाहे विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में कहीं पर भी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, उनके पाठ्यक्रम में इन कवियों की अनेकों रचनाओं को शामिल किया गया है। विद्यार्थी केवल अध्ययन ही नहीं करते अपितु उनकी रचनाओं में जो अच्छी शिक्षाएं वर्णित है उनको आत्मसात कर अपने भावी जीवन में उतारते हैं और आप सब इस बात से भली-भांति परिचित भी है, आज के विद्यार्थी हमारे भावी राष्ट्र के निर्माता है, जो राष्ट्रीय एकता, देशप्रेम जैसे गुणों को विकसित करने में अपना अहम योगदान देते हैं और कहीं न कहीं सबसे ज्यादा राष्ट्रीय एकता इन शैक्षणिक संस्थानों द्वारा समय-समय पर करवाए जा रहे संगीत के कार्यक्रमों के माध्यम से अत्यधिक विकसित होती है। जो आगे

बढ़कर एक व्यापक रूप धारण कर लेती है तथा साथ ही न केवल राष्ट्रीय अपितु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रचार एवं प्रसार करती है।

संगीत के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को देखने व समझने के लिए हमें इसे क्रम से वर्णित करना होगा। भारत में संगीत विश्लेषण की बात की जाए तो अनेक ग्रंथकारों, कवियों, संगीतज्ञों ने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए, ऐसी-ऐसी नैतिक भावनाओं से ओत-प्रोत रचनाएं की, जिनका प्रभाव राष्ट्रीयता पर पड़ा और एकाग्रता की भावना को बल मिला। मध्यकालीन कवियों में तुलसीदास, कबीरदास, मीराबाई, रहीम इत्यादि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिन्होंने अपनी रचनाओं में देशप्रेम, बंधुत्व, सहयोग एवं राष्ट्रीय एकता जैसे भावों को संजोया है।

मध्यकाल में संगीत द्वारा अगर राष्ट्रीय एकता की बात की जाए तो इस काल में राष्ट्रीय एकता को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। मध्यकालीन भारत की सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पद्धति में जो बदलाव देखने को मिलता है उसका संपूर्ण श्रेय संतों एवं सूफियों के भक्ति प्रयासों का परिणाम था। जिस प्रकार इन भक्त कवियों ने भक्ति-भावना को प्रोत्साहन दिया साथ-साथ जनसाधारण में एक नवीन चेतना तथा एक मधुर संगीत का संचालन हुआ। भक्त कवियों द्वारा रचित भक्ति काव्य एवं संगीत के माध्यम से लोगों में प्रेम व भक्ति के प्रति विश्वास पैदा हुआ। मध्यकाल में जो लोक भाषाएं प्रचलित थी, उनको माध्यम बनाकर साहित्य की रचना होने लगी। विभिन्न जातियों में आपसी सहयोग के कारण सहिष्णुता का विकास होने लगा, भेदभाव समाप्त होने लगा और समाज में प्रेम सौहार्द तथा राष्ट्रीय एकता जैसे गुण विकसित होने लगे।

14वीं तथा 15वीं शताब्दी के आस-पास संपूर्ण भारत देश में भक्ति व आस्था का एक आंदोलन शुरु हो गया, जो कि सिंधु, गुजरात, महाराष्ट्र से लेकर बंगाल, असम एवं उड़ीसा तक फैल गया और यहीं से भक्ति आंदोलन की शुरुआत होती है। इस आंदोलन के दौरान अनेक भक्त कवियों ने नई-नई रचनाएं की। इनमें प्रमुख रूप से कबीरदास,रामानंद, नामदेव, गुरुनानक देव, दादूराम व संत गुरु रविदास जी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। इन्होंने सामजंस्य तथा सद्भावना को प्रोत्साहन दिया। इस आंदोलन में एक पक्ष रखने वाले कवियों में प्रमुख रूप से मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास और स्वामी हरिदास तानसेन, नायक बैजू, कबीर, गुरु नानक इत्यादि महान संत कवियों ने ऊँच-नीच, जात-पात जैसे भेदभाव को समाप्त करके समाज में एकता को स्थापित किया। अपने सांगीतिक काव्यों को जन-जन तक पहुँचाने का महान कार्य किया। अपने देवी-देवताओं को स्मरण करने का यह एक प्रमुख माध्यम बन गया देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए संगीत उत्तम एवं प्रमुख माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाने लगा इससे आपसी सहयोग एवं विश्व बंधुत्व की भावना विकसित होने लगी। अपने इष्ट देव को याद करने के लिए कीर्तन परंपरा को अपनाया जाने लगा जिसमें विभिन्न जाति धर्मों के लोग एक साथ बैठकर भजन करते हैं, जिससे आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है, भक्ति संगीत में वास्तव में राष्ट्रीय एकता के भाव परिलक्षित होते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद में भी इसके बारे में वर्णन किया गया है और बताया है कि उत्पन्न वाक वानी का रस ही सही मायनों में परब्रह्मा है। संगीत रूपी नाद को ब्रह्मा के समान बताया गया है तथा ब्रह्मा की आराधना के लिए संगीत को सर्वोश्रम बताया गया है। याज्ञवलक्य कहते हैं-

वीणा वादन तत्वज्ञ: श्रुति जाति विशारद:।
तालडाश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्ग निगच्छति।।[3]

अभिप्राय यह हुआ कि वीणा वादन में दक्ष, श्रुति तथा जाति में कुशल और ताल तत्वों को पूर्ण रूप से जानता हो, वह ही मोक्ष के मार्ग पर जाता है।

मध्यकाल में राष्ट्रीय एकता का हमारे सामने सबसे बड़ी मिसाल महान सम्राट अकबर है जो आत्मिक सुख तथा आनंद प्राप्ति के लिए सभी ललित कलाओं में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान देते थे। इनके शासनकाल के दौरान अनेक सूफी संत एवं संगीतज्ञ हुए, जिनका हिंदू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने का अहम योगदान रहा।

इसी प्रकार से आधुनिक समय की बात की जाए तो संगीत शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है। अनेक शिक्षण संस्थानों में संगीत की शिक्षा प्रदान की जा रही है। इसके माध्यम से भी राष्ट्रीय एकता के भाव परिलक्षित होते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि संगीत सीखने के जितने भी इच्छुक होते हैं वो किसी न किसी संस्था में प्रवेश लेकर या संस्था के किसी उच्च कोटि के गुरु के पास जाकर संगीत शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसमें गुरु कभी नहीं देखता कि उसके शिष्य किस धर्म, जाति और वर्ग विशेष से संबंध रखते हैं, वह सभी को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से अपनी कला अर्थात् संगीत शिक्षा अपने शिष्यों में बाँटते हैं, जिससे राष्ट्रीय एकता का विकास होता है। वास्तव में यह एक

बहुत अच्छा कार्य है, जिससे हमारे देश की एकता व अखंडता को बल मिलता है और संगीत के संपूर्ण इतिहास में अगर नजर डाली जाए तो ऐसे हमें अनेक उदाहरण भी प्राप्त होते हैं, जिनमें से एक नाम उस्ताद अलाउद्दीन खां का है जिनके अनेक शिष्य हिंदू धर्म से संबंधित थे। इन सब तथ्यों से में पता चलता है कि संगीत जातिगत भेदभाव, धर्म, ऊँच-नीच आदि बंधनों से परे है। अत: वास्तव में राष्ट्रीय एकता का प्रतीक संगीत को मानना गलत ना होगा क्योंकि -

"*मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना*"

मोहम्मद इकबाल की यह पंक्तियाँ पूर्णता है सत्य है।

विनय चंद्र मोदगल्य के द्वारा लिखा-

"*हिंद देश के निवासी सभी जन एक हैं,*
रंग-रुप वेश-भाषा चाहे अनेक है।"

इस गीत के माध्यम से बताया है कि हमारे देश में अनेकता में भी एकता है। यहाँ भले ही अलग-अलग रंग रूप, भाषा के लोग निवास करते हो रहा परन्तु वो सभी अनेकों विभिन्नताएँ होते हुए भी एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं। इन सबको अपने देश के प्रति अगाध प्रेम है, जो इनमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

साथ ही वर्तमान समय में संगीत से संबंधित अनेकों सम्मेलनों का आयोजन होता रहता है। ये संगीत सम्मेलन केवल अपने देश में ही नहीं अपितु दूसरे देशों में भी आयोजित होते रहते हैं। इन सम्मेलनों में अनेक कलाकार एक साथ बैठते हैं। वे सब अपनी-अपनी कलाओं (गायन, वादन और नृत्य) का प्रदर्शन करके दर्शकों को सामने प्रस्तुत करते हैं। इन सम्मेलनों के द्वारा एकत्व की भावना का विकास होता है। इस दौरान सारे दर्शक, श्रोतागण एकताके सूत्र में बंध जाते हैं।

भावपूर्ण संगीत के माध्यम से भी राष्ट्रीयता का प्रचार एवं प्रसार होता है। जैसे "मेरे देश की धरती सोना उगले-उगले हीरे मोती।" इस प्रकार के गीतों को गाने और सुनने से हमारे अंदर स्वदेश प्रेम तथा देशभक्ति की भावना का पूर्णत: विकास होता है, जिससे राष्ट्रीय एकता के भाव उजागर होते रहते हैं। अत: यह कहना गलत न होगा की संगीत वास्तव में राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

वर्तमान समय में नई-नई तकनीकों द्वारा भी राष्ट्रीय एकता को खूब बढ़ावा मिलता है। मोबाइल, लैपटॉप, कंप्यूटर इत्यादि में इंटरनेट के जरिए हम घर बैठे ही देश-विदेश का संगीत, सुन व सीख सकते हैं। इससे भी हमारी राष्ट्रीय एकता का विकास होता है। पहले वाली तकनीकी की अगर बात की जाए तो उनसे भी राष्ट्रीय एकता को अत्यधिक प्रोत्साहन मिलता है जैसे रेडियो, टेलीविजन (दूरदर्शन) इत्यादि के द्वारा देशभक्ति एवं राष्ट्रीय एकता के गीतों का खूब प्रचार एवं प्रसार हुआ। जिनमें हिंद देश के निवासी, मिले सुर मेरा तुम्हारा गीत शामिल है, जो राष्ट्रीय एकता की भावना से ओतप्रोत हैं।

देश के प्रसिद्ध कवियों की अगर बात की जाए जिनमें माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, साहिर लुधियानवी आदि के गीत भी लोगों की जुबान पर थे। इन प्रसिद्ध पंक्तियों को जनसाधारण गुनगुनाता ही रहता था-

"*वंदना के इन स्वरों में, एक मेरा स्वर मिला लो।*
शीश कटते जहाँ अनगिनत, एक सिर मेरा मिला लो।
जुड़ेंगे हर बरस मेले, शहीदों की चिताओं पर
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशा होगा।"[4]

अत: इन देशभक्ति से परिपूर्ण पंक्तियों के माध्यम से भी राष्ट्रीय एकता का खूब प्रचार एवं प्रसार हुआ।

निष्कर्ष-

अंतत: यह कहा जा सकता है कि सही अर्थो में संगीत राष्ट्रीय एकता का प्रतीक माना जाता है।

प्रारंभ से लेकर अब तक ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने आते रहे हैं, जो संगीत के द्वारा राष्ट्रीय एकता की भावना को परिलक्षित करते हैं। इस बात से केवल एक देश ही नहीं अपितु यह संपूर्ण विश्व भलीभांति परिचित है कि राष्ट्रीय एकता का सर्वश्रेष्ठ माध्यम संगीत ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पंडित सारंगदेव, संगीत रत्नाकर, प्रकाशक द अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, प्रथम भाग 1943, द्विश्रीय भाग सन 1944, तृतीय भाग 1964
2. पंडित दामोदर, संगीत दर्पण, अनुवादक विशंभर नाथ भट्ट, संगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1950
3. यति धर्म प्रकरण, श्लोक-15, मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव।
4. अशोक कुमार, संगीत और संवाद, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4697/5-21 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, 2007

पर्यावरण संरक्षण के ज्योतिषीय व राजनीतिक उपाय

डॉ. अर्चना चौहान
संविदा अध्यापिका, राजनीतिशास्त्र
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर, भोपाल

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ईश्वरीय कृतियाँ विद्यमान हैं। ये सभी एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि के इन अवयवों या तत्त्वों की अन्योन्याश्रिता से प्रकृति जगत् चलता है। जब इनमें असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तो मानव जीवन की समरसता भी संकटग्रस्त हो जाती है। प्रकृति में जीव जगत् ही नहीं अपितु वनस्पति जगत् अन्य स्थूल-सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतम तत्त्व सम्मिलित हैं।

पर्यावरण शब्द परि + आवरण के संयोग से बना है। परि का आशय चारों और तथा 'आवरण' का आशय परिवेश है। दूसरे शब्दों में कहें तो पर्यावरण अर्थात् वनस्पतियों, प्राणियों और मानव जाति सहित सभी जीवों और उनके साथ संबंधित भौतिक परिसर को पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण जिसमें चारों तरफ से संपूर्ण ब्रह्माण्ड और जीव जगत घिरा हुआ है अर्थात् जो हमारे चारों ओर है वही पर्यावरण है। एक शांतिपूर्ण और स्वस्थ जीवन जीने के लिए एक स्वच्छ वातावरण बहुत ही जरुरी है। स्वच्छ पर्यावरण में ही स्वस्थ व्यक्ति का विकास संभव है।

मनुष्य का जीवन प्रकृति पर निर्भर करता है अत: उसके अस्तित्व के लिए प्राकृतिक परिवेश अनिवार्य है।

विश्व की प्राचीनतम संस्कृति भारतीय सनातन हिन्दू संस्कृति में पर्यावरण को देवतुल्य स्थान दिया गया है, यही कारण है कि पर्यावरण के सभी अंगों को जैसे- जल, वायु, भूमि को देवताओं से जोड़ा गया है देवता माना गया है। भारतीय संस्कृति 'प्रकृति' को 'पृथ्वी' माँ कहा गया है। '*माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या*' अर्थात् पृथ्वी हमारी माँ और हम पृथ्वी के पुत्र है। चूँकि पृथ्वी माता संपूर्ण ब्रह्माण्ड के जीवों का पालन पोषण करती है। अत: इसका संरक्षण करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। भारतीय समाज आदिकाल से पर्यावरण संरक्षक की भूमिका निभाता रहा है। हमने प्रकृति प्रेम को सर्वोपरि रखा इसका कारण यह है कि हमारे वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों, ज्योतिष शास्त्र आदि में पेड़-पौधों एवं अन्य जीव-जन्तुओं के सामाजिक महत्त्व को बताते हुए उनको परिस्थिति से जोड़ा जाता है।

वर्तमान समय में मनुष्य प्रगति की ओर उन्मुख है। वह प्रतिदिन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षेत्र में उन्नति कर विकास की ओर बढ़ता जा रहा है वहीं दूसरी ओर विकास की गति हमारे लिए कष्टकारी सिद्ध होती जा रही है और इसी विकास के कारण हमारा पर्यावरण प्रदूषण प्रभावित और दूषित होता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का सामना संपूर्ण विश्व कर रहा है। पर्यावरण संरक्षण के उपाय हमारे वेदों में वर्णित हैं। मनुष्य पाँच तत्त्वों जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी और वायु से मिलकर बना है। वैदिक काल से इन तत्त्वों के देवता मानकर इनकी रक्षा करने का निर्देश मिलता है। वेदों में कहा गया है- *रक्षायै प्रकृति पातुं लोका*' अर्थात् प्राणी मात्र के लिए प्रकृति की रक्षा कीजिए। वेदों के छठे अंग ज्योतिष के मूल आधार नक्षत्र, राशि और ग्रहों को भी पर्यावरण के इन अंगों जल-भूमि वायु आदि से जोड़ा गया है और अपने आधिदैविक और आधिभौतिक कष्टों के निवारण के लिए इनकी पूजा पद्धति को बताया गया है।

ज्योतिषशास्त्र प्राचीन काल से ही मानव के सर्वविध कल्याण में सदैव तत्पर रहा है एक ज्योतिषी को नक्षत्र, वृक्षों व धार्मिक वृक्षों का ज्ञान रहता है। चौथी शताब्दी में हुए ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य वराहमिहिर का वृक्ष ज्ञान सबसे अधिक विस्तृत एवं विलक्षण है। हिन्दू संस्कृति में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के तौर पर मान्यता है। वृक्षों की तुलना संतान से भी की गई है तो नदी को मां स्वरूप माना गया है। प्राचीन काल से ही भारत में प्रकृति के साथ संतुलन करके चलने का महत्त्वपूर्ण संस्कार है। हिन्दू धर्म का प्रकृति के साथ कितना गहरा संबंध है, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि दुनिया के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र ही अग्नि की स्तुति में रचा गया। वैदिक वाङ्मय में प्रकृति के प्रत्येक अवयव के संरक्षण और संवर्धन के निर्देश मिलते हैं।

ज्योतिष शास्त्र में वृक्ष पेड़-पौधों आदि का बहुत महत्त्व है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार प्रत्येक पेड़-पौधों और वस्तु किसी

किसी ग्रह, नक्षत्र और राशियों से जुड़ी हुई है। यदि हम उक्त ग्रहों के अनुसार नगर, ग्राम और ग्रह के आसपास वैसे ही वृक्ष लगाएँ तो इससे एक ओर जहाँ पर्यावरण में सुधार होगा वहीं ग्रह नक्षत्रों का बुरा प्रभाव नहीं रहता है। ज्योतिष मानता है कि शमी को चल चढ़ाने से शनि की बाधा, पीपल को जल चढ़ाने से वृहस्पति की बाधा, नीम को चल चढ़ाने से मंगल की बाधा, मंदार तेजफल या सूर्यमुखी को जल चढ़ाने या सूर्य को अर्घ्य देने से सूर्य की बाधा, पलाश या दूध वाले पेड़-पौधों को सिंचित करने से चन्द्र की बाधा, केला को जल देने से बुध की बाधा, मनी प्लांट, कपास, गुलर लताएँ या फलदार वृक्ष की सेवा करने से शुक्र की बाधा दूर होती है। ज्योतिष मानता है कि इस धरती पर जो भी चीजें निर्मित हो रही हैं वह किसी न किसी ग्रह या नक्षत्र के प्रभाव से ही निर्मित हो रही है। हमारी धरती को सबसे ज्यादा चन्द्र और सूर्य प्रभावित करते हैं। इसके बाद वृहस्पति, मंगल और शुक्र। इसके बाद शनि आदि ग्रहों से ही धरती का पर्यावरण संचालित होता है। शास्त्रों के अनुसार जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम, दस इमली, तीन कैथ, तीन बैल, तीन आँवला और पाँच आम के वृक्ष लगाता है वह पुण्यात्मा होता है और कभी नरक के दर्शन नहीं करता, इसी तरह से वृक्ष सहित प्रकृति के सभी तत्त्वों के महत्त्व की विवेचना की गई है।

भारतीय पौराणिक ग्रन्थों, ज्योतिष ग्रन्थों व आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अनुसार ग्रहों व नक्षत्रों से सम्बन्धित पौधों का रोपण व पूजन करने से मानव कल्याण होता है। आम लोगों को इन वृक्षों के वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, ज्योतिषीय व आयुर्वेदिक महत्त्व के बारे में पता होना चाहिए, जिससे प्रकृति पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिले। नक्षत्र वाटिका में लगाए गए अन्य पेड़ मौलश्री, कटहल, आम, नीम, खैर, बैल, गूलर आदि पौधे विभिन्न प्रकार की सकारात्मक ऊर्जा के साथ ही साथ रक्त विकार, पीलिया, त्वचा रोग आदि में लाभकारी औषधि के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। आध्यात्म और ज्योतिष से जुड़े विद्वान् पर्यावरण के क्षेत्र में ज्योतिष तन्त्र धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से कार्य करता है कि वह अपने पास आए हुए जातक की कुण्डली का अध्ययन करके, जो ग्रह या नक्षत्र निर्बल स्थिति में हैं उनसे संबंधित वृक्षों की सेवा करने, उनकी जड़ों को धारण करने की सलाह देता है, क्योंकि इनमें से कुछ वृक्ष ऐसे भी हैं जिन्हें घर में लगाना संभव नहीं होता तो उसे मंदिर में उनका रोपण करें या जहाँ भी वृक्षों की सेवा कर सके। पर्यावरण को हरा-भरा और प्रदूषण मुक्त बनाए रखने में वृक्षों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। एक वृक्ष सौ पुत्रों से भी बढ़कर है क्योंकि वह जीवन भर अपने पालक को समान एवं निःस्वार्थ भाव से लाभ पहुँचाता रहता है।

ज्योतिषशास्त्र में अशुभ ग्रहों की शांति, नवग्रहों को प्रसन्न करने, यहाँ तक कि शोक दूर करने और प्रसन्नता पाने के लिए भी अलग-अलग तरह के पेड़ लगाने पर बल दिया है। ज्योतिष शास्त्र में वृक्षों को देवताओं और ग्रहों के निमित्त लगाकर उनसे शुभ लाभ प्राप्त किए जाने का उल्लेख मिलता है। पीपल के वृक्ष में सभी देवताओं का तो आँवला और तुलसी में विष्णु का, बेल और बरगद में भगवान शिव का जबकि कमल में महालक्ष्मी का वास माना गया है।

वैज्ञानिक रूप से भी देखें तो पौधे हमारे लिए हर तरह से अत्यन्त उपयोगी है। ज्योतिषीय रूप में देखें तो ग्रह दशा हमारे कर्मों का फल दिलाने वाली होती है। उसे अनुकूल करने के लिए भी अन्य कर्मकाण्ड की तुलना में प्रकृति से सीधे जुड़े कर्म अधिक प्रभावी होते हैं। पौधे उसी का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप है। ज्योतिषशास्त्र में इसे महत्त्व भी दिया गया है। राशि और ग्रह के आधार पर लाभ देने वाले पौधों का भी उल्लेख किया गया है। मेष, वृष, तुला और वृश्चिक राशि वाले लगाएँ ये पौधे पर्यावरण संरक्षण के साथ अपने ग्रह दशा को सुधारा जा सकता है। मेष, वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल है। दोनों राशियों के पौधे लगभग समान है। मेष राशि वाले को लाल चंदन, अनार, नीबू, तुलसी, आँवला, आम के पौधे लगाना चाहिए और उनमें जल देना, उनका संरक्षण करना भी लाभदायक होगा। वृश्चिक राशि वाले को मेष राशि वाले पौधों में से आँवला और आम अधिक फलदायी नहीं है। उसके बदले नीम का पौधा अधिक उपयोगी है। वृष राशि वाले को राशि स्वामी शुक्र के प्रसन्न करने के लिए चमेली, गूलर, नींबू, अशोक जामुन और पलाश के पौधे लगाने चाहिए। तुला राशि का स्वामी शुक्र है। उस जातक को अशोक और जामुन को छोड़कर बाकी समान है। उनके लिए अतिरिक्त पौधों में अर्जुन चीकू है।

मिथुन, कर्क, सिंह और कन्या वालों के लिए उपयोगी पौधे मिथुन और कन्या राशि का स्वामी बुध ग्रह है। दोनों के लिए अपमार्ग, आम, कटहल, अंगूर, बेल और गुलाब के पौधे लगाना शुभ होता है। मिथुन वाले के लिए बांस व बरगद और कन्या वाले के लिए अमरूद भी शुभ है। सिंह राशि के स्वामी सूर्य है। उन्हें अनुकूल करने के लिए अपमार्ग, लाल गुलाब, गेंदा, जामुन, बरगद और लाल चंदन के पौधे लगाना कल्याणकारी होता है। कर्कराशि के स्वामी चन्द्रमा हैं। उन्हें प्रसन्न करने के

लिए पलाश सफेद गुलाब, चाँदनी, मोगरा, आँवला, पीपल और गेंदा लगाना और संरक्षण करना शुभ माना जाता है। धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशि के बारे में कहा है कि गुरु, धनु व मीन राशि के स्वामी हैं। उन्हें अनुकूल बनाने के लिए राशि वाले को पीपल, बरगद, पपीता और कदंब के पौधे अवश्य लगाने चाहिए। मीन राशि वालों के लिए नीम एक अतिरिक्त पौधा है। उसके लिए वह कल्याणकारी होता है। मकर और कुम्भ राशि वाले के स्वामी शनि ग्रह है। हर राशि वाले के जीवन पर स्वामी ग्रह का गहरा प्रभाव पड़ता है। अत: उन्हें अनुकूल करने से जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वत: हल होने लगती है। इनके लिए शमी, तुलसी, सतावर और अमरूद शुभ है। मकर के लिए कटहल के वृक्ष को भी शुभ माना जाता है। कुंभ राशि वालों के लिए कटहल के बदले आम का पौधा लगाना शुभ माना जाता है।

उपरोक्त वर्णन का अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल से ही पर्यावरण व ज्योतिष शास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। ज्योतिष शास्त्र में जो उपाय बताए गए हैं उनसे जातक के कष्टों को दूर करना व पर्यावरण संरक्षण भी उद्देश्य रहा है। प्राचीन काल से वर्तमान तक अनेकों उपाय, नियम, कानून बनाए गये हैं। पर्यावरण संरक्षण के राजनीतिक स्तर पर भी कई प्रयास किये गए हैं।

पर्यावरण संरक्षण का समस्त प्राणियों के जीवन तथा इस धरती के समस्त प्राकृतिक परिवेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। सरकार और संपूर्ण मानव जाति का यह दायित्व है कि वह मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए सभी देश मिलकर काम करें, ताकि संपूर्ण मानव जाति और उसकी भावी पीढ़ियों का हित हो सके। भारत प्राचीन समय से ही पर्यावरण संरक्षण को लेकर सदैव सजग रहा है, इसी कारण उसने संवैधानिक स्तर पर भी पर्यावरण संरक्षण की तरफ ध्यान दिया गया है और हमारे संविधान निर्माताओं ने इसका ध्यान रखते हुए संविधान में पर्यावरण की जगह सुनिश्चित की। पर्यावरण संरक्षण को संवैधानिक स्तर पर मान्यता देते हुए इसे सरकार और नागरिकों के संवैधानिक दायत्वि से जोड़ा गया। भारतीय संवधिान में पर्यावरण संरक्षण के लिए कुछ प्रावधान किये गये हैं। संविधान देश का सर्वोच्च तथा मौलिक कानून है तो समस्त व्यक्तियों, राज्यों पर बाध्यकारी रूप से लागू होता है। अनुच्छेद 47 द्वारा स्वास्थ्य की उन्नति हेतु राज्य का कर्त्तव्य अधिरोपित कर पर्यावरण सुधार करना निश्चित किया गया। 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पर्यावरण संरक्षण के भाग 4 में राज्य के नीति निर्देशक एवं मूल कर्त्तव्यों में सम्मिलित किया गया है। इसके अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है कि-

- राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों के अनुच्छेद 48 में कहा गया है कि राज्य पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण की व्यवस्था करेगा तथा वन्य जीवन को सुरक्षा प्रदान करेगा।
- संविधान के भाग 4 (क) के अनुच्छेद 51 में मूल कर्त्तव्यों में प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी, अन्य जीव भी हैं इनकी रक्षा करे और उनका संवर्धन करें तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेदों 252 व 253 को काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि वे पर्यावरण को ध्यान में रखकर कानून बनाने के लिए अधिकृत हैं। भारतीय संविधान में प्रदूषण मुक्त पर्यावरण हेतु अनेक प्रावधान व्यापक रूप से विद्यमान है, किसी भी कानून की वैधता के लिए यह अति आवश्यक हो जाता है कि केवल अधिनियम द्वारा संरक्षण न प्राप्त हो बल्कि संविधान द्वारा प्रदान किये गये अधिकारों के अधीन बनाया गया हो। भारतीय संविधान में न सिर्फ पर्यावरण को बचाने की अवधारणा निहित है, बल्कि पर्यावरण असंतुलन से होने वाले दुष्प्रभावों से भी रक्षा की तरफ ध्यान दिया है।

पर्यावरण संरक्षण के लिए अधिनियम पारित किये गये हैं जैसे-

- जल प्रदूषण संबंधी कानून
- फैक्ट्रीज एक्ट, 1948
- रिवर बोर्ड्स एक्ट, 1956
- वाइल्ड लाईफ प्रोटेक्शन एक्ट, 1972
- जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1974
- वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1981
- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986
- राष्ट्रीय जल नीति, 2020
- राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2002
- वन अधिकार अधिनियम, 2006
- राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम, 2010

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पारित कर सरकार ने सराहनीय प्रयास किये हैं। वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के इन ध्येयों ने वस्पतियों, वन रोपड़, जीव-जन्तुओं और वन्य जीवनों का संरक्षण, प्रदूषण नियन्त्रण एवं निवारण, पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित करना शामिल है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति शुरु की गई इसके साथ-साथ जन-जागरण, सचल, पर्यावरणीय प्रयोगशाला, पर्यावरण संबंधी आंदोलन चलाए गये। प्रदूषण के बचाव से संबंधित अनेक मामले जनहित वादों के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय के सामने लाए गए। इनमें वन नाश, नदियों में प्रदूषण, पर्यावरण

संतुलन का विनाश से संबंधित बहुत से महत्त्वपूर्ण मामले उठाए गये। पर्यावरण संबंधी अनेक मामलों की सुनवाई के लिए समाचार माध्यमों ने जजों की विशेष बेंच को हरित बेंच की उपमा तथा मानवीय न्यायाधीश कुलदीप सिंह को पर्यावरण की संज्ञा दी है।

वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की भी है कि मनुष्यों द्वारा पर्यावरण के साथ समन्वयात्मक, सहयोगात्मक और सामंजस्य पूर्ण संबंध को अपनाया जाए, प्राचीन काल से वेदों, शास्त्रीय ग्रन्थों, ज्योतिषशास्त्र आदि में मानव व प्रकृति का घनिष्ठ संबंध रहा है तथा पर्यावरण को संरक्षित करे का आदेश मिलता है। प्रत्येक काल में पर्यावरण संरक्षण के अनेक समाधान बताए गये हैं। ज्योतिष शास्त्र भी जातक को खुशहाल करने में वृक्ष, जीव-जन्तु को संरक्षित करके अनेकों उपायों को स्पष्ट करता है। उपरोक्त लेख से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन काल से वर्तमान तक किस-किस तरह पर्यावरण को सुरक्षित करने के आदेश मिलते हैं तथा राजनीतिक रूप से समय-समय पर संवैधानिक व सरकारों के द्वारा कानून बनाये जाते रहे हैं। निष्कर्ष के रूप में यह कहना अत्यन्त आवश्यक है कि मनुष्य, प्रकृति, ज्योतिषशास्त्र व राजनीतिक प्रयासों का घनिष्ठ संबंध प्राचीन काल से सदैव विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. डॉ. भार्गव रणजीत, भारतीय पर्यावरण इतिहास के झरोखे से।
2. डॉ. रामकलि, डॉ. रेखा, 'पर्यावरण शिक्षा' आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।
3. अस्थाना, डी. के. एवं राव बी.पी. पर्यावरण एवं परिस्थितिकी, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. झा, अच्युतान्द, बृहत्संहिता, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

ISSN 2278 - 0327

पाठ्यचर्या का भारतीय स्वरूप और शिक्षा पद्धति

डॉ.अनूप कुमार पाण्डेय
प्राध्यापक, शिक्षासंकाय
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

भारत की गौरवशाली चिन्तन परम्परा न केवल मानव मात्र के कल्याण के लिए ही अग्रसर रही है, अपितु जब उसे ज्ञान होता है कि यह समस्त चराचर जगत उसी परमपिता परमेश्वर की कृति है तब वह समझ पाता है कि- उसकी सीमाओं में केवल मनुष्य नहीं है। केवल प्राणी नहीं है। अपितु प्रकृति और पुरुष के अनोखे संयोग से प्रादुर्भूत समस्त जगत ही अपना परिवार है। तब वह यकायक कह उठता है-

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवा: शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥[1]

भारतीय चिन्तन परम्परा के आधार पर हमारे ऋषियों ने यह प्रतिपादित किया कि यह सम्पूर्ण धरती ही नहीं, आकाश और पाताल भी हमारे स्वदेश का ही स्वरूप हैं। जो सकारात्मक सोच में लगे हैं, जो मंगल कामना करते हैं, वे सभी लोग आपस में बन्धु और बान्धव हैं। हमारी प्रार्थना है कि सम्पूर्ण विश्व की रक्षा हो। हमने कभी यह नहीं कहा कि जो हम कर रहे हैं वही अन्तिम सत्य है, जो हम कह रहे हैं वह भी सत्य हो सकता है, जो दूसरा कह रहा है वह भी सत्य हो सकता है और यह भी हो सकता है कि जो तीसरा व्यक्ति कर रहा है, वह हम दोनों अपेक्षा और भी उत्कृष्ट हो। इसीलिये हमारे ऋषियों ने कहा-

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।[2]

समाज में अनेक प्रकार के चिन्तन, साथ-साथ चलने के कारण, मतभेद स्वभाविक हैं, परन्तु मतभेदों के होने के बावजूद भी यहाँ परस्पर विचार-विमर्श को सदैव महत्त्व प्रदान किया गया है। यह संवाद की भूमि है, शास्त्रार्थ की भूमि है, जहाँ हारने वाला, जीतने वाले को अपना शत्रु नहीं मानता था। वह कहता था कि मुझे सत्य का ज्ञान नहीं था, आज आपने मुझे सत्य का ज्ञान कराया और इसलिये मैं, आज से आपका अनुयायी हुआ। जिस संस्कृति में ऐसे उदार विचारधारा पुष्पित और पल्लवित होते हैं नि:सन्देह उसकी पाठ्यचर्यामानव जाति के कल्याण के सभी मार्ग प्रशस्त करती रही होगी।

सामान्य भाषा में देखें तो पाठ्यचर्या दो शब्दों से मिलकर बना है- पाठ्य और चर्या। पाठ्य का अर्थ है-'पढ़ने योग्य' अथवा 'पढ़ाने योग्य' और चर्या का अर्थ है- नियमपूर्वक अनुसरण। इस प्रकार पाठ्यचर्या का अर्थ हुआ- पढ़ने योग्य (सीखने योग्य) अथवा पढ़ाने योग्य (सिखाने योग्य) विषयवस्तु और क्रियाओं का नियमपूर्वक अनुसरण।

पाठ्यचर्या को अंग्रेजी मे 'करीक्यूलम' (Curriculum) कहा जाता है। करीक्यूलम शब्द लैटिन भाषा से अंग्रेजी में लिया गया है यह लैटिन शब्द 'कुर्रेर' से बना है। 'कुर्रेर' का अर्थ है 'दौड़ का मैदान'। यहाँ पर दो शब्द प्रयुक्त किए गए हैं- दौड़ को छात्रों की क्रियाएँ व संक्रियाएँ तथा मैदान को पाठ्यक्रम या शिक्षण सामग्री के रूप में दर्शाया गया है। पाठ्यक्रम का वर्णन ऐसे कार्यों एवं अनुभवों के रूप में किया है जिनके माध्यम से बच्चे अपेक्षित वयस्क के रूप में विकसित होते हैं ताकि वयस्क समाज में सफलता प्राप्त की जा सके। इसके अलावा, पाठ्यक्रम में केवल विद्यालय में होने वाले अनुभव ही नहीं बल्कि विद्यालय एवं उसके बाहर होने वाले गठन कार्य एवं अनुभव अपनी सम्पूर्णता में समाहित होते हैं; वे अनुभव जो अनियोजित और अनिर्दिष्ट रहे हैं और वे अनुभव भी जिन्हें समाज के वयस्क सदस्यों के उद्देश्यपूर्ण गठन की दिशा में जानबूझकर कर प्रदान किया गया है।

प्राचीन भारतीयों ने शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया। भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों के विधिवत् निर्वाह के लिए शिक्षा की महती आवश्यकता को सदा स्वीकार किया गया। वैदिक युग से ही इसे प्रकाश का स्रोत माना गया जो मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुए उसे सही दिशा-निर्देश देता है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का मानना है कि- भारतीय शैक्षिक व्यवस्था को कालक्रम की दृष्टि से हम चार भागों में बाँट सकते हैं-

1. उद्भवकाल (मन्त्रकाल)- 5000 ई. पूर्व से 1000 ई. पूर्व तक।
2. उन्मेषकाल(सूत्रकाल)-1000 ई. पूर्व से प्रथम शताब्दी ई.पूर्व तक।
3. विकासकाल- प्रथम शताब्दी ई. पूर्व से 10वीं शताब्दी तक।

4. विस्तारकाल- 10वीं शताब्दी से आज तक।

1. उद्भवकाल को भारतीय शिक्षा परम्परा का उपजीव्य काल कह सकते हैं। इसे मन्त्रकाल इस आधार पर कहते हैं कि- इसी काल में ऋषियों ने वेद मन्त्रों का साक्षात्कार किया। 2. उन्मेषकाल में ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं को एक तरह सूत्र रूप में जनसामान्य के समक्ष उपस्थापित किया। महर्षि यास्क का निरुक्त, व्याडी का व्याकरण आदि इस कालक्रम के प्रतिनिधित्वकर्ता माने जा सकते हैं। 3. विकास काल वह समय है, जब सूत्रों की व्याख्या, भाष्य आदि लिखे गए, और उसके बाद समय आता है- 4.विस्तारकाल का। विस्तारकाल वस्तुत: प्रयोगवादी व्यवस्था है। यह व्यवहृत अनुसन्धान का परिणाम है। आज के दौर में परम्परागत शैक्षिक विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए जो भी उपक्रम किये जा रहे हैं, जो भी रचनाएँ की जा रही हैं, वह सब कुछ विस्तार काल का उदाहरण है।

प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा पद्धति में /गुरुकुलों में / आश्रमों में तीन प्रकार की विद्याएँ पढ़ाई जाती थी। विद्या का सबसे प्राचीन प्रस्थान त्रयीविध्य प्रस्थान है। अर्थात् प्राचीन काल में भारत में तीन प्रकार की विद्याएँ प्रचलित थीं-

1. आन्विक्षिकी, 2.त्रयी, 3.वार्ता।

1. 'आन्विक्षिकी' वस्तुत: तर्कशास्त्र, विचार की विद्या अथवा विचारशास्त्र का नाम है। आन्विक्षिकी का अर्थ है- तर्क करना, विचार करना, अन्वीक्षण करना, ढूँढ़ना इत्यादि। इस अर्थ में कह सकते हैं कि- आज के समय में 'करके सीखना' (Learning by doing) यह जो शिक्षण पद्धति है। यही शिक्षण पद्धति शास्त्रीय भाषा में आन्विक्षिकी के अन्तर्गत प्रयोग में लाई जाती थी। या यूँ कह सकते हैं कि- 'आन्विक्षिकी' की विचार परम्परा को जब जनबोध्य भाषा में परिवर्तित किया गया, प्रचलित किया गया, प्रचारित किया गया/ प्रसारित किया गया तब उसे 'करके सीखना' (Learning by doing)कहा गया। प्राच्य परम्परा में गुरुकुल में छात्रों को 'कार्य-कारण प्रभाव' के बारे में विचार करने के लिए, सोचने के लिए, समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रेरित किया जाता था। जो कितर्क आधारित हुआ करते थे। इस आधार पर तर्कशास्त्र, विचारशास्त्र, गणित, सांख्यिकी, विज्ञान आदि आन्विक्षिकी के विस्तृत स्वरूप हैं।

इस प्रकार से ज्ञात होता है कि- प्राचीन काल में आन्वीक्षिकी, विचारशास्त्र या दर्शन की सामान्य संज्ञा थी और यह त्रयी (वेदत्रयी), वार्ता (अर्थशास्त्र), दण्डनीति (राजनीति/प्रबन्धशास्त्र) के साथ चतुर्थ विद्या के रूप में प्रतिष्ठित थी-

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या:।[3]

जिसका उपयोग लोक के व्यवहार निर्वाह के लिए आवश्यक माना जाता था। कालान्तर में इस शब्द का प्रयोग केवल न्यायशास्त्र के लिए संकुचित कर दिया गया। वात्स्यायन के न्यायभाष्य के अनुसार अन्वीक्षा द्वारा प्रवृत्त होने के कारण ही इस विद्या की संज्ञा 'आन्वीक्षिकी' पड़ गई। आन्वीक्षिकी के सर्वाधिक महत्व को सर्वप्रथम चाणक्य ने प्रतिपादित किया है। उनका कहना है-

प्रदीप: सर्वविद्यानां उपाय: सर्वकर्मणाम्।
आश्रय: सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥[4]

अर्थात् आन्वीक्षिकी सभी विद्याओं की शाश्वत प्रदीप है, सभी कार्यों का शाश्वत साधन है, और सभी धर्मों का शाश्वत आश्रय है।

2. 'त्रयी' के अन्तर्गत 1.ऋग्वेद, 2. युजुर्वेद और 3. सामवेद समाहित होते हैं। अथर्ववेद इस त्रयी में समाहित नहीं है। यह बाद में जोड़ा गया और चार वेदों की संकल्पना सिद्ध हुई। आचार्य कौटिल्य लिखते है-

'सामर्ग्युर्वेदास्त्रयस्त्रयी'[5]

वस्तुत: साहित्यिक संसार में शब्द प्रयोग की तीन शैलियाँ होती हैं- गद्य, पद्य, और गान। वेदों के मन्त्र भी इन तीन विभागों के अन्तर्गत विभक्त हुए हैं। इनमें वेद के 'पद्य' विभाग में ऋग्वेद और अथर्ववेद को रखा गया है, वहीं 'गद्य' विभाग में यजुर्वेद, तो गायन विभाग में सामवेद को रखा गया है। इन तीन प्रकार की शब्द प्रकाशन शैलियों के आधार पर ही शास्त्र एवं लोक में वेदों के लिए त्रयी शब्द का प्रयोग किया गया है। अवधेय है कि- त्रयी के अन्तर्गत अथर्ववेद को सम्मिलित नही किया जाता है, क्योंकि इसमें यज्ञ से भिन्न लौकिक विषयों का वर्णन है।

3. 'वार्ता' के अन्तर्गत सामान्य रूप से कृषि और पशुपालन समाहित था। कौटिल्य ने वार्ता के तीन अंग कहे हैं - कृषि, वाणिज्य तथा पशु-पालन, जिनसे प्राय: वृत्ति या जीविका का उपार्जन किया जाता था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकारों ने भी इन तीन अंगों वाले वार्ताशास्त्र को स्वीकार किया। सामान्य शब्दों में कह सकते हैं कि- जिसे आजकल अर्थशास्त्र (economics) कहा जाता है, उसके लिए 'वार्ता' शब्द का प्रयोग किया गया है, यद्यपि यह शब्द पूर्णतया अर्थशास्त्र का द्योतक नहीं। आचार्य कौटिल्य लिखते है-

'कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च वार्ता, धान्य पशुहिरण्यकुप्य-विशिष्टप्रदानादौपकारिकी'[6]

इससे स्पष्ट होता है कि-भारतीय परम्परागत शिक्षा परम्परा में ये तीन विद्याएँ ही शिक्षा के आधार रूप में हुआ करती थी। कालान्तर में इन्हीं तीन विद्याओं से अन्य भारतीय विद्याएँ विकसित

हुईं। आन्वीक्षिकी से सभी विचारशास्त्र, दर्शनशास्त्र और दार्शनिक परम्पराएँ विकसित हुई। त्रयी से तीन वेदों से बाद में फिर अथर्ववेद जुड़कर चौथा वेद बना। उसके बाद छः वेदाङ्ग, उपनिषद इत्यादि सभी इसी से विकसित हुए, और वार्ता के अन्तर्गत जीवन की आधारभूत सभी विद्याएँ सन्निहित थी। तत्काल में कृषि और पशुपालन मानवीय जीवन का आधार हुआ करते थे, इसलिए वार्ता के अन्तर्गत मोटे तौर पर इनका उल्लेख किया गया है। इसका यह मतलब नहीं है कि सिर्फ कृषि और पशुपालन ही वार्ता के अन्तर्गत आएंगे, अपितु जीवन की सभी आधारभूत विद्याएँ और कुशलताएँ, जिनकी चर्चा आज कौशल आधारित शिक्षा के रूप में की जा रही है, वे सभी इसके अन्तर्गत समाहित हो जाते है। आप कह सकते हैं कि आन्वीक्षिकी जहाँ विचार परम्परा को अग्रसारित कर रही है, वहीं त्रयी ज्ञान के आधारभूत स्रोतों को स्थापित कर रही है, और वार्ता प्रायोगिक व्यवहार जगत के क्रिया-कलाप से व्यक्ति को समन्वित कर रही है। इस प्रकार से एक जहाँ विचार परम्परा के अन्तर्गत समन्वित है, वहीं दूसरा ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत समाहित है, और वार्ता के अन्तर्गत जीवन कौशल आधारित विद्या समाहित हो रही हैं। इस प्रकार से ये तीन विद्याएँ ही प्राच्य परम्परा का आधार हुआ करती थीं।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती:।

चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व में आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भी इन्हीं तीन विद्याओं को प्रमुख माना। साथ ही आचार्य चाणक्य कहते हैं कि- क्योंकि वार्ता के अन्तर्गत जीवन की विधाएँ समाहित हो जाती हैं, किन्तु जीवन में कर्तव्य आधारित, क्रियाकलाप आधारित कार्य सभी को करने पड़ते हैं, ऐसी स्थिति में किसी सामुदायिक दायित्त्व का निर्वहण करने के लिए अलग से विद्या की व्यवस्था होनी चाहिए। इसलिए उन्होंने सामाजिक प्रबन्ध रूपी एक चौथे स्वरूप का/चौथे स्तम्भ का उल्लेख किया और इन चार विद्याओं को अर्थशास्त्र में स्थान प्रदान किया। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। यह दण्डनीति वस्तुत: लोक प्रशासन/राजनीति शास्त्र या विधि व्यवस्था को संचालित करने की विद्या ही है जो कि जीवन विद्या का आधार है। आचार्य कौटिल्य ने 'दण्डनीति' का स्वरुप स्पष्ट करते हुए लिखा है-

'*आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः, तस्य नीतिर्दण्डनीति: अलब्धलाभार्थालब्धपरिरक्षणी रक्षितविवर्धनी वृद्धस्य तीर्थे प्रतिपादनी च।*' [7]

इस क्रम में यदि प्राच्य विद्या परम्परा के पाठ्यक्रम को देखें तो ज्ञात होता है कि- ऋग्वैदिक अथवा पूर्व-वैदिक काल में शिक्षा का मुख्य पाठ्यक्रम वैदिक साहित्य का अध्ययन ही था। पवित्र वैदिक ऋचाओं के अतिरिक्त इतिहास, पुराण तथा ऐतिह्य गाथायें एवं खगोल-विद्या, ज्यामिति, छन्दशास्त्र आदि भी अध्ययन के विषय थे। वैदिक साहित्य का अध्ययन नौ या दस वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होता था।

उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गए तथा ये शिक्षा के विषय बन गये। उपनिषद् तथा सूत्रों के युग में वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण पर बल दिया गया। इसलिए पदपाठ, कर्मपाठ, जटापाठ, घनपाठ आदि विधियाँ प्रचलित हुईं। वैदिक साहित्य के अध्ययन को सरल बनाने के निमित्त छः वेदाङ्गों की रचना हुई- शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष।

सूत्र युग के अन्त तक आते-आते वैदिक साहित्य के साथ-साथ अन्यान्य विषयों का समावेश पाठयक्रम में कर लिया गया। दर्शन, धर्मशास्त्र, महाकाव्य (रामायण और महाभारत), व्याकरण, खगोलविद्या, मूर्तिकला, वैद्यक, पोतनिर्माण कला के क्षेत्र में प्रगति हुई। इसी के साथ तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न व्यवसायों तथा शिल्पों की भी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। धार्मिक तथा लौकिक विषयों की शिक्षा में समन्वय स्थापित किया गया। इस युग के स्नातक वेदों तथा 18 शिल्पों में निपुण होते थे। य अट्ठारह शिल्प निम्नलिखित थे-

1.गायन, 2. वादन, 3. चित्रकला, 4. गणना, 5. नृत्य, 6.स्थापत्यकला, 7.यन्त्र, 8. मूर्तिकला, 9. कृषि, 10. पशुपालन, 11.वाणिज्य, 12. चिकित्सा, 13. विधि,14. प्रशासनिक प्रशिक्षण, 15. धनुर्विद्या तथा शिक्षा, 16.जादूगर, 17. सर्पविद्या तथा विष दूर करने की विधि,18. छिपे हुए धन के पता लगाने की विधि।

इसी प्रकार से वात्स्यायन के कामसूत्र में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है, जिनका अध्ययन सुसंस्कृत महिला के लिए अनिवार्य बताया गया है। ये पाकविद्या, शारीरिक प्रसाधन, संगीत, नृत्य, चित्रकला, सफाई, सिलाई-कढ़ाई, व्यायाम, मनोरंजन आदि से सम्बन्धित है। कामसूत्र के अतिरिक्त कादम्बरी, शुक्रनीतिसार, ललितविस्तार आदि में भी 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य तथा विदेशी यात्रियों के विवरण से भी यही ज्ञात होता है कि- तत्काल में शिक्षा के पाठ्यक्रम में चार वेद, छः वेदाङ्ग, 14 विधायें, 18 शिल्प, 64 कलायें आदि सम्मिलित थे। 14 विधाओं से तात्पर्य चार वेद, 6 वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा तथा तर्क से है। हुएनसांग तथा अल्बेरूनी के विवरण से पता चलता है कि व्याकरण तथा ज्योतिष की शिक्षा का भारत में बहुत अधिक प्रचलन था। इन विषयों से सम्बन्धित विद्वानों का

समाज में अत्यधिक सम्मान था।

राजदरबार में भी कई ज्योतिषी निवास करते थे। शिक्षा केन्द्रों में धार्मिक विषयों के साथ ही साथ लौकिक विषयों की भी पढ़ाई सुचारु रूप से होती थी। तक्षशिला में वैदिक साहित्य के साथ-साथ अठारह शिल्पों की भी शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार विद्यार्थी साहित्य का अध्ययन करके स्वतन्त्र रूप से जीविका कमाने योग्य बन जाते थे।

वैदिक युग के प्रारम्भ में शिक्षा मौखिक होती थी तथा पवित्र मन्त्रों को कण्ठस्थ करने पर बल दिया जाता था। पुरोहित वर्ग के लोग विशेष रूप से मन्त्रों को कण्ठस्थ कर लिया करते थे। सामान्य जन केवल कुछ प्रसिद्ध मन्त्रों को ही कण्ठस्थ किया करते था। कालान्तर में मन्त्रों को कण्ठस्थ करने के साथ ही साथ उनकी व्याख्या और गान पर भी बल दिया जाने लगा।

निरुक्त में ऐसे व्यक्ति की निन्दा की गयी है, जो मन्त्रों की व्याख्या जाने बिना ही उन्हें कण्ठस्थ करते हैं। कालान्तर में शास्त्रार्थ के निमित्त गोष्ठियों का आयोजन किया जाने लगा जिसमें विद्यार्थी बहुधा भाग लेते थे। उपनिषद् तथा सूत्रों के समय में वेदों को अपौरुषेय माना गया तथा वैदिक मन्त्रों के शुद्ध-शुद्ध उच्चारण किये जाने पर बल दिया गया।

साहित्य की व्यापकता के कारण कुछ विद्यार्थी केवल वेदमन्त्रों को कण्ठस्थ करते थे तथा कुछ उनकी टीका से सम्बन्धित ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। प्राचीन समय में कागज तथा छपाई के साधनों के अभाव में पुस्तकें अत्यन्त महंगी थीं, जिससे साधारण विद्यार्थी उन्हें प्राप्त नहीं कर सकते थे। पुस्तकालयों का भी अभाव था। ऐसी स्थिति में मौखिक शिक्षा ही सबसे सरल तथा सही माध्यम थी।

इस विधि से ही विद्यार्थी गण वैदिक ऋचाओं के साथ-साथ, उपनिषद् वाक्यों, स्मृतियों, व्याकरण, कोशग्रन्थ सहित लौकिक साहित्यिक ग्रन्थों को भी कण्ठस्थ कर लिया करते थे। विद्वान् वही माना जाता था जिसकी जिह्वा पर समस्त विद्यायें रटी हुई हों। प्राचीन काल के लेखक भी यही अभिलाषा रखते थे कि उनकी रचनाएं विद्वानों का कण्ठाभूषण बनें।

भारतीय शिक्षा पद्धति- प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का एक प्रमुख तत्त्व गुरुकुल व्यवस्था है। इसमें विद्यार्थी अपने घर से दूर गुरु के घर पर निवास कर शिक्षा प्राप्त करता था। कभी-कभी वह शिक्षा केन्द्रों से सम्बद्ध छात्रावासों में निवास करता था। इस प्रकार के विद्यार्थियों को 'अन्तेवासी' अथवा 'आचार्य कुलवासी' कहा गया है। तत्कालीन व्यवस्था में अध्ययन-अध्यापन सर्वोत्कृष्ट कार्य हुआ करता था। मनुस्मृतिकार लिखते हैं-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भूतौ नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।[8]

धर्मग्रन्थों में विहित है कि विद्यार्थी उपनयन संस्कार के साथ ही गुरुकुल में निवास करें तथा विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु के समीप रहते हुए विद्यार्थी उसके परिवार का एक सदस्य हो जाता था तथा गुरु उसके साथ पुत्रवत् व्यवहार करता था। गुरुकुल में बह्मचर्यपूर्वक रहते हुये विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करता था। वहाँ उसे गुरु के पहले उठना तथा उसके सो जाने पर सोना पड़ता था। गुरु की सेवा करना उसका परम कर्तव्य था। उसकी सेवाओं के बदले में गुरु भी उसके ऊपर व्यक्तिगत ध्यान रखते थे तथा पूरी लगन के साथ उसे विविध विद्याओं और कलाओं की शिक्षा प्रदान करता था। पारस्करगृहसूत्र में गुरु-शिष्य के अभूतपूर्व सम्बन्ध को दर्शाया गया है। यथा-

ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि, ममचित्तमनुचित्तं तेऽस्तु ।
मम वचमेकमना जुषुस्व, बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ।।[9]

प्राचीन व्यवस्थाकारों ने गुरु के साथ विद्यार्थी के सान्निध्य के महत्त्व को समझा था और इसी कारण गुरुकुल पद्धति पर बल दिया। गुरु के चरित्र तथा आचरण का शिष्य के मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव पड़ता था तथा वह उसका अनुकरण करता था। शब्दकल्पद्रुम में गुरु के उदात्त स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा गया है-

शान्तोदान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेशवान्,
शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ।
आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्रविशारदः,
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते ।। [10]

गुरु को कार्य पद्धति के आधार पर अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया है। मनुस्मृतिकार कहते हैं-

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
साङ्गं च सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ।।[11]

गुरु शब्द से कौन अभिधेय है, इसको भी मनुस्मृतिकार ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों मे व्याख्यायित किया है-

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथा विधीम्
सम्भावयति चानेन स विप्रो गुरुरुच्यते ।।[12]

इस सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि-

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।
उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः ।।[13]

मनुस्मृतिकार उपाध्याय को परिभाषित करते हुए लिखते हैं-

'एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।

योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।।[14]

ऐसे श्रेष्ठ और संयमी गुरू के सान्निध्य में पारिवारिक वातावरण से दूर रहने के कारण छात्रों में आत्म-निर्भरता की भावना विकसित होती थी तथा वह संसार की गतिविधियों से अधिक अच्छा परिचय प्राप्त कर सकता था। उसमें अनुशासन की प्रवृत्ति का भी उदय होता था। इसी कारण महाभारत में गुरुकुल की शिक्षा को घर की शिक्षा की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय बताया गया है। गुरुकुल सदैव वनों में ही स्थित नहीं होते थे। कुछ प्रसिद्ध मुनियों जैसे वाल्मीकि, कण्व, सांदीपनि आदि के आश्रम वनों में ही थे तथा उन्होंने अप3ने आश्रमों में सैकड़ों विद्यार्थियों को पढ़ने की व्यवस्था कर रखी थी किन्तु अधिकांशतः गुरुकुल ग्रामों तथा नगरों में अवस्थित होते थे।

शिक्षक गृहस्थ थे और स्वाभाविक रूप से वे शिक्षा केन्द्रों को अपने निवास-स्थान के समीप ही रखते थे। यह आवश्यक था कि गुरुकुल ग्राम या नगर में किसी उपवन या एकान्त स्थान पर स्थित हों। शिक्षा केन्द्र अधिकतर नगरों में तथा अग्रहार ग्रामों में थे। तक्षशिला के अध्यापक राजधानी में ही रहा करते थे।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन साहित्य में गुरुकुलों में रहकर अध्ययन-अध्यापन की पद्धति प्रचलित थी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि- इतिहास के विभिन्न युगों में शिक्षा की गुरुकुल पद्धति का प्रचलन था। छान्दोग्योपनिषद् से पता चलता है कि- उद्दालक आरुणि क पुत्र श्वेतकेतु ने गुरुकुल में रहकर अध्ययन किया था। विष्णुपुराण से ज्ञात होता है कि कृष्ण तथा बलराम ने सान्दीपनि के आश्रम में रहकर अध्ययन किया था। रामायण में भारद्वाज तथा वाल्मीकि के गुरुकुलों का उल्लेख मिलता है। महाभारत से ज्ञात होता है कि- कण्व तथा मार्कण्डेय ऋषियों के आश्रमों में प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र थे। मुनि दुर्वासा के आश्रम में दस हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। ऐतिहासिक काल में हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला के आचार्य चाणक्य के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त किया था।

गुप्त युग में ब्राह्मणों को जो भूमिदान दिया जाता था उसे अग्रहार कहा जाता था।ये अग्रहार भी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। हर्षचरित में गुरुकुल का उल्लेख मिलता है। अल्बेरूनी के विवरण से पता लगता है कि पूर्व मध्ययुग में शिक्षा प्रदान करने के निमित्त कई गुरुकुलों की स्थापना की गयी थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन इतिहास के प्रायः प्रत्येक युग में शिक्षा के लिये गुरुकुल पद्धति का प्रचलन था। वस्तुतः गुरुकुल उच्च अध्ययन के निमित्त होते थे। जातक गुणों से पता चलता है कि विद्यार्थी प्रायः चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में गुरुकुलों में अध्ययन के निमित्त जाया करते थे। कभी-कभी माता-पिता अपने बालकों को, यदि गुरुकुल उनके निवास-स्थान में ही स्थित होते थे, तो वहाँ रहने के लिये नहीं भेजते थे तथा अपने साथ ही रखते थे। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जहाँ अभिभावक अपने बालकों को समीप के शिक्षा केन्द्र को छोड़कर दूरस्थ शिक्षा केन्द्र में अध्ययन के निमित्त प्रेषित करते थे, जिससे कि परिवार का आकर्षण उनके अध्ययन में बाधक न बन सके।

सन्दर्भ सूची-

1. आदि शंकराचार्य, अन्नपूर्णास्तोत्रम्।
2. स्रोत-https://sa.wikiquote.org/s/xcb
3. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, प्रथम प्रकरण, अध्याय-2, विद्या समुद्देश-आन्वीक्षिकी स्थापना, सूत्र-1.
4. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, प्रथम प्रकरण- अध्याय-2, विद्या समुद्देश-आन्वीक्षिकी स्थापना, कारिका-12.
5. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, प्रथम प्रकरण, अध्याय-3, विद्या समुद्देश-त्रयी स्थापना, सूत्र-1.
6. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, प्रथम प्रकरण, अध्याय-4, विद्या समुद्देश-वार्तास्थापना दण्डनीतिस्थापना च, सूत्र-1.
7. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, प्रथम प्रकरण, अध्याय-4,विद्या समुद्देश-वार्तास्थापना दण्डनीतिस्थापना च, सूत्र-3
8. मनुस्मृतिः- 3/70
9. पारस्करगृहसूत्र-1/8/8
10. शब्दकल्पद्रुमः, पृ-340
11. मनुस्मृतिः- 2/140
12. मनुस्मृतिः- 2/141
13. याज्ञवल्क्यस्मृतिः, आचाराध्यायः-34
14. मनुस्मृतिः- 2/241

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. आधुनिक भारतीय शिक्षा, पी.डी.पाठक, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
2. भारत में शिक्षा दर्शन, पी.डी.पाठक, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2020
3. शिक्षा की दार्शनिक व सामाजिक पृष्ठभूमि, रामशकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1992.
4. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, एल, के, ओड, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,1990.
5. शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, एन, आर, स्वरूप सक्सेना, आर, लाल, बुक डिपो, मेरठ, 2009.
6. भारतीय शिक्षा एवं सामयिक समस्याएँ, मालती सारस्वत, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद।
7. अर्थशास्त्र,कौटिल्य, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
8. मनुस्मृति, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
9. याज्ञवल्क्य स्मृति, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
10. अर्थशास्त्र,कौटिल्य, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
11. अन्नपूर्णास्तोत्रम्, आदि शंकराचार्य।
12. https://sa.wikiquote.org/s/xcb

ISSN 2278 - 0327

राजस्थानीय संस्कृत कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री विवेचन

श्यामलाल उदेनिया
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
एस.बी.पी. राजकीय महाविद्यालय, डूंगरपुर (राजस्थान)

'स्त्री' के अस्तित्त्व को लेकर भारतीय समाज कभी संवेदनशील नहीं रहा है। जो अधिकार, सम्मान पुरुष को जन्म के साथ अनायास ही मिल जाते हैं, वहीं स्त्री को इन अधिकारों के लिये गर्भ से ही संघर्षरत् होना पड़ता है। पितृसत्तात्मक समाज 'स्त्री-पुरुष को बराबर का दर्जा' देने सम्बन्धी वाक्य कहकर अपने दायित्वों से मुक्त हो जाता है जबकि जमीनी हकीकत कोसों दूर है । समाज की गति को निरन्तरता प्रदान करने वाली सहयोगी एवं अनिवार्य पहिए के रूप में स्त्री के साथ हमेशा भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता रहा है। घर, परिवार, समाज में जो अधिकार मिलने चाहिये उनसे स्त्री को वंचित ही रखा गया। स्त्री कोई भी रूप में हो जैसे बेटी, पत्नी या मां उसका शोषण होता रहा है। राजस्थान के संस्कृत कथाकारों ने बड़ी सजगता के साथ समाज में स्त्री की केवल वस्तुपरक अवस्थिति को उजागर ही नहीं किया है बल्कि आत्मचेतनाशील स्त्री को भी उद्घाटित किया है, जो अवसर मिलने पर समाज में दोहरी भूमिका को ईमानदारी के साथ निभाती है।

पुरुष को जब स्त्री से प्रेम प्राप्त नहीं हो पाता है तो उसका सामजिक बहिष्कार कर बाँझ का तमगा देकर अपनी जिन्दगी से बेदखल कर दिया जाता है। वहीं स्त्री के पक्ष में ये बातें उसकी चरित्र के साथ जोड़ दी जाती है। नारायण शास्त्री कांकर की 'पौरुष-परीक्षा' कहानी स्त्री के अस्तित्व के साथ आम लोगों की मानसिकता का भी पर्दाफाश करती है। अरुण और राधा की शादी के पांच साल बाद भी जब राधा मां नहीं बन पाती है तो घर वाले राधा को ही बाँझ कहकर प्रताड़ित करते हैं। जबकि अरुण यौनिक रूप से कमजोर है। जब राधा उससे डाक्टर से परामर्श लेने को कहती है तो उसके ये वाक्य अरुण के पौरुषत्व को ललकारते हैं। राधा को सबक सिखाने और अपने पौरुषत्व को प्रमाणित करने के लिये दूसरी शादी करने लगता है '*अरुणः तारायाः परमर्शेण स्व-पौरुषे आहतः इव तत् पौरुषं प्रमाणयितुं मातुः च मनः रक्षितुं द्वितीयम् एव विवाहं कर्तुं निर्णीतवान्।*'[1] यहाँ यह विचारणीय है कि पुरुष यदि एक से अधिक विवाह करे तो ठीक है। वहीं यदि 'स्त्री' ऐसा करे तो पितृसत्तात्मक समाज उसे चरित्रहीन मानकर कुलटा, कुलक्षिणी, वेश्या आदि शब्दबाणों से घायल कर देता है। स्त्री-चरित्र का सीधा सम्बन्ध उसकी यौनी से जोड़ दिया जाता है। स्त्री को लेकर नैतिकता व अनैतिकता के प्रश्न पर आलोचक तेजिन्दर लिखते हैं-'नैतिक व अनैतिक दोनों का भ्रम मूलतः स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के इर्द-गिर्द बन गया है। यह भ्रम भी समाज में स्त्री की सम्पूर्ण उपस्थिति को लेकर नहीं है बल्कि उसकी देह के लिये ज्यादा है। दरअसल श्लीलता और अश्लीलता के सारे प्रश्न स्त्री की देह पर ही टिके हैं, यह हास्यास्पद है।'[2]

स्त्री नैतिकता के प्रपंच में दबा समाज स्त्री के साथ नैतिकता के नाम पर होने वाले अत्याचार को अत्याचार न मानकर संस्कृति-संस्कार का लबादा ओढ़ लेने में ही अपनी अच्छाई समझता है। मनुष्य का चेहरा उसकी पहचान होता है परन्तु जब लौकिक रिवाज स्त्री के पैरों की जंजीर बन जाये तो समय के साथ उसमें बदलाव भी जरूरी है। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री की 'दयनीया' कहानी में भूकम्प के समय सभी अपनी रक्षा के लिये दौड़ते हैं। ब्रजनन्दन सहाय की पत्नी को डर रहता है कि भूकम्प के झटकों की अफरा-तफरी में बाहर के लोग उनकी बहू का चेहरा न देख ले। इसीलिए बहू को घर में ही रहने का निर्देश देती है-'*श्वश्रूः पृष्ठतो मामागच्छन्तीं विलोक्य नेत्राभ्यां दहन्तीवावदत्- इतः पलाय्य क्व गमिष्यसि? किं न पश्यसि, इतस्ततः सर्वत्र वहिः पुरुषाः एव सन्ति? किंचिल्लज्जापि पालनीया नाम।*'[3] जिसका परिणाम दुखद होता है।

स्त्री शोषण में घरेलू हिंसा का दायरा बहुत विस्तृत है। घरेलू हिंसा में केवल शारीरिक शोषण ही नहीं अपितु मानसिक शोषण भी सम्मिलित हैं। स्त्री के शरीर की बनावट, रंग व पहनावे को

लेकर कसी जाने वाली फब्तियां, पुत्र जन्म के लिए मजबूर करना, मारपीट करना, दहेज के लिए प्रताड़ित करना, पत्नी की इच्छा के विपरीत जबरन यौन शोषण करना, यह सभी घरेलू हिंसा को व्याख्यायित करते हैं। स्त्री समाज द्वारा बनाई गई परंपराओं में उलझी रहती है। वह चाहकर भी उन परंपराओं को तोड़ नहीं पाती है। जिसके कारण स्त्री घरेलू हिंसा की गिरफ्त में फंसती जाती है। इस संदर्भ में अरविंद जैन लिखते हैं 'परिवार के बाहर हिंसा, लूट, दमन, शोषण और उत्पीड़न से बचने के लिए मध्यमवर्गीय स्त्री परिवार या विवाह संस्था की 'घरेलू गुलामी' स्वीकार करती है। लेकिन परिवार में ही हिंसा (भ्रूणहत्या, दहेजहत्या, आत्महत्या, बलात्कार, यौन शोषण) और उत्पीड़न कम नहीं। इसलिए प्राय: वह घर छोड़ने के लिए विवश होती है या कर दी जाती है। घरेलू गुलामी से मुक्ति की तलाश में निकली औरत के पास जीवन-यापन के लिए क्षय है या शरीर।'[4]

राजस्थान के कथाकारों ने घरेलू हिंसा को झेलती हुई स्त्री की घर के अंदर व घर के बाहर दोनों स्थितियों पर लेखनी चलाई है। नारायण शास्त्री कांकर की 'उत्कोच: पतिव्रता पत्नी च' कहानी में सुशीला पुत्र के स्थान पर पुत्री को जन्म देती है। तब उसका पति पुत्र की लालसा में सुशीला को मानसिक रूप से प्रताड़ित करता हुआ कहता है कि '*यदि त्वं कन्यां न अजनयिष्य:, तर्हि कथम् अद्य मम सत्कुलोत्पन्नस्य इयं दुर्दशा अभविष्यत्? त्वम् एव असि अस्य सर्वस्य अनर्थस्य मूलम्*।'[5] जब सुशीला के पति की नौकरी चली जाती है तब सुशीला पर नियंत्रण कम न हो जाए इसके लिए उसे मारना-पीटना शुरू कर देता है तथा दूधमुंही बच्ची के साथ उसे घर से निकाल देता है- '*एकस्मिन् दिने पति: इयतीं मदिराम् अपिबत् यत् तेन मदेन विस्मृतात्मस्वरूप: स: पत्नीं लत्तया मुष्टया यष्टिकया च ताडं ताडं गृहात् बर्हि एव नि:सारितवान्*।'6

वैज्ञानिक रूप से देखा जाए तो स्त्री और पुरुष दोनों के शुक्राणुओं के मिलन से आने वाले बच्चे का लिंग निर्धारण होता है। लेकिन पुत्री को जन्म देने पर पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को ही दोषी मानते हुए कटघरे में खड़ा करता है। यही पुरुषवादी मनोवृति आज भी प्रासंगिक हैं ।

राजेश्वरी भट्ट की 'परमं दैवतं पति:' कहानी में नायिका शारीरिक व मानसिक रूप से पति द्वारा शोषित होती है। कहानी में पुरुष पात्र अपनी पत्नी को 'व्यक्ति' नहीं अपितु 'वस्तु' मानता है। वह अपनी पत्नी को शारीरिक प्रताड़ना देते हुए अपनी इच्छाओं को उसके ऊपर जबरन थोपना चाहता है। वह कभी तो उसे ऊंची हील वाले सैंडल पहनने को विवश करता है, कभी ग्रामणी वेशभूषा में देखना चाहता है और कभी तो अत्याधुनिक वेशभूषा में लिपटी अपनी पत्नी को आकर्षण का केंद्र बिंदु बनाते हुए लोगों के समक्ष उपस्थित करता है-'*स: पुरुष: तां स्त्रीं सरलपादत्राणे परिहाय अत्याधुनिके नवे नतोन्नते पादत्राणे परिधातुं दृढपरिकर: आसीत्। ...आत्मन: पत्नीं सरला ग्रामवासिनी रूपे द्रष्टुम् ऐच्छत्। कदा तु अत्याधुनिकयुवती रूपेण गोष्ठीषु समारोहेषु जनानां आकर्षण-केन्द्रं निर्यातुमियेष*।'[7] इसी प्रकार गंगाधर भट्ट की कहानी 'परिवर्तनम्' में शेफाली के द्वारा ऐसी स्त्री की व्यथा को व्यक्त किया गया है जो सर्वगुण सम्पन्न है परन्तु फिर भी वह सास के तानों से बच नहीं पाती है। उसे बिना किसी गलती के सास के अपशब्द सुनने पड़ते हैं। यह विडम्बना ही है भारतीय समाज की, कि जब लड़की अपने पिता का घर छोड़कर पति के घर को अपनाने के लिये दिन-रात एक कर देती है। फिर भी उसे अपमानित करके यह समझा दिया जाता है कि वह एक बाहर वाली है- '*श्वश्रू: गालीधारानुसारिणी वाग्धारा सहसा प्रावर्तत। अरे तव पित्रा किं वार्तालापे शिष्टातापि न शिक्षिता। प्रत्युत्तरं यच्छन्ति किं न लज्जसे। त्वन्तु विदुषी धनिकपुत्रीति वृथागर्वमावहसि। अहं सकलं तव गर्वं धूलिसात् करिष्यामि। इमं रिक्तपात्रं किं ते पिता नेष्यति? यथाकथञ्चित् श्वश्रु मौनं धारयेदिति कृत्वा श्वश्रा: हस्ताद्रिक्तपात्रमादाय पाकशालां प्राविशत् सा*।'[8] स्त्री झगड़ा आगे न बड़े इसलिए मौन धारण कर लेती है। यही मौनप्रवृत्ति उसकी पीड़ा में दिनोदिन इजाफा करती है और पितृसत्ता की जड़े और मजबूत होती जाती है।

नंदकिशोर गौतम की कहानी '*यौतुकनर्तनम्*' में रणवीर सिंह अपनी कर्मशीलता को छोड़कर अपने ससुर की संपत्ति पर निर्भर होने लगता है। इस तरह की निर्भरता उसे कर्महीन बना देती है । यह कर्महीनता उसे अपने लक्ष्य से भी भटका देती है । पितृसत्तावादी मानसिकता से ग्रसित रणवीर सिंह पुन:अपने कर्म की ओर गतिशील न होकर अपने ससुर की संपत्ति पर अधिकार समझने लगता है । इस कर्महीनता के कारण अपनी पत्नी मधुमति पर शारीरिक अत्याचार करने लगता है- '*किंतु यदा सा गन्तुमुद्यता न जाता तदा क्रोधान्वितेन तेन सा मुष्टिप्रहारै: पादप्रहारै: रज्जुप्रहारै: च बहु पीडिता। प्रताडनाधिक्यात् सा मोहं गत्वा मरणासन्ना जाता*।'[9] यहां यह विचारणीय है कि जब मनोरमा को रणवीर की मांगने की प्रवृत्ति के बारे में मालूम था तो उसे पहली बार में ही उसकी डिमांड को मना कर देना चाहिए था। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। जिससे उसकी महत्वाकांक्षाएं बढ़ने लगी और वह घरेलू हिंसा में तब्दील हो गई।

'स्त्री' भारतीय समाज की सबसे शोषित प्राणी है। स्त्री होने

के साथ यदि दलित भी है तो वह दोहरे शोषण की शिकार होती है। दलित स्त्री का दलित होने के कारण शोषण तो होता ही है, इसके साथ ही उसे सामाजिक व आर्थिक रूप से भी शोषित होना पड़ता है। दलित स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है। घर में वह पितृसत्ता से प्रताड़ित होती हैं वहीं घर के बाहर सवर्ण मानसिकता वाले शोषण करने से चूकते नहीं है। इस संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं 'दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।'[10]

हाशिए पर खड़ा दलित वर्ग सवर्ण मानसिकता वालों के लिए सबसे आसान शिकार होता है। इसमें भी दलित स्त्री की स्थिति शोचनीय बनी हुई है। उनकी दृष्टि में दलित स्त्री की देह पर उसका कोई अधिकार नहीं होता है। वह तो भोग का सस्ता सुलभ साधन मात्र है। प्रभाकर शास्त्री की 'आत्मवेदना' कहानी में दलित स्त्री की इसी स्थिति का उल्लेख किया गया है। गांव के जमींदार का पुत्र दलित स्त्री राधा के ऊपर घात लगाये रहता है और अकेला पाकर जबरदस्ती करते हुए उसका शीलभंग करने की कोशिश करता है-' *ग्रामाध्यक्षस्य पुत्रेणैकान्तं संदृश्य तामालिङ्गितुं प्रयतितम्।*'[11] भारतीय समाज की पितृसत्तावादी व्यवस्था में जिस लड़की के साथ यौन शोषण या अभद्र व्यवहार किया जाता है उसे ही कटघरे में खड़ा करती है। राधा के साथ बलात्कार की कोशिश करने वाले जमींदार के पुत्र को दोषी न मानकर राधा को ही अपराधी घोषित किया जाता है- ' *सः तु राधामेव गर्हयिष्यति। तदनुसारं तु राधया एव तमाकर्ष्टुं प्रयतितं भवेत्, प्रत्याखाने च कृते सति कथैषा स्वरचिता स्यात्। सत्यं ज्ञात्वापि ग्रामणीः स्वात्मजं नैव गर्हयिष्यति।*'[12] न्याय के आभाव में उसे गाँव छोड़ने के लिये विवश होना पड़ता है। आज भी दलित स्त्री के साथ होने वाली ऐसी घटनाएं रुकने का नाम नहीं ले रही है। कई घटनाएं तो घर में ही दबा दी जाती है या फिर पितृसत्तावादी समाज के डर से बाहर नहीं आ पाती है। डॉ. विवेक कुमार दलितों के साथ हो रहे शोषण के विषय में लिखते हैं कि 'स्वतंत्रता संग्राम का एक प्रमुख लक्ष्य सामाजिक समानता था पर आजादी के बाद देश में दलित उत्पीड़न में लगातार बढ़ोतरी हुई है। 1981 से 1992 तक 12 वर्षों में 6956 दलित महिलाएं बलात्कार की शिकार हुई है अर्थात् 1. 58 बलात्कार प्रतिदिन।'[13]

पुष्करदत्त शर्मा की 'बधिरा' कहानी में 'बधिरा' नामक स्त्री की कर्मठशीलता का उल्लेख किया है, जो नगर के एक कोने में रहने वाले दलित वर्ग से आती है। दलित वर्ग को हाशिए पर धकेल दिया जाता है इसका संकेत करते हुए लेखक लिखते हैं ' *समग्रे तस्मिन् नगरकोणक्षेत्रे जनाः कार्यवशात्तामेवाऽऽकार-यामासुः*'।[14] नारायण शास्त्री कांकर की 'गृह-स्वामिनी' कहानी में रामदास हरिजन की पत्नी कमला जब बच्चा जन्मते ही मर जाती है तब सवर्ण गृहस्वामिनी रामदास से आग्रह करती हुई कहती है कि मेरी मंझली बहू तुम्हारे पुत्र को अपना दूध पिला देगी- ' *अरे पुत्र रामदास! त्वं चिन्ता मा कुरु। अहं तव पुत्रं संरक्षिष्यामि। गच्छ शिशुम् आनय। सद्यः प्रसूता मम मध्यमाः वधूः आत्मनः एकं स्तनं पाययित्वा स्वपुत्रीम् इव तव पुत्रम् अपि पालयिष्यति पोषयिष्यति*'।[15] वर्तमान में घटित घटनाओं को देखें तो कहानी का यह दृश्य अयथार्थवादी प्रतीत होता है ।

राजस्थान के संस्कृत कथाकारों ने अपनी कथाओं के माध्यम से स्त्री जीवन को पूर्ण रूप से चित्रित करने का प्रयास किया है। इन्होंने उद्धार की कामना लिए पुरुष का मुंह देखने वाली स्त्री के स्थान पर सजग और आत्मचेतनाशील स्त्री को अपनी कहानियों में जगह देकर नया दृष्टिकोण विकसित किया है। शिवसागर त्रिपाठी की 'अशिक्षिता' कहानी में जब रामदत्त अपने परिश्रम से कलेक्टर बन जाता है तो अपनी अशिक्षित पत्नी मनोरमा की अवहेलना करने लगता है। परन्तु मनोरमा समय के महत्व को समझ कर स्वयं को शिक्षित ही नहीं करती अपितु उत्कृष्ट लेखन कार्य भी करने लगती है। इन सबसे अनभिज्ञ रामदत्त उसे अपने काबिल नहीं समझता है। उसका भ्रम तब टूटता है जब उसके मित्रगण मनोरमा के लेखन कार्य की प्रशंसा करते हैं । रामदत्त को अपने किए पर पछतावा होता है तब मनोरमा कटाक्ष करती हुई रामदत्त से कहती है कि ' *पुरुषैरात्मनिरीक्षणमपि कर्त्तव्यम्। स्वयमशिक्षिताः निर्धनाः अथवा कथमपि निर्बलाः तर्हि यादृशी समागता स्वीकृता। शिक्षिताः जाताः धनमागतम् उच्चपदमधिगतम् अथवा अन्या कापि सबलता प्राप्ता तदा पूर्वपरिणीता वृथा जाता। नवोढायाश्च स्वप्नैराविष्टा। छिः छिः छिः ...कथं भ्रष्टाविचाराः पुरुषाणाम्।*'[16]

21वीं सदी में 'स्त्री' केवल शिक्षित ही नहीं हो रही अपितु अपनी अस्मिता तथा अधिकारों के प्रति जागरूक होकर सामाजिक समस्याओं के प्रति अपना विरोध भी दर्ज करा रही है। नंदकिशोर गौतम की 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' कहानी में भारती शादी के मंडप पर दहेज की मांग करने वाले को न तो पति के रूप में स्वीकार करती है बल्कि ऐसे ही दहेज लोभियों को सबक सिखाने के लिए जेल भी भिजवाती है' *तया चिन्तितं शिक्षितो भूत्वापि वरश्चेत् अनुचितमनुदानं करोति तर्हि नाहं जीवने सुखिनी भवित्री तेन सह।*

को लाभस्तत्र परिणस्य। तस्मात् नाहं वरमिमं वरिष्यामि।'[17] रामदेव साहू की 'यौतुकाहिदंश:' कहानी में कर्पूरी ने भले ही स्वर्ण पदक के साथ एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की है लेकिन धन के आगे उसकी शिक्षा का कोई मूल्य नहीं है। उसका विवाह पांडेयपुत्र कांतिचंद्र के साथ तय होता है। शादी वाले दिन उसके ससुराल वाले जब दहेज व्यवस्था से नाखुश होते हैं तब कर्पूरी मंडप से उठकर विरोध करती हुई कहती है कि 'भवन्तो धनलोलुपा: इति वयं न जानीम:। धनलोलुपै: सह विवाहेन किं? साम्प्रतमहमेवेमं विवाहं न करिष्यामि।'[18]

दहेज को सही ठहराने वाले अक्सर यही तर्क देते हैं कि पुरुष की शिक्षा पर जो खर्च हुआ है उसके बदले स्त्री पक्ष के द्वारा उपहार स्वरूप कुछ दे दिया जाए तो इसमें आपत्ति क्या है? परन्तु यहां सवाल यह है कि स्त्री की शिक्षा पर जन्म से लेकर शादी तक जो खर्च होता है उसके भुगतान पर पुरुष पक्ष क्यों मूक-बधिर बन जाता है। शालिनी सक्सेना की 'यौतुकप्रतिकार:' कहानी में इसी मुद्दे को वैभवी के माध्यम से उठाया है। वैभवी के पिता से दहेज-स्वरूप एक लाख रूपये की मांग रखी जाती है। जब वैभवी को इस बात का पता चलता है तो वह होने वाले पति से इसका विरोध करती हुई मुखर स्वर में कहती है '*भवन्त: पिता भवद्मूल्यरूपेण एकलक्षमुद्रामिच्छति। अद्यावधि भवदुपरि तेन यावद्धनं व्ययीकृतं, तस्य शुल्कं वाञ्छति, किन्तु त्वमेव वद, ये स्वरक्तेन कन्यां संपोष्य अन्येभ्य: प्रयच्छन्ति, तेभ्य: पितृभ्य: एतादृशी याचना अनुचिता विद्यते, न वा? इदमेव अलं नास्ति खलु यत् ते स्वकीयां शिक्षितां गुणान्वितां कन्यां प्रददति। वरसम्बन्धिनामनन्ताभिलाषा- कदा शाम्यन्ति।'*[19] वैभवी की निडरता नवीन मूल्यों की स्थापना के लिये पाठकों को सजग करती है।

भारतीय समाज में स्त्रियों की बुरी सामाजिक दशा का कारण आर्थिक पराधीनता भी है। अगर पुरुष घर के बाहर आर्थिक उपार्जन की जिम्मेदारी संभालता है तो स्त्री भी घर की देखभाल में अपना जीवन समर्पित कर देती है। लेकिन उसका मेहनताना उसे कभी नहीं मिलता है। जिसके कारण उसे आर्थिक रूप से पराधीन रहते हुए पूर्णत: पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु समय के साथ स्त्री के समक्ष नवीन आयाम खुलने लगे हैं। वह आर्थिक निर्भरता पर जीने के लिये विवश भले ही है परंतु समय आने पर वह अपनी क्षमता को बखूबी निखारना जानती है। वह घर की दहलीज पार कर नौकरी करने के साथ ही परिवार की जिम्मेदारी निभाते हुए दोहरी भूमिका निभाती है। डॉ. राजेश्वरी भट्ट की 'परमं देवतं पति:' कहानी में लक्ष्मी आर्थिक रूप से पति पर आश्रित रहती हुई पति द्वारा प्रताड़ित की जाती है। जैसे ही वह आत्मनिर्भर बनती है तो उसके समक्ष जीवन के नए आयाम खुलने लगते हैं। अब वह अपने पति पर आश्रित न रहकर स्वयं कार्य करते हुए अपने परिवार की जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती है 'जीवननिर्वाहाय कठोरं श्रमं कर्तुमुद्यता समभवत्। नानालघुगृहोद्योगै: सा यत्किंचिद् धनम् अप्राप्नोत, तेन आत्मन: परिवारस्य पोषणमकरोत्।'[20] गणेशराम शर्मा की 'श्रमदेवी' कहानी में भी पति की मृत्यु के बाद लक्ष्मी के समक्ष जीवन यापन का संकट आ जाता है। लेकिन वह हार नहीं मानती है और जीवन यात्रा के पथ पर निरंतर गतिशील बनी रहती है '*कदाचित् प्रतिवेशिजनानां वस्त्राण्यसीव्यत् कदाचित्तूलपूलिका: कृत्वा चर्खाचक्रेण सूत्रमकर्तयत्, कदाचित् सूत्रतन्तुभिर्यज्ञोपवीतानि समसाधयत्, कदाचित्, पलाशपल्लवै: पत्रावलीद्रोणांश्च विदधे, कदाचित् गोमयोपलसञ्चयं चक्रे, कदाचित् मृत्तिकाचुल्लीर्निर्माय तद्विक्रयं चकार, कदाचित् पर्पटादीन् विक्रीय च तन्मूल्यधनं प्राप। इत्थं नानाविधैर्लघूद्योगै- र्यावल्लब्धधनमुपार्ज्य लक्ष्मी: स्वात्मनो जीवनयात्रापथे गतिशीलतामाससाद।'*[21] डॉ. राकेश शास्त्री की कहानी 'संघर्ष:' में अन्तर्जातीय विवाह करने वाली सुशीला की कर्मठता का उल्लेख किया गया है। अन्तर्जातीय विवाह करने के कारण वह पारिवारिक अवहेलना का शिकार होती है। ऐसी स्थिति में उसके पति की असामयिक मृत्यु से उसकी मुश्किलें और बढ़ जाती है। लेकिन सुशीला आत्मनिर्भर होते हुए न केवल परिवार की जिम्मेदारियों को निभाती है बल्कि अपने बेटे को आई.ए.एस. बनाकर पति की इच्छा को भी पूरा करती है- '*सा जनानां गृहेषु कार्यकृत्वा रात्रौ च वस्त्रसीवनं कृत्वा किंचित धनं अर्जितवती, तेन खलु धनेन सा स्व परिवारस्य पालन-पोषणं करोति स्म तथा च स्व पुत्रस्य शिक्षार्थमपि धनं एकत्रितं करोति स्म।'*[22]

राजस्थान के संस्कृत कथाकारों की कहानियों में स्त्री की विविध स्थितियों का विवेचन हुआ है। यह विविधता कहीं पर आधुनिक विचारों द्वारा व्यक्त होती है और कहीं पितृसत्ता के रूप में व्याप्त है। ये कहानियाँ स्त्री की अस्मिता, सम्मान, अधिकरों पर सशक्त रूप से बात करती ही है वहीं पितृसत्ता के कारण स्त्रियों पर होने वाले शोषण को भी व्याख्यायित करती है। इन कहानियों में स्त्री सभ्यता, संस्कृति के कटघरे में कैद होकर कोरी नैतिकता के आवरण से ढकी हुई नहीं है बल्कि अवसर मिलने पर अपनी योग्यता का परचम लहराती हुई अन्याय के विरुद्ध विद्रोह भी करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. नारायण शास्त्री कांकर, अभिनव-संस्कृत-कथा-पञ्चाशिका, विद्या वैभव प्रकाशन, जयपुर, 2011, पृष्ठ 224
2. सम्पादक- राजेन्द्र यादव, हंस पत्रिका, अक्टूबर, 2005, दिल्ली, पृष्ठ 36
3. सम्पादक-रमाकान्त पाण्डेय, मञ्जुनाथगद्यगौरवम् (षष्ठ स्पन्दः), प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ 107
4. अरविंद जैन, औरत होने की सजा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 29
5. नारायण शास्त्री कांकर, अभिनव संस्कृत कथा, विद्या वैभव प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृष्ठ 31
6. वही, पृष्ठ 32
7. प्रभाकर शास्त्री, राज-कथाकुञ्जम्, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 1997, पृष्ठ 46-47
8. गंगाधर भट्ट, कथाकौतुकम्, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 2005, पृष्ठ 07
9. नन्दकिशोर गौतम, यौतुकनर्तनम्, निर्मल प्रकाशन, जयपुर, 1990, पृष्ठ 06
10. सम्पादक- अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृष्ठ 230
11. प्रभाकर शास्त्री, पञ्चामृतम्, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2011, पृष्ठ 6
12. वही, पृष्ठ 6-7
13. विवेक कुमार, दलित समाज पुरानी समस्याए? नयी आकांक्षाए? (एक समाजशास्त्रीय अवलोकन), गौतम प्रिन्टर्स, पृष्ठ 35
14. सम्पादक-प्रभाकर शास्त्री, राज-कथाकुञ्जम्, पृष्ठ 49
15. नारायण शास्त्री कांकर, अभिनव-संस्कृत-कथापञ्चाशिका, पृष्ठ 230
16. शिवसागर त्रिपाठी, कथाकल्पः, मातृशरणम् प्रकाशन, जयपुर, 2001 पृष्ठ 29
17. नन्दकिशोर गौतम, यौतुकनर्तनम्, पृष्ठ 13
18. संपादक-प्यारेमोहन शर्मा, संस्कृत-कथा-वीथिका, राजस्थान-संस्कृत-अकादमी, जयपुर, 1999, पृष्ठ 31
19. वही, पृष्ठ 155
20. प्रभाकर शास्त्री, राज-कथाकुञ्जम्, पृष्ठ 48
21. गणेशराम शर्मा, संस्कृत कथाकुञ्जम्, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर, 1972, पृष्ठ 83
22. राकेश शास्त्री, संस्कृत कथा मंजरी, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2019, पृष्ठ 70

ISSN 2278 - 0327

बागवानी क्षेत्र का महत्व

किरण कुमारी
शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक,हरियाणा (भारत)

सार–भारत में उद्यान विभाग को काफी पहले से ही जाना जाता था पर इसका विकास तथा वैज्ञानिक खोज का कार्य रॉयल कमीशन की 1929 की रिपोर्ट के आने के बाद शुरू हुआ। भारत में फल फूल व सब्जियों की खेती वर्षों से ही की जा रही थी परंतु उन वर्षों इस प्रकार की खेती पर कोई विशेष प्रकार का ध्यान नहीं दिया जाता था। वर्तमान समय में उद्यान विभाग की फसलों का हमारे दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है।

भूमिका –हॉर्टिकल्चर यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। होर्टस शब्द का अर्थ उद्यान तथा कल्चर शब्द का अर्थ कृषि या पौधे उगाने से होता है। यह लैटिन शब्द है लेटिन भाषा में इसका मतलब होर्टस यानी गार्डन और कल्टा यानी कल्टीवेशन से होता है अर्थात उद्यान में कृषि करना फसलों या पौधों को उगाना द्य उद्यान विभाग का संबंध फल फूल एवं सब्जियों आदि उगाने से होता है। यह कृषि विभाग की एडवांस शाखा है। जिसमें फल, फूल व सब्जियां आदि का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया जाता है और इसको बागवानी, उद्यानिकी या फिर उद्यान सिंचाई विभाग आदि नामों से जाना जाता है। जिसमें उद्यान संस्कृति, उद्यान फसलों और सजावटी पेड़ पौधों की खेती का एक प्रतिबंधित क्षेत्रों के भीतर की जाती है। यह कृषि की सबसे महत्वपूर्ण शाखा है इसे अंग्रेजी में हम हॉर्टिकल्चर कहते हैं।

जब किसी स्थान पर केवल फल वाले पेड़ पौधे लगाए जाते हैं तो उसको बगीचे के नाम से जानते हैं। इसे प्राय: हम भी विभाग व कला दोनों कह सकते हैं क्योंकि कला की भांति हमें बहुत सी ऐसी क्रियाएं हैं जैसे पेड़ पौधों को एक जगह से हटाकर दूसरे जगह पर लगाना। पौधों की काट–छांट करना आदि। जिसको करने के लिए विशेष तरीकों व अनुभव की आवश्यकता होती है जो कि एक कला है परंतु इन सब के बारे में विशेष ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। जैसे इस प्रकार की क्रिया किस समय करनी चाहिए। इनको करने से क्या फायदा है क्या नुकसान है आदि विज्ञान कहा जा सकता है। उद्यान विभाग काफी विस्तृत विभाग है, जिसके अंतर्गत मुख्य शाखा आती हैं। जैसे फलोत्पादन, शाकोत्पादन, पुष्पोत्पादन/अलंकृत बागवानी, फल परीक्षण आदि।

उद्देश्य

1. आर्थिक विकास व देश की अलग पहचान बनाने में उद्यान विभाग की फसलों का योगदान।
2. मानव स्वास्थ्य के लिए बागवानी फसलों का महत्व।

विधि – वर्तमान पेपर के लिए द्वितीय श्रेणी के डाटा का इस्तेमाल किया गया है जो आईसीएमआर इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च की रिपोर्ट (नई दिल्ली) भारतीय औषधि अनुसंधान परिषद के आधार पर पेपर को तैयार किया गया है। आईसीएमआर की रिपोर्ट (2020) के अनुसार प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 300 ग्राम सब्जियों का सेवन करना चाहिए जिसमें 125 ग्राम हरे पत्ते वाली सब्जियां सौ ग्राम जड़ व कंद वाली सब्जियां और 75 ग्राम अन्य सब्जियों का सेवन करना चाहिए और 120 ग्राम फलों का तथा एक सामान्य व्यस्क व्यक्ति के लिए दिन में 2800 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

साहित्य समीक्षा –साहित्य समीक्षा अपने आप में एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा शोधकर्ता यह जान पाते हैं कि उसे क्या नया करना है जो अभी तक नहीं हुआ है। संबंधित शोध क्षेत्र में उसे क्या करना है क्योंकि कोई भी शोधकर्ता किसी भी शोध की पुनरावृति नहीं करना चाहेगा। साहित्य समीक्षा का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि वर्तमान शोध क्षेत्र की फिलहाल क्या स्थिति चल रही है। कभी–कभी इसका संबंध मौजूदा शोध कार्यों की कमियों को भी देखना होता है जो पहले शोधकर्ता से ने नही किया हो।

1. सिंह बलविंदर (2000)ने अपने शोध में देश में उद्यान कृषि की उपलब्धियां, परेशानियां व समस्याओं का अध्ययन किया और अपने पत्र में बताया कि मानव जीवन में पेड़–पौधे, फल–फूल कितने महत्वपूर्ण है मानव व अन्य जीव जंतु को भी खाने–पीने से

लेकर, सांस लेने तक के लिए हमें पेड़-पौधों की आवश्यकता होती है। ये केवल न हमें खाद्य स्त्रोत उपलब्ध कराते हैं बल्कि सांस लेने के लिए ऑक्सीजन भी प्रदान करते हैं। इस पेपर का साधारण तथ्य यह है कि पौधों के बिना जीवन संभव नहीं है।

2. सी. आर. कोठारी (2004) ने अपने शोध में बागवानी क्षेत्र से संबंधित बहुत गहरी साहित्य समीक्षा की हुई है। साथ ही उन्होंने अपने शोध में बहुत अच्छे उदाहरणों के साथ अपनी शोध को प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी शोध में बागवानी विभाग का महत्व, अर्थ और उसके क्षेत्र को बहुत ही अच्छी विधि का प्रयोग करके अपने शोध कार्य की व्याख्या की है।

कई बार देश में खाद्य समस्या पैदा हो जाने पर सरकार व जनता का ध्यान फल व सब्जियों को उगाने की ओर जाता है। क्योंकि यह कृषि क्षेत्र की अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक जल्दी से उत्पन्न हो जाती है तथा खाद्य परेशानियों में अनाज धान आदि की तुलना में अधिक सहयोग कर सकती हैं। खाद्यान्न विभाग की फसलों में प्राय प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज-लवण व अन्य खाद्य तत्व भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं जो मानव शरीर को शारीरिक रूप से स्वस्थ रखते हैं। सामुदायिक विकास योजनाएं लगभग पूरे देश में लागू की जा रही है जिनका अहम उद्देश्य देश की उन्नति व प्रगति करना है। इन्हीं सारी योजनाओं के द्वारा उद्यान विभाग का काफी विकास हुआ है। भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायु और कई प्रकार की मिट्टी पाई जाती है जिसमें कई तरह की सब्जियां, फल-फूल, विभिन्न प्रकार की वनस्पति, विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों और कई तरह की फसल पैदा की जा सकती है।

उद्यान विभाग में उगाई जाने वाली कुछ मुख्य फसलें जैसे- फल वाली फसलें आम केले, अनार, अमरूद, सेब आदि। सब्जी वाली फसलें लौकी, कद्दू, आलू, भिंडी, बेंगन आदि। फूल वाली फसलें सूरजमुखी, गुलाब आदि। बागवानी फसलों की खेती चाय, कॉफी, रबड़ आदि।

आर्थिक विकास में महत्व - भारत में कुल कृषि क्षेत्र का 15-16% उद्यान विभाग में आता है परंतु इससे होने वाला कुल मुनाफा का 33% उद्यान विभाग का होता है।

साधारण शब्दों में यह एक हेक्टेयर में गेहूं धान लगा दी जाए तो इसका औसत उत्पादन 50-60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होगा। दूसरी तरफ यदि इसी जमीन पर जब टमाटर लगा दिए जाएं तो 400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर, आम का 100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उत्पादन होगा। इसलिए उद्यान विभाग की फसलों का कृषि क्षेत्र की अन्य फसलों के मुकाबले में उत्पादन भी ज्यादा होगा और मुनाफाभी उससे ज्यादा होगा।

उद्यान विभाग की फसलों में कृषि की अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक रोजगार सृजित करने की क्षमता होती है। उदाहरण के लिए यदि एक हेक्टेयर जमीन पर जब कृषि क्षेत्र की किसी अन्य फसल को लगाया जाता है तो वह केवल पूरे साल में 147 दिन का ही रोजगार उत्पन्न कर पाएगी। परंतु यदि उसी भूमि पर उद्यान विभाग की किसी फसल को लगाते हैं तो यह उसे ज्यादा दिन का रोजगार उत्पन्न करती है। जैसे फल की फसल लगाने से 860 दिन का रोजगार, साधारण शब्दों में एक दिन में पांच मजदूर लेकर खेत में गए तो पांच मजदूरी अकाउंट होती है।) सब्जी वाली फसल लगाने से 912 दिन का रोजगार, औषधीय उत्पादन देने वाली फसलों में 547 दिन का रोजगार और भी ज्यादा उत्पन्न देने वाली फसलों जैसे केला, पपीता आदि से 2000 दिन तक रोजगार मिल सकता है। जिसके कारण लोगों की आय भी वृद्धि होती है।

उद्यान विभाग का औद्योगिक महत्व भी काफी विस्तृत है। इसे बहुत सारे बड़े-बड़े उद्योग संबंधित हैं जैसे चाय, कॉफी, नारियल, काजू विभिन्न प्रकार की फल की फसलें जैसे जेम्स, जैली और भी बहुत सारे उद्योग उद्यान विभाग से संबंधित हैं।

उद्यान विभाग की फसलों का हमारे देश में बहुत ज्यादा धार्मिक महत्व भी देखने को मिलता है धार्मिक आस्था के हिसाब से नारियल के पेड़ को कल्पवृक्ष कहते हैं अलग-अलग संस्था की अलग-अलग धारणा है कई संस्थाओं का मानना है कि यह पीने के लिए पानी और खाने के लिए गिरी देता है तो इसलिए इसे कल्पवृक्ष बोलते हैं केले का दक्षिण भारत में बहुत अधिक महत्व है इसे स्वर्ग का फल या पेड़ कल्पतरु आदि नामों से जाना जाता है। भारत में धार्मिक वृक्ष पीपल को माना जाता है। वहां देवी लक्ष्मी सरस्वती भगवान विष्णु आदि का संबंध कमल के फूल (नीलम्बो न्यूसीफेरा) से माना जाता है। बेलपत्र भगवान शिव से संबधित है माता सीता का संबध अशोक वृक्ष सहाराईडिका से है। जब भी कभी धार्मिक ग्रंथ या कोई धार्मिक पुस्तक को पढ़ते हैं तो उनमें कहीं ना कहीं उद्यान विभाग की फसलों का जिक्र मिल ही जाता है जो हमारी धार्मिक भावना को और बढ़ाते हैं। मंदिर में जाते वक्त भी विभिन्न प्रकार के फूलों का इस्तेमाल होता है। इन फल फूलों का संबंध उद्यान विभाग से ही होता है।

उद्यान विभाग के बहुत से ऐसे वृक्ष हैं जिन्होंने हमारे देश की राष्ट्रीय पहचान बनाने में अहम् भूमिका निभाई है जैसे भारत का राष्ट्रीय वृक्ष (बरगद), पुष्प (कमल), फल (आम) राजस्थान का राजकीय वृक्ष (खेजड़ी), पुष्प (रोहिड़ा) आदि। दुनिया का 41%

आम भारत में उत्पादित किया जाता है तथा 54% के आस-पास भारत निर्यात करता है। भारत की अलग पहचान बनाने में आम का बड़ा योगदान है। औषधीय महत्व में भी उद्यान विभाग का बड़ा महत्व है। त्रिफला आयुर्वेद की सबसे पुरानी औषधि है। यह प्राय: आंवला हरड़ तथा बेहड़ा से बनाई जाती है यह पेट से संबंधित रोगों के उपचार में काम आती है। आयुर्वेद में आंवला को अमृतफला के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा लहसुन भी बहुत सारे रोगों के इलाज में कामगार सिद्ध हुआ है। अनार कुष्ठ रोगों के उपचार में बहुत अधिक उपयोगी है। इन सबके अलावा सेब, नींबू, एलोवेरा, तुलसी, प्याज, तरबूज हर तरह के फल, फूल, ज्यादातर उद्यान विभाग की फसलों में औषधीय गुण देखने को मिलते हैं। जबकि कृषि क्षेत्र की अन्य फसलें केवल हमारी मूलभूत आवश्यकताओं को ही पूरा करती है। यहां तक की सौंदर्य औषधीय महत्व भी हम उद्यान विभाग की फसलों का ही देखने को मिलता है। किसी क्षेत्र की सजावट के लिए भी हम विभिन्न प्रकार के फूलों का ही इस्तेमाल करते है।

पोषक तत्व के महत्व- मानव शारीरिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व जैसे कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन खनिज पदार्थ, रेशे, विटामिन आदि की आवश्यकता पड़ती है। उद्यान विभाग की फसलों का व्यक्ति के जीवन में अहम् भूमिका होती है।

कार्बोहाइड्रेट्स- व्यक्ति के जीवन में सबसे बड़ा भाग इसका होता है प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 400-500 ग्राम कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता होती है। यह हमारे भोजन का मुख्य भाग होता है। यह सर्वाधिक अनाज वाली फसलों में पाया जाता है। इसकी कमी से मधुमेह रोग हो जाता है।

उद्यान विभाग की फसलों में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा
किसमिश-77.3% ताजा खजूर-40% सूखे खजूर-67.3%
कसावा-38.1% सूखे करौंदे-67.1% शकरंद-28.2%
आलू-22.6% केले 36.4%

वसा-प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 25.45 ग्राम वसा की आवश्यकता होती है। वसा हमारे शरीर में त्वचा के नीचे सुरक्षा की परत का निर्माण करती है यह हमारे शरीर के तापमान को नियमित करती है वसा को मानव शरीर का संचित अर्थात् भंडारित भोजन कहा जाता है। परंतु इसकी अधिकता से मोटापा हो जाता है मानव शरीर में ऊर्जा का प्राथमिक स्त्रोत कार्बोहाइड्रेट व वसा को कहा जाता है।

उद्यान विभाग की फसलों में वसा की मात्रा
पैकननट-70% अखरोट-64.5% बादाम-58.9% काजू-46.9%
सब्जियों में वसा की मात्रा बिल्कुल ही कम होती है। सर्वाधिक वसा वाली सब्जी आलू (1.14)% पाई जाती है। दिल के मरीजों के लिए हरी पश्रे वाली सब्जियां बहुत लाभकारी होती हैं।

प्रोटीन-प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 60.70 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। यह हमारे शरीर में उत्तक तथा मसल्स का निर्माण करती है और हमारे शरीर के अम्लीय माध्यम को क्षारीय माध्यम में बदलता है। यह आनुवाशिंक सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायक होता है प्राय: प्रोटीन दलहनी फसलों में पाया जाता है। प्रोटीन की कमी से क्राशीओरकोर रोग हो जाता है।

उद्यान फसलों में प्रोटीन की मात्रा- काजू-21.20% बादाम-20% अखरोट 15.67% सेम फली-7.8% मटर 7.2% चावल-6%

विटामिन -एक स्वस्थ शरीर के लिए विटामिन बहुत जरूरी है। कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन के तो और भी अल्टरनेटिव मिल सकते हैं। परंतु विटामिन हमें केवल फलों से ही मिलते हैं।

विटामिन I-प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 1.2 ग्राम विटामिन की आवश्यकता होती है। इसकी कमी से रतौंधी, आंखों में जलन, जीरोपेथेलिमा, कैरेटोमेलशीया, कैरेटोमेलशीया, हाइपरकरेटोसीस रोग हो जाता है। उद्यान फसलों में विटामिन ए की मात्रा आम-4800 आईयू (इनट्रनेशनल यूनिट)
पपीता 2020 आईयू, बथुआ की पत्तियों 11300 आईयू, पालक-9300 आईयू, गाजर-3750 आईयू

विटामिन B -इसकी कमी से बेरी बेरी रोग हो जाता है। पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है। भूख कम लगना और वजन का कम हो जाना इसके लक्षण है। उद्यान फसलों में विटामिन बी की मात्रा काजू-630g पालक-0.26g अखरोट-450g मटर-0.25g बादाम-24g

विटामिन C-मानव शरीर को सबसे ज्यादा विटामिन सी की आवश्यकता होती है। और कमी भी सबसे ज्यादा इसी की पाई जाती है। इसकी कमी से हल्का सा उबलते ही यह खत्म हो जाता है। इसकी कमी स्कर्वी रोग (मसूड़ों में खून) आना हो जाता है। सुहाजना की फलियों में इसकी मात्रा-250g धनिए की पत्तियों में 135g आंवला-600g अमरुद-299g निंबू वर्गीय फल-150-160g बारबंचौरी-1400-1600g

विटामिन E-यह जनन क्षमता से संबंधित विटामिन है। यदि मानव शरीर में विटामिन ई की कमी हो जाती है तो बंधता उत्पन्न हो जाती है अर्थात् प्रजनन क्षमता का ह्रास होता है इसलिए विटामिन ई को प्रतिरोध विटामिन कहते हैं। विटामिन ई की सर्वाधिक मात्रा स्वीट कोर्न में पाई जाती है। इसके अलावा ड्राई फ्रूट तथा तिलहनी फसलों

में भी पाई जाती है।

विटामिन K-प्रतिदिन प्रति व्यक्ति को 0.15g विटामिन के की आवश्यकता होती है। इसकी अधिक मात्रा काजू बादाम, अखरोट, कद्दू वर्गीय सब्जियाँ तथा हरे पत्ते वाली सब्जियों में पाई जाती है। खनिज तत्व (कैल्शियम) प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 500-600 एमजी कैल्शियम की आवश्यकता होती है। यह हमारे शरीर में हड्डियों का निर्माण, दांतों का निर्माण तथा दांतों पर पायी जाने वाली परत इनेमल का निर्माण करता है। इसकी कमी से होने वाले रोग रिकेट्स सूखा रोग, पिजन चेस्ट, दातों का कमजोर होना आदि रोग। लीची में इसकी मात्रा 0.21%करौंदा-0.16% करी पत्ता-813g पायी जाती है।

फास्फोरस-यह हमारे शरीर में ऊर्जा निर्माण और ऊर्जा स्थानांतरण में सहायक होता है। फलों में इसकी मात्रा बदाम 0.49% काजू 0.45% अखरोट-0.38% परंतु यह हरे पत्ते वाली सब्जियों में सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है।

आयरन-यह मानव शरीर में लाल रक्त कणिकाओं का निर्माण करता है। इसकी कमी के कारण एनीमिया रोग हो जाता है। फलों में सर्वाधिक मात्रा करौंदा-39.1% ,खजूर-10.6% इसके मात्रा चौलाई 22.5 ग्राम पालक 18.6 ग्राम

आयोडीन-आयोडीन की कमी से हमारे शरीर में गलघोटू अर्थात् घोंघा रोग हो जाता है। इसकी सर्वाधिक मात्रा उद्यान विभाग की प्याज भिंडी बैंगन जामुन तथा हरे पत्ते वाली सब्जी में पाई जाती है।

रेशे -रेशे मानव शरीर में पाचन क्षमता को बढ़ाता है। इसके अलावा शरीर के आयतन को भी बढ़ाता है तथा भोजन के साथ-साथ आने वाले जहरीले तत्वों का अवशोषण करके अपशिष्ट के रूप में बाहर निकाल देता है।

फलों में सर्वाधिक अंजीर 7% और अमरूद में 6.8 प्रतिशत पाया जाता है। सब्जियों में इसकी मात्रा मिर्च में 6.8% पायी जाती है। उद्यान विभाग के फल-वृक्ष में जो सर्वाधिक ऊर्जा के स्त्रोत माने जाते हैं जैसी पेकननट,अखरोट, बादाम, ताजा खजूर, केले, कसावा, शकरकंद आदि ऊर्जा के मुख्य स्त्रोत हैं।

बागवानी फसलों के लिए जलवायु, वायुमंडलीय, मिट्टी, धरातल, सिंचाई तथा जल निकास की सुविधाएंए बाजार तथा यातायात की सुविधाएं, मजदूरों की उपलब्धता स्थिति तथा स्थान का चुनाव करना अति महत्वपूर्ण होता है। अनाज वाली फसलों की तुलना में उद्यान विभाग की फसलें प्रति इकाई अधिक लाभकारी होती है इसलिए इसके लिए विशेष सिंचाई की सुविधा भी होनी चाहिए। बागवानी फसलों की नर्सरी लगाकर भी अधिक आय प्राप्त की जा सकती है। बहुत से आलंकृत पौधे जैसे-साइकस, कैलेडियम, एरोकेरिया, रबड़, प्लांट डिफिनवेचिया आदि इनकी बाजार में कीमत बहुत ज्यादा होती है। उद्यान विभाग की कुछ फसलों को ज्यादा वर्षा वाले इलाकों में नहीं उगाना चाहिए। क्योंकि ज्यादा बारिश की वजह से उनके फूल के अंग नष्ट हो जाते हैं। जिसकी वजह से फसल अच्छी नहीं होती। अधिक बारिश की वजह से कई फल वृक्षों की जड़ भी खराब हो जाती है और कई फल वृक्षों को ज्यादा मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। अतः उन पौधों की जरूरत के अनुसार ही विशेष रूप से सिंचाई की सुविधा होनी चाहिए। सरकार द्वारा पर्यावरण विभाग की स्थापना भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर की गई है। जिसके द्वारा अलंकृत पौधों का रोपण अधिक से अधिक मात्रा में किया जा सके और वृक्षारोपण को भी प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा हर वर्ष कुछ पुरस्कार व धनराशि बांटी जाती है। जैसे वृक्ष मित्र पुरस्कार, इंदिरा प्रियदर्शनी पुरस्कार इत्यादि।

निष्कर्ष -भारत में बागवानी विभाग काफी प्रबल है। क्योंकि यहां पर विभिन्न प्रकार की जलवायु और मिट्टी उपलब्ध है जिसमें विभिन्न प्रकार के फल, फूल, पेड़ पौधे, सब्जियाँ उत्पन्न किए जा सकते हैं। सरकार ने इनकी उन्नति हेतु बहुत सी योजनाएं शुरू कर रखी हैं और सरकार इन पर अपने बजट का एक बड़ा भाग खर्च भी करती है। इस क्षेत्र को आगे ओर प्रोत्साहित करने के लिए बहुत सुविधाएं तथा लोगों को इसकी फसल उत्पन्न करने के लिए कई प्रकार की छूट भी देती है। जैसे भूमि पर लगान में छूट, सिंचाई की सुविधाएं उन्नतिशील, कृषि यंत्रों की सुविधाएं, फसल बीमारियों की रोकथाम व हानिकारक कीटों के लिए सूझाव और सुविधाएं प्रदान करना। जनता को इसके प्रति अधिक जागरूक करने के लिए इस विभाग में अनेक समितियों का गठन किया गया जैसे इसके लिए सुंदर व अच्छे सूचना पत्र प्रकाशित करना, फूल और सब्जियों के प्रदर्शनी व उद्यान प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करना आदि कार्य किये गए।

संदर्भ -

- www-hhm-nic.in
- http//ignited.in - www.nationalhorticultureboard.com
- www.agriculturestudyy.com
- http://nopr.niscair.res.in
- htttp://eh.wikipedia.org/wiki/regionalrural_bank
- ww.rbi.org.in

वेदों में जल विज्ञान

डॉ. सुमन रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
भारती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राणिमात्रेण लोकेऽस्मिन् प्रणत्वेनावधार्यते
जलं सर्वोपयोगित्वाज्जीवनं तृप्तिदं समृतम्।। [1]

'जलस्य विज्ञानम् जलविज्ञानम्' अर्थात् जल तत्व का विशेष ज्ञान प्राप्त करना जल विज्ञान है। जल घातने धातु से अक् प्रत्यय के योग से जल शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है वेगजनित आघात। 'जलति जलमिति' इस अर्थ में जल की शुद्धता का ज्ञान होता है। न्याय सिद्धांत मुक्तावली में जल के अनेकों गुणों का ज्ञानप्राप्त होता है।

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगश्च गुरुत्वं च द्रवत्वकम्।
रूपं रसस्तथा स्नेहो वारिण्येते गुणाः स्मृताः।। [2]

अर्थात् जो विभिन्न दोषों को दूर करता है इसी से प्राणी जीवन जीते हैं और जल निश्चय से ही सुख प्रदान करता है ।

'*जलम् इति दोषान् जलति अपवारयति इति जीवनं जीवयते प्राणिनः अनेन इति,नीरम् निश्चयेन राति ददाति सुखम् इति।*' [3]

वैदिक साहित्य में जल के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग यथा आपः, घृतम्, वारि, पय इत्यादि अमरकोश के अनुसार जल के 27 नामों की चर्चा वारिवर्ग अध्याय के अंतर्गत की गई है। तथा निरुक्त में जल शब्द के सौ शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है।[4] जल की परिभाषा के बाद विज्ञान शब्द का अर्थ भी अपेक्षित है। विज्ञान शब्द वि उपसर्ग पूर्वक ज्ञा अवबोधने धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। ऐसा ज्ञान जिसमें संपूर्ण विद्या का अवबोधन हो जाए। ऋग्वेद भाष्य में ऋषि दयानंद जी ने वेद को विज्ञान कहा है–

'*वेदम् विज्ञानम्।*' [6]

जल के अनेकों शब्द लौकिक साहित्य में भी प्रचलन में है। महाभारत में जल के स्वरूप का परिचय देते हुए इस प्रकार कहा है–

अपां नारा इति पुरा सञ्ज्ञाकर्म कृतं मया।
तेन नारायणोऽप्युक्तो मम तत् त्वयन् सदा।। [7]

जल मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। जल के बिना जीवन रक्षण संभव नहीं है। मनुष्य की शारीरिक संरचना में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। जल शरीर के तापमान को नियंत्रित रखता है तथा रक्त संचार की स्वाभाविक गति को बनाए रखने में सहायक होता है। जल की कमी से ना केवल अनेकों असाध्य रोग हो सकते हैं अपितु मृत्यु तक भी सम्भव है। अतः जल के बिना जीवन की कल्पना भी असंभव है। वेदों में सृष्टि का आरंभ भी जल से कहा है। हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सृष्टि के प्रारंभ में सर्वत्र जल ही जल व्याप्त था, उसी से समस्त चराचर जगत रूप सृष्टि की उत्पत्ति हुई।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भ दधाना... ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेक.... [8]

इस पृथ्वी मंडल पर 29 प्रतिशत भूमि और 71 प्रतिशत जल है। शरीर वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के शरीर में भी इसी अनुपात में जल होता है। इस प्रकार पृथ्वी का 3 चौथाई भाग जल है, जो जीवन का आधार है।

आचार्य वाराह्मीहिर ने जल के विज्ञान को उदकार्गल कहा है उदक आर्थात् जल और अर्गला से अभिप्राय जल के ऊपर आई हुई रुकावट या बाधा समझा जाना चाहिए।

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः।। [9]

अर्थात् जिस विद्या से भूमिगत जल का ज्ञान होता है उस धर्म और यश देने वाले ज्ञान को देने वाले ज्ञान को उदार्गल कहते हैं। जल मानव संरचना में नाडियों के समान भूमि में ऊंची जल की धाराओं के रूप में व्याप्त है। आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल भूमि पर गिरता है। और आकाश से व्याप्त चल पृथ्वी का सहयोग पाकर संयोग पाकर अनेकों रस, स्वाद और गुणों वाला हो जाता है। इस प्रकार यह जल मनुष्य, पशु, औषधि वनस्पति इत्यादि की रक्षा और पोषण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

यजुर्वेद में जल की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है।

शं नो देवी ... स्रवन्तु नः [10]

जल सिंचाई के लिए अत्यंत आवश्यक है, जिसके बिना कृषि की कल्पना भी असंभव है। जल की उपलब्धि भूमि तथा पर्जन्य से होती है छांदोग्य उपनिषद में जल की कल्याणप्रद रूप की चर्चा करते हुए प्राण को जलमय कहा है–

अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणः [11]

नासदीय सूक्त में भी कहा गया है–

सलिल सर्वमा इदम् [12]

शतपथ ब्राह्मण में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है–

आपो ह वाऽइदमग्रे सलिलमेवास

अथर्ववेद में भी जल की उपयोगिता बताते हुए कहा है–

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन महे रणाय चक्षसे
यो व शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः उशती रिव मातरः [13]

वैदिक साहित्य में जल के अनेक प्रकार पाए जाते हैं ऋग्वेद में पांच प्रकार के जल की चर्चा का उल्लेख प्राप्त होता है।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्तिखनित्तिमा उव वा या स्वयंजा।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।

दिव्या आपः–आकाश में होने वाला दिव्य जल।
स्रवन्त्यः आपः– नदियों में बहता हुआ जल।
खिनत्रिमाआपः– खुदाई के बाद कुओं अथवा बावरियों से प्राप्त जल।
स्वयंजा आपः – स्वयं उत्पन्न निर्झरोसे प्राप्तजल ।
समुद्रार्थाः आपः– समुद्रों सेप्राप्त जल।

मनुष्य की जल रूप आवश्यकता एक नित्य आवश्यकता है, उसके बिना जीवन की संभावना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी कारण मानव सभ्यता का विकास नदियों के तटों पर हुआ। आवश्यकता सर्वदा ही आविष्कार का कारक रही है यही कारण है कि मानव ने नदी तट से कुछ दूर बालू को खोदा तो जल भूमि से निकल आया और मनुष्य ने ज्ञान के आधार पर जल की प्राप्ति हेतु गड्ढे खोदने शुरू किए इसके परिणाम स्वरूप कुओं की संस्कृति का विकास हुआ और जो मनुष्य अब तक केवल स्वतः उपलब्ध जल के प्राकृतिक स्रोतों पर निर्भर था वह स्वयं जल के संसाधनों का निर्माण करने में सक्षम होने लगा। जल विज्ञान के विषय से संबंधित कोई स्वतंत्र रचना तो प्राप्त नहीं होती है परंतु वराहमिहिर कहते हैं कि जल विज्ञान क्या यह ज्ञान सारस्वत मुनि एवं मनु द्वारा प्राप्त हुआ है।

यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति।
स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र। [14]

वेदों में जल प्राप्ति के अनेक साधन है। जैसे वर्षा से, नदियों से, समुद्रों से जलीय प्रदेशों रेगिस्तान की बंजर भूमि से एवं कूप आदि से जल की प्राप्ति होती है। सभी प्रकार के आश्रय भेद वाले जल हमारे लिए कल्याणप्रद हो ऐसी प्रार्थनाएँ की गई है।

शं न आपो धन्वन्याउ शमु सन्त्वनूप्याङः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा न सन्तु वार्षिकी [15]

वैदिक साहित्य में चारों समुद्रों को रत्न से युक्त कहा है–

चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम् [16]

समुद्र को सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करने का भी प्राप्त होता है–

सं सूर्येण विद्युतवद् उदधिर्निधिः [17]

ऋग्वेद के 4 मंत्रों में जल के निर्माण का सूत्र दिया है। जिससे क्रमशः ऑक्सीजन और हाइड्रोजन का ग्रहण होता है इसमें वर्णित मित्र और वरुण क्रमश हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के प्रतीक है। इनका परस्पर समन्वय जल की उत्पत्ति का कारक है।[18]

जलीय विद्युत के संदर्भ में भी उल्लेख प्राप्त होता है कि अथर्वा ऋषि ने तालाब के जल के मंथन से चलिए विद्युत का आविष्कार किया था।

त्वामग्ने पुष्करादधि अथर्वा निरमन्थत [19]

समुद्र के अंदर और अंतरिक्ष में चलने वाला जहाज समुद्र में चलने वाली नौका का उल्लेख मिलता है पूषा देव की नौकाएँ समुद्र तथा अंतरिक्ष दोनों स्थानों पर चलती थी।

यास्ते पूषन् नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति। [20]

वेदों में जल तथा वृक्ष वनस्पतियों के संरक्षण की बात कही है।

मा अपो हिंसी [21]

सृष्टि के जड़ चेतन सभी पदार्थों के लिए जल एक महत्वपूर्ण तत्व है मानवीय सृष्टि का आधार तथा समग्र सौंदर्य का व्यवस्थापक जल ही है यास्क इत्यादि अनेकों आचार्य ने जल के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया है। ऋग्वेद में जल शब्द अनेकपर्याय प्रयोग किये है। जिनमें आपः शब्द सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। जो सदैव स्त्रीलिंग तथा बहुवचन में प्रयोग होता है आपः का अर्थ है व्यापनशील। वैदिक ज्ञान के अनुसारसोम और अग्नि तत्व आपः में विद्यमान रहता है।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तविश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजी।। [22]

जल के भीतर स्थित सोमजल में विद्यमान भेषज को स्वीकार

करते हैं अत: जल विश्वभेषजी है। जल ही औषधियां है अर्थात् सभी प्रकार के रोगों को दूर करने की क्षमता जल में है। तैत्तिरीय आरण्यक में जल को अमृत कहा गया है।

अमृतं वै आप:

बृहरादण्यकोपनिषद् में भी जल को प्राणिमात्र के लिए मधु बतलाया गया है। अथर्ववेद में जल को मंगलकारक और घी के समान पुष्टिवर्धक कहा है। भोजन की पाचनक्रिया में उपयोगी रस है। इसमें प्राण, कान्ति, बल और पौरूष देने वाले तत्व निहित है।

आपो भद्रा घृतमिदमाप आसन्नग्नीषोमौ विभ्रत्याप इत्ता:।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।[23]

जल के द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों का निवारण सम्भव है। प्राकृतिक चिकित्सक जलचिकित्सा द्वारा अनेक रोगों का उपचार करते हैं। अत: ऐसे जल को प्रदूषण से बचाकर उसका संरक्षण और संवर्धन करना अनिवार्य है। यजुर्वेद में भी प्रार्थना की गई है कि जल हमारे लिए श्रेष्ठ मित्र के समान है।

सुमित्रिया न आप: [24]

जल पीने पीपासा तो शान्त होती है। साथ ही गैस कब्जादि रोग भी दूर हो जाते है। समुद्र के खारे पानी में स्नान करने से चर्म रोग दूर हो जाते है, रक्त प्रवाह भी अच्छा रहता है। पाचन शक्ति बढ़ती है और अनेक प्रकार से आरोग्य प्राप्त होता है।[25] प्राय: अनेकों प्रकार के रोग जल चिकित्सा से साध्य है। प्रात:काल में खाली पेट पानी पीने से मनुष्य निरोगी रहता है। जल सब रोगों की औषधि है। अथर्ववेद में जल को रोगनाशक ओर आयुवर्धक कहा है।

इमा आप: प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनी [26]

ऋग्वेद के एक मंत्र में ऋषि में जल, वृक्ष, वन, औषधियां, पर्वत और सूर्य को मानव रक्षक बताया है

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाय कद्वे चिकितुषे भगाय।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु धौर्वना गिरयो वृक्षकेशा:।[27]

ऋग्वेद में जल प्राप्ति के कारण भूत मेघ से वर्षा जल की कामनाओं को पूर्ण करने की बात कही गई है।

वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन्। [28]

यजुर्वेद में भी प्रजापति वातादि देवों का वर्णन करते हुए वात्, धूम, अभ्र, मेघ विद्युत चमकने तथा वर्षा के यज्ञ कार्य के संपादन की चर्चा करते हैं

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेधाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा [29]

यज्ञ अग्नि के द्वारा वृष्टि को प्रेषित प्रेरित करता है वह धूमरूप अग्नि ही आकाश में मेघ होकर बरसता है। अर्थात् अग्नि ही धूमरूप मेघ और मेघ से वर्षा होती है। वर्षा से प्राप्त जल कृषि कार्य की गुणवत्ता को दोगुना बढ़ाने वाला कहा गया है

विद्या शरस्य पितर पर्जन्यं शतवृण्यम् [30]

पर्जन्य को वैदिक ऋषि पृथ्वीपति अथवा पिता के रूप में देखते हैं।[31] तथा वर्षा की उपलब्धि की सर्वत्र कामना की गई है।[32] कृषि के लिए वर्षा संचित जल एवं अतिरिक्त साधनों नेहरों, नालियों, तालाबों के माध्यम से जल का समुचित प्रबंधन करना चाहिए।[33] उपयुक्त समय पर सिंचाई करने पर जल अमृतमय तथा असाध्य रोग नाशक के समान होता है।

अप्स्वन्तर मृतमप्सु भेजषम् [34]

तथा

आपो विश्वस्य भेषजी [35]

वैदिक साहित्य में मानव प्रकृति के प्रति श्रद्धावान था। इस कारण से जीवन सुखमय भी था क्योंकि नदियों के जल अशुद्ध हो जाए तो विशाल स्तर पर उन्हें शुद्ध करने के अभियानों का संकेत भी वेद में प्राप्त होता है

यन्नदीषु ... परि जायते विषम् [36]

जल के अशुद्ध हो जाने पर सब मिलकर उस प्रदूषण को दूर कर ले ऐसी प्रार्थनाएं की गई है

शिवा देवीरशिपदा ... नशो अशिमिदा भवन्तु [37]

वेदों में प्रदूषण के निवारण को के रूप में सूर्य को महत्वपूर्ण माना है सूर्य की किरणें पृथ्वी जल इत्यादि अनेकों प्रकारों के प्रदूषण को रोकने में समर्थ है

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्।
आदित्य: पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा।। [38]

सूर्य को दृष्टा दृष्ट समस्त पर्यावरण रक्षक तत्वों के प्रदूषण को रोकने वाला कहा गया है –

सूर्ये विषमया सजामि [39]

अथर्ववेद में कहा है कि जो यह जल्द सूर्य के समीप होते हैं अर्थात जिनके साथ सूर्य होता है वे चल हमारे यज्ञ को फलदान में समर्थ करें।

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्य: सह।
ता नो हिन्वन्यत्ध्वरम्।।[40]

जल जीवन का आधार भूत तत्व है इसे संपूर्ण सृष्टि का अस्तित्व प्रकट हुआ है जन्म जीवन के लिए अति आवश्यक है जल के बिना जीवन की कल्पना भी संभव नहीं है। जलमनुष्य को शारीरिक व मानसिक रूप से अपने आपको तरोताजा और

सुख का अनुभव कराता है। स्नान किए बिना शरीर अग्नि सा प्रतीत होता है किसी भी कार्य में मन नहीं लगता आलस्य मनुष्य को फिर रहता है परंतु स्नान करके आलस्य दूर हो जाता है और मनुष्य में उत्साह और स्फूर्ति का संचार हो जाता है वैदिक साहित्य में जल संरक्षण के विषय में कहा गया कि मनुष्य संबंध नदियों तालाबों सरोवरों में कूड़ा करकट तथा मूत्र त्याग कर जल को दूषित नहीं करना चाहिए

नाप्सु मूत्रपुरीषं केर्यात्[41]

कौटिल्य ने भी जल स्रोतों को दूषित करने को वर्जित कहा है–

नाप्सु मूत्रं केर्यात्[42]

जल प्रदूषण अनेकों रोगों को उत्पन्न करने वाला है। यह प्रकृति का एक अमूल्य तत्व में आता है, सभी का धार्मिक नैतिक एवं वैयक्तिक कर्तव्य है कि हम सभी को मिलकर जल का संरक्षण और जल की शुद्धि के प्रति गंभीरता से कार्य करना चाहिए। आजकल भारतीय प्रशासन भी जल प्रदूषण को रोकने के लिए प्रयत्नशील है गंगा नदी की सफाई अभियान में गंगा नदी को साफ करने का पूरा प्रयास किया जा रहा है। देश की राजधानी दिल्ली में भी यमुना नदी को चारों ओर से लोहे की जाली लगा दी, जिससे नदी में किसी भी प्रकार का कूड़ा करकट प्लास्टिक की थैलियां मूर्ति प्रवाहित के जल प्रदूषण की रोकथाम और जल संरक्षण जैसी समस्याओं का समाधान केवल सरकारी योजनाओं से ही संभव नहीं है चेतना का विकास करना होगा जिससे वह प्रकृति की प्रगति के साथ-साथ मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को संरक्षित कर सकेगा, सभी तत्वों की शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए वेदों में अनेकों प्रार्थनाएँ की गई है।

सन्दर्भ सूची –

1. ऋग्वेद1/43/4
2. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली प्रत्यक्ष खण्ड 1.31
3. निघण्टु 2.7
4. निरुक्त 1.12
5. संस्कृत हिन्दी कोश
6. ऋग्वेद 4.30.13
7. वनपर्व 1/89/3
8. ऋग्वेद 10/121.7
9. बृहत्संहिता, अध्याय 54/ श्लोक, पृ.355
10. यजुर्वेद 36/12
11. छान्दोग्योपनिषद्
12. ऋग्वेद 10/129/3
13. अथर्ववेद 1.5.1-1.5.2
14. बृहत्संहिता, अध्याय54/ श्लोक61
15. अथर्व.1.6.4
16. ऋग्वेद 10/47/12
17. यजुर्वेद 38/2
18. ऋग्वेद 7.33.10-7.33.13
19. ऋग्वेद 6/16/13
20. ऋग्वेद 6/57/3
21. यजुर्वेद 6.22
22. ऋग्वेद 1.23.20, 10.9.6; अथर्ववेद 1.6.2
23. अथर्ववेद 3.13.5
24. यजुर्वेद 6.21
25. ऋग्वेद 10.137.6
26. अथर्ववेद 3.12.9
27. ऋग्वेद 5.41.11
28. ऋग्वेद 1.181.8
29. यजुर्वेद 22.26
30. अथर्ववेद 1.3.1
31. अथर्ववेद 121.42
32. यजुर्वेद 22.22
33. यजुर्वेद 16.37
34. अथर्ववेद 1.4.4
35. अथर्ववेद 3.7.5
36. ऋग्वेद 7/50/3
37. ऋग्वेद 7/50/4
38. अथर्ववेद 6.5.2.1
39. ऋग्वेद 1.191.10
40. अथर्ववेद 1.4.2
41. तैत्तरीय आरण्यक 1.26.7
42. चाणक्यसूत्र 406

ISSN 2278 - 0327

गङ्गा चिन्तन - 'रक्षत-गङ्गाम्' महाकाव्य के आलोक में

डॉ. ऋचा
Assistant Professor, Sanskrit
K.N. Govt. P.G. College, Gyanpur, Bhadohi.

भारतीय संस्कृति की अजस्र धारा पतित पावनी शक्ति की दयोतिका भगवती मां गङ्गा की अविरल धारा की प्रवाहमान कड़ी 'रक्षत-गङ्गाम्' महाकाव्य काव्यशास्त्रीय मानदण्ड से उत्कृष्ट अनुपम कृति है। अब तक संस्कृत वाङ्मय में गङ्गा पर जो भी विशाल साहित्य प्राप्त होता है, उनमें 'रक्षत-गङ्गाम्' महाकाव्य का स्वरूप सर्वथा पृथक् प्रतीत होता है क्योंकि पहले रचित साहित्य में गङ्गा स्तवन और उनका पौराणिक महत्व ही उनका वर्ण्य विषय रहा है। वर्तमान समय में गङ्गा प्रदूषण की समस्या ने मानव मात्र के जीवन को प्रकम्पित कर दिया है। अत:गङ्गा प्रदूषण की समस्या की भयावहता को देखकर ज्ञान और कर्म के मणिकाञ्चन संयोग से समन्वित साहित्य एवम् दर्शन की विशेषज्ञा कवयित्री डॉक्टर कमला पाण्डेय के ह्दय का शोक, श्लोक बनकर प्रस्फुटित हुआ। जो 'रक्षत-गङ्गाम्' महाकाव्य के रूप में परिणत हुआ-

अमृताम्बुमयीं गङ्गां दर्श-दर्श प्रदूषिताम्।
मर्मान्तिवेदनोद्भुत: शोक: श्लोकत्वमागत:।।

'रक्षत - गङ्गाम्' महाकाव्य को उत्पत्ति, यात्रा, अध्यात्म, प्रदूषण और निवारण इन 5 प्रकरणों में विभक्त करके कुल एकादश सर्गों और 712 पद्यों में उपनिबद्ध किया गया है। उत्पत्ति प्रकरण में गङ्गा के आविर्भाव और अवतरण के कथानक को चित्रात्मक शैली में निबद्ध करते हुए पौराणिक गङ्गाख्यानों को आधुनिक दृष्टि से भी गंगावतरण में प्रस्तुत किया गया है। यात्रा प्रकरण में गंगा के उद्गम से प्रारम्भ कर हिमालय, ऋषिकेश, कर्णपुर, प्रयाग, काशी, बिहार और बंग-भू से होते हुए गङ्गा सागर तक के रमणीय चित्र अङ्कित किए गए हैं। जो इतिवृत्तात्मक होते हुए भी भक्ति रसात्मकता से परिपूर्ण हैं। साथ ही इसके दशम् सर्ग 'प्रदूषण वर्णनम्' में गङ्गा प्रदूषण से उत्पन्न वीभत्स रूप भी चित्रित किया गया है। प्रस्तुत महाकाव्य की नायिका के पद पर भगवती गङ्गा आसीन हैं जैसा कि महाकाव्य के 'रक्षत-गङ्गाम्' नाम से स्पष्ट है। महाकाव्य का कथानक आरम्भ से अन्त तक दिव्य नायिका भगवती गङ्गा के चारों ओर घूमता हुआ दिखाई देता है। कवयित्री डॉक्टर पाण्डेय ने नायिका को भी नायक के समान गुणों से युक्त बताते हुए स्वकीया नायिका के रूप में चित्रित किया है। जिसका प्राकृतिक और दैवीय रूप अभिरक्षित होते हुए लोक विख्यात भी है। इसका रक्षत-गङ्गाम् नाम भ्वादिगण में आने वाली रक्ष धातु (जिसका अर्थ रक्षा करना है) जो परस्मैपदी तथा लोट् लकार के मध्यम पुरुष बहुवचन (रक्षत) 'रक्षत - गङ्गाम्' (गङ्गा की रक्षा करो) से ध्वनित होता है। इसमें कवयित्री डॉक्टर कमला पाण्डेय गङ्गा की रक्षा के लिए सामाजिक रूप से आह्वान करते हए कहती हैं कि गङ्गा को अत्यधिक प्रदूषण से विनष्ट होता देख मैरे अन्तस में जो आर्तनाद हो रहा है वह 'गङ्गां रक्षत- रक्षते' ति-इन वचनों से स्वत: फूट पड़ा है[1] -

गङ्गारक्षणमेव भारतभव: संरक्षणं शाश्वतं
गङ्गारक्षणमेव जीवजगतो: सजीवनं सुन्दरम्।
गङ्गारक्षणमेव विष्णभजनं स्वर्गापवर्गप्रदं
गङ्गारक्षणमेव दुर्लभतमं सन्सारसारायितम्।।

महाकाव्य की नायिका दिव्य गङ्गा के आधिदैविक, आधिभौतिक एवम् आध्यात्मिक स्वरूप का चित्रण क्रमश: पौराणिक, आधुनिक एवं आध्यात्मिक सर्गों में निबद्ध हुआ है। भारतीय मनीषा द्वारा ब्रह्मद्रव के रूप में प्रतिष्ठित गङ्गा जल की महत्ता को महसूस कर कवयित्री डॉक्टर कमला पाण्डेय का अन्तस् उद्वेलित होकर कह उठता है।[2]

'गमयति प्रापयति ज्ञापयति वा भगवत्पदम् या शक्ति: सा गङ्गा।'

गङ्गा शब्द गम् धातु से बना है। जो ज्ञानार्थक होने के साथ ही प्राप्त्यार्थक भी है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर गङ्गा अद्वितीय परम पद को प्राप्त कराने के साथ ही सम्पूर्ण लोक का हित करने वाली हैं। जो तत्त्व वेदों से भी ज्ञात नहीं होता। व्यापक, निर्गुण, निराकार जिस तत्त्व को श्रुतियां भी नेति-नेति कहती हैं, वही

निराकार रूप में परिणत होकर ऋषियों द्वारा कथित ब्रह्मद्रव ही गङ्गा जल कहा जाता है। वेद के मर्मज्ञों ने जिसे रस कहा है और जो कवियों के काव्य का सार बनकर सहृदयों को आह्लादित करता है, वही स्वादिष्ट अमृत तत्व गङ्गाजल के रूप में बहने वाला ब्रह्म द्रव है।[3]

महाकाव्य में कवयित्री ने अन्त: प्रेरणा और देवी सरस्वती तथा भगवती गङ्गा की कृपा से गङ्गा की पवित्रता और उसके दिव्य रूप की रक्षा के लिए महती प्रेरणा देने के उद्देश्य से आह्वान करती हुई कहती हैं कि गङ्गा नदी सभी नदियों की प्रतिनिधि नदी है।[4] इसलिए आज एक ऐसी सङ्कल्पबद्ध क्रान्ति की आवश्यकता है, जो गङ्गा को निर्मल बनाने के लिए कृतसङ्कल्प होने के साथ ही प्रदूषणकारी दुर्बुद्धि को त्यागने का सङ्कल्प करने का आह्वान कर रही हैं।[5] सनातन भारतीयता की प्रतीक भगवती गङ्गा का सामाजिक सन्दर्भ में किया गया चित्राङ्कन निश्चय ही संस्कृत के अन्य महाकाव्यों से इसे पृथक् करता है। गङ्गा की गौरवमयी अतीत का गान करते हुए तथा इसके औषधीय गुणों और स्वास्थ्यवर्द्धक पोषक तत्वों को नष्ट होने से पूर्व उसकी रक्षा के लिए समाज को सावधान करते हुए। कवयित्री कहती हैं- गङ्गा रक्षत् - रक्षतेति। अत: पूरा महाकाव्य प्रदूषण युक्त गङ्गा की रक्षा के लिए आर्तनाद है।[6]

भारतीय संस्कृति जिस मानवीय आदर्श त्याग, तपस्या, ज्ञान, कर्म, अध्यवसाय, यज्ञ, दान आदि उच्च उपादानों पर आधृत है, भगवती गङ्गा उन्हें अनादि काल से अविकल रूप में प्रादुर्भूत, प्रभावित और अनुप्राणित करती रही हैं। इसी के निमित्त भौतिक साधन विहीन मानव अपने अप्रत्यक्ष अध्यवसाय, श्रम एवं साधना से जिस साफल्य को अधिगत करता है, वह राजा भगीरथ के प्रयास पूर्ण पुरुषार्थ के प्रतीक भगीरथ प्रयास रूप में आज भी लोक जीवन को त्याग, तपोमय बनाकर अनवरत कर्म साधना में प्रवृत्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। [7]

सृष्टि के आरम्भ से ही गङ्गा भारत भूमि को अपने औषधीय अमृत जल का वरदान देती रही हैं। जिस गङ्गाजल के दर्शन, स्पर्शन, स्नान, पान और कीर्तन मात्र से मानव जन्म-मरण रूपी बन्धन से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है; इसी के निमित्त कवयित्री सम्पूर्ण जनमानस के लिए भगवती गङ्गा से प्रार्थना करते हुए सब के कल्याण की कामना कर रही हैं। [8]

आनन्दं विदधाति या ऋतमयी या चिन्मयी शाश्वती
दिव्यालोकतरङ्गिणी तिरयति ध्वान्तं नितान्तं नृणाम्।
यद्वारि प्रभवन्ति दातुमनिशं भक्तिश्च मुक्तिं परा
सा गङ्गा वितितीतरीतु सततं श्रेयांसि भूयासि न:।।

हमारी धार्मिक व्यवस्था का अनिवार्य अङ्ग गङ्गा नदी के प्रति अगाध श्रद्धा होने से गङ्गा के तट पर जन समागम के कारण कई सांस्कृतिक प्रयोजनों का प्रादुर्भाव भी हुआ है। जो भारतवर्ष की सांस्कृतिक तपस्या का प्रत्यक्ष परिणाम है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण माघ महीने में मकर सङ्क्रान्ति के पवित्र काल में त्रिवेणी के सङ्गम पर 12 वर्ष के कुम्भ और 6 वर्ष के अर्द्धकुम्भ पर्व के अवसर पर देखा जा सकता है।[9] अनेक धाराओं का सङ्गम गङ्गाजल जहां एक ओर भारतीय एकता को पुष्ट करता है वहीं दूसरी ओर इसके तट पर अनेक संस्कृतियों का सङ्गम राष्ट्रीय एकता एवम् अखण्डता का सम्वाहक भी बनता हुआ देखा जा सकता है। जहां पर लोग कर्मयोग में संलग्न भक्ति की धारा से स्नात, ज्ञान मार्ग का आलम्बन करने वाले विद्वान् सिद्धयोगी और मुनि तत्वज्ञान से समन्वित धर्मोपदेश देकर लोगों की जिज्ञासा को शान्त करते हैं।[10] जहां धर्म के सूत्र में बंधे कल प्रवासी राष्ट्रीय एकता की बुद्धि से अनुप्राणित होकर '*यत्र विश्वं भवत्येकं नीडम्*' उक्ति को सार्थक किया करते हैं।[11] जिससे विविधता में एकता का अद्भुद् समन्वय समेटे वेद का ज्ञानमय स्वर गुञ्जायमान होता है साथ ही द्वैत- अद्वैत रूपी दर्शन की चिन्तन धारा प्रवाहित होती है।[12] हमारी संस्कृति का प्राण तत्व अनेकता में एकता की पोषिका माँ गङ्गा के तट पर 'बुद्धम् शरणं गच्छामि' का उद्घोष तथा अहिंसा वादी जैनों की कोमल वाणी, सिक्खों की गुरुवाणी और पैगम्बर मुहम्मद का वचन सभी का अद्भुत सङ्गम गङ्गा के तट रूपी आंचल में गुञ्जायमान होता हुआ देखा जा सकता है। [13]

इस प्रकार गङ्गा के तट पर लोकरीति और शास्त्र सिद्धान्त दोनों के अद्भुत सङ्गम की सम्वाहिका गङ्गा के जल से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं साथ ही धर्म रूपी पुरुषार्थ को जानने की इच्छा बलवती हो उठती है।[14] जिस प्रकार सूर्य उदय होते ही अन्धकार को विधिवत् नष्ट कर जगत को प्रकाशमान बनाता है, ठीक उसी प्रकार गङ्गाजल में स्नान और पान मात्र से मानव अपने सभी कर्मों से मुक्त होकर सुशोभित होता है। इसीलिए भगवत् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयम् को नदियों में गङ्गा कहा है।[15] ऋग्वेद के नदी सूक्त में गङ्ग को नदियों में प्रथम स्थान प्राप्त है।[16] महाकाव्य का प्रधान रस शान्त है। अत: महाकाव्य के नवम सर्ग अध्यात्म वर्णन में कवयित्री द्वारा वर्णित काव्यधारायें यह सिद्ध करती हैं कि महाकाव्य भक्ति रस से आरम्भ होकर शान्त रस में पर्यवसित हो जाता है।[17] कवयित्री कहती हैं कि गंगा कोई बहती जलधारा नहीं अपितु नारायण का निराकार स्वरूप है जो ब्रह्म कमण्डल से नि:सृत होकर शिवजटा से निकलकर हिमालय से होते हुए भारतभूमि

पर अवतरित होती हैं। गङ्गा का अवतरण राजा भगीरथ के तप का सुफल है।[18] जो अपने आधिदैविक स्वरूप में दिव्य चतुर्भुज रूप धारण किए हुए बिजली के सामान कान्ति वाली जगत् का कल्याण करने वाली माँ का वितान है। महाकाव्य के माध्यम से कवयित्री का मुख्य लक्ष्य गङ्गा का अविरल और निर्मल प्रवाह प्राप्त करना है। अपनी अमृतोपमतरङ्गों में अनुपम जड़ी-बूटियों और औषधियों की सौगात लेकर अवतरित हुई गङ्गा के धरा पर अवतरण का प्रयोजन लोक कल्याण है। लोक कल्याणकारी सौभाग्य की प्रतीक अपने अद्भुत गुणों से तीनों लोगों में प्रसिद्ध गङ्गा जल ताप- पाप-शोक को नष्ट करने वाला तुष्टि -पुष्टि और मुक्ति देने वाला है। हिमालय से नि:सृत् स्वच्छ, अनुपम, अमृत के सहोदर गङ्गाजल को समष्टि हित को भुलाकर स्वार्थ में रत मानव ने दूषित कर दिया है।[19]

वर्तमान समय में गङ्गा की स्थिति अत्यन्त सोचनीय हो गई है। कृषकाया मां गङ्गा हमारी दूषित मानसिकता से विक्षोभ ग्रस्त हैं और हम भोगवादी विचारधारा के वशीभूत होकर अज्ञान रूपी मोह निद्रा में सो रहे हैं। उसी निद्रा से जगाने के लिए कवयित्री आह्वान कर रहीं हैं कि- हे राजा शान्तनु की पत्नी गङ्गे! तुम्हारा देवव्रत नाम का प्रतापी पुत्र कहां है जो पुन: तुम्हारा इस पाप पुञ्ज से उद्धार करने की भीष्म प्रतिज्ञा करे।[20]

शान्तनोरङ्गने ! क्वाऽस्ति ते साम्प्रतं
स प्रतापी सुतो नाम देवव्रत:।
यो हि कुर्वीत भीष्मां प्रतिज्ञां पुन:
त्वां समधर्तुमस्मादघौघादहो ! ।।

कवयित्री कहती है कि आज गंगा प्रदूषण का निवारण छोटे-मोटे सङ्कल्पों से नहीं वरन् भीष्म प्रतिज्ञा से ही सम्भव है। गङ्गा को स्वच्छ और अमृततोया रूप प्रदान करने का आह्वान करते हुए कहती हैं कि जिस अमृत जलमयी देवनदी गङ्गा को पृथ्वी पर लाने वाले राजा भागीरथ का प्रयास जर्जर हो गया है और वह प्रदूषित हो गई हैं उसे फिर से निर्मल जल वाली बनाने का भागीरथ सङ्कल्प लेना होगा।[21] पुण्य पुञ्ज रूप निकुञ्ज में रहने वाली सुन्दर चञ्चल लहरों के विलास वाली, शीतल जल तरङ्गों वाली, मधुर घर्घर शब्द करने वाली, खिले हुए पुष्पों की सुगन्धि वाली, कल-कल ध्वनि से ध्वनिमान् होती हुई क्रीड़ा करने वाली, छल - छल ध्वनि से अपने दु:ख को व्यक्त करने वाली, झर झर ध्वनि से हंसने वाली देवनदी देवी गङ्गा को फिर से निर्मल जल वाली बनाने का संकल्प सभी मानवों से लेने का कवयित्री आह्वान कर रही है।[22]

तरल- शीतल- तोय- तरङ्गिणी
मधुर- घर्घर- नाद- निनादिनी
विकच - पुष्पसुगन्ध- सुवासिनी
विमलवारिमयी क्रियतां पुन:।।

विकास के पथ पर चलने वाले मानव से अपनी इस विनाशकारी नीति को बदलने का आह्वान करती हुई कवयित्री कहती हैं कि सकल जीव जगत को जीवन देने वाली सभी वृक्षों जड़ी-बूटियों में रस का सञ्चार करने वाली भारतवर्ष की महत्ता को स्थापित करने वाली, हमारी संस्कृति की प्रत्यक्ष मूर्ति देवनदी गङ्गा को पुन: स्वच्छ जल वाली बनाने का संकल्प करना होगा [23]

सकलजीव- सुजीवनदायिनी
निखिल- पादपमूल रसायनी।
भरत- भूमि- महत्त्वविधायिनी
विमलवारिमयी क्रियतां पुन:।।

कवयित्री डॉ. कमला पाण्डेय गङ्गा प्रदूषण निवारण रूपी तथ्य को उजागर करती हुई कहती हैं कि आवश्यकता इस बात की है भगवती गङ्गा के प्रति अपने कर्तव्यबोध और उसके मूल में निहित हित को ध्यान में रखते हुए हमें स्वत: उद्‌बुद्ध होना पड़ेगा; तभी जीवन की विनाश-प्रक्रिया का चक्र रुक पाएगा। यदि समस्त नर नारी गङ्गा चिन्तन में तल्लीन हो जाए तो वह दिन दूर नहीं जब माँ गङ्गा पूर्ववत् अपने आशीष से हम सभी को अभिसिंचित करेंगी। इसके लिए हमें पुराण निर्दिष्ट चौदह त्याज्य कर्मों का परित्याग करने का सङ्कल्प करना होगा जो गङ्गा तट पर सर्वथा निषिद्ध हैं। अपना सङ्कल्प याद रखते हुए हमें उन सभी निषिद्ध कर्मों का त्याग कर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए गङ्गा की स्वच्छता एवं उसकी अविरल धारा के लिए एक सार्थक प्रयत्न करने की महती आवश्यकता है।[24] गङ्गा प्रदूषण के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए कवयित्री डॉक्टर कमला पाण्डेय कहती हैं कि धर्म के अमोघ भय के भस्मासुरों को विचार करना चाहिए कि गङ्गा के विषाक्त जल को पी कर उनकी ही आगे आने वाली पीढ़ी गूंगी, बहरी और अन्धी हो जाएगी। जो मानव भोक्तृत्ववाद से नष्ट चेतना वाले होकर भोगाशक्ति में निमग्न होकर गङ्गा का नित्य तिरस्कार कर रहे हैं, उन सभी को मानव होने के नाते उचित अनुचित का विचार करना चाहिए कि देवी गङ्गा तो स्वर्ग लोक से उतरी जलरूपिणी साक्षात् परा शक्ति स्वरूपा हैं। इन्हें सामान्य जल वाहिनी नदी समझने की भूल कदापि नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये परम कल्याण का सर्जन करने के साथ ही तीनों लोकों में पूजनीय एवं विद्वानों द्वारा वन्दनीय हैं। अत: हम सभी को

जगत्माता, कल्प लता भगवती गङ्गा की सर्वकल्याणार्थ सेवा करने के लिए सङ्कल्पित होने की आवश्यकता है। सभी नदियों की प्रतिनिधि नदी भगवती गङ्गा अमृतमय अङ्गों वाली स्वच्छ एवं निर्दोष होकर तथा स्वच्छ विमल जल से सम्पन्न होकर समस्त जीव समूहों द्वारा सेव्य हो तथा भक्ति-मुक्ति प्रदायिनी गङ्गा अपने सफेद लहरों रूपी दुकूल से युक्त होकर भारतवर्ष में सदा सर्वदा सुशोभित होती रहे।[25] इन्हीं लोक कल्याणकारी शुभ भावों से समन्वित होकर हमें नित-निरन्तर सर्वव्यापी प्रदूषण को दूर करने का सङ्कल्प करना चाहिए।

हमारी साहित्यिक परम्परा के मूल उत्स सर्वभूतहित और लोकमाङ्गल्य को 'रक्षत - गङ्गाम्' महाकाव्य के शाश्वत मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। हमारी अतिशय उदार भारतीय संस्कृति में न तो त्याग की प्रधानता है न ही भोग की, अपितु दोनों का समन्वय अभीष्ट है। इसलिए भारतीय समाज में गृहस्थ और सन्यास जिसके मूल आधार ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ हैं, इत्यादि को जीवन के अनिवार्य अङ्ग के रूप में स्वीकार किया गया है। गृहस्थों के लिए नगर और सन्यासी के लिए अरण्य की उपयोगिता अपरिहार्य है, क्योंकि नगर और अरण्य का सन्तुलन पर्यावरण को शुद्ध रखने में सर्वथा समर्थ है। 'तेन त्क्तेन भुञ्जीथा' से सम्पृक्त हमारी संस्कृति लोकमङ्गल की भावना से पूरित जीवन के त्याग पक्ष पर आधारित है। अत: हमारे महर्षियों ने हमें पहले ही आगाह किया था कि हमें जितनी आवश्यकता हो उतना ही प्रकृति से ग्रहण करना चाहिए ताकि पृथ्वी पर सन्तुलन बना रहे, परन्तु भौतिकवादी समाज अपनी भोगवादी प्रवृत्ति के कारण सम्पूर्ण प्रकृति के साथ निर्दयता पूर्ण व्यवहार करता रहा है। जिसके कारण आज समाज में चतुर्दिक प्रदूषण जैसी भयङ्कर समस्या ने मानव का जीवन दूभर कर दिया है जिसका कारण स्वयं मानव तथा समाज की भोगवादी संस्कृति है। मानव की पदे -पदे दिखाई देने वाली जुगुप्सा के बारे में बताते हए कवयित्री कहती हैं कि प्रदूषण से बोझिल बनाने वाले पाप समूह से निरन्तर क्षीण होती हुई भगवती गङ्गा को बचाने का सफल और सार्थक प्रयास करने का सङ्कल्प हम सभी को मिलकर करना होगा; तभी हमारा निहित लक्ष्य पूरा हो सकेगा। आइए हम सभी मिलकर माँ गङ्गा की स्वच्छ, निर्मल और उसकी अविरल धारा के लिए कृतसङ्कल्प हो सार्थक प्रयत्न करने की महती आवश्यकता है।

निर्मलीकरणं भूयान्नमस्या: प्रयत्न:।
यथेयान्न जगद्धात्री धरां त्यक्त्वा त्रिविष्टपम्।।
अणोरणीयसीं गङ्गां ब्रह्मद्रवस्वरूपिणीम्।
वेदाद्यगोचरां नित्यां प्रणमामि परात्पराम्।।

सन्दर्भ सूची -

(1) रक्षत - गङ्गाम् - मङ्गलाचरणम्- श्लोक -13
(2) तदैव - अध्यात्मम् - 05/3
(3) तदैव - अध्यात्मम्- 4,5/3
(4) तदैव - निवारणम्- 29/11
(5) तदैव - मङ्गलाचरणम् श्लोक- 14
(6) तदैव - मङ्गलाचरणम् श्लोक -10
(7) तदैव - उत्पत्ति: -पौराणिकमतम्-60,61/1/1
(8) तदैव - अध्यात्मम्- 35/9/3
(9) तदैव - यात्रा-तीर्थराजप्रयाग-विन्ध्य वर्णनम्-24-27/3/2
(10) तदैव - तदैव-10-11/3/2
(11) भगवतगीता - 10/31
(12) ऋग्वेद -10/75/5
(13) रक्षत - गङ्गाम् - 25-26/3/2
(14) तदैव - 36-37/3/2
(15) तदैव - 39/3/2
(16) तदैव - 3/3/2
(17) तदैव - 31/3/2
(18) तदैव - 61,79/1/1
(19) तदैव - 1-5/10/4
(20) तदैव - 37/10/4
(21) तदैव - 1/11/5
(22) तदैव - 2-3/11/5
(23) तदैव - 5/11/5
(24) तदैव - 6-7/11/5
(25) तदैव - 27-30/11/5

ISSN 2278 - 0327

उपनिषदों में वर्णित प्रणव (ओ3म्) की उपयोगिता

डॉ. सपना यादव
Post Doctoral Fellow (ICSSR)
SSIS, J.N.U, New Delhi

प्रणव वैदिक वाङ्मय में परिभाषिक शब्द है जो 'ओ3म्' पद के द्वारा वाच्य है। प्रणव एकाक्षरी शब्द ओ3म् है तथा समष्टि रूप में ओ3म् एकाक्षर है।[1] सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में यह अनवरत जारी है। साधारण मनुष्य उस ध्वनि को सुन नहीं सकता है, लेकिन जो भी व्यक्ति उस ओ3म् ध्वनि का उच्चारण करता है, उसके सामीप्य में सकारात्मक ऊर्जा का विकास होने लगता है। फिर भी उस ध्वनि को सुनने के लिए तो पूर्णत: मौन और ध्यान होना जरूरी है। जो भी उस ध्वनि का उच्चारण व श्रवण करने लगता है, वह मनुष्य सीधा परमात्मा से जुड़ने लगता है। ज्ञातव्य है कि उस परमपिता-परमात्मा से जुड़ने का साधारण उपाय ओ3म् का निरन्तर उच्चारण करते रहना है। इसकी पुष्टि उपनिषद् के वाक्यों जैसे '*ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म*'[2] तथा '*ओमिति ब्रह्म*'[3] से होती है। ओ3म् ही प्रणव है तथा प्रणव ही ब्रह्म है। यद्यपि संहिताओं में इसका प्रयोग शब्दत: कम प्राप्त होता है किन्तु प्रणव शब्द का उल्लेख प्रायश: सभी उपनिषदों में किया गया है।

तुलना ऋतुओं से की गयी है, कहा गया है कि इन पांच प्रकार के साम की उपासना ऋतुओं के समय अवश्य करें। वसन्त को हिंकार, ग्रीष्म को प्रस्ताव, वर्षा को उद्गीथ, शरत को प्रतिहार तथा हेमन्त को निधन बताया गया है।[4] सामवेदीय ऋत्विज 'ओ3म्' कहकर ही गान प्रारम्भ करता है। ओ3म् के द्वारा ही ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है।[5] छान्दोग्य उपनिषद् में ओ3म् अर्थात् उद्गीथ का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। इसमें वर्णित है कि जो उद्गीथ है वही प्रणव है तथा जो प्रणव है वही उद्गीथ है।[6] अत: इस प्रकार स्पष्टत: कहा जा सकता है कि सामवेद के अन्तर्गत ओ3म् उद्गीथ के रूप में विद्यमान है। अत: ज्ञातव्य है कि इस तत्त्व में सब ही कुछ ओत-प्रोत है। जिसका न कोई रंग है, न रूप है, न दीर्घ प्रणव को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे कि- ओ3म् , उद्गीथ, अक्षर, ब्रह्म इत्यादि। नारद परिव्राजक उपनिषद् में प्रणव के कई अन्य पर्याय दृष्टव्य हैं। इस उपनिषद् में व्यष्टि रूप में ओ3म को अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, नाद, बिन्दु, कला, और शक्ति आठ पर्याय बताये हैं।[7] ओ3म् को वेद लोक, देवता, व्याहृति, काल इत्यादि का प्रतीक माना गया है। ये सब प्रतीक रूप में ओ3म् की सत्ता विचाराधित न हो करके कार्य-कारणभाव से है। ओ3म् से समस्त सृष्टि की उत्पत्ति मानी गयी है, ओ3म् से वेद लोक देवता आदि की उत्पत्ति बतायी गयी है, संहिताओं में शब्दात्मक रूप में अल्प प्रयोग होने पर भी वेदों का मूलकारण होने से इसको सर्वत्र विद्यमान माना गया है। उपनिषदों में दृष्टव्य है कि ओ3म् द्वारा ही वेदों की उत्पत्ति हुई है, उसी में ये वेद नित्य रहते हैं तथा उसी में विलीन हो जाते हैं।[8] अत: वेद के आदि व अन्त में प्रणव ही विद्यमान है। उपनिषदों का अवलोकन करने पर विदित होता है कि प्रणव वह वैश्विक मूलध्वनि है अथवा तत्त्व है जो सृष्टि के पूर्व भी विद्यमान था तथा भौतिक जगत भी उसी का प्रतिफल है। प्रणव पद से ही ज्ञात होता है कि 'प्र' अर्थात् प्रकृष्ट रूप से जो 'णव' अर्थात् नवीन है वही प्रणव है। शाब्दिक दृष्टि से प्रणव एक ध्वनि है किन्तु औपनिषदिक दृष्टि से यह एक स्तुति का माध्यम है जो श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है तथा सभी वैदिक मन्त्रों में प्रणव शब्द का उच्चारण ओ3म् पद से ग्रहण करते हुये उच्च स्वर में किया जाता है। इस दृष्टि से यह एक प्रकार की वह उच्चरित ध्वनि है जो व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर रहस्यमय प्रभाव डालती है।[9] प्रणव की समानता कहीं-कहीं उद्गीथ पद के साथ की गयी है। सामवेद में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। साम गायन के पांच अंग हैं- प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन। उद्गीथ को साम का सार कहा गया है।[10] पांच प्रकार की सामगायन की है, न ह्रस्व है, न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न स्निग्ध है, न उसकी छाया बनती है तथा न ही वह अन्धकार रूप है, जो आकाश से परे अरस, अगन्ध, अचक्षु, अश्रोत्र, अवाक्, अचिन्तनीय, अप्राण, अनन्तर एवं अबाध्य है, जो न तो भोक्ता है और न ही भोज्य है, जो मन तथा बुद्धि के द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है, ज्ञानेन्द्रियों से भी परे है वही अक्षर तत्त्व है।[11] इसे नेति के माध्यम से भी जाना जा सकता है।[12] कठोपनिषद् में भी इस अक्षर रूपी (ब्रह्म) को

अस्तित्व के रूप में स्वीकृत किया गया है यथा –अस्तोत्येवोपलब्ध–व्यस्तत्त्वभावेन्[13] कहने का तात्पर्य है कि उपनिषद् में कहीं–कहीं यह अक्षर ब्रह्म शब्द के लिये प्रयुक्त हुआ है किन्तु यह कोई भिन्नार्थ नहीं है ये अक्षर रूपी ब्रह्म ओ3म् ही है। ऋग्वेद में भी किसी जगह यह अक्षर ब्रह्म में प्रयुक्त हुआ है और कहीं ओ3म् अर्थ में हुआ है। अत: 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्, ऋचा में यह अक्षर ब्रह्म के साथ–साथ ओ3म् के अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। जिस प्रकार यह अक्षर विकार रहित एवं क्षयरहित होने से ब्रह्म रूप है ठीक वैसे ही विकार रहित होने से ओ3म् रूप भी है। वर्तमान में जो कुछ है, जो कुछ था या फिर भविष्य मे जो भी कुछ होगा। वह सब कुछ ओ3म् से ही ओतप्रोत है।[14] ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्ममय हो जाता है उसी प्रकार से ओ3म् को जानने वाला भी इस ब्रह्मलोक में सुशोभित हो जाता है।[15] समस्त वेदों लोकों आदि की उत्पत्ति, स्थिति, और लय का कारण ओ3म् ही है।[16]

निष्कर्षरूपेण कहा जा सकता है कि प्रणव(ओंकार) ध्यान का परम– साधन ही नही बतलाया गया है, अपितु प्रणव (ओंकार) ध्यान का परम साध्य है। अत: उपनिषदों में ओंकार के द्वारा ध्यान के प्रभाव के महत्त्व का बार–बार उल्लेख किया गया है। सारांश रूप में ओम् आध्यात्मिक जीवन के साधन और साध्य का प्रतीक है। छान्दोग्योपनिषद् यह प्रतिपादित करती है कि समस्त श्रुति इस ओंकार के आधार पर इसी प्रकार से अनुस्यूत है जिस प्रकार एक वृक्ष की शाखा पर पल्लवदल होता है।[17] इन सभी उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि ओंकार अर्थात् प्रणव केवल व्यक्तिगत श्रेय ही नहीं करता वरन् विश्व–श्रेय का भी सम्पादक है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची–

- ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2068.
- ईशादिनवोपनिषद्, स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
- ईशावास्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं ? 2061.
- एक सौ आठ उपनिषद् (ज्ञानखण्ड), सम्पा. वेदमूर्ति तपोनिष्ठ तथा अन्य, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2010.
- ....(साधना खण्ड), सम्पा. वेदमूर्ति तपोनिष्ठ तथा अन्य, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2010.
- ....(ब्रह्मविद्याखण्ड), सम्पा. वेदमूर्ति तपोनिष्ठ तथा अन्य, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2010.
- एकादशोपनिषद्, सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विजयकृष्ण लखनपाल, नई दिल्ली, 1998.
- कठोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2
- छान्दोग्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 1995.
- छान्दोग्योपनिषद्, (शाकरभाष्यसहित), आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1934.
- ध्यानबिन्दूपनिषद् (ब्रह्मविद्याखण्ड), वेदमूर्ति तपोनिष्ठ, गायत्री तपाभूमि, मथुरा, 2010.
- तैत्तिरीयोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2063.
- तैत्तिरीय आरण्यक, सायणभाष्यसहित, आनन्दाश्रम संस्कृतग्रन्थावलि, पूना, 1926. श्रीमद्भगवद्गीता, (शांकरभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000
- दशोपनिषद्, (ब्रह्मयोगिव्याख्यासहिता:) (भाग–1), सं. के. कुळ्जुनि राजा, अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेण्टर, मद्रास, 1936.
- प्रश्नोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2061.
- बृहदारण्यकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 1995.
- माण्डूक्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2065.
- योगचूडामण्युपनिषद् (ब्रह्मविद्याखण्ड), वेदमूर्ति तपोनिष्ठ, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2010.
- श्वेताश्वतरोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं ? 2066.

सन्दर्भ सूची –

1. ओमित्येकाक्षरं। ना अ. उ. ,3
2. ओमित्येतदक्षरमिदं सर्व् तस्योपव्खायानं भूतं भवदभविष्यदिति सर्वमोंकारं एव। मा. उ. 1
3. ओमितिब्रह्म। ओमितीदं सर्वं। ओमित्येतदनुक्रुतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति। तै. उ. 1 / 8 / 1
4. ऋतुषु पञ्चविधं सामोपासीत वसन्तो हिंकारो ग्रीष्म: ।
   प्रस्तावो वर्षा उद्गीथ: शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम्॥ छा उ. 2 / 5 / 1
5. ओमिति ब्रह्म। ओमितोदं सर्वम् ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति ओमिति ब्राह्मण: ॥ तै. उ. 1 / 8
6. अथ खलु य: उद्गीथ: स प्रणवो य: प्रणव: स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य.....स्वरन्नेति॥ श्वेता0 1 / 7
7. अकारोकारमकारार्धमात्रानादबिन्दुकलाश्क्तिश्चेति॥ ना. प. उ. 8 / 2
8. अथ खलु य: उद्गीथ: स: प्रणवो य: प्रणवो स उद्गीथ: इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति।, श्वेता. 1 /7
9. धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत। मु. उ. 2 / 2 / 3
10. ऋच: साम रस: साम्न उद्गीथो रस:। छा. उ. 1 / 1/ 2
11. बृ. उ. 3 / 8 / 8
12. नेति नेति न ह्येतस्मादिति। वही. 2 /3 / 6
13. कठो. 2 / 3 / 13
14. ओमित्येतदक्षरमिदं सर्व तस्योपव्याख्यानं भूतं भवदभविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ मा. उ. 1 / 1
15. एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते। कठो. 1 / 2 /17
16. ध्या. बि. उ. 9 / 12
17. तद्यथा शंकुना सर्वानिपर्णानि संतृणानि एवमोंकारेण सर्वा वाक् संतृणा ऊँकार एवेदं सर्वम्।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के हिन्दी उपन्यास : स्त्री विमर्श के संदर्भ में

सरिता पारीक
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

स्वतंत्रता के पश्चात आज भी महिलाएं पुरुष प्रधान समाज में उनके बनाए गए नियम कानूनों में जकड़ी हुई है। देश स्वतंत्र अवश्य हुआ लेकिन महिलाओं को आज भी पूरी तरह से स्वतंत्रता नहीं मिली। स्त्री स्वतंत्रता के लिए समय-समय पर अलग-अलग आंदोलन हुए जिससे महिलाओं को उनके अधिकार मिल सके। आंदोलन का शुरुआती बिंदु पश्चिम से रहा वहां पर आंदोलन का मुख्य मुद्दा महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकारों का था, लेकिन भारत में महिला स्वतंत्रता का मतलब प्राचीन रूढ़ीवादी विचारों से मुक्ति का था। महिलाएं पुरानी परंपराओं से मुक्ति चाहती थी जैसे धूंघट प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह आदि।

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को घूंघट में रहना पड़ता है। 21 वीं सदी के समाप्त होने के बाद भी महिलाएं पुरानी परंपराओं में जकड़ी हुई हैं। इसमें सुधार अवश्य हुआ है, परंतु राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश ऐसे राज्य हैं, जहाँ आज भी महिलाएं इन रीति-रिवाजों से बंधी हुई हैं। आज महिलाएं इन परंपराओं से निकलना चाहती है, लेकिन समाज के डर से आज भी कई परिवार इन परंपराओं में बने रहने के लिए बाध्य है। वह समाज में परिवार के सम्मान को बचाने के लिए इन सभी परंपराओं का पालन करती है। आज भी गाँव में महिलाएं साड़ी पहनने के लिए बाध्य है, सूट पहनना उनके लिए किसी युद्ध से कम नहीं है। आज भी महिलाएं स्वतंत्र निर्णय लेने में असमर्थ हैं। उन्हें उनके कर्तव्यों का पालन तो करना सिखाया जाता है, लेकिन उनके अधिकारों के बारे में नहीं बताया जाता है। अधिकार केवल पुरुषों के लिए सुरक्षित हैं। महिलाएं केवल पुरुषों के द्वारा बनाए गए नियमों का पालन करती हैं, ऐसा नहीं है कि इसमें सुधार नहीं हुआ। लेकिन महिलाओं की स्थिति में जो सुधार हुआ है, वो अपेक्षा के अनुसार नहीं है। आज भी महिलाएं पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं है, कहीं ना कहीं उनके निर्णय पुरुषों पर निर्भर है। इन समस्याओं को महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में भली प्रकार उजागर किया है ताकि महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें। स्त्री समस्याओं पर जो भी उपन्यास लिखे गए ज्यादातर हिन्दी के रचनात्मक साहित्य में दिखाई देते हैं। उपन्यासों में समय-समय पर महिलाओं की सभी समस्याओं को बारीकी से उजागर किया गया है। स्वतन्त्रता के बाद जो भी उपन्यास महिला लेखिकाओं ने लिखे गए उनका व्यापक मुद्दा स्त्री विमर्श व स्त्री अस्मिता को लेकर रहा है। एक महिला लेखिका ही स्त्री अस्मिता, स्त्री समस्याएं स्त्री के अधिकारों को को अपने लेखन में भली प्रकार से उजागर कर सकती है और सामाजिक सच्चाई और स्त्री अस्मिता के संघर्ष को अपनी कलम द्वारा उपन्यासों में अथवा कहानियों में समाज के सामने प्रस्तुत कर सकती हैं। स्त्री अस्मिता की पहचान स्त्री का अस्तित्व समाज में उसके सम्मान का प्रश्न है, जिसके लिए वह निरंतर जन्म पर्यंत संघर्ष करती आई है और वह संघर्ष आज तक चल रहा है। आज भी नारी को चाहे ग्रामीण हो या शहरी, शिक्षित हो या अशिक्षित गृहिणी हो या कामकाजी महिला उसे सामाजिक राजनीतिक अथवा व्यवसायिक अथवा किसी भी स्तर पर हो उसे संघर्ष करना पड़ता है। माँ की कोख से लेकर जन्म पर्यन्त यह संघर्ष चलता रहता है। परिवार में मुखिया ही जो उसका पति या पिता के रूप में होता है, वही सभी फैसले करने का अधिकारी होता है। स्त्री को समाज में पुरुष द्वारा बनाए गए नियमों वह कानूनों को मानना पड़ता है। उसको अपने स्वतंत्र निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं होता। समाज मे स्त्री को कहां जाना है कहां काम करना है, क्या नहीं करना, किससे बात करनी है, घर से बाहर कोई काम करना है या नहीं यह सब घर का मुखिया जो एक पुरूष होता है, वही सुनिश्चित करता है और यही सब लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में दिखाया है। अस्मिता का प्रश्न पिछले कुछ दशकों से साहित्य में निरंतर उठाया जा रहा है। अधिकतर महिला लेखिकाओं ने स्त्री अस्मिता के वास्तविक रूप को अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है। महिला आंदोलन वह

आंदोलन है जो हासिये पर छोड़ दिए गए नारी के अस्तित्व का फिर से केंद्र में स्थापित करने में लगा है सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक,धार्मिक व आर्थिक व्यवस्था चाहे फिर कोई भी जगह हो स्त्री को ही झुकना पड़ता है। प्रत्येक वर्ग में नारी को ही शोषित और अपमानित होना पड़ता है। पुरुष द्वारा नारी का शोषण करने का षड्यंत्र रचा जाता रहा है। समाज में नारी अपना वजूद अपनी पहचान बनाना चाहती है, इसके लिए उसे बाहरी लोगों के साथ-साथ घर-परिवार के लोगों से भी संघर्ष करना पड़ता है। यही संघर्ष उसे अपनी पहचान बनाने में मदद करता है और जो उसे पुरुष प्रधान समाज में बराबरी का दर्जा दिलाता है।

नारी सामंतवादी व्यवस्था से लेकर पूंजीवादी व्यवस्था और समाजवादी व्यवस्था में अपने अस्तित्व के लिए निरतंर संघर्ष करती आई है। समाज में रूढ़िवादी व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है इसे रूढ़ीवादी परंपराओं और सोच के विरुद्ध विश्व भर के चिंतन में नारीवादी आंदोलन एक नया आयाम और परिप्रेक्ष्य निर्मित करने में लगा है। पश्चिम में स्त्री विमर्श शुरू करने का श्रेय सीमोन द बाउवार को जाता है, जिन्होंने सेकेंड सैक्स लिखकर पितृसतात्मक समाज में तहलका मचा दिया, इसमें सामाजिक ढांचे को चुनौती दी गई है उन्होंने कहा कि स्त्री पैदा नहीं होती उसे बना दिया जाता है। इसके द्वारा स्त्री अस्तित्व तथा समाज में उसके शोषण के विरुद्ध विद्रोह और मुक्ति का विमर्श एक आंदोलन बनकर सामने आया। 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया, इसका असर भारत वर्ष में भी हुआ। साहित्य की दुनिया में स्त्री अस्मिता का संघर्ष अदम्य जिजीविषा लिए स्वातंत्र्य देह, यौन उत्पीड़न पर आवाज उठाने वाले उपन्यास और कहानियां लिखे जाने लगी। जो समाज में यथार्थ प्रस्तुत करती हैं वह समाज जहाँ स्त्री को जीने के लिए एक अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए हर दिन संघर्ष करना पड़ता है। स्त्री की आजादी के प्रश्न जीवन के केंद्रीय प्रश्न है, किंतु हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में यह स्थिति नहीं दिखाई गई। भारत सरकार ने सन् 2001 को महिलाओं के सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित किया, ताकि प्रत्येक महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सके और अपने अधिकारों को लेकर लड़ाई कर सकें। यही लड़ाई सीधी नारी सशक्तिकरण के रूप में परिलक्षित होती है। स्त्री अस्मिता का प्रश्न स्त्री विमर्श का ही एक अंग है जिसमें नारी अपने अस्तित्व को स्थापित करने में लगी हुई है, हिंदी साहित्य में नारी विमर्श का दौर आठवें दशक आते-आते एक आंदोलन का रूप ले लेता है। महिला लेखिकाओं में उल्लेखनीय है कि स्त्री विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियों से चले आ रहे शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतना ने ही स्त्री विमर्श को जन्म दिया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने समाज को हमेशा अंधकारमय जीवन जीने को मजबूर किया है, लेकिन आज की नारी चेतनशील है जिसे अच्छे बुरे का ज्ञान है। जो स्थिति मैथिलीशरण के गुप्त के समय थी कि- अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आंचल में है। आंखों में पानी कहकर नारी की चिंता व्यक्त किया है, लेकिन आज नारी अबला नहीं सबला है। वह अपना अस्तित्व बनाए रखने में सक्षम है वह पुरुष समाज को टक्कर देने के लिए तैयार है, क्योंकि वह उसके बराबर कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध है। अब स्थिति कुछ बदली नजर आती है। क्योंकि छठी शताब्दी के पहले तक सिर्फ पुरुष लेखकों का अधिकार था महिला लेखन की केवल लेखक हंसी उड़ाई जाती थी।

अब नारी विमर्श का डंका बज रहा है क्योंकि आठवें दशक तक आते-आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गई। प्रभा खेतान का छिन्नमस्ता उपन्यास उनका तीसरा एवं सबसे चर्चित उपन्यास है जो उत्पीड़न एवं सामर्थ्य की कहानी एक साथ बयान करता है यह उपन्यास मारवाड़ी परिवार में जन्मी प्रिया के बचपन से लेकर विवाह तक संघर्ष को बयान करता है।

लेखिका ने अपने समय में पितृसत्तात्मक समाज में जो दर्द झेला और जिन संघर्षों को देखा उन्हीं संघर्षों को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। यह संघर्ष लेखिकाओं का निजी संघर्ष है, स्वयं की पीड़ा है, जिसका यथार्थ रूप उपन्यासों में मिलता है। विभिन्न महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में नारी के संघर्षों को बखूबी दिखाया है, वह सराहनीय है उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी के संघर्ष के हर रूप को उजागर किया है, जो नारी को समाज व समाज के बाहर अपना अस्तित्व, अपना वजूद, अपनी पहचान बनाए रखने में मदद करता है।

हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याओं में देखने को मिलती हैं। आठवें दशक तक आते-आते इसी मुद्दे ने आंदोलन का रूप ले लिया जो शुरुआती स्त्री विमर्श से ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुआ आज मैत्रेयी पुष्पा तक आते-आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गई जिसने पितृसता समाज को झकझोर दिया। नारी मुक्ति की यह गूंज अब देहमुक्ति के रूप में दिखाई देने लगी। लेकिन 1990 के बाद उपन्यासों में थोड़ा बदलाव हुआ स्त्रियां अब समझने लग गई थी उसका यह संघर्ष जो पुरुष और समाज के विरूद्ध है, उससे लड़ते

हुए उसे अब समाज में अपना अस्तित्व जमाना पड़ेगा। हिंदी साहित्य में प्रभा खेतान उषा प्रियंवदा, मनु भंडारी, मृदुला गर्ग, आदि लेखिकाओं ने ऐसे उपन्यासों की रचना की जिनमें स्त्री के संघर्षों के साथ-साथ समाज में अपनी अस्मिता को बचाए रखना भी था।

स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते सामाजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गये रास्तों के कारण जन्में नयें प्रश्नों के टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री की मुक्ति का मूल उसके मनुष्य के रूप में स्वीकारे जाने का प्रश्न है। पिछले दो दशकों से विश्व के हर क्षेत्र में देखी जा रही हैं कि स्त्रियाँ अपने बारे में स्वयं अपने को विषय बना कर चर्चा कर रही हैं, अपनी समस्याओं से जुड़े विषय अपनी तरह से उठा रही हैं।

जब महिलाओं की एक बड़ी जमात ने अपनी धाक जमानी शुरु की तो समीक्षकों के लिए कोई विकल्प नहीं रह गया, क्योंकि इसे अनदेखा करना संभव नहीं था। संवेदना के स्तर पर ये रचनाएँ आश्चर्यजनक रूप से भिन्न थीं और इसमें मूलभूत अंतर वही था जो एक स्त्री और पुरुष की भावनात्मक और सोच के धरातल पर होता है।

उपन्यास के क्षेत्र में स्त्री समस्याओं पर लिखे गए उपन्यासों में कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' एक अक्खड़ और दबंग औरत की एकांतिक तस्वीर प्रस्तुत करती है, उषा प्रियंवदा की 'रुकोगी नहीं, राधिका' 'पचपन खंभे,लाल दीवारें' और 'शेष यात्रा' में परंपरा और रूढ़ियों के द्वंद्व में फंसी एक आधुनिक स्त्री की अपनी अस्मिता को ढूँढने की तलाश है।

नासिरा का उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' 'जिसमें बचपन में बिना पैसे के लेन-देन के मंगनी हो जाती है और लड़का बड़ा होने पर शादी करने से मुकर जाता है। इस पर कद्दावर औरत टूटती नहीं, वह अपना एक घर बनाती है, एक वजूद हासिल करती है और मर्द के लौटने पर उसे दुबारा कुबूल नहीं करती। प्रभा खेतान के उपन्यासों में शोषण के साथ-साथ स्त्री संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। इन संघर्षों में नारी जीवन के भावात्मक संबंधों को ईमानदारी से जीने की जीजिविषा की तरह उत्पन्न संघर्ष का वर्णन किया गया है। नारीवादी लेखन आज के समय की जरूरत है। आधुनिकता और उदार सोच के तमाम दावों के बावजूद स्त्री की सामाजिक स्थिति या उत्थान में कोई बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया है। आज भी वे समझौतों और दोहरे कार्यभार के बीच पिस रही हैं। पुरुष सत्ता की नीवें हमारे समाज में बहुत गहरे तक धंसी हुई हैं। इसे तोड़ना, बदलना या सँवारना एक लम्बी लड़ाई है। साहित्य और शिक्षा हो या सामाजिक संगठन, हर क्षेत्र में स्त्रियाँ अपनी-अपनी तरह से अपनी लड़ाई लड़ रही हैं और स्त्रियों की पारंपरिक दासता में बदलाव लाने की कोशिश में रत हैं।

पितृसत्तात्मक अधिकार भावना के कारण, कभी पुरुष की अहम् भावना के कारण तो कभी शिक्षित होने एवं आत्मनिर्भर होने के बाद भी सदैव कदम-कदम पर महिलाओं को शोषण का शिकार होना पड़ा है। इस शोषण और उसके विरुद्ध स्त्री के नितांत निजी संघर्षों की लंबी एवं करूण कहानी है। उसे न केवल बाह्य समाज बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक कि खुद से भी निरंतर संघर्ष करना पड़ा है। भारतीय समाज में तो स्त्री को हमेशा से एक वस्तु के रूप में देखा जाता रहा है।

'अस्मिता' एक ऐसा शब्द है जो व्यक्ति को पहचान के एक अलग धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते हैं- अस्मिता को परिभाषित करना कठिन है, फिर भी 'मैं हूँ' से लेकर 'मैं किस लिए हूँ' तक की अंतर्यात्रा कई पड़ावों से होकर अंततः अस्मिता के गंतव्य पर पहुँचकर ही पूरी होती है। बेहतरीन समाज की स्थापना के लिए जिस मुक्ति संघर्ष की प्रणालियां इतिहास में रूपायित हुई हैं, उनमें एक है 'नारी चिंतन' है। इस चिंतन धारा के केंद्र में भी अस्मिता की तलाश का ही प्रश्न रहा है। स्त्री विमर्श के माध्यम से प्रारंभ हुई इस स्त्री अस्मिता के लिए जो भी संघर्ष हुए उनसे कोई बड़ा बदलाव या कोई बहुत बड़ा चमत्कार तो नहीं उत्पन्न हुआ परन्तु समाज की मानसिकता में कुछ बदलाव की स्थिति अवश्य बनी है। स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए, अनजान पहलुओं, एवं नारी की पीड़ा तथा दर्द को समझने मे मदद अवश्य करता है। स्त्री विमर्श स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के खिलाफ एक सशक्त संघर्ष है। आज के समय में समकालीन कथा साहित्य पर चर्चा तब तक पूरी नहीं मानी जाती, जब तक उसमें स्त्री चिंतन, स्त्री अस्मिता से प्रेरित कथा को स्थान न दिया जाए। सच ही कहा गया है कि किसी भी सभ्य समाज की संस्कृति, व्यवस्था और उन्नति का मूल्यांकन उस समाज की स्त्रियों की स्थिति के आकलन द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते सामजिक व्यवस्था में उसकी भूमिका, तलाशे गये रास्तों के कारण उनके द्वारा जन्में नयें प्रश्नों के टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री की

मुक्ति का मूल उद्देश्य उसके मनुष्य के रूप में स्वीकारे जाने का प्रश्न है। परिवार को उससे उम्मीदें बहुत ज्यादा होती हैं। वह अपनी सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए लेकिन शिकायत होने पर भी उसका विरोध न करे अपने अधिकारों के लिए बोलना उसका गुनाह समझा जाता है। स्त्री की अपनी क्या इच्छाएं है इससे किसी का कोई सरोकार नहीं होता।

कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, मंजुल भगत, उषा प्रियम्वदा, ममता कालिया आदि लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों पारंपरिक रूढ़िवादियों, राजनैतिक-आर्थिक मुद्दों तथा स्त्री अस्मिता, पारिवारिक घुटन एवं समाज के बंधनों को अपने कथा साहित्य का प्रमुख विषय बनाया। सभी दूसरे विषयों के बावजूद इनके साहित्य में स्त्री मुक्ति, स्त्री अस्मिता का प्रश्न ही केंद्र में है। वे 'फेमिनिज्म' का अर्थ दरअसल सोच की जकड़बंदी से मुक्ति के रूप में मानती हैं। समाज की पुरानी सड़ी-गली मान्यताओं, संस्कारों परंपराओं बंधन आदि से मुक्ति पा लेना ही उनके लिए स्त्रीवाद का मतलब है। मृदुला जी नारीवाद की परिभाषा देते हुए कहती हैं कि- 'नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार है यह तय करने का कि वह क्या करना चाहती है? क्या नहीं? नारी अस्मिता को समाज के सामने प्रस्तुत करना वह अपना धर्म समझती है। नारी चेतना केवल शब्दों में नहीं उसे सभी लोगों को अपने व्यवहार में लाना चाहिए नारी का अपना जीवन है, और वह इस पुरूष प्रधान समाज में गरिमापूर्ण जीवन जीना चाहती है।

निष्कर्ष

हिंदी उपन्यासों में महिला लेखिकाओं ने नारी के जिन संघर्षों का सामना करते हुए अपनी अस्मिता को स्थापित करते हुए दिखाया है वह बहुत ही सराहनीय है। लेकिन व्यवहार में महिलाओं को परिवार, समाज एवं व्यवसायिक स्तर पर बहुत सारी समस्याओं एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है। जैसे कामकाजी महिला को घर और बाहर दोनों को संभालना पड़ता है। पुरुष जब बाहर से काम करके आता है तो उसे चाय पानी पूछा जाता है। लेकिन महिलाओं को आज भी काम से लौटने पर स्वयं ही बनाना पड़ता है। स्त्री पुरुष दोनों एक समान काम करते हैं। लेकिन परिवार का रवैया दोनों के प्रति भिन्न-भिन्न है जिसमें बदलाव आना चाहिए। परिवार के लोगों को अपनी सोच बदलनी चाहिए, जितनी थकान एक पुरुष को बाहर काम करने से होती है उतनी ही एक महिला को भी होती है। अगर महिला घर आकर काम कर सकती है, तो पुरुष भी कर सकता है। परिवार में महिला पर जो भी प्रतिबंध लगाए जाते हैं। उनसे उसे आजाद करना चाहिए। एक महिला को अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं जीने का अधिकार है जो लोगों की सोच बदलने पर ही संभव है केवल उपन्यासों में महिला महिलाओं को सशक्त दिन है, इसके लिए महिला संगठनों, समाज सुधारकों एवं प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करना होगा तभी महिलाओं के स्वाभिमान एवं अस्मिता को बचाया जा सकता है। इसके लिए स्वयं महिलाओं को ही आवाज उठानी होगी ताकि वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सके। इसी प्रकार व्यवसायिक सर पर महिलाओं का समान वेतन पुरुषों के समान कार्य करने का अधिकार एवं कार्य स्थल पर पूर्ण सुरक्षा मिलनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ-

- मैत्रेई पुष्पा, (2016) चाक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
- प्रभा खेतान, (1993)छिन्नमस्ता, नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन
- महादेवी वर्मा, (1942)श्रृंखला की कड़ियां राधाकृष्ण प्रकाशन
- नासिरा शर्मा,(2018) ठीकरे की मंगनीज़ अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली : किताब घर प्रकाशन
- चित्रा मुद्गल,(1999) आवाँ, नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन
- चित्रा मुद्गल, (2008) एक जमीन अपनी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
- हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद-डॉ. त्रिभुवन सिंह, ओमप्रकाश बेरी प्रकाशन, बनारस-1955
- भारत की जनजातियाँ-डॉ. शिवतोष दास, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली 1983
- अल्मा कबूतरी में सामाजिक यथार्थ-एम.फिलशोधप्रबंध-2008 अर्पणा दीप्ति
- उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन प्रकाशित वर्ष : 2009
  आई एस बी एन : 978-81-267-1662
- उषा प्रियंवदा, (2010) रुकोगी नहीं राधिका प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन
  आईएसबीएन : 9788171789238
- उषा प्रियंवदा ,(2013) शेष यात्रा प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन
  आईएसबीएन : 9788126724222
  आलेख : पचपन खंभे लाल दीवारें/डॉ.राजेश कुमारी कौशिक

ISSN 2278 - 0327

आधुनिक जीवन में 'श्रीरामचरितमानस' की भूमिका

ममता रयाल
शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग
श्रीगुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

प्रो. कंचन जोशी
पर्यवेक्षक
श्रीगुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

शोध सार-

भारत देश की जिस धरती में 'श्रीरामचरितमानस' की रचना की गई वहाँ के सामाजिक, आध्यात्मिक, धार्मिक और जीवन मूल्यों की सम्पूर्णता का समावेश एक साथ है। ''रामचरित मानस'' अपने मूल रूप में अवधि साहित्य (हिन्दी साहित्य) की एक महान रचना मानी जाती है, भारतीय संस्कृति में 'श्रीरामचरितमानस' का एक विशिष्ठ स्थान है। 'श्रीरामचरितमानस' की लोकप्रियता अद्वितीय है। उत्तर भारत में इसे बहुत से मनुष्यों द्वारा ''रामायण'' के रूप में पढ़ा जाता है।

'श्रीरामचरितमानस' भारतीय संस्कृति का अद्वितीय ग्रन्थ जिसकी उपयोगिता सम्पूर्ण विश्व में स्वीकार की गई है न केवल आध्यात्मिक एवं धार्मिक दृष्टि से, बल्कि मानव जीवन के व्यावहारिक पक्ष के उन्नयन की दृष्टि से भी उपयोगी है। सदाचार, धर्माचरण एवं श्रेष्ठ क्रियाएँ मानव जीवन की प्रगति तथा कल्याण के लिए आवश्यक हैं। 'श्रीरामचरितमानस' में वर्णित ज्ञान एवं योग को विश्व के अनेक राष्ट्रों ने अंगीकृत किया है।

मुख्य शब्द-

श्रीरामचरितमानस, ज्ञान, योग, तप, गुण व चरित्र।

प्रस्तावना-

रामचरितमानस अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 16वीं सदी में रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को अवधी साहित्य की एक महान कृति माना जाता है। इसे सामान्यत: 'तुलसी रामायण' या 'तुलसीकृत रामायण' भी कहा जाता है। रामचरितमानस भारतीय संस्कृति में एक विशेष स्थान रखता है। रामचरितमानस की लोकप्रियता अद्वितीय है। उत्तर भारत में 'रामायण' के रूप में बहुत से लोगों द्वारा प्रतिदिन पढ़ा जाता है। शरद नवरात्रि में इसके सुन्दर काण्ड का पाठ पूरे नौ दिन किया जाता है। रामायण मण्डलों द्वारा मंगलवार और शनिवार को इसके सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है। रामचरितमानस के नायक भगवान श्रीराम हैं जिनको मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में जाना जाता है, जो इस अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी हरि नारायण भगवान के अवतार स्वरूप है साथ ही महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में राम को एक आदर्श चरित्र मानव के रूप में दिखाया गया है। जो सम्पूर्ण मानव समाज यह सिखाता है कि जीवन को किस प्रकार जिया जाय भले ही उसमे कितने भी विघ्न हों तुलसी के राम सर्वशक्तिमान होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। गोस्वामी जी ने रामचरित का अनुपम शैली में दोहों, चौपाइयों, सोरठों तथा छंद का आश्रय लेकर वर्णन किया है।

रामचरितमानस को गोस्वामी जी ने सात काण्डों में विभक्त किया है। इन सात काण्डों के नाम हैं – बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। छन्दों की संख्या के अनुसार बालकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड क्रमश: सबसे बड़े और छोटे काण्ड हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में अवधी के अलंकारों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है विशेषकर अनुप्रास अलंकार का। रामचरितमानस में प्रत्येक हिंदू की अनन्य आस्था है और इसे हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है।

रामायण में योग सिद्धान्त का स्वरूप-

भारत के प्राचीन ग्रन्थ रामायण में 'योग' शब्द का स्पष्ट उल्लेख तो प्राप्त नहीं होता परन्तु रामायण में जीवन जीने की कला एवं योग के अंग अहिंसा, तप, सन्यास आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। योग का मुख्य लक्ष्य समाधि (मोक्ष) प्राप्त करना है जिसके लिए इन्द्रियों पर संयम मुख्य आधार है और इस संयम की अवस्था की प्राप्ति के लिए नियमित आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास जरूरी है जैसा कि रामायण में इन्द्रिय संयम के लिए वर्णन प्राप्त होता है –

न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जित क्रोध जितेन्द्रिया:।

रक्षितव्यास्त्वया शश्वद्गर्भ भूतास्त पोधनाः।।[1]

अर्थात् ऋषिगण तपस्या करते हुए इन्द्रियों को जीत लेते थे और क्रोध का परित्याग कर देते थे। वन भ्रमण के समय ऋषिगण श्री रामचन्द्र जी से दुष्ट राक्षसों के दमन करने के प्रसंग में स्वयं को जितेन्द्रिय होना बतलाते हैं।

हलांकि रामायण काल में तप का विषेश महत्व एवं प्रचलन रहा है परन्तु योग का स्वरूप एवं विकास क्रम क्या था, यह कहना कठिन है। योग में तप का प्रयोग क्रियायोग (तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान) के रूप में प्राप्त होता है जिसके अभ्यास से आध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त होती थी। तप से मुनि अग्नि के समान देदीप्यमान और ब्रह्म तेजयुक्त हो जाते थे। तप से ब्रह्मतत्व की प्राप्ति हो जाती थी। इस अवधि के समाप्त करने पर तपस्वी वैसे ही स्नान करता है जैसे - ब्रह्मचारी अध्ययन समाप्त करने पर स्नातक बनते समय।[2]

योग शास्त्र में शरीर शुद्धि का अपना विशेष महत्व है उसी प्रकार से रामायण में भी देह शुद्धि का विधान प्राप्त होता है।

शालग्राम शिलायां वा पूजयेन्मामतन्द्रितः।
प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत प्रथमं देहशुद्धये।।[3]

अर्थात् अध्यात्म रामायण में भी देहशुद्धि का विधान है जिसे प्रातःकाल करने का निर्देश है। इस प्रकार से शुद्धि के साथ-साथ रामायण मोक्ष की बात भी करता है जो कि योग का अंतिम लक्ष्य के रूप में माना जाता है -

इदमेव सदा प्राहुर्योगिनो मुक्ति साधनम्।
नारदोऽपि तथा व्यासो ब्रम्ह्म कमलसाधनम्।।[4]

उक्त श्लोक से प्रतीत होता है कि अध्यात्म रामायण मोक्ष की परिकल्पना को भी आत्मसात् करती है क्रियायोग में फल के सन्दर्भ में मुक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है।

जिनका अध्ययन एवं चिन्तन करने पर योगदर्शन के यथार्थ स्वरूप को समझते हुए जीवात्मा परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। प्राचीन साहित्य के अन्तर्गत नेतृत्व करने वाले योगी नेतृत्व हुआ करता था जैसे रामायण काल में महाराज जनक, रघु, अज, दिलीप, राम, भरत, गुरू वशिष्ट आदि ऋषि राजाओं में योग की वृत्ति विद्यमान थी। पौराणिककाल में भगवान् श्रीकृष्ण एवं शुकदेव मुनि का जीवन देखते हैं तो उनका सम्पूर्ण जीवन योगमय था।

श्रीरामचरितमान की उपयोगिता-

'श्रीरामचरितमानस' भारतीय आचार-विचार संस्कारों, परिवारों एवं सम्बन्धों का आदर्श ग्रन्थ है। जिसमें मातृ-पितृ भक्ति, भाइयों के बीच का प्रेम, पति-पत्नी के बीच का पवित्र सम्बन्ध, सेवा, भक्ति का भाव, आज्ञाकारी का भाव जिम्मेदारी का भाव एवं एक कुशल नेतृत्व का भाव सामाहित है।

वर्तमान समय में परिवारों के बीच आपसी सम्बन्ध आपसी प्रेम-भाव, आदर-सम्मान देखने को नहीं मिलता है। जिसके कारण परिवारों में कलह, भाई-भाई के बीच में द्वेष, पति-पत्नी के बीच में झगड़ा और बड़ों के प्रति अनादर का भाव व्याप्त रहता है, जिसका मुख्य कारण है कि हम अपने बड़े-बुजुर्ग व पूर्वजों द्वारा बतायी गयी बातों का पालन नहीं करते हैं। हमारे पूर्वजों व बड़े-बुजुर्गों द्वारा हर घर व परिवार में रामायण को रखना व उसका पाठ करना अनिवार्य कहा गया था। वे कहते थे कि प्रत्येक मनुष्य को ''रामायण'' का ज्ञान हो और प्रत्येक परिवार व सम्पूर्ण समाज को सुन्दर काण्ड का पाठ करना चाहिए जिससे प्रत्येक घर व परिवार में कलह की स्थिति न बनें, भाइयों के बीच में आपसी भाई-चारा हो, पति-पत्नी के बीच में आपसी मधुर सम्बन्ध हों। माता-पिता के प्रति भक्ति भाव हो परिवार के प्रति स्नेह हो, आदर-सम्मान का भाव हो, सभी आज्ञाकारी बने, सेवा का भाव हो और मर्यादा पुरूषोत्तम राम की तरह आदर्श व चरित्रवान बनें। 'श्रीरामचरितमानस' वर्तमान युग में एक आशीर्वाद स्वरूप ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक पहलू को भक्तगण स्तुतिवत सम्मान देते हैं, इसके पाठ करने से सांसारिक वह परमार्थ रूपी कार्य सिद्ध होते हैं। 'श्रीरामचरितमानस' में धार्मिकता के दृश्य देखने को मिलते हैं। वर्तमान समय में परिवार और समाज में एकजुटता पारस्परिक प्रेम-भाव, श्रद्धा भाव एवं भक्ति भाव स्थापित करने हेतु 'श्रीरामचरितमानस' एक अमृत रूपी ग्रन्थ है, जिसकी अमृत धारा से समस्त संसार का कल्याण सम्भव है। धर्म और त्याग की भावना से ओत-प्रोत 'श्रीरामचरितमानस' का वैष्णव संस्कृति के सन्दर्भ में अध्ययन करना मानव समाज के लिए लाभकारी सिद्ध होगा। क्योंकि इसमें मानव कल्याण हेतु उपयोगी अनेकों तत्व विद्यमान हैं तथा इसका महत्व अत्यधिक उन्नति पूर्ण है।

'श्रीरामचरितमानस' पर हुए विभिन्न शोध से यह विदित हुआ है कि यह ग्रन्थ वर्तमान परिस्थितियों में परिवार व समाज को एकजुट बनाये रखने व पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर व अटूट बनाये रखने में अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिससे परिवार व समाज में एक सौहार्दपूर्ण वातावरण बना रहे और मनुष्य संस्कारवान बना रहे।

आज के समय में भगवान श्री राम आदर्श चरित्र के रूप में स्थापित हैं। मनुष्य को उनके गुणों का अनुसरण करते हुए उनको

अपने जीवन में धारण करना चाहिए। भगवान श्री राम के आदर्श चरित्र व गुणों का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं –

हरि अंनत हरि कथा अंनता।
कहहिं सुनहिं बहुविधि संबसता।।
रामचन्द्र के चरित सुहाए।
कलप कोटिलगि जाहि न गाए।।

अर्थात् श्री हरि अनंत हैं उनका कोई पार नहीं पा सकता उनकी कथा भी अनंत है सभी संत (मनुष्य) लोग उसे अनेक प्रकार से कहते व सुनते हैं। भगवान श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर चरित्र को करोड़ों कल्पों में भी गाया नहीं जा सकता।

'श्रीरामचरितमानस' प्रत्येक भारतीय की अनन्य आस्था का प्रतीक है, इसे भारतीयों का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है, इसी ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त मानस कथा प्रचलित है। यह बात उस समय की है जब मनु सतरूपा परमब्रह्म जी की तपस्या कर रहे थे कई वर्ष तपस्या करने के बाद भगवान् शंकर जी ने पार्वती से कहा की मैं, ब्रह्मा और विष्णु कई बार मनु–सतरूपा के पास वर देने के लिए आये जिसका उल्लेख 'श्रीरामचरितमानस' में इस प्रकार मिलता है–

विधि हरि हर तप देखि अपारा मनु समीप आये बहुबारा

अर्थात् ये (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) लोग तो कई बार यह कहने को आये की जो वर तुम माँगना चाहते हो वह माँग लो। परन्तु मनु और सतरूपा को तो पुत्र रूप में स्वंय परब्रह्मा को ही माँगना था तो फिर ये कैसे उनसे अर्थात ब्रह्मा, विष्णु व महेश से वर माँगते।

हमारे प्रभु श्रीराम तो सर्वज्ञाता हैं वह भक्त के ह्रदय की अभिलाषा को स्वयं ही जान लेते हैं। जब तेईस हजार वर्ष बीत गये तो भगवान् श्रीराम के द्वारा आकाश वाणी होती है।

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी गति अनन्य तापस नृप रानी।
मागुँ मागुँ बरू भई नभ बानी, परम गंभीर कृपामृत सानी।।

अर्थात् सर्वज्ञाता प्रभु ने अनन्य भक्ति वाले तपस्वी राजा रानी को ''निज दास'' जाना। तब परम गंभीर और कृपा रूपी अमृत से सनी हुयी यह आकाश वाणी हुयी की ''वर मांगों''। जब इस आकाशवाणी को मनु और सतरूपा सुनते हैं तो उनका ह्रदय खुशी से खिल उठता है और जब स्वंय परब्रह्म राम प्रकट होते हैं तो मनु और सतरूपा उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'श्रीरामचरितमानस' में भगवान् श्रीराम के गुणों व चरित्र का वर्णन करते हुये मनुष्य एवं समाज को यह संदेश देने का प्रयास किया है, कि जिस प्रकार भगवान् श्रीराम एक गुणवान, संस्कारवान, आदर्शवान व चरित्रवान पुरूष माने गये हैं उसी प्रकार वर्तमान समय के मनुष्य को भगवान् श्रीराम के गुणों का अनुसरण करते हुये इन्हे अपने जीवन में धारण करने का प्रयास करना चाहिए।

उपसंहार –

आधुनिक समय का मनुष्य भौतिकवादिता के चरम दौर से गुजर रहा है। जिसके कारण संसार का प्रत्येक मानव संवेदना हीन होता जा रहा है, जिसके कारण उसमें भावनाओं के प्रति उदासीनता आती जा रही है, कि मनुष्य भावनात्मक रूप से हीन होता जा रहा है और इस कारण मनुष्य अपने परिवार, सगे सम्बन्धियों, मित्रों और समाज से दूर होता जा रहा है। इन सभी समस्याओं को दूर करने में श्रीरामचरितमानस प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है।

'श्रीरामचरतिमानस' को प्राय: भक्ति रस से परिपूर्ण एक महाकाव्य माना जाता है किन्तु फिर भी योगी मनुष्यों के लिए भी 'श्रीरामचरतिमानस' में अनेक सन्देश उपस्थित हैं। जिनके माध्यम से योगियों के सभी कार्य सफलता से पूर्ण होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस की दिव्य प्रेरणा से अपना साधना संकल्प पूर्ण कर लिया था। वर्तमान युग में भी ऐसे उदाहरणों का अभाव नहीं है। एक आधुनिक उदाहरण के आधार पर योग परक प्रेरणा का प्रमाण मिलता है। संत मेहदींदास जी ने यह माना है। कि उन्हें स्वयं योग साधना में प्रवृत्त होने की प्रेरणा 'श्रीरामचरितमानस' की निम्न पंक्तियों से प्राप्त हुई –

देह धरे कर यह फलु भाई।
भजिअ राम सब काम बिहाई।।

किष्किन्धाकाण्ड, दो0–22, चौ0–3

अत: श्रीरामचरितमानस आधुनिक युग में अमृत रूपी वरदान है। आज का मनुष्य नैतिक पतन की ओर अग्रसर है जबकि 'श्रीरामचरितमानस' के गुणों के व्यवहार में लाने से मनुष्य नैतिक उत्थान की ओर बढ़ता है, इसमें निहित योग तत्व के अध्ययन करने से समाज के मनुष्यों में पारिवारिक प्रेम, बड़ों के प्रति आदर, माता–पिता के प्रति भक्तिभाव, समाज के प्रति उच्च्व व्यवहार का ज्ञान होगा, इसप्रकार समाज में श्रीरामचरितमानस का महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ –

1. बाल्मीकि रामायण–गीता प्रेस गोरखपुर, सं.2024, अरण्यकाण्ड–द्वितीय सर्ग/श्लोक 21
2. बाल्मीकि रामायण–गीता प्रेस गोरखपुर, सं.2024, बालकाण्ड–63/1

3. अध्यात्म रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर, -4/14-15
4. अध्यात्म रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर, -4/9

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कुमार श्री, 1966, 'रामचरितमानस का तत्व दर्शन', लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर।
2. गुप्ता, डॉ0 माता प्रसाद, 1942, 'तुलसीदास', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
3. गोविन्द, शकुन्तला, 2009, 'तुलसी के राम', ज्ञान भारती दिल्ली।
4. ढींगरा, सुमन, 1990, 'तुलसीदास के काव्य में शास्त्रीयपुनर्जागरण', सहित्य केन्द्र प्रकाशन, दिल्ली।
5. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, 1999, 'तुलसीदास', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. नारायण, इन्द्रदेव अनुवादक, 2068, 'तुलसीदास कवितावली', गीताप्रेस गोरखपुर।
7. पोद्दार, हनुमान प्रसाद-टीकाकार, 2045, 'तुलसीदासः विनयपत्रिका' गीताप्रेस गोरखपुर।
8. पोद्दार, हनुमान प्रसाद-टीकाकार, 2069, 'तुलसीदास रामचरित मानस', गीताप्रेस गोरखपुर।
9. दीक्षित, डॉ0 राजपति, 1953, 'तुलसीदास और उनका युग', ज्ञानमण्डल लिमिडेट, वाराणसी।
10. भटनागर, रामरतन, 1987, 'तुलसी नव मूल्यांकन', स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद।
11. भट्ट, सूर्य नारायण, 1987, 'तुलसी और मानवता', ऊर्जा प्रकाशन, इलाहाबाद।
12. मंगला, डॉ0 प्रेम सुख, 2015, 'रामचरितमानस में अद्वैत मीमांसा' चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
13. मिश्रा, डॉ0 भगीरथ, 1980, 'महाकवि तुलसीदास और युग सन्दर्भ', सहित्य भवन लिमिडेट इलाहाबद।
14. मिश्रा, डॉ0 भगीरथ, 1987, 'तुलसी के अध्ययन की नई दिशाएँ', भारतीय ग्रन्थ निकेतन दिल्ली।
15. रामायणी, आचार्य श्रीकृपाशंकरजी, 1965, 'गोर्साइं तुलसीदास वाणी',-वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी।
16. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, 2063, 'गोस्वामी तुलसीदास', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

ISSN 2278 - 0327

संत साहित्य में सामाजिक विकृतियों के विरोध की सार्थकता

मोनिका
शोधार्थी
योग्यता: एम.ए. हिन्दी,
बी.एड., जे.आर.एफ. हिन्दी

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल के पूर्व भाग को भक्तिकाल की संज्ञा दी गई है। जिसकी समय सीमा रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् 1375 से संवत् 1700 तक स्वीकार की है। भक्तिकाल की दो प्रमुख काव्यधाराएं निर्गुण और सगुण रही हैं। जिसमें निर्गुण के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी काव्यधारा तथा सगुण के अंतर्गत रामकाव्य व कृष्णकाव्य आते हैं। भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा को डॉ. रामकुमार वर्मा ने संतकाव्य परंपरा के नाम से अभिहित किया है। संत शब्द का सामान्य अर्थ है - सज्जन। पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने 'सन्त' शब्द का आशय शान्त से लगाया है। संत वह महान विभूति है, जो साधारण से ऊपर उठकर सत्य, निर्विकार ब्रह्म का साक्षात्कार, परोपकार, सेवा, अक्रोध, दया, दानशीलता, क्षमाशीलता आदि सभी गुणों का समावेश करते हुए इस लौकिक संसार में रहते हुए भी अलौकिक संसार में विचरण करते हैं। संत शब्द से अर्थ आमतौर पर एक महान और अच्छे व्यक्ति से लिया जाता है। लेकिन इसका विशेष महत्त्व मध्यकालीन भारत के संत कवियों से ही लिया जाता है। संत साहित्य के प्रमुख कवियों में कबीर माने जाते है। अन्य संतों में रैदास, नामदेव, नानक देव, हरिदास निरंजनी, दादू दयाल, मलूकदास, धर्मदास, सुंदरदास, रज्जब, संत बेनी, संत पीपा आदि है। जिन्होंने अपनी औजस्वी वाणी द्वारा तत्कालीन समाज, धर्म, राजनीतिक के विविध संदर्भों को उठाकर साहित रचा। संत कवि अपनी वाणी द्वारा निर्गुण, निराकार, अगम अगोचर, अलौकिक, ब्रह्म की भक्ति और शक्ति पर बल देते हुए भारतीय संस्कृति और सभ्यता की हिफाजत करते हुए समाज के सभी वर्गों को सच्ची मानवता का संदेश प्रदान करते है। तत्कालीन सामाजिक विकृतियों - जाति-प्रथा, वर्ण-व्यवस्था, साम्प्रदायिकता, तमाम विद्रूपताओं को मिटाकर लोक कल्याण, लोक मंगल, मानवता के उच्च आदर्शों को प्रतिष्ठित करने वाला सच्चा काव्य संत साहित्य ही है। संत कवि निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। इनका इष्ट मंदिर, मस्जिद, चर्च में न होकर कण-कण में व्याप्त है जिसका न कोई रूप है, न रंग है, न जाति, न आकार, न वह जन्म लेता है न ही वह मरता है वह तो अगल अगोचर और सृष्टि में शाश्वत विद्यमान है। इनका परमतत्व अनुभूति का विषय है। उसे सिर्फ अपने आत्मानुभव से पहचान सकते हैं उसकी अभिव्यक्ति असंभव है। संतों की भक्ति सर्वजन सुलभ, आडम्बरहीन ओर समतामूलक थी। जिसने समाज के हर वर्ग, हर जाति तक अपनी पहचान बनाई। संत कबीरदास ने निर्गुण-ब्रह्म को पुष्प की सुगंध के समान सूक्ष्म तथा कण-कण में वासी बताया है। उन्होंने उस परसत्ता की उपासना पर बल देते हुए कहा है -

'' निर्गुण राम, जपहुँ रे भाई।
अविगत की गति, लखि न जाए।'' [1]

सभी संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया और पुरोहितों, मौलवियों तत्कालीन शासकों को फटकारते हुए गरीब निरीह जनता के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। उनके राम दशरथ सुत धनुर्धर आकार सहित राम न होकर ब्रह्म के पर्याय हैं-

'' दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम-नाम का मरम है आना।।'' [2]

संत रैदास भी अपने भगवान को सबमें व्यापक देखकर निर्गुण ब्रह्म की ओर संकेत करते है -

'' गुण निर्गुण कहियत नहिं जाके।।'' [3]

परिस्थितियाँ मध्यकाल की हो या वर्तमान समय की मोक्ष प्राप्त करना अहम् बात है। निर्गुण राम की उपासना हर घट में संभव हो सकेगी यदि प्रत्येक व्यक्ति समतामूलक उपासना को अपनाए जिससे कि पंडितों और मुल्लों का सामान्य जनता के धार्मिक मसलों में हस्तक्षेप अस्वीकार हो और आपसी मतभेद को मिटाकर परब्रह्म में ध्यान लगाकर इस भवसागर से पास उतर सके। आधुनिकता के इस दौर में हर मानव भोगवादी प्रवृत्ति के कारण संकीर्ण मानसिकता, संस्कार विहीन, स्वार्थी आत्मकेंद्रित व तनावग्रस्त हो गया है। भौतिक सुख-साधनों में लिप्त होकर भी मनुष्य ने अंधविश्वास में यकीन करना नहीं छोड़ा बल्कि और अधिकाधिक कर्मकांडों में लग गया है। ऐसे में संत साहित्य में वर्णित निर्गुण राम की भक्ति ही मोक्ष

प्राप्ति का मार्ग खोल सकती है। संतों ने मूर्ति-पूजा, नमाज, व्रत, तीर्थाटन, तमाम आडम्बरों का विरोध करके सामान्य जन तक यही संदेश प्रवाहित किया है कि एकाग्रचित होकर जब इष्ट देव के नाम का स्मरण किया जाए तो ही वह फलदायी होता है व्यर्थ के आडम्बरों पर बल देने से ईश्वर प्राप्त नहीं होते। वर्तमान सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों में संत साहित्य की उपयोगिता पर विचार करते हुए मध्यकाल की सभी सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक संदर्भों के साथ ही हमें आधुनिक जीवनमूल्यों और आदर्शों को भी देखना होगा। प्राचीन भारतीय समाज की धुरी वर्णव्यवस्था है। वर्णव्यवस्था का प्रभाव भारत में प्राचीन काल से ही रहा है। सामाजिक कार्यों का उचित ढंग से विभाजन तथा उसकों सुसंचालित करने के लिए वर्ण-व्यवस्था के मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं। मध्यकालीन समाज को गुण तथा कर्म के आधार पर चार वर्णों को समाज में श्रेष्ठ सम्मान प्राप्त था उसे धर्म का नियामक माना जाता था। इनका मुख्य कार्य यज्ञ करना तथा धार्मिक कर्म-क्रियाओं को पूर्ण करना था। ब्राह्मण को भोजन कराना तथा दान-पुण्य करना फलदायी माना जाता था। लेकिन धीरे-धीरे उनके कर्म व चरित्र में भौतिक सुखों की लालसा दिखने लगी। समाज का चौथा वर्ण शूद्रों का उन्हें सबसे निम्न समझा जाता था। अन्य तीनों की सेवा करना उनका कर्म था लेकिन वही उनकों 'अछूत' कहकर सामाजिक, धार्मिक अधिकरों से वंचित करके उनका शोषण करते थे। इसी मतभेद को देखकर संत कवि अपने को समाज से अलग न रखकर सामाजिक परिस्थितियों पर अपने विचार व्यक्त किए। संत साहित्य में वर्ण-व्यवस्था को पूर्णता अस्वीकार करके जन्मगत श्रेष्ठता व निम्नता पर कड़ा प्रहार करता है। वर्ण-व्यवस्था को मिथ्या मानते हुए संत बुल्ला साहब कहते है कि जब सबका शरीर हाड़-मांस से बना है फिर ब्राह्मण और शूद्र में भेद क्यों -

''कैसे बाहमन कैसे शूदा, एक हाड़-चाम तन गूदा।
कैसे हिन्दू तुरूक कहाया, सबही एकै द्वारै आया।।'' [4]

संत कवियों ने अपने साहित्य में धनी, निर्धन, ब्राह्मण-शूद्र, राजा-रंक सभी को एक ही ईश्वर की संतान मानते हुए समाज द्वारा बनाई गई वर्ण-व्यवस्था पर चोट करते है। संत रैदास अपनी वाणी द्वारा सभी को ब्रह्मा द्वारा निर्मित बताते हुए कहते है -

'' बाभन सूद वैस अरू खली, डोम, चंडाल किन होई।
होई पुनीत भगवत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोई।।'' [5]

संतों ने अपने साहित्य में साधारण जनता की भावनाओं और कष्टों को स्थान देकर यह सिद्ध कर दिया कि जो जन-जन के वास्तविक हितों से संघर्ष करेगा वही श्रेष्ठ और सार्थक साहित्य की रचना कर सकता है।

वर्तमान में वर्ण-व्यवस्था के विष ने भारतीय समाज को खोखला कर दिया है। ऐसे में संत साहित्य का अनुशीलन करके हम वर्तमान में भी उनकी वाणी के प्रहार की सार्थकता समझ सकते है कि किस प्रकार उन्होंने अपने समय की जनता को समता का पाठ सुनाया। मध्यकाल न सिर्फ वर्ण-व्यवस्था की जंजीरों में जकड़ा रहा बल्कि ये वर्ण अनेक जातियों, उपजातियों विभक्त हुआ और धीरे-धीरे इन जातियों में उच्चता, निम्नता जैसी भावनाएं घर कर गई जिसका सामना संतों ने अपनी ओजस्वी लेखनी द्वारा किया। छुआछूत, ऊँच-नीच, जैसी स्थिति में विषमता की खाई और गहरी होती गई परिणामत: मानवीय गुणों का पतन हुआ तथा सामाजिक विकास का मार्ग भी अवरूद्ध हुआ। जाति-व्यवस्था व्यवसाय के आधार पर बनी जिसमें बढ़ई, कुम्हार, सोनार, लोहार, चर्मकार आदि हैं। न केवल हिन्दू समाज में जाति-व्यवस्था थी बल्कि मुस्लिम समाज भी इससे अछूता न रह सका और शिया-सुन्नी विवाद प्रारम्भ हुआ। संत कवियों ने जातिगत भेदभावों को न सिर्फ देखा बल्कि स्वयं उसका अनुभव भी किया क्योंकि संतों में सभी निम्न समझी जाने वाली जाति में जन्में थे। जिसका कष्ट उन्होंने स्वयं भोगा था। महाराष्ट्र के संत नामदेव ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर प्रहार करते हुए कहते है कि गाय निम्न रंग की होने के बावजूद भी उनका दूध का रंग तो भिन्न नहीं होता फिर ब्राह्मण और शूद्र में भिन्नता कैसी -

'' नाना वर्ण गवां उनका एक वर्ण दूध।
तुम कहा के बहमन हम कहा के सूद।।'' [6]

संत साहित्य द्वारा समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, ऊँच-नीच, छुआछूत, अमीर गरीब का भेदभाव कम होना स्वाभाविक था। क्योंकि अपनी वाणी द्वारा लोगों के मन को जो संतोष उन्होंने समर्पित किया वह वास्तव में सार्थक सिद्ध हुआ। संत साहित्य में यही संदेश है कि जब पूरी सृष्टि ईश्वर द्वारा निर्मित है तो मनुष्य-मनुष्य में इतना पक्षपात क्यों? संत रविदास इस जाति-व्यवस्था पर चोट करते हुए कहते हैं -

'' जन्मजात मत पूछिये, का जात अरू पात।
रविदास पत सम प्रभ के, कोई नही जात कुजात।।'' [7]

मूर्ति पूजा, यज्ञ, हवन, नमाज, रोजा, मंदिर मस्जिद आदि तमाम सामाजिक कुरीतियों को जो हवा मिली संतों ने उसका खण्डन किया जो आज के दौर में भी सार्थक है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद आज आधुनिक युग में भी जाति-प्रथा, छुआछूत जैसी तमाम विकृतियां मौजूद है जिसने मानवता को शर्मशार किया है। ऊँच-नीच, छुआछूत, जाति-पाति जैसी विषैली हवा ने आधुनिक भारतीय

समाज के वातावरण को इस कदर दूषित कर दिया कि उसे संत साहित्य रूपी वृक्ष को सींचकर ही सामाजिक विकास रूपी शाखाओं को मजबूत कर सकते है। संत साहित्य के सिद्धांतों को कोई समय सीमा में नहीं बाँध सकता। उनके विचार हजारों वर्ष पूर्व जितने सार्थक थे उतने आज भी है। संतों के विषय में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है –

''साधारण जनता का सादगी में जीवन व्यतीत करने वाले संतों का एक ऐसा क्रान्तिकारी वर्ग था जिसने सभी अत्याचारों एवं दुराचारों के विरोध में अपना झंडा ऊँचा किया। इन संतों में अधिकतर निम्न जाति के लोग थे जो समाज और राज्य के तरफसे तिरस्कृत थे।''[8]

संतों ने सामाजिक वैमनस्य का खुला विरोध किया। उन्होंने अवतारवाद, बहुदेववाद, जप, तप, माला–तिलक को निरर्थक मानकर बाह्य आडम्बरों का तिरस्कार किया। तत्कालीन समय में हिन्दू–मुसलमानों के वैमनस्य की जो खाई थी वह वर्तमान में और भी गहरी होती रही है। संतों ने छापा–तिलक लगाने वाले पाखण्ड़ियों का विरोध किया है –

''कबीर वैश्नो भया तो का भया बूझया नहीं बम के।
छापा तिलक बनाई करि, दगहया लोक अनेक।।''[9]

संत वाणी द्वारा यही संदेश देते है कि जप–तप, रोजा, नमाज, उपवास तभी सार्थक हो सकते है। जब मन निष्कपट होकर पवित्र आचरण का अनुसरण करता हो अन्यथा वह निरर्थक है। सभी संत कवियों ने दिखाया, कपट, धोखा, फरेब, आडम्बर, प्रपंच, छल आदि विसंगतियों पर निर्भयता से प्रहार किया और जन–जन में मानवता का संदेश प्रवाहित किया है। इस संकटग्रस्त दौर में मानव की अस्मिता को बचाने के लिए संतों ने हर संभव: प्रयास किया है। तत्कालीन समाज में मुस्लिम शासकों ने हिंदुओं पर जो निर्मम अत्याचार किए संत कवियों ने उसे घृणित कार्य माना और उसका विरोध किया। संतों ने शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा अनुभूति पक्ष पर जोर दिया। हिन्दू–मुसलमान में जो शत्रुता थी उसका विरोध करते हुए संत दादू दयाल समानता प्रतिष्ठित करते हुए कहते है –

''दोनों भाई हाथ पग दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दु मुसलमान।।''[10]

मानवीय गुणों के लोप के कारण ही वर्तमान समाज सांप्रदायिकता की आग में झुलस रहा है। हिन्दु–मुस्लिम में अनाम दूरियाँ आने का कारण यही भेदभाव की नीति कारगर साबित रही जिसने चारों दिशाओं में आतंकवाद और दहशत का माहौल बना दिया। इन विकट परिस्थितियों में सम्प्रदायवाद व आतंकवाद जैसे जहर को खत्म करके मानवीय एकता तथा भाईचारे का मार्ग संत साहित्य द्वारा ही निकालना संभव है। संतों ने राम–रहीम की एकता पर बल देकर विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना का विरोध किया है। आज 21वीं शताब्दी में संचार साधनों के फलीभूत होने के बावजूद भी मनुष्य ने अवतारवाद, बहुदेववाद, पाखण्ड, आडम्बर जैसी कुप्रथाओं में विश्वास करना नहीं छोड़ा। बहुदेववाद का खण्डन करते हुए संत दादू दयाल कहते हैं –

''दादू देखउ दयाल को सकल रहा भरपूर।
रोम–रोम में रमि रह्या, तू जनि जानै दूर।।''[11]

संत कवियों ने मुसलमानों के व्यर्थ के नमाज, रोजा को प्रधानता देने वालों को व्यंग्यार्थ कहते है –

''दिन भर रोजा रहत है, राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय।।''[12]

सभी संत कवियों ने आर्थिक मूल्यों पर भी विचार दिये हैं। वर्तमान में हर मनुष्य धनार्जन के रास्ते ढूंढ़ता है। लालच, स्वार्थ आज हर मनुष्य की आँखों में साफ झलकता है जिससे वह कोई भी घृणित कार्य को अंजाम देने के लिए भी तैयार रहता है। ऐसी चुनौतिपूर्ण परिस्थितियां मध्यकाल में भी सामने आई। जिसका सामना संतों ने डटकर किया और मानव को दु:ख, दर्द, पीड़ा, कष्ट, लोभ, मोह से मुक्ति का मार्ग दिखाया। ऐसे में संत साहित्य की प्रासंगकिता और भी सार्थक सिद्ध होती है। क्योंकि इस गंभीर वातावरण में संत साहित्य ही लोगों का कष्ठहार बनकर उनका उद्धार कर सकता है। संत साहित्य में मानव मूल्यों व जीवन आदर्शों को देखकर रविन्द्र कुमार सिंह कहते है – *''सन्तों ने जीवन और जगत् की वास्तविकता को पहचाना। उनका युग बोध और आत्मबोध दोनों सत्य बोध के कवि है, सत्य ही उनका सौन्दर्य है। सन्तों ने जो चेतावनियां दी है, व समाज के लिए सदैव कल्याणकारी है।''*[13]

संतों ने आचरण की शुद्धता व पवित्रता पर विशेष बल दिया। गुणों को ग्रहण करने पर बल दिया है। मध्यकाल में चारित्रिक पतन की जो समस्या थी वह वर्तमान में और भी अधिक गंभीर रूप धारण कर चुकी है। स्वाधीनता के बाद जितनी भौतिक प्रगति हुई है उतना ही पाश्चात्य देशों के संबंध से चारित्रिक पतन भी हुआ है। आचारहीन नेताओं ने पूरे समाज को दूषित कर पथभ्रष्ट किया है साथ ही जन–जन में अनाचार, अनरीति, अविश्वास का भाव पैदा कर दिया है। संतों ने ऐसे लोगों से दूर रहने को कहा है। जिनकी करनी कथनी में मतभेद होता है। दादू दयाल ऐसे लोगों से अलग रहने की सलाह देते है वे कहते है –

''दादू कथणी और कुछ, करणी करै कछु और।
तिन थे मेरा जिव डरै, जिनके ठीक न ठौर।।''[14]

संत साहित्य में दया और अहिंसा जैसे भावों को स्थान दिया गया है। हर प्राणी पर दया करनी चाहिए और अहिंसा को अपने जीवन का मूल्य बनाना चाहिए। धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा को संतों ने निन्दनीय ठहराया है। सन्तों ने नैतिक मूल्यों पर बल दिया समाज की भौतिक वस्तुओं में लिप्त न रहकर मानव कल्याण के सच्चे पथ प्रदर्शक बने।

आधुनिकता के इस माहौल ने हर मनुष्य की मानसिकता को संकुचित कर दिया है। जिससे दया, अहिंसा और परोपकार जैसे गुणों का विनाश हो गया है। आगजनी, लूटपाट, हिंसा, घृणा इन सब अवगुणों ने मानवता को ही नष्ट कर दिया। संतों ने न सिर्फ मारपीट बल्कि वाणी द्वारा पहुंचाई पीड़ा को भी हिंसा ही माना है। संतों ने समाज की संकीर्ण भावनाओं को त्याग कर समाज की एकता को लाने का कार्य किया। सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति में संतोष व समन्वय का होना जरूरी है। गुरू के उपदेश के बिना यह मार्ग भी बाधक है इसलिए सन्तों ने अपनी वाणी में गुरू कृपा को विशेष महत्त्व दिया है। गुरू ही सच्चा पथ-प्रदर्शक होता है। जो अपने शिष्यों को मुक्ति का मार्ग बताता है। सन्तों ने गुरू का स्थान भगवान से भी पहले माना है। क्योंकि उससे मिलाने का रास्ता भी गुरू ही बनाते है। संत कबीर गुरू महिमा का वर्णन करते हुए कहते है -

'' गुरू गोविंद दोऊ खड़े काके लागे पाय।
बलिहारी गुरू आपने जो गोविंद दिया बताए।।''[15]

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से वर्तमान पीढ़ी ने गुरू परम्परा को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने गुरू को महत्त्व न देकर स्वयं को महत्त्व देने पर बल दिया है। मानवता को कायम रखने के लिए सतगुरू की शरण आवश्यक है। गुरू को महत्त्व देने के कारण भी संत साहित्य आज भी अपनी सार्थकता रखता है। संत साहित्य तत्कालीन समाज के शोषितों, पीड़ितों, दलितों के आक्रोश को व्यक्त करता है तथा व्याप्त कुरीतियों का निवारण करके जन साधरण को सरल, सत्य, सहज व्यवहार तथा मानवता की ओर उन्मुख है। संतों ने सामाजिकता पर आघात करते हुए समरसता तथा साम्यभाव स्थापित करने पर जोर दिया है। संत साहित्य जनता का सच्चा पथ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है कि -

'' भारत का लोक नायक वहीं हो सकता है जो सामाजिक असमानताओं को समूल नष्ट करके समन्वय स्थापित करने का अपार धैर्य रखता हो।''

निष्कर्ष-संत काव्य का गहन अध्ययन करने पर यही प्रमाणित होता है। संतकाव्य सच्चे अर्थों में सहज, अनुभूतिजन्य तथा संवेदनशील था। उनके मानसिक विचार शुद्ध, स्वच्छ और उदार थे। जिसमें तत्कालीन समाज में व्याप्त कुप्रथाओं और विकृतियों का खण्डन करके लोगों को जीवनदायिनी शक्ति प्रदान की। उस समय की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं का संतसाहित्य में स्वाभाविक वर्णन हुआ है। संत कवियों ने किसी विशेष धर्म में विश्वास न रखकर समधर्म समभाव के संदेश की भागीरथी प्रवाहित की थी। जिसने अनैतिकता और अशिक्षा जैसे अंधकारमय युग को सींचकर नवीन दिशा प्रदान की। वर्तमान संदर्भ में यदि संत साहित्य का अवलोकन करे तो मध्यकालीन चुनौतिपूर्ण परिस्थितियां अत्यधिक गंभीररूप में मिलती है जिसका निवारण संतों की वाणी से ही हो सकता है। संतों का विचारात्मक दृष्टिकोण आगामी था जिसने आज की समस्याओं का निर्वाण मध्यकाल में अपने उपदेशों द्वारा किया। आधुनिकता के कुचक्र में हमारा भारतीय समाज अराजकता, आतंकवाद, हिंसा से त्रस्त है तब संतों की वाणी, उनके उपदेश जिनमें दया और अहिंसा का मार्ग अपनाया जो कल्याणकारी साबित हो सकता है। जातियता के आधार पर साम्प्रदायिक विवाद आज भयंकर रूप में समाज में व्याप्त है जिससे राष्ट्र की एकता, अखण्डता तथा भाईचारे की दीवार की नींव भी कमजोर हो रही है। ऐसे में संतों द्वारा रचित साहित्य ही कारगर होगा जिसमें तमाम पाखण्डों, आडम्बरों, अंधविश्वासों, जातिवाद की जंजीरों को तोड़ने का सामर्थ्य है। संत साहित्य हमें यही संदेश प्रदान करता है कि सभी स्वार्थ भावनाओं, संकीर्ण मानसिकता को त्यागकर मानवता के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। संत साहित्य का सामाजिक विकृतियों पर प्रहार जितना तत्कालीन समय में सार्थक था। उसकी सार्थकता आज उससे भी अधिकतर है और भविष्य में भी हमेशा रहेगी। क्योंकि यह साहित्य नव जीवन का संचार कर देने वाला है।

संदर्भ -

1. श्यामसुंदरदास,कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ-104. नागरी प्रचारिणी सभा
2. रामचन्द्र शुक्ल,हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-76. नागरी प्रचारिणी सभा
3. वही,पृष्ठ-81.
4. संत वाणी संग्रह, भाग 2, पृष्ठ-185.
5. संत सुधा सार, भाग 1, रैदास, पृष्ठ-183.
6. संत सुधा सार, (नामदेव) वियोगी हरि, पृष्ठ-55.
7. पृथ्वी सिंह आजाद,रविदास दर्शन, पृष्ठ-124.
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी,मध्यकालीन धर्म साधना, पृष्ठ-216.
9. डॉ. माता प्रसाद गुप्त,कबीर ग्रन्थावली, साखी 16, पृष्ठ-78.
10. दादू दयाल की वाणी, भाग क, पृष्ठ-495.
11. रामचन्द्र शुक्ल,हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-86. नागरी प्रचारिणी सभा,
12. वही, पृष्ठ-78.
13. रविन्द्र कुमार सिंह,संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृष्ठ-65.
14. सं. सुधाकर, संत वाणी संग्रह, भाग 1, पृष्ठ-93.
15. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल,हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-115.

ISSN 2278 - 0327

राजगढ़ जिले के छात्रों की समायोजन क्षमता एवं बुद्धिलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

अश्वनी कुमार
शोधार्थी
रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. ऋतु शेखर
निर्देशिका
रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रस्तावना

शिक्षा जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त चलने वाली एक प्रक्रिया है। मानव जीवन के किसी भी पल शिक्षा ग्रहण कर सकता है। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति शिक्षा के माध्यम से की जा सकती है। छात्र शिक्षक के द्वारा बताये गये मार्ग पर चल कर जीवन में उन्नति प्राप्त कर सकता है। छात्र शिक्षा विद्यालय से पृथक् जैसे समाज, परिवार, मित्रों में रहकर भी प्राप्त कर सकता है। शिक्षा से ही छात्र का सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा के द्वारा शारीरिक, मानसिक बौद्धिक एवं आध्यात्मिक पक्ष छात्र का विकसित होता है।

शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है। शिक्षक छात्र एवं पाठ्यक्रम इसके तीन ध्रुव है। पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षक व छात्र की अन्त: क्रिया से ही अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। छात्र शिक्षा के द्वारा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है। शिक्षा के साथ-साथ कई उपलब्धियों को भी प्राप्त करता है। लेकिन छात्र के जीवन में उपलब्धियों को प्राप्त करने में काफी कठिनाईयां भी आती है। जिन समस्याओं के कारण वह उपलब्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

राजगढ़ जिले का इतिहास

एक प्रशासनिक इकाई के रूप में इतिहास

राजगढ़ जिले का गठन मई, 1948 में मध्य भारत के गठन के बाद किया गया था। इससे पहले वर्तमान जिले का क्षेत्र राजगढ़, नरसिंहगढ़, खिलचीपुर, देवास (वरिष्ठ) देवास (जूनियर) और इंदौर राज्यों के बीच समाहित कर दिया गया था। राजगढ़ एक मध्यस्थ राज्य का मुख्यालय था, जो उमठ राजपूतों द्वारा शासित था और महान परमार वंश की शाखा थी, उन्होंने उत्तराधिकार में दिल्ली के सुल्तानों और मुगल सम्राटों के अधीन एक सनद एस्टेट का आनंद लिया था। पहले राजधानी दुपारिया थी, जो अब शाजापुर जिले में है। बाद में इसे डूंगरपुर (राजगढ़ से 19 किलोमीटर) और फिर रतनपुर (19 किलोमीटर। नरसिंहगढ़ के पश्चिम) और पीछे ले जाया गया। मुगल सेनाओं के बार-बार गुजरने से अशांति से बचने के लिए, एस्टेट ऑफ द रूलर, मोहन सिंह, ने वर्तमान पक्ष का अधिग्रहण किया, जिसे मूल रूप से 1640 ईस्वी में भीलों से झाँसीपुर के रूप में जाना जाता था। अंत में उन्होंने वर्ष 1645 में मुख्यालय को स्थानांतरित कर दिया, जिससे यह स्थान बना। वर्तमान नाम अकबर (A-D- 1556-1605) के शासनकाल के दौरान एक खलीट और एक सनद को टनकपुर के उडाजी को दिया गया था। उस समय, मालवा के सुबाह में सारंगपुर सरकार थी। इसका अधिकार क्षेत्र वर्तमान सीहोर जिले के पश्चिमी भाग से लेकर उज्जैन जिले के पूर्वी भाग तक फैला हुआ है। इसके बीसवें महल में कई लोगों ने अपने मूल नाम को बरकरार रखा है और उनकी पहचान अष्टाह, तालीन (तलेन), आगरा (आगर), बाजिलपुर (बिजिलपुर), भोरसा, खिलजीपुर, जीरापुर, सारंगपुर, सोंदरसी (सुंदरसी), सोसनेर (सुननेर) सजापुर, के रूप में की जाती है। कायथ और नवगाम (तराना)। 1908 में, राजगढ़ राज्य को सात परगनाओं में विभाजित किया गया था, जैसे कि नयालगंज, बियोरा, कालीपीठ, करनवास, कोटरा, सोगरगढ़ और तलेन । नरसिंहगढ़ राज्य को चार परगनाओं में विभाजित किया गया था, अर्थात् हुजूर (नरसिंहगढ़), पचोर, खुजनेर और छपेरा। परगना राजस्व मामलों और मजिस्ट्रियल कार्य के लिए प्रत्येक तहसीलदार के स्थान पर था। खिलचीपुर राज्य को तीन परगनाओं में विभाजित किया गया था। सारंगपुर अब के रूप में, देवास (वरिष्ठ) और देवास (जूनियर) राज्यों का तहसील मुख्यालय था। जारापुर पूर्व इंदौर राज्य के महिदपुर जिले की एक तहसील थी। अब इसे खत्म करके खिलचीपुर तहसील में विलय कर दिया गया है।

1645 में, राजमाता की अनुमति से, दीवान अजब सिंह ने राजगढ़ के पहाड़ी क्षेत्र में भीलों को हराया और उन्होंने 1745 में एक महल का निर्माण किया, जिसके पाँच मुख्य द्वार थे, जैसे, इतवारिया, भुडवारिया, सूरजपोल, पनराडिया और नया दरवाजा। और इसमें तीन बहुत प्राचीन मंदिर हैं, जैसे राज राजेश्वर मंदिर, चतुभुजनाथजी मंदिर और नरसिंह मंदिर और जिसमें राजमाता और उनका 15 वर्षीय पुत्र रावत मोहन सिंह सुरक्षित रूप से रह रहे थे। झाँझरपुर में जो राजधानी थी और यह एक महल है जिसके कारण यह स्थान राजगढ़ के नाम से जाना जाता है और यह प्रसिद्ध हो गया था।

समायोजन – जीव और उसके पर्यावरण के मध्य के स्थित का एक साम्य है, जिसमें कोई आवश्यकता अतृप्त नहीं रहती और जिसमें जीव के कार्य सामान्य रूप से होते रहते हैं दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समायोजन से तात्पर्य पर्यावरण से सामंजस्यपूर्ण संबंध एवं उस दशा से है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति प्राय: अपनी सभी आवश्यकताओं, शारीरिक तथा सामाजिक मांगों आदि की पूर्ति सामान्य रूप से कर लेता है।

बुद्धिलब्धि– बुद्धि मापने के लिए सबसे पहला बुद्धि परीक्षण बिने तथा साइमन ने 1905 में विकसित किया। इस परीक्षण में बुद्धि को मानसिक आयु के रूप में मापकर अभिव्यक्त किया गया। परन्तु, इससे मनोवैज्ञानिकों को अधिक संतुष्टि नहीं मिली। 1916 में बिने–साइमन परीक्षण का सबसे महत्वपूर्ण संशोधन टरमैन ने स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया। इसी संशोधन में बुद्धिलब्धि या आईक्यू के संप्रत्यय का जन्म हुआ और बुद्धि को मापने में मानसिक आयु की जगह बुद्धिलब्धि का प्रयोग होने लगा, हालाँकि बुद्धिलब्धि के बारे में जर्मनी के विलियम स्टर्न ने 1912 में ही सुझाव दे रखे थे।

संबंधित साहित्य

1. तोमर, जगतपाल एवं त्रिपाठी, बृजेश चन्द्र (2005) ने – 'सह–शिक्षण संस्थाओं तथा बालिका विद्यालयों की छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर प्रायोजना स्तरीय शोधकार्य किया तथा निष्कर्ष में पाया कि शहरी क्षेत्र की सह–शिक्षण संस्थाओं तथा बालिका विद्यालयों की छात्राओं में समायोजन के सभी क्षेत्रों यथा– सांवेगिक, सामाजिक तथा शैक्षिक में सार्थक अंतर है। सह–शिक्षण संस्थाओं की छात्राएँ बालिका विद्यालयों की छात्राओं से अधिक समायोजित पायी गयी। ग्रामीण क्षेत्र की सह–शिक्षण संस्थाओं की छात्राएँ बालिका विद्यालयों की छात्राओं की तुलना में अधिक समायोजित पायी गयी। शहरी छात्राओं का सांवेगिक समायोजन तथा ग्रामीण छात्राओं का सामाजिक समायोजन बेहतर पाया गया।

2. सन्त, विजय (2007)– 'स्नातक स्तर पर छात्र एवं छात्राओं के अध्ययन–आदत एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक पर पी.एच.डी. स्तरीय शोधकार्य किया और निष्कर्ष में पाया कि छात्राओं एवं छात्रों के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं है। छात्रों तथा छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर पाया गया। छात्रों की अध्ययन आदतें, छात्राओं से उच्च स्तर की पायी गयी।

*3. कुमारी, सुधा (1982)–'विभिन्न सामाजिक समूहों के किशोरों की बुद्धिमत्ता, उपलब्धि, समायोजन तथा माता–पिता की सामाजिक आर्थिक स्तर का अध्ययन'*शीर्षक पर पी.एच.डी स्तरीय शोधकार्य किया और निष्कर्ष में पाया कि अधिकांशत: सभी चरों के मामलों में चार सामाजिक समूहों में सार्थक अंतर है। विभिन्न सामाजिक समूहों की उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया। गृह समायोजन, सामाजिक समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन, संवेगात्मक समायोजन, विद्यालयी समायोजन तथा संपूर्ण समायोजन, चरों में विभिन्न समूहों में सार्थक अंतर पाया गया। सामाजिक समायोजन चर पर पसंद एवं नापसंद समूह, पसंद तथा सकांत प्रिय समूह, पसंद तथा बहिष्कृत तथा नापसंद समूह के मध्यमानों में सार्थक अंतर पाया गाया। यहाँ पर सभी सामाजिक समूहों में गृह–समायोजन तथा बुद्धिमत्त के मध्य धनात्मक सह–संबंध पाया गया। यहाँ पर पसंद, नापसंद, एकांत तथा बहिष्कृत समूहों के संपूर्ण समायोजन तथा उपलब्धि के मध्य धनात्मक सह–संबंध पाया गया।

4. सोनी, श्रीमती रेखा (2010) ने– *'स्नातक स्तर के विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति, मूल्यों, सृजनात्मकता व समायोजन का अध्ययन'* शीर्षक पर पी.एच.डी. स्तरीय शोधकार्य किया तथा निष्कर्ष में पाया कि विभिन्न शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत् ग्रामीण व शहरी छात्रों की व्यावसायिक अभिवृत्ति तथा मूल्यों एवं व्यावसायिक सृजनात्मकता में सार्थक अंतर नहीं है। इन महाविद्यालयों के ग्रामीण एवं शहरी छात्रों के समायोजन में अंतर पाया गया। शिक्षण–प्रशिक्षण महाविद्यालयों की ग्रामीण व शहरी छात्राओं की व्यावसायिक अभिवृत्ति तथा मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं है। जबकि समायोजन तथा व्यावसायिक सृजनात्मक में अंतर पाया गया। विभिन्न चिकित्सकीय संस्थानों में अध्ययरत् ग्रामीण व शहरी छात्रों की व्यावसायिक अभिवृत्ति, मूल्यों तथा व्यावसायिक सृजनात्मकता में सार्थक अंतर नहीं है जबकि समायोजन के स्तर में अंतर पाया

गया। चिकित्सकीय संस्थानों की ग्रामीण व शहरी छात्राओं के मूल्यों, समायोजन तथा व्यावसायिक सृजनात्मकता में आंशिक अंतर पाया गया। विभिन्न अभियांत्रि की महाविद्यालयों के शहरी व ग्रामीण छात्रों की व्यावसायिक अभिवृत्ति, मूल्य तथा व्यावसायिक सृजनात्मकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है जबकि शहरी छात्र अधिक समायोजित पाये गये। इन महाविद्यालयों की ग्रामीण तथा शहरी छात्राओं की व्यावसायिक अभिवृत्ति तथा समायोजन स्तर में अंतर पाया गया जबकि इनके मूल्यों एवं व्यावसायिक सृजनात्मक में सार्थक अंतर नहीं है।

उद्देश्य

1) राजगढ़ जिले के छात्रों की समायोजन क्षमता का अध्ययन करना।
2) राजगढ़ जिले के छात्रों की बुद्धिलब्धि का अध्ययन करना।

शोध प्राक्कल्पना

1. राजगढ़ जिले के ग्रामीण व नगरीय विद्या भारती माध्यमिक स्तर के छात्रों की समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. राजगढ़ जिले के ग्रामीण व नगरीय विद्या भारती माध्यमिक स्तर के छात्रों की बुद्धिलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि – प्रस्तुत शोध समस्या राजगढ़ जिले के छात्रों की समायोजन क्षमता एवं बुद्धिलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन इस अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता **सर्वेक्षण विधि** को स्वीकार करेगा।

प्रतिदर्श – इस अध्ययन में जनसंख्या से निश्चित संख्या का चयन का प्रतिदर्श कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता प्रतिदर्श चयन के लिए यादृच्छिक न्यादर्श विधि के द्वारा प्रतिदर्श का चयन करेगा।

1– 50 ग्रामीण छात्र
2– 50 नगरीय छात्र

सीमांकन –किसी भी शोध कार्य का क्षेत्र बहुत ही ज्यादा होता है। लेकिन शोधकर्ता को अपने शोध का क्षेत्र निश्चित करना चाहिए। इस लिए शोधकर्ता अपनी आवश्यकता अनुसार क्षेत्र का चयन एवं सीमांकन कर रहा है।

1) शोधकर्ता ने अध्ययन के लिए राजगढ़ जिले (म.प्र.) के छात्रों को चुना है।

उपकरण 1) विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता हेतु – विद्या भारती के विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता के अध्ययन हेतु शोधकर्ता के द्वारा 'श्रीमती रागिनी दुबे' द्वारा निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

2) विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि हेतु – विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि के अध्ययन हेतु 'पी.श्रीनिवासन' द्वारा निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया।

उपकरण की विश्वसनीयता वैधता

उपर्युक्त दोनों उपकरणों की विश्वसनीयता परीक्षण पुनर्परीक्षण विधि द्वारा किया गया है। उपकरणों में प्रयुक्त प्रश्नावली को शोधकर्ता ने *'आरोही मनोविज्ञान केन्द्र, जबलपुर से अर्थ देकर प्राप्त किया है। जो विशेषज्ञों के द्वारा वैध है।'*

सांख्यिकी टी परीक्षण

परीक्षण सार्थकता परीक्षण की एक परिष्कृत विधि हैं। इसका विकास सन् 1908 में विलियम गॉसेट ने स्टूडेन्ट उपनाम नाम से किया था। उसी नाम से यह स्टूडेन्ट के परीक्षण के नाम से जाना जाता हैं। जब समूह छोटा हो तथा आँकड़ों की संख्या कम हो तो माध्य का वितरण सामान्य नहीं होता। अत: मध्यमान सार्थकता की जांच टी परीक्षण के द्वारा की जाती हैं। परीक्षण में प्रतिदर्शन का मान समग्र के माध्य व प्रतिदर्शन माध्य के अंतर का माध्य के प्रतिचयन वितरण की प्रमाप त्रुटि से अनुपात ज्ञात करके निकाला जाता हैं।

अत: परीक्षण मध्यमान व प्रमाण विचलन के आधार पर भिन्नता की व्याख्या करता है। प्रायोगिक स्थिति में दो समूहों की संख्याएं कम होती हैं तब प्रत्यक्ष आँकड़ों से ही उनके मध्यों के अंतर की सार्थकता की जांच की जाती हैं यही विधि परीक्षण कहलाती हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन में परीक्षण के लिये निम्न सूत्र प्रयुक्त किया गया है।

$$t = \pm \frac{M_1 - M_2}{\sqrt{\left[\frac{\sum d_1^2 + \sum d_2^2}{N_1 + N_2 - 2}\right]\left[\frac{N_1 + N_2}{N_1 N_2}\right]}}$$

M_1 = प्रथम समूह का मध्यमान, M_2 = द्वितीय समूह का मध्यमान $\sum d_1$ = प्रथम समूह के विचलनों के वर्गों का कुल योग, $\sum d_2$ = द्वितीय समूह के विचलनों के वर्गो का कुल योग

N_1 = प्रथम समूह के पदों की संख्या, N_2 = द्वितीय समूह के पदों की संख्या इसके पश्चात् तुलना किये जाने वाले दोनों समूहों के लिये स्वतंत्रता की कोटि को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

स्वतंत्रता की कोटि सूत्र- $df = N_1 + N_2 - 2$

शोध प्राक्कल्पना 1– राजगढ़ जिले के ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की समायोजन क्षमता में सार्थकता का अंतर

ISSN 2278 - 0327

सारणी संख्या 1.1

क्र.	चर	संख्या	मानक मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-मूल्य	सार्थकता स्तर
1	ग्रामीण छात्र	50	50	10.40	0.59	0.05
2	नगरीय छात्र	50	48.88	8.44		

98 के लिए 0.01 का मान = 2.62

98 के लिए 0.05 का मान = 1.98

विश्लेषण- प्रस्तुत सारणी संख्या 4.1 के अनुसार राजगढ़ जिले के ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की समायोजन क्षमता के मध्यमान 50 एवं 48.88 प्राप्त हुए है। प्रमाणिक विचलन की गणना करने पर ग्रामीण व नगरीय छात्रों के मान 10.40 एवं 8.44 प्राप्त हुए है। गणना के अनुसार प्राप्त टी (t) का मान 0.59 है जो df 98 के लिए सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणीयन मूल्य 1.98 से न्यून है। अत: शून्य परिकल्पना '*राजगढ़ जिले के ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की समायोजन क्षमता में सार्थक अंतर नहीं है।*' अत: इस परिकल्पना को **स्वीकृत** किया जाता है।

परिणाम- क्योंकि ग्रामीण छात्रों का मध्यमान नगरीय छात्रों के मध्यमान से अधिक पाया गया है। इसलिए इस कथन से स्पष्ट होता है कि राजगढ़ जिले के ग्रामीण व नगरीय छात्रों के समायोजन क्षमता में सार्थक अंतर नहीं होता है।

आरेख संख्या 1.1

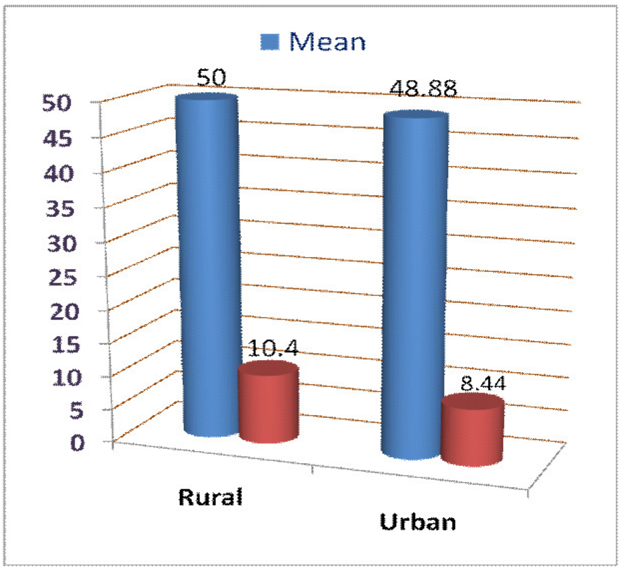

शोध प्राक्कल्पना 2- राजगढ़ जिले के ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की बुद्धिलब्धि में सार्थकता का अंतर

सारणी संख्या 2.1

क्र.	चर	संख्या	मानक मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-मूल्य	सार्थकता स्तर
1	ग्रामीण छात्र	50	106.88	9.55	1.09	0.05
2	नगरीय छात्र	50	104.8	9.39		

98 के लिए 0.01 का मान = 2.62

98 के लिए 0.05 का मान = 1.98

विश्लेषण - प्रस्तुत सारणी संख्या 2.1 के अनुसार राजगढ़ जिले के ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की बुद्धिलब्धि के मध्यमान 106.88 एवं 104.8 प्राप्त हुए है। प्रमाणिक विचलन की गणना करने पर ग्रामीण व नगरीय छात्रों के मान 9.55 एवं 9.39 प्राप्त हुए है। गणना के अनुसार प्राप्त टी (t) का मान 1.09 है जो df 98 के लिए सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणीयन मूल्य 1.98 से न्यून है। अत: शून्य परिकल्पना '*राजगढ़ जिले के ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की बुद्धिलब्धि*' में सार्थक अंतर नहीं है। अत: इस परिकल्पना को **स्वीकृत** किया जाता है।

परिणाम - क्योंकि शारदा विहार भोपाल ग्रामीण छात्रों का मध्यमान शारदा विहार भोपाल नगरीय छात्रों के मध्यमान से अधिक पाया गया है। इसलिए इस कथन से स्पष्ट होता है कि राजगढ़ जिले के ग्रामीण व नगरीय छात्रों की बुद्धिलब्धि में सार्थक अंतर नहीं होता है ।

आरेख संख्या 2.1

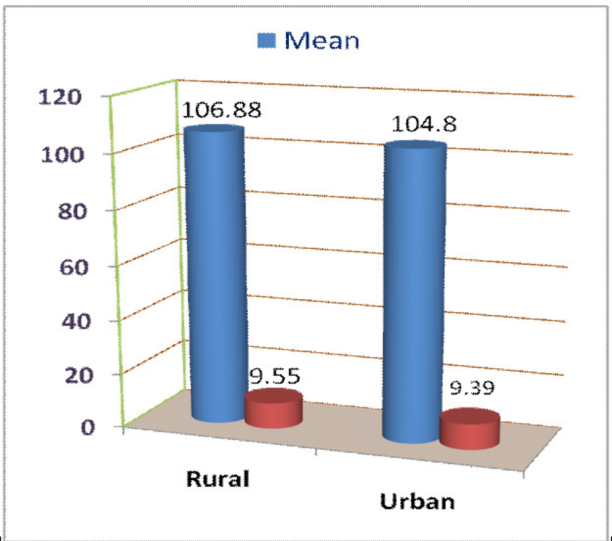

निष्कर्ष

1. शून्य परिकल्पना के आधार पर राजगढ़ जिले के ग्रामीण छात्रों का मध्यमान नगरीय से अधिक पाया गया है। अर्थात् ग्रामीण छात्रों की समायोजन क्षमता उनके परिवार में रहने वाले सदस्यों के तालमेल उनकी सामाजिक वातावरण एवं उनके तालमेल से विद्यालय में सामंजस्य बैठाया जा सकता है। नगरीय छात्रों में थोडा कम वातावरण, आपसी तालमेल आधुनिक परिवेक्ष और मीडिया भी कारण हो सकता हैं। इसके लिए अभिभावक अपने बच्चों को ग्रमीण वातवरण एवं सामूहिक परिवार के साथ उनका मिलान करवाना चाहिए। क्योंकि आधुनिक समय में माता- पिता से दूर बच्चे रहने लग गये है एकल परिवार एवं सामुहिक परिवार भी समायोजन पर प्रभाव डालता है।
2. शून्य परिकल्पना के आधार पर राजगढ़ जिले के ग्रामीण छात्रों के मध्यमान नगरीय छात्रों से अधिक पाया गया है। जिसका कारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी हो सकता है कि जो बालक समाज परिवार एवं विद्यालय उसी प्रकार प्रभावित करती है। क्योंकि जब तक बालक अपने परिवार में रहता है वहाँ माता-पिता भाई-बहन एवं बड़े लोगों बहुत कुछ सीखता है। बालक का प्रथम विद्यालय उसका परिवार माना जाता है। वहीं बुद्धीलब्धि की दृष्टि में जो बालक संयुक्त परिवार में रहते है उनकी बुद्धिलब्धि कई शोधों के अनुसार एकल परिवार में रहने वाले बालकों से अधिक पाई गई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव, डॉ. प्रीति वर्मा (2006) मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
2. गुप्ता एसपी गुप्ता अल्का (2007) सांख्यिकीय विधियाँ इलाहाबाद शाखा पुस्तक भवन ।
3. शशिकला सरीन एवं सरीन (2008) शैक्षिक अनुसंधान की विधियाँ विनोद पुस्तक मंदिर ।
4. डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव (2008-09) सांख्यिकी एवं मापन अग्रवाल पब्लिकेशन।
5. श्रीवास्तव डी.एन. (2009) अनुसंधान विधियाँ आगरा साहित्य प्रकाशन । बी.एस. राजसपा (2010) शैक्षिक अनुसंधान के मूलतत्व।

ISSN 2278 - 0327

म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों का अध्ययन

नीतू जैन
शोधछात्रा, शिक्षा विभाग
ओरियन्टल यूनिवर्सिटी, इंदौर

डॉ. वीरेन्द्र जैन
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
ओरियन्टल यूनिवर्सिटी, इंदौर

भूमिका-मानव के जीवन के सुन्दरतम विकास में अनेक तत्त्वों का योग रहता है। मूल्य उनमें एक आवश्यक तत्त्व है, जिनके बिना न सुखद एवं शांतिपूर्ण वैयक्तिक जीवन संभव है, न ही सामाजिक जीवन संभव है और न ही इनके बिना आध्यात्मिक जीवन ही संभव है। अत: मूल्यों की महत्ता का अनुमान स्वयं ही लगाया जा सकता है। वास्तव में मूल्य जीवन को बहुआयामी रूप देने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महान् व्यक्तित्व हुए हैं, उन सभी का जीवन मूल्यों से ही लवरेज रहा है। वर्तमान व्यक्तियों का जीवन भी इससे असंपृक्त नहीं है। मूल्यों के बिना मानव जीवन में असुरीय मंशा का समावेश हो जाता है। जिससे उसके सभी कार्य मानवेतर प्रतीत होने लगते हैं। रावण दुर्योधन इसके ही प्रमाण हैं। अत: जीवन के उत्थान और पतन में मूल्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। एक सामान्य व्यक्ति भी अपने जीवन में कुछ-न-कुछ अंशों में मूल्यों का पालन अवश्य ही करता है। यह पालन चाहे स्वेच्छा से हो अथवा दण्ड के भय से। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि मूल्य हमारे जीवन के आवश्यक एवं अपरिहार्य तत्त्व हैं। इस विषय में कतिपय विद्वानों के मत दृष्टव्य हैं-

मूल्य शिक्षा पर कतिपय विद्वानों के मत -

1. बरटोन (1961) के अनुसार- 'नैतिक विकास एवं संयुक्त घटना है, न कि पृथक-पृथक प्रक्रिया।'
2. सी.वी. गुड के अनुसार-''मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौन्दर्यबोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। लगभग सभी विचार मूल्यों के अभीष्ट चरित्र को स्वीकार करते है।''
3. आलपोर्ट के अनुसार-''मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है।''
4. लेविन (1964) के अनुसार 'लालच की भावना में उच्चतम रुकावट सकारात्मक रूप में शारीरिक दण्ड की प्रक्रिया से है और नकारात्मक रूप से विचार और तर्कशक्ति की प्रक्रिया है।
5. गुरुराजा (1978) के अनुसंधान में पाया कि 'नैतिक मूल्यों का ज्ञान, अभिप्राय पूर्णता से प्रभावित होता है।'

शिक्षा और मूल्य में कतिपय संबंध -

शिक्षा जीवन के अंदर नैतिक मूल्यों का विकास करती है। ये ज्ञानार्जन के साथ-साथ हमारे व्यक्तित्व में भी विकास करती है। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक लॉरेंस कोहलबर्ग का मानना था कि ''बच्चों को एक ऐसे माहौल में रहने की जरूरत है, जो दिन-प्रतिदिन के संघर्षों की खुली और सार्वजनिक चर्चा के लिए अनुमति देता है।'' शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में अभूतपूर्व मदद करती है, विद्यार्थी के गुणों में विकास करता है। यह हमारे जीवन में अनुशासन के महत्व को भी बताती है।

समकालीन जगत में, मानव जीवन को भी आधुनिकीकरण की भाँति ही प्रयोग की कयास लगायी जाती है तो मानव की मानवीयता तथा सामाजिक उत्थान के गुणोद्भव के कारण वह अपने आप में गुणों का सन्निवेश करने की नयी योजना इसके सामने प्रस्तुत कर जीवन मूल्यों की अनिवार्यता को दिखाकर आधुनिकीकरण के साथ जीवनमूल्यों को भी वृद्धिंगत करने को प्रेरित किया जाता है। जिससे व्यक्ति के मूल्य शिक्षा का महत्व कई गुना है।

जीवनमूल्य के प्रमुख उद्देश्य-

1. विद्यार्थियों को जीवन सिद्धांतों के आधार पर जीवन को उज्ज्वल बनाने में निर्णय लेने के तरीके के बारे में छात्रों को सिखाना।
2. विद्यार्थियों को अच्छे सामाजिक शिष्टाचार, पारिवारिक जिम्मेदारी और सहकारिता का विकास करना।

3. छात्रों को सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सह-भातृत्व के महत्व को समझने में मदद करना।
4. शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सांवेगिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक पहलुओं के संदर्भ में बालक के व्यक्तित्व विकास के लिए सभी के दृष्टिकोण सुनिश्चित करना।
5. देशभक्ति की भावना के साथ-साथ एक अच्छे नागरिक निर्माण के मूल्यों में वृद्धि।
6. रूढिवादी विवरण की ओर जिज्ञासा की भावना को बढ़ावा देना
7. सोच और जीने के लोकतांत्रिक तरीके को बढ़ावा देना।
8. विपरीत परिस्थितियों में सहनशीलता, विभिन्न संस्कृतियों और धार्मिक विश्वासों के प्रति सम्मान के महत्व से अवगत कराना।

शोध की आवश्कता -

जीवन में जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता, कारण संचार के साधनों से आज विश्व के हर कोने में सभी प्रकार का विकास इसके द्वारा किया जा रहा है। तो क्या जीवन मूल्य जो व्यक्ति व समाज में सकारात्मक मूल्यों की क्षमताओं और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करता है, जिसमें वह रहता है। दैनिक जीवन में कौशल, व्यक्तित्व के सभी आयामों को समझना। इसके माध्यम से छात्र जिम्मेदारी, अच्छी या बुरी दिशा में जीवन का महत्व, लोकतांत्रिक तरीके से जीवनयापन, संस्कृति की समझ, महत्वपूर्ण सोच आदि को समझ सकते हैं। इन सभी गुणों का विकास भी संचार के माध्यमों के द्वारा किया जा सकता है ये शोध का विषय निर्धारित किया गया है।

शोध की उद्देश्य -

1. म.प्र.बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों का अध्ययन करना।
2. केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों का अध्ययन करना।
3. म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ -

प्रस्तुत शोध के लिए शोधकर्त्री ने शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया जो इस प्रकार हैं-

1. म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध का परिसीमन

प्रस्तुत शोध को शोध की दृष्टि से परिसीमित किया गया है। यह शोध भारत के मध्यप्रदेश राज्य के इंदौर जिले के राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित माध्यमिक स्तरीय विद्यालय के विद्यार्थियों तक सीमित होगा।

1. न्यादर्श के रूप में म.प्र. बोर्ड के कुल 351 विद्यार्थियों तथा केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत कुल 257 विद्यार्थियों से प्रदत्तों का संकलन किया गया है।
2. संचार के साधनों के रूप में व्हाटस एप, फेसबुक, इंटरनेट और ट्विटर को शामिल किया गया है।
3. जीवन मूल्य के रूप में आठों जीवन मूल्य शारीरिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, साहचर्य, सौन्दर्य, चारित्र, ज्ञानात्मक, धार्मिक, और मनोरंजन को लिया गया है।

शोध का प्रारूप

प्रस्तुत शोध को वर्णनात्मक शोध विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि को लिया गया है, तथा असंभाव्य न्यादर्श की सुविधा विधि के द्वारा प्रदत्तों का संकलन किया गया। उक्त आठ जीवनमूल्यों के विकास में संचार के साधनों को ज्ञात करने के लिए स्वनिर्मित उपकरण को तैयार किया गया था। जिसकी वैधता एवं विश्वसनीयता 0.6 से अधिक थी। प्रदत्तों को मध्यमान, मानक विचलन प्रतिशत और टी परीक्षण के द्वारा व्यवस्थित किया गया। जिसका विवरण प्रस्तुत है-

म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का प्रतिशतीय निरूपण-

म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के जीवन मूल्यों के आठों मूल्यों पर संचार के साधनों की प्रभाविता को ज्ञात करने के लिए पूर्वोक्त स्वनिर्मित

पंच बिन्दु मापनी का प्रयोग कर प्रदत्तों का संकलन किया गया। पंचबिन्दुओं के माध्यम से प्राप्त प्रदत्तों को नियमानुसार अंक प्रदान किए तथा उनका प्रतिशतीय निरूपण किया जिसका विवरण तालिका क्र.1 में प्रस्तुत किया जा रहा है–

तालिका 1– म. प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों के विकास में संचार के

चर	शारीरिक	आर्थिक	साहचर्य	सौन्दर्य	चारित्र	ज्ञानात्मक	धार्मिक	मनोरंजन
बालक	89.86	48.84	78.95	58.98	77.07	57.93	78.07	48.67
बालिका	89.71	49.74	78.86	57.02	76.69	57.50	78.42	47.98

तालिका क्र.1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि म.प्र. बोर्ड के कुल 351 विद्यार्थियों से प्रदत्तों का संकलन किया गया, जिसमें 214 बालक और 137 बालिकाएँ हैं। इन विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों की प्रभाविता को ज्ञात किया गया।

जीवन मूल्यों के आठों मूल्यों पर म. प्र. बोर्ड के विद्यार्थियों का सबसे अधिक प्रतिशत शारीरिक मूल्य पर बालकों का 89.86 प्रतिशत और बालिकाओं का 89.71 प्रतिशत आया है। इसके बाद साहचर्य मूल्य पर बालकों का 78.95 प्रतिशत और बालिकाओं का 78.86 प्रतिशत आया है। जो कि द्वितीय स्थान पर है। इसके बाद धार्मिक मूल्यों पर बालकों का 78.07 प्रतिशत और बालिकाओं का 78.42 प्रतिशत आया है। जो कि तृतीय स्थान पर है। तदुपरान्त चारित्र मूल्यों पर बालकों का 77.07 प्रतिशत और बालिकाओं का 76.69 प्रतिशत आया है। जो कि चतुर्थ स्थान पर हैं। इसके बाद सौन्दर्य मूल्य पर बालकों का 58.98 प्रतिशत और बालिकाओं का 57.02 प्रतिशत आया है। जो कि सभी मूल्यों में पाँचवें स्थान पर है। ज्ञानात्मक मूल्य पर बालकों का 57.93 प्रतिशत और बालिकाओं का 57.50 प्रतिशत आया है। जो छठवे स्थान को अलंकृत करता है। आर्थिक मूल्य पर बालकों का 48.84 प्रतिशत और बालिकाओं का 49.74 प्रतिशत आया है। जो कि सातवें स्थान पर शोभित है। सबसे कम मनोरंजन मूल्य पर बालकों का 48.67 प्रतिशत और बालिकाओं का 47.98 प्रतिशत आया है। एक सामान्य अवधारणा है कि विद्यार्थी मनोरंजन के लिए ही संचार के माध्यमों का प्रयोग करते हैं, लेकिन इस शोध के द्वारा यह घोषणा की जा सकती है कि मध्यप्रदेश बोर्ड में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं में सबसे अधिक मोबाइल, व्हाटस् एप, फेसबुक आदि एप का सर्वाधिक प्रयोग शारीरिक मूल्य की जानकारी के लिए करते हैं। और द्वितीय स्थान पर लोगों के साथ कैसे सम्पर्क किया जाए, लोगों के साथ संबंधों के ज्ञापन के लिए करते हैं। द्वितीय न्यूनतम स्थान पर आर्थिक जानकारियों के संग्रह करने के लिए किया जाता है। अन्य मूल्यों के विषय में आरेख क्र 1 पर विश्लेषित किया जा रहा है।

आरेख क्र.1 के निर्दशन से ज्ञात होता है कि बालिकाओं के प्राप्तांक धार्मिक मूल्य और आर्थिक मूल्य में बालकों की अपेक्षा अधिक प्राप्त किए है। अन्यथा सभी अन्य छः मूल्यों में बालकों के ही प्राप्तांक अधिक पाए गए है। म.प्र. बोर्ड की बालिकाओं में धार्मिक मूल्यों और आर्थिक मूल्यों कि विषयक सूचना संग्रहण में बालकों की अपेक्षा अधिक सक्रियता दिखाती हैं।

आरेख क्र. 1 म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के आठों मूल्यों पर संचार के साधनों का प्रतिशतीय विवरण

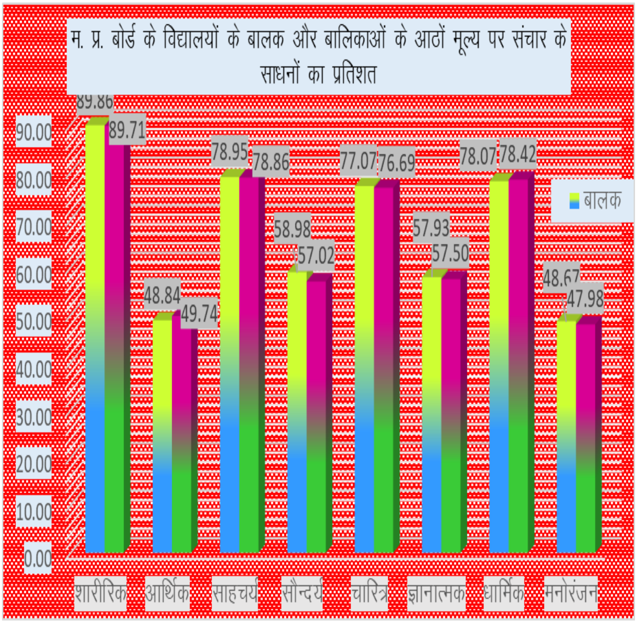

केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का तुलनात्मक प्रतिशतीय निरूपण–

केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के जीवन मूल्यों के आठों मूल्यों पर संचार के साधनों की प्रभाविता को ज्ञात करने के लिए पूर्वोक्त स्वनिर्मित पंच बिन्दु मापनी का प्रयोग कर प्रदत्तों का संकलन किया गया। जिसका विवरण तालिका क्र. 2 में किया जा रहा है–

तालिका 2– केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक

और बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का तुलनात्मक प्रतिशतीय विश्लेषण

चर	शारीरिक	आर्थिक	साहचर्य	सौन्दर्य	चारित्र	ज्ञानात्मक	धार्मिक	मनोरंजन
बालक	80.09	49.23	80.31	58.83	78.01	58.5	77.85	48.59
बालिका	81.28	50.78	75.89	58.39	76.11	57.61	77.33	45.56

तालिका क्र.2 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि केन्द्रीय विद्यालयों में अध्ययनरत कुल 257 विद्यार्थियों से प्रदत्तों का संकलन किया गया जिसमें 167 बालक और 90 बालिकाएँ हैं। इन विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों की प्रभाविता को ज्ञात इस शोध किया गया हैं करने का लक्ष्य किया गया।

जीवन मूल्यों के आठों मूल्यों पर केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थियों का सबसे अधिक प्रतिशत शारीरिक मूल्य पर बालकों का 80.09 प्रतिशत और बालिकाओं का 81.28 प्रतिशत आया है। तथा साहचर्य मूल्य में बालकों का प्रतिशत 80.31 आया है जो शारीरिक मूल्य के बालकों के प्राप्तांकों से भी अधिक है। इसके बाद साहचर्य मूल्य में बालिकाओं का 75.89 प्रतिशत आया है। जो कि द्वितीय स्थान पर है। इसके बाद चारित्र मूल्यों पर बालकों का 78.01 प्रतिशत और बालिकाओं का 76.11 प्रतिशत आया है। जो कि तृतीय स्थान पर है। तदुपरान्त धार्मिक मूल्य पर बालकों का 77.85 प्रतिशत और बालिकाओं का 77.33 प्रतिशत आया है, जो कि चतुर्थ स्थान पर हैं। इसके बाद सौन्दर्य मूल्य पर बालकों का 58.83 प्रतिशत और बालिकाओं का 58.39 प्रतिशत आया है। जो कि सभी मूल्यों में पाँचवें स्थान पर है। ज्ञानात्मक मूल्य पर बालकों का 58.5 प्रतिशत और बालिकाओं का 57.61 प्रतिशत आया है, जो छठवे स्थान को अलंकृत करता है। आर्थिक मूल्य पर बालकों का 49.23 प्रतिशत और बालिकाओं का 50.78 प्रतिशत आया है। जो कि सातवें स्थान पर शोभित है। सबसे कम मनोरंजन मूल्य पर बालकों का 48.59 प्रतिशत और बालिकाओं का 45.56 प्रतिशत आया है।

पूर्ववत् सामान्य अवधारणा के विपरीत विद्यार्थी मनोरंजन के लिए ही संचार के माध्यमों का प्रयोग नहीं करते हैं, ये सिद्ध किया। विद्यार्थी चाहे केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत हो या मध्यप्रदेश बोर्ड में, सबसे अधिक मोबाइल, व्हाटस् एप, फेसबुक आदि एप का प्रयोग शारीरिक मूल्य की जानकारी के लिए करते हैं। द्वितीय स्थान पर लोगों, साथ में रहने बाले छात्रों अपने सगे संबंधियों के साथ कैसे सम्पर्क किया जाए, इसके लिए ही करते पाए गए हैं। सबसे कम प्रयोग मनोरंजन के लिए करते हैं, ऐसा दोनों बोर्डो के छात्रों ने प्रदर्शित किया है। तीसरे चौथे स्थान पर चरित्र निर्माण और धार्मिक रसास्वादन के लिए संचार के साधनों का प्रयोग करते हैं। पाँचवे और छठवे स्थान पर सौन्दर्य और ज्ञानात्मक जानकारियों के लिए संचार के साधनों का प्रयोग दोनों बोर्डो के बालक और बालिका किया करते हैं। अर्थ संबंधी सूचनाओं का संग्रहण सातवें स्थान पर किया जाता है। इस विषय को और अधिक स्पष्ट वर्णन आरेख क्र 2 पर विश्लेषित किया जा रहा है।

आरेख क्र.2 केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के आठों मूल्यों पर संचार के साधनों का प्रतिशतीय विवरण

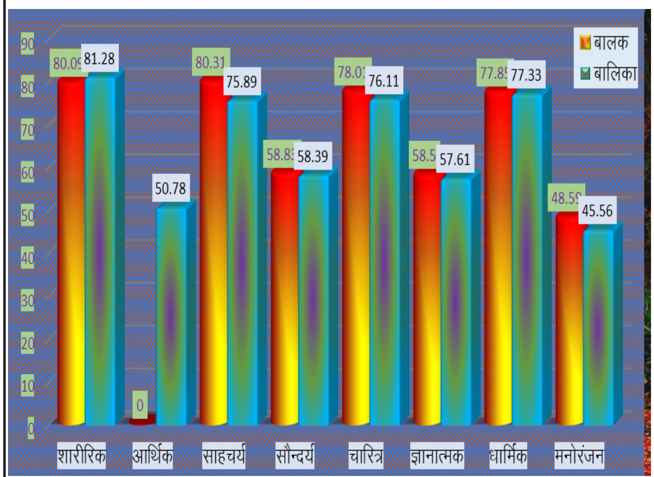

आरेख क्र.2 के निर्दशन से ज्ञात होता है कि बालिकाओं के प्राप्तांक शारीरिक मूल्य और आर्थिक मूल्य में बालकों की अपेक्षा अधिक प्राप्त किए है। अन्यथा सभी अन्य छः मूल्यों में बालकों के ही प्राप्तांक अधिक पाए गए हैं। केन्द्रीय बोर्ड की बालिकाओं शारीरिक और आर्थिक सूचना के संग्रहण में बालकों की अपेक्षा अधिक सक्रियता दिखाती हैं।

परिकल्पनाओं का सत्यापन

इस शोध को उसके अंतिम लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए कुछ परिकल्पनाओं का निर्धारण किया गया था। शोध के प्रदत्तों के आधार से उनका सत्यापन करने के लिए ज परीक्षण का प्रयोग किया गया है। जो इस प्रकार है–

म. प्र. बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों में कोई सार्थक

अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक 3

चर	मध्यमान	कुल संख्या	मानक विचलन	मध्यमानों का अंतर	t- मान
म. प्र. बोर्ड के बालक	148.94	214	128.1	-252	1.782
म. प्र. बोर्ड की बालिका	151.46	137	226.6		

तालिका क्रमांक 3 में अवलोकन से ज्ञात होता है कि म.प्र. बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का विवरण दिया है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर 1.782 टी मान, 0.05 स्तर के मान से अधिक है एवं 0.01 स्तर के मान से कम है। जिसके कारण शून्य परिकल्पना 0.05 स्तर अस्वीकृत एवं 0.01 स्तर पर स्वीकृत की जाती है। अत: म. प्र. बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का अन्तर 0.1 स्तर पर सार्थक नही है और 0.5 स्तर पर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक 4

चर	मध्यमान	कुल संख्या	मानक विचलन	मध्यमानों का अंतर	t- मान
केन्द्रीय बोर्ड के बालक	149.69	163	114.20	26.35	-0.26
केन्द्रीय बोर्ड की बालिका	150.02	90	60.63		

तालिका क्रमांक 4 में अवलोकन से ज्ञात होता है कि केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का विवरण दिया है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर 0.26 टी मान, 0.05 स्तर के मान एवं 0.01 स्तर के मान से कम है। जिसके कारण शून्य परिकल्पना दोनों स्तरों पर स्वीकृत की जाती है। अत: केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का में कोई सार्थक अंतर नही है, अत: शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।

म. प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक 5

चर	मध्यमान	कुल संख्या	मानक विचलन	मध्यमानों का अंतर	t- मान
म.प्र. बोर्ड के विद्यार्थी	149.93	351	167.52	0.12	0.12
केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थी	149.81	253	94.89		

तालिका क्रमांक 4.38 में अवलोकन अवलोकन से ज्ञात होता है कि म. प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों का विवरण दिया है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर 0.12 टी मान, 0.05 स्तर के मान, एवं 0.01 स्तर के मान से कम है। जिसके कारण शून्य परिकल्पना 0.05 स्तर एवं 0.01 स्तर दोनों पर स्वीकृत की जाती है। अत: म. प्र. बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों एवं केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में संचार के साधनों में कोई अन्तर सार्थक नही है। अत: शून्य परिकल्पना को दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ –

वर्तमान समय में मूल्यों का ह्रास हमारे जीवन के प्रतिदिन के कार्यों और व्यवहारों में दिखाई दे रहा है। इस ह्रासोन्मुखी मूल्यों को विकसित कर, आगामी वंशजों के इन समाजोपयोगी व्यवहारों की स्थापना का यत्न यथेष्ट है।

शिक्षा के क्षेत्र में प्राचार्यों, शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अभिभावकों के लिए जीवन मूल्यों के विकासार्थ प्रेरणा का संचार किया जाना चाहिए। इस अमृतमयी ज्ञान के आदान–प्रदान में सूचना तकनीकी का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान है। अत: इस तकनीकी प्रत्यय का सहकार लेकर शिक्षक विद्यार्थियों के ज्ञान वृद्धि के साथ–साथ उनके व्यवहार परिमार्जन में भी वृद्धि करने हेतु प्रेरित करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची–

1. अग्रवाल आर. एन. और अस्थाना बी. (1987), मनोविज्ञान ज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।

2. अग्रवाल वाई. पी. (1998), शैक्षिक अनुसंधान एक परिचय, नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो।
3. अर्जुन रॉय (2013) मानसिक थकान और तनाव आरोग्यधाम (तनाव- मस्तिष्क रोग निवारण विशेषांक) पुस्तक महल, दिल्ली, जनवरी
4. अनुराधा देवी, एन.वी. एण्ड वेल्यूधन, ए. (2013), जॉब सेटिस्फेक्षन ऑफ वयूमैन लेक्चररस वरकिंग इन प्राइविट एण्ड गर्वेमेंट कॉलेज, इण्डियन जनरल ऑफ एप्लाइड साइकोलोजी, 40, 25-28।
5. अग्रवाल जे. सी., शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्ध, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2, 2009
6. उमेश (2010), आधुनिक भारतीय शिक्षा एक सर्वेक्षण, नई दिल्ली : इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स।
7. कपिल, डी.एच.के (2005), सांख्यिकीय के मूल तत्व, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
8. कुमार, अनिल (2004), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली : डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस।
9. कोठारी, सी. आर. (2004), रिसर्च मेथाडोलौजी, नई दिल्ली : न्यू ऐज इन्टरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड पब्लिशर्स।
10. कौल, लोकश (1998), शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ (द्वितीय हिन्दी सस्करण), नई दिल्ली विकास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
11. गुप्ता, एस.पी, .आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2006
12. गैरेट, एच.डी. (1989), शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकीय, लुधियाना : ग्यारहवां सस्कंरण कल्याणी पब्लिशर्स।

ISSN 2278 - 0327

'योगवासिष्ठ' में योग साधना की आधार भूमि 'कर्मयोग'

महेन्द्र कुमार शर्मा
शोध छात्र, योग शिक्षा विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.),

प्रो. गणेश शंकर
शोध निर्देशक, योग शिक्षा विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

भारतीय जीवन परम्परा का महत्वपूर्ण आधार 'योग' है। सृष्टि के आरम्भ से ही जगत् के प्राण केन्द्र भारत भूमि पर जन्में साधकों द्वारा इस महान 'योग साधना' का अनवरत अभ्यास किया जा रहा है। इस साधना का जितना महत्व संन्यासी के लिए है उतना ही गृहस्थ के लिए भी है तथा यह साधना जीवन के कर्मक्षेत्र का एक अद्भुत विज्ञान है यह साधना केवल मोक्ष ही प्रदान नहीं करती वरन् व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक जीवन को भी एक सुलझा हुआ व सुव्यवस्थित मार्ग प्रदान करती है।

मनुष्य को जीवन के यथार्थ स्वरूप को पा जाने के लिए हमारे ऋषियों व योगियों द्वारा प्रमुख रूप से चार मार्ग बताये गये हैं जो इस प्रकार से है– राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। राजयोग हमें जीवन के वास्तविक ध्येय को प्राप्त करने कि सूक्ष्म दृष्टि व इच्छाशक्ति से सम्पन्न करता है। ज्ञानयोग हमें ध्येय की वास्तविक पहचान हेतु 'सत्यप्रज्ञा' प्रदान करता है, भक्तियोग द्वारा साधक ध्येय के अकाट्य अनुराग को प्राप्त होता है जिसके माध्यम से मनुष्य के भावों का ज्वार उसके परम कल्याण हेतु परमसत्ता की ओर बहे चलता है। उपरोक्त साधना के समस्त आयाम कर्म के मार्ग से गुजरे बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकते। इस कारण किसी भी साधना में अनासक्ति के भाव को स्थापित कर उसे पूर्ण करने के लिए 'कर्मयोग' की आधार भूमि का होना अत्यावश्यक है।

जीवन की समस्त यात्रा में 'कर्मयोग' धर्म की तरह है बिना 'कर्मयोग' के जीवन धर्म का पाना सम्भव नहीं है और ऐसा माना भी जाये तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होनी चाहिए। क्योंकि साधना के मार्ग में इस आचरण को पूर्ण सफलता हेतु अपनाना पड़ता ही है। साधना के क्षेत्र में कर्मयोग एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य का लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही प्रकार से उत्थान होता है। यह साधना हमें कोई विशेष आवरण, पक्ष व क्षेत्र में जाने को नहीं कहती वरन् मनुष्य जहाँ है, जैसा है उसी स्थिति में इस साधना का आरम्भ कर सकता है तथा इस साधना में साधक निष्काम भाव से समस्त कार्यों को करता हुआ जीवन के ध्येय अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

मूल शब्द - कर्म, योग, कर्मयोग, ध्येय, अनासक्त, निष्काम, मुक्ति, जीवन, मनुष्य।

प्रस्तावना

मनुष्य के भीतर कुछ न कुछ करने की सहज व स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है अगर मनुष्य जगत को देखकर कर्म करेगा तो वह सहज रूप से प्राप्त सङ्गति के अनुसार ढलता जायेगा और उसी प्रकार के कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।[1]

कोई भी मनुष्य किसी भी समय एक क्षण के लिए भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। सभी मनुष्य प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों के वशीभूत होने से कर्म करने के लिए विवश है।[2] इस प्रकार सभी मनुष्य जन्म-मृत्यु की यात्रा के अन्तर्गत प्रकृति के गुणों द्वारा वशीभूत होकर कर्म में रत रहते हैं।

योगवासिष्ठ में योग की संकल्पना इस प्रकार कही गई है–

जीवस्य च तुंरीयाख्या स्थितर्या परमात्मनि।
अवस्थाबीजनिद्रादिनिर्मुक्ता चित्सुखात्मिका।।[3]
योगस्य खेयं वा निष्ठा सुखं संवेदनं महत्।[4]
मनस्यस्तं गते पुंसां तदन्यन्नोपलभ्यते।
प्रशान्तामृतक ल्लोले केवलामृतवारिधौ।।[5]

परमात्म स्थिति को प्राप्त जीव जो जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति अवस्था के बीज से रहित है, जो तुर्यावस्था को प्राप्त है, जिसे चित्ति व आनन्द का अनुभव है तथा जो आनन्द व परम ज्ञान है, ऐसी अनुभव युक्त अवस्था ही योग की प्राप्ति है। उस अमृतरूपी

समुद्र कि जिसकी समस्त लहरें शान्त हो चुकी हो उसमें मन के अस्त हुए बिना योगावस्था की स्थिति को प्राप्त करना असम्भव है।[6]

योगाभ्यास के तीन प्रकार-

एतकतत्त्वघनाभ्यास: प्राणानां विलयस्तथा।
मनोविनिग्रहश्चेति योगशब्दार्थसंग्रह:।।[7]
एकस्मिन्नेव संसिद्धे संसिध्यन्ति परस्परम्।
एकार्थभ्यासन प्राणरोधयेत: परिक्षया:।।[8]
त्रिष्वेतेषु प्रयोगेषु मन:प्रशमनं वरम्।
साध्यं विद्धि तदेवाशु यथा भवति तच्छिवम्।।[9]

1. एक तत्त्व का गहन अभ्यास, 2. प्राणों का विरोध करना तथा 3. मन का निग्रह करना। उक्त तीनों में से किसी एक का भी अभ्यास सिद्ध कर लिया जाये तो अन्य दो स्वत: सिद्ध हो जाते है। इन तीनों योग प्रकारों में से चित्त (मन) को शान्त करना सर्वोत्तम है। इसके सिद्ध होने पर बहुत कम समय में ही कल्याण हो जाता है।[10]

कर्म शब्द का अर्थ - कर्म शब्द संस्कृत व्याकरण की 'कृ' (करना) धातु से निर्मित है। जो भी कुछ किया जाये या जाता है वह कर्म है।[11] कृ-धातु के अन्त में मन प्रत्यय लगने पर कर्म शब्द निष्पन्न होता है अर्थात् करना या किया जाना ये ही कर्म है। कर्म शब्द को परिभाषा की दृष्टि से समझे तो इसका अर्थ कर्मफल भी होता है। दर्शन की दृष्टि से कर्म को समझें तो इसका अर्थ कभी-कभी उस फल से लिया जाता है जो पूर्व के जन्मों से जुड़ा हो अर्थात् पिछले जन्मों में किये गये कर्म। वरन् कर्मयोग में कर्म शब्द से तात्पर्य है केवल मात्र कार्य। यानि वह क्रिया जो फल से युक्त हो तो कर्म हो जायेगी और जिसमें कर्म को निष्कामता के साथ किया जाये तो वह कर्मयोग होगा।

कर्म के प्रकार

भगवान शंकराचार्य कृत तत्त्वबोध में कर्म के प्रकार-

कर्माणि कतिविधानि सन्तीति चेत्
आगामि सञ्चित् प्रारब्ध भेदेन
त्रिविधानि सन्ति।[12]

कर्म 3 प्रकार के हैं- 1. आगामी, 2. सञ्चित, 3. प्रारब्ध।

1. आगामी कर्म - *''ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते।''*[13] ज्ञानी की देह से ज्ञान के उत्पन्न होने के बाद जो भी कर्म होते हैं चाहे वह पाप हो या पुण्य वे आगामी कर्म कहलाते हैं।

2. संचित कर्म - *''अनन्तकोटिजन्मनां बीजभूतं सन् यत्कर्मजातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तत् सञ्चित ज्ञेयम्।*[14] अनन्त जन्मों से किये गये कर्म जो बीजरूप में तैयार हो गये तथा जो पहले से अर्जित कर्म वर्तमान में विद्यमान है उन्हें संचित कर्म कहते हैं। ये भोग बिना नष्ट नहीं होते व स्वयं से कभी नहीं रूकते ये ज्ञान द्वारा ही अवरोधित होते हैं।

3. प्रारब्ध कर्म - *''इदं शरीरं उत्पाद्य इह लोके एवं सुखदु:खादि प्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं भोगेन नष्ट भवति प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति।''*[15]

जिन कर्मों के प्रभाव से हमारी जो यह देह इस लोक में उत्पन्न हुई है जिसमें सुख-दु:ख, माता-पिता, घर-गाँव, अमीरी-गरीबी, ऊँच-नीच यह सब प्राप्त है। वह कर्म प्रारब्ध है। ये कर्म भोग द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

आगामी कर्म ज्ञान से नष्ट हो जाते है तथा 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार निश्चित ज्ञान द्वारा संचित कर्म क्षीण हो जाते हैं और प्रारब्ध भोगपूर्वक क्षीण हो जाते हैं।

वेदान्तसार के अनुसार कर्म के प्रकार

(क) न करने योग्य कर्म -

1. काम्य कर्म: परिणाम - स्वर्ग तथा इष्ट की प्राप्ति होती है।
2. निषिद्ध कर्म: परिणाम - नरक तथा अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

(ख) करने योग्य कर्म -

1. नित्य
2. नैमित्तिक
3. प्रायश्चित

— लौकिक कर्म-परिणाम
- मुख्य फल- बुद्धि की शुद्धि
- गौण फल- पितृलोक की प्राप्ति

4. उपासना कर्म-अलौकिक कर्म-परिणाम
- मुख्य फल-चित्त का एकाग्र होना
- गौण फल- सत्यलोक की प्राप्ति

योगदर्शन के अनुसार कर्म

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।[16]

योग की अवस्था को प्राप्त कर चुके साधक के कर्म अकृष्ण व अशुक्त अर्थात् न पाप न पुण्य।

उक्त सूत्रानुसार योगदर्शन में कर्म के 4 प्रकार हैं-

1. अशुक्लाकृष्णम्[17] - पाप-पुण्य से रहित स्थिति अर्थात् न पुण्य फल प्रदान करने वाला और न ही पाप फल प्रदान करने वाला कर्म, ऐसे कर्म योगी के कर्म होते है इस तरह योगी कर्म को करता हुआ फल में अपना भाव शून्य रखता हैं परिणाम में उसे कर्म संस्कार शून्य रूप में प्राप्त होते हैं अत: वह साधक कर्माशय चक्र से मुक्त हो जाता है हमेशा के लिए।

इतरेषाम् त्रिविधम्[18] - योग की अवस्था को प्राप्त साधक के

अलावा अन्यों के कर्म 3 प्रकार के होते हैं।

2. कृष्ण – ये पाप कर्म होते हैं, इन कर्मों को करने से मनुष्य को नरक व नीच योनियों की प्राप्ति होती है तथा इस प्रकार के कर्मो से दु:खों की प्राप्ति होती रहती है ये कर्म मनुष्य को बन्धन की ओर धकेलते हैं और वह सदा समस्याओं से घिरा रहता है।

3. शुक्ल – ये पुण्य कर्म होते हैं इन कर्मों को करने से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति तथा उच्च लोकों की प्राप्ति होती है परन्तु ये कर्म भी बन्धन में ही डालते है अर्थात् सुखभोग करने के बाद फिर कर्मयोनि में आना पड़ता है। अत: जीव को कर्माशय चक्र से मुक्ति नहीं मिलती।

4. कृष्ण शुक्ल मिश्रित – ये पाप–पुण्य से मिश्रित कर्म होते हैं जिसमें मनुष्य को सुख व दु:ख दोनों की प्राप्ति होती रहती है तथा कृष्ण, शुक्ल व मिश्रित कर्मों का फल मनुष्य को अनुकूल अवसर आते ही प्राप्त होते हैं और वासनाओं के रूप में व्यक्त हो जाते है तथा कर्माशय चक्र अनवरत चलता रहता है।

कर्माशय चक्र

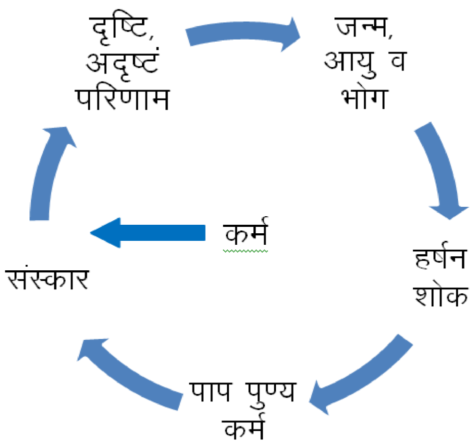

अत: कर्माशय चक्र से मुक्त होने का उपाय – अशुक्लाकृष्ण कर्म है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार कर्म के प्रकार

भगवदगीता के अठारवें अध्याय में कर्म को 3 गुणों के अनुसार स्पष्ट किया गया है जो इस प्रकार है–

1. सात्त्विक कर्म –

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषत: कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते।। [19]

जो कर्म शास्त्रों द्वारा करने योग्य व नियत किये गये है तथा जिन्हें करते समय कर्त्तापन का अभाव हो व उन्हें करने का अभियान न हो, जहाँ फल की इच्छा का अभाव हो और उन कर्मों को करते समय राग–द्वेष का लवलेश भी न हो ऐसे कर्म सात्त्विक कर्म कहलाते हैं।

2. राजसिक कर्म –

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुन:।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।। [20]

जो कर्म फल की इच्छा रखकर अत्यधिक परिश्रम से युक्त होकर किये जाते हैं तथा अहंकार के साथ सम्पन्न होते है वे कर्म राजसिक कर्म हैं।

3. तामसिक कर्म–

अनुबन्धं क्षयं हिसांमनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादरभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।। [21]

जो कर्म परिणाम, सामर्थ्य, हिंसा व हानि को जाने बगैर किये जाते हों, जिनको करते समय मोह का भाव हो तथा अज्ञान पूर्वक किये जाते हो ऐसे कर्म तामसिक कर्म कहलाते हैं।

गीता में कर्म तत्त्व के उपक्रम

कर्म– सकाम भाव से युक्त होकर शास्त्रविहित क्रिया को करना ही कर्म कहा जाता है।

अकर्म– किसी भी कर्म या क्रिया को फलेच्छा, ममता तथा आसक्ति से रहित होकर परोपकार (परहित) के भाव से युक्त होकर किया जो तो वह कर्म ही अकर्म कहलाता है।

विकर्म – जो कर्म दूसरों के प्रति अहित का भाव रखकर किये जाते हो वे कर्म विकर्म कहलाते हैं।

योगवासिष्ठ में कर्मयोग

जिन साधकों को जब तक पूर्णत: ज्ञान की दृष्टि प्राप्त न हो जाये तब तक उन्हें उसी कर्म पर निर्भर रहना चाहिए जो उसे पहले से ही प्राप्त है। जैसे एक रेशम की कम्बल की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को जब तक इच्छित कम्बल न मिल जाती तब तक वह अपने पास पहले से मौजूद कम्बल को फेंकता नहीं है। सार में समझें तो यह है कि संकल्प से ही मन बन्धन में आता है तथा संकल्प के अभाव में मन का शमन हो जाता है अर्थात् मुक्ति मिल जाती है। मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं से न कुछ करे तथा न कुछ नहीं करे, सभी कुछ अज, अनन्त रूप शान्त शिव मात्र ही है, अर्थात् शिव ही हो जाओ। समस्त कर्मों के फलरूप मल को सुप्त पुरुष की भाँति भूलकर, वेदना से रहित होकर जैसा जिस तरह का अवसर प्राप्त हो वैसा ही कर्म करते रहो। यही अनासक्ति का

भाव समस्त दुःखों से मुक्ति प्रदान करेगा। तत्त्वज्ञानी महात्मा के लिए न कोई कर्म भला है, न बुरा, न त्याज्य है, न अपना, न पराया, न कारण, न कार्य। इस कारण महाकर्त्ता, महाभोक्ता, व महात्यागी बनना चाहिए, समस्त संशयों को त्यागकर अनन्त काल तक धैर्य को धारण कर लो। जो सुख-दुःख, सफलता-असफलता, धर्म-अधर्म व रागद्वैष आदि समस्त भोगों को अनपेक्ष भाव से ग्रहण करता है वह महाकर्त्ता है। जो साधक न किसी वस्तु से राग करता है न ही द्वेष रखता है वरन् स्वाभाविक रीति से सबका उपभोग करता है। वह महाभोक्ता है। जिस साधक ने स्वयं अपने मन के भीतर से बुद्धि द्वारा सभी कामनाओं, इच्छाओं, संशयों व निश्चयों को परे कर दिया है वह महात्यागी है। इसलिए हे साधक बाह्य समस्त कार्य करते हुये, मन से, आशा-निराशा, राग-द्वेष, कामना से रहित होकर समस्त भूमण्डल में विचरण करो! बिना कोई संकल्प के, मन में कोई भी सुख-दुःख की भावना न करते हुए जो कार्य प्राप्त है उसे इस प्रकार करो जैसे कोई तिनका स्वयं की इच्छा न होते हुए भी इधर-उधर उड़ता रहता है। तुम्हारी समस्त इन्द्रियों के सभी विचार (वृत्ति) निरस हो जाने चाहिए। जैसे कोई चक्र धीरे-धीरे प्राप्त गति के अनुसार घूमता रहता है ठीक वैसे ही तुम भी प्राप्त हुये कार्य को संकल्प व वासनाओं से मुक्त होकर करते रहो।[22]

निष्कर्ष -

कर्मयोग के माध्यम से मनुष्य परिवर्तनशील जगत में कर्म करते हुए सदा दुःख मुक्त रहता है कर्मयोग के ज्ञान के अभाव में मनुष्य व्यर्थ ही परिश्रम करता हुआ जीवन में सदा थका हुआ सा महसूस करता है और कामनाओं की पीड़ाओं से पीड़ित रहता है। इसलिए मनुष्य को जीवन के यथार्थ को कर्मयोग द्वारा जानकर अपने जीवन को जीना है और समाज में उत्तम व्यवहार करते हुए आदर्श कर्मयोगी का उदाहरण प्रस्तुत करें, जिससे समाज में निराशा व उदासीनता की मुक्ति होने लगे और लोग अपने जीवन को आनन्दपूर्वक जीने लगे

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भगवद् गीता- 3/5
2. अड़गड़ानन्द, स्वामी, यथार्थ गीता: श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट, मुम्बई, 2008, पृ.69
3. योगवासिष्ठ महारामायण, 6/1.128.50
4. वही, 6/1.128.51
5. वही, 6/1.128.52
6. आत्रेय, बी.एल., योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त, श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा, 2003, पृ.579
7. योगवासिष्ठ महारामायण, 6/1.69.27
8. वही, 6/1.69.40
9. वही, 6/1.69.29
10. आत्रेय, बी.एल., योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त, श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा, 2003, पृ.580
11. विवेकानन्द, एस. कर्मयोग, सरस्वती पुस्तक भण्डार, लखनऊ, 1836, पृ.9
12. शंकराचार्य, बी. तत्त्व बोध, सेन्ट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट, मुम्बई, 2019, पृ.51
13. वही, पृ.52
14. वही, पृ.52
15. वही, पृ.53
16. योगदर्शन, 4/7
17. वही, 4/7
18. वही, 4/7
19. श्रीमद्भगवद्गीता- 18/23
20. वही, 18/24
21. वही, 18/25
22. आत्रेय, बी.एल., योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त, श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा, 2003, पृ.668-671

सत्यपाल शर्मा विरचित लौहपुरुषवल्लभचरितम् में वल्लभ भाई पटेल का चारित्रिक विश्लेषण

डॉ. सुनीता सैनी
सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सुरुचि
शोधार्थी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

प्रस्तुत विवेच्य ग्रंथ गद्यकाव्य है। गद्य के भेद आख्यायिका के समस्त लक्षण इसमें विद्यमान हैं। यह नि:श्वासों में विभक्त है। प्रत्येक नि:श्वास के आरंभ में भावी घटना का परोक्ष निर्देश पद्य के माध्यम से किया गया है। अत: गद्य काव्य के सभी लक्षणों से अलंकृत 'लौहपुरुषवल्लभचरित्रम्' एक विशुद्ध गद्यकाव्य है। अम्बिकादत्त-व्यास रचित शिवराजविजयम् की भाँति यह भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है। वल्लभ इसके नायक हैं। यह नायिका रहित गद्यकाव्य है। अन्य पत्रों का भी यथाप्रसंग स्वल्प उल्लेख हुआ है। प्रमुख पात्र व नायक वल्लभ ही हैं।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा।
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभि: प्रीणयन्त:।
अत:परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्यनित्यं
निजहृदि विकसन्त: सन्ति सन्त: कियन्त:।। [1]

अर्थात् मन, वचन और शरीर में पुण्य कर्म रूपी अमृत से भरे हुए अपने उपकारों से तीनों लोकों को प्रसन्न करने वाले, दूसरों के परमाणु जैसे अत्यंत छोटे गुणों को पर्वत के समान विशाल बनाकर अपने हृदय में नित्य प्रसन्न होने वाले सज्जन इस संसार में कितने हैं? कवि भर्तृहरि की इस सूक्ति का अनुकरण करने वाले, परहित हेतु अपना सर्वस्व आहुत करने वाले पुरुषोत्तम नि:सन्देह अत्यंत स्वल्प ही हैं, जिनके सम्मान में सभी का मन व मस्तक स्वत: ही श्रद्धा से झुक जाता है। इसी प्रकार के गुणों से युक्त पुण्यात्मा मृत्युंजयी एवं न रोकी जाने योग्य प्रकाश के पुंज बने हुए वे जगत् रूपी आकाश में दिन रात सूर्य व चंद्र की भाँति देदीप्यमान रहते हैं। ऐसे ही एक श्रेष्ठ पुरुष गुजरात प्रदेश में उत्पन्न 'सरदार वल्लभ भाई पटेल' भारत के इतिहास में राष्ट्र निर्माता के रूप में विराजित हैं। 'लौहपुरुष' इस प्रसिद्ध पद को सुनकर भयाक्रांत विचलित मन भी वीरता से परिपूर्ण हो जाता है। अबला भी सबला के समान आचरण करने लगती है। वृद्धों में भी नवीन चेतना जागृत हो जाती है। जिनके सिंहनाद से महाशक्तिशाली शत्रु भी गीदड़ के समान आचरण करने लगते थे। ऐसे राष्ट्र निर्माता व्यक्तित्व के चरित्र का वर्णन करना समुन्द्र में मोती ढूंढने के समान है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने उनके प्रत्येक रोम में एक गुण निहित किया है। वास्तव में जहाँ तक उनके व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करते हैं, निरंतर नवीन नवीन गुणों को ही पाते हैं। तथापि उनके पवित्र व दृढ़ व्यक्तित्व का चिंतन करना अनिवार्य है।

धैर्यशाली:- सरदार वल्लभ भाई पटेल का जीवन कर्त्तव्यशीलता से भरा हुआ था। वास्तव में कर्तव्यशीलता ही धैर्य को जन्म देती है। वल्लभ के प्रत्येक कार्य में धैर्य व संयम की छाप दिखाई देती है। वल्लभ बाल्यकाल से ही पिता के साथ समान निर्भय व धैर्यवान् थे। उनके बचपन का एक किस्सा आश्चर्यचकित कर देता है कि इतनी कम उम्र में कोई बालक इतना धैर्यशाली व गंभीर कैसे हो सकता है। एक बार उनकी बग़ल में एक फोड़ा हो गया। समुचित उपचारों के अभाव में पिताजी उन्हें नाई के पास ले गए। उनके बचपन को देखकर नाई ने अग्नि में तपाई हुई सलाखा से फोड़े को फूँकने में कुछ शिथिलता दिखाई। तब अनुपम साहस व धैर्य से भरे वल्लभ ने कहा-'*अनेन विलंबेन तु शलाकेयं शैत्यमाप्स्यति।*'[2] यह कहकर नाई के हाथ से अपने हाथ में सलाखा लेकर फोड़े को अच्छी तरह फूँक दिया। उस समय उसे देखकर किसी वृद्ध ने कहा-'*अहो नाऽयं कोऽपि सामान्यपुरुषोऽपितु साक्षाल्लौहपुरुष एव।*' [3] अत: पूत के पैर पालने में ही दिख जाते हैं। यह लोकोक्ति वल्लभ पर चरितार्थ हो रही है। यह उस समय का वृत्तांत है जब वल्लभ की पत्नी झबेरबा जीवन और मृत्यु के बीच जूझ रही थी परंतु उस समय वल्लभ उनके पास नहीं थे। वे न्यायालय की कार्यवाही में व्यस्त थे। अभियुक्त के लिए भी जीवनवृत्त मृत्यु का समय था। वल्लभ पूर्ण मनोयोग से बहस में लगे हुए थे, तभी धर्मपत्नी के परलोक सिधारने का तार प्राप्त होता है। वल्लभ उसे पढ़कर '*यत्तस्यानुपस्थितावेव तस्य दयिता कथं प्राणानजहात्। कियान् कष्टकरो भवेत्तस्या: स: क्षण:।*'[4] ऐसे विचार के वज्राहत से मानो आहत हो गए। एक तरफ प्रियतमा का विरह,

दूसरी ओर वध का अभियोग। एक के प्राण चले गए, दूसरे के संकट में हैं। वल्लभ के समक्ष धर्मसंकट था परंतु इस समय तो वल्लभ ने धैर्य की सारी सीमाएँ ही लाँघ दी। सामान्य मनुष्य के लिए जो कार्य असंभव ही है, उसे उन श्रेष्ठ धैर्य वाले, लौहमय स्तम्भ के समान असह्य प्रहार को सहन किए हुए वल्लभ ने करुणाहीन तार को जेब में रख लिया तथा अपनी कार्यवाही पूर्ण की। अभियुक्त को भी दोषमुक्त क़रार दिया। चाहे दुख हो या सुख उन्होंने कभी अपना धैर्य नहीं खोया। खेड़ा सत्याग्रह की विजय हो या गांधीजी का जेल जाना, उस धैर्यवान् ने स्वयं के साथ-साथ समाज को भी सँभाला। बारडोली सत्याग्रह के समय अभूतपूर्व प्रशंसा मिलने पर धैर्यशाली वल्लभ के मुख पर मात्र एक हल्की सी मुस्कान दिखी। दुर्भाग्यवश यही समय उस मनस्वी की अग्नि परीक्षा लाने वाला था। वल्लभ जेल में राष्ट्र की स्वतंत्रता का विचार कर रहे थे की तब भी एक सिपाही उनकी माता के निधन की सूचना देता है। उसे सुनकर वज्र के समान आहत होकर आवेग को भीतर ही दबाकर एक लंबी गहरी साँस ली। उसके कुछ महीनों बाद ही उनके बड़े भाई विट्ठल जी का भी अस्वस्थता के कारण देहान्त हो गया। तब तो मानो व्रण पर ठेस लगने के समान सूर्य ने पुन: एक बार उस धैर्य की मूर्ति को शोक के महासागर में डुबो दिया। इतने से ही विधाता शांत नहीं हुआ। उनके इकलौते पुत्र की पत्नी की मृत्यु संपूर्ण परिवार को शोक सागर में डुबो गयी। उधर पुत्र टायफाइड ज्वर से पीड़ित हो जीवन व मृत्यु के मध्य झूलता हुआ 50 दिनों तक बीमार रहा परंतु वल्लभ ने एक बार भी पेरोल नहीं माँगी। वे विचलित नहीं हुए। नियति का ही खेल है, ऐसा मानते हुए अपने मन को सांत्वना देते रहे परन्तु धैर्यशाली बल्लभ ने अपना धैर्य नहीं खोया। भर्तृहरि का यह श्लोक वास्तव में वल्लभ के जीवन को चरितार्थ कर रहा है कि धैर्यशाली पुरुष न्याय के मार्ग से एक पग भी पीछे नहीं हटते। वे न्याय के मार्ग का अनुसरण करते हैं-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात् पथः प्रविचलन्तु पदं न धीराः।।[5]

दृढ़ निश्चयः-

ईहा न पूर्णा यदि किं कृतं हि,
जीवस्य लक्ष्यं यदि वा न लब्धम्।
वित्तस्य चिन्ता न च बाधिका ते,
युध्यस्व मार्गः स्वयमेव साध्यः।।[6]

अर्थात् यदि इस लोक में इच्छा को पूरा नहीं किया तो क्या लाभ? अथवा जीवन का लक्ष्य यदि नहीं प्राप्त किया तो वो भी क्या? हे मनुष्य! वित्त की चिंता तेरी बाधा नहीं बन सकती। संघर्ष करो लक्ष्य स्वयं सिद्ध हो जाएगा।

वल्लभ का जन्म एक साधारण से किसान परिवार में हुआ था। धन की कमी के कठोर प्रहारों को भी सहन करते हुए निरंतर विपत्तियों से आहत होकर भी कष्टों की परवाह न करके दृढ़निश्चय व श्रेष्ठ पुरुषार्थ से प्राणों की बाज़ी लगाकर विधि के विधान को भी बदलकर अपने मनोरथ को पूर्ण करने का साहस था उस दृढ़निश्चयी बल्लभ में। अनेक परेशानियों के बाद भी उन्होंने अपनी शिक्षा को पूर्ण कर घर की सारी ज़िम्मेदारियों को निभाया। एक बार जो वे सोच लेते थे फिर उन्हें कार्य करने से कोई नहीं रोक पाता था। उनके दृढ़निश्चय आदि गुणों के द्वारा ही वे वल्लभ से लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल बनाने वाले संघर्ष को पूर्ण कर पाए। उस समय ब्रिटिश सरकार क्रूर थी। कुछ देशी रियासतों का आतंक भी बहुत ज़्यादा था। वल्लभ ने उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी। इससे क्रुद्ध हो राजा धर्मेन्द्र ने उनकी बेटी व कस्तूरबा गांधी को जेल में डाल दिया परंतु वे विचलित नहीं हुए तथा अपने कार्य पर दृढ़ रहे। सभी राजाओं ने मिलकर जो काल का तांडव किया वह दिल दहलाने वाला था।उसकी निंदा करते हुए वल्लभ ने कहा -'*लीमड़ी राज्ये तु राजकोटराज्ये कृतां अपि वन्याः पाशविकाश्चात्याचारा अपि न्यक्कृताः। भुशुण्डी-खड्ग-कर्कछुरिकादिभिश्च सुसज्जिता अशीति जनाः प्रजामण्डलस्य कार्यकर्तृषु नृशंसतयाऽक्रान्तवन्तः।*'[7] इस प्रकार वल्लभ ने बिना भय के मुक्तकंठ से उनकी आलोचना की तथा उनके विरुद्ध कार्यवाही भी की। इसी मध्य उनके ऊपर प्राणघातक प्रहार भी हुए परंतु वे दृढ़निश्चयी न तो घबराये, न ही एक पग पीछे हटे।

स्वतंत्रता संग्राम अपने चरम पर था। वल्लभ दोगुने उत्साह से लोगों को जगाने में लगे थे। उनसे घबराकर सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया। उनके परिवार को भी प्रताड़ित किया गया परंतु फिर भी बेहद दृढ़निश्चय वाला अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ क्योंकि वृक्ष को उखाडनें में समर्थ वायु भी पर्वत को हिला नहीं सकती। इसी प्रकार सत्ता के लालच में चूर शत्रुओं द्वारा बहुत प्रकार से प्रताड़ित किए जाने पर भी स्वतंत्रतावादी उस शूरवीर ने स्वतंत्रता से पूर्ण अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को नहीं छोड़ा। ऐसे थे दृढ़निश्चयी सरदार वल्लभ। नीतिशतक का यह श्लोक निश्चय ही उन्हें चरितार्थ कर रहा है-

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विप्लुता लोके।।[8]

स्वाभिमानीः- जो व्यक्ति फर्श से अर्श तक का सफर तय करता है वह नि:संदेह असाधारण गुणों से विभूषित होता है। वल्लभ में स्वाभिमान कूट कूटकर भरा था। मुख्त्यारी की परीक्षा पास करने

के बाद बड़े भाई ने उन्हें अपने पास बुलाया परंतु वल्लभ अपनी अलग पहचान बनाना चाहते थे तो उन्होंने गोधरा को अपना कार्यस्थल चुना। उनकी स्वाभिमानता का सबसे बड़ा प्रमाण तब मिलता है जब वे जेल में थे।तब माता व भाई की मृत्यु हो गयी। शवयात्रा में जाने हेतु सरकार ने उनपर शर्तें लगा दी। '*शवयात्रायां सम्मिलितुं सर्वकारेण प्रेरितोऽपि गृहं गन्तुमादिष्टोऽपि सोऽविचाल्यमना उत्थितं शोकोद्वेगं हृदि सन्निरुध्य मध्यावधेर्मुक्तये न प्रार्थयत्।*'[9] अतः मान को न छोड़कर और शर्तों को स्वीकार न करके उस स्वाभिमानी ने, उस लौहपुरुष ने अपने प्रियजनों की मृत्यु हो जाने पर भी सरकार के आगे प्रार्थना नहीं की। इस प्रकार वल्लभ स्वाभिमानी व स्वच्छंद प्रकृति के मानव थे।

कर्तव्यनिष्ठः- जो मनुष्य अपनी पत्नी की मृत्यु के समाचार को पढ़कर तार को इसलिए जेब में रख लेते हैं कि इस समय उनका कर्तव्य अभियुक्त को छुड़ाना है। पहले कर्तव्य को निभाना है पत्नी प्रेम बाद में। ऐसे कर्तव्यपरायण पुण्यात्मा धरती पर बिरले ही मिलते हैं। वल्लभ का सम्पूर्ण जीवन कर्तव्यपरायणता का उदाहरण है। पत्नी की मृत्यु के बाद बच्चों का लालन-पालन, भाई के विदेश जाने पर उनकी पत्नी व बच्चों की देख-रेख, किसानों की मुसीबतों का निवारण, निर्दोष को दोष मुक्त कराना व राष्ट्रहित के कार्य इन सब कार्यों का वहन वल्लभ से बड़ी कर्तव्यनिष्ठता से किया।

क्वचित्पृथ्वीशय्यः क्वचिदपि च पर्यंकशयनः,
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कायार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥[10]

अर्थात् कार्य की सफलता चाहने वाला व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ सुख दुख की परवाह नहीं करता। इस प्रकार बारडोली आंदोलन, खेड़ा सत्याग्रह, कांग्रेस का प्रचार, भारत की स्वतंत्रता इन सब कार्यों को उन्होंने अपना कर्तव्य मानकर न परिवार की चिंता की ना स्वयं की। अस्वस्थ होने के बाद भी अपने कार्य में लगे रहे। जेल में रहकर भी अपना कर्तव्य निभाते रहे। निःसंदेह उनकी कर्तव्यपरायणता ही थी जिसने इतने बड़े भूभाग को एकता के सूत्र में पिरोया था।

देशभक्तः-सच्चे वीर पुरुष धीर, गंभीर और आज़ाद होते हैं। उनके मन की गंभीरता और शक्ति समुद्र की तरह विशाल और गहरी तथा आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है, परंतु जब ये शेर गरजते हैं तब सदियों तक इनकी दहाड़ सुनाई देती रहती है और अन्य सब आवाजें बंद हो जाती हैं। वल्लभ भी एक शेर की भाँति थे जो शत्रु रूपी जंगल में स्वतंत्रता से विचरते हुए अपने शत्रुओं का नाश करते थे। वल्लभ माँ के गर्भ से देशभक्ति के संस्कार लेकर जन्मे थे। खेड़ा सत्याग्रह के समय जब लोग अचेतन व कर्महीन हो गए थे तब बल्लभ ने उन्हें भी झकझौरते हुए कहा- '*निद्रातो जाग्रत। स्वातन्त्र्याय युध्यत। देशाय युध्यत। मिथ ऐक्यभावेन प्रेम्णा च सज्जीभवत। अस्माकं सम्मुखे विश्वस्य बृहत्तम महाशक्तिभूतानामांगलीयानां साम्राज्यम्। अस्माभिस्तस्य अस्माद्देशाद् उन्मूलनं करणीयम्।*'[11]

बारडोली, खेड़ा, असहयोग आदि आंदोलनों में उनकी सक्रियता देशभक्ति का भी तो प्रमाण है। अंग्रेज सरकार ने उन्हें झुकाने के लिए शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक यातनाएँ भी दी। उनके पुत्र व पुत्री को बंदी बना लिया गया। उन्हें यातनाएं दी गई, परंतु वह शूरवीर एक कदम पीछे नहीं हटा, निरंतर देश हित में ही लगा रहा। देश के लिए व्यक्तिगत हित का सर्वदा ही त्याग किया है वल्लभ ने। वस्तुतः वीरों को बनाने के कारख़ाने क़ायम नहीं हो सकते। वे तो देवदार के वृक्षों की तरह जीवन के अरण्य में ख़ुद ब ख़ुद पैदा होते हैं और बिना किसी के पानी दिए बिना किसी के हाथ लगाए तैयार होते हैं। ऐसा ही एक वृक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल थे, जो लौह पुरुष बन विदेशियों व देशद्रोहियों के सामने ऐसे डटकर स्थित हुए कि उनका सर्वनाश करके ही शांत हुए। अज्ञात कवि की ये पंक्तियां हम निःसंदेह वल्लभ को समर्पित कर सकते हैं-

राष्ट्रभक्ति का जिसने किया आचमन
देश सेवा से बढ़कर नहीं कोई धर्म।
तुमसे बढ़कर कोई देवता ही नहीं
तुमको शत् शत् नमन, तुमको शत् शत् नमन।।

राष्ट्रनिर्माताः-वीरता की अभिव्यक्ति कई प्रकार से होती है। कभी उसकी अभिव्यक्ति लड़ने मरने में, रक्त बहाने में, तलवार तोप के सामने प्राण गंवाने में होती है तो कभी जीवन के गूढ़ तत्व और सत्य की चाह में बुद्ध जैसे राजा विरक्त होकर वीर हो जाते हैं। वीरता एक प्रकार की अन्तः प्रेरणा है। जब कभी इसका विकास हुआ तभी एक नवीन दृश्य समक्ष आया। जिसके दर्शन करते ही सब लोग चकित हो गए। वीरता की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति तब दृष्टिगत हुई थी, जब आज से कई वर्षों पहले लौहपुरुष कहलाने वाले एक व्यक्तित्व ने अपनी अकाट्य राजनीतिक समझ से धरती के 565 बिखरे हुए टुकड़ों को समेटकर इस भारतवर्ष की भौगोलिक देह को संपूर्णता से युक्त कर दिया।

स्वतंत्रता के समय एक ओर नरसंहार राष्ट्रपिता के प्राणों को हरकर ही बहुत प्रयासों से शांत हुआ था। दूसरी ओर देशी राजाओं का पृथक शीर्ष उठाना वल्लभ के लिए सिरदर्द बना हुआ था। उन राज्यों में प्रज्ञा की दुर्दशा ने उनकी आँखों की नींद ही छीन ली थी।वल्लभ पहले से ही जानते थे कि ये देशी राज्यों के राजा देश

की एकता में बाधक हैं इसीलिए वह मनस्वी स्वतंत्रता से पूर्व ही इस समस्या के समाधान में लग गया। अकेले वल्लभ ही इतने सक्षम थे जो एक माली के समान सभी राज्यों को एक सूत्र में गूँथ सकते थे। उन्होंने राजाओं को संदेश दिया कि वे अंग्रेजों से भय न मानें अपितु संविधान निर्मातृ सभा में सम्मिलित हो जाए। विवाह के बाजे विवाह के समय ही अच्छे लगते हैं, मृत्यु के अवसर पर नहीं। इससे प्रेरित हो बीकानेर, जोधपुर, जयपुर,पटियाला आदि राजा संघ में सम्मिलित हो गए। '*दिन चतुष्ट्यानन्तरं वैदेशिक: सर्वकार: प्रस्थापयति। अस्तावत् सर्वे भारतसंघे सम्मिलिता: स्यु: यथा कठोरतया व्यवहरिष्यते। अद्यत्वे जगति एकाकिना अवस्थानमतिदुष्करम्। यदा तीक्ष्णो झंझावतो वाति तदा एकाकी वृक्षो निपति, परन्तु अन्येषां वृक्षाणां स एव जीवति। भवन्तोऽपि श्रीरामचंद्राशोक सदृशां वंशजा: परमद्यत्वे अंग्रेजसर्वकारस्य अधिकारिण: कनिष्ठान् अपि भृत्यान् अनुनयन्ति*।'[12] इस प्रकार वल्लभ ने लोगों को स्वतंत्रता हेतु जागृत किया। उन्हीं दिनों हीराकुंड बाँध के सिलसिले में वल्लभ उड़ीसा गए। वहाँ भी बहुत सारे राजाओं को बुलाकर समझाया तथा उनका भी भारत में विलय कर दिया गया। इस प्रकार उस लौहपुरुष के अथक और अचूक व दृढ़प्रयासों से प्राय: सभी राज्यों ने भारत के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया परन्तु जूनागढ़, हैदराबाद व कश्मीर मिलने को तत्पर नहीं हुए। इतना ही नहीं वे भारत के विरुद्ध कार्य करने लगे। पाकिस्तान की मदद करना व भारत की मुद्रा को अस्वीकृत करना, हिन्दुओं को प्रताड़ित करना उनका कार्य था। तब कोई भी उपाय न देखकर नेहरू के विरोध करने पर भी वल्लभ भाई पटेल ने रणनीति बनाकर सेना द्वारा हमला बोल दिया तथा हैदराबाद व जूनागढ़ का भारत में विलय कर लिया गया। कश्मीर का समाधान संयुक्त राष्ट्र संघ में किया जाए, नेहरु की इस हठ के कारण कश्मीर का विलय नहीं हुआ। परिणाम आज भी देश के समक्ष है। आज भी कश्मीर के लिए हज़ारों सैनिक अपने प्राणों को आहुत कर रहे हैं ।

इस प्रकार राजनीति के विद्वान् महामनस्वी दूरदर्शी व शूरवीर ने शरीर से स्वस्थता को धारण न करते हुए भी देश की एकता को बनाए रखा। वास्तव में वल्लभ की वाणी में विलक्षणता ही थी। जब जब वे सहयोग के लिए राष्ट्रवासियों का आह्वान करते थे वैसे ही सहयोग के लिए राष्ट्रवासी हर्षपूर्वक साथ खड़े हो जाया करते थे। इस प्रकार वह महापुरुष साक्षात् निर्माण पुरुष ही थे। उनके लिए राष्ट्रहित ही सर्वोपरि था। इसीलिए अत्यधिक धन दिलाने वाली वकालत को छोड़कर उन्होंने कण्टकपूर्ण जीवन को स्वीकार किया। पुत्र और पुत्री के प्रति उनका मोह राष्ट्रमोह के आगे तुच्छ था। उन दोनों को भी 'राष्ट्र सेवा करो' ऐसा ही उपदेश दिया।

वे लौहपुरुष स्वाभाव से ही यथार्थवादी थे। उनकी वाणी में सदा स्पष्टता दिखती थी। अशोक मेहता ने उन्हें 'इस्पात का पुरुष' ऐसा कहा था। जिसमें पत्थर की चट्टान के समान आत्मविश्वास था। वे सयंमी थे। श्रीयुत वी० शंकर लिखते हैं –'भारतीयाया एकताया यद् भागीरथं कार्यं सरदारेण साधितं तस्य साहसगाथा इतिहासे सुवर्णाक्षरै: लेखिष्यते। इदम् इयत् साहसिकं कृत्यमस्ति, विश्वस्य इतिहासे यस्य अन्यद् उदाहरणं न प्राप्यते।'[13]

वे लौहपुरुष कांग्रेस के इतिहास में प्रकाशमान रत्नों में से एक थे। अतएव स्वर्गीय मौलाना शौकत अली ने उस मनस्वी को लक्ष्य करके कहा था–'*वल्लभभाई हिमेनाऽच्छादितो ज्वालामुखी अस्ति। स तु साक्षात् तेजोराशिपुंज एवाऽसीत्। तस्य प्रकाशे समस्तं भारतमेवादीप्यत्*।'[14]

रविन्द्र कुमार ने इस महापुरुष की उपमा लेनिन व माओत्से तुंग से की है। वे बिस्मार्क के समान लौहपुरुष, नेपोलियन से श्रेष्ठ कार्यपद्धति वाले नेता थे। वे नवीन भारत के निर्माता तथा एकीकरणकर्ता थे।

वास्तव में वल्लभ वर्तमान भारत के निर्माता ही हैं। शिल्पी हैं। जिन्होंने 565 राज्यों को भारत संघ में मिलाया था। वे संघर्षशील, श्रमशील, ईमानदार,शूरवीर,कर्तव्य का पालन करने वाले, प्रजाहित में कुशल, धैर्य के सागर, निर्भय स्वभाव वाले, अहिंसा के पथ पर चलने वाले, उच्च आदर्शों पर चलने वाले थे। नि:सन्देह महान् विभूति वाले वे भारत रूपी भवन की नींव की चट्टान हैं, जिनके ऊपर सुस्थिर यह भारत रूपी भवन विश्वरूपी उज्जवल आकाश में देदीप्यमान है। भारत का मानचित्र ही उनका परिचय पत्र है। वही उनका मानपत्र है। यह मानचित्र प्रभुचरणों में लीन, स्वाभिमानी, सशक्त, प्रवीण, वीर उस लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल का दिन–रात स्मरण करा रहा है और निरन्तर कराता रहेगा।

सन्दर्भग्रन्थ सूची:-

1. नीतिशतकम् 77 श्लोक
2. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 1/12 (पृ ?सं ?)
3. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 1/13(पृ ?सं ?)
4. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 2/42(पृ ?सं ?)
5. नीतिशतकम् 79 श्लोक
6. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 2/1 श्लोक
7. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 9/222 (पृ ?सं ?)
8. नीतिशतकम् 81 श्लोक
9. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 9/ 205–206(पृ ?सं ?)
10. नीतिशतकम् 84 श्लोक
11. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 4/86 (पृ ?सं ?)
12. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 12/272 (पृ ?सं ?)
13. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 12/309 (पृ ?सं ?)
14. लौहपुरुषवल्लभचरितम् 12/310 (पृ ?सं ?)

ISSN 2278 - 0327

डॉ. उषा यादव रचित कहानी संग्रह 'वह एक पल' की भाषिक संरचना

डॉ. कृष्णा देवी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

जितेंद्र शर्मा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. उषा यादव जी एक यथार्थवादी साहित्यकार हैं। वे समाज से गहरा सरोकार रखती हैं। उन्होंने इस कहानी संग्रह में सामाजिक संरचना में बदलाव और सामाजिक पक्षों पर लेखनी के द्वारा अपनी निर्भीक, बेबाक और मुखर राय प्रस्तुत की है।

उनके द्वारा रचित कहानी संग्रह 'वह एक पल' में आधुनिकता के दौर में मानवीय संबंधों का खोखलापन, सामाजिक मूल्य और उनकी प्रासंगिकता, घरों में बुजुर्गों के प्रति घटता मान सम्मान, स्वार्थ वृति से मानवीय संबंधों में बदलाव, पितृसत्तात्मक समाज द्वारा नारी का शोषण, दहेज प्रथा द्वारा उत्पीड़ित नारी, दांपत्य संबंधों में दरार और तीसरे का आगमन, सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर ऑनर किलिंग, वृद्धावस्था में एकांकी जीवन की पीड़ा, मानवीय मूल्यों में गिरावट और महानगरीय जीवन बोध अर्थात् महानगरों की जीवन शैली को उद्घाटित कर पाश्चात्य सभ्यता के यथार्थ को भी चित्रित किया गया है।

लेखिका ने कहानी संग्रह 'वह एक पल' में भाषा के द्वारा पात्रों के चारित्रिक विकास को प्रस्तुत किया है, अपितु परिवेशजन्य स्थितियों तथा रचना के उद्देश्य को भी स्पष्ट किया है। प्रत्येक वर्ग के अनुसार उन्होंने शब्दों और संवादों का चयन किया है। इनके कथा-साहित्य में महानगरीय और ग्रामीण दोनों समाज का चित्रण हुआ है। ग्रामीण समाज के लिए अरबी-फारसी, देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है। नगरीय एवं महानगरीय शिक्षित पात्रों की भाषा में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का प्रभाव दिखाई देता है। कहानी संग्रह में प्रयुक्त भाषा का विश्लेषणात्मक स्वरूप निम्न प्रकार है-

संकेताक्षरों का विवरण

अ०= अरबी भाषा,	फा०= फारसी भाषा
सं० = संस्कृत भाषा (तत्सम शब्द),	देश०= देशज भाषा
हिं० = हिन्दी भाषा,	पु०= पुल्लिंग
स्त्री०= स्त्रीलिंग,	मुहा० =मुहावरा
वि०=विशेषण	क्रि०वि०=क्रिया विशेषण

तत्सम शब्द-तत्सम शब्द संस्कृत भाषा के दो शब्दों, तत् + सम् से मिलकर बना है जिसका मतलब होता है- ज्यों का त्यों अर्थात् संस्कृत के समान। जिसे हम संस्कृत से बिना कोई बदलाव करे उपयोग में लाते हैं, जिनकी ध्वनि में कोई परिवर्तन नहीं होता। इनका उच्चारण कठिन होता है। कोंकणी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तेलुगू, कन्नड, हिंदी आदि भाषा में काफी शब्द संस्कृत से लिए है। उदाहरणार्थ-

अतल (18)- पुं० [सं०] सात पातालों में दूसरा पाताल।(25)

अंतस्तल (45)- पुं० [सं०] 1. हृदय या मन। 2. अचेतन या सुप्त मन। (28)

अन्यमनस्क (23)-वि० [सं०] [भाव० अन्यमनस्कता] जिसका जी या ध्यान किसी ओर तरफ हो। मनमना। 2. खिन्न। उदास। (49)

अवसाद (23)- पुं० [सं०] [वि० अवसादित, अवसन] 1. नाश। क्षय। 2. विषाढ़। खेद। रंज। 3. दीनता। 4. आशा या उत्साह का अभाव। 3.थकावट। 6.कमजोरी। (51)

अनायास (27)-क्रि० वि० [सं०] 1 बिना या या प्रयास के। बिना परिश्रम। 2 अकस्मात। अचानक।(40)

अबोध (64)- पुं० [सं०] अज्ञान। मूर्खता। वि० [मं०] अनजान। नादान। मूर्ख। (45)

अयाचित (30)- वि० [सं०] बिना माँगा हुआ।(67)

अल्हड (159)- वि० [सं०] 1. मन-मौजी। बेपरवाह। 2. जिसे व्यवहार का ज्ञान या अनुभव न हो। 3. उद्धत। उजड्ड। 4. गँवार। (76)

अभिभूत (44)-वि० [सं०] 1. पराजित। हराया हुआ। 2. पीड़ित। 3. वशीभूत। 4.चकित या स्तब्ध।(61)

अभियुक्त (56)-पुं० [सं०] वह जिस पर कोई अभियोग लगाया गया हो। मुलजिम। (एक्यूज़्ड) (61)

उपार्जित (37)- वि० [सं०] 1. कमाया हुआ। 2. प्राप्त किया हुआ। 3. संगृहीत।(141)

उत्फुल (43)- वि० [सं०] 1. विकसित। खिला हुआ। 2. प्रसन्न। (136)
उर्मि (16)-स्त्री० [सं०] [वि० ऊर्मिल] 1 लहर। तरंग। 2. पीड़ा। दु:ख। (161)
ऊहापोह(20)- पुं० [सं० ऊह+अपोह] मन में होने वाला तर्क-वितर्क। सोच-विचार।(170)
कर्कश (60)-वि० [सं०] [भाव- कर्कशता] 1. कठोर। कड़ा। जैसे-कर्कश स्वर। 2. खुरखुरा। कांटेदार। 3. तीव्र। प्रचंड। (201)
कारु (62)-पुं० [सं०] [भाव० कारुता) शिल्पी। कारीगर। दस्तकार।(215)
कौतक (64)- पुं० [सं०] [वि० कौतुकी] 1. कतूहल। 2. आश्चर्य। अचम्भा। 3. विनोद। दिल्लगी। 4. आनंद। (255)
खलिहान (17)- पुं० [सं० खल+स्थान] वह स्थान जहाँ फसल काटकर रखी जाती है। (264)
गजगामिनी (25)-वि० स्त्री० [सं०] हाथी के समान मंद गति से चलने वाली।(315)
चपल (43)-वि० [सं०] [भाव० चपलता] 1. स्थिर या शान्त न रहनेवाला। 2. चंचल। चुलबुला। 3.उतावला। जल्दबाज। 4. चालाक। (332)
चस्का (110)-पुं० [सं०चषण] 1. शौक। 2. आदत। लत।(340)
जीवट (155)-पुं० [सं० जीवथ। ह्रदय का हिम्मत। दृढ़ता। साहस। (411)
जीर्णोद्धार (65)-[सं०] टूटी-फूटी पुरानी वस्तु, मुख्यत: भवन आदि का, फिर से उद्धार, सुधार या मरम्मत((460)
दोहद (55)-स्त्री ० [सं०] 1. गर्भवती स्त्री की इच्छा या वासना। 2. गर्भावस्था। 3. गर्भ के लक्षण या चिह्न। 4. यह प्राचीन भारतीय विश्वास कि सुन्दर स्त्री के स्पर्श से प्रियंगु, पान की पीक थूकने से मौलसिरी, पैरों के आघात से अशोक, देखने से तिलक, मधुर गान से आम और नाचने से कचनार आदि वृक्ष फूलते है।(468)
धूसर(117) -वि० [सं०] 1. धूल मिट्टी- के रंग का। मटमैला। खाकी। 2. धूल से लिपटा या भरा हुआ।
यौ० धूल-धूसर= धूसर।(492)
नरपिशाच (420)-पुं० [सं०] मनुष्य होने पर भी पिशाचों के जैसा काम करनेवाला।(667)
नैसर्गिक (161)-वि० [सं०] 1. निसर्ग या प्रकृति सम्बन्धी। प्राकृतिक। 2. स्वाभाविक। (नेचुरल) (684)
ड्योढ़ी (97)-स्त्री ० [सं० देहली]1. फाटक। दरवाजा 2 मकान में घुसने का स्थान। द्वार।(660)
परित्यकत (78)-वि० [सं०] [स्त्री० परित्यक्ता] त्यागा, छोड़ा या अलग किया हुआ। (अबैन्डन्ड)(678)
पोता(10) -पुं० [सं०पौत्र] बेटे का बेटा। पौत्र। पुं० [फा० फोत] 1 पोत। लगान। भूमि-कर। 2. अंड-कोष। पुं० [हिं० पोतना] 1. गीली चीज पोतने का कपड़ा। पोतना। 2 वह घोल जो किसी वस्तु पर पोता जाय।(730)
बाँझ (86)-स्त्री० [सं० बंध्या] [भाव ० बाँझपन] वह स्त्री जिसे संतान होती ही न हो। बंध्या। बालिका
स्त्री० [सं०] 1 छोटी लड़की। कन्या। 2. पुत्री। बेटी। (766)
बीह? (54)-वि० [सं० विकट] 1. जो सरल न हो। 2. ऊँचा-नीचा। ऊबड़-खाब?। (791)
मर्म (13)-पुं० [सं०] 1. स्वरूप। 2.रहस्य। भेद। 6. संधि-स्थान। दे० 'मर्म-स्थल'। (884)
उर्दू शब्द- भाषा का वह रूप जिसमें अरबी, फारसी के शब्द अधिक होते हैं और फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह मुख्यत: दक्षिण एशिया में बोली जाती है। यह भारत की शासकीय भाषाओं में से एक है तथा पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा है। इसके अतिरिक्त भारत के राज्य जम्मू और कश्मीर की मुख्य प्रशासनिक भाषा है। साथ ही तेलंगाना, दिल्ली, बिहार और उत्तर प्रदेश की अतिरिक्त शासकीय भाषा है। उदाहरणार्थ-
इत्तला (57)-स्त्री० [अ० इत्तलाश] सूचना। इन्तलानामा। सूचनापत्र।(121)
इतफाक (23)- पुं० [अ०] 1. मेल। 2.संयोग। अवसर।(121)
कंदील (102)-स्त्री० (अ०) मिट्टी, या कागज आदि की बनी हुई लालटेन जिसका मुँह ऊपर होता है। (289)
कवायद (92)- स्त्री० [अ० कायदा का बहु०]1. नियम। व्यवस्था। 2. व्याकरण। 3 सिपाहियों की युद्ध-नियमों के अभ्यास की क्रिया। (206)
गजल (12)- स्त्री० [फा०] फारसी और उर्दू में एक प्रकार का पद्य। (245)
गिरफ्त (30)-स्त्री० [फा०] 1. पकड़। 2. दोष या भूल का पता लगाने का ढंग। (302)
चिल्ला (9)- पुं० [फा०] 1. चालिस दिनों का समय। (361)
ताज्जुब (13) -पुं० [अ० ताज्जुब] विस्मय। अचम्भा।
तुनक (93)-वि० [फा०] 1. दुर्बल। कमजोर। 2 कोमल। नाजुक। यौ० -तुनक-मिजाज = बात बात पर रूठने या बिगड़ने वाला। (465)

नसीहत (1०)– स्त्री० [अ०] 1. अच्छा और भलाई का उपदेश। सीख। 2.बुरे काम से फल-स्वरूप मिलने वाली अच्छी शिक्षा (601)

नौबत (149)–स्त्री० [फा०] 1. पारी। 2. दशा। हालत। 3 संयोग। 4. वैभव या मंगल-सूचक शहनाई आदि बाजे जो देव-मंदिरों आदि में बजते है। (646)

पैकिंग(92) –स्त्री० [अं०] किसी चीज को कहीं भेजने या ले आने के समय बक्से आदि के अन्दर अथवा कागज या कपड़े आदि में अच्छी तरह मजबूती और हिफाजत से बांधने की क्रिया या भाव।(727)

बरकत (98)–स्त्री ० [अ०] [वि० बरकती] किसी चीज की वह यथेष्टता जिससे वह जल्दी कम नहीं होती। बहुतायत। 2. लाभ। फायदा। 3. प्रसाद 7 कृपा(761)

बिसात (126)–स्त्री० [अ०] 1. हैसियत। वित्त। औकात। 2 जमा। पूँजी। 1. सामर्थ्य। शक्ति। 4 वह कपड़ा या दफ्ती जिस पर शतरंज या चौपड़ खेलते है बिसातवाना–पुं० [हि० बिसात+फा० बाना] बिसती के यहां मिलनेवाली चीज़े– जैसे-सुई, तागा, कलम, खिलौने आदि। (820)

मदारी (77)–पुं० [अ० मदार] 1. वह जो बंदर, भालू आदि नचाकर उनका तमाशा दिखाता है। कलंदर। 2. लाग आदि के तमाशे दिखाने वाला। बाजीगर। (877)

मलामत (12) –स्त्री [अ०] 1. डॉट-फटकार। लानत- मलामत- डॉट-फटकार।(886)

मालिकाना(17)–पुं० [फा०] स्वामी का अधिकार या स्वत्व। स्वामित्व।(655)

मुनासिब (122)–वि० [अ०] उचित। योग्य। वाजिव। ठोक। (692)

मिल्कियत (17)–स्त्री० [अ०] 1. मालिक या स्वामी होने का अधिकार या भाव।(907)

शामियाना (54)–पुं० [फा० शामियान] एक प्रकार का बड़ा तम्बू या खेमा। (1041)

शिरकत(94) स्त्री० [अ०]1. किसी वस्तु, कार्य, अधिकार आदि में शरीक या सम्मिलित होने का भाव। 2. हिस्सेदारी। साझा। 3 किसी काम में सम्मिलित होना। (1042)

सलमा (48)–पुं० [अ० सलमड 1) सोने या चादी का वह तार जो कपड़ों पर बेल बुटे बनाने के काम में आता है। (1190)

संदूक (63)–पुं० [अ०] [संदूकड़ी] लकड़ी या धातु की चौकोर पेटी। बक्सा।

संदूकड़ी (63)–स्त्री० [अ०संदूक] छोटा संदूक। (1003)

देशज शब्द- देशज वे शब्द जो स्थानीय भाषा के शब्द होते हैं। ये देश की विभिन्न बोलियों से लिए जाते हैं अर्थात् तत्सम् शब्द को छोड़कर, देश की विभिन्न बोलियों से आये शब्द देशज शब्द कहलाते हैं। इन्हें आवश्यकता अनुसार प्रयोग किया जाता है और ये बाद में प्रचलन में आकर हमारी भाषा का हिस्सा बन जाते हैं। दूसरे शब्दों में- वे शब्द जिनकी व्युत्पत्ति की जानकारी नहीं होती, बोल चाल के आधार पर स्वत: निर्मित हो जाते हैं, उसे देशज शब्द कहते हैं। उदाहरणार्थ–

ऊल जलूल (151)– वि० [देश०] 1. असंबद्ध। बे-सिर पैर का। अंडबंड। 2. वाहियात(161)

ठेठ (32) - वि० [देश०] 1. निपट। निरा। बिलकुल। 2. जिसमें कुछ मेल-जोल न हो। खालिस। 3.शुद्ध। निर्मल।। 4. आरंभ। शुरू। (583)

नौटंकी (89) –स्त्री० [देश०] ब्रज में होने वाला एक प्रकार का प्रसिद्ध नाटक जिसमें नगाड़े पर चौबोले गाकर अभिनय करते हैं। (645)

सुभीता (13)–पुं० [देश०] 1. वह स्थिति जिसमें कोई काम करने में कुछ कठिनता या अड़चन न हो। सुगमता सहूलियत (कनवनिएन्स) 2. सुअवसर सुयोग।(1139)

अंग्रेजी शब्द- जो शब्द विदेशी भाषा के हैं, परंतु हिंदी में उन शब्दों का प्रचलन हो रहा है। ऐसे शब्द विदेशी शब्द कहलाते हैं। विदेशी शब्द, हिंदी भाषा में इस प्रकार घुल-मिल गये है कि उनको पहचानना मुश्किल है। दूसरे शब्दों में- विदेशी भाषाओं से हिंदी में आये शब्दों को विदेशी शब्द कहा जाता है। इन विदेशी भाषाओं में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी भी शामिल है। उदाहरणार्थ– क्लीनिक (10), क्लासिकल (31) कैंडिल (102), मोबाइल (18), एयरपोर्ट (29), एयर कंडिशनर (134), कॉन्फ्रेंस (21), गेस्ट हाउस (21), नर्सिंग होम (10), फोटोग्राफी (154) आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो विदेशी होकर भी हिन्दी भाषा में इतने घुलमिल गए हैं कि ये शब्द अब हिन्दी भाषा के ही लगते हैं।

मुहावरे एवं लोकोक्ति- मुहावरे-लोकोक्तियों भाषा शैली के सौन्दर्य एवं उसकी प्रभावशीलता में वृद्धि करते है। इनमें थोड़ा-सा अंतर यह है कि मुहावरे का स्वतंत्र प्रयोग नहीं हो सकता। जबकि लोकोक्ति का प्रयोग स्वतंत्र रूप में होता है। 'मुहावरा' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है-'अभ्यास'। हिन्दी में यह शब्द रूढ़ हो गया है, जिसका अर्थ है-'लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य' जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा

में प्रचलित हो और जिसका अर्थ- प्रत्यक्ष अर्थ से विलक्षण हो। संक्षेप में, ऐसा वाक्यांश जो अपने साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करे, मुहावरा कहलाता है। इसे 'वाग्धारा' भी कहते हैं।'लोकोक्ति' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, लेकिन उक्ति अर्थात् किसी क्षेत्र-विशेष में कही हुई बात या लोकोक्ति किसी प्रासंगिक घटना पर आधारित होती है जो अपने विशिष्ट अर्थ के आधार पर संक्षेप में ही किसी सच्चाई को प्रकट कर सके, लोकोक्ति अथवा कहावत कही जाती है, जो भाषा को सशक्त एवं प्रभावशाली बनाती है। उदाहरणार्थ-

ठौर-कुठौर (40) -मुहा०-बुरे ठिकाने पर। अनुपयुक्त स्थान पर कोई चीज मारना या गिरा देना।(452)

चिल्ले का जाड़ा(10)-मुहा०- कड़ी सरदी जो प्राय: 40 दिनों तक रहती है। (361)

दोष लगाना (52) - मुहा०-किसी के संबंध में यह कहना कि उसमें अमुक दोष है। 2. लगाया हुआ अपराध। अभियोग। 3. अपराध। कसूर। 4. पाप। पातक। 5. शरीर में वात, पित्त और कफ के बिगड़ने से रोग उत्पन्न होते हैं। (463)

अब पछताए क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत (69)- समय बीत जाने पर प्रयास करने या पछतावा करने का कोई लाभ नहीं है। जब पढ़ाई का समय था तब तो वह खेल कूद में लगा रहा अब परिणाम देखकर पछताने से क्या लाभ। (225)

भावात्मक शैली - डॉ उषा यादव ने 'वह एक पल' कहानी संग्रह में मानव के भावात्मक पहलू को उजागर किया है। वैसे देखा जाय तो कथा-साहित्य का उद्गम-स्थल ही भावना है। डॉ. उषा यादव एक कुशल कहानी-लेखिका हैं। निरीक्षण-शक्ति अद्भुत है। वे न केवल वैचारिक पक्षों से विषय को चुनती हैं, अपितु हृदय की गहराइयों में बैठकर विषय को सम्प्रेषणीय बनाती हैं। वे मानव-मन के आन्तरिक मनोभावों को प्रकट करने में हृदय-स्पर्शी चित्रण करती हैं। भावुक प्रसंगों में भावात्मक भाषा का सहज प्रयोग उस भाषा में स्वाभाविक करुणा व कोमलता का संचार करने में सहायक होता है। पात्र जब भावावेश में आते हैं तो उनके द्वारा प्रयोग में आने वाली भाषा में भाव-दशा के अनुरूप प्रयुक्त लय, सरल, सुगम, शब्दों व भावों को मूर्त करने वाले वाक्य-प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

उदाहरणार्थ-

कितना अभागा बाप हूं मैं। मुझे अपने बेटे का खत्म होना अपनी आंखों से देखना पड़ रहा है। क्या शरीर का अंत मौत होता है? क्या अंतरात्मा का मरना कोई मायने नहीं रखता? (19)

'जैसे ही पुस्तक के अंतिम पृष्ठ पर पहुंचकर मैंने अंतिम पंक्ति पढ़ी। मुझे लगा कि अशरीरी आत्मा ने लगभग उसी पल पुस्तक को संपूर्णता से पढ़ लिया है। मेरे प्रति गहरी कृतज्ञता से भरी वह आत्मा अब मुझसे परे सरक रही थी। उसका ओर- ओर परे होते जाना मुझे स्पष्ट महसूस हो रहा है।'(173)

डॉ. उषा यादव के कहानी संग्रह 'वह एक पल' में भावात्मक शैली का परिचय मिलता है। इसके माध्यम से उन्होंने भाव एवं विचारों का बखूबी विश्लेषण किया है।

निष्कर्ष-

डॉ. उषा यादव का भाषा पर अद्भुत अधिकार है। उन्हें हिन्दी, उर्दू, भोजपुरी, अंग्रेजी आदि भाषाओं की अच्छी जानकारी है। ग्रामीण परिवेश तथा उनकी सामाजिक स्थिति के अनुरूप पात्रों की योग्यता के अनुसार संवाद लिखने में लेखिका को महारथ हासिल है। उन्होंने पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कहना यह चाहिए कि अवसर तथा आवश्यकतानुसार उनकी भाषा पात्रानुकूल बनती चली गयी है। मन की गुत्थियों तथा जीवन-जगत की जटिलताओं तथा जीवन के रागात्मक पक्षों की प्रस्तुति करने में इनकी भाषा-शैली पूर्णत: समर्थ है। पात्रों के चारित्रिक विकास तथा रचना के उद्देश्य की सृष्टि करने में इनकी भाषा और शैली में प्रवाहमयता देखी जा सकती है। माटी से आत्मीय लगाव होने के कारण उनकी भाषा में देशज, मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग भलीभाँति हुआ है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग की ताकत से वे भलीभाँति परिचित हैं। प्रेमचन्द की भाँति उन्होंने इस भाषाई ताकत को अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है। इनके कहानी संग्रह में भावात्मक प्रवृत्ति दिखायी देती हैं। यही कारण है कि वे यथार्थ की भाव-भूमि पर संवेदना की गहराई को छूती हैं। निश्चित रूप से वर्तमान समय में कथा-लेखिकाओं में डॉ. उषा यादव के कहानी संग्रह की भाषा शैली उत्कृष्ट श्रेणी में आती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- वह एक पल, (डॉ.) उषा यादव, के के पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2019
- प्रामाणिक हिन्दी कोश, संपादक रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर प्रकाशक,बनारस, वि.संवत 2007

ISSN 2278 - 0327

सविनय अवज्ञा आंदोलन में प्रमुख मस्लिम महिलाएं

सविता
शोध छात्रा (इतिहास विभाग)
एम. एम.(पी.जी.) कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

डॉ. आशा यादव
(एसो. प्रो. विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग)
एम. एम.(पी.जी.) कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

शोध सारांश

महिलाओं ने देश के स्वतंत्रता संग्राम की प्रत्येक रणनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्त्रियों के द्वारा अपने मताधिकार की मांग को लेकर लड़ना हो या देश को स्वतंत्र कराने में अपना सर्वस्व न्योछावर करने की बात हो, स्त्रियों ने सभी क्षेत्रों में परी तत्परता के साथ काम किया है। महिलाओं ने अपने देश के स्वतंत्रता आंदोलन में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने अदम्य साहस का परिचय दिया है। सविनय अवज्ञा आंदोलन में असंख्य महिलाओं के भाग लेने के कारण ही आजादी का यह महान आंदोलन सक्रिय एवं सार्थक बन पड़ा। केवल हिंदू महिलाएं ही नहीं मुस्लिम महिलाओं ने भी अपने देश प्रेम की भावना का परिचय देते हुए देश को स्वतंत्र कराने में अनेक तरीकों से अपना योगदान दिया। शांतिप्रिया आंदोलनों से लेकर क्रांतिकारी आंदोलन में मस्लिम महिलाओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में विविध आयामों के साथ स्वयं को प्रस्तुत किया। गांधी जी के भारत आगमन के पश्चात् उनके द्वारा किए गए आंदोलनों में हिंदू एवं मुस्लिम महिलाओं के सहयोग की कहानी को अच्छे से जाना जा सकता है। मुस्लिम महिलाओं ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय भूमिका निर्वहन किया और स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास उन मुस्लिम महिलाओं के बगैर अधूरा है जिनका नाम अभी भी गुमनामी में है। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के पदार्पण से राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की बड़ी संख्या में भागीदारी का चरण शुरु हुआ। दक्षिण अफ्रीका में अपने संघर्षो के दौरान गांधी जी को महिलाओं की शक्ति का अनुभव हो चुका था कि किस तरह राष्ट्रीय आंदोलन को सही अर्थों में जन आंदोलन बनाने के लिए की व्यापक भागीदारी बहुत आवश्यक है। गांधी जी ने आदर्श भारतीय नारी की अवधारणा को प्रस्तुत किया और महिलाओं को राष्ट्र की सेवा में लग जाने तथा अपने देश के लिए बलिदान देने का आह्वान किया। गांधी जी ने स्त्री पुरुष के 'बीच स्वभाविक श्रम विभाजन' पर जोर दिया।

गांधीजी का मानना था कि बराबरी का अर्थ यह नहीं कि महिलाएं वह सब कार्य करें जो पुरुष करते हैं, उनका कहना था कि अपने स्वभाव एवं क्षमता अनुसार अलग-अलग कार्य करें। गांधीजी मानते थे कि 'घर देखना औरतों का मूल कर्तव्य है किंतु वे विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों पर धरने देकर स्वदेशी और सत्याग्रह जैसे अहिंसक आंदोलनों में भागीदारी कर राष्ट्र की सेवा कर सकती है। गांधीवादी युग में अनेक आंदोलनों में मुस्लिम महिलाओं ने सामाजिक कुरीतियों का विरोध कर सुधारवादी कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जिसने मुस्लिम महिलाओं के लिए घर की चारदीवारी से निकलकर तथा पर्दे में रहकर भी देश की आजादी में बढ़ चढ़कर भाग लेने के मार्ग को खोल दिया।

कुंजी **शब्द** - सामाजिक- कुरीतियां, सत्याग्रह, मताधिकार, स्वतंत्रता, राष्ट्र, क्रांतिकारी, आयाम

भूमिका- महिलाएं आज राष्ट्र निर्माण के कार्य में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है और हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं लेकिन एक समय उनकी स्थिति इतनी दयनीय थी, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। ऐसे में गांधी जी ने उन्हें आजादी के आंदोलन से जोड़ा और सार्वजनिक जीवन में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की महात्मा गांधी जी महिलाओं को रुढ़ियों और कुप्रथाओं से मुक्त कराने और उनके व्यक्तित्व विकास के हिमायती रहे। गांधी जी ने बाल विवाह, पर्दा प्रथा एवं दहेज जैसी कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाने और महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भागीदारी के लिए प्रेरित किया गांधी जी ने पहले दक्षिण अफ्रीका में और उसके बाद देश में स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं को शामिल किया। विभिन्न वर्ग की महिलाएं वह चाहे दलित, मुस्लिम, जमीदार, व्यापारी अथवा राजनेताओं के घराने से संबंधित हो, उनमें अहिंसा की विशेष शक्ति निहित है, इसका एहसास गांधी

जी ने कराया। लंदन में मताधिकार के लिए आंदोलन कर रही महिलाओं से गांधीजी बहुत प्रभावित हुए और इसकी प्रेरणा उन्होंने पहले दक्षिण अफ्रीका में तथा भारत लौटने पर भारतीय महिलाओं को दी। गांधी जी जब कांग्रेस में सक्रिय हए तो उन्होंने स्त्रियों को स्वाधीनता आंदोलन से जोड़ा। सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ करने से पूर्व गांधी जी ने 30 जनवरी 1930 को अपने पत्र 'यंग इंडिया' द्वारा 11 मांगे वायसराय इर्विन के समक्ष रखी परंतु सभी मांगे अस्वीकार किए जाने के बाद,12 मार्च 1930 को गांधीजी ने विद्यापीठ सहित 76 सहयोगियों के साथ साबरमती आश्रम से 200 किलोमीटर दूर दांडी नामक स्थान तक 24 दिन की पदयात्रा करके 6 अप्रैल 1930 को समुद्र तट पर पहुंच कर 'नमक बनाकर कानून की अवहेलना की। हालांकि इस पदयात्रा में एक भी महिला शामिल न होने के कारण राष्ट्रवादी नारियां आक्रोशित थी। स्त्री धर्म पत्रिका के संपादक मार्गरेट कुंजीस व दादा भाई नौरोजी की पत्री खुर्शीद ने गांधीजी को पत्र लिखकर इस पर नाराजगी जताई। अंततः कमलादेवी चट्टोपाध्याय की अपील पर गांधी जी ने और कांग्रेस समिति ने नमक अभियान में स्त्रियों को सम्मिलित किया। पदयात्रा के अंतिम दिन सरोजिनी नायडू ने शामिल होकर गिरफ्तारी दी तथा उनके अलावा अनेक हिंदू-मुस्लिम महिलाओं ने पर्दा त्याग कर उत्साह पूर्वक सत्याग्रह में भागीदारी की और गिरफ्तारी देकर सविनय अवज्ञा आंदोलन को सुदृढ़ता प्रदान की देश के विभिन्न शहरों में राष्ट्रीय व प्रांतीय स्तर पर अनेक सम्मेलन आयोजित किए गए जिनमें महिलाओं ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। गांधी के साथ सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान महिलाएं जेल भी गई। उनमें कुछ मुस्लिम महिलाओं का विवरण इस प्रकार है।

अमीना कुरेशी

यह अब्दुल कादिर वजीर एलिस इमाम की बेटी थी जो दक्षिण अफ्रीका के रहने वाले थे अमीना गांधी जी से बहुत प्रभावित थे गांधीजी भी उनकी बेटी की तरह मानते हैं अमीना बहत छोटी थी जब उनके पिता इमाम साहिब अपना बिजनेस छोड़कर फिनिक्स आश्रम में गांधीजी के सहयोगी बने 1917 में गांधी जी के साथ ही इमाम साहब साबरमती में बस गए अमीना का विवाह गुजरात के स्वतंत्रता सेनानी गुलाम रसूल कुरैशी से हुआ अमीना ने और पति के साथ मिलकर दांडी मार्च में सक्रिय रूप से भाग लिया फल स्वरूप दोनों को को जेल में डाल दिया गया गांधीजी ने अमीना के लिए एक पत्र लिखा था अमीना के पिता के दौरान अत्यधिक स्वास्थ्य खराब हो गया कुछ समय बाद 9 दिसंबर 1931 में उनके पिता की मृत्यु हो गई अल्फा मीनाबेन टूटी नहीं बल्कि उन्हें अंग्रेजो के खिलाफ लड़ने कब मिला अमीना कुरेशी ने रिहाना साउथ हमीदा बहन के साथ गुजरात के सूरत जिले में शराब की दुकानों पर धरना दिया। जहां इन्हें नवसारी के पास पकड़ लिया गया और 6 माह की जेल हुई इस दौरान अमीना के तीनों बच्चों को अनुसूया बेन के आश्रम में रखा गया और अमीना बेन ने अनुसूया आश्रम को अपने बच्चों के लिए सही स्थान बताया जहां वे बहुत खुश थे।

फातिमा बेगम

यह अमीना कुरैशी की बहन थी। गांधी जी ने फातिमा के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने में उनके कार्य प्रवाह और साहस की प्रशंसा करते हए टिप्पणी की, लड़कियों को फिनिक्स और साबरमती आश्रम में कैसे पाला और प्रशिक्षित किया जाएगा। इनके पिता इमाम अब्दुल कादिर गांधी जी के घनिष्ठ मित्र थे। 20 वर्ष की उम्र में फातिमा बेगम का विवाह सैयद हुसैन मियां से हुआ और इनके विवाह के निमंत्रण की जानकारी महात्मा गांधी जी ने नवजीवन पत्रिका में उल्लेखित की थी।

फातिमा तय्यब अली

उन्होंने न केवल कांग्रेस के लिए सक्रिय रूप से कार्य किया बल्कि सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के कारण दो बार जेल भी जाना पड़ा। फातिमा के हौसला और हिम्मत ने उन्हें आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित किया।

अमीना तैयब जी

मुंबई प्रांत के शिक्षित तैयब जी परिवार से संबंधित पुरुषों और महिलाओं की 3 पीढ़ियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तैयव जी परिवार के सदस्य गांधी जी से अपने व्यक्तिगत मुद्दों पर चर्चा करते थे। इस तरह तैयब जी परिवार की महिलाओं ने पुरुषों के साथ गांधीवादी मार्ग का पूरी तरह से पालन किया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में तैयब जी परिवार की महिलाओं की भागीदारी अमीना तैयब जी से शुरू हुई। उन्होंने गांधीजी के निमंत्रण पर राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यक्रमों का आयोजन किया। गांधी जी ने अमीना में दृढ़ता और गुजराती महिलाओं के लिए के प्रति सम्मान को देखा। गांधी जी ने अमीना तैयब की बेटी रेहाना तैयब जी को अप्रैल 1930 में पत्र में लिखा 'शराब निषेध और विदेशी सामानों के बहिष्कार जैसे मुद्दों पर चर्चा करने के लिए मैं गुजराती महिलाओं की एक बैठक बुला रहा है। गांधी जी ने दोनों से बैठक में शामिल होने का आग्रह किया' अमीना ने गांधी जी के विशेष निमंत्रण का सम्मान करते

हुए बैठक में भाग लिया। उस बैठक में अमीना तैयब जी गांधी जी की उपस्थिति में गुजरात महिला कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गई। गुजरात की महिलाओं ने संकल्प लिया तथा एक महान जिम्मेदारी को उठाने का सभी महिलाओं की ओर से अमीना तैयब जी और उनकी समिति ने वह भार वहन किया। राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में अमीना के महत्व का पता तब चला जब गांधी जी चाहते थे कि वह 24 अन्य महिलाओं के अलावा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महिला सम्मेलन की ओर से वायसराय को भेजे जाने वाले पत्र पर हस्ताक्षर करें। गांधी जी ने अमीना के प्रयासों एवं कार्य प्रवाह की प्रशंसा की।

रिहाना तैयब जी

गुजरात की मनु अब्बास समसुद्दीन तैयब जी की बेटी थी। इन की माता अमीना तैयब जी थी जिनसे तैयब जी परिवार की महिलाओं की भागीदारी प्रारंभ हुई थी। रिहाना तैयब जी ने शराब की दुकानों पर धरना दिया था। सन् 1921 में इन्हें 60 महिलाओं के साथ 1 वर्ष की कैद हुई वर्धा जुलूस में भी इन्होंने भाग लिया था। रिहाना ने भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया तथा शारदा एक्ट पास कराने में भी कठिन प्रयास किए थे। रिहाना एक अच्छी सिंगर भी थी। गांधीजी उनके द्वारा गाय भजन व गजल के बहुत शौकीन थे। सन् 1930 के सत्याग्रह एवं जुलूस में वह गीत गाती थी

'हिंद की खातिर शेर जवाहर जेल की रोटी खाए
80 बरस का अब्बास तैयब जेल में उम गवाए।'

यह पहली मुस्लिम महिला थी जिन्होंने अहमदाबाद में वंदे मातरम् गया था। रिहाना ने असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को पास कराने में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था। यह गांधी जी के प्रिय थी। गांधीजी ने इन्हें पागल रिहाना, उस्तानी साहिबा, बेटी रेहाना, प्रिय रेहाना और रिहाना बेटी कह कर संबोधित करते थे। रिहाना ने गांधीजी को उर्दू सिखाई ।

हमीदा तैयब जी

हमीदा तैयब जी ने गांधीवादी पथ पर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सभी कार्यक्रम में भाग लिया। उन्होंने गांधीजी के सुझावों के अनुसार साहस और दुस्साहस के साथ कार्यक्रम का आयोजन किया। गांधीजी हमीदा की आयोजन क्षमता, साहस और दुस्साहस से प्रभावित थे। उन्होंने रेहाना तैयब जी को लिखें अपने पत्र में लिखा 'हमीदा एक साहसी इंसान है भगवान् उसे लंबी उम्र दे।

सकीना लुकमानी

प्रसिद्ध तैयब जी परिवार की एक अन्य महिला सकीना लुकमानी मूर्ति बदरुद्दीन तैयब जी की पुत्री थी। गांधी जी के विशेष अनुरोध के कारण इन्होंने बहुत परिपक्व उम्र में भी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लिया। जब गुजरात में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया तो गुजरात आक्रोश में आ गया। गांधी जी ने सकीना लकमानी के साहस की प्रशंसा की और उन्होंने कहा 'तैयब जी परिवार के सदस्यों ने असाधारण साहस और दुस्साहस का प्रदर्शन किया'। यह स्वयं स्थानीय कांग्रेस की अध्यक्षा भी रही। यह शराब की दुकानों पर धरना देती थी और दुकान से 500 गज की दूरी पर बैठती थी। उनकी उपस्थिति में कोई भी शराब खरीदने नहीं आता था। हालांकि उन्होंने शारीरिक रूप से कोई ठोस कदम नहीं उठाया था। दुकान के मालिक ने उनके खिलाफ शिकायत दर्ज कराई जिसके फलस्वरूप उन्हें 4 माह की जेल हुई। यह घटना एक पत्र मुंबई क्रॉनिकल में छपी थी।

अमातुस सलाम

बीबी अमातुस दृढ़ता से मानती थी कि केवल गांधीवादी तरीकों के जरिए अंग्रेजों से आजादी हासिल की जा सकती है। अमात्स सलाम छह भाइयों की छोटी बहन थी। उनका स्वास्थ्य बचपन से ही बहुत नाजुक था। अमातुस सलाम अपने बड़े भाई अब्दुल राशिद खान से प्रेरित थी इसलिए इन्होंने भाइयों के नक्शे कदम पर चलते हुए देश सेवा का फैसला किया एवं अमातुस ने खादी आंदोलन में भाग लिया। यह अपने भाई राशिद खान के साथ भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की बैठकों में भाग लिया करती थी। सन् 1931 में सेवा ग्राम आश्रम में शामिल होकर आश्रम के सख्त सिद्धांतों का पालन किया। अमातुस सलाम अपनी निस्वार्थ सेवा द्वारा गांधी दंपत्ति के बहत करीब हो गई। गांधीजी अमानुस सलाम को अपनी प्यारी बेटी मानते थे। मोहम्मद अली जिन्ना के कायदे आजम के रूप में प्रसिद्ध होने में अमातुस सलाम की भूमिका है, गांधीजी जिन्ना को एक पत्र लिखते समय निश्चित नहीं थे कि उन्हें कैसे संबोधित करना चाहिए, अमातुस सलाम ने उन्हें सुझाव दिया कि-कायदे आजम उपयुक्त हो सकता है। गांधी जी ने उनका सुझाव लिया और जिन्ना को कायदे आजम के रूप में संबोधित किया। गांधी जी के कहने पर राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान बीमार होने के बावजूद सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया और 1932 में अन्य महिलाओं के साथ जेल गई। जेल से रिहा होने के बाद सेवाग्राम और गांधीजी के निजी सहायक के

रुप में दायित्व संभाला। स्वतंत्रता प्राप्त करने के अलावा हिंदू और मुस्लिमों के बीच सामंजस्य तथा हरिजनों तथा महिलाओं का कल्याण उनके जीवन की महत्वाकांक्षा थी। जब सांप्रदायिक दंगे भड़क गए तो उन्होंने उत्तर पश्चिम सीमांत सिंध और नोवाखाली क्षेत्रों में गांधीजी के राजदूत के रुप में दौरा किया एवं उन क्षेत्रों की स्थिति सामान्य करने के लिए इन्होंने 20 दिनों तक सत्याग्रह किया। आजादी के बाद उन्होंने स्वयं को सार्वजनिक सेवा में लगा दिया। उन्होंने राष्ट्रीय एकीकरण और सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देने के लिए हिंदुस्तान नामक उर्दू पत्रिका का संपादन किया। सन् 1961 में जब अब्दुल गफ्फार खान भारत दौरे पर आए तो उन्होंने उनके निजी सहायक रुप में साथ यात्रा की।

श्रीमती अरूणा आसफ अनी

इनका वास्तविक नाम अरुणा गांगुली था। राष्ट्रीय नेता आसिफ अली इनके पति थे। विवाह के पश्चात अरुणा आसफ अली और उनके पति आसिफ अली ने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध राजनीतिक गतिविधियों में शामिल होने तथा नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण अरुणा जी को सन 1930 में 1 वर्ष कैद में भी रहना पड़ा। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान गिरफ्तार होने वाली यह प्रथम महिला थी। महात्मा गांधी जी के आवाहन पर अरुणा आसिफ अली ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया इसके लिए उन्हें 6 माह के लिए जेल जाना पड़ा हालांकि वहां से लौटते ही यह फिर से राजनीतिक गतिविधियों में शामिल हो गई।

लेडी अब्दुल कादिर

इनका जन्म सन् 1883 में लाहौर में हुआ इन्होंने सन् 1920-22 में खिलाफत व सन 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन में प्रमुख रूप से भाग लिया। इनका कार्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश में लखनऊ था।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिस समाज में स्त्रियों की दशा खराब थी और जहां स्त्री सतीत्व की रक्षा एवं धर्म की रक्षा के नाम पर सामाजिक बंधनों से जकड़े हुई थी, जहां स्वतंत्र अस्तित्व का कोई निशान ना था, मुस्लिम स्त्रियों ने पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता के रण क्षेत्र में कूद पड़ी। जिस समय स्त्रियों के पिछड़ेपन का कारण अंधविश्वास, तथा निरक्षरता था वहां ब्रिटिश अत्याचारों के प्रभाव एवं कुटिल नीतियों के विरोध में भारतीय मुस्लिम महिलाओं ने बदलते जीवन पद्धति व क्रांतिकारी जीवन चरित्र को अपनाया। अंग्रेजी कुठाराघातो के कारण भारतीय परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई जिसका प्रभाव समस्त भारत पर पड़ा। दीनहीनता के कारण महिलाएं भी परिवार में बच्चों की परवरिश में महत्वपूर्ण भूमिका ना निभा सकी। दीनहीनता ने पुरुषों में विद्रोह की भावना को जन्म दिया और यही विद्रोह की ज्वाला मुस्लिम महिलाओं को भी सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के लिए खींच लाई। गांधीजी एवं समाज सुधारकों के प्रयत्न द्वारा सामाजिक बुराइयां नष्ट होने लगी एवं नारियों में जागृति आई।

संदर्भ ग्रंथ

1- BVK पूर्णानंद(अंग्रेजी संस्करण)- महात्मा गांधी मुस्लिम एसोसिएट एंड फॉलोवर्स (2020), आजाद हाउस ऑफ पब्लिकेशन, पेज नंबर- 11

2- वही, पृष्ठ संख्या -11

3- वही पृष्ठ संख्या- 20

4- वही, पृष्ठ संख्या -23

5- वही ,पृष्ठ संख्या-24-25

6- हरिवंश राय, बच्चन- दश द्वार से सोपान तक, खंड -4, प्रकाशक- राजपाल एंड सनस, आईएसबीएन-978-81-7028-117-7(2010, दिल्ली)

7- BVK, पूर्णानंद (अंग्रेजी संस्करण)- महात्मा गांधी एसोसिएट एंड फॉलोवर्स (2020), आजाद हाउस ऑफ पब्लिकेशन, पेज नंबर-24

8- वही, पृष्ठ संख्या-25

9- वही, पृष्ठ संख्या-27

10- रुप नरेन- स्वाधीनता संग्राम के सुहाने प्रसंग, पेज नंबर-194

11- वही, पृष्ठ संख्या -194

ISSN 2278 - 0327

हिन्दी कहानी और आन्दोलन

डॉ. कविता चौधरी
शोध निर्देशिका, विभाग- हिन्दी
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

उषा
शोध छात्रा, विभाग- हिन्दी
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

सारांश -स्वतन्त्रता पाने के बाद लगभग सन् 1960 के आसपास हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक आन्दोलन बारी-बारी से सिर उठाते और पानी के बुलबुलों की तरह काल के गाल में समाते चले गये थे। यहाँ इन्हीं विभिन्न आन्दोलनों का परिचय मात्र दिया जा रहा है। उनमें -'सामाजिक यथार्थ' के निरूपण की कसौटी को ही मुख्यत: दृष्टि में रखा गया है।

मुख्य शब्द- विस्मता, संत्राष्ट, मौलिकात

नयी कहानी -भारत में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जीवन-मूल्यों में परिवर्तन होने लगे और उसी के साथ सामाजिक संदर्भों में परिवर्तनों की प्रक्रिया भी आरम्भ हुई। सन् 1960 के आसपास कहानी में एक नवचेतना का उन्मेष देखने को मिला।

डॉ०गोरधनसिंह शेखावत ने 'नयी कहानी' की सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक पृष्ठपीठिका पर विचार करते हुए लिखा है, ''विभाजन और मोहभंग की स्थिति के कारण जीवन में असंगतियों और विघटनशील प्रवृत्तियाँ पैदा हुई। इस सामयिक संक्रमण के कारण व्यक्ति, परिवार और समाज के सम्बन्धों में अन्तर आने लगा। वैयक्तिक चेतना जहाँ अपने मान-मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध थी, वहाँ सामाजिक स्थिति व्यक्तिपन की जटिलताओं से संघर्ष कर रही थी। युग के इस व्यापक मानसिक उद्वेलन ने संपूर्ण मानवीय चेतना को नये भाव-बोध से संपृक्त कर दिया था। इस प्रकार इस परिवर्तित स्थिति ने सर्जनात्मक स्तर पर जिस चुनौती का सामना किया, वहीं से 'नयी कहानी' की शुरूआत होती है।''[1]

अत: 'नयी कहानी' एक 'ऐतिहासिक सन्दर्भ की उपज' रही है और उसका विकास परम्परा से जुड़ कर ही हुआ है, न कि उससे कट कर। सन् 1950 ई0 से पूर्व, 'यदि (लेखकों का) एक वर्ग आर्थिक विषमता और सामाजिक संत्रास को लेकर आगे बढ़ता है तथा यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतलाल नागर, हंसराज रहबर, विष्णु प्रभाकर इस श्रृंखला की कड़ियाँ हैं, तो दूसरा वर्ग मनोविश्लेषण को पकड़ कर मनोभूमियों की अंधेरी गलियों में घूमने की चेष्टा करता है तथा जैनेन्द्र अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, धर्मवीर भारती आदि इस शैली के झंडाबरदार है। इन दोनों प्रकार के लेखकों ने सन् 1950 ई. तक तरह-तरह के प्रयोग किये तथा सृजन एवं शिल्प को मांजा। यद्यपि ये दोनों ही धाराएं सन् 1950 के बाद एक नये दौर में प्रवेश करती हैं, फिर भी छठे दशक में एक ऐसी पीढ़ी सिर उठाती है, जो इन दोनों में से किसी के साथ जुड़ना पसन्द नहीं करती। धाराओं के अन्तराल ने पहली बार पीढ़ियों के अन्तराल का रूप ग्रहण किया और पीढ़ियों के अन्तर को रचनाधर्मिता का एक सशक्त प्रेरक तत्व ही माना। इस नई पीढ़ी के हस्ताक्षरों ने ही 'नयी कहानी' लिखी। वास्तव में मनोवैज्ञानिक और समाजवैज्ञानिक कहानियों के फार्मूले की इस हद तक पहुंच जाने वाली यांत्रिकता से नई पीढ़ी और नई कहानी ने अपने को छिटक कर अलग कर लिया।

पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों ने अपने युग विशेष की गतिविधियों और स्पन्दनों को अपनी कहानियों में व्यक्त करने की चेष्टा की थी। अत: ये भी निर्दोष थे। फिर भी डॉ० नामवर सिंह का यह मत भी तकसंगत ही है, 'यह तथ्य है कि पुरानी पीढ़ी के अनेक लेखक नये स्वाधीन भारत के संदर्भ को पूरी तरह समझने तथा समझकर उसके साथ अपने आप को जोड़ने में असमर्थ रहे। [2]

दूसरे शब्दों में, उन कहानियों में पूर्ण समय - संगति न थी और यथार्थ-बोध की अभिव्यक्ति में कुछ-न-कुछ कसर कर गई थी। यद्यपि पुरानी पीढ़ी के कहानीकार अब भी कहानियाँ लिख रहे थे, तथापि उसमें ''सामाजिक यथार्थ'' से पलायन ही था, उसका साक्षात्कार नहीं। फलत: उन कहानियों में भी फार्मूलाबद्धता के कारण जड़ता की स्थिति आती जा रही थी। उदाहरणस्वरूप ''हंस'',''प्रतीक'', नया ''पथा'' इत्यादि पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेक कहानियाँ प्रस्तुत की जा सकती है।

अकहानी -फ्रांस में 'एण्टी स्टोरी' का जो आन्दोलन चला था,

उससे और 'अकविता' (डॉ० जगदीश गुप्त आदि द्वारा स्थापित) नामक हिन्दी कविता के आन्दोलन से प्रभावित होकर हिन्दी कहानी-साहित्य में इस 'अकहानी-आन्दोलन का जन्म हुआ था। यह आन्दोलन 'नई कहानी' के आन्दोलन की प्रतिक्रिया में केवल भीड़ में अपना चेहरा अलगाने की उच्चाकांक्षा के कारण जन्मा था। परम्परा-समर्थित मानों, मूल्यों, धारणाओं के पूर्ण अस्वीकार को इसमें अपनाया गया था।

श्री श्याममोहन श्रीवास्तव का यह वक्तव्य द्रष्टव्य है, 'अकहानी' में इन रचनाकारों के एकत्र होने का एकमात्र कारण यही है कि ये किसी एक आन्दोलन या 'वाद' के नहीं है। इन कहानियों को केवल इस अर्थ में 'कहानियाँ' कहा जा सकता है कि ये कहानियों को देखते हुए 'कहानियाँ' नहीं है और यह भी संभव है कि इनके पाठकों को पारम्परिक अर्थों में कहानियों के मूल तत्व अनिवार्य चालू व्यावसायिक रूप को न मिलें।

चूंकि अन्य कहानी-आन्दोलनों की ही तरह से इस आन्दोलन से जुड़ी कहानियों में विचारों और शिल्प का अलगाव सूचित करने वाली कुछ भी मौलिकतायें और विशेषतायें न थीं, इसलिए यह आन्दोलन भी शीघ्र ही मर गया। इस आन्दोलन के समर्थकों में श्री श्याममोहन श्रीवास्तव, कुलदीप बग्गा और जगदीश चतुर्वेदी और कुछेक कहानीकारों के नाम ही मिलते हैं।

सचेतन कहानी -यह आन्दोलन भी 'नई कहानी' की प्रतिक्रिया में डॉ० महीपसिंह द्वारा खड़ा किया गया था। उन्होंने नवम्बर सन् 1964 ई0 में 'आधार पत्रिका' के 'सचेतन कहानी-विशेषांक' को सम्पादित किया था। उसमें आनन्दप्रकाश जैन, कमल जोशी, कुलभूषण धर्मेन्द्र गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, बलराज पंडित, मधुकरसिंह, मनहर चौहान, ममता अग्रवाल (श्री रवीन्द्र कालिया के साथ विवाह के बाद ममता कालिया), महीपसिंह, योगेश, रामकुमार भ्रमर, वेद राही, शक्तिपाल केवल, श्याम परमारा, शकुन्तला शुक्ल, सुखबीर, प्रियदर्शी प्रकाश, हृदयेश और हिमांशु जोशी की कहानियाँ छापी गई थीं।

डॉ० महीपसिंह ने 'सचेतन कहानी' को जीवन की स्वीकृति और 'सक्रिय भाव-बोध' की कहानी घोषित किया। राजीव सक्सेना की इस टिप्पणी में ही अन्तर्विरोध देखें, 'सचेतन कहानी' को जीवन की स्वीकृति और 'सक्रिय भाव-बोध' की कहानी घोषित किया। राजीव सक्सेना की इस टिप्पणी में ही अन्तर्विरोध देखें, 'सचेतन कहानी का आन्दोलन कोई शिल्पगत आन्दोलन नहीं, यह एक वैचारिक आन्दोलन है और शिल्पगत प्रयोग करने की व्यापकतम स्वतन्त्रता का पोषक है।'

कोई भी निश्चित रचनात्मक प्रयोजन न होने के कारण यह आन्दोलन भी असमय ही काल-कवलित हो गया था। इस कहानी-आन्दोलन के प्रवर्त्तक और मुख्य कहानीकार केवल डॉ० महीपसिंह ही रहे हैं।

सहज कहानी -सचेतन कहानी की तरह 'सहज कहानी' के भी अमृतराय मुख्य कहानीकार और प्रव्तक रहे हैं। इनका जन्म 15 अगस्त सन् 1921 ई0 को और निधन 14 अगस्त सन् 1996 को हुआ था। इनका यह वक्तव्य विचारणीय है, 'सहज वह है, जिसमें आडम्बर नहीं है, बनावट नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्रा-दोष नहीं है। आईने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने ही अंग-प्रत्यंग को अलग-अलग कोणों से निहारते रहते का प्रबल मोह नहीं है, किसी का अंधानुकरण नहीं है।'

यह कहानी-प्रकार भी कहानी को सामान्य आदमी के साथ सहज रूप में जोड़ने और छूट रहे कथा-तत्त्व की वापसी के आग्रह पर बल देने वाला रहा है। विशेष अनुयायी न मिलने के कारण यह ठीक से प्रवर्त्तित न होने वाला आन्दोलन भी मुरझा कर रह गया। वैसे इससे 'सहज कहानी' की मूल धारणा पर कोई भी आंच नहीं आती है। कहानी में घटना-तत्त्व तो मूलतः होना ही चाहिए, यह बात आजकल लिखी जा रही अधिकतर बेसिर-पैर की कहानियों को देखकर तीव्रता से अनुभव होती है और इस मर-खप चुके कहानी-आन्दोलन की यह मुख्य सार्थक बात याद आ जाया करती है।

सक्रिय कहानी- इस आन्दोलन के सूत्रधार 'मंच' पत्रिका के सम्पादक राकेश वत्स रहे हैं। इन्होंने 'मंच 1978 और सक्रिय कहानी की भूमिका' (पुस्तक) जैसी बैसाखियों के सहारे कहानी के इस नये आन्दोलन को रेख के घोड़े की तरह प्रयुक्त किया। इन्होंने लिखा था, 'सक्रिया कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी। उस समझ, अंहसास और बोध की कहानी, जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से नजात दिला कर पहले स्वयं अपने आनन्द की कमजोरियों के. खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है...।'

यह तथ्य भी जग-जाहिर है कि एक व्यक्ति पर आश्रित इस कहानी-आन्दोलन को भी वही नियति हुई, जोकि पूर्ववर्ती सचेतन कहानी, सहज कहानी और समान्तर कहानी के अस्थायी महत्त्व वाले आन्दोलनों की हुई थी।

समान्तर कहानी- कमलेश्वर जैसे 'नयी कहानी' के सशक्त पुरोधा के द्वारा प्रवर्त्तित 'समान्तर कहानी' का यह आन्दोलन 'नयी कहानी'

के आन्दोलन के बाद सर्वाधिक सशक्त आन्दोलन रहा है। 'सारिका' जैसी प्रसिद्ध, कथा-पत्रिका के सम्पादक होने के नाते भी उन्हें इस आन्दोलन के प्रचार-प्रसार में विशेष सहायता मिली। उन्होंने अंक्तूबर सन् 1974 ई0 से ले कर जुलाई 1975ई0 तक 'सारिका' के दस 'समानान्तर कहानी-विशेषांक' निकाले और कच्छ, कलकत्ता, बम्बई, राजगीर आदि रथानों पर समान्तर गोष्ठियों को भी आयोजित किया। जून 1971 में कमलेश्वर, कामतानाथ, मधुकरसिंह, निरूपमा सेवती, सुदीप, सतीश जमाली, श्रवणी कुमारा, मृदुला गर्ग आदि ने बम्बई की एक गोष्ठी में 'समान्तर कहानी' के कुछ सिद्धान्तों का निर्धारण किया और 'समान्तर' पुस्तक में कुछ कहानियाँ भी संकलित करके प्रकाशित कराई। 'सारिका' का संपादक-पद छोड़ने के बाद यह आन्दोलन मद्धिम पड़ता चला गया। जनवरी सन् 1989 ई0 में जूनागढ़ (गुजरात) में आयोजित समान्तर-सम्मेलन भी कुछ लाभकारी न सिद्ध हुआ।

प्रदीप पंत, कमलेश्वर, अरूण प्रकाश, सुभाष पंत, जितेन ठाकुर, शैलेश पंडित जैसे कहानीकारों की कमरतोड़ कोशिशों के बावजूद बैठा हुआ आन्दोलन पुनः अपने पैरों पर उठकर खड़ा न हो पाया। समान्तर कहानियों को 'सही अर्थो में विषमतामूलक समाज की कहानियाँ ('सारिका', जनवरी सन् 1975 ई0) कहा गया और इसमें निरूपित आदमी को 'सांस्कृतिक निरीहता के खिलाफ लड़ाई में जुटा हुआ' ('सारिका', फरवरी सन् 1975 ई0) सिद्ध करने का दावा व्यर्थ ही चला गया। कमलेश्वर ने पहले 'नयी कहानी' के झंडे तले जिस 'सामान्य मनुष्य' का तूर्यनाद किया था, वही तो प्रेमचन्द की कहानियों के भी केन्द्र में था। वास्तव में अच्छी कहानियाँ समान्तर का लेबल न लगने रर भी अच्छी ही रहती, यथा कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिना', 'मानसरोवर के हंस', 'रातें', 'जार्ज पंचम की नाक', 'नीली झील', 'मांस का दरिया' इत्यादि। सच तो यह है कि प्रेमचन्द ने भी आम आदमी को ही अपनी कहानियों के केन्द्र में रखा था और सैंकड़ों दूसरे कहानीकारों ने भी इसी आम आदमी की व्यथा - कथा कही है।

सो, विशेष वैचारिक आधारभूमि और पार्थक्याश्रयी विशेषता न रखने के फलस्वरूप 'समान्तर कहानी' का यह आन्दोलन भी समय के बीतने के साथ-साथ फीका पड़ता चला गया। सच तो यह है कि कहानी के अन्य आन्दोलनों का भी कोई भी नामलेवा और पानीदेवा नहीं रहा है।

समकालीन कहानी- चूंकि इन सब कहानी-आन्दोलनों में विचार की कोई भी ठोस पुष्ट पृष्ठपीठिका न थी, सो, कहानी-विषयक आन्दोलनों के तथाकथित मसीहों की सारी फत्वेबाजी, वयानवाजी और शाब्दिक जुगालियों के बावजूद ये सब आंदोलन हिन्दी कहानी के विकास में कोई भी अपनी निश्चित पहचान न बना सके डॉ० पुष्पपाल सिंह के इस दुविधापूर्ण निष्कर्ष से भी कोई समाधान हाथ नहीं लगता है कि - सन् 1965 ई. से अब तक की कहानी को 'समकालीन कहानी' नाम देने में एक ही बाधा है कि 20-25 वर्ष पश्चात् इस कहानी को क्या नाम दिया जायेगा, तब यह नाम कैसे सार्थक होगा, किन्तु नाम तो प्रचलन के आधार पर होता है। तब देखी जायेगी, आज तो 'समकालीन कहानी' ही सर्वस्वीकृत नाम है। 'वस्तुतः ये आन्दोलन कहानीकारों के अपने को नई कहानी' से अलग करने के विविध विद्रोहात्मक स्वर हैं, जिन्हें 'समकालीन कहानी' की संज्ञा देना ही समुपयुक्त हैं।

निष्कर्ष- वास्तव में अंग्रेजी 'कंटेम्परेरी' शब्द का ही हिन्दी समानक शब्द है 'समकालीन'। हमारे विनम्र विचार में यह अवधि किसी भी रूप में 5-7 वर्षों से अधिक से कदापि नहीं होनी चाहिए, अन्यथा भारत-चीन युद्ध, भारत-पाक युद्ध, आपात्काल सन् 1975 ई. और पंजाब के काले 'आतंकवादी-उग्रवादी' काल में तात्कालीन समस्याओं का निरूपण करने वाली सभी कहानियाँ आज 'समकालीन' ही ठहरा दी जाएंगी, जोकि किसी भी तरह से संगत नहीं होगा इसके अतिरिक्त काल के साथ-साथ समकालीन भाव-बोध की प्रवृत्ति वाली कहानियों को ही समकालीन विशेषण से विभूषित करना चाहिए, न कि केवल एक विशेष कालावधि में रचित कहानियों को। वास्तव में 'समकालीनता' तो एक प्रक्रिया विशेष का नाम है। महाकवि कालिदास, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, दिनकर आदि सभी अपने-अपने काल में समकालीन रचनाकार थे। समय के साथ-साथ समकालीनता की कालावधि भी क्षितिज की रेखा-सी आगे-आगे सरकती रहती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची:

1. शेखावत, गोरधन सिंह, 'नयी कहानी: उपलब्धि और सीमाएँ', पृ. 34
2. शेखावत, गोरधन सिंह, 'नयी कहानी: उपलब्धि और सीमाएँ', पृ. 34
3. अवस्थी देवी शंकर, 'नयी कहानी: सन्दर्भ और प्रकृति', उद्धृत मत, पृ. 189।
4. राय, अमृत, निबन्ध-संग्रह 'आधुनिक भावबोध की संज्ञा', पृ. 101, 105।

भास एवं कालिदास-कालीन समाज में नारी की स्थिति

डॉ. श्री भगवान
सहायक प्रोफेसर
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

सरतुल कुमारी
पीएच. डी. शोधार्थी
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

भूमिका

नर और नारी सामाजिक जीवन रूपी रथ के दो महत्वपूर्ण पहिए हैं और मानव सृष्टि के क्षेत्र में एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। नारी प्रकृति स्वरूपा होने के कारण प्रकृति के सभी गुणों से परिपूर्ण होती है। प्रकृति ने उसे असीम सौंदर्य एवं शक्ति प्रदान की है। कोमल संवेदनशील नारी सामाजिक क्रियाकलाप का अटूट अंश है। यद्यपि स्त्री को अबला कहा गया है तथापि सभ्यता एवं संस्कृति के योगदान में उसने सदैव सक्रिय योगदान दिया है। प्रस्तुत शोध में भास एवं कालिदास कालीन समाज में नारी की स्थिति के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया है। तत्कालीन नारी का परिवार एवं समाज में स्थान तथा उन्हें कौन-कौन से अधिकार प्राप्त थे? दूसरी और गृहलक्ष्मी, गृहस्थ की प्राण, पुरुष की सहयोगिनी एवं मित्र के समान परामर्शदात्री नारी के विविध स्वरूपों का वर्णन भी यहाँ किया गया है।

पारिवारिक स्थिति

परिवार में नारी माता, पत्नी, पुत्री आदि अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती है। वात्सल्य नारी का स्वाभाविक गुण है, जिसकी अभिव्यक्ति माता के रूप में होती है। भास एवं कालिदास कालीन समाज में माता को विशिष्ट एवं सम्माननीय स्थान प्राप्त था। परिवार में नारी का स्थान मातृत्व के आधार पर निश्चित होता था। पुत्रवती नारी वंश परंपरा की अविच्छिन्न विधात्री होने के कारण कुल की प्रतिष्ठा स्वरूप मानी जाती थी, क्योंकि वह पुत्र के रूप में अपने पति के वंशसूत्र को धारण करती है।

'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में गर्भवती शकुंतला के परित्याग के पश्चात् दुष्यंत शोक पीड़ित होकर कहता है-

संरोपितेऽप्यात्पनि धर्मपत्नीत्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा।। [1]

अर्थात् महान पुत्र को जन्म देने में समर्थ वंश की आधार भूत अर्धांगिनी का परित्याग करके मैंने अपने वंश को ही समाप्त कर लिया।

'विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा उर्वशी को' पुत्रवती का स्वागत है' यह कहकर आसन पर बैठता है।[2]

मातृत्व सुख पाकर ही नारी पूर्णता को प्राप्त करती है। यही कारण है कि नारी को वीर पुत्र की माता बनने का आशीर्वाद दिया जाता था-

वत्से वीर प्रसविनी भव। [3]

भासकालीन समाज में माता को देवता के स्थान समान पूजनीय माना जाता था-

माता किल मनुष्ययाणां देवतानां च दैवतम्। [4]

'मध्यम व्यायोग' में घटोत्कच भीम से कहता है-

मुच्यतामिति विस्त्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता।
न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया।। [5]

अर्थात् इस ब्राह्मण बालक को माता की आज्ञा से पकड़ा गया है। इसलिए अब पिता भी आज्ञा प्रदान करें, तब भी इसे मुक्त नहीं किया जा सकता। इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में माता का स्थान पिता से अधिक ऊँचा होता था।

माता की आज्ञा सभी अवस्थाओं में पालन करने योग्य होती थी। पुत्र माता के आदेशार्थ अकरणीय कार्य को भी करने के लिए तैयार हो जाता था।[6]

माता के प्रति संतान का अत्याधिक लगाव होता था। यही कारण है कि 'उरूभंग' नाटक में दुर्योधन अगले जन्म मैं भी गांधारी को अपनी माता के रूप में प्राप्त करना चाहता है-

नमस्कृत्य वदामित्वां यदि पुण्यंमया कृतम्।
अन्यस्यामपि जान्यां मे त्वमेव जननी भव।। [7]

पत्नी के रूप में नारी गृहस्थाश्रम का महत्वपूर्ण स्तंभ होती है। उसे परिवार में गृहिणीपद की प्राप्ति होती है। नारी को गृहिणी

पद की शिक्षा विवाह से पूर्व पितृकुल में ही दे दी जाती थी।

कालिदास 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में शकुंतला के पतिगृह गमन के अवसर पर महर्षि कण्व द्वारा दिए गए पत्नी धर्म एवं गृहिणी के कर्तव्यों का उल्लेख करते हैं।[8]

तत्कालीन नारी में आदर्श पत्नी के समस्त गुण विद्यमान होते थे। वह पति के सुख-दुख की सहचरी होती थी। 'चारुदत्त' नाटक में चारुदत्त की पत्नी अपने पति को चोरी के कलंक से बचाने तथा वसंतसेना के ऋण से मुक्त करने के लिए अपने बहुमूल्य रत्नावली भी दे देती है।[9]

पतिव्रता पत्नी अपने चरित्र पर कोई आपेक्ष सहन नहीं कर सकती थी। अपने आचरण की शुद्धता को प्रमाणित करने के लिए वह कठिन से कठिन परीक्षा तक देने को तैयार रहती थी।

'अभिषेक' नाटक में राम के विश्वासार्थ सीता अग्नि में प्रवेश करके अपनी पवित्रता प्रमाणित करती है-

एवा कनकमालेव ज्वलनाद् वर्धितप्रथा।

पावना पावकं प्राप्य निर्विकारमुपागता।।[10]

'रघुवंश' में कालिदास पत्नी को पति की सचिव तथा सखी स्वरूप कहते हैं।[11] वह नारी को पत्नी के रूप में पति का धन मानते हैं।

पति वियोग नारी के लिए असहनीय होता था। विरहिनी स्त्रियाँ मलिन वस्त्र तथा एक वेणी धारण करती थी तथा पति विरह में व्रत, तप, उपवास आदि के द्वारा अपने शरीर को कृश बना लेती थी-

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।

अतिनिष्करूणस्य शुद्धशीला मम दीर्घ विरहव्रतं बिभर्ति।।[12]

पुत्री अथवा कन्या नारी का प्रथम रूप होता है। कन्या के रूप में वह पराया धन कही गई है।[13] तत्कालीन समाज में माता-पिता अपनी पुत्रियों के प्रति अत्यधिक प्रेम भाव रखते थे।

'कुमारसंभव' में हिमालय अपनी कन्या पार्वती को पुत्र से अधिक स्नेह देते हैं-

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।[14]

सामाजिक स्थिति

तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। पारिवारिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक कार्यक्षेत्र में भी नारी की प्रधानता रहती थी। वह अपने पति के साथ सामाजिक उत्सवों एवं समारोह आदि में भाग लेती थी।

'मालविकाग्निमित्र' नाटक में रानी धारिणी अशोकदोहद उत्सव का संपूर्ण आयोजन अपनी देखरेख में करती है और पति तथा परिवारजन के साथ मिलकर उत्सव को सफल बनाती है।[15] तत्कालीन नारी शिक्षा के क्षेत्र में भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र थी। 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में प्रियम्वदा और अनसूया नामांकित मुद्रिका को देखकर दुष्यन्त को पहचान लेती है।[16] इससे उनके शिक्षित होने का प्रमाण मिलता है।

शकुंतला का दुष्यंत को ललितपद संयुक्त पत्र लिखा उसके सीमित होने के साथ-साथ काव्य चातुर्य का भी परिचायक है।[17] 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी पुरूरवा को सुंदर अर्थ एवं भाव से परिपूर्ण पत्र लिखती है-

तुल्यानुरागपिशुनं ललितार्थ बन्धंपत्रे निवेशितमुदाहरणंप्रियाया।[18]

शिक्षा एवं साहित्य के साथ-साथ नारी संगीत नृत्यादि विभिन्न कलाओं में निपुण हुआ करती थी।

'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में हंसपदिका का गीत उसके संगीत नैपुण्य को दर्शाता है।[19] इसके अतिरिक्त अनुसूया एवं प्रियम्वदा चित्रकला की ज्ञाता थी।[20]

'प्रतिज्ञायौगंधरायण' में उत्तरा नामक वैतालिका का वीणा वादन की आचार्य होने का उल्लेख मिलता है-

उतरायां वैतालिक्याः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत।[21]

'मालविकाग्निमित्र' में मालविका का नृत्य एवं संगीत कला में निपुण होना ज्ञात होता है।[22]

इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री को आदर्श पत्नी और विदुषी बनाने के लिए स्त्री-शिक्षा पर भी जोर दिया जाता था।

धार्मिक स्थिति

धार्मिक दृष्टि से भी नारी का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। पत्नी के बिना कोई भी धार्मिक कार्य संपन्न नहीं किया जा सकता था क्योंकि पत्नी को सभी प्रकार की धार्मिक क्रियाओं का मूल कारण माना जाता था।[23] यही कारण है कि राम अश्वमेघ यज्ञ के समय सीता की स्वर्ण प्रतिमा को अपनी पत्नी के स्थान पर बैठाकर यज्ञ संपन्न करते हैं।

गृहस्थाश्रम में ही नहीं अपितु वानप्रस्थाश्रम में भी पत्नीपति के साथ धर्मपालन में सहयोग देती थी। वह पुत्रादि को गृहस्थ का भार सौंपने के पश्चात् अपने पति के साथ वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करती थी।

'रघुवंश' में रानी सुदक्षिणा पुत्र रघु को राज्य भार सौंपकर अपने पति राजा दिलीप के साथ तपोवन में प्रवेश करती है-

मुनिवनतरूच्छायां देव्या तथा सह शिश्रिये।

गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्।।[24]

'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में शकुंतला विदाई के समय आश्रम

के पुन:दर्शन हेतु अपने पिता से पूछती है। इसके प्रत्युत्तर में महर्षि कण्व कहते हैं–

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।

भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।।[25]

अर्थात् दीर्घकाल तक इस विशाल पृथ्वी की सपत्नी बनकर अति पराक्रमी वीर पुत्र को उत्पन्न करके तथा उसे राज्य का भार समर्पित करके अपने पति के साथ पुन: इस तपोवन में प्रवेश करोगी।

इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में नारी पति की सहधर्मिणी थी। धार्मिक क्रियाओं एवं यज्ञानुष्ठानों में उसकी उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी। नारी के लिए प्रयुक्त धर्मपत्नी,सहधर्मचारिणी आदि शब्द उसके धार्मिक महत्व को प्रकट करते हैं।

निष्कर्ष

अत: हम कह सकते हैं कि भास एवं कालिदास कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक थी। पारिवारिक क्षेत्र के साथ-साथ उसका सामाजिक कार्यक्षेत्र भी था। उन्हें शिक्षा का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को धार्मिक स्वतंत्रता होने के कारण उन्हें तपस्या का अधिकार प्राप्त था। किसी भी प्रकार का धार्मिक कार्य स्त्री के बिना नहीं होता था। इस प्रकार समाज में नारी को उच्च स्थान प्राप्त था। तत्कालीन नारी सुशीलता, समर्पण, लज्जा एवं प्रेम की साक्षात् प्रतिमा होने के साथ-साथ कन्या,गृहिणी, माता, पत्नी के कर्मठ रूपों में परिवार, समाज एवं राष्ट्र की मंगलविधात्री रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अभि० शा० 6/24
2. स्वागतं पुत्रवत्यौ। इत आस्यताम्। विक्रमो० अंक 5, पृ० 242
3. अभि० शा०, अंक 4, पृ० 184
4. मध्य० व्या० 1.37
5. वहीं 1.36
6. अकार्यमेतच्च मयाऽद्य कार्यं मातुर्नियोगादपनीय शंकाम्। वहीं 1.9
7. उरू० 1.50
8. अभि० शा० 4.18
9. भर्तृदारिका तव हस्ते दत्त्वाऽऽर्यपुत्रमनृणं करिष्यामीत्येवं करोति। चारू०, अंक 3, पृ० 99
10. अभि० 6.25
11. गृहिणी सचिव: सखी मिथ: प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। रघु० 8.67
12. अभि० शा० 7.21
13. अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहितु:। वही 4.21
14. कुमार० 1.27
15. माल०, अंक 5, पृ० 256
16. उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयत:। अभि० शा०, अंक 1, पृ० 66
17. वही, अंक 3, पृ० 145
18. विक्रमो० 2.14
19. अभि० शा० 5.1
20. अये अनुपयुक्तभूषणोऽयं जन:। चित्रकर्मपरिचयेनागेंषु ते आभरणविनियोगं कुर्व:। वहीं, अंक 4, पृ० 188
21. प्रतिज्ञा०, अंक०, पृ० 52
22. भो वयस्य, न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका। माल०, अंक 2, पृ० 109
23. क्रियाणां खलु धर्म्याणां सपत्न्यो मूलकारणम्। कुमार० 6.13
24. रघु० 3.70
25. अभि० शा० 4.19

चम्पूभारतम् में सादृश्यमूलक अर्थालङ्कार विमर्श

राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भाषा का वह स्वरूप जो श्रवण मात्र से श्रोताओं के मानस में अद्भुत चमत्कार के साथ प्रवेश करता है, वह काव्य है और वह एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता हुआ उसके हृदय में अद्भूत प्रभाव छोड़ देता है। आचार्य भरत मुनि के रस–सम्प्रदाय से क्षेमेद्र के औचित्य सम्प्रदाय तक काव्यात्म–तत्व को प्रधान रूप से स्वीकार करने हेतु षड्– सम्प्रदायों का उदय अविच्छिन्न गति से होता आया तथा वर्तमान समय मे अनेक काव्यशास्त्रियों के द्वारा इन्ही षड्–सम्प्रदायों के मध्य में काव्य के प्रधान तत्व का अन्वेषण किया जाता रहा है। काव्य को रस प्रधान अनेक आचार्यों ने माना है तथा शब्द और अर्थ उसके अङ्ग रूप है। मम्मटाचार्य का कथन है कि काव्य में विद्यमान उस अङ्गी रस को शब्दार्थ रूप अङ्गों के द्वारा कभी– कभी जो उपकृत करते हैं वे अनुप्रास व उपमादि हारादि (दैहिक अलङ्कारों) के समान काव्य में अलङ्कार कहे जाते हैं।[1]अत: जिस प्रकार संसार में रत्नादि से निर्मित आभूषण शरीर को अलङ्कृत करने के कारण अलङ्कार कहे जाते है, उसी प्रकार काव्य को शब्दार्थ द्वारा अलङ्कृत करने वाले सौंदर्य को कव्यशास्त्र में अलङ्कार कहा जाता है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने अपने अद्विितीय चिन्तन व मनन तथा अकल्पनीय सौन्दर्यातिशय रूप विविध धारणाओं के गहन प्रतिभा का परिचय इसमें दिया है।

अलङ्कार शब्द की व्युत्पत्ति–

अलङ्कार शब्द की इस प्रकार व्युत्पत्तियाँ प्राप्त होती है 'अलम्' पूर्वक 'कृ' धातु के संयोग से 'अलङ्क्रियते अनेन' तथा '*अलङ्करोतीति अलङ्कार:*' व्युत्पत्ति करने पर करण व भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर अलङ्कार शब्द निष्पन्न होता है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार अलङ्कार साधन मात्र है तथा द्वितीय के अनुसार कर्ता या विधायक है। क्योंकि करण और भाव दोनों ही अर्थो में घञ् प्रत्यय का विधान है, 'घञजप: पुंसि' के अनुसार घञ्प्रत्ययान्त, अच्प्रत्ययान्त, अप्प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग पुल्लिंग में ही होता हैं।[2] इस प्रकार जो अलङ्कृत करें वह अलङ्कार है, तथा जिसके द्वारा किसी को अलङ्कृत किया जाता है वह अलङ्कार है। वस्तुत: जिस पदार्थ या तत्व के द्वारा कोई वस्तु सुशोभित की जाये उसके सौन्दर्य में वृद्धि हो, वह पदार्थ या तत्व अलङ्कार है।

काव्य में अलङ्कार का स्थान–

काव्य में अलङ्कार का विशिष्ट स्थान है। आचार्य भरत ने सर्वप्रथम उपमा, रूपक, दीपक, यमक चार अलङ्कारों को काव्य में स्वीकार किया है,[3] तथा अग्निपुराण में काव्य का सर्वस्व रस को बतलाते हुए अलङ्कार एवं गुण की स्थिति भी काव्य में निश्चित मानी है। अग्निपुराण का कथन है कि–*अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती*।[4] इन्होंने अर्थालंकार रहित काव्य को विधवा स्त्री के समान चमत्कार रहित माना है। इसलिए उन्होंने काव्य में अलंकार की सत्ता को आवश्यक रूप में स्वीकार किया है। भामह तथा उनके उत्तरवर्ती दंडी आदि आचार्यों ने रस को नाटक का ही मुख्य विषय मान कर अन्य काव्यों में अलंकार को सिद्ध करते हुए रस को उसके अंगरूप में, उपकारक के रूप में स्वीकार किया है। भामह का कथन है कि–

न कांतमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।

जिस प्रकार सुंदर होते हुए भी कामिनी का मुख बिना आभूषण के शोभायमान नहीं होता उसी प्रकार काव्य की शोभा भी अलंकारों के बिना नहीं होती।[5] इन्होंने रस भावादी का समावेश अलंकारों में करके काव्य में अलंकारों को अङ्गित्व तथा रस को अंगत्व रूप में प्रतिपादित किया तत्पश्चात् जब आनंदवर्धन ने ध्वनि की स्थापना की तथा काव्य ध्वनि को काव्यतत्व रूप में स्वीकार किया तब चिन्तन की इस धारा का परिवर्तन हुआ। अलंकारवादियों ने काव्य में अलंकार तत्व को ही प्रधानता दी है। आचार्य दंडी ने काव्य के शोभाकर धर्मों को अलंकार की संज्ञा दी है,[6] वहीं वामन ने सौंदर्य को अलंकार मान कर उसके द्वारा काव्य की ग्राह्यता स्वीकार की है।[7] कुछ आचार्यों ने काव्य में अलंकारों के महत्व को कम स्वीकार नहीं किया। मम्मट के '*अलङ्कृति पुन: क्वापि*' पद को देखकर जयदेव ने कहा है कि जो अलंकार से विहीन शब्दार्थ को काव्य में स्वीकार कर सकता है। वह अग्नि

को भी अनुष्ण स्वीकार क्यों नहीं करता।[8] विश्वनाथ ने अलंकारों को शब्दार्थ का अस्थिर धर्म स्वीकार किया है। केयूर की भांती शोभावर्धक रस का उपकारक तत्व माना है।[9] इसी क्रम में अर्वाचिन काव्यशास्त्रीय आचार्य डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी जी ने भी अपनी अलंकारकारिका में अलंकार को काव्यत्म रूप में अङ्गीकार किया है–

काव्येह्यलङ्कार एवात्मा स एवास्मिन् स्थितो यत:।
अन्यकायस्थितो धर्म: निमन्यत्रात्मतां व्रजेत्॥

तथा काव्यमार्ग में अलङ्कार और ध्वनि को नर व नारायण स्वीकार किया है।

अलङ्कारो ध्वनिश्चेति द्वयं तत् काव्यवर्त्मनि।
नारायणो नरश्चेति द्वयं तद्वदवस्थितम्॥ [10]

इस प्रकार प्राय: सभी साहित्य काव्यशास्त्रीयों ने काव्य में अलंकार को स्थान दिया है परंतु अलंकार का सौन्दर्य रस है तथा अलंकार का गौरव उसी का उपकार करने में है काव्य शोभा अलंकार पर निर्भर नहीं होती है वह शोभा का कर्ता न होकर उसकी शोभावृद्धि का उत्कर्षक है।

अलङ्कार विभाजन– अलङ्कार का आधार शब्द और अर्थ है, इसी के आधार पर शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार और तदुभय मिश्र उभयालङ्कार की कल्पना की गई है–

1. शब्दालंकार – शब्दालंकार और अर्थालंकार का भेद शब्द के परिवर्तन सहत्व या परिवर्तनासहत्व पर निर्भर करता है जहाँ शब्द का परिवर्तन करके उसका पर्यायवाचक दूसरा शब्द रख देने पर अलंकार नहीं रहता उसे शब्दपरिवृत्यसहत्व अर्थात् शब्दलंकार कहा जाता है। भोजराज ने भी इस विषय मे अपना मत देते हुए कहा है।[11]

2. अर्थालङ्कार– जहाँ पर शब्द का परिवर्तन करके दूसरा पर्याय शब्द रख देने पर भी उस अलङ्कार की सत्ता बनी रहती है, वहाँ अलङ्कार शब्द के आश्रित नहीं होता है अपितु अर्थाश्रित होता है। इसमें अर्थ सम्बन्धी चमत्कार उल्लेखनीय होता है। अत: इसको अर्थालङ्कार कहते हैं। '*शब्दपरिवृत्तिसहत्व*' भी इसका अपर अभीधान है। आचार्य भोजराज ने भी कहा है [12]। अर्थालङ्कार को सादृश्यमूलक, विरोधमूलक, तर्कन्यायमूलक, वाक्यन्यायमूलक, लोकन्यायमूलक, गूढार्थप्रतीतिमूलक आदि प्रकार से आचार्यो ने विभाजित किया है।

3. उभयालङ्कार– जहाँ शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार का परस्पर मिला– जुला रूप हो तथा उससे चमत्कार उत्पन्न हो वहाँ उभयालङ्कार होता है।

चम्पूभारतम्–

अनंतभट्ट विरचित चम्पूकव्य में 12 स्तबक है, तथा यह ग्रंथ महाभारत की कथावस्तु को संक्षेप कर लिखा गया है। छोटे छोटे गद्य खंडों एवं पद्यों से निर्मित यह एक विशालकाय चम्पू काव्य है, इसमें अलंकारों का वैशिष्ट्य अनुपम है, इसमें शब्दालंकार व अर्थालंकारो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया गया है। इस चम्पू कव्य में कहीं अनुप्रास की छटा तो कही अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है। अलंकारों से संबंधित कतिपय स्थल निम्नवत् हैं। चम्पूभारतम् में अर्थालङ्कारों का प्रयोग अत्यधिक हुआ है।

उपमा अलङ्कार –

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा अलङ्कार कहलाता है।[13] उपमान और उपमेय का ही साधर्म्य होता है, कार्य–कारण का नहीं। अत: उनका ही समानधर्म से सम्बन्ध उपमा अलङ्कार कहलाता है।[14]

द्रोपदी के सौन्दर्य वर्णन में कवि के द्वारा कहा गया यह उपमा अलङ्कार–युक्त पद्य अत्यन्त मनोहारि है–

वनभुव इव माधवोदयश्रीर्मनुजपतेरवरोधयोषितोह्यसौ।
अनुदिनमखिलालिलालनीयैरलमकरोत्तिलकैरतीव दृश्यै:।

जैसे वसन्तागम की शोभा वनभूमि को भ्रमरों द्वारा प्रार्थित अत्यन्त दर्शनीय तिलकतरु से अलङ्कृत करती है उसी तरह सौरन्ध्री पद पर नियुक्त होकर द्रौपदी विराट के अन्त:पुर की रमणियों के समस्त सखियों से प्रशंसित अत्यन्त सुन्दर लगने वाले तिलकों (चित्रकों) से प्रतिदिन लङ्कृत किया करती थी।

यहाँ पर शिष्ट विशेषणों से युक्त साधर्म्य उपमा अलंकार की प्रतीति होती है।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार –

प्रकृत (उपमेय) की सम (उपमान) के साथ सम्भावना (उत्कृष्ट संदेह) उत्प्रेक्षा अलङ्कार कहलाता है।[15]

चम्पूभारतम् में दुर्योधन तथा भीम के बीच हुए युद्ध वर्णन में कवि कहते हैं कि–

मर्मदत्तदशना भुजङ्गमा मारुतेर्वपुषि सुप्तिभूरुह:।
मुष्टिमेयतनवो विरेजिरे मूलिका इव बहिर्विनिर्गता:।।

'दुर्योधन द्वारा छुड़वाये सर्पों ने भीम की देह के मर्म–स्थानों पर अपने दाँत गड़ाकर लटक गए, उनकी देह मुष्टिमेव प्रतीत होती थी, वह सर्प ऐसे प्रतीत होते थे मानो शयनरूपी वृक्ष की जड़ें बाहर निकल आयी हो।'

यहाँ देह के मर्म–स्थलों में सर्पों के लटकने पर वृक्ष के जडों

की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार प्रतीत होता है।

रूपक अलङ्कार -

अतिशय समानता के कारण जहाँ उपमेय को उपमान का रूप दे दिया जाए अथवा उपमेय पर उपमान का आरोप कर दिया जाए, वहाँ रूपक अलंकार होता है।[16]

अनन्तभट्ट ने अपने काव्य में ऋतुओं के वर्णन में कहा है कि–

कालाम्बुदालिनलिकात्क्षणदीप्तिवर्या संधुक्षितात्सपदि सध्वविनि: सरद्भि:।

वर्षाश्मसीसगुलिकानिकै: कठोरैर्धर्माभियातिमवधीद्नकालयोध:॥ [17]

वर्षाकाल रूप यद्धा ने बिजली रूप पलीते से संयोजित मेघमाला रूप मशीनगन (यन्त्रविशेष) से तड़-तड़ शब्दों के साथ निकलने वाली ओले रूप गोलियों से तुरत ही ग्रीष्म काल रुप दुश्मन को मार दिया।

इस पद्य में मेघ तथा ग्रीष्म युद्ध के विषय में बताया गया है। जिसमें वर्षाकाल को योद्धा के साथ, बिजली को पलीते के साथ, ओले रूप गोलियों के साथ आरोपित किया गया है। अत: यहाँ रुपक अलंकार भासित होता है।

अतिशयोक्ति अलङ्कार -

अध्यवसान के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है।[18]

सप्तम स्तबक में नारद द्वारा अर्जुन के युद्ध को कौशल देख उनके जलाश्रुओं से संध्या का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है–

वीणामुनिंद्रो विजयस्य युद्धं नीरन्ध्रभावेन निरीक्षमाण:।

आनन्दजैरश्रुभिरेव चक्रे हस्तापितैराह्निककृत्यमभ्रे॥ [19]

अर्थात् वीणावादन प्रिय नारदमुनि आकाश में रहकर अविचछिन्न रूप से अर्जुन का लड़ना देखते रहे और उन्होंने जल के अभाव में आनन्द के अश्रु से ही अपना मध्याह्न संध्या आदि कृत्य सम्पादित किया।

इस श्लोक में हर्षाश्रुओ से मध्यम मध्याह्न कृत्य सम्पादित करने में असंबंध से सम्बंध रूप अतिशयोक्ति अलंकार द्योतित होता है।

दृष्टान्त अलङ्कार -

जहाँ पर उपमान, उपमेय, उनके विशेषण तथा साधारण धर्म का दोनों वाक्यों उपमान वाक्य तथा उपमेय वाक्य में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।[20]

अनन्त भट्ट के कीचक वर्णन प्रसंग में यह उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

अन्त:पुरेषु विहरन्नयि कीचक! त्वं सौरन्ध्रये स्पृहयसीति विगर्ह्यमेतत्।

रम्येषु कल्पकुसुमेषु चरन्द्विरेफो रज्यते किं पितृवनद्रुम-गुच्छिकायाम्॥[21]

हे कीचक! तुम जब अन्त:पुर की ललनाओं के साथ विहार करके सुख पा ही रहे हो फिर इस सौरन्ध्री के लिए स्पृहा क्यों कर रहे हो, तुम्हारी इस तरह की स्पृहा नितान्त निन्दनीय है। जो भ्रमर रमणीय कल्पद्रुम कुसुम में विचरण किया करता है वह क्या श्मशान के वृक्ष के फूलों पर अनुराग रख सकता है ?

यहाँ पर उपमानादि का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होने से दृष्टान्तालंकार की स्पष्ट प्रतीति होती है।

सहोक्ति अलङ्कार -

मनोहर रूप से जहाँ दो पदार्थों का सहभाव बताया जाता है, वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है। [22]

चम्पूभारतम् में कौरव और पाडवों के मध्य युद्ध में अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को देखकर द्रोणाचार्य के भयचकित होने का वर्णन करते हुए कविवर कहते हैं कि–

सुतस्य शौर्यात्सुरराजसूनोरुदीर्णदिग्भ्रान्तिरुदारभीति:।

कृपस्वसुर्मङ्गलतन्तुनैव साकं चकम्पे स गुरुर्मुहूर्तम् ॥ [23]

अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की बहादुरी देखकर आचार्य द्रोण दिग्भ्रम में पड़ गये, उन्हें बड़ा भय होने लगा कि न जानें क्या होने वाल है और इन्हीं चिन्ताओं के कारण कृपी द्वारा बांधे गये मङ्गलसूत्र के साथ ही द्रोणाचार्य खुद भी कुछ देर के लिये कांप उठे।

अभिमन्यु की वीरता को देखकर द्रोणाचार्य व उनके मंगलसूत्र का सहभाव से भयभीत होना सहोक्ति अलंकार है।

निष्कर्ष–

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने अपने अकल्पनीय चिंतन एवं मनन तथा अद्वितीय सौन्दर्यातिशय रूप विविध धारणाओं के गहन अनुशीलन का परिचय अलङ्कारों मे समाहित किया है। अलङ्कार काव्य सौन्दर्य के विकास का साधन है, तथा इससे काव्य के भावबोध को पुरी तरह से उद्घाटित किया जा सकता है। यदि कोई स्त्री अच्छे वस्त्र धारण की हो, लेकिन आभूषण रहित हो तो वह सुशोभित नहीं होती है। ठीक इसी प्रकार अलङ्कारादि विहीन काव्यों का निर्माण करने वाला कवि का काव्य प्रशस्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। चम्पूभारतम् में कवि ने अपनी प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन किया है। पाठक जब चम्पूभारतम् को पढ़ता है।

तो वह आनन्दविभोर हो जाता है। अलङ्कार काव्य के शरीर हैं। अस्तु, काव्य अलङ्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस शोध–पत्र में सादृश्यमूलक अलंकारों को चम्पूभारतम् काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का एक प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ सूची -

1. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
   हारादिवदलङ्कारास्ते–नुप्रसोपमादयः॥ का.प्र.8/67
2. चन्द्रालोक.पृ.18
3. उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा।
   अलङ्कारस्तु विज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रयाः॥
   नाट्यशास्त्र. 17/43
4. अग्निपुराण. 343.12
5. काव्यालङ्कार.1/13
6. काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते। काव्यादर्श.2/1
7. काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्। सौन्दर्यमलङ्कारः।
   काव्यालङ्कारसूत्र.1/1/1–2
8. अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
   असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥ चन्द्रालोक.1/8
9. शब्दार्थयोरस्थिरा धर्माः शोभातिशयशालिनः।
   रसादिनुपकुर्वन्तोह्यलङ्कारस्तेह्यङ्गदादिवत्॥ सा. द.10/1
10. अलङ्कारकारिका.
11. ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलङ्कर्तुमिह क्षमाः।
    शब्दालङ्कारसंज्ञास्ते................॥3/1
12. अलमर्थमलङ्कर्तु यद् व्युत्पत्यादिवर्त्मना।
    ज्ञेया जात्यादयः प्राज्ञैस्तेह्यर्थालङ्कारसज्ञया॥2/22
13. साधर्म्यमुपमा भेदे।10/124
14. उपमानोपमेययोरेव न तु कार्यकारणादिकयोः साधर्म्य भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण सम्बन्ध उपमा। का. प्र.पृ.443
15. सम्भावनामथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। का. प्र.10/136
16. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।
17. चं. भा.3/54
18. सिद्धत्वेह्यध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते। सा.द.10/46
19. च.भा.7/49
20. दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्। का .प्र.10/102
21. चं. भा.6/33
22. सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जनरञ्जनः।
    चन्द्रालोक.5/60
23. चं. भा.10/45

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. अनन्तभट्ट, चम्पूभारतम्, सम्पादक. श्रीरामचन्द्रमिश्र.,चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, संस्करण, 2014
2. उपध्याय, बलदेव. संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणासीः शान्ति निकेतन, 2008.
3. अवस्थी, ब्रह्मामित्र, अलङ्कारकोष, इन्दू प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण.1989
4. डॉ.कृष्ण कुमार, अलङ्कार शास्त्र का इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1975
5. ऋषि, उमाशंकर. संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणासी : चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1999.
6. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, सम्पादक, रेग्मी, शेषराजशर्मा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2013
7. मम्मट,काव्यप्रकाश, सम्पादक. आचार्यविश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड , वाराणसी, 2011
8. जयदेव,चन्द्रालोक, सम्पादक. कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2019
9. घुसींगा, रमेश चन्द्र, अलङ्कार शास्त्र का बृहद इतिहास, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2006
10. डॉ. द्विवेदी. रेवाप्रसाद, अलङ्कारकारिका, कालिदास संस्थानम्, वाराणसी, 2015

छत्रपति शाहू की दृष्टि में शिक्षा ही प्रगति का आधार

डॉ. ज्योति सिंह गौतम
असि०प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान विभाग)
राजकीय महिला महाविद्यालय, झांसी

शोध सारांश-

छत्रपति शाहू जी एक सच्चे प्रजातन्त्रवादी एवं समाज सुधारक थे। समाज से भेदभाव व असमानता को समाप्त करने के उद्देश्य से उन्होंने कई प्रकार के रचनात्मक उपाय अपनायें। अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व में शाहू जी महात्मा फुले के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे और उन्हीं के समानान्तर शिक्षा को सामाजिक प्रगति का आधार मानते हुये शिक्षा पर सबसे ज्यादा महत्व दिया। शाहू जी का मानना था कि सामाजिक बुराइयों और समाज में व्याप्त असमानता को शिक्षा के माध्यम से ही समाप्त किया जा सकता है और इसी कारण सामाजिक परिवर्तन के ध्येय को साकार करने हेतु उन्होंने अपने राज्य में मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था की शुरूआत की। सामाजिक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से उन्होंने समाज के दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा के द्वार खोले जो अभी तक बन्द थे। शाहू जी इस तथ्य को स्वीकार करते थे कि दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोगों में व्याप्त अज्ञानता एवं धर्मन्धता को सिर्फ शिक्षा के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है। जब समाज का यह वर्ग शिक्षित होगा तब ही उनमें आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान जागृत होगा। तत्पश्चात् वे अपने अस्तित्व एवं स्वतन्त्रता हेतु संघर्ष कर अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकेंगे। समाज के इसी निम्न व कमजोर वर्ग के हितार्थ उन्होंने विद्यालयों का प्रबन्ध किया जिसमें नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था थी तथा छात्रों के निवास हेतु छात्रावासों का निर्माण भी कराया। शाहू जी के सार्थक प्रयासों से नि:सन्देह समाज के दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोगों में शिक्षा का प्रचार हुआ और उनकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया।

मुख्य शब्द- शिक्षा, प्रगति, सामाजिक परिवर्तन, प्रशासन परिषद, समतामूलक समाज, अज्ञानता।

'शिक्षा ही हमारी प्रगति का रास्ता है, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। शिक्षा के बगैर किसी भी देश की प्रगति नहीं हुई है, ऐसा इतिहास बताता है। अज्ञान के कीचड़ में फंसी जनता से देश कभी भी श्रेष्ठ, बहादुर तथा कर्तव्य निष्ठ नागरिक पैदा नहीं कर सकता है।'[1]

छत्रपति शाहू के उक्त उद्गार 2 अप्रैल 1894 में, जब उन्होंने कोल्हापुर राज्य की सत्ता सम्हाली, उसके उपरान्त के हैं। सत्तासीन होते समय कोल्हापुर की सामाजिक विषमता चरमसीमा लाँघ चुकी थी। कहा जा सकता है कि सिंहासन फूलों का नहीं कांटों का आसन था। शाहू महाराज कुशल शासक के साथ-साथ उच्च कोटि के अध्येता, और चिंतक भी थे। उन्होंने अपने ज्ञान के आधार पर कोल्हापुर की जर-जर व्यवस्था के हेतु को समझने का प्रयास किया। सम्पूर्ण कोल्हापुर स्टेट अज्ञानता के अंधेरे में डूबा हुआ था। अल्प जन ही थे, जो ज्ञान के भण्डार थे, राजपाट चलाने से लेकर सभी प्रकार के हुनर उनमें समाहित थे। छत्रपति शाहू कोल्हापुर राज्य को एक आदर्श और समृद्ध राज्य बनाना चाहते थे। यह कार्य मुट्ठीभर पढ़े लिखे हुनर बंद लोगों से सम्भव नहीं था। यह तभी सम्भव था, जब राज्य की जनता बहुसंख्या में योग्य और हुनरबंद हो। छत्रपति शाहू ने राज्य की जनता क्यों अज्ञानी है? इस प्रश्न का समाधान उन्होंने सत्ता सम्हालने के पर्व ही खोज लिया था। उन्हें ज्ञात था कि राज्य की 'असमान शिक्षा नीति' ही इसका कारण है।

छत्रपति शाहू के अध्येता भली भाँति जानते हैं कि छत्रपति शाहू ने, जिस दिन (2 अप्रैल 1894) कोल्हापुर राज्य की सत्ता सम्हाली थी उसी दिन, शासनादेश निर्गत कर 'प्रशासन परिषद' को भंग कर दिया था और उसके स्थान पर 'सचिवालय' की स्थापना की थी।[2]

उनके इस साहसी कृत्य से जहाँ हमें उनकी निर्भीकता, साहस, और दूरदर्शिता का ज्ञान होता है वहीं इस कृत्य से यह भी ध्वनित होता है कि (प्रशासन परिषद) कोई असाधारण संस्था थी, जिसको शाहू जी अपनी लक्ष्य प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा

मानते थे।

समझें क्या थी प्रशासन परिषद?

छत्रपति शाहू के पूर्व जितने भी राजा हुए सभी के सत्ता संचालन का कार्य 'प्रशासन परिषद' करती थी। इस परिषद को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। राजा निमित्त था। परिषद की अध्यक्षता दीवान करता था, जो उच्च वर्ग का होता था।[3] प्रशासन परिषद का कार्य, उच्च वर्ग के धर्मानुसार शासन व्यवस्था का संचालन करना था। इस तथ्य की पुष्टि तिलक के अपने 'केशरी' पत्र से होती है, 'शाहू को अपने पैत्रिक धर्म पर गर्व करना चाहिए तथा उसकी समृद्धि के लिए निरंतर प्रयासरत रहना चाहिए जैसे कि पूर्व के राजा अपना पुनीत कर्तव्य समझ कर इस कार्य को करते रहे हैं।'[4] तिलक के उक्त सुझाव से स्पष्ट हो रहा है कि पूर्व के राजाओं की भाँति शाहू भी 'प्रशासन परिषद' को राजपाट सौंप कर धर्माचार्यों के बनाये गये धार्मिक नियमों को और अधिक गति प्रदान करें।

प्रशासन परिषद का पुनीत कार्य शिक्षा के द्वार बंद करना

सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि छत्रपति शाहू के पूर्व कोल्हापुर राज्य में धर्म का आदेश पालन कर उस समय के शिक्षा नीतिकारों ने पिछड़ों, अछूतों एवं अंत्यजों के लिए शिक्षा के दरवाजे बंद कर दिए थे। यह विषय निश्चित ही भारतीय इतिहास की चमक को धूमिल करने वाला है, इससे भी अधिक शर्मशाद करने वाला यह मुद्दा है कि उसी समय सतारा का राजा निर्भीकता के साथ दिन में अध्ययन नहीं कर सकता था। रात के समय गुप्त रूप से ज्ञानार्जन करता था। इस शर्मनाक घटना का खुलाशा स्वयं छत्रपति शाहू ने 24 नवम्बर 1918 को मुम्बई की एक सभा में किया था, 'हमारी शिक्षा में पहले इतनी अड़चने थी कि स्वयं सतारा के राजा को रात में शिक्षा लेनी पड़ती थी, फिर दूसरों की क्या दशा रही होगी।'[5]

छत्रपति शाहू ने बिना किसी लाग लपेट के निर्भीकता के साथ कहा कि 'वैदिक काल में एक समय था, जब नये मनुष्यों को उनकी योग्यता के अनुसार ऊँचा नीचा वर्ण दिया जाता था। यह थी वैदिक काल की आदर्श व्यवस्था।'[6] डॉ. अम्बेडकर का अध्ययन भी यही सिद्ध करता है, 'प्राचीन काल में एक युग था, जिसे मनमंतर काल कहा गया है। इस काल वाद वर्णव्यवस्था योग्यता पर आधारित थी। वर्ण का निर्धारण पिता नहीं योग्यता के आधार पर गुरू करता था।'[7]

छत्रपति शाहू इसी सभा में कहते है कि 'आगे चल कर धर्माचार्यों ने जैसा मन में आया वैसे ग्रंथों की रचना प्रारम्भ कर दी। 'स्त्रीशूद्रोनाधीयतताम्' इसे वेद मंत्र के समान ही मान लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्री तथा शूद्र के लिए शिक्षा के द्वार सदैव के लिए बंद कर दिये गये। बहुत समय से (पीढ़ी दर पीढ़ी) इसी सिद्धान्त का अनुकरण होता चला आ रहा है।'[8]

छत्रपति शाहू के समक्ष कठिन चुनौती

सत्ता सम्हालने के प्रथम दिन ही तथा प्रथम शासनादेश से 'प्रशासन परिषद' को भंग करने की सूचना सम्पूर्ण राज्य में आग की भाँति फैल गयी। छत्रपति शाहू द्वारा सदियों से प्रचलित धार्मिक परम्पराओं को समाप्त कर उनके विरूद्ध लोक कल्याण के, समतामूलक नीति निर्धारण धर्माचारियों को मंजूर न था। पोलीटीकल एजेंट अपने को महाराजा के समान ही मान बैठे थे, छत्रपति शाहू ने 'प्रशासन परिषद' को समाप्त कर जिस 'सचिवालय' को बनाया था, उसके मुख्य सचिव आर.बी. सैव्रिस का प्रबल विरोध था। 'प्रशासन परिषद' को परामर्शदात्री परिषद का रूप दे देने से उसका दीवान अपना अपमान समझ कर छत्रपति शाहू की नीतियों का शक्ति से प्रतिकार कर रहा था। धर्मान्धों द्वारा छत्रपति शाहू के विरूद्ध रचा गया यह षड़यंत्र बहुत ही घातक था। षड़यन्त्रकारियों ने पालीटीकल एजेंट (सरकार का प्रतिनिधि होता था जो राजा के ही स्तर का था) को गुमराह किया कि शाहू अभी मात्र 24 साल के युवक हैं, उन्हें शासन संचालन का अनुभव नहीं है। उन्हें अपने पालीटीकल एजेंट की राय से ही काम करना चाहिए।[9]

इस षड़यन्त्र का आशय यह था कि शाहू को अक्षम सिद्ध करके असरहीन बना दिया जाय। छत्रपति शाहू दृढ़ संकल्पी थे, वह अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर सजग थे। 'उन्होंने अपने छात्र और युवा जीवन में ही समझ लिया था कि पेश्वाओं ने मराठा शासकों के प्रति कितना घिनौना व्यवहार किया था, जिसके कारण मराठा शासकों को बहुत अपमानित होना पड़ा और असहनीय कष्टों को भी सहना पड़ा।'[10]

शाहू महाराज भली भाँति समझ रहे थे कि हमें भी धर्मभीरुओं की ओछी हरकतों का सामना करना पड़ेगा। यह विरोध कभी समाप्त होने वाली नहीं है, हमारे समक्ष एक ही विकल्प है कि उनका निर्भीकता से मुकाबला कर पूर्ण निष्ठा से कोल्हापुर राज्य को समृद्ध बनाऊँ और उसकी जनता को सुखमय जीवन यापन का वातावरण निर्मित करूँ।

समतामूलक शिक्षा की ओर उन्मुख

यद्यपि 1854 में इस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने शासन में शिक्षा के द्वार सभी के लिए खोल दिये थे।[11] फिर भी जातिवादियों के विरोध के कारण कम्पनी के आदेश का कोई प्रभावी परिणाम

दूर–दूर तक नजर नहीं आ रहा था। कोल्हापुर राज्य की जनता भी पूर्व की ही भाँति–शिक्षालयों से वेदखल थी। 1894 में जब शाहू महाराज ने सत्ता सम्हाली उस समय के कोल्हापुर स्टेट के शिक्षा की दुर्गति का नमूना कम्पनी के आदेश की असरहीनता का अकाट्य प्रमाण माना जा सकता है। 1894 में कोल्हापुर स्टेट में छात्रों की स्थिति।[12]

छात्र संख्या	उच्च वर्ग	निम्न वर्ग	अछूत
प्रतिशत	90.10	9.90	शून्य

उक्त सारिणी से राज्य में शिक्षा की विषम स्थिति का आकलन किया जा सकता है। छत्रपति शाहू का मानवीय हृदय इस असमान शिक्षा नीति को अपने राज्य में किसी भी स्थिति में बनाये रखने का पक्षधर नहीं था। 'छत्रपति शाहू जनता को अपना परिवार मानते थे, जिस प्रकार माँ–बाप अपने बच्चों को समान रूप से देखते हैं, तथा उनमें जो कमजोर होते हैं उनका विशेष ध्यान देते हैं, वह कहते हैं इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए मैं बिल्कुल निम्न स्थिति में पड़ी जाति को अधिक प्रोत्साहन देता हूँ।'[13] शाहू जी के इन उद्‌गारों से उनके आंतरिक स्वरूप को भली भाँति समझा जा सकता है।

छात्रावासों से शिक्षित करने की पहल

18 अप्रैल 1901 को प्रथम मराठा छात्रावास का निर्माण कराया। मुस्लिम छात्रावास नामदेव छात्रावास 1 जुलाई 1910 में उपेक्षित जातियों का छात्रावास।[14]

छत्रपति शाहू चाहते थे कि उच्च वर्ग के छात्रों के साथ जातीय भेद के कारण निम्न वर्ग के छात्र अध्ययन नहीं कर सकेंगे। इस कारण उन्होंने छात्रावासों का विकल्प तैयार किया। वह इन छात्रावासों को यथाशक्ति आर्थिक मदद भी करते थे।[15]

शिक्षा प्रसार समिति का गठन 1912 में

छत्रपति शाहू के अनेक जनहितकारी कार्य उनको कोल्हापुर की जनता के अंतस में स्थापित कर चुके थे। वह चाहते थे कि मेरे राज्य में जितने भी कार्य हैं उन सभी में राज्य की जनता को दक्ष बनाया जाय। वह कहते हैं 'वर्तमान में हमें व्यापार तथा उद्योग धंधों में, खेती बाड़ी के काम में, शिक्षा की जरूरत है। मेरी समझ से ऐसा कोई भी व्यवसाय नहीं है जिसमें शिक्षा की जरूरत नहीं है।'[16] इस प्रकार उन्होंने अपने राज्य में बहुआयामी शिक्षा की स्थापना करने के लिए शिक्षा प्रसार समिति का गठन किया। जिससे कोल्हापुर को आदर्श राज्य बनाया जा सके। समिति ने उसी वर्ष राजा के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

रिपोर्ट के प्रमुख अंश

1. निर्बल और शोषित समाज को शिक्षित बनाना।
2. इस समाज में शिक्षित, जागरूक कार्यकर्ता तैयार करना।
3. निर्बल वर्ग के प्रति नफरत समाप्त करना। उनसे मानवीय व्यवहार किया जाये इसका प्रयास करना।
4. निर्बल वर्ग के बच्चों को शिक्षा देते समय, जो भी समस्या उत्पन्न हो उसको उच्च अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाये।[17] राजा ने 11 सितम्बर 1912 को समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के सभी बिन्दुओं को स्वीकृति प्रदान कर दी। शाहू जी ने 1912 में ही शोषित छात्रों की प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क कर दी।

1913 में सत्य शोधक पाठशालायें प्रारम्भ की

सत्यशोधक समाज की स्थापना ज्योतिवा फूले ने की थी। छत्रपति शाहू सत्यशोधक समाज की नीतियों से पूर्णत: सहमत थे। उनके मन में यह विचार आया कि इस संस्था के माध्यम से निरीह समाज को शिक्षित किया जा सकता है। कोल्हापुर में 11 जनवरी 1911 को घोसखाड्‌कर की अध्यक्षता में, 'शाहू जी सत्यशोधक समाज' की स्थापना की गयी। भास्कर राव जाधव को इसका अध्यक्ष बनाया गया।[18]

शाहू महाराज का मानना था कि शिक्षा के क्षेत्र में शोषितों को, जितना आगे बढ़ना चाहिये था उतना वह नहीं बढ़ सके। उन्होंने शिक्षा नीति को परिवर्तित करने की योजना बनायी। 28 मई 1913 को शिक्षा के सम्बन्ध में एक घोषणा पत्र जारी किया, जिसको उन्होंने गजट में प्रकाशित करवाया। उस घोषणा पत्र में उन्होंने कहा कि, 'शोषित जातियों में प्राईमरी शिक्षा का प्रसार करने के लिए, जो प्रयास जारी हैं उनका आज तक संतोषजनक परिणाम नहीं दिखायी दिया। इस वर्ग की शिक्षा का विस्तार तेजी से हो, इस उद्देश्य से शाहू जी ने यह निश्चय किया है कि हर गांव और देहात में एक पाठशाला स्थापित करके, जिस जाति के लोग उस गांव में बहुसंख्यक होंगे उनमें से कोई एक व्यक्ति पाठशाला चलाये।[19] इस तरह उन्होंने भारत में पहली बार शिक्षा को आम आदमी तक पहुँचाने की योजना बनायी। इस कार्य के लिए अध्यापक को जमीन दी गयी।' इन पाठशालाओं में छात्रों को केवल लिखना पढ़ना और गणित ही पढ़ाया जाता था तथा इन पाठशालाओं में मात्र शोषित समाज के ही छात्र आते थे। महाराष्ट्र के कई इलाकों में शोषित समाज के छात्रों ने इन सत्यशोधक पाठशालाओं में प्रवेश लिया था। इस तरह शाहू जी ने शिक्षा प्रसार

का नवीन तरीका तैयार किया था।

प्राथमिक शिक्षा को शक्ति से नि:शुल्क और अनिवार्य करने का आदेश

शाहू जी अपने राज्य की जनता को तथा उसकी आगे आने वाली पीढ़ी को शिक्षित करने में प्राणपण से लगे हुए थे। शिक्षा में किसी प्रकार की कमी न रहने पाये, सभी अनिवार्य रूप से शिक्षित हों, इसके लिए 21 सितम्बर 1917 को राजाज्ञा निर्गत की।[20] उस राजाज्ञा का यह प्रभाव पड़ा कि, जो कर्मचारी (शिक्षक) जातीय विद्वेष के कारण शिक्षालयों में प्रवेश और अध्यापन के कार्य में अरूचि से कार्य कर रहे थे, वह सजग हो गये। छत्रपति शाहू राज्य के खजाने से 6 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर ही खर्च करते थे।[21] इस धनराशि के व्यय से समझा जा सकता है कि छत्रपति शाहू शोषित वंचितों को शिक्षित करने मे प्राणपण से संलग्न थे।

पृथक् शिक्षा पद्धति समाप्त और सामूहिक प्रारम्भ

पूर्व की विवेचना से स्पष्ट हो चुका है कि जातीय विद्वेष के कारण छत्रपति शाहू अपने राज्यारोहण के प्रारम्भिक दिनों में शोषित समाज के छात्रों को शिक्षित करने के लिए पृथक् से शिक्षालयों की व्यवस्था करते नजर आ रहे हैं। चाहे छात्रावासों के संचालन का उपाय हो या 'सत्यशोधक पाठशालाओं के संचालन का तरीका। सभी उपायों में जातीय नफरत के कारण प्रथकता की ध्वनि आभाषित हो रही है। 1919 तक आते-आते छत्रपति शाहू जातीय उन्माद पर बहुत प्रभावी हो चुके थे अर्थात् यह उन्माद परास्त सा हो चुका था। छत्रपति शाहू का 11 अक्टूबर 1919 का शासनादेश इस तथ्य की समझ पुष्टि कर रहा है। इस आदेश में शाहू महाराज की निर्भीकता और लक्ष्य प्राप्ति से उत्साहित मानसिक स्थिति को भी समझा जा सकता है।' उन्होंने राजाज्ञा निर्गत की कि उन स्कूलों को समाप्त किया जाता है, जिनमें अछूत छात्रों को अध्ययन करने से वंचित रखा जाता है। इसके स्थान पर ऐसे विद्यालयों को प्रारम्भ किया जाता है, जिनमें अस्पृष्य छात्रों को भी सवर्ण छात्रों के साथ अध्ययन हेतु प्रवेश दिया जायेगा।

इस शासनादेश के जारी होने के उपरान्त राज्य में कहीं भी जातिवादी पूर्व की भाँति सर उठाने की स्थिति में नहीं थे। सभी ने इस शासनादेश के अनुरूप शिक्षा पद्धिति को संचालित करने का मन बना लिया। अब स्कूलों में सवर्ण और अवर्ण दोनों समुदाय के छात्र एक साथ पढ़ते नजर आने लगे। छत्रपति शाहू की यह बहुत बड़ी सफलता मानी जायेगी।

महिलाओं को शिक्षित करने का आदेश

कोल्हापुर राज्य में 1894 में अछूतों की शैक्षिक स्थिति नगण्य थी। चाहे वह पुरूष हो या महिलायें। किसी को भी पढ़ने का अधिकार नहीं था। आश्चर्य चकित करने वाला विषय यह है कि महिलाओं का विद्यालय प्रवेश मात्र शूद्रों का ही वर्जित नहीं था सामान्य वर्ग की महिलाओं को भी शिक्षित करना अशुभ माना जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में शूद्र (महिला-पुरूष) तथा सामान्य वर्ग की महिलाओं की समान स्थिति थी। छत्रपति शाहू ने इस असमानता को भी अपने राज्य में समाप्त करने का संकल्प लिया। छत्रपति शाहू के लिए महिलाओं के लिए शिक्षा के द्वार खोलना एक चुनौती भरा कार्य था। अनंतकाल से चली आ रही धार्मिक परम्परा के विरूद्ध कदम उठाने से शाहू जी को सामाजिक विरोध के रूप में गम्भीर परिणाम भी भुगतने पड़ सकते थे। छत्रपति शाहू धुन के पक्के थे, उन्होंने हिम्मत के साथ अंतत: 11 अक्टूबर 1919 को ही दूसरा शासनादेश निर्गत किया। इस आदेश में कहा गया कि समान्य वर्ग की महिलाओं को शिक्षित और जागरूक बनाने हेतु छात्राओं को नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जायेगी तथा शूद्र वर्ग की छात्राओं की छात्रावासों में नि:शुल्क रहने खाने की व्यवस्था होगी।[23]

अंग्रेज सरकार सर्वप्रथम ब्रिटिशहित को महत्व देती थी। अंग्रेज शत्रु और मित्र दोनों को प्रसन्न रखने की नीति अपनाये हुये थे। शाहू छत्रपति का जन जागृति के विरूद्ध अभियान तेज था। उनके प्रत्येक अच्छे कार्य की आलोचना चरम सीमा पर थी। सुखद विषय यह है कि अब जनता आलोचकों के साथ नहीं थी। आलोचक मुट्ठी भर थे। उदाहरणार्थ 8 फरवरी 1920 को एक जनसभा में तिलक द्वारा महिलाओं के लिए शिक्षा के द्वार खोलने की आलोचना की गयी। तिलक द्वारा इस कानून को अनुचित ठहराया गया तो उपस्थित जनता ने तिलक की अवमानना कर दी।[24]

अध्यापकों को प्रोत्साहित किया

छत्रपति शाहू ने समान शिक्षा नीति में रूचि रखने वाले अध्यापकों को उनका मनोवल वर्द्धन के लिए प्रोत्साहित किया। उनके द्वारा अछूतों और सवर्णों को, जब एक साथ बैठकर अध्ययन करने की व्यवस्था की गयी तो यह स्वाभाविक था कि अनेक अध्यापकों ने जीवकोपार्जन हेतु अध्यापन का कार्य मजबूरी से अंगीकार किया वहीं दूसरी ओर वह अध्यापक और विद्यालय थे, जिन्होंने इस समान शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में विशेष रूचि लेकर उसे कारगर बनाया। शाहू जी ने सर्वे कराकर ऐसे विद्यालय और अध्यापकों को पुरस्कृत किया। इस श्रेणी के अध्यापकों को राज्य के अच्छे विद्यालयों में पदोन्नति कर उत्साहवर्द्धन किया।[25]

उच्च शिक्षा पर भी ध्यान था

जहाँ शोषित समाज में शिक्षा की पहल सदियों से प्रारम्भ ही न हुई हो, वहाँ चंद वर्षों के शासन में उच्च शिक्षा की कल्पना करना हास्यास्पद प्रतीत होती है। भले ही अन्यों को असम्भव कार्य लग रहा हो, परन्तु साक्ष्य गवाही दे रहे हैं कि छत्रपति शाहू ने असम्भव कार्य को भी सम्भव करके दिखा दिया। शाहू जी के ही कथनानुसार 'प्राथमिक शिक्षा पर मेरा अधिक ध्यान है, फिर भी दूसरे नम्बर पर उच्च शिक्षा की ओर भी मेरा कम ध्यान नहीं है। मेरी रियासत में सतारा और बेल गांव दोनों जिलों के छोटे होने के बावजूद भी हमारे द्वारा सात हाई स्कूल स्थापित किए गये हैं, दो जल्दी ही शुरू हो जायेंगें साथ ही यूनीवर्सिटी स्तर की शिक्षा देने के लिए भी एक कॉलेज चालू है।'[26]

सशक्त लोकशक्ति का निर्माण

छत्रपति शाहू ने अपनी समान शिक्षा नीति के आधार पर अपने राज्य में पिछड़ों और अछूतों के बीच जागरूकता पैदा करके उनमें अभूतपूर्व बदलाव ला दिया। इस बदलाव से कोल्हापुर राज्य में एक मजबूत जनशक्ति का निर्माण हो गया। 1894 तक की कोल्हापुर राज्य की शैक्षिक स्थिति से सम्बन्धित तमाम साक्ष्य प्रस्तुत किए जा चुके हैं, अब देखना है कि शाहू जी की रणनीति ने कोल्हापुर में उनके शासन के अंतिम दिनों तक क्या बदलाव किया? [27]

विद्यार्थी संख्या	1922
उच्च वर्ग	2722
निम्न वर्ग	23749

सारांशत: उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट नजर आ रहा है कि गरीब शोषित समाज के छात्रों में छत्रपति शाहू की समान शिक्षा नीति से आश्चर्य जनक परिवर्तन हुआ। शाहू महाराज ने इस परिवर्तन का श्रेय अपने सहयोगियों को दिया।

इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि शाहू जी ने समान शिक्षा नीति के आधार पर अपने चिन्तन को यथार्थ परक सिद्ध कर दिया। उनका यह कथन है कि शिक्षा ही प्रगति का आधार है अक्षरत: सत्य है। शाहू महाराज के इस गम्भीर चिन्तन से, निष्पक्ष नीति से मात्र 1894 से 1922 की अल्प अवधि में कोल्हापुर की समृद्धि में उसकी जनता के संस्कारों में, जो चमत्कारिक परिवर्तन आया उससे अभिभूत होकर 'प्रसिद्ध विद्वान् डा. वेल्सन ने कोल्हापुर का हकीकी चित्रण अपनी जीवनी में किया है', मैं भारत में रहते समय 36 वर्षों में कोल्हापुर राज्य के इतिहास में इसकी समृद्धि, जैसी छत्रपति शाहू ने की वैसी किसी अन्य शासक ने की हो, न ही पढ़ने को और न ही सुनने को मिली। मेरा यह भी मानना है कि कोल्हापुर के इतिहास में ही नहीं, बल्कि भारत के इतिहास में किसी भी राज्य का कभी भी इतना विकास हुआ हो, ऐसा उदाहरण उपलब्ध है मैंने नहीं पढ़ा।[28]

6 फरवरी 1922 को दिल्ली में अस्पृस्यों की एक सभा सम्बोधन में छत्रपति शाहू भी कहते है कि, 'मेरे छोटे राज्य में आपके ही समाज के अनेक व्यक्ति महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करने लगे हैं। अगर ईमानदारी से कार्य किया जाये तो आप सबका भी इसी प्रकार उत्थान हो सकता है।'[29]

अंग्रेज सरकार की एक न सुनी

शाहू जी द्वारा सदियों पुरानी धार्मिक परम्पराओं के विरूद्ध मंचों से भाषण और नीति निर्धारण से अंग्रेज सकार भयभीत थी। उसका यथास्थिति बनाकर शांति से राजपाट करना उद्देश्य था। 30 मई 1920 को रेजीडेन्ट बुड हाउस का हिदायत भरा पत्र, 'आप भविष्य में सार्वजनिक मंचों पर भाषण न दें।'[30]

30 मई 1920 को शाहू की मंच से गर्जना–मैं अपनी राजगद्दी छोड़ देने का खतरा मोल लेकर भी निर्बल वर्ग के लिए सब कुछ करूँगा। ऐसे ही अनेक प्रकरण उपलब्ध हैं।

परम्पराओं के रक्षकों से संघर्ष

15 अप्रैल 1920 को उन्होंने खुलाशा किया कि कुछ अखबारों ने मुझ पर आरोप लगाया कि मैं देश द्रोही हूँ।[31] शाहू जी पर बम फैकने का षड़यन्त्र, मंचों पर गुंडों द्वारा धक्का मुक्की कराकर अपमानित करना, ऐसी अनेक घटनाओं से छत्रपति शाहू का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हुआ। परन्तु छत्रपति शाहू कभी विचलित नहीं हुए। अंतत: समृद्ध कोल्हापुर राज्य बनाने का संकल्प पूरा कर ही अंतिम सांस ली।

सन्दर्भ सूची–

1. शाहू जी महाराज के ऐतिहासिक भाषण, अनुवादक विनय कुमार वासनिक, सम्यक, प्रकाशन नई दिल्ली 2016 पृ. 447
2. वर्मा डॉ. ब्रजलाल राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर, 1990, पृ. 37
3. वर्मा डॉ. ब्रजलाल राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर, 1990, पृ. 37
4. वर्मा डॉ. ब्रजलाल राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर, 1990, पृ. 31
5. शाहू जी महाराज के ऐतिहासिक भाषण, अनुवादक विनय कुमार वासनिक–सम्यक् प्रकाशन–2016, पृ. 57
6. शाहू जी महाराज के ऐतिहासिक भाषण, अनुवादक विनय

कुमार वासनिक–सम्यक प्रकाशन–2016, पृ. 88
7. डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–7 पृ. 171 प्रकाशन भारत सरकार
8. शाहू जी महाराज के ऐतिहासिक भाषण, अनुवादक विनय कुमार वासनिक, सम्यक प्रकाशन 2016, पृ. 88
9. वर्मा डॉ. ब्रजलाल, राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर, 1990 पृ. 45
10. कीर्ति डॉ. विमल, छत्रपति शाहू जी सचित्र जीवनी, सम्यक् प्रकाशन दिल्ली, 2004, पृ. 24
11. वर्मा डॉ. ब्रजलाल, राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर, 1990 पृ. 33
12. संगवे डॉ. विलासराव, राजर्षि छत्रपति शाहू महाराज कार्य व प्रभाव, एक्सप्रेस पब्लिसिंग हाउस कोल्हापुर 2001 पृ. 39
13. शाहू जी महाराज के ऐतिहासिक भाषण, अनुवादक विनयकुमार वासनिक, सम्यक प्रकाशन, 2016 पृ. 108
14. वर्मा डॉ. ब्रजलाल, राजर्षि, छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर 1990 पृ. 168
15. कीर्ति डॉ. विमल, छत्रपति शाहू सचित्र जीवनी, सम्यक् प्रकाशन नई दिल्ली, 2004 पृ. 64
16. शाहू जी महाराज के भाषण, अनुवादक विनय कुमार वासनिक, सम्यक प्रकाशन 2016 पृ. 65
17. वर्मा डॉ. ब्रजलाल, राजर्षि छत्रपति शाहू भावना प्रकाशन कानपुर 1990 पृ. 175
18. कीर्ति डॉ. विमल, छत्रपति शाहू सचित्र जीवनी, सम्यक् प्रकाशन, 2004 पृ. 66
19. कीर्ति डॉ. विमल, छत्रपति शाहू सचित्र जीवनी, सम्यक प्रकाशन, 2004 पृ. 42 राजर्षि शाहू महाराज जी, 'भाषण–आज्ञा पत्र' सम्पादक प्रदीप गायकवाड़ पृ. 114 क्षितिज पब्लिकशेन–नागपुर, 2002 पृ. 114
20. वर्मा डॉ. ब्रजलाल, राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर, 1990 पृ. 225
21. खोवरेकर वी0जी0, राजर्षि शाहू महाराज का एडमिनिस्ट्रेशन (1894–1922) छत्रपति शाहू द पिलर आफ सोसियल डेमोक्रेसी, सम्पा. डॉ. एम0जी0 माली प्रकाशक–एजूकेशन डिपार्टमेंट महाराष्ट्रा सरकार, 1994 पृ. 381
22. खेवरेकर वी0जी0, राजर्षि शाहू महाराज का एडमिनिस्ट्रेशन (1894–1922) छत्रपति शाहू द पिलर आफ सोसियल डेमोक्रेसी, सम्पादक, डॉ. एम0जी0 माली प्रकाशक–एजूकेशन डिपार्टमेंट महाराष्ट्रा सरकार, 1994, पृ. 381
24. वर्मा डॉ. ब्रजलाल, राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर 1990, पृ. 258
25. खोवरेकर वी0जी0, राजर्षि शाहू महाराज का एडमिनिस्ट्रेशन (1894–1922) छत्रपति शाहू द पिलर आफ सोसियल डेमोक्रेसी सम्पादन डॉ. एम0जी0 माली–1990 पृ. 381
26. शाहू जी महाराज के ऐतिहासिक भाषण, अनुवादक विनय कुमार वासनिक, सम्यक प्रकाशन 2016 पृ. 111
27. संगवे डॉ. विकासराव, राजर्षि छत्रपति शाहू कार्य व प्रभाव, एक्सप्रेस पब्लिसिंग हाउस कोल्हापुर 2001 पृ. 38
28. साल विटेव पी0वी0, मिशनरी इन्फ्लूएंस आफ छत्रपति शाहू, सम्पादन–डॉ. एम0जी0 माली प्रकाशन–एजूकेशन विभाग महाराष्ट्र सरकार, 1994 पृ. 190
29. घुगे डॉ. वी0वी0, छत्रपति शाहूज एकनामिक आईडियाज एण्ड पालसीज, सम्पादन डॉ. एम0जी0 माली छत्रपति शाहू द पिलर आफ सोसियल डेमोक्रेसी, प्रकाशन एजूकेशन विभाग महाराष्ट्र सरकार, 1994 पृ. 244
30. वर्मा डॉ. ब्रजलाल, राजर्षि छत्रपति शाहू, भावना प्रकाशन कानपुर, 1990 पृ. 268
31. राजर्षि शाहू महाराज जी भाषण और अज्ञा पत्र, सम्पादक प्रदीप गायकवाड़, क्षितिज पब्लीकेशन, नागपुर, 2002, पृ. 74

ISSN 2278 - 0327

योग दर्शन में मनोरोगों का अवधारणा : एक परिचय

दिलिप कुमार रजक
शोद्यार्थी, पी.एच.डी.(यौगिक विज्ञान विभाग)
लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, म.प्र.

श्रीकान्त
शोद्यार्थी पी.एच.डी.(शारीरिक शिक्षाशास्त्र विभाग)
लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, म.प्र.

डॉ. नीबू आर. कृष्णा
सह–आचार्य (यौगिक विज्ञान विभाग)
लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, म.प्र.

डॉ. मोरध्वज सिंह
सहायक–आचार्य (यौगिक विज्ञान विभाग)
लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, म.प्र.

शोध सारांशः–

आधुनिक क्लिष्ट जीवनशैली में अनेक सुख–सुविधाओं ने मानव को शारीरिक विश्राम तो दिया, किन्तु मानसिक रूप से प्रतिद्वन्द्वता के शिकार हुए मानव को मनोरोगों ने गम्भीरता से जकड़ा हुआ है। इक्कीसवीं सदी में मनुष्य ने अनगिनत समस्याओं के साथ प्रवेश किया है। सूचना तकनीक, संचार क्रान्ति और यांत्रिकात में मानवीय जीवन में साधन–सुविधा की भरमार करने के साथ मानसिक स्वास्थ्य में अनेकों संकट भी खड़े किये है। मनुष्य का जीवन अपेक्षाकृत अधिक तनाव एवं विषादपूर्ण हुआ है। मानसिक चिकित्सा की प्रचलित विधियां, मनोविज्ञान के तौर–तरीके मिल–जुलकर भी इस चुनौती का सामना करने में प्राय: असमर्थ रहें है। ऐसे में चिन्तित विशेषज्ञों की दृष्टि विश्व भर के पुरातन ज्ञान भण्डार एवं प्राचीन ऋषियों द्वारा अन्वेषित योग दर्शन विज्ञान पर जा टिकी है। दार्शनिक दृष्टिकोण से सभी प्रकार की अस्वस्थता एवं पौराणिक काल में व्याधियों का मूल कारण मानसिक विकृति को ही माना जाता था। इस सन्दर्भ में योगदर्शन मनोरोग एवं मनोचिकित्सा की पूर्णत: मनोवैज्ञानिक विवेचन करता है। साररूप में हम कह सकते हैं कि वर्तमान की मानसिक विकृतियों का सार्थक और सक्षम समाधान योगदर्शन शारीरिक एवं मानसिक अनुशासन द्वारा मनोविकारों को दूर करते हुए समग्र मनोकायिक स्वास्थ्य की अवधारणा को स्वीकार करता है।

मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा को मूल रूप से समायोजनशीलता की क्षमता से मापा जाता है। यह व्यक्ति के समन्वित क्रिया है जिससे व्यक्ति में बहुत सी प्रेरणायें, लालसायें, इच्छायें तथा रुचियां होती है। जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति एवं उचित समन्वय आवश्यक होता है। इस आधार पर मानसिक स्वास्थ्य के लिये तीन बातें प्रमुख हैं– क्षमतओं की पूर्ण अभिव्यक्ति, शक्तियों में एकीकरण तथा मूल एवं अर्जित प्रेरणाओं का सामान्य लक्ष्य की ओर गमन।[1] इसी संदर्भ में कार्ल मेनिंगर का मत– ''मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम प्रभावशीलता एवं सहर्षता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरें व्यक्ति के साथ मानव समायोजन है – यह एक संतुलित मनोदशा, सजग बुद्धि, समाजिक रुप से मान्य व्यवहार और प्रसन्नचित बनायें रखनें की क्षमता है।''[2]

इस तरह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी अर्जित व्यवहार है जिसका स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। यह एक संतुलित मानसिक स्थिति को व्यक्त करता है, जिसमें कि व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिकरूप से और सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार करता है।[3]

मनोरोग

आधुनिक युग भागमभाग, प्रतिस्पर्धा एवं वैज्ञानिक चकाचौंध का युग है। आज जनसंख्या बढ़ती जा रही है, सब कुछ कम्प्यूटरकृत हो रहा है, प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, बेरोजगारी अपना प्रकोप छोड़ रही है, इन्हीं मूल आधार कारणों से जन्म लेता है 'मन का रोग' जिसको शिक्षा की उपचार जगत में ''मनोरोग'' कहतें है।[4]

मन में विकृत विचार, व्यवहार, चिंतन आने के कारण मनोविकार आते हैं, और हमें मनोरोगी बनाते हैं। मनोरोग का मूल कारण असफलता, निरशता आदि है, इनसें हमारें मन में विकृत विचार आते हैं, यही विकृत विचार मनोरोग का कारण बनतें है। आज आधुनिक युग प्रतिस्पर्धा का युग है। जिसमें हर कोई एक दूसरे व्यक्ति से सफल बनना, आगे बढ़ना चाहता है लेकिन इस

सफलता प्राप्त नहीं कर पाने से निराश, अवसाद, चिंता, स्मृति भ्रम जैसी मनोरोगो से ग्रसित हो जाता है।[5]

युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य लिखतें है, कि मनोरोग और कुछ नहीं कुचली, मसली, रौंदी हुई भावनाऐं है और इनकी यह दशा हमारें अपनें अथवा परिवेश के दूषित चिंतन के कारण होती है।[6]

पाश्चात्य दृष्टिकोण से मानसिक समस्यायें एवं मनोरोग अपूर्ण कामनाओं का क्लिष्ट रूपान्तरण है; किन्तु भारतीय मत है कि ये कामनाएं अविवेक, अधूरे ज्ञान, भ्रम, संदेह अथवा बाह्य व्यवधानों की गतिविधियों से उत्पन्न होते हैं। स्पष्ट है कि भारतीय मत मनोरोगों के रूप व सतही कारण पर अधिक केन्द्रित है, किन्तु भारतीय मत मनोरोगों के मूल कारणों को स्पष्ट करता है। रूपान्तरण यद्यपि किसी भी मनोरोग में हो; तथापि मनोरोग के मूल में अतृप्त कामनाऐं ही होती है इसलिये मनोचिकित्सा की तकनीकियां मुख्य रूप से अनुपयुक्त इच्छाओं तथा परिस्थितियों को समझते हुये पहचाननें एवं क्षमताओं का वातावरण से सामंजस्य करने पर ही केन्द्रित है। हम अनियन्त्रित भौतिक कामनाओं व सुविधाओं के कारण ही अतृप्ता का सामना कर रहें है। इन्द्रिय सुख को वास्तविक अर्थ में ग्रहण करने व समझने की स्थिति में है ही नहीं, परिणामस्वरूप हम अधिकाधिक तृष्णा व कामनापूर्ति की ओर भाग रहें हैं, किन्तु हम तब भी संतुष्ट होने के स्थान पर अधिकाधिक मनोरोगों के शिकार हो रहें है।[7]

मनोरोगों के मूल कारण

'*मन एवं मनुष्याणाम् कारण बन्धन मोक्षयो*' अर्थात् जिसके अनुसार मन को ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण बताया गया है। यदि मन अध्यात्मिक लक्ष्य की ओर उन्मुख है तो यह स्वास्थ्य, मुक्ति एवं स्वंतत्रता का हेतु है और अधिक इस लक्ष्य से विमुख है तो ऋषियों के अनुसार यह स्वतः ही विविध रोगों, बन्धनों एवं दु:ख- संतापों का कारण बनेगा। मन की यह अवस्था ही नाना प्रकार के मनोरोगों की उर्वर भूमि सिद्ध होती है।[8]

पतंजलि योगसूत्र में मनोविकारों के मूल कारणों के रूप में पंचक्लेश का विचार प्रतिपादित है। यह पंचक्लेश है- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।[9]

1. अविद्या- '*अनित्याऽशुचिदुःखऽनात्मसु नित्यशुचिसुखाम-ख्यातिरविद्या*'।[10]

यह अज्ञान का पर्याय है। अनित्य, अपवित्र, दु:ख तथा आनात्म विषयों में क्रमशः नित्य, पवित्र, सुख तथा आत्मबुद्धि रखना अविद्या है। इस तरह यह सिद्धांत विपर्यय, मिथ्या ज्ञान रूप है।[11] इसी कारण मनुष्य नश्वर जगत को शाश्वत मान इसी को अपना आदि अन्त मान बैठता है। मल, मूत्र एवं विकार युक्त शरीर को परम पवित्र वस्तु मान आत्मा से भिन्न इन्द्रियों, चित्त, स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि जड़ एवं चेतन अनात्म पदार्थों एवं तत्वों को आत्म स्वरूप मान बैठता है और संसार के दु:ख भोग में ही जीवन की सार्थकता अनुभव करता है। यौगिक दृष्टि से जीवन के प्रति यह भ्रम भटकावपूर्ण चिन्तन पद्धति ही मनोरोगों का मूल कारण है इसी से अन्य क्लेशों की उत्पत्ति होती है।[12]

2. अस्मिता – '*दृग्दर्शनशक्त्ययोरेकात्मतेवास्मिता*'।[13]

पुरुष (दृक्शक्ति) तथा चित्त या (दर्शनशक्ति) दोनों भिन्न होते हुये भी उनकी जो अभिन्न प्रतीति होती है, यही अस्मिता है। सांख्य में इसे मोह कहा गया है। मोटे रूप में अहंकार को ही अस्मिता कहतें है।[14] इसी कारण आत्मा-दृष्टा होते हुये भी मैं सुखी हूँ, मैं दु:खी हूँ, मैं बिमार हूँ, मैं हूँ आदि भ्रम भ्रांतियों में उलझा रहता है। मैं और मेरेपन की यह अति ही मन को आत्मा से विमुख कर विविध मनोविकारों को जन्म देतीं है।[15]

3. राग – '*सुखानुशयी रागः*'।[16]

अविद्या से उत्पन्न अहंकार मन, इन्द्रियों एवं शरीर द्वारा संसार के नाना भोगों को भोगता है जिनमें उसे सुख मिलता हैं। उन विषयों के प्रति उसे प्रेम हो जाता है यही अशक्ति राग है। इसे सांख्य में महामोह कहा गया है और इसी महामोह के कारण व्यक्ति सुख भोगों के पीछे लोभ एवं तृष्णा से युक्त रहता है। इसके मोहक भ्रमजंजाल एवं नशे में व्यक्ति बुद्धि, विवके की शक्ति खो बैठता है और संसार सुख एवं विषय भोगों के क्रीतदास बनकर रह जाता है। विविध मनोरोग इसी दशा में आकार ले लेतें है, जिनकी विकरालता द्वेष के कारण और भयंकर हो जाती है।[17]

4. द्वेष- '*दुःखानुशयी द्वेषः*'।[18]

दु:ख भोग के पश्चात् रहने वाली घृणा की वासना को द्वेष कहते है। रागजन्य वस्तु या भोग में बाधा द्वेष का कारण बनती है अर्थात् राग से द्वेष का उत्पत्ति होता है इसलिए राग एवं द्वेष दोनों अभिन्न रूप से जुड़े है। यह द्वेष प्रेम या आसक्ति में विघ्न पड़ने से होती है। वस्तुतः द्वेष से आवेशित मूढ़बुद्धि विविध मनोविकारों की जननी है।

5. अभिनिवेशः- '*स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रुढ़ोऽभि-निवेशः*'।[19]

विद्वान् तथा मूर्ख सभी प्राणियों में स्वाभाविक रूप से मृत्यु का जो भय रहता है, इसे हि अभिनिवेश कहते है। यह अस्मिता, अविद्या से ही प्रादुर्भूत होता है। आत्मा अपने मूलरूप में अजन्मा,

नित्य, शाश्वत, अनादि तथा कभी भी नाश न होने वाला है।[20] किन्तु अज्ञानवश मनुष्य इस सत्य को भूल जाता है और सघन रूप से शरीर, इन्द्रियां एवं मन से आत्मीय सम्बन्ध मान बैठता है और इसके नष्ट होने से भयभीत रहता है। भय की यह मूल प्रवृत्ति विविध रूपों में पोषण पाने से कई तरह के मनोरोगों को जन्म देता है।

इस तरह यौगिक दृष्टि में ये पंचक्लेश ही मनोरोगों के मूलकारण है। इन्हें क्लेश इसी कारण कहा जाता है कि यह मनुष्य को जन्म-मरण के चक्र में फंसे रहते है।[21] अविद्या एवं अज्ञान से उत्पन्न क्लेषों से छूटने के व्यवहारिक उपाय योगदर्शन में वर्णन करते हैं कि विवके ज्ञान ही इस अविद्या या अज्ञान की औषधि या उपचार है, जो योग के अभ्यास द्वारा प्राप्त होता है।

मनोरोग के स्वरूप एवं लक्षण

योग में मनोरोगों के स्वरूप एवं लक्षण का विषय योग साधना के मार्ग में आने वाले विघ्न व्यवधानों के रूप में किया गया है और इन्हें 'चित्त विक्षेप' या 'अन्तराय' की संज्ञा दी गई है। महर्षि पतंजलि ने इसे निम्न प्रकार से बताये है।

'व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्यविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चितविक्षेपास्तेऽन्तराया:'।[22]

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थित्व ये नौ चित्त (मन) के विक्षेप है, वे ही अंतराय अर्थात् विघ्न रूप है।

1. **व्याधि** - शरीर में किसी प्रकार का रोग, इन्द्रियों में कमजोरियां आना तथा चित्त में भ्रम, उद्विग्रत आदि आ जाना है व्याधि है।
2. **स्त्यान** - कार्य करने मे असमर्थ होना, अकर्मण्यता, कार्य में अनुत्साह अथवा सामर्थ्य की कमी को स्त्यान कहते हैं।
3. **संशय** - योग विद्या की वस्तु स्थिति पर विश्वास न होना तथा अपने प्रयत्न की सफलता पर आशंका करना संशय कहलाता है।
4. **प्रमाद** - लापरवाहीपूर्वक योग साधना करना, नियमित क्रम को अधूरा छोड़ देना और वह बिगड़ भी जाए, तो भी उसकी चिंता न करना प्रमाद कहलाता है।
5. **आलस्य** - तमोगुण के रहने से शरीर का भारी रहना, कार्य में मन न लगना, सुस्ती बनी रहना आलस्य कहलाता है।
6. **अविरति** - विषयासक्ति होने से मन का विषयों में ही लगे रहना तथा चित्त में वैराग्य का अभाव हो जाना अविरति कहलाता है।
7. **भ्रांतिदर्शन** - किसी कारणवश आध्यात्म के दर्शन और साधन पथ का वास्तविक ज्ञान न हो पाना अथवा यह साधन उपयुक्त नहीं है, ऐसा भ्रांतिक ज्ञान भ्रांतिदर्शन कहलाता है।
8. **अलब्धभूमिकत्व** - निरंतर साधना करने पर भी साधक की स्थिति में न पहुँच पाना तथा मध्य में ही मन के वेग का अवरुद्ध हो जाना अलब्धभूमिकत्व कहलाता है।
9. **अनवस्थिति** - चित्त का एकाग्र अथवा स्थिर न रह पाना, जिससे भूमि का तक न पहुँच पाना और अस्थिरता के फलस्वरूप मनोभूमि का डांवाडोल बने रहना अनवस्थिति कहलाता है।

महर्षि पतंजलि ने इन चित्त अंतरायों के अतिरिक्त अन्य विघ्नों की भी चर्चा की है-

''दू:खदौर्मनस्याऽगमेजयत्व श्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुव:''।[23]

दु:ख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास-प्रश्वास ये विक्षेपों के साथ होने वालें है, अर्थात् उनके होनें से यह पाँच विघ्न भी उपस्थित हो जाते है। इनका वर्णन इस प्रकार से है-

1. **दु:ख** - अर्थात् कष्ट ये तीन प्रकार के होते है - आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

क) आध्यात्मिक दु:ख - राग, द्वेष, काम-क्रोध, भय-चिंता आदि होनें से मन, इन्द्रियां और शरीर में जो विकलता एवं वेदना होती है, उसी का नाम अध्यात्मिक दु:ख है।

ख) आधिभौतिक दु:ख -शत्रु, दस्यु, शेर, सर्प, मच्छर आदि द्वारा होने वाले कष्टों को आधिभौतिक दु:ख कहते हैं।

ग) आधिदैविक दु:ख - आँधी-तूफान, भूकम्प, बिजली, सर्दी-गर्मी आदि दैवी कारणों से जो पीड़ा होती है उसे आधिदैविक दु:ख कहते है।

2. **दौर्मनस्य** - मन की इच्छा पूर्ण होने से मन में जो क्षोभ उत्पन्न होता है उसे दौर्मनस्य कहते हैं।
3. **अंगमेजयत्व** - शरीर के अंग- अवयवों का कंपित होना अंगमेजयत्व कहलाता है।
4. **श्वास** - श्वास प्रक्रिया पर नियंत्रण न हो पाने के कारण बाहर की वायु का नासिका मार्ग में अंदर प्रवेश कर जाना अर्थात् बर्हिकुंभक में विघ्न हो जाना श्वास है।
5. **प्रश्वास** - न चाहने पर भी (यौगिक क्रियाओं के समय) अंदर की वायु का बाहर निकल जाना अर्थात् अंतकुंभक में विघ्न हो जाना प्रश्वास है।

निष्कर्ष-

मनोरोग और कुछ नहीं हमारी ही समाज द्वारा सिखाये गये

गलत व्यवहार जिसको बालक जन्म से ग्रहण कर व्यवहार में लाता है और वही व्यवहार सामाजिक दृष्टिकोण से मान्य नहीं होता है, असमान्य सामाजिक व्यवहार या क्रियाकलाप ही मनोरोग का परिवर्तित रूप है। मनोरोग में सन्दर्भ में एलवर्ड कहते है, मन के समस्त कार्य सोचना, विचारना, निर्णयन करना, आदि कार्य में ठीक-ठीक प्रक्रिया पूरा न कर पाना ही मनोरोग कहलाता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वह आज के वैज्ञानिक युग में भी भूत-प्रेत, ऊपरी साया, देव-देवता, मौसम, नक्षत्र, भाग्य बुरे कर्मो का फल आदि को इन रोगों का कारण मानता है। इसलिये हमारे देश में ओझा, पूजारी, मौलवी, साधु, नकली वैद्य, नीम हकीम, अप्रशिक्षित यौन विशेषज्ञ इत्यादि अवैज्ञानिक रूप से मनोरोग चिकित्सकों का कार्य कर रहे हैं। इस चिंताजनक एवं गम्भीर स्थिति का कारण जहाँ मनोरोग के प्रति अज्ञातना है, वही उपलब्ध उपचार की भ्रांतिपूर्ण, त्रुटिपूर्ण एवं उथली प्रक्रियाएँ भी कम दोषी नहीं है। इस सन्दर्भ में मनोरोग के कारण भूत, प्रेत जैसी गलत अवधारणायें नहीं बल्कि हमारे दबाई गयी विचार व भावनायें ही हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. प्रो. प्रयाग दीन मिश्र और डॉ. विभा मिश्र- योग तथा मानसिक स्वास्थ्य, संशोधित द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-4
2. Karl Menninger, The Human Mind, P.102
3. डॉ. सुरेश वर्णवाल - योग और मानसिक स्वास्थ्य, पृ.25
4. मंजित सिंह भाटिया - मनोरोग गलत अवधारणायें और सतही पहलू
5. मंजित सिंह भाटिया - मनोरोग गलत अवधारणायें और सतही पहलू
6. डॉ. प्रणव पाण्ड्या - एक मनोचिकित्सक के रूप में पूज्य आचार्य जी, अखण्ड ज्योति, वर्ष 53, अंक-12, पृ.50
7. डॉ. कविता भट्ट -योग दर्शन में प्रत्याहार द्वारा मनोचिकित्सा, पृ.4
8. डॉ. सुरेश वर्णवाल- योग और मानसिक स्वास्थ्य, पृ. 139-140
9. पा. यो.सू.- 2/3
10. पा. यो.सू. - 2/5
11. आचार्य बलदेव उपाध्याय - भारतीय दर्शन पृ. 300
12. डॉ. सुरेश वर्णवाल - योग और मानसिक स्वास्थ्य, पृ.140
13. पा. यो.सू. - 2/6
14. डॉ. शान्ति प्रकाश आत्रेय - योग मनोविज्ञान, पृ.119
15. डॉ. सुरेश वर्णवाल - योग और मानसिक स्वास्थ्य, पृ.140
16. पा. यो.सू. - 2/7
17. डॉ सुरेश वर्णवाल - योग और मानसिक स्वास्थ्य, पृ.141
18. पा. यो.सू. - 2/8
19. पा. यो.सू. - 2/9
20. श्रीमद् भगवद् गीता - 2/19-25
21. डॉ. शान्ति प्रकाश आत्रेय - योग मनोविज्ञान, पृ. 213
22. पा. यो.सू. - 1/30
23. पा. यो.सू. - 1/32

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. वर्णवाल, डॉ सुरेश - योग और मानसिक स्वास्थ्य, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, 5824/7, न्यू चंद्रावल जवाहर नगर, दिल्ली 110007।
2. आचार्य पंडित श्रीराम शर्मा - पतंजलि योग का तत्व दर्शन, युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि मथुरा, 1968।
3. उपाध्याय आचार्य बलदेव - भारतीय दर्शन, शारदा मंदिर 3713 रविन्द्रपुरी, वाराणसी 1997।
4. सिन्हा, डॉ. हरेन्द्र प्रसाद- भारतीय दर्शन की रुपरेखा, मोतीलाला बनारसी दास पब्लिशर्स प्रकाशित
5. श्रीमद्भगवत गीता - गीता प्रेस, गोरखपुर 273005, सं. 2052
6. पांतजल योग दर्शन - गीता प्रेस, गोरखपुर 273005, सं. 2052
7. भट्ट डॉ. कविता - योग दर्शन में प्रत्याहार द्वारा मनोचिकित्सा, किताब महल पब्लिशर्स 8, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई-दिल्ली 110002
8. नोटियाल डॉ. विनोद प्रसाद - योग द्वारा मानसिक आरोग्य, किताब महल पब्लिशर्स 8, हरी सदन, ग्राउण्ड फ्लोर 20 अंसारी रोड़, दरियागंज, नई-दिल्ली 110002
9. सरस्वती स्वामी सत्यानंद- मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत 2013
10. पाण्ड्या डॉ. प्रणव - यह दुनिया बन रही है एक पागलखाना, अखण्ड ज्योति वर्ष 61, अंक 5

ISSN 2278 - 0327

शाम्भवी मुद्रा का विद्यार्थियों के तनाव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

आकाश प्रसाद कोटनाला
शोधार्थी
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय,पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

डॉ. मोनिका रानी
सहायक आचार्य
हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय,पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

शोध सारांश - शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास मुख्यत: आज्ञाचक्र पर ध्यान एकाग्र करने की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की मस्तिष्कीय ग्रन्थियों पर त्वरित रूप से प्रभाव पड़ता है। योग शास्त्रों के अन्तर्गत शाम्भवी मुद्रा का मुख्य प्रयोजन आज्ञाचक्र पर ध्यानाभ्यास द्वारा त्रिनेत्र जागरण व मस्तिष्कीय क्षमताओं का विकास करना है। प्रस्तुत शोध का प्रमुख उद्देश्य शाम्भवी मुद्रा का विद्यार्थियों के तनाव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। शोध के अन्तर्गत कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा श्री जगद्देवसिंह संस्कृत महाविद्यालय एवं अजरानंद अजरधाम विद्यालय जिला हरिद्वार से 60 विद्यार्थियों का चयन किया गया जिनकी उम्र 15 से 17 वर्ष के मध्य थी। शोध में प्रयोगात्मक एवं नियन्त्रित समूह अभिकल्प का उपयोग किया गया। जिसके अन्तर्गत 30 विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक तथा 30 विद्यार्थियों को अप्रयोगात्मक दो समूहों में विभाजित किया गया है। तत्पश्चात् प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों को 3 माह तक सप्ताह में 5 दिन प्रात:काल 30 मिनट नियमित रूप से शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करवाया गया जबकि अप्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों को किसी प्रकार का अभ्यास नहीं करवाया गया। विद्यार्थियों के तनाव का मापन डॉ० एम. सिंह के द्वारा निर्मित तनाव मापनी के द्वारा प्रयोग पूर्व एवं प्रयोग पश्चात् दो अवस्थाओं में किया गया। प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण एस.पी.एस.एस वर्जन 21 के द्वारा टी परीक्षण किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा यह परिणाम प्राप्त हुए कि प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों के तनाव के प्रयोग पूर्व एवं प्रयोग पश्चात् अवस्था में सार्थक अन्तर पड़ता है जबकि अप्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों के तनाव में कोई अन्तर प्राप्त नहीं हुआ। अत: प्रस्तुत शोध के परिणामों के विश्लेषण से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

कूटशब्द- शाम्भवी मुद्रा, तनाव, विद्यार्थी।

शोधपरिचय- प्रस्तुत शोध योग परम्परा के अन्तर्गत मुद्रा विज्ञान पर आधारित है। संस्कृत में मुद्रा शब्द का अर्थ होता है- भाव-भंगिमा। मुद्राएं अतीन्द्रिय, भावनात्मक, भक्तिपूर्ण और सौन्दर्य बोधक हो सकती हैं। योगियों ने मुद्राओं की अनुभूति शक्ति-प्रवाह की स्थितियों के रूप में की है, जिनका उद्देश्य होता है मनुष्य की प्राणशक्ति को ब्रह्माण्डीय प्राणशक्ति के साथ एक करना। प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदत्त योगविद्या में मुद्राओं के अभ्यास से चिकित्सा व चेतना के विकास का ज्ञान निहित है। वस्तुत: मुद्रा विज्ञान हठयोग का महत्वपूर्ण अंग है। हठयोग की शाम्भवी, अश्विनी, महामुद्रा, ताड़ागी, विपरीतकरणी, उन्मनी, खेचरी आदि कुछ स्थूल मुद्राएं कही जाती हैं। इनमें से कुछ ऐसी मुद्राएं हैं जिनका अभ्यास सामान्य व्यक्ति सरलता से नहीं कर सकता। इनके अभ्यास में विशेष सतर्कता की भी आवश्यकता पड़ती है।

शिव संहिता के अनुसार मुद्राओं के अभ्यास से साधक संसार सागर से पार हो जाता है, यह सर्वकार्य सिद्धि, इन्द्रियजनित, सुख प्राप्ति, मनोकामनापूर्ति, जरा व मृत्यु की नाशक, शरीर में कान्ति, जठराग्नि में उद्दीपक, समस्त रोगनाशक, वीर्य की स्थिरता, नाड़ी संचालन व वायु संचालन एवं स्फूर्ति, जीवन में स्थैर्य व समस्त पापों का क्षय तथा महामन्द भाग्य वालों को भी सिद्धि की प्राप्ति करवाने में सक्षम है। नित्याषोडशिकार्णव मत के तृतीय पटल के अन्तर्गत मुद्रा के आध्यात्मिक पहलू को अभिव्यक्त करते हुए बताया गया है कि- *श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि मुद्रा: सर्वार्थसिद्धिदा। याभिविरचिताभिस्तु सम्मुखात्रिपुरा भवेद्।।54।।* अर्थात् मुद्रा वह योग साधना है जो कि समस्त सिद्धियाँ प्रदान करती है तथा मुद्रा को प्रयोग में लाने पर भगवती त्रिपुरा प्रसन्न होकर साधक के समक्ष उपस्थित हो जाती है। हठदीपिका में कहा गया है-सुषुम्ना के मुख के अग्रभाग में सोती हुई ईश्वरी कुण्डलिनी को जगाने के लिए साधक को मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए। तन्त्रालोक में देवीयामल के अनुसार- मुद्रा वह पद्धति है जिससे देवता भी द्रवित हो उठते हैं, मुद्राओं में परमात्मा या परा शक्ति का परस्वरूप प्रतिबिम्बित

रहता है (32.1-2) (मुद्राविज्ञान: एक परिचय से उद्धृत पृ. 43)।

इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि मुद्राओं का अभ्यासमोक्ष की उपलब्धि अथवा परमात्मा की प्राप्ति का एक माध्यम है। प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत शाम्भवी मुद्रा का अनुसंधान किया गया है।

शाम्भवी मुद्रा एक असाधारण क्रिया है। अत: महर्षि घेरण्ड ने इसे एक बड़े घर की बहू की उपमा दी है। इसके विपरीत वेद, पुराण एवं शास्त्रों को सर्वसाधारण स्त्री कहा है, क्योंकि इन्हें सभी जानते हैं व इनसे प्राय: सभी व्यक्तियों का परिचय है। इस प्रकार शाम्भवी मुद्रा वेद-पुराण-शास्त्र से उच्च स्थान रखती है। इस मुद्रा में व्यक्ति आत्मा रूपी ईश्वर का ध्यान करता है। अत: वह अपनी आत्मा का संयोग ब्रह्मा, विष्णु और महेश, तीनों देवों से करता है अर्थात् इन तीनों देवों के साथ वह एकाकार हो जाता है। महर्षि घेरण्ड ने शाम्भवी मुद्रा के अभ्यासी को भगवान शिव, नारायण और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा माना है। शाम्भवी मुद्रा का अभ्यासी 'शिव' होता है, 'नारायण' बन जाता है और 'ब्रह्मा' तुल्य हो जाता है। देवी शाम्भवी, अर्थात् पार्वती को सम्बोधित करते हुए भगवान शिव इस सत्य पर प्रकाश डालते हैं और इस बात की सत्यता पर जोर देते हैं कि शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास में पूर्णता प्राप्त व्यक्ति का अवतारीमाना जाता है। शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के लिए किसी सुविधाजनक आसन में बैठकर सिर एवं मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए हाथों को चिन् या ज्ञान मुद्रा में घुटनों के ऊपर रखते हैं। आँखों को बन्द करके पूरे शरीर को शिथिल बनाते हुए चेहरे की ललाट, आँखों एवं आँखों के पृष्ठ भाग की सम्पूर्ण मांसपेशियों को शिथिल करते हैं। तत्पश्चात् धीरे-से आँखें खोलकर सामने किसी बिन्दु पर दृष्टि को एकाग्र करते हैं। फिर दृष्टि को ऊपर की ओर ले जाकर भ्रूमध्य पर केन्द्रित करते हैं। जब सही विधि से इसका अभ्यास होता है तब दोनों भौंहों से नासिका मूल में 'V' की आकृति बनती है। यदि 'V' की आकृति दिखायी नहीं देती, तो इसका अर्थ है कि आँखें भ्रूमध्य की ओर उस प्रकार अभिमुख नहीं है, जिस प्रकार उन्हें होना चाहिए। इसके पश्चात् विचार प्रक्रिया को रोककर बन्द आँखों के सामने चिदाकाश में ध्यान करने का प्रयास करते हैं। गोरक्षसंहिता के अन्तर्गत गुरु गोरक्षनाथ जी कहते हैं- शाम्भवी मुद्रा केवल मुद्रा मात्र नहीं है वरन् यह शक्ति है, यह भगवतीस्वरूपा तो है ही साथ ही भगवान शिव से उत्पन्न भी हुई है; (मुद्राविज्ञान: एक परिचय से उद्धृत पृ.27)। शिवसंहिता में इसे गोपनीय, योगसिद्धिकर और सिद्धों का परम दुर्लभ योग कहा गया है। इस प्रकार शाम्भवी मुद्रा के महत्व को देखते हुए प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत तनाव के अध्ययन की एक प्रमुख विषय वस्तु है। मनुष्य जीवन यात्रा में परिवार समाज के साथ स्वयं जीवन के अस्तित्व को बचाने के लिये निरन्तर प्रयत्न करता रहा है। आज मनुष्य की आवश्यकता असीमित होती जा रही हैं परन्तु सीमित साधनों से मनुष्य अपनी असीमित आवश्यकताओं को पूरा करना चाहता है जो कि संभव नहीं है। परन्तु जब इन आवश्यकताओं की पूर्ति किन्हीं कारणों से बाधित होती है अर्थात् वह वांछित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता तो फिर तनाव उत्पन्न होता है। योग विद्या विशारदों ने प्राणों के पारस्परिक विरोध को तनाव की उत्पत्ति का कारण बताया है। प्राण ऊर्जा का असन्तुलन समूचे कार्यतन्त्र में अतिरिक्त गर्मी भर देता है एवं विचारों में उलझन उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार तनाव एवं प्राणशक्ति का असन्तुलन परस्पर पर्यायवाची बन जाते हैं। तनाव मनुष्य की मनोशारीरिक दशा है, यह मनुष्य में उत्तेजना व असन्तुलन उत्पन्न कर देता है। मनुष्य में जब तनाव की स्थिति बनी रहती है, तब मनुष्य कार्य तो करता है लेकिन वह मानसिक रूप से परेशान भी रहता है। इस प्रकार विभिन्न इच्छाएं, लक्ष्य की पूर्ति, अपमान, शारीरिक कमी अतिरिक्त कार्यभार आदि से तनाव उत्पन्न हो सकता है।

प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत मानव जीवन में उपस्थित अनेकानेक संघर्षों एवं चुनौतियों से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के तनाव एवं मनोदशाओं की अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है। विभिन्न साहित्यिक सर्वेक्षणों के विश्लेषण से यह तथ्य प्राप्त होते हैं कि यौगिक मुद्राओं एवं यौगिक अभ्यासों का सही ढ़ंग से किया गया प्रयोग अभ्यासकर्ता के तनाव को दूर कर शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सार्थक रूप से प्रभावित करता है। Parthasarathy, S. *et al.* (2020): ने अपने अध्ययन "Effect of Shambhavi Mahamudra and Pranayama Practice on Stress among Middle Aged Men" में कराईकुडी, तमिलनाडु, भारत से मध्यम आयु वर्ग के 30 पुरुषों का चयन किया जिनकी उम्र 35 से 45 के मध्य थी। चयनित प्रतिभागियों को दो समूहों (प्रयोगात्मक 15 एवं अप्रयोगात्मक 15) में बराबर बांटा गया। प्रयोगात्मक समूह के प्रतिभागियों को छ: सप्ताह तक प्रतिदिन शाम्भवी मुद्रा एवं प्राणायाम का अभ्यास कराया गया। इस अध्ययन का उद्देश्य शाम्भवी मुद्रा एवं प्राणायाम का तनाव पर पड़ने वाले प्रभाव को देखना था। छ: सप्ताह के पश्चात् प्री टेस्ट व पोस्ट टेस्ट के सांख्यकीय विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणामों से निष्कर्ष

निकलता है कि शाम्भवी मुद्रा एवं प्राणायाम का नियत्रंण समूहों की तुलना में प्रयोगात्मक समूह के पुरुषों के तनाव स्तर सार्थक प्रभाव पड़ता है। Kauts, A & Sharma, N (2012): ने शोध अध्ययन "Effect of Yoga on concentration and memory in relation to stress" में योग का प्रभाव विद्यार्थियों के एकाग्रता, स्मृति एवं तनाव स्तर पर देखा। इस अभ्यास में 800 विद्यार्थियों का चयन किया गया एवं उन्हें योग माड्यूल (आसन, प्राणायाम, शुद्धि क्रिया व ध्यान) का अभ्यास सात सप्ताह तक कराया गया। अन्ततः परीक्षण परिणाम के सांख्यकीय विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि आसन, प्राणायाम, शुद्धि क्रिया व ध्यान का प्रभाव एकाग्रता, स्मृति एवं तनाव पर सार्थक रूप से पड़ता है। अत: कहा जा सकता है कि योगाभ्यास विद्यार्थियों की एकाग्रता, रचनात्मकता, भावनात्मकता स्थिरता, स्मृति विकासक व उनके मनोशारीरिक तनाव को भी नियंत्रित रखता है। Yoshihara, K *et al.* (2014): ने अपने शोध "Effects of 12 week of Yoga training on the somatization, Psychological symptoms, and stress related biomarkers of healthy women" में 24 महिला प्रतिभागियों का चयन किया एवं उन्हें 12 सप्ताह तक योगाभ्यास कराया। इसके पश्चात् उनके कायिक एवं मनोवैज्ञानिक लक्षणों का विश्लेषण प्रयोग के पूर्व एवं पश्चात् किया गया। साथ ही उनके मूड स्टेट के स्तर एवं 8.0 HdG एबायोप्रिन तथा कॉर्टीसोल स्तर का भी मापन एवं विश्लेषण किया गया। परिणाम स्वरूप यह निष्कर्ष निकला की महिलाओं के कायिक समस्याओं, मनोरोगों एवं अन्य प्रकार की समस्याओं को दूर करने में योगाभ्यास का सार्थक प्रभाव पड़ता है। अत: कहा जा सकता है कि योगाभ्यास से महिलाओं के तनाव, अवसाद, चिंता, थकान, क्रोध को नियंत्रित किया जा सकता है एवं शरीर व मन में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। मुद्रा अनुसंधान मन, शरीर एवं समग्र अस्तित्व के भावपूर्ण समर्पण के साथ किया जाना चाहिए जिससे परिणाम स्वरूप अभ्यासकर्ता बाह्य अवरोधों से विमुख होकर आत्म अनुसंधान कर सके।

शोध उद्देश्य - प्रस्तुत शोध का उद्देश्य शाम्भवी मुद्रा का विद्यार्थियों के तनाव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।

शोधपरिकल्पना - प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत निम्न परिकल्पना का निर्माण किया गया है-

1. शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
2. शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों एवं शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के तनाव पर कोई अन्तर नहीं पड़ता।

प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्श चयन विधि

प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा 60 विद्यार्थियों (आयु 15 से 17 वर्ष) का चयन श्री जगद्देवसिंह संस्कृत महाविद्यालय एवं अजरानंद अजरधाम विद्यालय हरिद्वार से किया गया।

अनुसंधान अभिकल्प -प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत प्री-पोस्ट प्रयोगात्मक-अप्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प का उपयोग किया गया है। इस अभिकल्प के अन्तर्गत विद्यार्थियों को दो समूहों (प्रयोगात्मक 30 एवं अप्रयोगात्मक 30)में विभाजित करके प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक विधि का अभ्यास करवाया गया है तथा दोनों समूहों के आश्रित चर का अध्ययन प्रयोग प्रारम्भ करने से पूर्व एवं पश्चात् अवस्थाओं के प्राप्त आंकडों का विश्लेषण किया गया है।

प्रयुक्त परीक्षण- प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत तनाव के मापन हेतु डॉ. एम. सिंह के द्वारा निर्मित तनाव मापनी का उपयोग किया गया है। इस मापनी के अन्तर्गत तनाव का मापन अनिश्चितता और उत्तेजना के तहत, बहुत ज्यादा जानकारी, खतरा, अहंकार नियंत्रण विफलता, अहंकार, स्वाभिमान को खतरा, अन्य सम्मान खतरा पर किया गया है।

कार्य विधि- प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत प्रयोग प्रारम्भ करने से पूर्व सभी प्रयोज्यों के तनाव का मापन किया गया। इसके पश्चात् प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों को शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करवाया गया। शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास में अभ्यासकर्ता को सुबह खाली पेट सुविधानुसार आसन पर बैठाया जाता है। सिर एवं मेरूदण्ड को सीधा और हाथों को चिन् या ज्ञान मुद्रा में घुटनों के ऊपर रखवाकर बैठाया जाता है। चेहरे के ललाट को, आंखों एवं आंखों के पृष्ठ भाग की सम्पूर्ण मांसपेशियों को शिथिल रखने का निर्देश देकर, आंखों को अधखुली रखकर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर मन को आज्ञाचक्र पर एकाग्र करके मन को अर्न्तमुखी रखा जाता है। इस विधि का अभ्यास जब सही से होता है तब दोनों भौहों के मध्य नासिका मूल में 'V' की आकृति बनती है। प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों को यह अभ्यास 3 माह तक सप्ताह में 5 दिन नियमित रूप से 30 मिनट तक करवाया गया। तत्पश्चात् प्रयोगात्मक एवं अप्रयोगात्मक दोनों समूहों के विद्यार्थियों के तनाव का पुन:मापन करके प्राप्त प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण - प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत प्राप्त आंकडों का सांख्यिकीय विश्लेषण एस.पी.एस.एस. वर्जन 21 के द्वारा टी परीक्षण के माध्यम से किया गया है।

प्रयोगात्मक व अप्रयोगात्मकसमूह के विद्यार्थियों के तनाव का विश्लेषण–

Paired Samples Statistics

Pair	Mean	N	Std. Deviation	Std. Error Mean
1 Shambhvi Stress Pre	48.7667	30	5.02191	.91687
Shambhvi Stress Post	32.3000	30	8.77359	1.60183
2 Control Stress Pre	48.2667	30	6.51223	1.18897
Control Stress Post	51.3333	30	6.64018	1.21232

Table-2 Paired Samples Test

Group	Paired Differences					t	df	Sig. (2-tailed)
	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean	95% Confidence Interval of the Difference				
				Lower	Upper			
Experimental pre & post	16.46667	9.65878	1.76344	12.86002	20.07331	9.338	29	.000
Control pre & post	-3.06667	8.65401	1.58000	-6.29813	.16480	-1.941	29	.062

शोध में सम्मिलित विद्यार्थियों के प्रयोग पूर्व एवं प्रयोग पश्चात् अवस्थाओं के तनाव के आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों के प्रयोग पूर्व अवस्था के तनाव के आंकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन 48.76 ± 5.02 है तथा प्रयोग पश्चात् अवस्था के आंकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन 32.30 ± 8.77 है। इन दोनों प्रयोग पूर्व एवं प्रयोग पश्चात् अवस्थाओं के मध्यमानों की सार्थकता के अंतर के विश्लेषण में प्राप्तांकों का मध्यमान एवं मानक विचलन 16.46 ± 9.65 है जिसका t स्कोर 9.33 है जो कि .00 स्तर पर सार्थक अंतर है। अत: परिकल्पना– शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, निरस्त की जाती है और कहा जा सकता है कि शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

शोध में सम्मिलित अप्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों के प्रयोग पूर्व अवस्था में तनाव के आंकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन 48.26 ± 6.51 तथा पश्चात् अवस्था के 51.33 ± 6.64 है। इन दोनों प्रयोग पूर्व एवं प्रयोग पश्चात् अवस्थाओं के मध्यमानों की सार्थकता के अंतर के विश्लेषण में प्राप्तांको का मध्यमान एवं मानक विचलन -3.06 ± 8.65 प्राप्त हुआ जिसका t स्कोर -1.94 है जो कि .06 स्तर पर सार्थक अंतर नहीं है। अत: परिकल्पना– शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों एवं शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के तनाव में कोई अन्तर नहीं होगा, निरस्त की जाती है और कहा जा सकता है कि शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों के तथा शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के तनाव में सार्थक अन्तर पड़ता है। प्रस्तुत शोध के विश्लेषण यह तथ्य प्रदान करते हैं कि शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

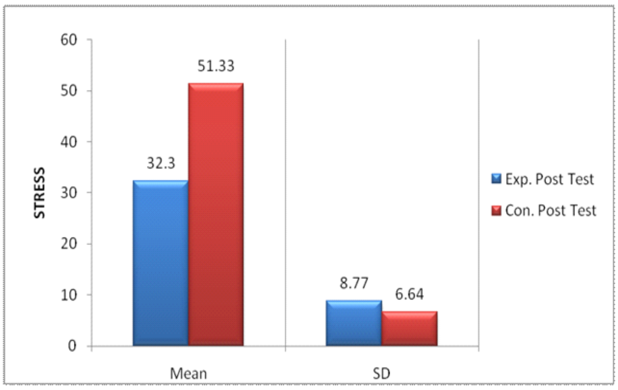

परिणामों की व्याख्या– योग का लक्ष्य मनुष्य की समस्त प्रतिभाओं एवं क्षमताओं का समरसता पूर्वक जागरण करना है। योगाभ्यास से अभ्यासकर्ता का सम्पूर्ण अस्तित्व प्रभावित होता है। प्रस्तुत शोध

में प्रयुक्त की गई विधि शाम्भवी मुद्रा दोनों भौहों के मध्य अर्थात् आज्ञाचक्र पर मन को केन्द्रित करने की एक साधना पद्धति है। इस शाम्भवी मुद्रा के नित्य अभ्यास से साधक की आध्यात्मिक उन्नति तो होती ही है वरन् शारीरिक एवं मानसिक लाभ भी प्राप्त होते हैं। Bharadwaj, I *et al.* (2013): ने अपने शोध अध्ययन "Effects of Yogic Intervention on Blood Pressure and Alpha EEG level of working women" में स्त्रियों के रक्तचाप एवं उनके मस्तिष्कीय कार्यक्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया। इस दौरान N=50 कामकाजी महिलाओं (25-39 वर्ष) को 45 दिनों तक योगाभ्यास कराया गया। परिणाम स्वरूप यह देखा गया कि यौगिक इन्टरवेन्शन का प्रभाव आश्रित चरों पर p<0-01 स्तर पर सार्थक रूप से पड़ा। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि योगाभ्यास महिलाओं के रक्तचाप को तो नियंत्रित रखता ही है साथ ही साथ उनके मस्तिष्कीय क्षमता की भी अभिवृद्धि करता है। Amit (2003): ने अपने शोध अध्ययन "Effect of yoga training on academic stress and achievement of secondary student" में योगाभ्यास का प्रभाव विद्यार्थियों के शैक्षिक तनाव एवं शैक्षिक उपलब्धि में देखा एवं पाया की योगाभ्यास करने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक वृद्धि होती है। साथ ही विद्यार्थियों के शैक्षिक तनाव में सकारात्मक रूप से कमी देखी गई जो की उनके शैक्षिक उपलब्धि को अत्यधिक प्रभावित करता है। जिसके फलस्वरूप वे परिस्थितियों के साथ अच्छे ढंग से सामायोजन कर सकने में समर्थ हुए। Tyagi, N (2014): ने अपने अध्ययन "Management of Stress & Frustration-Cause &Remedies" में योग के महत्वपूर्ण अभ्यासों अर्थात् आसन, प्राणायाम, त्राटक, ध्यान के माध्यम से व्यक्ति के मनोरोगों जैसे कि तनाव व अवसाद का प्रबंधन आसानी से करना सिखाया है। शोध से यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि इन योगाभ्यासों की तकनीकों से मानसिक ऊर्जा में वृद्धि भी संभव है एवं उसकी कार्यक्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार यौगिक शोध अध्ययनों के अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यौगिक ध्यान एवं मुद्राएं विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी है। इनके अभ्यास से विद्यार्थी तनाव मुक्त होकर शैक्षिक उपलब्धियों को प्राप्त कर सकता है व स्वस्थ जीवन यापन कर सकता है। अत: कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के चिंताव तनाव स्तर को कम करने एवं एकाग्रता व उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास अन्य अभ्यासों की तुलना में सर्वाधिक प्रभावशाली है।

शोध निष्कर्ष -प्रस्तुत शोध के परिणामों से यह स्पष्ट है कि शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का विद्यार्थियों के तनाव पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मुद्रा अनुसंधान योग के तंत्र विधान का एक मार्ग है जिसका महत्व सनातन एवं बौद्ध धर्म के दार्शनिकों तथा तांत्रिकों ने एकमत होकर स्वीकार किया है तथा इसके अनुसंधान के सन्दर्भ में प्रचुर मात्रा में साहित्य एवं क्रियात्मक प्रयोग मानव समाज के उत्थान के लिए प्रदान किया। इन्हीं में से एक शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास का तनाव पर प्रभावशीलता का अध्ययन प्रस्तुत शोध की प्रासंगिकता को प्रबल सहयोग प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गौतम चमनलाल (2018). शिव संहिता। संस्कृत संस्थान ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली।
2. गौतम चमनलाल (2018). गोरक्ष संहिता। संस्कृत संस्थान ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली।
3. द्विवेदीश्यामाकान्त(2014).मुद्रा विज्ञान एवं साधना: नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सर्वांगपूर्ण विवेचन, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन।
4. स्वामी दिगम्बर जी एवं झा पीताम्बर (2011). हठप्रदीपिका। कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति लोनावला (पुणे)।
5. सरस्वती स्वामी निरंजनानन्द (2011).घेरण्ड संहिता।योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
6. **Amit (2003).** Effect of yoga training on academic stress and achievement of secondary student. Unpublished thesis M.Ed. Diss., P. U., Chandigarh.
7. **Bharadwaj, I, Kulshrestha A & Anuja (2013).**Effects of Yogic Intervention on Blood Pressure and Alpha EEG level of working women", Indian Journal of Traditional Knowledge, 12(3): 542-546.
8. **Hamley, D. K (1980).** *Overcoming Tension.* New York : Harper & Row.
9. **Kauts, A., & Sharma, N. (2012).** Effect of yoga on concentration and memory in relation to stress. *ZENITH international journal of multidisciplinary research*, *2*(5), 1-14.
10. **Parthasarathy, S., Dhanaraj, S., Alaguraja, K., & Selvakumar, K. (2020**). Effect of Shambhavi Mahamudra and Pranayama Practice on Stress among Middle Aged Men. *Indian Journal of Public Health Research & Development*, *11*(6).
11. **Tyagi, N (2014).** Management of Stress & Frustration-Cause & Remedies", International Journal of education and Science Research Review, 1(3) : 44-50.
12. **Yoshihara, K., Hiramoto, T., Oka, T., Kubo, C., & Sudo, N. (2014).** Effect of 12 weeks of yoga training on the somatization, psychological symptoms, and stress-related biomarkers of healthy women. *BioPsychoSocial medicine*, *8*(1), 1.

ISSN 2278 - 0327

टोडरशाह : गोंड रियासत मकड़ाई के अंतिम शासक

डॉ. बी.सी. जोशी
शोध निर्देशक, प्राध्यापक एवं विभाग प्रमुख
शासकीय नर्मदा महाविद्यालय होशंगाबाद

श्रीमति दीपशिखा चौधरी
शोधार्थी, एम.ए. इतिहास
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल

सारांश– प्रस्तुत शोध पत्र मकड़ाई रियासत के अंतिम शासक श्री टोडरशाह जी के जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है। विभिन्न पांडूलिपियों के अध्ययन के पश्चात् हम यह कहने में समर्थ कि टोडरशाह का शासन काल अपने आप ही अंतिम शासन नहीं बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व भर में हुए परिवर्तन, भारत के आमजन में आयी जागरूकता और अंग्रेजी शासन की अति ने भारत को स्वतंत्र होने के लिए प्रेरित किया और रियासतों का भी अंत हो गया।

टोडरशाह अंतिम राजा के रूप में भारत के संविलियन बैठक में शामिल हुए और अपने हस्ताक्षर कर भारत में शामिल हो गए। अधिकारिक रूप से 1948 तक मकड़ाई रियासत के राजा रहे फिर वर्ष 1971 तक भारत सरकार की प्रिवीपर्स के रूप सालाना 25000 की पेंशन पाते रहे। वर्ष 1885 में आपका निधन हो गया। आप अपने पीछे तीन बेटे छोड़ गये थे, जो स्वयं एवं उनके बाद, उनके वंशज वर्तमान विभिन्न सामाजिक कार्यों, प्रशासनिक सेवाओं एवं भारतीय राजनीति में योगदान दे रहे हैं।

भूमिका– 1526 से शुरू हो लगातार पाँच सौ वर्षों तक अस्तित्व में रहने वाली सतपुड़ा की उपत्यका में बसी मकड़ाई रियासत का इतिहास अलिखित रहा। आज के मकड़ाई जो कि हरदा जिले का एक छोटा सा गाँव है, को देखकर उसके प्राचीन वैभव का संकेत बमुश्किल ही लगा सकते हैं। राजगोंड शासकों की यह रियासत करकटराय से शुरू हो टोडरशाह के अंतिम शासक के रूप में वर्ष 1948 में समाप्त हुई। तब यह रियासत उत्तर में घोड़ागाँव से लेकर दक्षिण में गोलखेड़ा तक और पूर्व में माचक नदी से लेकर पश्चिम में छीपावड़, चारूवा तक फैली इस रियासत का दक्षिणी भाग सघन वनों से ढका था। जिसका कुल क्षेत्रफल तत्कालीन परिस्थितियों में 502 वर्ग किलोमीटर था और 89 गाँव इसमें शामिल थे। कभी इसका मुख्यालय कालीभीत हुआ करता था पर बाद में मकरन्दशाह द्वारा इसे मकड़ाई कर लिया गया।[1]

टोडरशाह: गोंड रियासत मकड़ाई के अंतिम शासक

1526 में गढ़ा मंडला के संग्रामसिंह से पुरस्कार स्वरूप मिले गढ़ को करकटराय या महाराज सिंह, जो कि चंद्रपुर के मूल निवासी थे, ने मकड़ाई रियासत की स्थापना की। करकटराय से शुरू हो टोडरशाह तक कुल 17 शासकों [2] ने मकड़ाई पर शासन किया। टोडरशाह जो कि राजा फतहशाह के पुत्र[3] और द्वितीय अंतिम शासक दृगपालशाह के भतीजे थे। इनका जन्म वर्ष 1908, 20 मार्च को हुआ था।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा समाप्त करने के पश्चात्, इनका विवाह पत्तारा के जागीरदार की बेटी उमाकुमारी से हुआ था। जो कि आज के सागर जिले में स्थित है। वर्ष 17 अप्रैल 1929 ई. को दृगपालशाह के निधन के पश्चात्, चूंकि वह नि:संतान थे, इसलिए टोडरशाह जो कि उनके भतीजे थे, को उनका उत्तराधिकारी मान राजसिंहासन पर बैठाया गया। जिस समय वह राजसिंहासन पर बैठे तब उनकी आयु 21 वर्ष थी। वैसे इनको शासन का पूर्ण अधिकार 23 अप्रैल 1932 ई. को मिला।[4]

उधर अंग्रेजों के खिलाफ बागवत, युद्ध होते रहे तो उन्नीस वीं सदी काफी मुखर हो बाहर निकली। चूंकि भारत लगभग 565 छोटी बड़ी रियासतों [5] में बंटा हुआ था। अत: अंग्रेजों को ये आसान रहा कि उनके बीच फूट डालों और राज करो। इसी बीच उन्होंने फूट डाल डालकर अपना उल्लू सीधा किया। अट्ठारहवीं सदी में छुट पुट युद्ध अंग्रेजों के खिलाफ उपरोक्त रियासतों में होते रहे।

इनके शासन के इस काल में भी समान घटनाएं होती रही, क्योंकि स्वंत्रता के आंदोलन पूरे भारत वर्ष में चल रहे थे और मध्यभारत भी इससे अछूता न था। हर हिन्दुस्तानी के मन में स्वंतत्रता की लौ जल रही थी, किंतु इस रियासत में यह अधिक न थी, क्योंकि यह अंग्रेज संरक्षित रियासत थी।

ब्रिटेन में मजदूर पार्टी की जीत के बाद एक मंत्री परिषद जिसमें तीन सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स तथा ए.बी.अलेक्जेण्डर थे, को 19 फरवरी 1946 को गठित किया जो कि मार्च 1946 में दिल्ली पहुँचा। इसका मुख्य कार्य भारत की आजादी की सभी संभावनाओं ने देखना था।

इग्लैंड में मजदूर पार्टी की आम चुनाव में विजय से भारत

की आजादी की संभावनाओं को बल मिला चूँकि मजदूर पार्टी ने अपने घोषणा पत्र में भारत को आजादी का जिक्र किया था, और हुआ भी वहीं, ब्रिटेन में मजदूर पार्टी की जीत के बाद एक मंत्री परिषद जिसमें तीन सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स तथा ए.बी.अलेक्जेण्डर को शामिल कर, 19 फरवरी 1946 को एक समिति का गठन किया। और भारत भेजा, मार्च 1946 में यह समिति दिल्ली पहुँची। इसका मुख्य कार्य भारत की आजादी की सभी संभावनाओं ने देखना था।

यह समिति जहां, भारत की आजादी के विषय पर कार्य कर रही थी। वहीं भारत वर्ष के राजा महाराजा, नवाब, प्रिंसेस, इस बात से भयभीत थे कि आजाद भारत में उनका भविष्य क्या होगा। चूँकि भोपाल नवाब प्रिंसेस चैम्बर के मुखिया थे अत: इन्होनें पूर्व में ही अंग्रेजों ने अपनी समिति की तरफ से बार-बार आग्रह करते हुए कहा कि वह रियासतों की स्वायत्तता पर ध्यान दे उन्हें किसी संघीय शासन का हिस्सा बनने को बाध्य न किया जाये।

1946 में जब केबिनेट मिशन[6] भारत आया तब नवाब भोपाल ने कमेटी सदस्यों एवं वॉयसराय के समक्ष राजा महाराजाओं का पक्ष रखा। और अपनी स्वायत्तता एवं भारत राज्य के शासन के हस्तक्षेप से उनको अलग रखने को कहा।

सन् 1947 में स्वतंत्रता के पूर्व भारत लगभग 565 स्वतंत्र रियासतों में बंटा हुआ था। जुलाई 1947 में सरदार वल्लभ भाई पटेल ने भारतीय संघ में उनके संविलियन का निर्णय करने के लिए दिल्ली में रियासतों के शासकों का एक सम्मेलन बुलाया। जिसमें टोडरशाह भी शामिल हुए। सरदार पटेल ने इन 565 देशी रियासतों जिसमें मकड़ाई भी शामिल थी, को भारत में मिलाकर भारत में एक सूत्र में बांधा और भारत को मौजूदा स्वरूप दिया सरदार पटेल एक कुशल प्रशासक होने के कारण कृतज्ञ राष्ट्र उन्हे लौह पुरूष के रूप में भी याद करता है।

सरदार पटेल तब अंतरिम सरकार में उपप्रधानमंत्री के साथ देश के गृहमंत्री भी थे जूनागढ़, हैदराबाद, कश्मीर और भोपाल को छोड़ 562 रियासतों ने स्वेच्छा से भारतीय परिसंघ में शामिल होने की लिखित स्वीकृति प्रदान कर दी थी।[7]

जिन्होनें थोड़ी आनाक़ानी की तो साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनाते हुए सरदार पटेल ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिये।

भोपाल रियासत को छोड़ 22 अप्रैल 1948 तक मध्यभारत के कुल 22 राज्य और 3 रजवाड़ों ने दिल्ली में विलय संधि पर हस्ताक्षर कर दिए इस मध्यभारत (पार्ट-बी राज्य) नाम का एक नया राज्य बना।[8] जिसका उद्घाटन 28 मई 1948 को हुआ।

1948 ई. में भारत की रियासत का विलय होने तक टोडरशाह मकड़ाई के सम्राट थे। विलय के समय मकड़ाई का कुल आकार 502 वर्ग किलोमीटर और 89 गांव का था। पुनासा और कालीभीत मकड़ाई रियासत के दो गढ़ थे।[9] विलय के बाद इस रियासत के प्रिवीपर्स को सालाना 25 हजार रुपये तय किए गए थे।[10] 1985 ई. में टोडरशाह की और 1997 ई. में उमाकुमारी की मृत्यु हो गई। 1971 ईस्वी के बाद से, भारत सरकार ने प्रिवीपर्स जारी करना बंद कर दिया है, और सभी भारतीय रियासतों के राजाओं को औपचारिक भूमिकाओं तक सीमित कर दिया गया है। 1948 के दौरान के.एम. खान के स्थान पर मोतीराम मुजमेर, टी.जी. मातंगे, और बी बी सक्सेना रियासत के दीवान के रूप में कार्यरत थे।[11]

उपसंहार -टोडरशाह का शासन काल अपने आप ही अंतिम शासन नहीं बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व भर में हुए परिर्वतन, भारत के आमजनों में आयी जागरूकता और अंग्रेजी शासन की अति ने भारत को स्वतंत्र होने के लिए प्रेरित किया।

पूर्व की ओर रूख करते है तो पाते है कि, भारत में होने वाले बाहरी हमलों में पहले मुस्लिम आये, पर धीरे धीरे वह भारत की जमीं पर रच बस गये हमने उन्हें आत्मसात् कर लिया, किन्तु जब अंग्रेज आये तो उनकी मंशा ही साफ थी, केवल व्यापार, केवल लूटपाट और इसके अलावा उनका अन्य कोई ध्येय नहीं था। सो उन्हें हम व्यापार करने का जरिया रहे और हमें वह हमारी संस्कृति में न समाहित होने वाले दुश्मन।

टोडरशाह अंतिम राजा के रूप में भारत के संविलियन बैठक में शामिल हुए और अपने हस्ताक्षर कर भारत में शामिल हो गए। अधिकारिक रूप से 1948 तक मकड़ाई रियासत के राजा रहे फिर वर्ष 1971 तक भारत सरकार की प्रिवीपर्स के रूप सालाना 25000 की पेंशन पाते रहे। वर्ष 1985 में आपका निधन हो गया। आप अपने पीछे तीन बेटे छोड़ गये थे, जो स्वयं एवं उनके बाद, आप के वंशज वर्तमान में विभिन्न सामाजिक कार्यों, प्रशासनिक सेवाओं एवं भारतीय राजनीति में योगदान दे रहे है।

पाद टिप्पणी

1. मध्यप्रदेश के गोंड राज्य पृ 161
2. गोंड रियासत मकड़ाई पृ 46
3. मध्यप्रदेश के गोंड राज्य पृ 166
4. मध्यप्रदेश के गोंड राज्य पृ 166
5. भार्गव, आर.पी. (1991), द चेंबर ऑफ प्रिंसेस, नॉर्दर्न बुक सेंटर, पृ 312-323, आईएसबीएन 978-81-7211-005-5
6. इयान टैलबोट; गुरहरपाल सिंह (14 जुलाई 2009) भारत का विभाजन कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ 40. आईएसबीएन 978-0-521-85661-4
7. मार्कोविट्स, क्लाउड (2004): आधुनिक भारत का इतिहास, 1480-1950 गान प्रेस. पृ 386-409. आईएसबीएन 9781843310044
8. फरबर, होल्डन 'भारत का एकीकरण, 1947-1951', वॉल्यूम-24, न. 4, पैसिफिक अफेयर्स, यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया, 1951, पृ 352-71,
9. मध्यप्रदेश के गोंड राज्य पृ 167
10. गोंड रियासत मकड़ाई पृ 33
11. गोंड रियासत मकड़ाई पृ 33

ISSN 2278 - 0327

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 'यज्ञ द्वारा' पर्यावरण समीक्षा

मिथलेश झा
आचार्य, बी.एड, शोधार्थी
संस्कृत विभाग, पेट-19
मानविकी संकाय, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

महाकवि कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक में नान्दी पाठ मंगलाचरण में ही पर्यावरण का अति शुन्दर वर्णन किया है।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या बहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्याक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टभिरीशः।। अ०श्लो०,1

अन्वयः- या स्त्रष्टुः आद्या सृष्टिः, या विधहुतं हविः (देवान्) वहति, या च होत्री, ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या विश्वं व्याप्य स्थिता, यं सर्वबीज- प्रकृतिः इति आहुः, यया प्राणिनः प्राणवन्तः (सन्ति) ताभिः प्रत्यक्षामि अष्टाभिः तनुभिः प्रपन्नः ईशः वः अवतु।

शब्दार्थः- या = जो, स्त्रष्टुः = विधाता की, आद्या = पहली, सृष्टिः = रचना (है), या = जो, विधिहुतं = विधिपूर्वक हवन की गयी, हवि = हवि को (देवताओं के पास), वहति = पहूँचाती है, च = और , या = जो, होत्री = हवन करने वाली है, या = जो, द्वे = दो, कालं = समय का, विधत्तः = विधान करती है, श्रुतिविषयगुण = श्रवणेन्द्रिय के विषयभूत (शब्द) गुणवाली, या = जो, विश्वं = सम्पूर्ण विश्व को, व्याप्त करके, स्थिता = स्थित है, यां = जिसको, सर्वबीजप्रकृतिः = समस्त बीजों का करण, इति = ऐसा, अहुः = 'विद्वज्जन' कहते हैं, यया = जिसके द्वारा, प्राणिनः = प्राणी, प्रणवन्तः = प्राणों (अर्थात् जीवन) से युक्त है, ताभिः = उन, प्रत्यक्षाभिः = प्रत्यक्ष, अष्टाभिः = आठ, तनुभिः = मूर्तियों से, प्रपन्नः = युक्त, ईशः = भगवान् शंकर, वः = आप 'समाजिकों' की, अवतु = रक्षा करें।।

प्रथम पाठ मंगलाचरण में महाकवि कालिदास प्रकृति पर्यावरण का अनोखा चित्रण करते हुए -

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्याच होत्री,

ये मंगलाचरण के प्रथम चरण में ही विधिहुतं शब्द का प्रयोग किया गया है अर्थात् विधिपूर्वक किया गया हवि-हवन आज हम सब पर्यावरण संरक्षण, वायु शोधन का कितना प्रयास कर रहें है। कितने सारे योजना निकाल रहे है। पाठ्यक्रम में भी पर्यावरण को अति महत्ता दिया गया है। फिर भी वायु शोधन कार्य जस के तस है, कभी कम तो कभी उपर, हमारे पूर्वजों महापुरूषों ऋषि मुनियों ने अपने तपस्या से अनेक प्रकार से वायु शोधन करते थे, तपस्या करने के लिए उन्हें हवन करना पड़ता था, किसी भी कार्य यज्ञ द्वारा सिद्ध करने के लिए यज्ञ के पश्चात् हवन करना पड़ता है, कहते है अगर यज्ञ के पश्चात् हवन न हुआ तो उसका फल नहीं मिलता, इसलिए यज्ञ या उपासना के पश्चात् दशांश हवन करने का विधान है। हवन में जो उपासना कर्त्ता हवन डालते हैं वही देवताओं का भोजन है। अर्थात् हवन देवताओं का भोजन हुआ और हवन कुण्ड देवताओं का मुख। किसी भी पूजा में सब देवों का आवाहन होता है अगर उनको भोजन न कराया जाय तो उसकी पूजा निष्फल मानी जाएगी अर्थात् उसका कोई मतलब नहीं है। कोई भी उपासना करने के पश्चात् हवन करना अनिवार्य है। शास्त्र-पुराणों में काहा गया है कि अगर आप कोई भी उपासना कार्य सिद्धि के लिए करते हैं तो उसके पश्चात् दशांश हवन कराना चहिए, दशांश अर्थात् दशवाँ भाग।

उसी हवन का यहाँ महाकवि कालिदास जी ने प्रकृति को कैसे हमें स्वच्छ हवा प्रदान करती है प्रकृति की देन ही है जिनके गोद में हमें अपार सुख मिलते हैं, जिनके गोद में आने मात्र से प्राणि जीव निर्भीक निश्चछन्द महसूस करते है, सो जाते हैं, इसी प्रकार-

भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान के मूल आधार यज्ञ व गायत्री हैं। वेद हमारे ज्ञान का स्रोत रहे हैं, वेद के विषय पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि वेद का मुख्य केन्द्रबिन्दु यज्ञ ही रहा है। प्राचीनकाल से ही यज्ञ की महिमा का गुणगान विभिन्न वैदिक वाङ्मय ने किया है। वेदों के मंत्रों से यज्ञ के स्वरूप व महिमा गुंजित होती है। यज्ञ द्वारा उने लाभ प्राप्त किये जाते रहे हैं, भौतिक स्तर, आध्यात्मिक स्तर अथवा राष्ट्रीय स्तर की समस्याएँ हो, स्वास्थ्य संबंधी किसी भी रोग से ग्रसित हो, सभी में यज्ञ का प्रत्यक्ष लाभ हो सकता है। यज्ञ केवल कर्मकाण्ड तक ही नहीं अपितु जीवन दर्शन तक विस्तृत है, यज्ञ से हमें श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा भी मिलती है। इन सभी तथ्यों का वर्णन वेदों में किया है, किन्तु वर्तमान में हम इन वैदिक ज्ञान से पूर्णरूप से भिज्ञ नहीं है अतः आवश्यकता है कि हम वैदिक ज्ञान में निहित यज्ञ के स्वरूप से भलिभाँति परिचित हों।

भारतीय धर्म यज्ञ को पिता व गायत्री को माता की संज्ञा दी

गई है। सभी भारतीय संस्कृति के आधाररूप हैं। चाहे प्रयोजन कोई भी हो, किसी भी प्रकार के अभीष्ट की प्राप्ति करनी हो सभी का मूल यज्ञ ही रहा है, आत्मासाक्षात्कार, स्वर्गप्राप्ति, बंधन मुक्ति, पाप-प्रायश्चित्त, आत्मबल संवर्द्धन हो या फिर सर्वार्थ ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति हो, स्वास्थ्यलाभ हो, भौतिक उन्नति का ही क्षेत्र क्यों न हो, सभी की प्राप्ति यज्ञ द्वारा संभव है। प्राचीन ऐतिहासिक धरोहर के रूप में यज्ञ की अपनी विशिष्ट महत्ता है जिसके माध्यम से ऋषिगण विभिन्न विभिन्न प्रकार के भौतिक व आध्यात्मिक स्तर के परिणाम प्राप्त करते रहे हैं। आयुर्वेद के ग्रंथों में तो यहाँ तक कहा गया है कि जिन्हें आरोग्य लाभ की इच्छा हो उन्हें विधिवत् हवन करना चाहिए। इसी प्रकार मन, बुद्धि के शुद्धिकरण करने की तथा वातावरण परिशोधन करने की भी यज्ञ में अपूर्व शक्ति है।

संम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में यज्ञ का विशद वर्णन मिलता है। वेद, उपनिषद, स्मृति, ब्राह्मण, संहिता, पुराण, महाभारत, रामायण आदि सभी शास्त्रों में यज्ञ का विस्तृत वर्णन मिलता है। गीता में यज्ञ को आवश्यक कृत्य बताया गया है। यज्ञ को मानव जीवन में यज्ञीय कर्म के रूप में अपनाने का निर्देश दिया गया है। राजा दशरथ को यज्ञ के द्वारा ही चार पुत्र प्राप्त हुए थे। यज्ञ द्वारा ही धन, सौभाग्य, वैभव, दीर्घायु, यश, कीर्ति, तथा अनेक अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति होती है। यज्ञ में केवल आत्मिक प्रगति नहीं अपितु राष्ट्र की प्रगति भी निहित है। यज्ञ द्वारा आसपास के वातावरण का भी शोधन होता है जिससे अनेक रोगों का शमन होता है।

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हि सी:।
नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्तवाय सुवीर्याय।

यजुर्वेद 2 की एक इस प्रार्थना में कहा गया है कि हे यज्ञ आप निश्चित ही कल्याणकारी हैं। साक्षात् परमेश्वर ही आपके पिता हैं, आपको नमस्कार है। आप हमें दीर्घायु, उत्तम अन्न, ऐश्वर्य समृद्धि, प्रजनन शक्ति, बल व पराक्रम दें। हम आहवान पूजन करते हैं।

इसी तरह की प्रार्थना यजुर्वेद में अन्यत्र भी उल्लेखित है। यज्ञ से हमें अन्न सम्पदा, ऐश्वर्य, पुरूषार्थ, प्रबन्ध क्षमता, बुद्धि कौशल, निर्णय क्षमता, कर्तव्य परायणता, यश सम्पदा, श्रवण शक्ति, आत्मशक्ति की प्राप्ति हो। इसी प्रकार अन्यत्र ग्रन्थों में देवताओं की प्रसन्नता हेतु भी यज्ञ से प्रार्थना की गई है। देवताओं की कृपा मात्र मनुष्य अनेक सिद्धियों को हस्तगत कर सकता है। मानव ही नहीं दानवों ने भी अभीष्ट की प्राप्ति हेतु यज्ञाग्नि से ही प्रार्थना की थी।

वेद ज्ञान के आधार रूप है। वेद में विश्व का ज्ञान समाहित है। वेद का अर्थ है ज्ञान। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, तथा अथर्ववेद इन चारों वेदों में यज्ञ, धर्म, कर्म, भक्ति, ज्ञान, योग साधना, बंधन-मुक्ति, स्वर्ग प्राप्ति व आत्मसाक्षात्कार आदि अनेकों गूढ़ विषय वर्णित हैं। यजुर्वेद का मुख्य विषय यज्ञ है। वेदों में यत्र-तत्र विभिन्न प्रार्थनाओं के रूप में यज्ञ देव की महिमा का उल्लेख प्राप्त होता हैं। किसी भी प्रकार की कामना है, आत्मिक प्रगति, भौतिक प्रगति तथा विश्व के कल्याण की भावना है, सभी की उपलब्धि यज्ञ द्वारा निश्चय ही होती थी। अत: यज्ञ को जीवन का अभिन्न अंग मानते हुए उसकी नियमित उपासना की जानी चाहिए। निश्चित ही यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म माना जाता रहा है।

यज्ञ का अर्थ – यज्ञ शब्द की अत्पत्ति यज् धातु से हुई है। यजुर्वेद हिन्दू धर्म का एक पवित्र व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है और चारों वेदों में से एक है। इस वेद में यज्ञ के समय में उच्चारित किए जाने वाले मंत्रों को युजस् कहा जाता है। युजस् के नाम पर ही इस वेद को सुजस्-वेद-यजुर्वेद कहा गया है। यज् अर्थात् समर्पण। पदार्थ जैसे- ईंधन, घी आदि, कर्म जैसे- सेवा, तर्पण आदि, के हवन को यजन यानि समर्पण की क्रिया बताया गया है। सम्पूर्ण लोक यज्ञ की धूरी पर अवलम्बित है अत: यज्ञ को इस लोक का केंद्र कहा गया है।

वैदिक यज्ञ व्यापक अर्थो का वाचक हैं ऋग्वेद के पुरुषसूक्त 10-19 में वर्णित है कि यज्ञमय परमात्मा ही संसार की उत्पत्ति का मूल है। शर्मा, 8 के शब्दों में यज्ञ का अर्थ त्याग, बलिदान और शुभकर्म है। शारीरिक व मानसिक रोगों, आत्मिक विकृतियों का उपचार, साथ वातावरण संशोधन, सत्रवना का विस्तार वनस्पति संवर्द्धन जैसे बहु आयामी पक्ष यज्ञ शब्द की सार्थकता को सिद्ध करते हैं। गीता 10, में यज्ञ का तात्पर्य मनुष्य को बंधन से मुक्त कराने वाले कर्मों के रूप में बताया गया है। पालीवाल 11, के अनुसार यज्ञ: चेतना जगाति अर्थात् यज्ञ मनुष्य के अंदर चेतनता जगाती है। जिस प्रकार क्षुधित बालक माता की यथायोग्य उपासना करते हैं उसी प्रकार से सभी प्राणी अग्निहोत्र की उपासना करते हैं।

वेदों में यज्ञ का स्वरूप व महत्ता – वेद भरतीय ज्ञानगंगा के उत्सव हैं। वेद अर्थात् ऐसा दीप्तिपुंज, जो अपने दिव्यप्रकाश से स्वयं ही भासित है और जिसके माध्यम से सभी भारतीय वाड्मय प्रकाशित हैं। वेद सम्पूर्ण वाङ्मय का बोधन शब्द है। त्रिपदा गायत्री में तीन पदों के रूप में वेदेत्रयी ऋग, साम और यजुर्वेद को माना गया है। इन्हीं का प्रतिपादन विभिन्न रूपों में सभी शास्त्रों में किया गया है, ज्ञान, भक्ति व कर्म की त्रिविध धाराएँ, सत्, चित्, आनंद की स्थिति, इन सभी का वर्णन वैदिक ज्ञान में निहित है। शास्त्री (14) के मत में वैदिक ऋषियों ने आत्मतत्व को पहचाना एवं वैदिक साहित्य का प्रधान विषय यज्ञ को ही बताया।

वेद शब्द की निष्पत्ति ''विद् ज्ञान'' धातु से हुई है। इस प्रकार वेद का शाब्दिक अर्थ है- ज्ञान का भण्डार। वैदिक ज्ञान का मुख्य विषय यज्ञ है। यज्ञ ही ऐसा माध्यम है जिससे ज्ञान की अनेकों धाराएँ प्रवाहित होती है। ऐसा कहा जा सकता है कि यज्ञ में ही पूरे विश्व ब्रह्माण्ड का ज्ञान समाहित है।

मानव जीवन में यज्ञ की महत्ता का प्रतिपादन वैदिक सन्दर्भ में निम्नांकित विन्दुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. शुभ व मंगलकर्त्ता, कल्याण कर्ता– यज्ञ एक शुभ कृत्य है अत: किसी भी कार्य के पूर्व यज्ञ का विधान भारतीय संस्कृति में एक मांगलिक कर्म के स्वरूप में बताया गया गया है जिसमें सभी प्रकार का मंगल निहित होता है।

2. सर्वकामना की प्राप्ति– यजुर्वेद (16) की ऋचा में कहा है कि हे यज्ञ देव आप को नमस्कार है, आप स्वयंभू परमेश्वर के पुत्र हैं आप हमारी रक्षा करें, हमें बल पराक्रम और शक्ति प्रदान करें, दीर्घ आयु, उत्तम अन्न, श्रेष्ट पुत्र, प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य समृद्धि दें, इस हेतु हम आपकी आराधना करते हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद में अन्यत्र भी यज्ञाग्रि से प्रार्थना की गई है कि– हे यज्ञ तुम पृथ्वी को सींचने वाले हो अर्थात् आपसे ही समस्त पृथ्वीवासियों का सर्वांगीण विकास होता है। देवताओं को भी सुख प्रदान करने वाले हो। आप ही सभी प्रकार से रक्षा करने वाले हो, अत: हम आपकी उपासना करते हैं (17)।

3. धन, ऐश्वर्य एवं बलप्रदायक– यज्ञ का सेवन करने वाला व्यक्ति अपने संसाधनों का विकास कर यश वैभव में वृद्धि कर सकता है। इस प्रकार की प्रार्थना का उल्लेख यजुर्वेद (18) मंत्रों में मिलता है– हे यज्ञाग्रे आपको हम आदित्य यज्ञ, वसुयज्ञ एवं रूद्र यज्ञ के द्वारा बारम्बार प्रदीप्त करें। आप ऐश्वर्य को प्राप्ति कराने वाले हैं इन यज्ञों से आप हमारी कामना पूर्ण करो। गार्हपत्य अग्नि आप पोषण करने वाले हैं, प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अत: हे गृहपति अग्निदेव आप हमें सभी प्रकार के ऐश्वर्य, यश एवं बल प्रदान करें 19 ऋग्वेद की ऋचा में वर्णित है कि अग्निदेव, आपको अहुति द्वारा हम प्रसन्न करके पुष्टि, कीर्ति, वीरत्व, ऐश्वर्य की प्राप्ति करें।

4. प्राण, अपान की बकता की प्राप्ति– यज्ञ का साधन करने से रूर्जा का अर्द्धगमन होता है जिससे प्राण अपान की एकता स्थापित होती है। इसका उल्लेख वेदों में इस प्रकार है–यज्ञ की अग्नि का प्रकाश प्राण से अपान तक फैलाता है। यह यज्ञीय प्रभाव भौतिक लाभ ही नहीं आंतरिक स्तर तक होता है। आतंरिक स्तर पर प्राण व अपान में एकत्व होने के कारण दिव्य लोक गमन का मार्ग प्रशस्त होने लगता है (21)।

5. वृष्टिकारक, अन्न, औषधि की प्राप्ति– श्रीमद्भगवद्गीता (22) में श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है कि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होते हैं और उन्नति व वृद्धि प्रदान करते हैं। इसी प्रकार का वर्णन यजुर्वेद (23) की प्रार्थना में मिलता है– यज्ञ द्वारा अन्न की वृष्टि होती है, धन की प्राप्ति होती है जिससे शक्ति संवर्द्धन होता है। हे पुरीष्य अग्नि आप हमारे बलमें वृद्धि करें।

6. सुखकारक, रोगनाशक– यज्ञ से समग्र सुख शान्ति की प्राप्ति होती है। साथ ही अन्क प्रकार के रोग चाहे वे शारीरिक हो, मानसिक हो या फिर आध्यात्मिक स्तर के रोग हों, यज्ञ से अवश्य ही लाभ प्राप्त होता है। इस भाव की अभिव्यक्ति वेद में निम्न प्रकार से की गई है– हे यज्ञ आप सुख प्रदाता हैं, हम आके आश्रय में हैं, आपसे अनेकों रोग विनष्ट होते हैं। आप पृथ्वी की रक्षा करने वाले हो जैसे शरीर की रक्षा त्वचा से होती है, उसी त्वचा की भाँति आप रक्षक हो (24)। हे यज्ञ देव आप तो देवता के भोजन हैं अत: आप उन्हें प्रसन्न करें, वे देवता हमें सुख और कल्याण प्रदान करें, अत: आपके अनुग्रह से हमें आयु, बल व समग्र लाभ की प्राप्ति हो। हे यज्ञपुरूष आपके अग्निरूपी शरीर के लिए हविष्य के रूप में प्रयुक्त होने वाली औषधियों से सामर्थ्य शक्ति उत्पन्न होती है। अर्थात् उन औषधि विशेष के द्वारा अनेकानेक रोग दूर हो जाते हैं (26)।

7. दीर्घायु, पूर्णता की प्राप्ति– हे यज्ञदेव आप शरीर की रक्षा करने वले हैं, आयु प्रदान करें, आप हमें तेज प्रदान करें। जहाँ भी विषमता, दोष व अशुद्धता हों, आप उन्हें बाहर निकाल कर हमें शुद्धता दें और पूर्णता प्रदान करें।

8. पूर्ण आनन्द की प्राप्ति– द्विवेदी (28) के कथनानुसार यज्ञ से ही आनन्द संभव है। अथर्ववेद (29) में भी दस का वर्णन निम्र प्रकार से किया गया है– हे अग्निदेव शरीर त्यागने के पश्चात् हम स्वर्गधाम में प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए आनन्दित हों।

9. आत्म ज्योति से परमात्म ज्योति की प्राप्ति– हम यज्ञाग्नि की ज्योति के माध्यम से परमात्मा की ज्योति को धारण कर परमात्माग्नि की ज्योति में अपना ध्यान केन्द्रित करेंगें जिससे हमारे अंदर आत्मा की ज्योति का परमात्मा की ज्योति से संपर्क बढ़ेगा और हमारी आत्म ज्योति और अधिक ज्योतिर्मय हो उठेगी जिससे मनुष्य में आत्म ज्योति से परमात्म ज्योति की प्राप्ति की महश्रा यज्ञाग्नि के द्वारा पूर्ण होगी।

10. शुद्ध एवं पवित्रता की प्राप्ति– शुद्धा पूता भवत यज्ञियास: अर्थात् हे यज्ञकर्ताओं! तुम शुद्ध पवित्र होओ। स्पष्ट है कि साधक का यज्ञ के माध्यम से पवित्रता की प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वेदों में विभिन्न स्थानों पर यज्ञ की महिमा का गुणगान किया गया है। वेद समस्त भारतीय साहित्यों का आधार है तथा वेद में यज्ञ का विशद वर्णन मिलता है। मानव जीवन में प्रधानरूप में दो प्रकार की कामनाएँ होती हैं– पहली अभीष्ट प्राप्ति और दूसरी अनिष्ट से निवृत्ति। अन्य शब्दों में इन्हीं को अभ्युदय व नि:श्रेयस कहा जा सकता है। इस प्रकार चाहे किसी भी प्रकार का भौतिक लाभ हो या आध्यात्मिक लाभ हो, सभी की प्राप्ति का एक सशक्त साधन यज्ञ है। यज्ञ में परमार्थ परायणता का भी रहस्य समाया हुआ है अत: विश्व कल्याण का शुभ कार्य भी यज्ञ द्वारा संभव होता है जिससे मानव जीवन का लक्ष्य मोक्ष भी सुलभ हो जाता है।

भावार्थ– या विधातु: प्रथमा कृति: जलरूपा, या शास्त्रोक्तरीतिहुतं हव्यं देवान् प्रापयति वन्हिरूपा सन्ती, हवनकर्त्री यजमानरूपा च, सूर्यचन्द्ररूपे

द्वे मूर्ती समयविभागं कुरूत:, श्रवणेन्द्रियविषयभूता शब्दरूपा या अकाशमयी मूर्ति: जगत् व्याप्य विद्यमानास्ति, यां मूर्ति सकलधान्यादियोनि: इति बुधा: वदन्ति पृथ्वीरूपत्वात्, यया वायुरूपमूर्त्या च शरीरिण: जीवनवन्त: सन्ति,–बताभि: प्रत्यक्षाभि: जलाग्निसूर्यचन्द्रगगनधरापवनाख्याभिरष्टाभि: मूर्तिभि: युक्त: महेश्वर: व: सामाजिकान् पातु।।

अर्थ– जो ब्रह्मा का की प्रथम रचना है, (अर्थात् जल रूपी मूर्ति) जो नियमोक्त प्रकार से दृश्य पदार्थो को ढोने वाली है,(अर्थात् अग्नि रूप मूर्ति) जो दोनों काल (समय) को विभाजित करते है, (अर्थात् सूर्य और चन्द्र रूपी मूर्तियाँ) जो श्रवण का विषय (शब्द रूप गुणवाली) पूरे विश्व को आच्छादित किया है।

व्याख्या:– महाकवि कालिदास परम्परानुसार ग्रन्थारम्भ को प्रथमत: भगवान शिव की आठ मूर्तियाँ को बतलाते हुऐ त्रिविध मंगलाचराणों में आर्शीवादत्मक मंगलाचरण का पाठ किया है जिसको नान्दी पाठ भी कहते है। इन आठ मूर्तियों का वर्णन विष्णु पुराण तथा वाकु पुराण में भी प्राप्त होता है। जो निम्न है–

1. *सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेंव च।*
दीक्षितो ब्राह्मण्पा: सोम इत्येतास्तनव: स्मृता:।।विष्णु पुराण।।

2. *भूमिरापोऽनलो वायुरात्मा व्याम रवि: शशि।*
इत्यष्ठो सर्वलोकानां प्रत्यक्षा हर मूर्तय:।।वायुपुराण।।

प्रस्तुत श्लोक में 'या' पछ सर्वनाम है जो भगवान शंकर के जटामूर्ति के लिए आया है। स्रष्टु: – ब्रह्मा की, आद्या सृष्टि–पहली रचना जल है ? जिसका वर्णन मनुस्मृति और तैतिरीय ब्राह्मण में भी प्राप्त होता है। विधि हुतं हवि वहति–विधि पूर्वक किये गये हव्य पदार्थो को ढोने वाली अर्थात् अग्निमूर्ति देवों के पास हवन की गयाी सामग्री को पहुँचाने का कार्य करता है। या च होत्री–और भगवान शिव की यजमान रूपी मूर्ति है। ये द्वे कालं विधन्त:– जो दो मूर्तियों दो काल का विभाजन कर दिन और रात्रि का निर्माण करते हैं अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र रूपी मूर्तियाँ। श्रुति विषयगुणा या विश्वं व्याप्य स्थिता– श्रुति का विषय शब्द तथा शब्द गुण वाजी आकाश जो विश्व को परिव्याप्त कर स्थित है, अर्थात आकाश रूपी मूर्ति।

याम् सर्वबीजप्रकृति: दति आहु: जिसको सभी प्रकार के बीजों का मूल कारण कहा गया है अर्थात् पृथ्वी रूपी मूर्ति। यया प्राणिन: प्राणवन्त:– जिसके द्वारा जीव अपना जीवन धारण करते है अर्थात् वसयु यपी मूर्ति। ताभि उन, प्रत्यक्षाभि: प्रत्यक्ष प्रमाणों से ज्ञेय, अष्टाभि: तनुभि:– आठ मूर्तियों से, प्रपन्न: समन्वित, ईश:– भगवान शिव, व: अवतु आप सामाजिक लोगों की रक्षा करें।

इस श्लोक में कवि द्वारा आशीर्वादात्मक मंगल प्रस्तुत किया गया है। इसमें भगवान् शंकर की आठ प्रत्यक्ष मूर्तियों से सामाजिकों के मंगल की कामना की गयी है।

1. आठ मूर्तियों में जल की सर्वप्रथम सृष्टि ब्रह्मा ने की थी। जैसे कि मनु (1, 18) का कथन है–'सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात्सिसृक्षुर्विविधा: प्रजा:। अप एवे ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।'' 'आपो वा इदमग्रे सलिलमासित्।' (तैत्ति0 बा0) (शत0 बा0 11. 1. 6. 1)। जल की उत्पत्ति अग्नि से कही गयी है (मनु0 1. 67)। तैत्तिरीय उपनिषद् में सृष्टिक्रम इस प्रकार वर्णित है– 'तस्माद्वा एतस्मादात्मान आकाश: संभूत:। आकाशाद् वायु:। वायोरग्नि:। अग्नेराप:।अद्भ्य: पृथिवी।

2. अग्नि–हुत द्रव्य को देवों तक पहुँचा देते हैं। जैसा कि मनु (3.76) में कहा है–'अग्नौ प्रास्ताहुति: सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं तत: प्रजा:।,

3. यजमान यज्ञ करते समय शिव का स्वरूप है। यथा–'दीक्षितं ब्रह्मणं प्राहुरात्मानं च मुनीश्वरा:। यजमानव्हया मूर्तिर्विश्वस्य शिवदायिन:।, त्रिलोचनैकांशतया दुरासद: (रघु० 3.37)।

4-5. जो दो काल का विभाग करती हैं वह सूर्य और चन्द्र रूप मूर्ति है।

6. आकाशरूप मूर्ति जिसका श्रावण प्रत्यक्ष होता है। यथा– शब्द गुणकमाकाशम्'। 'आकाशस्य च विज्ञेय: शब्दो वैशेषिको गुण:'– (सिद्धान्तमुक्तावली)। 'श्रोत्रेन्द्रिग्राह्यो गुण: शब्द:, इत्यन्नंभट्ट: तर्कसंग्रहे।

7. पृथ्वी–जिसे सभी बीजों का कारण कहते हैं। यथा– इयं हि भुमिर्भूतानां शश्वती योनिरूच्यते' (मनु0 9.37)।

8. वायु–कतससं सभी प्राणी प्राणवान् होते हैं। यह आठों प्रत्यक्ष मूर्तियाँ कही गयी हैं। यथा– 'भूमिरापोऽनलो वायुरात्मा व्योम रविशशी। इत्यष्टौ सर्वलोकानां प्रत्यक्षा हरमूर्तय:।' अथवा 'सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च। दीक्षितो ब्राह्मण: सोम इत्येतास्तनव: स्मृता:।, (विष्णु पुराण)।

इसी प्रकार भविष्यपुराण में भी है–

1. 'शर्वाय क्षितिमूर्तये नम:। 2. भवाय जलमूर्तये नम:। 3. रूद्राय अग्निमूर्तये नम:। 4. उग्राय वायुमूर्तये नम:। 5. भीमायाकाशमूर्तये नम:।6. पशुपतये यजमानमूर्तये नम:। 7. महादेवाय सोममूर्तये नम:। 8. ईशानाय सूर्यमूर्तये नम:। मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैता:।'

प्रस्तुत श्लोक में 'प्राणिन: प्राणवन्त:' में पुनरूक्ति की प्रतीति होने से, पुनरूक्तवदाभास अलङ्कार है।

लक्षण है:– 'आपाततो यदर्थस्य पौनरूक्त्येन भासनम्। पुनरूक्तवदाभास: स भिन्नाकारशब्दग:।,

'स्त्रस्टु: सृष्टि:', 'वहति हुतम्', 'प्राणिन: प्राणवन्त:', भिरभिरिति'– आदि में छेकानुप्रास है।

लक्षण है:– 'छेको व्यंजनसङ्घस्य सकृत् साम्यमनेकधा।'

आधुनिक जीवन में कर्म योग की उपयोगिता

पूजा
शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग
श्रीगुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद रयाल
पर्यवेक्षक
श्रीगुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

शोध सार: भारतीय दर्शनों की यह मान्यता है कि मनुष्य जो भी कर्म करेगा उसका फल उसे अवश्य ही प्राप्त करना होगा। उससे छुटकारा उस फल को प्राप्त करने से ही मिल सकता है। क्योंकि कर्म करने के उपरान्त भी संस्कार उसके चित्त में रह जाते हैं और यह तब तक रहता है, जब तक कि उसका फल प्राप्त न कर लिया जाये। अर्थात् वर्ण, आश्रम, स्वभाव और परिस्थितिकी के अनुसार मनुष्य को शास्त्र संगत कर्तव्य करना चाहिये, क्योंकि कर्मों के स्वरूप से त्याग करके मनुष्य जीवित भी नहीं रह सकता। शरीर निर्वाह के लिए कुछ न कुछ कर्म करना ही पड़ता है ऐसी स्थिति में विहित कर्म का त्याग करने से मनुष्य का पतन होना स्वाभाविक है इसलिए कर्म न करने की अपेक्षा सब प्रकार से कर्म करना ही उत्तम है।

तात्पर्य कर्मयोग वह युक्ति वा कुशलता है जो मनुष्य को कर्मबंधन से मुक्त कराती है अर्थात् मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा किये हुए शास्त्र विहित कर्मों में और उनके फल में ममता, आशक्ति, वासना, आशा, स्पृहा और कामना करना ही कर्मफल का हेतु बनना है, क्योंकि जो मनुष्य उपर्युक्त प्रकार से कर्मों और उनके फल में आशक्त होता है, उसी को उन कर्मों का फल मिलता है, कर्मों और उनके फल में ममता, आशक्ति और कामना का सर्वथा त्यागकर देने वाले को नहीं।

प्रस्तावना: कर्मयोग मुख्यत: दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है, पहला है- कर्म और दूसरा है- योगकर्म। कर्म का अर्थ है- शरीर, मन, वाणी से की जाने वाली क्रिया, इसी प्रकार से योग का अर्थ है-जोड़ना या मिलाना यहाँ पर योग का मुख्य अर्थ है आत्मा का परमात्मा से मिलन। इस प्रकार से कर्म करते हुए आत्मा का परमात्मा से मिलन को ही कर्मयोग कहते हैं। मनुष्य योनि कर्म योनि है इसमें मनुष्य को स्वतंत्रता प्राप्त है कि वह अपने इच्छानुसार कर्म करें और उन्हीं कर्मों के अनुसार प्राणि को कर्म भोगने पड़ते हैं। मनुष्य इस संसार में प्रतिक्षण कुछ न कुछ कार्य करता ही है अर्थात् वह निष्क्रिय नहीं रह सकता। विवेकानन्द के जीवन में भी ऐसा अवसर आया। उस समय उन्होंने 'मानव-कर्म' को, उस कर्म को जिसे हम कर्तव्य कर्म कहते हैं, उससे परे वह 'दिव्य-कर्म को पकड़ा, अन्तरात्मा की पुकार सुनी, अपने भीतर बैठे परमात्मा के आदेश का पालन किया, संसारिक कर्तव्य-अकर्तव्य के मोह में नहीं पड़े। गीता का प्रतिपाद्य-विषय यही 'दिव्य-कर्म' है, यही निष्काम कर्म है।

भारतीय दर्शनों की मान्यता है कि कर्म करने से उसके संस्कार चित्त में विद्यमान रहते हैं और यह तब तक रहते हैं जब तक कि उसे भोग न लिया जाये अर्थात् कर्म के बीज और फलों की फसल हमें जीवन चक्र में दौड़ाती रहेगी और हमारा जन्म-मरण होता रहेगा, परन्तु लोग सोचते हैं कि इसमे बुराई क्या है, परन्तु चिन्तन करने पर प्राप्त होता है कि इस भटकन में बुराई नहीं है तो शांति भी नहीं है। गीता में मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्मयोग को मुख्य साधन माना गया है। हमारी आत्मा शरीर रूपी वाहन में सफर कर रही है। उसका अंतिम लक्ष्य ही जीवन मुक्ति अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति। मुक्ति का तात्पर्य है जिस प्रकार बूँद का सागर में विलीन हो जाना उसी प्रकार से कर्म करते-करते आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना ही मुक्ति की प्राप्ति हो जाना, यही कर्मयोग है।

कर्मयोग की साधना को फल की आशक्ति से रहित होकर निमित्त भाव होकर कर्म करने चाहिये। इस अनाशक्ति की भावना रखते हुए जो साधक कर्म करता है वह कभी भी बंधन के कारण नहीं बँधता उसका शरीर, मन, बुद्धि हमेशा शांत एवं पवित्र रहती है एवं उन्नति की ओर बढ़ती है, यही कर्मयोग है। इस प्रकार मनुष्य संसार में रहते हुए भी निष्काम भाव से या भगवद् अर्पित बुद्धि से अपने कर्तव्य कर्मों को करते हुए भी इस निष्काम कर्मयोग के द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है।

कर्म का अर्थ- महर्षि कणाद के शब्दों में, 'कर्म वह है जो द्रव्य के आश्रित हों, गुण न हो और संयोग तथा विभाग में अनपेक्ष कारण हो।' अन्नभट्ट के अनुसार 'कर्म वह है जो संयोग तो न हो परन्तु

संयोग का समवायि कारण अवश्य हो।' जीवन शाश्वत, अविरल चेतना का प्रवाह है। कर्म के माध्यम से चेतना का विकास करना कर्मयोग है। कर्म शब्द 'कृ' धातु से बनता है। 'कृ' धातु में 'अन' प्रत्यय लगाने पर कर्म शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है – क्रिया, व्यापार, हलचल, प्रारब्ध तथा भाग्य आदि अभिप्राय यह हैं कि जिलकर्म में कर्ता की क्रिया का फल निहित होता है वही कर्म है। गीता में कर्मयोग प्रायः दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है, कर्म और योग। पूर्व में कर्म शब्द का साधारण अर्थ 'क्रिया या कार्य' से किया गया है और योग शब्द के भी विभिन्न अर्थ है जैसे जोड़ना, मिलाना। यहाँ पर योग का प्रायः अभिप्राय आत्मा को परमात्मा से जोड़ना है।

कर्मयोग के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद जी का मत है कि – ''स्वार्थ से ऊपर उठकर कुछ शास्त्र सम्मत एवं कुछ नैतिक दृष्टि से शुभ कर्मों को करना ही कर्ममार्ग है।'' अर्थात् कर्मयोगी का कर्म स्वार्थ से संचालित नहीं होता, उसका कर्म करने का अंतिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करना होता है। इसी संदर्भ में आगे स्वामी जी का कर्मयोगी जीवन का मंत्र है कि –''मैं नहीं वरन् तू, आत्मोत्सर्ग का कोई परिणाम उसके लिए अधिक नहीं होता। सतत् स्वार्थ रहित कर्म करते रहने से निष्कामता उसका सहज स्वभाव बन जाता है और वह 'स्व' के बंधन से ऊपर उठ जाता है जिससे धीरे-धीरे उसे अनुभूति होने लगती है।'' अर्थात् मनुष्य की इच्छाशक्ति चरित्र से उत्पन्न होती है, चरित्र कर्मों से गठित होता है। अतः कर्म जैसा होगा, इच्छाशक्ति का विकास भी वैसा ही होगा। पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार-''कर्मयोग का वास्तविक तात्पर्य यह है कि किसी भी काम को पूरी कुशलता के साथ कर्तापन का अभिमान छोड़कर किया जाय और उसके फल से निर्लिप्त, निस्पृह अथवा अनाशक्त रहा जाये, जिससे न तो सफलता का अभिमान हो और न असफलता में निराशा अथवा निरूत्साह।''

आज के संघर्षमय युग में तो कर्मयोग को 'युगधर्म' कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी, क्योंकि इसकी साधना, आचरण, सरलता से कि जा सकती हैं। कर्मयोग आन्तरिक जीवन के साथ ही बाह्य जीवन भी सफल और सुन्दर बनता है और श्रृद्धा, निष्ठा एवं लगन के साथ किया गया कोई भी काम मनुष्य को सद्भाव, उच्च विचार, उत्साह, सुख, शांति, संतोष प्रदान करता है। मनुष्य का पूरा जीवन ही कर्म है कर्म बिना शरीर और शरीर बिना कर्म का कोई अस्तित्व नहीं हैं।'' श्वास लेना, भोजन करना, पढ़ना, आना-जाना इत्यादि सभी कर्म है। मनुष्य को अपने जीवन यापन के लिए करना ही पड़ता है।

कर्म के प्रकारः कर्म को भारत में प्रायः सभी मुख्य धर्मग्रंथों ने मान्यता दी है। वर्तमान समय के सुख-दुःख पुराने जन्मों पर निर्भर करता है वही इस जन्म में किये गये कर्मों के आधार पर हमारा अगला जन्म निर्भर होता है। ऐसी ग्रंथों में मान्यता है, इसी को कर्म सिद्धान्त कहते हैं। गीता में तीन प्रकार के कर्मों का वर्णन प्राप्त होता है-

कर्म- शास्त्र विहित कर्मों को ही कर्म नाम से जाना जाता है; अर्थात् वेदों के अनुसार किया जाने वाला कार्य कर्म कहलाता है।

अकर्म- निष्काम भाव से किया जाने वाला कर्म अर्थात् जो कार्य निष्काम भाव से किया जाता है अकर्म कहलाता है।

विकर्म- शास्त्रों में जिन पाप कर्मों को निषिद्ध बताया गया है उन्हें करना ही विकर्म कहते हैं, अर्थात् विकर्म का भाव है- *'विगतः कर्मः यस्य स विकर्मः।।'*

श्रीराम कृष्ण ने कर्म को तीन भागों में मुख्य रूप से विभाजित किये है जो पूर्णतः ईश्वर समर्पित होकर करना चाहिए-

ज्ञान के लिएः ऐसे कर्म ज्ञान से प्रेरित होते है।

लोक-शिक्षा के लिएः स्वयं एवं दूसरो के कल्याणार्थ कर्म होते है।

स्वभाववषः जो कर्म स्वतः सम्पन्न होते है।

महर्षि पतंजलि ने भी कर्म की व्याख्या इस प्रकार है-

कर्माशुक्ला कृष्णंयोगिनस्त्रिविधमित रेषाम्।।

महर्षि पतंजलि ने कर्म के चार प्रकार बताये हैं, जो प्रत्येक जीवधारी से जुड़े हुए हैं-

शुक्ल कर्म-यह श्रेष्ठ कर्म हैं जो शास्त्रों में बताये गये हैं। इन श्रेष्ठ कर्म से सुख एवं स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। क्योंकि ऐसे कर्म धर्म को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

कृष्ण कर्म- शास्त्र विरूद्ध कर्मों को कृष्ण कर्म कहते हैं ऐसे कर्म समाज के लिए अकल्याणकारी कर्म होते है। जैसे-चोरी, हिंसा आदि आसामाजिक कर्म हैं, ऐसे पाप कर्मों से दुःख एवं नरक की प्राप्ति होती है।

शुक्ल-कृष्ण कर्म- ऐसे कर्म जो पुण्य एवं पाप कर्मों से मिश्रित हों। ऐसे कर्म से समाज के किसी वर्ग को सुख एवं किसी को दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसे कर्म पुर्नःजन्म प्रदान करने वाले होते हैं।

अशुक्लाकृष्ण कर्म- इस प्रकार के निष्काम कर्म से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। इससे प्राणि का अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। अज्ञानता पूरी तरह से समाप्त होकर ज्ञान का उन्मेष उत्पन्न होता है। जिससे उसकी आत्मा का उत्कर्ष होता है। ऐस श्रेणी में योगी लोग आते हैं क्योंकि ऐसे वासना रहित कर्म न तो धर्मरूप और न अधर्म रूप होते हैं यही निष्काम कर्म है।

वेदान्त के अनुसार कर्म- कर्म को वेदान्त में इस प्रकार से समझाया

गया है- मनुष्य की अन्त:चेतना ऐसी निष्पक्ष, निर्मल, न्यायशील और विवेकशील है कि अपने पराये का कुछ भी भेदभाव न करके सत्यनिष्ट-न्यायाधीश की तरह हर एक भले-बुरे काम का विवरण अंकित करती है। वेदान्त में तीन प्रकार के कर्मों का उल्लेख मुख्यत: प्राप्त होता है जो हमारी संस्कार भूमिका में होता है-

संचित कर्म-भूतकाल या पूर्व जन्मों के अनेक शरीरों के द्वारा किये हुए कर्मों को संचित कर्म कहते हैं। इन्हीं कर्मों के द्वारा ही हमारा वर्तमान निश्चित् होता है। संचित कर्म कहलाते हैं।

प्रारब्ध कर्म -ऐसे संचित कर्म संस्कार जो स्वेच्छापूर्वक, तीव्र भावना, अति प्रबल होते हैं, भोगने के लिए उन्मुख रहते हैं उन्हें प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

क्रियमाण कर्म-ऐसे कर्म जो वर्तमान समय में किये जाते हैं। क्रियमाण कर्म कहलाते हैं, यदि किये गये कार्यो का परिणाम तुरन्त नहीं प्राप्त होता तो वह संचित कर्म बन जाता है।

इस प्रकार से पतंजलि, वेदान्त के अनुसार कर्म को अलग-अलग प्रकार से बताया गया है किन्तु इन सभी में एक समानता यह है कि हमारा अधिकार सिर्फ कर्म पर है। उसके फल पर नहीं। जैसे बीज हम बोयेंगे, वैसा फल काटेंगे। इसलिए फल की इच्छा से रहित होकर अपने कर्म करना चाहिये। योगियों के कर्म ऐसे कर्म होते हैं जो अविद्या आदि पंचक्लेशों से रहित होते हैं, क्योंकि वह समस्त कर्मों एवं उनके फलों को प्रभु को अर्पित करते हुए अपने को बंधन से मुक्त रखते हुए कर्म करते हैं।

ईश्वरीय लाभ एवं उद्देश्यों की पूर्ति में कर्मयोग एक उत्कृष्ट साधना पद्धति है, जिसका सर्वाधिक वर्णन श्रीमद्भगवतगीता में प्राप्त होता है। जिसके तत्वाधान में श्रीराम कृष्ण कहते हैं कि-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।।

अर्थात् कर्म निष्काम भाव से करना चाहिए। वह कहते है कि कर्म तो सभी करते है जैसे कि श्वास लेना और छोड़ना इत्यादि कर्म जिसके फल को ईश्वर समर्पित करना चाहिए। जिस प्रकार फल होने पर फूल का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार ईश्वरलाभ हो पर कर्म भी नहीं करना पड़ता, परन्तु जब तक जीवन है तब तक बिना कर्म के नही रहा जा सकता हैं। वस्तुत: कर्मयोग ऐसा साधन है जिसका प्रयोग हम जीवन दायिनी के रूप मे कर सकते हैं। ऐसे कर्म, बन्धनों का कारण नहीं बनते तथा ईश्वर प्राप्ति में सहायक होते और जीवन-मुक्ति में सहायक होते है।

निष्काम कर्मयोग: कर्म योग अर्थात् कर्म द्वारा ईश्वर के साथ योग। अनासक्त एवं निष्काम होकर किये जाने बाले कर्म-प्राणायाम, ध्यान, यज्ञ, अष्टांगयोग, भक्ति, तप इत्यादि कर्मयोग है। साधारण मनुष्य यदि अनासक्त एवं प्रभु फल समर्पित होकर कर्म करे तब उसे कर्म योग कहते है। जो ईश्वर प्राप्ति का मुख्य उद्देश्य है। गीता में विष को अमृत बनाने का जो मुख्य उपाय है, वही कर्मयोग है। गीता निश्चित रूप से उन कर्मों की ओर इशारा करती है जो जीवनोत्कर्ष एवं ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्द उन कर्मों की ओर संकेत करते हैं। जो वेद विहित सकाम कर्म हो, जैसे कि- यज्ञ, तप आदि जिनसे पाप, मुक्ति एवं पुण्य संचित करने वाले होते है। गीता एवं अन्य ग्रन्थ तथा स्वामी विवेकानन्द कर्मयोग को भक्तियोग, ध्यान योग, राजयोग इत्यादि को एक साधन मानते है जैसे कि गृही लोगों मे लिए जीवन-धारण के अपरिहार्य कार्य-ईश्वर-लाभ, जप, ध्यान, नाम-गुणगान, समाज सेवा सभी कर्म है जो निष्काम भाव से करने से भवबन्धन से मुक्ति दिलाने वाले है। जहाँ-जहाँ पर कर्मयोग का उल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ-वहाँ पर कर्म फलों को ईश्वर में समर्पित करने का उल्लेख भी है। भगवान् कहते है कि तुम एक गुना अर्पित करोगे तभी हजार गुना पाओगे अर्थात् भगवान् को फल-समर्पण करते हुए कर्म करना चाहिए।

कर्मफल- ईश्वर पर कम विश्वास व्यक्ति को कर्मों के भोग की ओर ले जाता है। लोग कहते है कि गंगा नहाने के पूर्व सभी पाप किनारे पेड़ पर बैठ जाते है। जैसे ही निकलता है, सभी क्रमश: पुण: आ जाते है। देह त्याग के समय जिसमें ईश्वर चिन्तन हो वह उपाय है- अभ्यास योग। ईश्वर चिन्तन से अंतिम घड़ी भी उनकी ही याद आयेगी। स्वामी विवेकानन्द के जीवन को देखते है कि वह कभी भी संचय नहीं करते थे, उन्हें सब माया का ऐश्वर्य समझते थे। जैसे कि सत्-असत्, भला-बुरा, पुण्य-पाप इनसे वह कोषों दूर थे। वह कहते थे कि अच्छा कर्म सुफल एवं बुरा कर्म कुफल फल की प्राप्ति कराता है। तात्पर्य तीखी, मिर्ची, कड़वी तो लगेगी ही। आगे कहते है कि हे मन! तुम इस मनुष्य देह रूपी जमीन पर खेती करोगे तो सोना फल सकता है, अन्यथा बंजर तो है ही। चिन्तन करने से भाव का उदय होता है। जैसा भाव-वैसी ही प्राप्ति होती है।

गृहस्थ एवं कर्म योग-संसारिक धर्म में दोष नहीं है, परन्तु ईश्वर के पाद-पद्मों एवं कामना रहित मन से कर्म करना श्रेष्ठ है।

कर्म प्रवृत्ति-जब तक कि लक्ष्य अर्थात् ईश्वर प्राप्ति न हो। तब तक मनुष्य को अपने जीवन में कर्म की प्रवृत्ति रहनी चाहिए क्योंकि ईश्वर दर्शन से ही शांति प्राप्त होती है।

समाधि एवं सच्चिदानंद की प्राप्ति-समस्त कर्तव्य कर्मों के कर्त्ता एक मात्र ईश्वर है, मनुष्य मात्र यन्त्र-स्वरूप है। जिसे सिद्धि की प्राप्ति हो गई, वह ईश्वर को पा लेता है और पाप कर्म से मुक्त हों

जाता है। यदि ईश्वर से सच्ची प्रीति उत्पन्न हो जाएँ तो निष्काम भाव मन में उत्पन्न होकर कर्म करे तो चित्त की शुद्धि और ईश्वर-प्रेम रूपी भाव मन में हो तो मनुष्य कामनाशून्य होकर कर्म करेगा।

कर्म योग की उपयोगिता: कर्म के रहस्य का ज्ञान ही कर्मयोग है सारा संसार कर्म करता है-स्वधीनता के लिए, मुक्ति लाभ आदि के लिए सभी जन का मुख्य लक्ष्य शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वधीनता है; किन्तु उक्त सभी में कर्मयोग की महत्त का ज्ञान रखना भी आवश्यक है, अन्यथा व्यर्थ में ही हमारी सारी शक्ति क्षय हो जायेगी कर्म तो करना ही होगा परन्तु सर्वोंच्च ध्येय को सम्मुख रखकर कार्य करना चाहिये।

मनुष्य जीवन देकर मानों परमात्मा ने हमें सारे वरदान, सारी कृपा और सारी करूणा दे दी हो। यही जीवन की सच्चाई है। क्योंकि मनुष्य का जीवन एक वाटिका है। वाटिका को अच्छी स्थिति में रखने के लिए उस पर हमेशा चारों तरफ से दृष्टि रखनी पड़ती है। कोई भी पौधा खराब न हो इसलिए उसमें पानी, खाद, निकाई, मेड़ आदि का ध्यान रखा जाता है। इन सबका ध्यान रखने वाले को ही कुशल माली कहा जाता है। उसकी मेहनत से ही बाग-हरा-भरा, खुशबूदार सुंदर बनता है जिससे उसे देखकर आस-पास के लोग भी प्रसन्नचित्त होते है। मनुष्य को भी परमात्मा द्वारा प्रदान इस शरीर को सवारना है, अच्छे गुणों से मन को महकाना, दिव्य ज्योति से आत्मा को चमकाना एवं अपने संपूर्ण जीवन में सुख-शांति, प्रसन्नता एवं संतोष के गुण सजाना एवं दूसरों के लिए प्रेरणादायी बनना यही कर्मयोग का मुख्य लक्ष्य एवं उद्देश्य है।

निष्कर्ष- अत: कह सकते है कि कर्मयोग साधन को निरासक्त एवं निष्काम कर्म ईश्वर के प्रति शरणागति के लिए उपर्युक्त बताया है, साथ ही स्पष्ट करते है कि ईश्वर प्राप्ति के बिना अनासक्त असंभव है, क्योंकि कही न कही आसक्ति आ ही जाती है। क्योंकि इस संसार में रहते हुए, ईश्वर में मन को संलग्न करने से बन्धन की संभावना नही रहती। उदाहरण- जिस प्रकार कछुआ जल में रहने के उपरान्त भी अण्डे थल में ही देता है, सभी कार्य करने के उपरान्त भी उसका मन अण्डों पर ही रहता है।

आधुनिक समय में राजनीतिक एवं सामाजिक लोग कर्मयोग की बात करते है। परन्तु महापुरुषों की दृष्टि में कर्मयोग का अंतिम लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति है। संसारिक जीवन में कर्मों से छुटकारा पाना असंभव है और यह कर्म ही कर्मबन्धन के कारण बनते हैं, साथ ही यदि कर्म को अवचेतन मन से करेगे तो नाम, यश, लोकमान्य जैसी आसक्ति आ जाती है। परिणामत: परिहार्य कर्यों से युक्ति पूर्वक बचे रहकर अनासक्त होकर कर्मों को करने से मनुष्य-जीवन का उद्देश्य ईश्वर दर्शन को प्राप्त हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द अपने गुरू आदर्शों पर चलकर शुद्धबुद्धि से जीव-सेवा का प्रचार करते थे। वह निष्काम भाव के अर्न्तगत नहीं आते, यह सिर्फ सर्वत्यागी सन्यासियों के लिए थी, जिससे रजोगुण का क्षय होता हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि समाज व्यवस्था के दृष्टि से समाज यदि सन्यास आश्रम का बोझ वहन करता है तो सन्यासियों का भी मुख्य कर्तव्य यह है कि वह भी समाज के लिए कुछ करे। जैसे कि गृही लोगों के लिए जीवन-धारण अपरिहार्य कार्य-ईश्वर-लाभ, जप, ध्यान, नाम-गुणगान, समाज सेवा सभी कर्म है जो निष्काम भाव से करने से भवबन्धन से मुक्ति दिलाने वाले है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. अपूर्वानन्द स्वामी, 1984, श्रीरामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, प्रकाशन- रामकृष्णमठ, रामकृश्ण आश्रम मार्ग,नागपुर- 440012
2. सारदानन्द स्वामी,2014,श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग-प्रथमभाग, रामकृष्णमठ,नागपुर
3. गुप्त श्रीमहेन्द्रनाथ, 2014, श्रीरामकृष्णवचनामृत-प्रथमभाग, रामकृष्णमठ,नागपुर
4. गुप्त श्रीमहेन्द्रनाथ, 2014, श्रीरामकृष्णवचनामृत-द्वितीयभाग, रामकृष्णमठ,नागपुर
5. वागीश्वरानन्द स्वामी, 2016, अमृतवाणी, रामकृष्णमठ,नागपुर
6. श्रीमद्धगवतगीता, 2007, गीताप्रेस, गोरखपुर, उ.प्र.
7. स्वामी ओमानंद तीर्थ, संवत्-2047, पातंजल योग प्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, नौवाँ संस्करण
8. पातंजल योगदर्शन, 2009, गीताप्रेस गोरखपुर
9. हरानंद आरण्य स्वामी हरी, 1974, पातंजल योगदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
10. जोशी डॉ0 कालीदास, शंकर डॉ0 गणेश, योग के सिद्धान्त एवं अभ्यास, प्रकाशक-मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, म0प्र0
11. श्री हरिकृष्ण दास, गोयन्दका, 14वॉ संस्करण सं.2041, श्रीमद्धगवद्गीता-शंकर भाष्य, हिन्दी अनुवाद, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर
12. आचार्य पं. श्री राम शर्मा, 2015, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, प्रकाशक-युग निर्माण योजना, मथुरा
13. पांड्या डॉ0 प्रणव, 2015, पातंजलि योग का तत्व दर्शन-पं. श्री राम शर्मा आचार्य, प्रकाशक-युग निर्माण योजना, मथुरा
14. आचार्य पं. श्री राम शर्मा, 2010, कर्मयोग और कर्म कौशल, युग निर्माण योजना, मथुरा
15. विवेकानंद साहित्य, अद्वैत आश्रम मायावती, पिथौरागढ़, हिमालय, 1993
16. आत्मानंद स्वामी (2003): गीता तत्व चिन्तन, भाग-1, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता।

ISSN 2278 - 0327

इक्कीसवीं सदी : दाम्पत्य और बदलता पारिवारिक परिवेश

रीना
शोधार्थी, पीएच०डी०, हिन्दी विभाग
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

शोध सार

पारिवारिक दाम्पत्य जीवन प्राचीन काल से ही हमारी विशेष धरोहर रहा है। यहाँ पर प्रथम दम्पति भगवान शिव व पर्वती को कहा जा सकता है। दाम्पत्य जीवन का आधार सदा से ही विश्वास, प्रेम, समर्पण, त्याग, सम्मान, निष्ठा, आपसी मेल-जोल, संतुष्टि, संयम आदि गुण रहे हैं, जो प्राचीन काल में भी उतने ही मूल्यवान थे और आज के युग में तो इनकी प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। क्योंकि इन्हीं गुणों के आधार पर ही तो हम अपने रिश्तों, परिवार, दाम्पत्य जीवन को संजो पाए हैं। समाज की प्रथम इकाई परिवार को संभालना आवश्यक है, जिसका आधार दाम्पत्य जीवन है। इसलिए दाम्पत्य का संरक्षण करते हुए समाज व पूरे देश का संरक्षण संभव होगा।

इक्कीसवीं सदी तक आते-आते हमारा देश प्रगति के पथ पर निरंतर अग्रसर हो रहा है। विकास की सीढ़ियों की ओर प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन शैली में भी बदलाव आया है। आज परंपरागत मान्यताओं के स्थान पर अधुवातन एवं प्रगतिशील सोच ने अनेक जटिलताओं एवं जड़ताओं को तोड़कर अधिक खुलापन तथा पारस्परिक समझ को व्यापक अर्थों में समाहित किया है।

भूमिका

अच्छे बीज से अच्छा पौधा और अच्छे पौधे से अच्छे फूलों की उत्पत्ति होती है। यही प्राकृतिक सत्य है। स्नेहिल, पारिवारिक और सामाजिक वातावरण में पति-पत्नी के संबंधों में जो प्रगाढ़ता आती है, वही दाम्पत्य जीवन की सरसता है।

विद्वानों ने सांसारिक सुखों का वर्गीकरण करते हुए कहा है कि पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख सुघड़ पत्नी, तीसरा सुख सुयोग्य संतान और चौथा सुख आर्थिक सुदृढ़ता की बात कही गई है। हमारी अपनी मान्यता है कि सुखी एवं सफल दाम्पत्य जीवन ही इन सब सुखों का मूल है। यदि व्यापक स्तर पर समीक्षा की जाए, तो स्नेहिल और सौहार्दपूर्ण पारिवारिक वातावरण में केवल व्यक्ति को शारीरिक रूप से स्वस्थ बनाता है, बल्कि उसे मानसिक रूप से भी विचारवान, चिंतनशील और व्यावहारिक बना देता है। कुशल गृहणी के रूप में सुघड़ पत्नी, अर्धांगिनी बन दाम्पत्य जीवन में मधुरता लाने के नित्य नए स्रोत स्थापित करती है। परिवार को समग्र रूप से सजाने संवारने में पत्नी का यह सहयोग ही दाम्पत्य जीवन का मूल आधार है।

समझदार पति-पत्नी परिवार को कितना सुखी और समृद्ध बना सकते हैं, यह तो सर्वविदित है। कुछ लोग समझते हैं कि दाम्पत्य जीवन के लिए प्रचुर मात्रा में धन आवश्यक है। पर्याप्त मात्रा में सुख सुविधाओं के साधन पास हो तो व्यक्ति चिरंतन उसका लाभ उठाता रह सकता है। यह मैंने तो अब तक के हजारों लाखों और करोड़ों लोगों द्वारा कहीं जाने पर भी दंपतियों के अनुभव में गलत सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि किसी भी दंपत्ति ने आज तक यह अनुभव नहीं किया कि धनसंपदा के कारण वे दुखी और कलांत विवाहित जीवन जी रहे हैं। धन के अभाव में उत्पन्न होने वाली पारिवारिक व्यवस्थाएं अवश्य कष्ट पहुँचाती हैं, पर यह कष्ट भी मधुर दाम्पत्य संबंधों के कारण कम पीड़ा देते हैं। पति-पत्नी का प्रेम उन कष्टों के घाव पर मरहम का काम करते हैं। सच्चाई तो यह है कि पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर ही जीवनपथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकते हैं।

हमारे समाज में रिश्तों की जितनी मजबूती और आत्मीयता हासिल है, वह एकदम अन्यतम है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अगर खुद को बेहतर तरीके से जानना समझना वह तो रिश्तों की पड़ताल करना बेहद जरूरी हो जाता है।

कुछ अहम रिश्तों पर आधारित नामचीन रचनाकारों की कहानियों का संग्रह राजकमल प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। वैसे

तो हर अच्छी कहानी किसी ने किसी इंसानी रिश्तों की बुनियाद पर ही रची जाती है। यहाँ पर भी ऐसी कहानियों के संकलन ने किसी खास रिश्ते को आधार बनाया गया है, जैसे दाम्पत्य, सहोदर, दोस्त, परिवार आदि।

रिश्तों के सबसे चटक रंग 'दाम्पत्य' में भी दिल को छू लेने वाली ढेरों कहानियाँ है। जिनेंद्र को कुमार की कहानी 'पत्नी' भारतीय समाज की उस नारी के दर्शन कराती है, जो दिल में तमाम तकलीफें समेटकर भी पति को परमेश्वर का दर्जा देती है। सन 2012 में प्रकाशित 'दीवार में रास्ता' कहानी संग्रह में कुल ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में दाम्पत्य संबंधों में उतना वैचारिक भेद, अविश्वास, असहनशीलता, हिंसा आदि का जिक्र आता है। पति-पत्नी के मधुर संबंध जहाँ संपूर्ण परिवार को एक सूत्रता में पिरोए रखता है, वहीं इससे विपरीत अवस्था में परिवार बिखराव की कगार पर आ सकता है। इस कहानी संगृह में ओवरफ्लो पार्किंग, तरकीब, केलिप्सो, कल फिर आना, इंतजाम आदि प्रमुख कहानियाँ है। ओवरफ्लो पार्किंग एक ऐसी कहानी है, जिसमें पति-पत्नी के वैचारिक बेल सदा के लिए दोनों के मध्य के संबंधों को कड़वाहट में बदल देते हैं। कहानी के कुछ अंश-

''बेसूरी तो उनकी शादीशुदा जिंदगी भी है। वे दोनों कभी एक ही सुर में नहीं बोलते...। एक-दूसरे से शिकायत दोनों को है, किंतु समाधान दोनों में से कोई नहीं ढूंढने का प्रयास करता।'' 'तरकीब' कहानी की नायिका समीना भी एक ऐसे ही पत्नी है, जिसे पति से शिवाय जिल्लत और बेरहमी के कुछ भी हासिल नहीं हुआ। यहाँ तक कि उसका पति अदनान उसे अपने घर के अन्य नौकरों की तरह ही मानता है। समीना सोचती है समीना उसके लिए सिर्फ एक औरत थी। पत्नी क्या होती है।''

शायद अदनान ने कभी इस बारे में सोचा ही नहीं। वह बस एक ही बात समझता था कि पत्नी का काम है घर की देखभाल करना, बच्चे पैदा करना बिस्तर में पति को सुख देना और हमेशा अपने पति का एहसानमंद रहना ही वह उसका ध्यान रखता है।'' केलिप्सो कहानी में दाम्पत्य जीवन में अविश्वास के कारण बिखरते परिवारों की कथा कही गई है। कल फिर आना कहानी में रीमा और कबीर के दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है। रीमा का कबीर से अनमेल विवाह हुआ था। मां-बाप की तेरहवीं संतान रिमा का पति कबीर उम्र में उसे तेरह वर्ष बड़ा है। दोनों की उम्र में इस तेरह वर्ष के अंतर से उनके वैवाहिक जीवन के सुखों में एक लंबी दूरी बन जाती है। डरी सहमी रीमा सोचती है-

''विवाहित जीवन की यादों में कुछ भी सकारात्मकता क्यों याद नहीं आता क्यों वह हमेशा किसी अंधेरी सुरंग के बीच जाकर कहीं खो जाती है, एक शाम अपने अकेलेपन को दूर करने के प्रयास की सजा सारी रात कार में अकेले बिताना।''

इसी तरह मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिंदगी', मंजू भंडारी की 'तीसरा आदमी', काशीनाथ सिंह की 'आखिरी रात', ज्ञानरंजन की रचना 'दाम्पत्य', हमारे समाज के नारी के विविध रूपों को बखूबी सामने रखती है। अन्य रचनाकारों की कहानियाँ भी इस रिश्ते की गर्माहट का अहसास कराती है।

यह सत्य है कि नारी और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं तथा शारीरिक एवं मानसिक संतुष्टि पर भी दोनों का बराबर का अधिकार है। ऋषि वात्स्यायन ने ही काम सूत्र में दाम्पत्य जीवन के शृंगार रस का वर्णन किया है।

दाम्पत्य

क्या सिर्फ विवाहित होना या पति-पत्नी का साथ रहना दाम्पत्य कहा जा सकता है। पति-पत्नी के बीच का ऐसा धर्म संबंध, जो कर्तव्य और पवित्रता पर आधारित हो। इस संबंध की डोर जितनी कोमल होती है, उतनी ही मजबूत भी। जिंदगी की असल सार्थकता को जानने के लिए धर्म अध्यात्म के मार्ग पर दो साथी, सहचरों का प्रतिज्ञाबद्ध होकर आगे बढ़ना ही दाम्पत्य या वैवाहिक जीवन का मकसद होता है।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तरों पर स्त्री और पुरुष दोनों ही अधूरे होते हैं। दोनों के मिलन से ही अधूरापन भरता है। दोनों की अपूर्णता जब पूर्णता में बदल जाती है तो अध्यात्म के मार्ग पर बढ़ना आसान हो जाता है। दाम्पत्य की भव्य इमारत जिन आधारों पर टिकी है वे मुख्य रूप से साथ हैं। संयम, संतुष्टि, संतान, संवेदनशीलता, संकल्प, सामर्थ्य तथा समर्पण। रामायण में रामसीता के दाम्पत्य में सभी बातें देखने को मिलती है। पति-पत्नी किसी भी गृहस्थी की धुरी होते हैं। इसकी सफल गृहस्थी ही सुखी परिवार का आधार होती है।

विवाह-पौराणिक पृष्ठभूमि

विवाह शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से दो अर्थों में होता है। इसका पहला अर्थ वह क्रिया, संस्कार या पद्धति है जिसमें पति-पत्नी के स्थाई संबंध संबंधों का निर्माण होता है। प्राचीन काल से आधुनिक समय तक विवाह परिवार की स्थापना करने वाली एक पद्धति, एक नियम, एक बंधन है जो एक परम्परा ही है।

मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि के अनुसार- ''विवाह

एक निश्चित पद्धति से किया जाने वाला, अनेक विधियों से संपन्न होने वाला एक कन्या को पत्नी बनाने वाला एक संस्कार है।''

विवाह का दूसरा और समाज में प्रचलित एवं स्वीकृत विधियों द्वारा स्थापित किया जाने वाला दाम्पत्य संबंध और परिवारिक जीवन भी होता है। इस संबंध में पति-पत्नी को अनेक अधिकारों तथा कर्तव्यों वो की प्राप्ति होती है। अनादि काल से ही 'विवाह' संबंधी धारणा को सभ्य समाज द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। सत्य सनातन धर्म में विवाह के बारे में विभिन्न धर्म ग्रंथों में विधिवत वर्णन है। विवाह एक पवित्र संस्कार है। हिंदू धर्म में सोलह संस्कार माने गए हैं, जिनमें से विवाह एक प्रमुख संस्कार है। इस प्रकार चार आश्रम है-

- ब्रह्मचारी आश्रम
- गृहस्थ आश्रम
- वानप्रस्थ आश्रम
- सन्यास आश्रम

इन चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि यह समाज का निर्माण करता है। जीवन से संबंधित सभी महत्वपूर्ण कार्य इसी गृहस्थ आश्रम में पूरे किए जाते हैं। इसी आश्रम में 'सृजन' यानि नव निर्माण संभव है। यहाँ निर्माण होता है नवजीवन का, सृष्टि का, संस्कारों का, मूल्यों का, नैतिकता का, प्रेम का, त्याग का, उन्नति का, भावनाओं का कर्तव्यों का, अधिकारों का, बहुना सृष्टि चक्र इसी दाम्पत्य जीवन पर आधारित है यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आज इक्कीसवीं सदी में दाम्पत्य संबंधों में प्रगतिशील सोच विकसित होने के बावजूद जटिलताएं वैसे की वैसे बरकरार हैं। सही परस्पर अहम की तुष्टि नहीं हो पाती, तो कहीं स्वाभिमान आपस में टकराने लगता है। पूर्वाग्रह एवं कुंठाओं संस्थाओं के कांटे तरह-तरह से शुभ रहे हैं। ऐसे में वे दाम्पत्य धन्य हैं, जिनमें आपसी समझबुझ और मानसिकता सुलझी हुई है। आज की जटिल परिस्थितियों में जी रहे दंपति यदि पूरी तरह समंजस्य, सहमति एवं सहयोग का व्यवहार करे, तो निश्चय ही दाम्पत्य जीवन सुखी, शांत और समृद्ध होता चला जाएगा।

निष्कर्ष-

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सृष्टि का आधार स्त्री और पुरुष है, उसी प्रकार समाज का आधार, परिवार का आधार दाम्पत्य जीवन है। आपका दाम्पत्य जीवन स्नेहिल, सुगंधित और पुष्पित हो, इसके लिए आवश्यक है कि आप अपनों से आत्मीयता रूप से जुड़े हैं। दाम्पत्य जीवन में उस लड़की का मान सम्मान करें, जो सब कुछ छोड़कर आपके घर संसार में मिल गई है। आप उसका जितना आदर करोगे, वह आपके प्रति, आपके परिवार के प्रति उतने ही अधिक समर्पित होगी। समर्पण का यह भाव ही दाम्पत्य जीवन का आदर्श है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में अनेक विधाओं में दाम्पत्य संबंधित साहित्य सृजन को नई दिशा मिली है।

जीवन की राहों में चलते चलते,
जब कभी थकेंगे पांव हमारे तुम्हारे,
तब एक दूजे की बाहों का सहारा लेकर,
तय कर लेंगे दुर्गम पथ सारे के सारे,
यही एक दूजे का शाश्वत बंधन होगा,
यही तन-मन का चिर मिलन होगा,
यही एक दूजे का सही समर्पण होगा ... ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'विमर्श के विविध आयाम', अर्जुन चौहान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 58
2. तेजेंद्र शर्मा, दीवार में रास्ता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2012, पृष्ठ 49
3. वहीं, पृ. 65
4. वहीं, पृ. 122
5. 'दम्पत्य: कहानियाँ रिश्तो की', संजीव कुमार, राज कुमार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 121-122
6. www.aajtak.in बुक्स रिव्यू : दाम्पत्य जीवन की सतरंगी छटा बिखेरती कुछ लाजवाब कहानियाँ,
7. सुखी दाम्पत्य जीवन, शीला सलूजा व चुनीलाल सलूजा, बी एण्ड वी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ.1
8. https://images.app.google/
9. https://www.yourquote.in/
10. https://m.jagran.com
11. https://hindustansamachar.com

ISSN 2278 - 0327

संत गरीबदास के साहित्य में भक्ति भावना

पुष्पा
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध पत्र सार- संतों के जीवन का मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य भक्ति होती है। संतों के लिए भक्ति उनकी जीवन शैली, जीवन मूल्य आदि सभी कुछ होते हैं। संत मुख्यत: भक्ति का पहला स्थान है और सभी कुछ बाद में आता है। इसी कारण संतों को पहले भक्त बाद में कवि या साहित्यकार होते हैं। गरीबदास की भक्ति भावना का अध्ययन करने से पहले भक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करना अनिवार्य है।

भक्ति की अवधारणा- 'भक्ति' शब्द 'भज' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय से बना है जिसका अर्थ है - अनुराग, श्रद्धा, सम्मान, सेवा, पूजन आदि।[1] मानक हिंदी कोश के सम्पादक रामचन्द्र वर्मा ने भक्ति के 17 अर्थ बताए है, जिसमें एक अर्थ उन्होंने यह बताया है, ''धार्मिक क्षेत्र में, आराध्य, ईश्वर, देवता आदि के प्रति होने वाला वह श्रद्धापूर्ण अनुराग जिसके फलस्वरूप वह सदा उसका अनुयायी रहता और अपने आपको उसका वशवर्ती मानता है।[2] रामान्द का मत है कि मानस का नियमन करके अनन्य भाव से भगवतपरायण होकर की गई उपाधि निर्मुक्त परमात्म सेवा भक्ति है।[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, 'भक्ति' भगवद् विषयक प्रेम को ही कहते है एवं अनुकूल भाव से भगवान के विषय का अनुशीलन करना ही भक्ति है।[4]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने धर्म की रसात्मक अनुभूति को 'भक्ति' का नाम दिया है।[5]

प्राय: ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम श्रद्धा, निष्ठा, कर्त्तव्य प्राण की भावना व्यक्त करना ही भक्ति है। यही संत गरीबदास की भक्ति या बन्दगी है।

संत गरीबदास की भक्ति के विविध पक्ष- मध्यकाल के दौरान जो भी संत थे वे सभी प्राय: भक्तों की श्रेणी में आते है, उन्होंने परम्पराओं से केवल वही स्वीकार किया जो उस समय समाज के लिए उपयोगी था। इस विषय में रामसजन पाण्डेय लिखते है, ''संतों ने स्वस्थ तथा समाजोपयोगी तत्वों को बेहिचक-बेझिझक अंगीकार किया है, चाहे वह तत्व शंकर के द्वारा अनुमोदित रहा हो और चाहे नाथों, सिद्धों, रामानुज, रामानन्द, नामदेव आदि के द्वारा संस्तुत और संपोषित।[6]

प्राय: संतों की भक्ति किसी विशेष विचारधारा से प्रभावित नहीं होती और न ही अपने आप को बदलती है वह तो स्वयं उनके अपने अनुभवों का ही संग्रह होता है।

उपास्य का स्वरूप - संसार के कण-कण में एक अद्भुत, अलौकिक, अनिर्वेचनीय एवं अव्यक्त सत्ता विद्यमान है प्राय: इसी अलौकिक सत्ता का नाम ब्रह्म है। इस 'ब्रह्म' को ही संत गरीबदास ने उपास्य के रूप में दर्शाया है। गरीबदास का ब्रह्म, निर्गुण, अकाल, अद्वैत, निराकार, सर्वशक्तिमान सृष्टि का सर्जक एवं पालनहार है। निराकार- संत जी ने 'निराकार' की पूजा के लिए साधकों से कहा है संतों की सेवा करना उस प्रभु की सेवा के सम्मान है।

संत जी कहते है -

''गरीब संतन की फूलमाल है, वरनोंबित अनुमान
मै सबहन का दास हू करो बंदगी दान।।''[7]

भगवान प्राय: कण-कण में समाया हुआ है वह हमारे मन में व्याप्त हैं प्राय: न तो किसी मूर्ति विशेष में है और ना ही किसी मंदिर विशेष में वह हर जगह व्याप्त है।

निर्गुण रूप- संत जी के ब्रह्म का स्वरूप वह जो केवल मन की आँखों से ही देख सकते है, जैसे कि बताया गया है भगवान मंदिर में रखी मूर्ति को समान है वैसा नहीं उसका तेज अलग है वह यहाँ की भौगोलिक चीजें है वैसी वहाँ पर नहीं है।

'' काया न छाया न माया न मूलं, शाखा न वृक्षों न पात्रों न फलं।
वृद्धो न बाला विशाला न पीतं, निश्चल निराकार रहता प्रीतम्।।''[8]
निर्गुण-सगुण दुहुं से न्यारा, गगन मण्डल गलतानं।
निर्गुण कहुं तो गुण किस कीने, सर्गुण कहुं तो हान।
निर्गुण सर्गुण से न्यारा, शब्द अतीतं अमोलं।।[9]

अकाल - संत जी ने ब्रह्म को काल रहित बताते हुए कहा है कि वह सब कालों में व्यापक होते हुए भी अकाल है विश्व की प्रत्येक वस्तु पर काल का प्रभाव पड़ा है। सृष्टि काल से प्रभावित है।

''जल थल के बीच में रच रहता, तू देख दीदार दरहाल है रे
ओह सेतु सुभानु जहान मांही, जां अजब महबूब अकाल है रे।।''[10]

भक्ति का स्वरूप -संत गरीबदास भवसागर से पार जाने का एकमात्र साधन भक्ति को मानते है। संत जी की भक्ति को निर्गुण और सगुण में प्राय: बाधा नहीं जा सकता। क्योंकि उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से जीव को प्रेम की अभिव्यंजना के माध्यम से भक्ति मार्ग दिखाया है। आचार्य शुक्ल ने भक्ति के विषय में लिखा है ''जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा भाजन के समीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो तब ह्रदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।[11] भक्ति की राह कठिन है उस पर चलना आमजन की बात नहीं है उसके लिए उसमें प्रेम, दया भाव, करूणा, त्याग, बलिदान अपनी इन्द्रियों को वश में करना मन को काबू करना होता है।

''गरीब सिर सांटे की भक्ति है और कुछ नहीं बात।
सिर के सांटे पाइये, अवगत अलख अनाथ।
गरीब सीस तुम्हारा जाएगा, कर सतगुरु कूं दान।।[12]

दाम्पत्य भक्ति - संत जी ने आत्मा रूपी जीव दुल्हन और परमतत्व रूपी परमात्मा को दूल्हा के स्वरूप में वर्णन किया है।

'' दुलहिन दास गरीब है सब सखियन की दास।''[13]
'' शीश करो कुरवान कि सौदा ससदा है
द्वादश दल के मध्य पुरुष एक हंसदा है।।
चिंता चंदन का अगर, लेप पर घसदा
गरीबदास का साहिब, चिश्म्यों बसदा है।।''[14]

संत गरीबदास ने जिस प्रकार दूल्हा दुल्हन के घर बारात लेकर उसे सदा के लिए अपने घर की सदस्य बना कर ले जाता है उसी प्रकार परमात्मा भी आत्मा को ले जा रहे है।

'' गरीब अनहदपुर: बाजे बजे, शहनाई और भेर।
ढोल दमामे दुडबड़ी, रणसिंधो की टेर।।
गरीब अविगत दुल्हा कंत है, चंढिया वेग बारात।
इहां दुलहिन आनन्द में, जतकां कंकन हाथ।।'' [15]

दास्य भक्ति - संत गरीबदास अपने आपको प्रभु का दास बताते है परमात्मा को सर्वशक्तिमान मानते है उसी के द्वारा यह सृष्टि चल रही है। उस परमात्मा पर दास अपने प्राणों को वारता है, न्यौछार करता है तथा उनसे निरन्तर प्रार्थना करता हूँ कि चरणों से इस धूल दास को कभी दूर मत होने देना।

'' गरीब जै जै जै जगदीश तुं, अंनत अनेक।
भक्ति मुक्ति के दास है सतगुरू दाता एक।।'' [16]
कहता दास गरीब है, बांदी जाम गुलाम।
तुमहो तैसी कीजियों, भक्ति हिरम्बर नाम।। [17]
दास गरीब कबीर का चेरा, सतलोक अमपुर डेरा। [18]

स्वयं को उस परमात्मा कबीर का चेला बताते हुए उस सतलोक जो अमर लोक है जहां पर वह निवास करता है वहां की बात कर रहा है।

सख्या भक्ति - संत गरीबदास जी ने अपनी भक्ति भावना सख्या भक्ति को अपनाया है। तुलसीदास की भक्ति दास्य भक्ति है। सूरदास की भक्ति सख्या भाव की भक्ति से युक्त है।

किन्तु कबीरदास की भक्ति दाम्पत्य एवं वात्सल्य भाव से युक्त है। संत जी ने अपनी वाणी के माध्यम से सभी प्रकार की भक्ति का वर्णन किया वैसे उनकी भक्ति संत कबीरदास की भक्ति भावना से प्रभावित थी।

भक्त का स्वरूप - संत की वाणी में मनुष्य को स्वच्छ एवं मन से पवित्र बनाया जाता है। उसके अन्दर वे सभी गुण होने चाहिए जो एक सच्चे भक्त के अन्दर हो वह सत्यवादी हो निष्ठावान हो, सदाचारी, चरित्रवान हो, त्याग की भावना, मोह माया से दूर, सत्य बोलने वाला, अपने मन पर काबू पा सके एवं जो गुरु के वचनों पर रूक सके।

''जो गुरू वंचन पर डट गया कटे गऐ फन्द चौरासी के गुरू की आज्ञा का पालन करने वाला होना चाहिए जिससे वह उस परमात्मा को प्राप्त कर सके।''

सत्यवादी - संत गरीबदास जी कहते है कि भक्त को सत्यवादी होना चाहिए यदि वह भक्त है तो उसके दिल में सत्य का वास होना चाहिए। साधक के अन्दर सत्य, दया, धर्म आदि के गुण होते है तभी हम उस परमपिता के सच्चे बच्चे कहलाएगे।

'' गरीब सत्य सुकृत संतोष सर, अधीनी अधिकार
दया, धर्म जिस उस बसे, सो साईं दीदार।।'' [19]

इसमें गरीबदास जी कहते है उस परमात्मा का सुमिरन करो अपने आधीनी भाव से उसे याद करो ह्रदय से पुकार करो उसके ह्रदय में दया धर्म बसी हो धारण की हो उसी आत्मा पर वह परमात्मा अपनी कृप्या दृष्टि डालता है उसी का कल्याण होता है।

विनयशील - संत गरीबदास जी कहते है हमारे ह्रदय में आधीनी भाव होना चाहिए हमें पल- पल उस परमात्मा को याद करते रहना चाहिए यदि भूल वश हमारे से कोई गलती भी हो जाती है तो हमारे अन्दर डर होना चाहिए कि कहीं हमारा परमात्मा रुष्ठ तो नहीं हो जाएगा पल-पल उसके आगे विनती करते रहना चाहिए यदि हमें परमात्मा से कुछ मांगना भी हो तो भक्ति दान मांगना चाहिए भक्ति दान गुरू दिजियो देवन के देवा हो, जन्म पाया भुलूँ नही करहूँ पर सेवा हो।

सद्चरित्रवान (सदाचारी) - ज्ञान, योग और भक्ति के लिए

मनुष्य को सदाचारी होना चाहिए। संत जी ने मनुष्य को सदाचारी होने का सन्देश दिया है। सच्चे साधक के अन्दर शील, सन्तोष, विवेक आदि गुणों का होना अनिवार्य है। ये सभी गुणों के कारण उसका मोक्ष प्राप्ति का रास्ता आसान हो जाता है।

संत गरीबदास की भक्ति के साधन- संत गरीबदास जी ने भक्ति के साधन परमात्मा से मिलना उसका माध्यम केवल भक्ति है। संत गरीबदास ने भक्ति के विविध आयामों का उल्लेख किया है कि किस प्रकार हम परमात्मा को प्राप्त कर सकते है नाम स्मरण के द्वारा गुरूदेव का साथ के माध्यम से साधना के द्वारा विनय, सत्य विचार आदि प्रमुख है। इनका वर्णन इस प्रकार से हैं।

गुरूदेव का साथ - संत गरीबदास भक्ति साधना में गुरू का स्थान सबसे ऊपर है गुरू को महत्व दिया है गुरू के बिना हम भगवान की प्राप्ति नहीं कर सकते।

'' गरीब सतगुरू पूर्ण ब्रह्म है सतगुरू आप अलेख
सतगुरू रमता-राम है या में मीन न मेख।।'' [20]
'' गरीब ऐसा सतगुरू हम निल्या, मारी ग्यासी गैन।
रोम रोम में सालती, पलक नहीं चैन।।'' [21]

गुरू की महता का वर्णन करते हुए संत गरीबदास जी कहते हैं कि शुरू तो पारस के समान होता है जो अपने शिष्य रूपी लोहे को ज्ञान रूपी पारस पत्थर द्वारा कंचन बनाने में समर्थ है।

गरीब सतगुरू पारस रूप है हमरी लोहा जात
पलक बीच कंचन करें, पलटे पिण्ड रू गात।। [22]

नाम स्मरण- संत गरीबदास जी ने नाम स्मरण पर जोर दिया है यदि भक्त भक्ति नहीं करता है तो वह इस काल जाल से मुक्त नहीं होता है वह उसी में फंसा रह जाता है और भक्ति सुमरन करने से ही होगी। जो नाम-दान गुरू के द्वारा दिया जाता है उसका स्मरण करने से ही भक्ति रूप धन इकट्ठा होता है और नाम देने का अधिकारी वही हो जिसका नाम देना का अधिकार हो एक सम्पूर्ण गुरू सद्गुरू ही नाम दे सकता है।

साधना में वर्णित लौ - संत गरीबदास जी ने बताया है कि परमात्मा की प्राप्ति का साधन उसकी भक्ति साधना ही है। गरीबदास जी कहते हैं कि उस प्रभु में हमारी मन हमेशा लगा रहना चाहिए चाहे हम कोई भी कार्य कर रहे हो, हमारा ध्यान तो उस परमात्मा की भक्ति में होना चाहिए। हमारा मन सांसारिक अन्य कार्यों में होने के बाद भी उस भगवान में होना चाहिए।

चेतावनी - संत गरीबदास जी भक्त को चेतावनी भी देते है, ये हमारा मन अन्य दिशा में ना जाकर केवल भक्ति में ही होना चाहिए। इस शरीर के द्वारा के बल भक्ति ही होनी चाहिए, अन्य कोई कार्य नहीं हो। इस शरीर का मृत्यु के बाद मिट्टी में मिल जाना है। इसलिए इसका सदुपयोग करना चाहिए। यदि हम इस शरीर के द्वारा भक्ति नहीं करते है तो यह केवल कुत्ते, सुअर के जैसी ही मानो। हमारा मानव जीवन का केवल एक ही उद्देश्य है भक्ति करना।

संक्षेप में हम कह सकते है कि संत गरीबदास जी ने अपनी भक्ति के द्वारा अपने शरीर की ही नहीं बल्कि आत्मा की भी मुक्ति होती है। यदि मानव भक्ति ना कर के केवल सांसारिक कार्यों में ही लगा रहता है तो वह उसका जीवन व्यर्थ ही गया। संत ने कभी-भी अपने आपको कवि नहीं माना वह अपने द्वारा जो वाणी लिखते वह केवल मानव कल्याण के लिए गुरू के महत्व को सर्वोपरि रखा यदि गुरू के बिना हम भक्ति करते है तो हमारा जीवन बेकार है। एक सच्चे भगत के अन्दर सच्चापन होना पवित्रता, त्याग, अपने अहंकारों के दमन के बाद में ही वह एक सच्चा भक्त बन पाता है।

संदर्भ सूची

1. द्वारका प्रसाद वर्मा (सं.), संस्कृत शब्दार्थ - कौस्तुभ, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1957 ई., पृ. 896
2. रामचन्द्र वर्मा (सं.), मानक हिंदी कोश, खण्ड-1, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1966 ई ?, पृ ? 188
3. डॉ. उदयभानु सिंह, तुलसी दर्शन मीमांसा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 1960 ई ?, पृ. 263
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, रामकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1940 ई., पृ. 143
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग-1, इण्डियन प्रेस प्रा.लि., प्रयाग, 1967 ई., पृ. 27
6. डॉ. रामसजन पाण्डेय, निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, कविता प्रकाशन, सुभाष विहार, दिल्ली, 1966 ई., पृ. 194
7. ग्रंथ साहिब साधु का अंग, पृ. 127
8. ग्रंथ साहिब, विज्ञान स्त्रोत, पृ. 429
9. ग्रंथ साहिब, ब्रह्म कला, स्वामी चेतनदास, ग्रंथ साहिब, संत गरीबदास जी की वाणी, डॉ ? श्यामसुन्दर शास्त्री (सं.) भार्गव प्रेस, हरिद्वार, 1964 ई., पृ. 411
10. ग्रंथ साहिब राग काफी, पृ. 1013
11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग-1, पृ. 32
12. ग्रंथ साहिब, गुरुदेव का अंग, पृ. 8
13. ग्रंथ साहिब, विरह का अंग, पृ. 19
14. ग्रंथ साहिब, राग चौरी, पृ. 803
15. ग्रंथ साहिब, विरह का अंग, पृ. 19
16. ग्रंथ साहिब, परिचय का अंग, पृ. 29
17. ग्रंथ साहिब, सुमरन का अंग, पृ. 14
18. ग्रंथ साहिब, गुरुदेव का अंग, पृ. 5
19. ग्रंथ साहिब, सांध का अंग, पृ. 120
20. ग्रंथ साहिब, गुरूदेव का अंग, पृ. 6
21. गुरू साहिब, गुरूदेव का अंग, पृ. 4
22. ग्रंथ साहिब, गुरूदेव का अंग, पृ. 7

ISSN 2278 - 0327

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक विचारों का एक अध्ययन

सुशील दत
शोधकर्ता, राजनीति विज्ञान,बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सोनिका
शोध निर्देशिका, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

सारांश- पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक भारतीय विचारक, अर्थशास्त्री, समउाजशास्त्री, इतिहासकार थे। दीनदयाल उपाध्याय जी ने सामाजिक विचारों के साथ-साथ राजनीतिक विचारों का भी प्रतिपादन किया। 1937 में कॉलेज के समय से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड गऐ थे तथा समाज व देश की भलाई के लिए उन्होनें स्वयं को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को समर्पित कर दिया। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नेहरू की नीतियों से क्षुब्ध होकर उन्होनें अनेक राजनीतिक विचार प्रस्तुत किये। दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। उपाध्याय जी कहते थे कि भारतीय संस्कृति इतनी महान् है कि हम सब को उसका अनुसरण करना चाहिए तथा हमें पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए। इस शोध पत्र में उपाध्याय जी के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करने का प्रयास किया जाएगा। उपाध्याय जी भारत को पाश्चात्य अवधारणाओं जैसे व्यक्तिवाद, लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद पर निर्भर रहना उचित नहीं मानते थे। उपाध्याय जी तो इन अवधारणाओं के भारतीयकरण पर बल देते थे। इस शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या उपाध्याय जी के राजनीतिक विचार वर्तमान समय में उत्पन्न राजनीतिक समस्याओं को दूर करने में सक्षम है या केवल खोखले विचार बनकर ही रह गऐ हैं।

कुंजी शब्दः व्यक्तिवाद, समाजवाद, लोकतंत्र, संस्कृति, साम्यवाद, पूंजीवाद।

प्रस्तावना- पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी कहते थे कि समाज स्वंयभू इकाई है तथा राज्य की उत्पत्ति समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई। समाज की उत्पत्ति पहले हुई थी और राज्य की उत्पत्ति बाद में हुई। धर्म के आधार पर ही समाज चलता था। उपाध्याय जी इस भारतीय मान्यता से सहमत थे कि कृत युग में राज्य व दण्ड व्यवस्था नहीं थी। धर्म के आधार पर संचालित स्वायत समाज था। समय के साथ-साथ समाज में विकृति आ गई। उस विकृति से धर्म के संरक्षण करने के लिए राज्य की उत्पत्ति हुई। बाद में समाज में अव्यवस्था फैल गई और लोभ, क्रोध से धर्म का पतन प्रारंभ हो गया। सारे ऋषि घबरा गए और सभी ब्रह्मा जी के पास चले गए। तब ब्रह्मा जी ने ऋषियों को स्वयं द्वारा रचित ग्रंथ दंड नीति या राजशास्त्र दिया तथा उन्होंने राजा मनु को बुलाकर कहा कि तुम्हें इस धरा पर राज करना है और पापियों, अधर्मियों व अनाचार करने वाले प्राणियों को दंड देना है। मनु ने इस से इंकार कर दिया और कहने लगा कि हे प्रभु अगर मैं राजा बनता हूँ तो मुझे पापी प्राणियों को दंड देना पड़ेगा उनको कारागार में डालना पड़ेगा और अन्य अनेक पाप कर्म करने पड़ेंगे और मैं व्यर्थ में पाप को क्यों करूँ। अगर प्रजा धर्म का पालन करेगी तो उसका फल भी मुझे प्राप्त होगा। अगर प्रजा पाप कर्म करेगी तो उसका फल भी मुझे प्राप्त होगा ऐसा नहीं हो सकता कि मीठा-मीठा गप-गप और कड़वा-कड़वा थू-थू, दोनों ही मिलने चाहिए।

पंडित दीनदयाल जी का मत था कि समझौता सिद्धांत राज्य पर लागू हो सकता है परंतु राष्ट्र पर नहीं। पंडित दीनदयाल जी का मत था कि पश्चिम में कुछ उल्टा हुआ। समाज तो उनके अनुसार समझौते में से पैदा हुआ परन्तु राजा दैवी अधिकार के आधार पर सीधा ईश्वर का प्रतिनिधि बन गया। यह विरोधाभाषी बात कैसे हो सकती है।

शोध समस्या - पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करना।

शोध उद्देश्य

- पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करना।
- धर्म राज्य संबंधी विचारों का अध्ययन करना।

- प्रजातंत्र संबंधी विचारों का अध्ययन करना।
- लोकतंत्र के भारतीयकरण संबंधी विचारों का अध्ययन करना।

शोध विधि – वर्तमान शोध पत्र में विवरणात्मक और आदर्शात्मक विधि का प्रयोग किया जाएगा। शोध में गुणात्मक, व्याख्यात्मक विधि का प्रयोग किया जाएगा तथा शोध पत्र में द्वितीयक स्त्रोतों के रूप में पुस्तकें, पत्र, समाचार पत्र, पत्र-पत्रिका, इन्टरनेट, शोध पत्रों आदि का भी प्रयोग किया जाऐगा।

राज्यवाद – राज्य का मानव जीवन में क्या स्थान है, हमेशा राजनीति शास्त्र में विवाद का विषय रहा है। पूंजीपतियों का मत है कि राज्य होना चाहिए तथा उधोग धन्धों का संवर्द्धन करने वाला होना चाहिए, इसके विपरीत व्यक्तिवादी मानते हैं कि राज्य एक आवश्यक बुराई है, इसको होना चाहिए तथा कम से कम व्यक्तियों के जीवन में हस्तक्षेप करना चाहिए। अराजकतावादी विचारक मानते हैं कि राज्य को समाप्त कर देना चाहिए। कल्याणकारी राज्य के समर्थक विचारक कल्याणकारी राज्य को अति आवश्यक मानते हैं क्योंकि इसके अभाव में नागरिकों का कल्याण संभव नहीं है, वे राज्य को केवल पुलिस राज्य का स्वरूप नहीं मानते अपितु सभी नागरिकों का सर्वांगीण विकास करने वाली संस्था मानते हैं। समाजवादी विचारक राज्य को कल्याणकारी राज्य की भाँति समाज का कल्याण करने वाली संस्था मानते हैं जबकि मार्क्सवादी विचारक राज्य को शोषण करने वाली संस्था मानते हैं। उनका मत है कि राज्य निर्धन व श्रमिक लोगों का शोषण करता है तथा पूंजीपतियों का भरण पोषण करता है इसलिए मार्क्सवादी विचारक राज्य विहीन समाज की स्थापना के पक्षधर हैं।

धर्म राज्य –दीनदयाल उपाध्याय धर्मपरायण, नीतिवान साधु स्वभाव के महापुरुष थे। वे भारत देश में धर्म का राज्य स्थापित करना चाहते थे। अगर हम दीनदयाल जी को एक राजनीतिज्ञ न कहकर एक धर्म परायण व्यक्ति कहें तो अधिक सार्थक होगा। इसका अर्थ यह नहीं था कि वे भारत को एक सांप्रदायिक राज्य बनाना चाहते थे। धर्म राज्य एक असंप्रदायिक राज्य होगा। यह कोई निरंकुश व तानाशाही वाला राज्य नहीं होगा। इस राज्य में अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर बल दिया जाएगा। उपाध्याय जी का धर्मराज्य गाँधी जी के राम राज्य की भांति होगा जिसमें नीति, ज्ञान, न्याय, समता उसके अभीष्ट होंगें।

धर्म से तात्पर्य मत, संप्रदाय, पंथ, मजहब से नहीं है। आज सबसे बड़ी विडंबना है कि अंग्रेजी के रिलीजन शब्द का अर्थ धर्म मान बैठे हैं जबकि रिलीजन मत, पंथ, मजहब है। धर्म शब्द बड़ा व्यापक है। हमारे यहां धर्म से तात्पर्य सेवा, परोपकार, दया, करुणा, सहिष्णुता, न्याय और नैतिकता आदि मानवीय गुणों का समुच्चय है।[1]

इस राज्य में अन्याय, अनाचार, पाप व अधर्म व शोषण के लिए कोई स्थान नहीं होगा। उपाध्याय जी कहा करते थे कि आज देश में सामाजिक व राजनीतिक नैतिकता शेष नहीं है। चारों ओर सत्ता के भूखे लोग सत्ता हासिल करने के लिए हर प्रकार के प्रयास करते हैं। उनका ध्येय केवल सत्ता प्राप्त करना है, चाहे वह किसी भी मूल्य पर क्यों न हो। अधर्म ही आज का धर्म बन गया है। उनका मत था कि इस प्रकार से कमाया गया धन, अंत मे अहितकर ही साबित होगा। दीनदयाल जी ने एक बार कहा था, लंका में सोने की ईंट होगी, किंतु वहां रामराज्य नहीं होगा। दीनदयाल उपाध्याय धर्मवादी होने के साथ ही धर्म राज्यवादी भी थे। उपाध्याय मानते थे कि हमारी राज्यविहीन धर्म व्यवस्था एवं पंचायत पद्धति श्रेष्ठ माननीय जीवन की प्रतिपादक थी, लेकिन हमने राज्य तत्व की अवहेलना की, इसी कारण विदेशी ताकतों को भारत में घुसने का अवसर मिल गया और इसलिए बाद मे हमें स्वराज्य को ही अपना स्व धर्म घोषित करना पड़ा।[2]

प्रजातंत्र – दीनदयाल उपाध्याय जी प्रजातंत्र के प्रबल समर्थक थे। भारतीय संविधान का आधारभूत ढांचा प्रजातंत्रीय ढांचा है। पंडित जी का मत था कि भारतीय संविधान में अनेकों विशेषताऐं हैं। वे व्यस्क मताधिकार को भी भारतीय सविधान की मुख्य विशेषता मानते थे परंतु वे संविधान लागू होने के प्रारंभिक वर्षों में इस व्यापक मताधिकार को लेकर असमंजस में थे, वे सोचते थे, क्या भारत के नागरिकों में वर्तमान समय में वो समझ है कि इस दायित्व को संभाल सके परन्तु पंडित जी को समय के साथ बोध हो गया। इसके अतिरिक्त इस लोकतंत्र में लोगों की सीधी भागीदारी भी संभव नहीं है और वे इस व्यस्क मताधिकार के प्रबल समर्थक बन गऐ।

उपाध्याय जी की मान्यता थी कि लोकतंत्र भारत को पश्चिम की देन नहीं है। भारत की राज्यावधारणा प्रकृतित: लोकतंत्रवादी है। वे लिखते थे, 'वैदिक, सभा और समिति का गठन जनतंत्रीय आधार पर होता था तथा मध्यकाल में अनेक गणराज्य पूर्णत: जनतंत्रीय थे। राजतंत्रीय व्यवस्था में भी हमने राजा को मर्यादाओं में जकड़कर प्रजानुरागी ही नही, प्रजा (जन) अनुरागी भी माना है। इन मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाले नृपतियों के उदाहरण अवश्य मिल सकते हैं, किंतु उनके विरूद्ध जनता का विद्रोह तथा

उनको आदर्श शासक न मानकर, हीनता की श्रेणी में गिनने के प्रयत्नों से ही हमारी मौलिक जनतंत्रीय भावना की पुष्टि होती है।'[3]

लोकतंत्र का भारतीयकरण – पंडित दीनदयाल जी पाश्चात्य लोकतंत्र के समर्थक नहीं थे। उनका मत था कि पश्चिमी देशों ने चुनाव की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया प्रदान की है। संविधान के अनुसार कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका का निर्माण किया है। उपाध्याय जी का मत कि ये तो लोकतंत्र का एक औपचारिक स्वरूप है। उपाध्याय जी तो लोकतंत्र को जन आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने वाला मानते थे। उपाध्याय जी केवल ढाँचे मात्र को ही लोकतंत्र नहीं मानते थे। उनका मत था कि व्यस्क मताधिकार तथा निर्वाचन पद्धत्ति लोकतंत्र की विशेषता है किंतु इतने से तो लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो जाती है। रूस में तो ये दोनों विशेषताऐं हैं, लेकिन राजनीतिक पंडित उस लोकतंत्र मानने को तैयार नहीं हैं। उपाध्याय जी बहुमत के शासन को भी जनतंत्र नहीं मानते थे।

जनतंत्र का यह स्वरूप '*सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय*' नहीं हो सकता। निर्वाचनों में कभी-2 चुनाव परिणामों में चौंकाने वाली स्थिति सामने आती है। किसी दल का प्रत्याशी या निर्दलीय प्रत्याशी 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत मत प्राप्त करके विधायक और सांसद बन जाते हैं। उस समय 75 प्रतिशत से 80 प्रतिशत मतदाताओं के मत का कोई मूल्य नहीं रहता है।[4]

उपाध्याय जी का मत था कि भारतीय लोकतंत्र की कल्पना में निर्वाचन, बहुमत, अल्पमत, आदि बाहरी व्यवस्थाओं के स्थान पर सभी मतों के सम्मान, सामंजस्य और समन्वय पर बल दिया जाना चाहिए। पंडित जी का मत था कि अगर एक व्यक्ति भी विरूद्ध मत रखता है तो उसके मत का आदर करना चाहिए।

पंडित दीनदयाल जी का मत था कि लोकतंत्र में विरोधी दल की अपनी महता होती है, विरोधी दल को सरकार की नीतियों पर पैनी दृष्टि रखनी चाहिए। यदि नीतियां जनता के हितों के विपरीत होती हैं तो विरोधी दल को उन नीतियों का जमकर विरोध करना चाहिए। जनतंत्र में सत्ता के प्रति उच्च स्तर की निरासक्ति आवश्यक है। राजनीति हमारे लिए जनता की सेवा का साधन है, ऐश्वर्य भोग के लिए नहीं, भारत का तत्वज्ञान हमें यही संदेश देता है।

उपाध्याय जी के मतानुसार, भारत ने इस समस्या का समाधान राज्य के हाथ से लोकमत का निर्माण के साधन छीन कर किया है। लोकमत-परिष्कार का कार्य है वीतराग द्वंद्वातीत संन्यासियों का। लोकमत के अनुसार चलने का काम है, राज्य का। संन्यासी सदैव धर्मतत्वों के अनुसार जनता के ऐहिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष की कामना लेकर अपने वचनों एवं निरीह आचरण से जनजीवन के ऊपर संस्कार डालते रहते हैं। उन्हें धर्म की मर्यादाओं का ज्ञान करवाते रहते हैं। उनके समक्ष लोभ और मोह न होने के कारण वे सत्य का उच्चारण सहज ही कर सकते हैं। शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हैं। इन मूल्यों को बाँधे रहने के बाद, लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों का अतिक्रमण करके संकट का कारण नहीं बनेगी।[5]

उपाध्याय जी का मत था कि लोकतंत्र की सफलता के लिए हर मानव में सहिष्णुता, संयम, अनासक्त भाव व कानून के प्रति उनके प्रति आदर की भावना होनी चाहिए।

अच्छा उम्मीदवार- उपाध्याय जी का मत था कि अच्छा उम्मीदवार वह होता है जो विधानमंडलों में अपने दल के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही क्षेत्र के मतदाताओं की नब्ज पहचानता हो। एक व्यक्ति होने के नाते उसे अपने क्षेत्र के मतदाताओं के प्रति वफादार होना चाहिए तथा एक दल का सदस्य होने के नाते उसे उस दल की नीतियों के प्रति आदर भाव होना चाहिए।

जातिवाद - भारत देश में विभिन्न जातियों के लोग निवास करते हैं। वे लोग अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति अपनी जाति के माध्यम से ही करने का प्रयास करते हैं। भारत के अधिकतर लोगों की राय है कि उनकी भलाई केवल उनकी जातियों के व्यक्ति ही कर सकते हैं। इसलिए शिक्षित हो या अशिक्षित व्यक्ति सोचते हैं कि उनकी जाति के व्यक्तियो को विधायक या सांसद की टिकट प्राप्त होनी चाहिए जिससे उनकी जाातियों के व्यक्ति विधानसभाओं व लोकसभा में जाएंगें, उनके हितों की पूर्ति के लिए कानून बनाएंगे तथा राज्य या केंद्र की सरकारी व गैर सरकारी नौकरियों में उनकी जाति के लोग ही पद प्राप्त करेंगें।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी कहते थे कि ये भारतीय राजनीति की कड़वी सच्चाई है कि भारतीय नागरिक अपने राष्ट्र से ऊपर जातियों को वरीयता देते हैं, जिसको उपाध्याय जी अच्छा नहीं मानते थे। उनका मानना था इस प्रकार की प्रकृति से राष्ट्र व जातियों का भला नहीं होगा। अपितु राष्ट्र व समाज में व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार फैलेगा। पंडित जी का यह भी मानना था कि यदि एक जाति का कोई भी व्यक्ति अगर मुख्यमंत्री भी बन जाता है और वह वास्तव में अपनी जाति के लोगों को सरकारी पद देना चाहता हो तो भी वह संपूर्ण जाति को नौकरी नहीं दे सकता अपितु वह भी अपनी सम्पूर्ण जाति के उन लोगों को नौकरी नहीं दे सकता, जिन्होंने चुनावों के समय में उनकी धन

व बल से सहायता की हो इससे तो उस जाति के निर्धन व्यक्ति सरकारी व निजी नौकरियॉ प्राप्त करने से वंचित रह जाऐंगे। इसलिए पंडित जी जातिवाद की व्यवस्था की भर्त्सना करते और जनता से अपील करते थे कि आप केवल ईमानदार व्यक्तियों को ही वोट दें, चाहे वे किसी भी जाति से संबंधित ही क्यों न हो।[6]

अल्पसंख्यकों के प्रति तुष्टीकरण की नीति

दीनदयाल जी एक राष्ट्रवादी चिंतक थे। वे भारतीय एकता व अखंडता के प्रबल समर्थक थे। उनका कहना था कि भारत एक राष्ट्र है उसमें रहने वाले सभी नागरिक भारतीय हैं। वे भारत के धार्मिक आधार पर विभाजन के पक्ष में भी नहीं थे तथा भारत देश को अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक आधार पर विभक्त करने के भी पक्षधर नहीं थे। उनका कहना था कि राजनीतिक दल विशेषकर कांग्रेस को भारत के मुस्लिम समुदाय को एक वोट बैंक की भांति प्रयोग नहीं करना चाहिए अपितु इस समुदाय को आर्थिक व शैक्षिक रूप से सुदृढ़ बनाने का प्रयास करना चाहिए। कांग्रेस द्वारा हिंदूओं और मुस्लिम लोगों के लिए अलग-अलग नीतियों का निर्धारण करना सर्वथा अनुचित है। अगर ऐसा होता रहा तो मुस्लिम समुदाय भारत के अन्य समुदायों से जुड़ नहीं पाएगा तथा उसमें अकेलेपन का भाव जागृत हो जाएगा और वह हमेशा हर सरकार से उसी प्रकार की तुष्टीकरण की बात मनवाने का प्रयास करेगा जो कि सर्वथा अनुचित होगा।

उपनिवेशवाद के विरोधी -

पंडित दीनदयाल जी उपनिवेशवाद के घोर विरोधी थे। वे कहते थे कि उपनिवेशवाद ने एशिया, अफ्रीका के असंख्य देशों को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। पाश्चात्य जगत ने अपने स्वार्थों को पूर्ण करने के लिए एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के देशों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा उन देशों का राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक रूप से अत्यधिक शोषण किया। पाश्चात्य जगत् ने इन देशों को मानसिक रूप से गुलाम भी बना दिया तथा इन देशों की नस्लों को अग्रेज बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

उपनिवेशवाद के कारण इन देशों का सांस्कृतिक व चारित्रिक पतन हो गया। पाश्चात्य जगत् ने इन राज्यों के लोगों में हीन भावना भर दी कि अंग्रेज श्रेष्ठ हैं तथा बाकी विश्व के लोग अज्ञानी व मूर्ख हैं। अत: अंग्रेज कहते थे कि यह हमारा दायित्व है कि संपूर्ण विश्व को वे शिक्षित करें। अंग्रेजों ने हर देश की शिक्षा का समूल नाश कर दिया तथा अपनी अंग्रेजी शिक्षा को इन उपनिवेशों पर थोप दिया।

संसदीय लोकतंत्र - राजनीति में आदर्श के प्रणेता पंडित दीनदयाल जी ने कहा था कि राजनीति में भी व्यवहार के कुछ निश्चित नियम और मूल्य होने आवश्यक हैं। राजनीति ऐसी होनी चाहिए जिसमें राष्ट्र का हित हो तथा जनता का कल्याण हो सके परंतु वर्तमान समय में राजनीति में इस प्रकार की भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। पंडित जी का मानना था कि आज राजनीति पतन की ओर अग्रसर हो रही है। भारत में संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया है परन्तु पंडित जी का मत था कि संसदीय लोकतंत्र का अर्थ यह नहीं है कि एक संसद का निर्माण कर देना तथा जनता द्वारा अपने सदस्यों को चुन देना। पंडित जी इस अवस्था को संसदीय लोकतंत्र नहीं मानते थे, जब तक लोगों की इच्छाओं का सम्मान नहीं, लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तब तक कैसा संसदीय लोकतंत्र होगा ?

भारत में सही अर्थों में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना तब होगी, जब लोग अपनी समस्याओं पर खुलकर विचार विमर्श करेंगे तथा उनकी समस्याओं का समाधान करने का प्रयास सरकारे सच्चे दिलों से करेंगीं। विकास के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं का निराकरण संभव होगा। सत्ता पक्ष और विपक्ष बिना किसी भय के स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचारों को प्रकट कर सकेंगे तथा दोनों एक दूसरे के सुझावों का सम्मान करेंगें। सत्ता पक्ष एवं विपक्ष दोनों में राष्ट्र हित के नाम पर विश्वास होगा क्योंकि लोकतंत्र जनहित का शासन है, इसलिए सत्ता पक्ष एवं विपक्ष दोनों का लक्ष्य राष्ट्र सेवा होना चाहिए न कि कोई निजी स्वार्थ।

सजग मतदाता- उपाध्याय जी की यह आस्था थी कि मतदाता की बुद्धिमता ही नेताओं के स्वार्थों का इलाज है। राजनीतिक दलों को, जो देश की राजनीति में प्रमुख दल के रूप में विकसित होना चाहते हैं, इन खतरों से सचेत रहकर अपने सिद्धांतों की हत्या नहीं करनी चाहिए। इसी भॉति जनता का यह कर्तव्य है कि वह जागरूक रहकर बुद्धिमता के साथ हंस के समान अपने नीर-क्षीर-विवेक का परिचय दे। जिससे देश के राजनीतिक दलों के गलत दृष्टिकोण को सुधारा जा सके। मतदाता को मतदान के अधिकार का उपयोग किसी के निर्देश पर न कर, स्वयं के सद्विवेक एवं आत्मा की पुकार पर करना चाहिए। दीनदयाल उपाध्याय एक सच्चे राजनीतिज्ञ थे, उन्हें केवल सत्ता का मोह नहीं था, अपितु वे देश व राष्ट्र को सबल बनाने का स्वप्न संजों कर रखते थे। पंडित दीनदयाल जी एक सच्चे एवं प्रखर लोकतंत्रवादी थे। उनके द्वारा दिए गए विचार दलवाद से उपर उठकर एक शुद्ध लोकतंत्रवादी के नाते व्यक्त किए गए विचार है।

राजनीति में आदर्श के प्रणेता–पंडित दीनदयाल जी ने कहा था कि राष्ट्र के समक्ष एक निश्चित लक्ष्य एवं आदर्श होना चाहिए और राजनीति में भी नैतिक व्यवहार के कुछ निश्चित नियम और मूल्य होने चाहिए। उपाध्याय जी एक आदर्श व्यक्तित्व तो थे परंतु उनमें व्यवहारिकता भी कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे जानते थे कि भारतीय संस्कृति इतनी सुदृढ़ एवं इतनी व्यावहारिक है, अगर भारतीय संस्कृति के मूल्यों का राजनीति के मूल्यों के साथ समन्वय हो जाए तो भारतीय राजनीति की दशा एवं दिशा पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाएगी तथा भारतीय राजनीति में शुचिता का प्रवेश हो जाएगा तब भारतीय राजनीतिज्ञों को पश्चिम के खोखले सिद्धांतों की ओर नहीं देखना पड़ेगा। उपाध्याय जी का कहना था कि पश्चिमी विद्वानों ने विश्व में भ्रम का ऐसा मकड़जाल फैला दिया है कि लोकतंत्र, गणतंत्र, समानता, भ्रातृत्व आदि सिद्धांतों के जनक पश्चिमी देश हैं परंतु उपाध्याय जी का मत था कि इन सभी सिद्धांतों का भारतीय संस्कृति में हजारों वर्षों से ही समावेश है।

राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता–उपाध्याय जी का मत था कि राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता निर्माण की अत्यधिक आवश्यकता है। इस हेतु अनेक सम्मेलन भी आयोजित किए जा चुके हैं। इन सम्मेलनों में कुछ निर्णय तो लिए गए हैं परंतु व्यापक रूप से निर्णयों की कमी है। उपाध्याय जी कहते थे कि व्यापक रूप से आचार संहिता निर्माण का दायित्व भी कांग्रेस दल का ही है क्योंकि यह पार्टी एक तो सबसे पुरानी है और दूसरी सरकार में हैं। अत: इस पार्टी को आचार संहिता का निर्माण करना चाहिए तथा स्वयं अपने कार्यों से अच्छे दल का उदाहरण अन्य दलों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए।

चुनाव प्रचार के खर्च की आवश्यक जांच -

उपाध्याय जी कहते थे कि जब भी राज्यों में चुनाव होता है तो राजनीतिक दलों द्वारा अनावश्यक रूप से धन खर्च किया जाता है। वे चाहते थे कि इस प्रकार की प्रवृत्ति पर तुरंत रोक लगनी चाहिए क्योंकि यह स्वस्थ लोकतंत्र के लिए अत्यंत खतरनाक है। उपाध्याय जी को भय था कि अगर स्वतंत्रता के तुरंत बाद ही चुनाव में अलोकतांत्रिक प्रक्रिया अर्थात् धन व बल का प्रयोग होने लगा तो भविष्य में तो इस प्रकार की नकारात्मक प्रवृत्तियों को रोकना असंभव हो जाएगा। दीनदयाल जी ने कहा मेरी शासन से मांग है कि वह विभिन्न दलों द्वारा किए गए चुनाव प्रचार की निष्पक्ष जांच करवाए। यह आज की शरारत को समाप्त करने के ही नहीं, भविष्य में चुनाव प्रचार का स्तर उठाने के लिए भी आवश्यक है।

दल मात्र एक टोली नहीं -उपाध्याय जी कहते थे कि दल कोई एक टोली मात्र नहीं है, जिसका उद्देश्य केवल सता प्राप्त करना नहीं है अपितु वह तो विशिष्ट उद्देश्यों के लिए स्थापित एक संस्था होती है। दल एक समूह की श्रद्धा होती है जो अनुशासन में चलने की प्रेरणा देती है। दल अपने उद्येश्यों को घोषणा पत्र के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। जनता को बताते हैं कि अगर हमें सता प्राप्त होती है तो हम इन कार्यों को करेंगे। दीनदयाल जी कहते थे कि कार्यकर्ताओं को घोषणा पत्र सदा दिमाग में रखना चाहिए ताकि वह उन घोषणाओं को साकार रूप देने के लिए चिंतन एवं मनन करते रहे।

उपाध्याय जी कहते थे कि सभी दलों का द्वारा घोषणा पत्रों का निर्माण किया जाता है तथा उन घोषणा पत्रों में जनता के लिए वायदों की झड़ी लगी रहती है। हर दल अपने घोषणा पत्र को सर्वोत्तम बताता है परंतु उपाध्याय जी का मत था कि घोषणा पत्र ऐसा होना चाहिए जो वास्तविकता से परे ना हो तथा जनता उन घोषणाओं को सहर्ष भाव से स्वीकार कर सके। घोषणा पत्र कल्पना लोक का विचरण करने वाला नहीं होना चाहिए क्योंकि अगर ऐसा होगा तो जनता उस पर विश्वास नहीं करेगी तथा अन्य दलों के सामने घोषणा पत्र को उपहास का पात्र बनना पड़ सकता है।

उपाध्याय जी कहते थे कि घोषणा पत्र में अंकित वायदे गहन आयाम रखते हैं क्योंकि इन्हीं घोषणा पत्रों के माध्यम से आज के कार्यकर्ता या कल के शासक दल की नीति रीतियों पर आचरण करने कराने वाले तैयार होंगे और तभी इस देश में स्थित्यंतर आना प्रारंभ होगा। दीनदयाल जी इसी विचार से दल का संगठन और संरचना कर रहे थे।

मतदाताओं का प्रशिक्षण -उपाध्याय जी का मानना था कि स्वतंत्र लोकतंत्र के लिए अच्छे राजनीतिक दल, राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता का होना जितना आवश्यक है उतना ही मतदाताओं का स्वस्थ रूप से मतदान करने योग्य होना भी आवश्यक है। उपाध्याय जी का मत था कि चुनाव मतदाताओं को राजनीतिक प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करता है। चुनाव में मतदाताओं को विविध बातों की जानकारी प्राप्त होती है। उपाध्याय जी जानते थे कि भारत में जाति, धर्म, भाषा व क्षेत्र आदि के आधार पर वोटों का प्रयोग किया जाता है। इसलिए उपाध्याय जी मतदाताओं को राजनीतिक प्रशिक्षण देने के समर्थक थे। वे कहते थे कि अगर मतदाता जागरूक हो जाएंगे तो राजनीतिक दल अपने आप सुधर जाएंगे। उपाध्याय जी ने 1962 के चुनाव से पूर्व 'आपका मत'

शीर्षक से एक लेख माला आर्गेनाइजर में लिखी थी।

चुनाव अनिवार्य

उपाध्याय जी का मत था कि राजनीति धन अर्जन का साधन नहीं है अपितु राजनीति जन सेवा का साधन है। राजनीति के द्वारा ही मानव कल्याण, राष्ट्र का कल्याण संभव है। राजनीति तभी जनसेवा कर सकती है, जब सभी राजनीतिक दल चुनाव लड़े तथा जनता की सेवा की मानसिकता रखें। जनसेवा की आवश्यक शर्त है निष्पक्ष चुनाव अनिवार्य हो।

उपाध्याय जी ने कहा 'चुनाव के समय लोग बात समझ लेने की मानसिकता में रहते हैं। विभिन्न दलों के विचार सुनने तथा उनको तुलनात्मक दृष्टि से परखने का अवसर लोगों को मिलता है। हमें इसका लाभ अवश्य लेना चाहिए। चुनाव के बहाने दल संसाधनों को भली-भांति जुटा सकता है। कार्यकर्ताओं की संख्या भी बढ़ाई जा सकती है। चुनाव में हार भी जाएं तब भी दल का संगठन आगे ही बढ़ता है।'[7]

अराजकता निंदनीय

मद्रास में प्रथम हिंदी विरोधी आंदोलन 1937 में हुआ था, जब मद्रास प्रेसीडेंसी के स्कूलों में हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने की कोशिश की गई। ई. वी. रामास्वामी (पेरियार) जस्टिस पार्टी (जो बाद में द्रविड कशगम बन गई) ने इसका विरोध किया। दूसरी बार जब राजभाषा अधिनियम के तहत 26 जनवरी, 1965 को हिंदी को एकमात्र अधिकारिक भाषा बनाया जाना था, दक्षिण भारत के राज्यों, विशेष रूप से मद्रास स्टेट में हिन्दी-विरोधी आंदोलन तेज होने लगा।

उपाध्याय जी कहते थे कि बड़े दु:ख का विषय है कि न तो केंद्रीय और प्रांतीय सरकार के प्रवक्ताओं और न कांग्रेस प्रधान कामराज नाडार, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी या अन्य किसी जन नेता ने इन हिंसात्मक कार्यवाहियों की निन्दा नहीं की। यदि इन अराजक काण्डों के विरुद्ध वे डटकर खड़े होते तथा इन अवांछनीय कृत्यों को उनका मौन समर्थन न होता तो जन-धन की इतनी भारी हानि नहीं होती। हम किसी भी अवस्था में इन घटनाओं को उचित नहीं ठहरा सकते। सरकार को शांति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए कड़े कदम उठाने चाहिए।[8]

निष्कर्ष

उपाध्याय जी के राजनीतिक विचारों ने राज्य की नीतियों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने का प्रयास किया है। उपध्याय जी ने लोकतंत्र के भारतीयकरण पर बल दिया है। लोकतंत्र की अवधारणा भारतीयों के लिए कोई नई अवधारणा नहीं है अपितु इसके कई प्रमाण भारतीय संस्कृति में मिलते हैं। उपाध्याय जी सामाजिक व राजनीतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को सबल बनाने का समर्थन करते थे तथा प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्रकार के अधिकार देने के पक्षधर थे। उपाध्याय जी जानते थे कि अधिकारों के बिना समाज में विकास सम्भव नहीं है। उपाध्याय जी राष्ट्र व राज्य को भिन्न मानते थे तथा उनका दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्रीय भावना से ही राज्य को एकता प्राप्त होती है तथा राज्य शक्तिशाली बनता है। उपाध्याय जी के राजनीतिक विचार वर्तमान समय की राजनीतिक समस्याओं का समुचित समाधान प्रस्तुत करते प्रतीत होते हैं।

संदर्भ सूची

1. सक्सेना, मनोज कुमार, 'पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्मक मानव दर्शन-विविध आयाम', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. सं.-47
2. सक्सेना, मनोज कुमार, 'पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्मक मानव दर्शन-विविध आयाम', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. सं.-172
3. शर्मा, डॉ. महेश चंद्र, 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार'', प्रभात प्रकाशक, नई दिल्ली, संस्करण, (2017), पृष्ठ सं.-174
4. सक्सेना, मनोज कुमार, 'पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्मक मानव दर्शन-विविध आयाम', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. सं.-43
5. सक्सेना, मनोज कुमार, 'पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्मक मानव दर्शन-विविध आयाम', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. सं.-177
6. शर्मा, डॉ. महेश चंद्र, ''पंडित दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार'', प्रभात प्रकाशक, नई दिल्ली, संस्करण, (2017), पृष्ठ सं.-179-180
7. शर्मा, हरीश दत ''राष्ट्रीय जीवनी माला पं. दीनदयाल उपाध्याय'' फ्यूजन प्रकाशक, नई दिल्ली, संस्करण (2017), पृष्ठ सं.- 19
8. भारद्वाज, राजकुमार, 'दीनदयाल उपाध्याय रचना-संचयन' अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,(2019), पृ. सं.-499

ISSN 2278 - 0327

इतिहास में गोंड रियासत मकड़ाई (1535-1948)

श्रीमति दीपशिखा चौधरी
शोधार्थी, एम.ए. इतिहास
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल

डॉ. बी.सी. जोशी
शोध निर्देशक, प्राध्यापक एवं विभाग प्रमुख
शासकीय नर्मदा महाविद्यालय होशंगाबाद

सारांश- प्रस्तुत शोध पत्र मध्यभारत की मकड़ाई रियासत के इतिहास को छानने का प्रयास करता है, इस शोध पत्र के द्वारा हम इस नतीजे पर पहुँच सकेगें की किस प्रकार मकड़ाई रियासत की शुरूआत हुई क्या-क्या विकास हुए और कैसे उसका अंत हुआ। परिणाम बताते है कि, भले ही इतिहास के पन्नों में मकड़ाई का नाम स्वर्ण अक्षरों में न लिखा हो भले ही वह बहुत बड़ी रियासत न रही हो, भले ही उसके लिखित दस्तावेज कम हो, या फिर मिले न हो, फिर भी शासकों की यह बड़ी फेहरिस्त बताती है कैसे करकटराय से शुरू हुई, इस गोंड रियासत ने भारत की आजादी तक अपना अस्तित्व बनाये रखा और रजवाडों का अंत होने के पश्चात् ही समाप्त हुआ। वर्ष 1985 में महल में लगी आग के कारण समस्त दस्तावेज और प्राचीन जानकारी जलकर स्वाहा हो गयी। आज मकड़ाई के वंशज भारतीय राजनीति, सरकारी सेवा एवं सामाजिक कार्यों में सहयोग प्रदान कर अपने वंशजों का नाम रोशन कर रहे है।

भूमिका- मकड़ाई अर्थात् मकरन्दशाह द्वारा बसाई नगरी, उस से पूर्व यह रियासत कालीभीत से अपने शासन का संचालन कर रही थी। पूर्व में मिले लेखों[1] के अनुसार मकड़ाई का प्राकृतिक सौंदर्य इतना अभूतपूर्व था कि मकरन्दशाह इससे दूर न रह सके और अपना राजपाट समेट मकड़ाई को ही अपनी कार्यस्थली बना लिया।

आज का मकड़ाई गांव अपने गर्भ में ऐतिहासिक धरोहर समेटे हुए है। पांच सौ वर्षों तक अस्तित्व में रहने के बाद भी, मकड़ाई राज्य के इतिहास के बारे में ज्यादा ज्ञात नहीं है, जो सतपुड़ा क्षेत्र में स्थित थी। आज के हरदा जिले में मकड़ाई एक छोटी सा गांव है। राजगोंड राजाओं की इस रियासत का आकार 1948 में समाप्त होने तक कुल 502 वर्ग किलोमीटर और 89 गांवों का था। गहरे जंगलों ने इस रियासत के दक्षिणी हिस्से को घेरा हुआ था, जो उत्तर में घोड़ागांव से लेकर दक्षिण में गोलखेड़ा तक, और पूर्व में माचक नदी से लेकर पश्चिम में छिपावाड़, चारुवा तक फैला हुआ था।

मकड़ाई के इतिहास के बारे में मकड़ाई के राज परिवार के पास कोई भी समकालीन दस्तावेज तो नहीं हैं। किंतु गढ़ा-मण्डला के गोंड राज्य का इतिहास देखते हुए मकड़ाई का नाम बरबस ही जहन में उतर आता है। और जो उल्लेख मिलता भी है वह समकालीन दस्तावेजों से नहीं बल्कि परम्परा पर आधारित परवर्ती स्रोतों में मिलता हैं। प्रथम उल्लेख कर्नल स्लीमेन[2] ने गढ़ा में प्रतापी राजा संग्रामशाह (रानी दुर्गावती का ससुर) के 52 गढ़ों[3] की जो सूची दी है उसमें मकड़ाई को भी एक गढ़ बताया है। दूसरी बार यह उल्लेख है कि 1564 ई. में रानी दुर्गावती की पराजय के बाद जब उसका देवर चन्द्रशाह गढ़ा का राजा बना तो मुगलों को जो दस किले सौंपे गये उनमें मकड़ाई भी था।

यदि मकड़ाई के इतिहास में कुछ लिखित दस्तावेज प्राप्त होता है तो वह है 'मकड़ाई महात्म' जो कि सैयद कासिमअली ने 1928 में लिखी थी। 41 पृष्ठों की इस पुस्तिका में मकड़ाई रियासत का पूरा इतिहास लिखा है। पर यह पुस्तक पूर्व में उपलब्ध किसी स्रोत के आधार पर नहीं थी। संभवत यह पुस्तक मकड़ाई के राजपरिवार के दस्तावेजों और पारिवारिक परंपरा के आधार पर लिखी गई थी। लेखक को मकड़ाई रियासत के तत्कालीन दीवान श्री के. एम. खान का सहयोग प्राप्त था। वर्ष 1985-86 में मकड़ाई राजमहल में लगी भीषण आग[4] की वजह से रही सही जानकारी भी स्वाहा हो गई। मकड़ाई के इतिहास को उजागर करने हेतु एक और पुस्तक 'गोंड रियासत मकड़ाई' कुल पृष्ठ 64, जो 2013 में डॉ. सुरेश मिश्र जी द्वारा लिखी गई काफी हद तक रियासत के विषय में जानकारी प्रदान करती हैं।

मकड़ाई रियासत का इतिहास- राजा करकटराय या महाराज सिंह, जो चंद्रपुर के मूल निवासी थे, जिन्होनें मकड़ाई रियासत की स्थापना की। क्योंकि करकटराय ने बुंदेलों के आक्रमण के खिलाफ गढ़-मंडला के सम्राट की सहायता की, गढ़-मंडला के राजा संग्राम सिंह ने उन्हें इनाम के रूप में मकड़ाई सौंप दी।

क्योंकि गढ़-मंडला के गौरवशाली शासक संग्रामशाह (1513-1543) के 52 गढ़ों में मकड़ाई शामिल था, करकटराय

उर्फ महाराज सिंह संग्रामशाह के शासनकाल के दौरान रहे होंगे। मकड़ाई का मुख्यालय कालीभीत में होने की संभावना है। भोजशाह, रतनशाह, परगत्शाह, केसरीशाह, लोलशाह, छत्रशाह, जोतशाह, वीरशाह, भरतशाह, भोप्तशाह, दुर्तशाह और भोगशाह, तेजशाह, गोपालशाह, रुमशाह, गुमनशाह, कोकशाह, नवलशाह, कोलोडोंड, पिलेदोद, कालिया पहाड़, बकारशाह, संवाशशाह, मुंडजीशाह, कोंदजीशाह, गंगजी शाह, कोकशाह, नवलशाह, कोलोडोंड, पिलेदोद, कोलोडोंड, पिलेदोद, कालिया एवं भीमजी शाह करकटराय के बाद सूचीबद्ध सम्राट हैं।[5]

हालाकि मकड़ाई महात्म में करकटशाह के पच्चीस पीढ़ियों के बाद भीम सिंह को सम्राट के रूप में चित्रित किया गया है, और उनके जन्म का वर्ष 1541 बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भीम सिंह, करकटराय के एक-दो पीढ़ियों बाद ही आए होंगे। उसके बाद, कालक्रम लगभग सही है।[6]

भीम सिंह 1569 में मकड़ाई सिंहासन पर चढ़े और 1579 तक शासन किया। यह ध्यान देने योग्य है कि इस समय तक, मुगल सम्राट ने इस क्षेत्र पर नियंत्रण कर लिया था।

पंडरिया जमींदारी (बिलासपुर जिला, म. प्र.) की ऐतिहासिक कथा के अनुसार, गंगजीशाह के पुत्र भीम सिंह के बाद हटियाराय राजा बने, और उनके सात पुत्रों में से एक श्यामचंद्र थे, जिन्हें गढ़-मंडला के राजा ने पंडरिया भेजा था। जमींदारी का अनुरोध स्वीकार कर लिया गया।[7]

''मकड़ाई महात्म'' में वर्णन थोड़ा अलग है, जो इसे और अधिक विश्वसनीय बनाता है। किंवदंती के अनुसार, राजा कालादह, गंगजीशाह के पुत्र और भीम सिंह के उत्तराधिकारी थे। 1606 में उनकी मृत्यु के बाद, शोहंशाह सिंहासन पर चढ़े और 1629 तक शासन किया।

मकरंदशाह इनके उत्तराधिकारी थे और इन्होनें अपने मुख्यालय को कालीभीत से मकड़ाई में स्थानांतरित कर दिया। मकरंदशाह ने 1638 तक शासन किया। भीम सिंह उर्फ फतहशाह, मकरंदशाह के स्थान पर राजगद्दी पर बैठे।[8]

ऐसा कहा जाता है कि जब भीम सिंह दक्षिण में मुगल सेना के साथ थे, तो वह एक किले को जीतने के लिए निकल पड़े और सफल रहे। इसके परिणामस्वरूप हैदराबाद के निज़ाम ने उन्हें हटिया राय की उपाधि प्रदान की। भीम सिंह की मृत्यु वर्ष 1645 में हुई थी। भीम सिंह के सातवें पुत्र श्यामचंद्र ने मकड़ाई से गढ़ा-मंडला की यात्रा की। गढ़ा-मंडला के तत्कालीन राजा नरेंद्र शाह ने पंडरिया (बिलासपुर) की जागीर और बाद में कवर्धा श्यामचंद्र को दी थी।

1720 ई. में जब मुगल सेना का खंडवा में आसफजहाँ निजामुल्क की सेना से भिड़ंत हुई तो मकड़ाई के शासक फतहशाह ने निजाम की तरफ से लड़ाई लड़ी। निज़ाम ने युद्ध जीत लिया था।[9] मकड़ाई के फतहशाह ने अज्ञात समय तक शासन किया। 1683 और 1730 के बीच, इन्होनें लगभग 47 वर्षों तक शासन किया होगा। मकड़ाई महात्म में तरवरशाह, खांडनशाह और प्रतापशाह के नाम आते हैं, तब उल्लेख मिलता है कि 1748 ई. में एक धारशाह ने बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लिया होगा।

1761 में पानीपत की लड़ाई से मराठा वर्चस्व हिल गया था, और मकड़ाई के राजा ने हडिया के आमिलों को हटाकर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने का प्रयास किया।[10]

कुछ दिन पश्चात् गोसाई साधुओं की सशस्त्र जमात ने भुस्कुटे सूबेदार काशीदास बनारसीदास के पच्चीस हजार रुपये के लिए धारशाह पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। इस युद्ध में राजा धारशाह की मृत्यु हो गई, किंतु बालक भारतशाह को बचा लिया गया। वहीं विधवा रानीखांडा ने गोसाईयों की फौज को हरा दिया जो मकड़ाई पर कब्जा जमाने पहुँची थी। और राजकाज की बागडोर रानी के हाथ आ गयी चूँकि कुंवर भारतशाह अभी छोटे थे।[11]

भारतशाह के हाथ, शासन की बागडोर 1772 ई. में आई और 1777 में उन्होनें सिंधिया की अधीनता स्वीकार कर ली। साथ ही होशंगाबाद डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर के उल्लेखानुसार, माधवराव पेशवा ने भुस्कुटे को टिमरनी ग्राम तथा किला स्थायी रूप से दे दिया एवं तीन गाँव भी दिये। 1793 में उसकी मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई खण्डगशाह ने 1803 तक शासन किया।[12]

तत्पश्चात् उदयशाह गद्दासीन हुए, उदयशाह के शासनकाल के दौरान पिंडारियों ने मकड़ाई को लूट कर ध्वस्त कर दिया। उदयशाह भागने में सफल रहे, लेकिन खांडारानी का पीछा किया गया। खांडारानी को पिंडारियों ने ससम्मान रखा, जिन्होंने एक वर्ष तक मकड़ाई पर शासन किया था। खांडारानी के प्रयासों के कारण पिंडारी चले गए और उदयशाह लौट आए। तीन साल तक, हरदा में तैनात सूबेदार मेरोपंत दादा ने सिंधिया के सैनिकों द्वारा ब्राह्मण की हत्या के लिए उन पर हमला करने के बाद मकड़ाई को अपने नियंत्रण में ले लिया। ढोलाभाई उस समय मकड़ाई के दीवान थे। 1716 ई. में सिंधिया ने उदयशाह को अलग कर दिया और जमनशाह के पुत्र देवीशाह को मकड़ाई का राज्य दिया, लेकिन शाही भक्त दीवान ने सिंधिया से रियासत को पुन: प्राप्त कर लिया।

पुन: एक बार देवीसिंह के कारनामे की वजह से (उन्होनें एक गोंड को इसलिये मरवा दिया कि वह जादू टोना करता था) काफी बदनामी हुई। इसलिए उनके दीवान को अपदस्थ कर, उन्हें निष्कासित कर दिया गया। तब मकड़ाई का राजा तीन वर्ष निष्कासित

रहा। और जब उन्होनें मकड़ाई लौटायी तो रिश्वत के रूप में बड़ी तोप ले गए और उसे एक गांव जलोदा में ले जाकर छोड़ दिया।[13] 1844 ई. में, मराठों की हार के बाद मकड़ाई की रियासत को अंग्रेजों द्वारा कब्जा कर लिया गया था। लॉर्ड कैनिंग ने 1862 ई. में गोद लेने के अधिकार के लिए राजा देवीशाह को सनद जारी की। 1866 ई. में देवीसिंह की मृत्यु के बाद, देवीशाह के गोद लिए भारतशाह उर्फ लच्छुशाह सिंहासन पर बैठे।[14]

1890 में, होशंगाबाद के उपायुक्त मकड़ाई के राजा से नाराज हो गए क्योंकि राजा ने उनके कुछ आदेशों की अवहेलना की थी। और उन्हें तीन वर्षों के लिए सिंहासन से उतार दिया गया। 1890 से 1893 तक रियासत को कोर्ट ऑफ वार्ड को सौंप दिया गया था।[14]

अतत: राजा लच्छूशाह 45 साल तक मकड़ाई के शासक रहे। और कई लोकोपयोगी काम हुए और मकड़ाई की आय भी बढ़ी। वर्ष 1902 में उन्होनें एग्रीकल्चर कॉलेज की स्थापना हेतु दस हजार रुपये दान दिए।[15]

1911 ई. में लच्छू शाह की मृत्यु हो गई और उनके पुत्र छत्रसाल शाह ने शासक के रूप में पदभार ग्रहण किया। उस समय वह 36 वर्ष के थे। छत्रसालशाह के दीवान मुंशी सुखदेव सहाय बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्होंने कड़ी मेहनत की और सरकार के कराधान से मकड़ाई राज्य के लिए माफी प्राप्त करने में सफल रहे। 15 दिसंबर, 1911 को छत्रसाल शाह को दिल्ली दरबार में हाजिर हुए। 30 अक्टूबर, 1918 में उनका निधन हो गया।

छत्रसाल शाह के नि:संतान होने के कारण उनके चचेरे भाई दृगपालशाह जो कि उनके रिश्ते के चाचा थंभूशाह का पुत्र थे, उनके उत्तराधिकारी हुए। दृगपालशाह का जन्म 25 सितंबर 1904 को हुआ था, और क्योंकि उनके राज्याभिषेक के समय वह सिर्फ 14 वर्ष के थे, उनकी भाभी, छत्रसालशाह की विधवा श्रीमती भूपकुंवर देवी, रीजेंट बन गईं और एक परिषद का गठन किया, जिसके अध्यक्ष थंभूशाह बनाए गए थे। 1918 से 1925 तक, थंभूशाह ने परिषद के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया।

वर्ष 1925, 20 अक्टूबर को दृगपालशाह को मकड़ाई की राजगद्दी पचमढ़ी दरबार में देने की घोषणा की गयी। 1926 में इनके पिता थंभूशाह और 1927 में भाभी भूपकुंवर देवी की मृत्यु हो गयी।

दृगपालशाह ने अपनी शिक्षा रायपुर के राजकुमार कॉलेज में प्राप्त की, जहाँ उनके शिक्षक के.एम. खान, जो बाद में 1926 ई. में दीवान बने। खान के पुत्रों में से एक, याया खान, उल्लेखनीय है क्योंकि वह बाद में पाकिस्तान के राष्ट्रपति बने। याह्या खान का जन्म मकड़ाई रियासत में हुआ था और उन्होंने अपनी युवावस्था मकड़ाई में बिताई।[16]

उनके भतीजे टोडर शाह ने उनके उत्तराधिकारी के रूप में पदभार संभाला। टोडर शाह के पिता का नाम फतेहशाह था। टोडर शाह ने 1948 तक मकड़ाई पर शासन किया चूंकि उसके बाद मकड़ाई की रियासत का विलय भारत में हो गया।

देवीशाह, भरतशाह और विक्रमशाह टोडर शाह के तीन पुत्र थे। इन तीनों के बच्चे आज भी जीवित हैं। अजयशाह, विजयशाह, धनंजय और संजय देवीशाह के बेटे हैं। किरण, उमा, पूर्णिमा और अर्चना बेटियों के नाम हैं।[17]

उपसंहार– भले ही इतिहास के पन्नों में मकड़ाई का नाम स्वर्ण अक्षरों में न लिखा हो भले ही वह बहुत बड़ी रियासत न रही हो, भले ही उसके लिखित दस्तावेज कम हो या फिर मिले न हो, फिर भी शासकों की यह बड़ी फेहरिस्त बताती है कैसे करकटराय से शुरू हो यह गोंड रियासत ने भारत की आजादी तक अपना अस्तित्व बनाये रखा और रजवाडों का अंत होने के पश्चात् ही समाप्त हुआ। वर्ष 1985 में महल में लगी आग के कारण समस्त दस्तावेज और प्राचीन जानकारी जलकर स्वाहा हो गयी। आज मकड़ाई के वंशज भारतीय राजनीति, सरकारी सेवा एवं सामाजिक कार्यों में सहयोग प्रदान कर अपने वंशजों का नाम रोशन कर रहे है।

पाद टिप्पणी

1. मकड़ाई महात्म, पृ. 8
2. स्लीमेन पृ 626
3. रामनगर शिलालेख, श्लोक 15, हाल, पृ 14, गढ़ेयनृपवर्णनम् श्लोक 28, पृ 195
4. 1985–86 में लगी आग के कारण पूरा महल जलकर राख हो गया
5. वाडिवेलु, ए, द रूलिंग चीफ्स, नोबल्स एण्ड जमींदार्स ऑफ इण्डिया, जिल्द एक, 1915, पृ 717
6. मध्यप्रदेष के गोंड राज्य, डाँ सुरेश मिश्र, पृ 162
7. वाडिवेलु, ए, द रूलिंग चीफ्स, नोबल्स एण्ड जमींदार्स ऑफ इण्डिया, जिल्द एक, 1915, पृ 717
8. गोंड रियासत मकड़ाई, पृ 43
9. वहीं, पृ, 29, 34
10. वहीं 1994, पृ 57
11. ब्रेट ई. ए. डी. छतीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स, द्वितीय सं., 1988, पृ 145
12. वाडिवेलु, ए, द रूलिंग चीफ्स, नोबल्स एण्ड जमींदार्स ऑफ इण्डिया, जिल्द एक, 1915, पृ 720–21
13. ब्रेट ई. ए. डी. छतीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स, द्वितीय सं., 1988, पृ 167
14. मध्यप्रदेश के गोंड राज्य, डॉ. सुरेश मिश्र, पृ 165
15. वहीं पृ 57
16. मध्यप्रदेश के गोंड राज्य, डॉ. सुरेश मिश्र, पृ 166
17. मध्यप्रदेश के गोंड राज्य, डॉ. सुरेश मिश्र, पृ 166

ISSN 2278 - 0327

बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य : भारत-पाकिस्तान संबंधों का अध्ययन

प्रदीप कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

डॉ. शर्मिला लोचब
शोध निर्देशिका, सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

परिचय- अगस्त 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप में दो स्वतंत्र राज्यों का जन्म हुआ। इनकी स्थापना ब्रिटिश संसद द्वारा पारित एक कानून के अनुसार हुई। जो विभाजन पश्चात् भारत और पाकिस्तान नाम के दो डोमिनियन कहलाए।[1]

भारत और पाकिस्तान के मध्य संबंध और उनके संबंधों में जटिलता का बीज तत्व पाकिस्तान के उदय के कारकों में निहित था।[2]

सच्चाई तो यह है कि दोनों देशों में या तो विभाजन के कारण या विभाजनोपरांत कुछ ऐसे मुद्दों या समस्याओं का जन्म हुआ, जिनके कारण वैमनस्य, घृणा और कटुताओं के प्रचलन को बल मिला। विभाजन के लिए कोई भी दोषी हो, वास्तविकता यह है कि इस विभाजन में दो समुदायों और दो देशों के बीच दो पीढ़ियों से भी अधिक समय तक के लिए संबंधों में कड़वाहट को उत्पन्न कर दिया।[3]

भारत विभाजन के अंतर्गत हिंदू-मुस्लिम संबंधों में कटुता उत्पन्न करने वाले तत्वों में हिंदू राष्ट्रीयता, मुस्लिम लीग की स्थापना, नेताओं की स्वार्थ भावना, भाषा, राजनीतिक परिस्थितियाँ मुस्लिम राजनीति, मुस्लिम लीग का सिद्धांत हिंदू और मुस्लिम दो अलग राष्ट्र ने व्यापक प्रभाव छोड़े। भारत के विभाजन को टालने के प्रयत्न भी होते रहे। गांधी जी ने घोषणा की कि पाकिस्तान उनकी लाश पर बनेगा।[4]

पाकिस्तान शब्द का जन्म सन् 1933 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय के छात्र चौधरी रहमत अली के द्वारा हुआ। इससे पहले सन् 1930 में शायर मोहम्मद इकबाल ने भारत के उत्तर-पश्चिमी चारों प्रांतों सिंधु, बलूचिस्तान, पंजाब अफगान (सूबा-ए-सरहद) को मिलाकर एक अलग राष्ट्र की मांग की थी।[5]

सन् 1906 मुस्लिम लीग का अस्तित्व में आना एक महत्वपूर्ण संप्रदायिकता का विकास था। सीमित मताधिकार तथा अलग-अलग चुनाव मंडलों के आधार पर विधानसभाओं के लिए जो चुनाव हुए उससे एक बार फिर अलगाववादी भावनाएं पैदा हो गई।

जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग कांग्रेस की घोर विरोधी हो गई। मुस्लिम लीग ने इस अवैज्ञानिक और अनैतिक सिद्धांत का प्रचार किया कि हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं और उनका एक साथ रहना असंभव है।

1940 में मुस्लिम लीग ने एक प्रस्ताव पारित करके मांग की कि स्वाधीनता के बाद देश के दो भाग कर दिए जाएं और पाकिस्तान नाम का एक अलग राष्ट्र बनाया जाए।[6]

1947 के प्रारंभ में सांप्रदायिक दंगों की आग में झुलस रहे देश तथा कांग्रेस एवं लीग के मध्य बढ़ते गतिरोध के कारण भारतीय राष्ट्रवादी विभाजन के उस दुखद एवं ऐतिहासिक निर्णय के संबंध में सोचने को विवश हो गए जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी।

लॉर्ड माउंटबेटन के वायसराय बनकर आने के पूर्व ही भारत में विभाजन के साथ स्वतंत्रता का फार्मूला भारतीय नेताओं द्वारा लगभग स्वीकार की कर लिया गया था।

3 जून को योजना के तहत भारत व पाकिस्तान दो देशों के रूप में विभाजन हुआ।[7]

इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट,1947 के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश इंडिया को भारत, पाकिस्तान और 580 रियासतों के रूप में आजादी दी थी। जम्मू कश्मीर रियासत के महाराजा हरि सिंह ने भारत या पाकिस्तान में विलय ना करके आजाद रहने का फैसला लिया। लेकिन तुरंत ही कबाइलियों के वेश में पाकिस्तानी सेना ने कश्मीर पर हमला कर दिया। राजा हरि सिंह ने भारत से

मदद मांगी भारत ने उनसे कश्मीर का भारत में विलय करने को कहा।

वी.पी. मेनन ने अपनी किताब 'पॉलिटिकल इंटीग्रेशन ऑफ इंडिया' में लिखा, 26 अक्टूबर को महाराजा हरि सिंह ने भारत में विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए। जैसे ही यह कानूनी कार्रवाई पूरी हुई भारतीय सैनिकों को जहाज द्वारा श्रीनगर भेजा गया और कबिलाईयों के रूप में पाकिस्तानी सेना को खदेड़ा गया। कश्मीर को लेकर दोनों देशों में तनातनी चरम पर थी।

ये तब तक जारी रहा जब पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली संयुक्त सुरक्षा की बैठक में भाग लेने के लिए दिल्ली आए थे। लियाकत अली और जवाहरलाल नेहरू की सहमति बनी कि पाकिस्तानी सेना वापस जाएगी और भारत भी अपनी ज्यादातर सेना हटा लेगा तथा जनमत संग्रह के लिए संयुक्त राष्ट्र को एक कमीशन भेजने के लिए कहा जाएगा। जो कि एक भारी भूल ज्वाहरलाल नेहरू को हमेशा सताती रही।[8]

मार्च 1948 में शेख अब्दुल्ला जम्मू-कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री बने, भारत जम्मू कश्मीर की स्वायत्तता को बनाए रखने में सहमत हो गया। इसे संविधान में धारा 370 का प्रावधान कर के संवैधानिक दर्जा दिया गया।

1947 के बाद कश्मीर भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष का एक बड़ा मुद्दा रहा है। [9]

1 जनवरी 1948 को भारत सरकार ने सुरक्षा परिषद में यह शिकायत की कि पाकिस्तान से सहायता प्राप्त करके सभी कबिलाईयों ने कश्मीर में आक्रमण किया है, जिससे अंतरराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को खतरा है, सुरक्षा परिषद ने समस्या के समाधान के लिए 5 राष्ट्रों के दल को मौके की स्थिति का अवलोकन करने के लिए नियुक्ति की। संयुक्त आयोग की रिपोर्ट पर के परिणाम स्वरूप 1 जनवरी 1949 को युद्धविराम पर दोनों राष्ट्रीय सहमत हो गए। [10]

भारत-पाकिस्तान संबंधों का आजादी के बाद का दौर अत्यंत नाजुक व संघर्ष की चरम सीमा वाला युग कहा जा सकता है। इस दौरान भारत और पाकिस्तान के संबंध अति कटुतापूर्ण एवं द्वंदात्मक स्वरूप वाले उभर कर सामने आए। दोनों देशों के बीच अति भीषण युद्ध लड़े गए। वर्तमान समय में भी दोनों के मध्य जटिल मतभेद बने हुए हैं, जिससे क्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय राजनीति की गतिविधियाँ भी काफी हद तक प्रभावित रहती हैं।[11]

भारत-पाकिस्तान संबंधों को सामान्य बनाने के भी प्रयत्न किए जाते रहे हैं। ताशकंद समझौता, शिमला समझौता एवं 1974 की त्रि-पक्षीय समझौता तथा प्रधानमंत्री वाजपेई की लाहौर बस सेवा अनेकों ऐसे प्रयत्न हैं जो रिश्तो की डोर को सहेजने एवं संभालने के लिए किए गए। परंतु वर्तमान में भी पाकिस्तान का कटुतापूर्ण रवैया बरकरार है।

भारत एवं पाकिस्तान के मध्य संबंधों के शत्रुतापूर्ण होने की मूल कारण राष्ट्र निर्माण के तरीकों में विद्यमान भिन्नता है। दक्षिण एशिया शक्ति सन्तुलन की दृष्टि से भारत केंद्रीय क्षेत्र है क्योंकि भारत का आकार और जनसंख्या पड़ोसी देशों के आकार जनसंख्या से कहीं अधिक है।

भारत-पाकिस्तान के बीच वर्ष 1990 के बाद संबंधों को बेहतर करने की एक नवीन पहल की गई और दोनों देशों के बीच ट्रैक-2 की वार्ता की शुरुआत हुई।

भारत-पाकिस्तान व्यापार की बात की जाए तो वह अभी भी एक विचारणीय विषय बना हुआ है।

भारत और पाकिस्तान के बीच होने वाले व्यापार का एक बड़ा भाग अनौपचारिक मार्ग से होता है अर्थात् भारत पाकिस्तान के मध्य व्यापार किसी तीसरे देश के माध्यम से होता है।

वर्ष 1948-1949 के मध्य पाकिस्तान का 70 प्रतिशत से अधिक लेनदेन भारत के साथ था और भारत से पाकिस्तान को होने वाले निर्यात 63 प्रतिशत था।[12] जो वर्तमान समय में काफी निम्न स्तर पर आ पहुँचा है।

भारत ने विश्व व्यापार संगठन के दिशा निर्देशों के अंतर्गत पाकिस्तान को एकपक्षीय रूप से व्यापारिक स्तर पर ''सर्वाधिक समर्थित राष्ट्र'' (MFM) का दर्जा प्रदान किया, परन्तु पाकिस्तान ने अभी भी पूर्ण पारस्परिकता नहीं दिखाई है। [13]

इस प्रकार भारत एवं पाकिस्तान के संबंधों में समय के साथ-साथ कभी नकारात्मक तो कभी सकारात्मक रहे। भारत ने हमेशा से ही पाकिस्तान से सौहार्दपूर्ण रिश्ते बनाने में विश्वास का हाथ बढ़ाया है। परन्तु पाकिस्तान ने हमेशा कटुतापूर्ण एवं धोखेबाज पड़ोसी का ही रवैया भारत के प्रति रखा है।

ताशकंद समझौता, शिमला समझौता, गुजराल सिद्धांत तथा लाहौर बस सेवा हो या भारत द्वारा पाकिस्तान को 'मास्टर फारवर्ड नेशन' का दर्जा दिया गया हो परन्तु पाकिस्तान की नीति हमेशा भारत विरोधी ही रही है।

पाकिस्तान व चीन की बढ़ती दोस्ती भारत के लिए प्रतिकूल दिखाई पड़ती है। पाकिस्तान हमेशा भारत के लिए संदेहपूर्ण व्यवहार रखता है। आतंकवाद हो या कश्मीर मुद्दा वह भारत को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हानि पहुँचाने की कोशिश में लगा रहता है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का अफगानिस्तान से सीधा पाकिस्तान जाना और नवाज शरीफ से मुलाकात करना भारत की पड़ोसी के प्रति सौहार्दपूर्ण नीति को ही दर्शाता है। हालांकि भारत और पाकिस्तान के संबंधों पर अनेकों शोध कार्य पहले भी हो चुके हैं, इसमें भी दोनों देशों के सामरिक रणनीति व राजनीतिक संबंधों को काफी हद तक समझाने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु बदलता वैश्विक परिप्रेक्ष्य तथा शीर्ष नेतृत्व में समय के अंतराल पर बदलाव देखा जाता है। इस शोध कार्य में इन्हीं शीर्ष नेतृत्व के प्रयासों एवं प्रयत्नों के बारे में सार्थकता की पहचान की जाएगी। किस तरह भारत की विदेशी नीति एवं घरेलू राजनीति को पाकिस्तानी का हस्तक्षेप कितना प्रभावित करता है, इस पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

समय परिवर्तनशील है और लगातार बदल रहा है, लेकिन पाकिस्तान समय की अपनी अलग परिभाषा गढ़ कर खुद ही फंसता जा रहा है। भारत द्वारा कश्मीर में धारा 370 को निरस्त किए जाने के बाद चीन के इशारों पर पाकिस्तान अपनी छवीअंतर्राष्ट्रीय स्तर पर धूमिल कर रहा है।

श्री राम मनोहर लोहिया जी के अनुसार भारत पाकिस्तान के संबंध कभी सामान्य नहीं हो सकते, वे या तो एक होंगे या लड़ते झगड़ते रहेंगे।

सन्दर्भ सूची-

1. खन्ना वी. एस., भारत की विदेश नीति, 2019, विकास पब्लिशिंग हाउस नोएडा पृष्ठ 71
2. सिंह, रहीश, अंतरराष्ट्रीय संबंध, 2018, Lexis Nexis नई दिल्ली, पृष्ठ 378
3. राय, गांधी जी, राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीय संविधान, 1988 भारतीय भवन पटना, पृष्ठ 98,
4. चतुर्वेदी, महेंद्र, आजादी की कहानी, 1965, ओरियएण्ट लोंगमैन, मुंबई 1965, पृष्ठ 208
5. विकिपीडिया, भारत–पाकिस्तान का इतिहास
6. चंद्र, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, 2017, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, पृष्ठ 316–17
7. स्पेक्ट्रम, आधुनिक भारत का इतिहास, 2013, पृष्ठ 278–79
8. श्रीवास्तव, संजय, न्यूज 18, हिन्दी, 5 अगस्त, 2019
9. स्वतंत्र भात मे राजनीति, एन.सी.ई.आर.टी. कक्षा–12, पृष्ठ 154–155
10. फाड़िया बी. एल., अंतर्राष्ट्रीय राजनीति साहित्य भवन, आगरा, 2015 पृ. सं. 278
11. यादव, आर. एस. भारत की विदेशी नीति, 2013 पियर्सन, पृ. सं. 146–147
12. दृष्टि, आई. ए. एस., भारत–पाकिस्तान, आर्थिक संबंध, 15 जनवरी 2019
13. बिस्वाल, तपन, अंतर्राष्ट्रीय संबंध 2019, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, पृ. सं.177

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. खन्ना, वी. एन., ''भारत की विदेश नीति'', 2019 विकास पब्लिशिंग हाउस, नोएडा,
2. सिंह, रहीश,''अंतर्राष्ट्रीय संबंध'', 2018 Lexis Nexis नई दिल्ली, पृष्ठ 378
3. राय, गांधी जी, ''राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीय संविधान'', 1988, भारतीय भवन, पटना
4. चतुर्वेदी, महेन्द्र, ''आजादी की कहानी'' 1965, ओरिएण्ट लोंगमैन, मुम्बई
5. चन्द्रा, विपिन, ''आधुनिक भारत का इतिहास'', 2017, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, हैदराबाद
6. विकिपीडिया, भारत–पाकिस्तान का इतिहास
7. श्रीवास्तव, संजय, ''न्यूज 18 हिन्दी'', 5 अगस्त 2019
8. स्वतंत्र भारत में राजनीति, एन.सी.ई.आर.टी. कक्षा–12
9. स्पेक्ट्रम,''आधुनिक भारत का इतिहास'', 2013
10. बिस्वाल, तपन, ''अंतर्राष्ट्रीय संबंध'', 2019, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, हैदराबाद
11. अरोड़ा, लिपाक्षी, ''भारत की विदेश नीति'', 2013, विकास पब्लिसिंग हाउस, नोएडा
12. फाड़िया, बी. एल., ''अंतर्राष्ट्रीय राजीनीति'', 2015, साहित्य भवन आगरा
13. दृष्टि आई. ए. एस., ''भारत–पाकिस्तान आर्थिक संबंध'', 15 जनवरी 2019

समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएं:

1. navbharattimes.com 26 अक्टूबर 2020
2. दैनिक जागरण
3. इंडिया टुडे
4. प्रतियोगिता दर्पण
5. वर्ल्ड फोकस

हिंदी साहित्य में आदिवासी लेखन

पूजा
शोधार्थी, पीएच.डी(हिंदी)
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

'आदिवासी' शब्द आदि और वासी दो शब्दों के संयोग से बना है। आदि का अर्थ है प्रारंभ, पहला, शुरू का तथा वासी का अर्थ है रहने वाला, निवास करने वाला। इस प्रकार आदिवासी शब्द का अर्थ है किसी स्थान पर प्रारंभ से निवास करने वाला मनुष्य। रमणिका गुप्ता के अनुसार 'किसी क्षेत्र के मूल निवासी जो आदिकाल से किसी स्थान विशेष पर रहते चले आ रहे हैं माना जाता है कि आदिवासी भारतीय प्रायद्वीप की सबसे प्राचीन बाशिंदे या मूल निवासी हैं।'[1] समाज में आदिवासियों की पहचान के लिए 'trive' के अतिरिक्त विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है 'उनमें इंडीजिनस (देशज) एबॉर्जिनल (देशज) प्रिमिटिव (आदिय), नेटिव (मूलनिवासी), बैंड (आदिय समूह, कबीला), नैव (भोला-भाला), सेवेज़ (जंगली) आदि प्रमुख हैं। हिंदी में आदिवासी के अलावा वनवासी, जनजाति ,जंगली ,बर्बर,गिरिजन, लगोटिया, बर्बर आदि शब्द लगभग समान अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं।[2] इनमें से किसी भी शब्द से आदिवासी के प्रत्येक पहलू का आभास नहीं होता है, क्योंकि इसका सबसे प्रमुख कारण आदिवासियों की विविधता पूर्ण संस्कृति है, जिसे किसी एक अर्थ में समाहित करना कठिन है अत: आदिवासी शब्द से आदिम युग एवं आदिम अवस्था दोनों का ही सही सही अर्थों में आभास हो जाता है। उपर्युक्त शब्दों के आधार पर ऐसे कबीलों को आदिवासी कहा जाता है जो किसी क्षेत्र विशेष में आदिम युग से ही निवास कर रहे हों। अत: आदिवासी लोगों के लिए देशज, मलनिवासी जैसे शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। जगन्नाथ पाथी इस संदर्भ में लिखते हैं 'कि भारत के आदिवासी देशज लोग हैं या नहीं, इस बात का उनके लिए उपयोग किए जाने वाले शब्दों की सटीकता से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि आदिवासियों और देशज लोगों की समकालीन समस्याएं और संघर्ष एक से हैं'।[3]

अत: आदिवासी लोगों की विभिन्न समस्याओं एवं उनके द्वारा किए जाने वाले संघर्षों को विभिन्न आदिवासी लेखकों तथा गैर आदिवासी लेखकों ने साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। इन लेखकों का सामाजिक-पारिवारिक परिवेश भिन्न होने के कारण भी इन्होंने आदिवासियों के सामाजिक, राजनीतिक तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानने समझने की कोशिश कर अपनी कलम के माध्यम से उकेरने का सफल प्रयास किया है और अपनी लेखनी के माध्यम से उन्होंने आदिवासियों की समस्याओं, संघर्षों एवं उनकी जीवन- शैली को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन पर अनेक रचनाएं देखने को मिलती हैं राजचीज सिंह की वनविहांगिनी(1909)नामक कृति संथाल परगना के आदिवासियों के जीवन पर आधारित है। इसे प्रथम आदिवासी उपन्यास की संज्ञा दी गई है लेकिन चलता-पिटारा (1938) जो कि रामदीन पांडेय द्वारा लिखित उपन्यास है, कुछ रचनाकार इसे प्रथम श्रेणी का आदिवासी उपन्यास घोषित करते हैं । इस उपन्यास की रचना झारखंड के आदिवासियों को केंद्र में रखकर की गई है। इसी प्रकार उड़िया में गोपीनाथ महोती ने आदिवासियों के जीवन पर 'कंध' तथा उनके संघर्षों पर 'अमृत संतान' तथा 'पारना' नामक बेहतरीन कृतियों की रचना की। बिभूतिभूषण बंदोपाध्याय ने बांग्ला में आदिवासियों के जीवन पर आधारित आरण्यक नामक कृति की रचना की। इसी श्रृंखला में बांग्ला की सुप्रसिद्ध रचनाकार महाश्वेता देवी ने झारखंड के आदिवासियों को केंद्र मानकर सर्जन कार्य किया है। इनका जंगल के दावेदार (1975) उपन्यास बिरसा मुंडा के जीवन पर विद्रोह को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास का आरंभ आदिवासी समाज के शोषण एवं उत्पीड़न करने वाले गैरआदिवासियों के विरोध से प्रारंभ होता है तथा बाद में बिरसा मुंडा द्वारा संचालित 'उलगुलान' क्रमश: सामंत शाही,धार्मिक सत्ता और उपनिवेशवादी ताकतों के खिलाफ जोर पकड़ता नजर आता है। अग्निगर्भ (1978) नामक कृति में उन्होंने आजादी के पश्चात् पूर्वी भारत के आदिवासी तथा भूमिहीन किसानों के विद्रोह का वर्णन किया है। इसी प्रकार 'चोटी मंडा और उसका तीर' उपन्यास में बिरसा आंदोलन की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर तथा आदिवासी जीवन की विडंबनाओं, भयावह त्रासदियों और शासन सत्ता के खोखले वादों तथा उनके मोहभंग को उजागर किया है। इन कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने अक्लांत कौरव, शालगिराह की पुकार पर तथा टेरोडिल जैसी कृतियों की रचना की है। महाश्वेता देवी की सभी कृतियां एक विशेष प्रवृत्ति की ओर दृष्टिगोचर होती है। प्रोफेसर वीर भारत तलवार लिखते हैं कि-'उनमें आदिवासियों के आर्थिक शोषण से संबंधित बहुत सारे तथ्य दिए गए हैं पर लेखिका के पास आदिवासी समाज को देखने समझने की कोई

अंत:दृष्टि नहीं है। उन्होंने एक सामान्य और चिर परिचित वामपंथी दृष्टि से अपना काम चलाया है।'[4] इस प्रकार आदिवासी समाज को भली-भांति समझने और उस पर सर्जन कार्य करने के लिए चिंतनशील दृष्टिकोण का होना अनिवार्य है।

आदिवासियों पर सर्जन कार्य की अन्य प्रवृत्ति योगेंद्र सिन्हा के उपन्यास वनलक्ष्मी (1955) तथा वनके मन में से मानी जाती हैं वनलक्ष्मी नामक कृति की रचना 'हो' जनजाति को केंद्र में रखकर की गई है। इसी श्रृंखला में हो जनजाति पर ही केंद्रित आदिवासियों के शोषण की दास्तां से रूबरू कराती गरबचन सिंह की प्रसिद्ध कति वनपाखी (1961) है । इसी प्रकार कान्हा जीतोमर की कति तमाम जंगल भी हो जनजाति पर आधारित है तथा भालचंद्र ओझा की संतोष पानी 1963 के लगभग उरांव आदिवासियों पर लिखी गई प्रमुख कृति मानी जाती है, इसी कड़ी में संतोष प्रीतम जी की कृति पलाश के फूल (1985) और पीटा पॉल एक्का की कृति मौनघाटी (1982) मुंडा आदिवासियों पर लिखित महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है।

वर्तमान समय में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तहत इस मशीनी युग में औद्योगिकरण, नवीनीकरण तथा शहरीकरण की शुरुआत होने से झारखंड में आदिवासी गांव समाप्त होने लगे,फलस्वरूप वहां के समाज के लोगों का स्वरूप परिवर्तित हुआ। चूंकि परिवर्तन सृष्टि का नियम है अत: समाज में युगानुरूप परिवर्तन होना अवश्यंभावी है इस संदर्भ में विद्याभूषण लिखते हैं कि 'बीसवीं सदी में भारतीय आदिवासी समुदायों की अर्थव्यवस्था में वस्त विनिमय प्रणाली के नष्ट होने के बाद जब से मुद्रा विनिमय का चलन बढ़ा, तब से जनजातीय कबीले महाजनी शिकंजे में फंसते चले गए हैं। अभूतपूर्व औद्योगिकरण के साथ विस्थापन का नया जलजला शुरू हुआ। नतीजतन,इन अंचलों में एक खेतिहर समाज भूमिहीन मजदूर वर्ग में बदलने का अभिशप्त हआ है। कोयलांचल-शिल्पांचल का पूरा झारखंड क्षेत्र ऐसे हादसों से भरा पड़ा है।'[5] इनको केंद्र में रखते हुए राकेश वत्स ने जंगल के आसपास (1986)नामक कृति की रचना तथा संजीव ने सावधान नीचे आग है (1986) नामक कृति की रचना की। इन कृतियों में कोयला खदान मजदूरों के शोषण का चित्रण किया गया है। इसी प्रकार संजीव की धार नामक कृति (1998) तथा किशोर कुमार सिंह की गाथा भोगनपी (1987)नामक कृति भी खदान दुर्घटना की विपदा में फंसी मानवीय नियति को चित्रित करती है। इन सभी कृतियों में रचनाकार ने महाजन, कोयला, माफिया, ठेकेदारों इत्यादि से लेकर पुलिस नेता तक के क्रूर शोषणकारी गठजोड़ और आदिवासी मजदूरों की दयनीय स्थिति को बखूबी ढंग से चित्रित किया है। रमण ने दहकेगा झारखंड (1990) की रचना झारखंड के उरांव आदिवासियों को केंद्र में रखकर की है। इसी को केंद्र में रखते हए 1991 में मनमोहन पाठक ने गगन एटा घहरानी नामक कृति की रचना की। जल,जंगल, जमीन, व्यक्ति के जीवन का मूल आधार माना जाता है। विशेष तौर पर आदिवासी लोग इन्हीं पर निर्भर है इसी से उनके समाज और संस्कृति का अस्तित्व जुड़ा है। वर्तमान समय में इन जंगलों के उजड़ने से इस तकनीकी युग में आदिवासी समाज के समक्ष उन स्मिता एवं अस्तित्व का खतरा मंडराने लगा है अत: लेखक ने उपरोक्त रचनाओं में आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता की लड़ाई के लिए उनके अथक संघर्ष को बखूबी ढंग से चित्रित किया है जो कि मुगल काल से प्रारंभ होकर ब्रिटिश गुलामी को पार करता हुआ भारत के 45 साल की स्वतंत्रता तक खींचा चला आया है।

झारखंड आदिवासियों का ऐसा क्षेत्र है जहां का प्रत्येक कोना अपनी प्राकृतिक सुंदरता से सराबोर है। झारखंड के नाम से मशहूर भूखंड की पृष्ठभूमि पर पीटर पौलएक्का कृत मौनधारी तथा जंगल के गीत मंडा और उराव जनजाति को केंद्र में रखकर इनका सर्जन किया गया है। इसी प्रकार जंगल के फूल (1960) राजेंद्र अवस्थी द्वारा लिखित गोंड जनजाति पर आधारित उपन्यास है यह आंचलिकता की श्रेणी में आता है। इस कृति में रचनाकार ने सरकार तथा अंग्रेजी राज्य का चित्रांकन किया है। इसके साथ ही यह भी दर्शाने का प्रयास किया है की किस प्रकार सरकार अपनी चालाकियों से आदिवासी लोगों को बेवकूफ बनाकर उनके नैसर्गिक अधिकारों को हड़पने का प्रयास करती हैं। झारखंड राज्य में आदिवासी समाज में बढ़ते नक्सलवाद को केंद्र बनाकर भी अन्य कृतियों की रचना की गई है यथा-मधु काकरिया का खुले गगन के लाल सितारे। लेखिका की यह कृति आदिवासी लोगों की दीन दशा एवं उनके बढ़ते नक्सलवादियों के साथ संबंधों को भलीभांति स्पष्ट करती है । तथा संजीव ने सन् 1995 में पांव तले की दूब नामक कृति की रचना लगातार पतित होते जा रहे झारखंड आंदोलन को केंद्र में रखकर की है। जिसमें रचनाकार ने आदिवासियों की अस्मिता एवं संघर्ष को बखूबी ढंग से चित्रित किया है। झारखंड आंदोलन सदियों से उपेक्षित रहे आदिवासियों के अधिकारों एवं सम्मान की लड़ाई है। इनकी ये मांग है कि उनका एक अलग राज्य बने जिसमें सभी लोगों को रोजगार के समान अवसर मुहैया हो सके।

हिंदी साहित्य में आदिवासी लेखन परंपरा में रमणिका गुप्ता का नाम भी अग्रणीय है। इन्होंने आदिवासी समाज में स्त्रियों की बदलती स्थिति तथा आदिवासी खदान मजदूरों पर होने वाले शोषण को चित्रित करने के लिए सीता (1996) तथा मौसी(1997) जैसी कृतियों की रचना की। वीरेंद्र जैन ने डूब तथा पार (1994) नामक कृतियों की रचना आदिवासियों के शोषण, विस्थापन को केंद्र में रखकर की गई है। विनोद कुमार सिंह द्वारा लिखित उपन्यास समर शेष है (1999) अब तक का झारखंड आंदोलन पर लिखित सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है इसमें रचनाकार ने संथाल आदिवासियों

को केंद्र में रखकर उनकी जीवनशैली, उत्पीड़न, शोषण एवं उनकी समस्याओं तथा उनके द्वारा किए गए संघर्षों को बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है। डॉ. वीर भारत तलवार ने इस उपन्यास को झारखंड आंदोलन पर लिखा गया अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। इस उपन्यास की रचना आठवें दशक में शिबू सोरेन द्वारा महाजनों के खिलाफ चलाए गए धानकटिया आंदोलन को केंद्र में रखकर की गई है। शिव सोरेन का 1974-75 में धन कटिया आंदोलन हआ जो कि आदिवासियों की जमीन पर महाजनों द्वारा जबरन की गई फसल को काटने से संबंधित था इनके अतिरिक्त इस कति में झारखंड क्षेत्र में हए विभिन्न जनआंदोलनों को चित्रित किया गया है। जबकि इनके अन्य उपन्यास मिशन झारखंड (2006) में वर्तमान राजनीति को केंद्र में रखकर आदिवासी राजनीति,गैर आदिवासी हितों को पूर्ण करती परिलक्षित होती है। इसी प्रकार राकेश कुमार सिंह का पठार पर कोहरा (2003) झारखंड के मुंडा आदिवासियों को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसमें पलाम जिले के मुंडा आदिवासियों की जीवन-शैली तथा सभ्यता और संस्कृति पर मंडराते संकटों का चित्रण मिलता है। इसी श्रृंखला में संथाल हल पर सन 2005 में दो महत्वपूर्ण कृतियों की रचना हुई। मधुकर सिंह की बाजत अनहद ढोल (1855) तथा राकेश कुमार सिंह की कृति 'जो इतिहास में नहीं है' की रचना की गई। बाजत अनहद ढोल नामक कृति में आदिवासी किसानों के सशक्त विद्रोह को वाणी प्रदान की गई है। इसमें अंग्रेजी शासन, महाजनी शोषण, जबरन नील की खेती,पलिस का अत्याचार, सरकारी भ्रष्टाचार और जमीदारी बेगारी से तंग आकर 1855 में सिंधु कान्ह द्वारा अपने गांव भगवाडीह में एक सभा बुलाई गई थी। सभा में सिन्धु कान्ह ने यह घोषणा कर दी कि इस दामिन ई कोह क्षेत्र में अपना राज्य होगा, अपनी सरकार होगी और महाजनों को यहां से मार भगाना होगा। हम सरकारी आदेश नहीं मानेंगे, लगान नहीं देंगे और ना ही नील की खेती करेंगे। इस प्रकार देखते-देखते राजमहल फैल गया। यह वह दिन था जब अंग्रेजों के शोषण पर टिके शासन को पहली बार हिलाया गया था 15 फरवरी 1856 को सिदों को फांसी दिए जाने तक यह विद्रोह चलता रहा। अत: यह कृति आदिवासी किसानों के सशक्त विद्रोह की कथा कही जा सकती है।

दूर, उरांव आदिवासियों को केंद्र में रखते हुए आदिवासी समाज में धर्म परिवर्तन से उपजी स्थितियों का चित्रांकन तेजिंदर ने अपनी कृति काला पादरी में किया है। इसमें बहुत ही मर्मांतक,दर्दनाक मानवीय संदर्भ भूख का चित्रांकन है। यह कृति भूख से होने वाली गरीब मजदूर की मौत तथा उसके साथ खेलने वाली धर्म एवं राजनीति के हथकंडों को परत दर परत खोलता चलता है। वर्तमान समय में आजादी के इतने वर्षों पश्चात् भी लोगों में आए और जीवन के साधनों का असमान वितरण देखने को मिलता है। चूंकि अधिकांश आदिवासी लोग भख से मर जाते हैं और कर्ज का भार वहन करते करते आत्महत्या कर लेते हैं वहीं दूसरी ओर राजसत्ता एवं स्वाधिकारों का सुख भोगने वाले नेता लोग जिसने भूख से उत्पन्न पीड़ा को महसूस ही नहीं किया तो वह कैसे भूख से बेहाल होकर मरने का अनुभव कर सकता है। यहां तक कि आदिवासी लोग अपने जीवन की समस्याओं से दुखी होकर विभिन्न धर्मों यथा ईसाई, मुसलमान, बौद्ध इत्यादि धर्मों का धर्मांतरण कर आंशिक रूप से अपने आदिवासीपन को खो रहे हैं। अत: यह कृति 21वीं सदी में विलुप्त होते मानवीय। संवेदनाओं के समक्ष मीडिया की भूमिका पर भी प्रश्नचिन्ह लगाती हैं।

इसी प्रकार प्रतिभा राय का आदिभूमि उपन्यास बोंडा आदिवासियों के अभावग्रस्त जीवन की पृष्ठभूमि के दुर्लभ जीवन दृश्यों का चित्रण प्रस्तुत करता है। तो भगवानदास मोरवाल की रेत नामक कृति में कंजर जनजातियों के जीवन संघर्ष और उनके अस्तित्व को भली-भांति चित्रित किया गया है। सुरेश चंद्र श्रीवास्तव की वन्तरी (2001) नामक कृति में आदिवासियों को किस प्रकार जल, जंगल एवं जमीन से दूर रखा जाता है का वर्णन किया है। साथ ही एक निडर साहसी आदिवासी लड़की के जीवन में घटित घटनाओं तथा बेगुनाह मैथिली युवक के जीवन पर बड़ी सुगमता से चित्रांकन किया गया है। इसी श्रृंखला में हरी राम मीणा कृत धुनि तपे तीर (2008) राजस्थान के भील जनजाति पर केंद्रित उपन्यास है। इसमें आदिवासियों के यथार्थ का चित्रांकन है। इसी प्रकार रदेंदर का ग्लोबल गांव के देवता (2009) झारखंड की असुर जनजाति पर आधारित कृति है। इस कृति में रचनाकार ने भूमंडलीकरण के प्रभाव से समाप्त होती असुर जनजाति की विभिन्न समस्याओं, संघर्षों, कठिनाइयों को समाज के सम्मुख लाने का प्रयास किया है इनकी 2014 में प्रकाशित करती गायब होता देश मुंडा आदिवासियों की समस्याओं एवं संघर्षों पर आधारित है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विभिन्न आदिवासी लेखक एवं गैर आदिवासी लेखक अपनी कृतियों के माध्यम से आदिवासी जीवन,समाज और संस्कृति को समाज के सम्मुख,पाठकों,आलोचकों के सम्मुख लाते हैं और बाहरी शोषकों के लगातार उनके जंगलों में प्रवेश से उत्पन्न विविध प्रकार की समस्याएं और उनके विरुद्ध होने वाले संघर्षों को उजागर करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, पृष्ठ 29
2. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी अर्थ एवं अवधारणा, पृष्ठ 21
3. जगन्नाथ पाठी,जनजाति क्या है? देशज क्या है ?पृष्ठ 16
4. वीर भारत तलवार, दस्तक, पृष्ठ 112
5. झारखंड आदिवासी और हिंदी उपन्यास-विद्याभूषण,हंस,अगस्त 1999, पृष्ठ 61

ISSN 2278 - 0327

भारत में घरेलू कामगार महिलाओं की दशा एवं दिशा

डॉ. विकास शर्मा
सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं-341306 (राजस्थान)

डॉ. पुष्पा मिश्रा
सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं-341306 (राजस्थान)

संक्षेपिका - भारत में श्रम शक्ति का कुल 86 प्रतिशत काम असंगठित क्षेत्र में परिलक्षित होता है, जिसमें महिला श्रम की भागीदारी 65 प्रतिशत है। महिला घरेलू कार्य, श्रमिक, कृषि, निर्माण कार्य, गृह उद्योग, कालीन बुनाई जैसे अनेकों कार्यों में संलग्न हैं। उक्त क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिक न्यूनतम मजदूरी भी प्राप्त नहीं करते हैं। भारत की सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुसार महिला का स्थान एवं कार्यक्षेत्र घर के भीतर ही होता है किन्तु प्रारंभ से ही आवश्यकता पड़ने पर पुरुषों से किसी भी मामले में पीछे नहीं हैं। रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया द्वारा प्रदान की गयी जानकारी के अनुसार 2001 में महिलाओं की श्रम में भागीदारी 25.63 प्रतिशत थी। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में उन सामाजिक कारकों का पता लगाने का प्रयास किया गया है, जिनके कारण महिलाओं को जीवन भर संघर्ष करना पड़ता है। उन माध्यमों का भी उल्लेख किया गया है जिनमें सरकार एवं सामाजिक संगठनों द्वारा उठाए गये कदमों का लाभ असंगठित अथवा घरेलू कामकाजी महिलाओं को मिल सके और उन्हें मुख्य धारा में लाया जा सके। उक्त शोध में घरेलू कामकाजी महिलाओं के जीवन व कार्य को निर्धारित करने वाली अर्थव्यवस्था व समाज को आंकना है। तथ्य संग्रहित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग करके विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य बिन्दुः घरेलू कामकाज, महिला, असंगठित क्षेत्र, सामाजिक संस्था, सरकारी योजनाएं।

परिचय- घरेलू काम उत्पादक गतिविधियों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जो घर की अर्थव्यवस्था में अपनी अहम् भूमिका निभाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में घरेलू काम अदृश्यता के रूप में दिखायी देता है क्योंकि यह किसी भी आर्थिक नीति से बाहर है। श्रम के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति हमेशा संकट में रही है। संगठित क्षेत्र के अतिरिक्त दर्जनों ऐसे पेशे हैं जिनमें उनकी स्थिति नगण्य है। भारत में जो मध्यम वर्ग भी उच्च वर्ग निरन्तर उत्थान की दिशा में अग्रसर हो रहा है। उसके पीछे महिलाओं की कामकाज (मजदूरी) की अकूत शोषण की अहम् भूमिका है। कम से कम वेतन में, कठिन परिस्थितियों में, उबाऊ थकान से भरी हुई और बारीक काम महिलाओं के लिए बहुत सारे कानून का प्रावधान है। जैसे- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, मातृत्व लाभ अधिनियम 1961, कारखाना अधिनियम 1948, असंगठित श्रमिक अधिनियम 2008, महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न अधिनियम 2013 आदि।

घरेलू कामगार वह वर्ग है जो उच्च वर्ग या मध्यम वर्ग के घरों में विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। इनके कार्य गैर उत्पादन के दायरे में आता है। बड़े शहरों में ज्यादातर घरों में महिलाएं इस कार्य में संलग्न है लेकिन इस कार्य क्षेत्र में सम्मान का अभाव पाया गया है। ये महिलाएं सफाई के कार्य, खाना बनाना, बच्चों की देखभाल आदि के कार्य में कुशलतापूर्वक अपना योगदान देती है किन्तु इनके लिए पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर सम्मान पाना भी सहज नहीं है। महिलाएं आर्थिक विफलता, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक विश्वास एवं भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था बनाने की वजह से इन कामों में संलग्न होती है।

अर्थव्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं की स्थिति बदलने के लिए सूक्ष्म एवं व्यापक स्तर पर आवश्यक है कि परिवार समाज, राज्य एवं बाजार की अवधारणा में इसको सम्मिलित करके देखा जाना चाहिए। 1960 के दशक में अर्थशास्त्रियों द्वारा महिलाओं के घरेलू श्रम को आर्थिक योगदान में सम्मिलित कर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। (मिनसर 1962, वेन्स्टन 1969, हेरिसन 1973, गार्डिनर 1975) इन विश्लेषणों में यह बताया गया है कि महिलाओं के घरेलू गतिविधियों को पहचानना, महत्त्व देना और यह स्पष्ट करना कि महिलाएं श्रम बाजार में अपने व्यक्तिगत हित के लिए नहीं बल्कि आर्थिक आवश्यकता के लिए है। (फोल्ब्रे एंड यून, 2008) वर्तमान परिप्रेक्ष्य में घरेलू कामकाजी

महिलाओं की चर्चा अत्यावश्यक है क्योंकि असंगठित क्षेत्र में काम के एवज में महिलाएं सामाजिक सुरक्षा से वंचित हैं। (फ्लेचर ऐट ऑल, 2017) इसे क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं के कार्य का दर बहुत कम है, और इसकी कोई सामाजिक आर्थिक मान्यता नहीं है। खाना बनाना, सफाई का कार्य, बच्चों की देखभाल आदि गतिविधियों से जुड़ी महिलाओं को आर्थिक योगदानों को हाशिये पर ही रखा जाता है। (पटेल, 2016) इस क्षेत्र में सामाजिक मानदण्डों, जाति, काम की अवस्था, शैक्षणिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, घरेलू कार्यों के प्रकार, उपस्थिति एवं अनुपस्थिति भी संख्या आदि अन्तर्निहित कारकों को समझना आवश्यक है। महिलाओं द्वारा घरेलू कार्य में संलग्नता अपने पसंद का कार्य नहीं बल्कि समाज और पितृसत्तात्मक मानदंडों के आधार पर एक परिस्थिति उत्पन्न होने की अवस्था है।

यह अवस्था महिला कामगारों की आय और श्रम की क्षमता को प्रतिबंधित करता है। (कबीर) इसकी वजह से महिला कामगारों के आय, सामाजिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य का नुकसान होता है तथा महिलाओं की शिक्षा, कौशल विकास एवं उचित सम्मान का अभाव रहता है। (मैसोनी 2004, रजावी 2007) इसमें आकस्मिकता, अनियमितता और अनौपचारिकता क्षेत्र प्रभावी रहता है। (कबीर 2012, बडलैंडर 2004) अर्थात् घरेलू असुरक्षा, अपमान तथा समाज द्वारा पूर्वाग्रह से सम्बन्धित अनुचित व्यवहार का सामना करना पड़ता है।

साहित्य का पुनरावलोकन– साहित्य का पुनरावलोकन किसी भी शोध प्रपत्र का एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है जो प्रपत्र को गुणवत्ता प्रदान करता है तथा इसके माध्यम से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् प्रस्तुत शोध पत्र को एक दिशा की प्राप्ति होती है। इसके अंतर्गत आंकड़ों की प्रासंगिकता, अर्थपूर्ण महत्ता, वैधता एवं सारांश के अध्ययन से प्रस्तुत प्रपत्र की शोध प्रक्रिया में सुगमता की प्राप्ति होती है। शोधकर्ता की समझ विकसित करने के लिए तथा नये विचारों की उत्पत्ति एवं निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए साहित्य का पुनरावलोकन आवश्यक है।

विनिता मोगिया (2019) ने अपने शोध पत्र ''शहरी असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' में सतना जिले के महिला कामगार के आर्थिक विसंगतियों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि घरेलू महिला कामगार का जीवन अत्यन्त असंतोषप्रद है। सामाजिक स्तर पर उनके काम को मान्यता नहीं दी जाती है।

डर्सी डु टोयर (2013) द्वारा एक शोध पत्र ''नर्चरींग ए कल्चर ऑफ कम्प्लीट्स वीथ डोमेस्टिक वर्कर'' में उल्लेख किया है कि घरेलू महिला कामगार शोषण सहती है और भेदभाव की शिकार होती है। श्रम बाजार में उनका स्तर कमजोर होता है। वो कई मायनों में अपने अधिकारों से वंचित रहती है।

यू.एन. रिपोर्ट (2013) के अनुसार विश्व स्तर पर घरेलू महिला कामगारों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। उन्हें श्रम कानून का कोई लाभ नहीं मिलता है। उनका शोषण होता है और उपेक्षित नजरों से उनको देखा जाता है। उनके कार्य के घंटों की कोई गिनती नहीं होती है और उन्हें साप्ताहिक अवकाश से भी वंचित रहना पड़ता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. घरेलू महिला कामगारों के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन।
2. घरेलू कामगारों के सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का अध्ययन।
3. घरेलू कामगारों के अधिकारों एवं सामाजिक सुरक्षा का अध्ययन करना।
4. घरेलू महिला कामगारों द्वारा लिए जाने वाले सरकारी योजनाओं के प्रति जागरूकता एवं लाभ का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. घरेलू महिला कामगारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति दयनीय होती है।
2. घरेलू महिला कामगारों को सरकारी लाभ के प्रति समुचित जानकारी के अभाव में सरकारी योजनाओं, अपने अधिकारों एवं कानूनी प्रावधानों का लाभ नहीं उठा पाती हैं।

शोध प्रारूप –

तथ्यों का संग्रह– यह शोध पत्र विश्लेषणात्मक है और तथ्यों के संग्रह का स्रोत प्राथमिक एवं द्वितीय दोनों ही हैं। प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है तथा द्वितीय स्रोत में विभिन्न साहित्यों के अध्ययन के माध्यम से तथ्यों की जानकारी ली गयी है। 30 घरेलू महिला कामगार को उत्तरदाता के रूप में यादृच्छिक नमूने के अंतर्गत चुनाव किया गया है। तथ्यों के संग्रह के पश्चात् वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया गया है तथा इसके आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है। घरेलू कामगारों के साथ होने वाले अत्याचार व अपराध के कोई व्यवस्थित तथा राष्ट्र स्तरीय आंकड़े नहीं है लेकिन उक्त शोध प्रपत्र के माध्यम से निम्न तालिका में प्रस्तुत कुछ आंकड़ों से स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है।

तालिका सं.-1

क्रम संख्या	तथ्य	उत्तरदाताओं की संख्या
1.	शिक्षा :	
	कक्षा 5 तक	12
	कक्षा 5 से ज्यादा	08
	अशिक्षित	10
2.	उम्र :	
	20 वर्ष से कम	08
	20 वर्ष से अधिक	09
	30 वर्ष से ज्यादा	13
3.	परिवार की वार्षिक आय :	
	एक लाख	07
	एक लाख से ज्यादा	10
	कोई अन्य आय नहीं	13
4.	कार्य की अवधि :	
	एक से दो घंटा	12
	दो से पांच घंटा	09
	4 घंटा से ज्यादा	09
5.	पारिश्रमिक :	
	दो हजार से कम	07
	दो से चार हजार	13
	चार हजार से ज्यादा	10
6.	मासिक खर्च :	
	2 से 4 हजार	20
	4 हजार से ज्यादा	10
7.	घरों की संख्या :	
	1 या 2	17
	तीन या चार	13
8.	मजदूरी का भुगतान :	
	1 स 5 तारीख तक	05
	5 से 10 तारीख तक	08
	कभी भी	17
9.	रास्ते की सुरक्षा :	
	सुरक्षा का भय	17
	सुरक्षा का कोई भय नहीं	13
10.	काम की प्रकृति :	
	घर की सफाई एवं बर्तनों	23
	की सफाई	2
	कपड़ों की सफाई	02
	बच्चों की देखभाल	3
	अन्य	

उपराक्त ताालका स स्पष्ट ह ाक 12 माहलाए पाचवा पास, 8 महिलाएं पांचवी कक्षा से ऊपर एवं 10 महिलाएं अशिक्षित थी। 20 से कम उम्र की 8 तथा 20 से 30 के बीच 09 और 13 महिलाएं 30 वर्ष से ज्यादा उम्र की थी। वार्षिक आय ज्ञात करने पर पता चला कि- 7 महिलाओं के परिवार में वार्षिक आय 1 लाख के अंदर एवं 10 महिलाओं के घरों में एक लाख से ज्यादा और 13 महिलाओं का कोई आय का निश्चित स्रोत नहीं था। 12 महिलाओं ने बताया कि एक घर में वो एक से दो घंटे तक काम करती हैं, 9 महिलाओं ने कहा कि लगभग चार घंटे से ज्यादा समय एक घर में देती हैं। खर्च के संदर्भ में 20 महिलाओं ने कहा कि प्रति माह न्यूनतम चार हजार खर्च होता है। जवाब में 10 महिलाओं ने कहा कि चार हजार से ज्यादा खर्च होता है। 17 महिलाओं ने बताया कि एक या दो घरों में काम करती हैं जबकि 13 महिलाओं ने कहा कि वो तीन या चार घरों में काम करती हैं। मजदूरी भुगतान के समय के संदर्भ में महिलाओं ने बताया कि मजदूरी प्रतिमाह मिलती है लेकिन कभी-कभी 5 तारीख तो कभी 10 तारीख तक या कभी भी मिलती है। इसके लिए कोई निश्चित तारीख नहीं है। सुरक्षा के संदर्भ में 17 महिलाओं ने कहा कि कोई भय नहीं लगता है। 23 महिलाओं ने बताया कि घर की सफाई एवं बर्तनों की सफाई का काम करती हैं। दो महिलाओं ने कपड़ा धोना बताया तथा तीन महिलाओं ने बच्चों की देखभाल का काम करना बताया। इस प्रकार उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि महिलाओं की घरेलू कामगार के रूप में रोजगार पाकर संतुष्टि नहीं है।

तालिका सं. 2

क्रम संख्या	तथ्य	उत्तरदाताओं की संख्या
1.	अतिरिक्त प्रोत्साहन :	
	त्यौहार पर अतिरिक्त प्रोत्साहन	30
	किसी उत्सव पर प्रोत्साहन	0
	अन्य	
2.	बीमारी लाभ :	
	बीमारी में अवकाश	23
	बीमारी का खर्च वहन करना	07
	अन्य लाभ	0
3.	हिंसात्मक व्यवहार :	
	मानसिक प्रताड़ना	08
	मारपीट	01
	कोई हिंसा नही	21
4.	अवकाश :	
	प्रतिमाह निश्चित अवकाश	02
	आवश्यकता पड़ने पर	12
	अत्यन्त मश्किल	16
5.	नियुक्ति का माध्यम :	
	संस्था द्वारा	0
	परिचय से	25
	अन्य	05

क्रम संख्या	तथ्य	उत्तरदाताओं की संख्या
1.	स्वास्थ्य की स्थिति :	
	पूर्ण स्वस्थ	15
	थोड़ा अस्वस्थ	09
	अस्वस्थ	09
2.	यौन उत्पीड़न :	
	कभी–कभी	06
	अक्सर	02
	कभी नहीं	22
3.	भेदभाव :	
	जातिगत	09
	कोई भेदभाव नहीं	16
	अन्य भेदभाव	05
4.	अन्य सुविधा :	
	वस्त्र	30
	दवाई	17
	खान–पान	17
	उपराक्त सभी	17

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि घरेलू महिला कामगार को अतिरिक्त प्रोत्साहन समय-समय पर मिलता रहता है। अर्थात् प्रत्येक त्यौहार पर वस्त्र एवं कुछ नकदी और अतिथियों के आने पर भी अतिरिक्त आय होती है। बीमारी में अवकाश सभी महिलाओं को मिलता है किन्तु आर्थिक सहयोग का मिलना सिर्फ 7 महिलाओं ने बताया। 8 महिला कामगारों ने बताया कि कभी–कभी मानसिक प्रताड़ना भी सहनी पड़ती है। एक महिला ने कहा कि मारपीट का शिकार होना पड़ा तथा 21 महिलाओं ने कहा कि किसी प्रकार की कोई हिंसात्मक व्यवहार का सामना नहीं करना पड़ता है। अवकाश के संदर्भ में महिलाओं ने बताया कि आवश्यकता पड़ने पर अवकाश लेते हैं लेकिन कभी–कभी बहुत मुश्किल से अवकाश मिलता है। नियुक्ति के संदर्भ में बताया कि किसी न किसी परिचय के माध्यम से ही काम मिला है। 15 महिलाओं ने कहा कि हम स्वस्थ महसूस करते हैं। कुछ ने बताया कि कभी–कभी अस्वस्थ भी हो जाते हैं। काफी कम महिलाओं ने कहा कि कभी–कभी यौन उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। ज्यादातर कामगारों ने बताया कि यौन उत्पीड़न जैसी कोई घटना नहीं होती है। भेदभाव के संदर्भ में ज्यादा महिलाओं ने कहा कि कोई भेदभाव नहीं होता है किन्तु 9 महिलाओं ने कहा कि कभी–कभी जातिगत भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। सुविधाओं के संदर्भ में सभी कामगारों का वस्त्र का मिलना बताया। दवाइयां एवं खान–पान की सुविधाएं भी कुछ महिलाओं ने स्वीकार की।

तालिका सं. 3

क्रम संख्या	तथ्य	उत्तरदाताओं की संख्या
1.	सामाजिक सुरक्षा :	
	सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित लाभ	0
	कोई बीमा	0
	अन्य	10
2.	वेतन का स्तर :	
	न्यूनतम मजदूरी	04
	आवश्यकतानुसार वेतन	12
	संतोषप्रद वेतन	0
3.	बैंक में खाता :	
	बैंक में खाते का लाभ	13
	बैंक में खाना नहीं होना	17
4.	सरकारी योजनाएं :	
	सरकारी योजनाओं की जानकारी	20
	सरकारी योजनाओं से लाभ	17
	सरकारी योजनाओं से संतुष्टि	08
5.	योजनाओं से लाभ :	
	श्रम कार्ड	08
	चिरंजीवी योजना	22
	जननी सुरक्षा योजना	12
	जन–धन योजना	17

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि घरेलू महिला कामगार को कोई सामाजिक सुरक्षा का लाभ नहीं मिलता है। 4 महिला कामगारों ने कहा कि न्यूनतम मजदूरी मिलती है जबकि 12 महिलाओं ने कहा कि हमारी मांग के अनुसार वेतन मिलता है। लगभग सभी महिलाएं इस बात पर एक मत थी कि वेतन संतोषप्रद नहीं मिलता है। सरकारी योजनाओं की जानकारी के संदर्भ में ज्ञात करने पर मालूम हुआ कि 20 महिला कामगार सरकारी योजनाओं के संदर्भ में जानकारी रखती थी और 17 ने किसी न किसी रूप में लाभ भी उठाए थे। 8 महिलाओं ने कहा कि हम सरकारी योजनाओं से संतुष्ट हैं। 8 कामगारों ने कहा कि श्रम कार्ड बना हुआ है। 22 महिलाओं के पास चिरंजीवी कार्ड है। 12 महिलाओं ने जननी सुरक्षा योजना का लाभ उठाया है जबकि 17 महिलाओं ने जन-धन योजना के अंतर्गत खाते खुलवाये हैं।

उपरोक्त सभी तालिकाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि घरेलू महिला कामगार का जीवन स्तर दयनीय है। आर्थिक सम्बलता प्रचुर मात्रा में प्राप्त नहीं है। घरेलू महिला कामगारों को निजी घरों में अनौपचारिक तथा मौखिक बातचीत के आधार पर रखा जाता है। उस बातचीत में तय बातों का कोई लिखित दस्तावेज नहीं होता है। इसीलिए कामगारों पर मालिकों द्वारा अपनी शर्तें थोपने

का मौका मिल जाता है। विवाद की अवस्था में कामगार अपने हक की बात भी नहीं कर सकता।

किसी भी व्यक्ति को रोजगार के सुरक्षा की इच्छा रहती है लेकिन घरेलू कामगारों के साथ ऐसा नहीं है। घरेलू कामगारों के बीमारी की अवस्था में भी अवकाश मिलना मुश्किल होता है और सामान्यतया अवकाश की समस्या ही रहती है। इनके लिए आराम की कोई गुंजाइश नहीं होती है। घरेलू कामगारों को छुट्टियों का कोई प्रावधान नहीं है। छुट्टी करने पर वेतन भी काटा जाता है। काम के दौरान आराम नहीं कर सकते हैं।

सामाजिक सुरक्षा एवं नीतियां –घरेलू कामगारों के पेंशन का कोई प्रावधान नहीं है। अपनी आजीविका के लिए वे तब तक काम करते हैं जब तक वे स्वस्थ हैं। कुछ योजनाएं केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए बनायी गयी है लेकिन लाभ तक इनकी पहुंच नहीं होती।

नेशनल कमीशन ऑफसेल्फएम्पलाइड वुमेन, 1987

भारत सरकार ने स्वरोजगार करने वाली महिला कामगारों को अध्ययन के लिए कमेटी गठित की और कमेटी द्वारा रिपोर्ट दी गई जिसमें नीतिगत सुझाव दिये लेकिन यह कार्य भी पूर्ण रूप से सफल नहीं रहा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कन्वेंशन संस्थान, 189

वर्ष 2011 में भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के घरेलू कामगार कन्वेंशन 189 पर हस्ताक्षर कर उनकी कार्यदशा में सुधार करने का प्रयास किया। इसके अंतर्गत न्यूनतम मजदूरी, कार्य दशा, अवकाश कार्य का समय, ओवर टाइम, साप्ताहिक छुट्टी, आराम आदि को प्रोत्साहित करता है।

असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008

उक्त अधिनियम के अंतर्गत वृद्धावस्था पेंशन, पारिवारिक लाभ योजना, जननी सुरक्षा योजना, हैण्डीक्राफ्ट, आम आदमी बीमा योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा आदि को प्रोत्साहित करता है।

निष्कर्ष

घरेलू कामगारों को संगठित करने की प्रक्रिया दीर्घकालीन है। इसके लिए घरेलू कामगारों को सशक्त बनाना होगा। ऐसा तभी संभव है जब इनका समूह बनाया जाय और इन्हें संगठित होने का अधिकार मिले। घरेलू कामों को काम का दर्जा दिलाने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों की भूमिका अहम् है। न्यूनतम वेतन विज्ञप्ति जारी हो। काम के हालात और सामाजिक सुरक्षा जैसी व्यवस्था को प्रोत्साहित करना होगा। स्वाभिमान की रक्षा, मानसिक सम्बलता एवं न्यायपूर्ण व्यवहार को प्रोत्साहित करना होगा।

घरेलू कामगार आज देशभर में न्यूनतम वेतन, काम करने की स्थितियों, सेवा शर्तों, सामाजिक सुरक्षा आदि से वंचित हैं। कड़ी मेहनत, उपेक्षा, उत्पीड़न और अनिश्चितता की जिन्दगी बिताने के लिए ये मजबूर हैं। सरकार को कानून बनाकर, नीति बनाकर उन्हें आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा कानूनी तौर पर प्रदान करनी चाहिए। घरेलू कामगारों के लिए एक राष्ट्रीय नीति का मसौदा (ड्राफ्ट) केन्द्र सरकार जल्द से जल्द लागू करें, जिसमें न्यूनतम मजदूरी, तयशुदा काम के घंटे, छुट्टी, सामाजिक सुरक्षा, मातृत्व अवकाश, पालनाघर, बाकी सुविधाओं से जुड़े सभी दिशा–निर्देश सम्मिलित हों। समाज भी घरेलू कामगारों के अस्तित्व, अस्मिता और पहचान को सुरक्षित रखने का प्रयास करे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सविता नागर (1988), भारतीय समाज में कार्यशील महिलाएं, क्लासिक पब्लिकेशन्स, जयपुर
2. जस्मिन लारेन्स (2003), महिला श्रमिक (सामाजिक स्थिति एवं समस्याएं), अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
3. ममता जैतली, श्री प्रकाश शर्मा (2010), आधी आबादी का संघर्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. ममता (2010), घरेलू हिंसा (अधिकारों के प्रति महिलाओं की जागरूकता), रीगल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
5. रेखा जेड पटेल (2015), आधुनिकता के दौर में शिक्षा और महिलायें, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
6. पी.एन. नाटाणी (2011), भारत में सामाजिक विकास, आदि पब्लिकेशन्स, जयपुर
7. विपिन कुमार (2009), वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तिकरण, रीगल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
8. अनुराधा प्रसाद, रविशंकर कुमार चौधरी (2016), नारी सशक्तिकरण, रीगल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
9. चितरंजन ओझा (2010), नारी शिक्षा एवं सशक्तिकरण, रीगल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
10. सुधारानी श्रीवास्तव (1999), महिलाओं के प्रति अपराध, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली
11. सुधारानी श्रीवास्तव (2006), भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति, कामलवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली
12. सुधारानी श्रीवास्तव (2006), महिला शोषण और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
13. पूजा शर्मा (2012), महिलाएं और मानवाधिकार, सागर पब्लिशर्स, जयपुर

ISSN 2278 - 0327

वैदिक परिप्रेक्ष्य में सृष्टि उत्पत्ति की अवधारणा : ऋग्वेद के विशेष सन्दर्भ में

ममता चौधरी
पी. एच. डी. शोधार्थी योग
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची,
रायसेन (म.प्र.)

अखिलेश कुमार विश्वकर्मा
पी. एच. डी. शोधार्थी योग
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची,
रायसेन (म.प्र.)

सार संक्षेपिका-वेद भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान के प्रमुख स्रोत माने जाते हैं। जिनमें सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान मंत्र एवं सूत्रों में समाहित है। वेदों की ऋचाओं में ही जीव, जगत, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा आदि विषयक सिद्धान्तों का समावेश है। जन्म, मृत्यु, जीव, कर्म, भोग, अपवर्ग आदि का अस्तित्व सृष्टि की स्थिति पर आश्रित है। सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया के पश्चात् ही प्राणीमात्र का जन्म, आयु, भोग एवं अपवर्ग सुनिश्चित होता है। पिण्ड (शरीर) एवं ब्रह्माण्ड (जगत) में ही अलौकिक, अपरिमित, असीमित एवं दिव्य ज्ञान के रहस्य छिपे हुए हैं। जिनको जानने का अथक प्रयास मानव समुदाय द्वारा आदिकाल से होता आया है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में सृष्टि उत्पत्ति के सूत्रों का वर्णन किया गया है। जिन पर निरंतर वैज्ञानिक एवं आत्मानुसंधान किए जा रहे हैं। विभिन्न साधनाओं एवं वैज्ञानिक अनुसंधान के पश्चात् ऋषि, मनीषी एवं वैज्ञानिक अपने भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित करते हैं। परन्तु फिर भी इतने प्रयास के पश्चात् सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया का प्रश्न निरुत्तर बना हुआ है। ऋग्वेद सबसे प्रचीन एवं प्रथम वेद है जिसमें सृष्टि उत्पत्ति के अनेक सूत्रों का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। इस शोध-पत्र में सृष्टि उत्पत्ति को ऋग्वेद के विशेष सन्दर्भ में वर्णित किया गया है।

कूट शब्द- सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, लय, ऋग्वेद।

प्रस्तावना- सृष्टि निर्माण के प्रश्न का उत्तर प्राचीन काल से वर्तमान तक निरन्तर खोजा जा रहा है। इस दिशा में निश्चितत: प्राचीन काल में बहुधा विभिन्न आनुभविक प्रयोग हुए हैं। जिनकी व्याख्या मंत्रदृष्टा ऋषि मुनियों ने वेद, पुराण, उपनिषद् आदि वैदिक साहित्यों में की है। परन्तु यह व्याख्या ऋषियों ने अपने अनुभव में आने वाले नियम एवं उस समय की भाषा-शैली के आधार पर की है। भाषा एवं शैली के कारण स्थूल दृष्टि से देखने पर सृष्टि उत्पत्ति विषयक प्रक्रिया के मतों में भिन्नता प्रतीत होती है। परन्तु यदि सभी वैदिक वाङ्मय के मूल में जाकर देखा जाए तो ये विविधता एकता में प्रतीत होती दिखती है। सृष्टि उत्पत्ति विषयक सिद्धांत की कल्पना में वैदिक वाङ्मय एवं आधुनिक अनुसंधान के परिणामों में समानता दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान में किए जाने वाले अनुसंधानों की दिशा भी आहिस्ते-आहिस्ते वैदिक वाङ्मय के सिद्धान्तों की पुष्टि ही कर रहा है। वर्तमान के सारे प्रायोगिक परिणाम प्राचीन काल में हुए परिणामों के समरूप ही हैं। अन्तर मात्र भाषा की अभिव्यक्ति का है। वैदिक वाङ्मय में सभी वेद और उपनिषदों में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में चर्चा विद्यमान है। ऋग्वेद के विविध सूक्तों में सृष्टि उत्पत्ति विचार देखने को मिलते है। नासदीय, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ एवं पुरुष आदि ऋग्वेद के ऐसे सूक्त हैं जिनमें सृष्टि उत्पत्ति विषय का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पुरूष सूक्त में पुरुष (परमात्मा) के विराट् रूप को सृष्टि का उत्पत्ति कर्ता माना है। जिसको सहस्त्रों सर, पैर आदि से युक्त बताया गया है। उस चराचर जगत की उत्पत्ति तथा चारों वेदों की उत्पत्ति उसी से मानी गयी है। चारो वर्णों को विराट् पुरुष का मुख आदि अंग बताया गया हैं, यज्ञ प्रक्रिया को सृष्टि का प्रथम धर्म कहा गया है। हिरण्यगर्भ सूक्त में सृष्टि का उत्पत्ति कर्ता परमात्मा या हिरण्यगर्भ को बताया गया है।

वस्तुत: ऋषियों ने गहन साधनाओं से चेतना ही उच्च स्थिति में वेदों के सूत्रों का प्रतिपादन किया है। जो कि स्वानुभूत, प्रमाणिक, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक हैं। इन सूत्रों का बोध मानवीय जीवन को अनन्त दिव्यता एवं पूर्णता में प्रतिस्थापित कर सकता है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह शोध-पत्र लिखा गया है। चूंकि समस्त वेद एवं वैदिक वाङ्मय एक वृहद् साहित्य है जिस पर समग्र दृष्टिपात करना एक शोध-पत्र में अत्यन्त दुष्कर है, इसलिए इस शोध-पत्र में सृष्टि उत्पत्ति की अवधारणा को शोधार्थी ने ऋग्वेद के विशेष सन्दर्भ में देखना सुनिश्चित किया है।

सृष्टि उत्पत्ति की आधुनिक अवधारणा

सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त का आधुनिक प्रक्रम सामान्यत: परमाणु से निष्पन्न माना जाता है। जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम परमाणु से अणु, अणु से विभिन्न यौगिक तत्वों का निर्माण हुआ इन तत्वों से सजीव-निर्जीव, पादप-जन्तु आदि का प्रदुर्भाव हुआ तत्पश्चात् ग्रह, नक्षत्र, आकाशगंगा एवं समूचे विश्व ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ। आधुनिक जगत में अरस्तु (340) ई.पू., निकोलस, कॉपर्निकस (1514) आदि विद्वानों ने सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। भौतिक

शास्त्री जार्ज लेमैत्रे (1927) ने सृष्टि उत्पत्ति के सन्दर्भ में Big Bang (महाविफोस्ट) थ्यौरी का प्रतिपादन किया। इस थ्यौरी में उन्होंने बताया की ब्रह्माण्ड एक परमाण्विक इकाई के रूप में अति संघनित था। इस परमाण्विक इकाई में कुछ समय बाद विशाल धमाका हुआ इस धमाके के दौरान जो-जो टुकड़े हुए वे अंतरिक्ष में जाकर तारों का रूप लेने लगे। फिर इन तारों में विस्फोट हुआ जिसे सुपरनोवा कहते है। सुपरनोवा के कारण ब्लैक होल का निर्माण हुआ। 1965 में ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म तंरग विकिरण की खोज के बाद Big Bang (महाविस्फोट) थ्यौरी को सबसे ज्यादा मान्यता प्राप्त हुई।

सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक अवधारणा- ''सृष्टि शब्द 'सृज' धातु और 'क्तिन' प्रत्यय से मिलकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- संसार की रचना, निर्माण, दान और एक प्रकार की ईट जो यज्ञ की वेदी बनाने में काम आती है।''[1] पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार- 'जगत् का आविर्भाव या संसार की उत्पत्ति को सृष्टि कहा जाता है।'[2] छान्दोग्य उपनिषद्[3] के अनुसार- 'सृष्टि के आरम्भ में केवल ब्रह्म ही एकमात्र चेतन था। उसने एक से अनेक होने की इच्छा से प्रजा को उत्पन्न किया' जिससे सृष्टि का निर्माण हुआ। इसी प्रकार का वर्णन ऐतरेयोपनिषद् में किया गया है, उपनिषद् के अनुसार- 'सृष्टि के आरम्भ में एक मात्र आत्मा (परमात्म तत्त्व) ही था, उसके अतिरिक्त और कुछ भी सचेष्ट न था। (तब) उस (परमात्मा) ने विचार किया कि 'मैं लोकों का सृजन करूँ।'[4] विस्तार की इच्छा से परमात्मा ने तप किया जिससे सृष्टि का निर्माण एवं विस्तार हुआ है। मुण्डक उपनिषद् में भी तप के द्वारा सृष्टि के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। उपनिषद् के अनुसार- 'तप के द्वारा ब्रह्म बढ़ता है (बीज रूप को प्राप्त होता है)। उससे अन्न उत्पन्न होता है, अन्न से प्राण उससे मन, उससे सत्य (पञ्चभूत), उससे लोक और मनुष्यादि, उनसे कर्म और कर्म से अमृतरूप फल प्राप्त होता है।'[5] प्रश्नोपनिषद्[6] में कबन्धी ऋषि पिप्पलाद से प्रजा की उत्पत्ति का कारण पूछते हैं जिसके उत्तर में ऋषि कहते हैं- 'प्रजा वृद्धि की इच्छा वाले प्रजापति ब्रह्मा ने तप किया। तदन्तर उन्होंने रयि और प्राण नामक एक युगल उत्पन्न किया और सोचा कि यह युगल ही अनेक प्रकार की प्रजा का उत्पादन करेगा' उपनिषद् के अनुसार प्रजा का निर्माण एवं विस्तार प्राण एवं रयि के संयोग से हुआ है।

ऋग्वेद में सृष्टि उत्पत्ति विषयक विचार

ऋग्वेद के विविध सूक्तों में सृष्टि उत्पत्ति के विचार देखने को मिलते है। विश्वकर्मा, पुरुष, नासदीय, हिरण्यगर्भ एवं आदि सूक्त सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन करते हैं।

विश्वकर्मा सूक्त के अनुसार- ऋग्वेद के 10 वें मण्डल में विश्वकर्मा सूक्त आया है, जिसमें सृष्टि निर्माण से संबंधित विभिन्न प्रश्न किये गये हैं। विश्वकर्मा सूक्त सृष्टि संरचना के विविध प्रश्नों से प्रारम्भ होता है।

सूक्त[7] के अनुसार- 'सृष्टिकाल में विश्वकर्मा का आश्रय क्या था? कहाँ से और कैसे उन्होंने सृष्टि कार्य प्रारम्भ किया? विश्वदर्शक देव विश्वकर्मा ने किस स्थल पर रहकर पृथ्वी को बनाकर आकाश को बनाया?' इस प्रश्न का समाधान अगले मंत्र में ऋषि करते हैं-

'शरीर को उत्पन्न करने वाले विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम 'जल' को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् जल में इधर-उधर चलने वाले द्यावापृथिवी को निर्मित किया। द्यावापृथिवी के प्राचीन और अन्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ़ किया। तब द्यावापृथिवी प्रसिद्ध हुई।'[8] ऐसा तैत्तरीय ब्राह्मण का कथन है। विश्वकर्मा का मन वृहत् है, वे स्वयं निर्माण करते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ हैं तथा वे सब कुछ देखते हैं, वे सप्त ऋषियों के परवर्ती स्थानों को भी देखने में समर्थ हैं। जो विश्वकर्मा हमारे पालक, उत्पादक, संसार के उत्पादक, जो विश्व के सारे धामों को जानते हैं जो देवों के तेज स्थानों को जानते हैं, जो देवों का नामकरण करते हैं, सारे प्राणी उन्हीं देव को प्राप्त करते हैं या उनके विषय के जिज्ञासु होते हैं। विश्वकर्मा भूलोक, पृथिवी, असुरों और देवों का अतिक्रम करके उपस्थित हैं। ऐसा माना जाता है कि विश्वकर्मा को जल ने गर्भ में धारण किया है। गर्भ में सारे देवता संगत होते हैं। उस अज की नाभि में ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड में सारे प्राणी रहते हैं। जिन विश्वकर्मा ने सारे प्राणियों को उत्पन्न किया है।

पुरुष सूक्त के अनुसार- पुरुष सूक्त में पुरुष (परमात्मा) के विराट् रूप का वर्णन किया गया है और उसी से समस्त विश्व की सृष्टि का वर्णन है। इसमें पुरुष को सहस्त्रों सर, पैर आदि से युक्त बताया गया है। उस चराचर जगत की उत्पत्ति तथा चारों वेदों की उत्पत्ति कही गयी है। इसमें चतुर्वर्ण व्यवस्था का उल्लेख यही देखने को मिलता है। चारों वर्णों को विराट् पुरुष का मुख आदि अंग बताया गया हैं, यज्ञ प्रक्रिया को सृष्टि का प्रथम धर्म कहा गया है। पुरुष (परमात्मा) को ही सृष्टि का सर्वस्व वर्तमान, भूत, भविष्य कहा गया है। पुरुष *सूक्त के अनुसार*-'विराट् पुरुष (ईश्वर) सहस्त्र (अनन्त) शिरों, अनन्त चक्षुओं और अनन्त चरणों वाला है। वह भूमि (ब्रह्माण्ड-गोलक) को चारों और से व्याप्त करके दश-अंगुलि-परिमाण अधिक होकर अर्थात् ब्रह्माण्ड से बाहर भी व्याप्त होकर अवस्थित है।[9]

'यह सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा की महिमा है। वे तो स्वयं अपनी महिमा से भी बड़े हैं। इस पुरुष का एक पाद (अंश) ही यह ब्रह्माण्ड है। इनके अविनाशी तीन पाद तो दिव्य लोक में है।'[10] सृष्टि विस्तार के सन्दर्भ में पुरूष सूक्त उस विराट पुरूष के शरीर से चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं- 'उस विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, दोनों बाजुओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए, उरूओं (जंघाओं) से वैश्य उत्पन्न हुए और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।'[11] अगले मंत्रों में सृष्टि के अन्य तत्वों की विकास यात्रा का वर्णन किया गया है- 'विराट पुरूष

अर्थात् परमात्मा के मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए। उस पुरूष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्यौ (स्वर्ग), चरण से भूमि, श्रोत से दिशायें आदि भुवन बनाये गये।'[12]

आगे वर्णन है- प्रजापति के प्राणदि रूप देवों ने मानसिक यज्ञ के सम्पादन-काल में जिस समय पुरूष रूप पशु (बलि पशु) को बांध कर उस समय सात परिधियाँ (ऐष्टिक और आहवनीय की तीन छन्द) बनाई गई और इक्कीस (बारह मास, पाँच ऋतुएँ, तीन लोक और आदित्य) यज्ञीय काष्ठ या समिधायें बनाई गई और देवों ने (मानसिक संकल्प द्वारा) जो यज्ञ किया था पुरूष का पूजन किया और उससे जगत रूप विकारों के धारक और मुख्य धर्म हुए जिस स्वर्ग में प्राचीन साध्य (देवजाति विशेष) और देवता हैं उसे उपासक महात्मा लोग पाते हैं। उस प्रकार यह सूक्त अपनी उदात्त भावना, दार्शनिक भाव-गाम्भीर्य और अन्तर्दृष्टि के लिए विख्यात है।

नासदीय सूक्त- ऋग्वेद के 10 वें मण्डल में वर्णित 129 वें सूक्त के अन्तर्गत 1 से 7 संख्या के मंत्र 'नासदीय सूक्त' अथवा 'भाववृत्तम सूक्त' के नाम से जाने जाते हैं। इस सूक्त में सृष्टि के उद्भव, विकास, विस्तार आदि का वर्णन किया गया है।

इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय सत् था न असत् था। न दिन और रात थे। सृष्टि का कोई भी सूचक चिन्ह नहीं था। उस समय केवल एक ही तत्व था जो अपनी इच्छा शक्ति से जीवित था। सर्वप्रथम काम अर्थात् संकल्प उत्पन्न हुआ। इसी संकल्प से सृष्टि नाना रूपों में अभिव्यक्त हुई।

नासदीय सूक्त[13] के अनुसार- 'उस समय (सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व) या प्रलय दशा में असत् नहीं था। सत् भी नहीं था, पृथ्वी भी नहीं थी और आकाश में विद्यमान सातों भुवन भी नहीं थे आवरण भी नहीं था किसका स्थान कहाँ था? क्या दुर्गम और गम्भीर जल उस समय था? अर्थात् नहीं था।' इसी प्रकार दूसरे मंत्र में भी सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व का वर्णन किया गया है- 'उस समय मृत्यु नहीं थी अमरता भी नहीं थी, रात और दिन का भेद भी नहीं था, वायु शून्य और आत्मावलम्बन से श्वास-प्रश्वास केवल एक ब्रह्म था उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था।[14] नासदीय सूक्त में आगे सृष्टि के प्रथम स्फुरण के बारे में वर्णन किया गया है। सूक्त के अनुसार- 'सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में अंधकार व्याप्त था, सब कुछ अंधकार से आच्छादित था। अज्ञात अवस्था में यह सब जल ही जल था और जो था वह चारों ओर होने वाले सत् असत् भाव से आच्छादित था। सब अविद्या से आच्छादित तम से एकाकार था और वह एक ब्रह्म तप के प्रभाव से हुआ।'[15]

तप से सृष्टि के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है- 'सर्वप्रथम परमात्मा के मन में काम उत्पन्न हुआ। उससे सर्वप्रथम बीज निकला। बुद्धिमानों ने बुद्धि के द्वारा अपने अन्त:करण में विचार करके अविद्यमान वस्तु से विद्यमान वस्तु का उत्पत्ति स्थान निरूपित किया।'[16] 'इस प्रकार बीजधारक (भोक्ता) उत्पन्न हुए। महिमाएं (भोग्य) उत्पन्न हुई। उन (भोक्ताओं) का कार्यकलाप दोंनों पार्श्वों (नीचे और ऊपर) विस्तृत हुआ। नीचे स्वधा (अन्न) रहा और ऊपर प्रयति (भोक्ता) अवस्थित हुआ।'[17]

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में एक अत्यन्त उन्नत सिद्धांत पाया जाता है। प्रारम्भ में न तो सत् था और न असत्। सत् भी उस समय अपने अभिव्यक्त रूप में नहीं था। केवल इसलिए उसे असत् नहीं कह सकते हैं क्योंकि वह एक निश्चित सत्ता है। जिससे सब सत पदार्थ अभिर्भूत हुए हैं। परम सत्ता को जो समस्त विश्व की पृष्ठभूमि में है उसको सत् अथवा असत् किसी भी रूप में ठीक-ठीक नहीं जान सकते। वह ऐसी सत्ता है जो अपने ही सामर्थ्य से बिना श्वास-प्रश्वास की क्रिया से जीवित है।

हिरण्यगर्भ सूक्त- ऋग्वेद के 10 वें मण्डल के 121 वें सूक्त को हिरण्यगर्भ सूक्त कहा जाता है। हिरण्यगर्भ को सृष्टि के आदि में प्रकट होने वाले बृहदाकार अण्डाकार रूप में माना गया है। इसी से सृष्टि का विस्तार हुआ है।

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति के बारे में हिरण्यगर्भ सूक्त में बताया गया है कि हे मनुष्यों जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार हो जो यह जगत हुआ है और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा जगत की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था और जिसने पृथ्वी से लेकर सूर्य पर्यन्त जगत को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति करें। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश नामक अपने ग्रंथ में सृष्टि उत्पत्ति के सन्दर्भ में कहा है- जन्माद्यस्ययत: अर्थात् इससे इस जगत का जन्म स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है। मुण्डकोपनिषद्[18] में ब्रह्म और जीव को पक्षियों के दृष्टांत से वर्णित किया गया है। उपनिषद् के अनुसार- ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रतायुक्त, सनातन अनादि है और वैसे ही अनादि मूलरूप कारण और शाखा रूप कर्म युक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ है। इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि है, वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप, फलों को (स्वाद्वन्ति) अच्छे प्रकार से भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को न भोगता हुआ चारों और अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं अर्थात् अनादि, सनातन, जीव रूप प्रजा के लिए वेद द्वारा परमात्मा ने सब विधाओं का बोध किया है। यह जगत सृष्टि के पूर्व सत्, असत्, आत्मा और ब्रह्म रूप्

था। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सृष्टि के आदि में मनुष्यादि जीवों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में मानते हैं कि सृष्टि के आदि में सृष्टि उत्पत्ति अमैथुनी प्रक्रियानुसार हुई है अर्थात् बिना माता पिता के संयोग से हुई। जैंसे सृष्टि के कार्य निर्वाहार्थ ईश्वर ने सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति आदि ग्रह नक्षत्रों को आदि में जिस प्रकार बना दिया है, उसी प्रकार सृष्टि के बीच में ही पुराने सूर्य-चन्द्र आदि को समाप्त कर नए सूर्य आदि की सृष्टि नहीं करता। किन्तु महाप्रलय काल में जब सब कुछ कारण प्रति में समा जाते हैं तब प्रलय की अवधि में समाप्त होने पर पुनः नए सूर्य, चन्द्र आदि की रचना वह करता है। ठीक उसी प्रकार मनुष्यादि की सृष्टि बिना मैथुन के सृष्टि आरम्भ में बना कर वह भी बीज-वृक्ष न्याय से यावत् सृष्टि पुन: मैथुनी सृष्टि के रूप में चलती रहती है इसके लिए काम शक्ति को प्राणियों के शरीर से उत्पन्न किया। अत: सृष्टि के बीच में स्त्री-पुरूष संयोगज प्राणी शरीरों की उत्पत्ति हुआ करती है।

हिरण्यगर्भ सूक्त में उदात्त दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए 'क' अर्थात् प्रजापति का महत्व वर्णित है 9 मंत्रों में कस्मैदेवाय हविषाविधेम् अर्थात् ऐसे प्रजापति देव को हम अपनी स्तुति अर्पित करते हैं, यह कहा गया है। वह प्रजापति सृष्टि के आरम्भ में हिरण्यगर्भ (सुवर्ण का पिण्ड, ब्रह्माण्ड) के रूप में प्रकट हुआ। वही सृष्टि का नियामक हुआ। वही सभी प्रकार की शक्ति का स्रोत है। वही त्रिलोक का कर्ता-धर्ता है। उसी की कृपा से वैभव की प्राप्ति होती है और सर्वत्र विजय श्री मिलती है उसकी छाया अमरत्व है और अकृपा मृत्यु है। हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार- 'सबसे पहले केवल परमात्मा या हिरण्यगर्भ थे। उत्पन्न होने पर वे सारे प्राणियों के अद्वितीय अधिश्वर थे। उन्होंने इस पृथ्वी और आकाश को अपने-अपने स्थानों में स्थापित किया। उन 'क' नाम वाले प्रजापति देवता की हम हवि के द्वारा पूजा करेंगें अथवा हम हव्य के द्वारा किन देवता की पूजा करें। [19]

ऋग्वेद में सृष्टि उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार मिलते है- 1. पुराकथाशास्त्रीय तथा 2. दार्शनिक

पुराकथा शास्त्रीय दृष्टि से दो विचार सामने आते हैं, एक के अनुसार यह संसार यान्त्रिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसके पीछे बढ़ई अथवा लुहार की भांति किसी कुशल कारीगर का हाथ है। दूसरी विचारधारा इस विश्व को प्राकृतिक उत्पत्ति का परिणाम मानती है, जो दार्शनिक सृष्टि से मिलता-जुलता है। यह विश्व एक अनिश्चित एवं अव्यवस्थित स्थिती से उभरा है।

उपसंहार

सृष्टि उत्पत्ति के रहस्यों का अनावरण विविध ग्रंथों में विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया है। जीव और जगत के सम्पूर्ण रहस्यों का वैदिक ग्रंथों में वृहद् वर्णन किया गया है। चूँकि वेद अनुभव के आधार पर लिखे गए है, इसलिए उनकी भाषा-शैली वर्तमान के प्रायोगिक सिद्धान्तों की भाषा-शैली से भिन्न है। वर्तमान में किए जाने वाले अनुसंधानों के परिणाम भी अन्ततोगत्वा वैदिक ग्रंथों के सूत्रों से समतुल्य हैं। ऋग्वेद में विभिन्न सूक्तों के माध्यम से सृष्टि उत्पत्ति के रहस्यों का वर्णन किया गया है। वस्तुत: परमात्मा की इच्छा ही सृष्टि की प्रथम स्फुरणा है, इस स्फुरणा से ब्रह्म ने स्वयं के विस्तार की इच्छा प्रकट की, इस इच्छा की पूर्ती हेतु ब्रह्म ने तप किया। तप से विभिन्न लोक एवं प्रजा आदि समस्त ब्रह्माण्डीय तत्वों का सृजन किया है।

ब्रह्म ही सृष्टि का मूल है, सृष्टि के उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण ब्रह्म ही है। इसलिए मनुष्य को भी इसी भाव से सृष्टि एवं सृष्टि के पदार्थों का उपभोग करना चाहिए। जिसको ईशावास्योपनिषद् में त्याग के साथ भोग की संज्ञा से वर्णित किया गया है। परमात्मा के आश्रय स्थल में सृष्टि का उपभोग करते हुए अनासक्त भाव से जीवन व्यतीत करना ही जीवन मुक्ति का मार्ग है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा. ऋग्वेद संहिता, ब्रह्मवर्चस् शांतिकुंज: हरिद्वार, उत्तराखण्ड, 1999.
2. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा. यजुर्वेद संहिता, ब्रह्मवर्चस् शांतिकुंज: हरिद्वार, उत्तराखण्ड, 1999.
3. शर्मा, सं. नारायण सौनटकाके. ऋग्वेद संहिता, वैदिक संशोधन: मण्डल, पूना, 1933.
4. सधले, श्री गजानन शम्भू. उपनिषदवाक्यमहाकोष, चौखम्भा प्रकाशन: नई दिल्ली, 2014.
5. शास्त्री, केश्वलाल. उपनिषद् संचयन, चौखम्भा प्रकाशन: नई दिल्ली, 2015.
6. व्याख्याकार- गोयन्दका, हरिकृष्णदास. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस: गोरखपुर उत्तरप्रदेश, सं. 2076.
7. पोद्दार, गोस्वामी श्री हनुमानप्रसादजी. चिन्मयलाल: अग्रवाल एवं शास्त्री. केशोराम. कल्याण उपनिषद् अंक, (तेईसवें वर्ष का विशेषांक), गीताप्रेस: गोरखपुर, उत्तरप्रदेश, सं. 2071.
8. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा. 108 उपनिषद् (ज्ञानखण्ड, साधनाखण्ड, ब्रह्मविद्याखण्ड), युग निर्माण योजना: गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2005.
9. तीर्थ, श्रीस्वामी ओकारनन्द. पातंजलयोगप्रदीप, गीताप्रेस: गोरखपुर. उत्तरप्रदेश, 2011.
10. तिवारी, शशि. भारतीय परम्परा में सृष्टि एवं स्थिति, प्रतिभा प्रकाशन: दिल्ली, 2008.
11. झा, अशोक. डॉ. उदयनाथ. वैदिक साहित्य और संस्कृति, विद्यानिधि प्रकाशन: दिल्ली, 2013.
12. पाण्डेय, प्रो. ओमप्रकाश. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप तथा विकास, नाग पब्लिशर्स: दिल्ली, 2005.

(शेष-पृष्ठ 316 पर.....)

अथर्ववेद का भूमिसूक्त : काव्य रूप और पर्यावरण विचार

डॉ. अर्णव पात्र
सहकारी अध्यापक, संस्कृत विभाग
आशुतोष कॉलेज
कलिकाता -700026 (प.व)

अथर्ववेद की शौनक शाखा के बारह काण्डों में संसार के बारे में सूक्त को वैदिक समाज में भूमिसूक्त के नाम से जाना जाता है। 63 मन्त्रों के इस लम्बे सूक्त में बोले गए जगत् की उपासना ने कवि के काव्यात्मक गुण और ईमानदारी के स्पर्श में अद्वितीयता प्राप्त की है। इस सूक्त का सरल, आत्मनिहित काव्य सौन्दर्य युवा और वृद्ध दोनों के हृदयों को समान रूप से छूता है। साईंचार्य इसके काव्य गुण से परिचित थे। तो वे कहते हैं- '*प्रभूतनीसर्ग वर्णनम्*'। भूमिसूक्त के काव्य रूप का विश्लेषण और पर्यावरण चिंतन का प्रतिबिंब नितांत आवश्यक है।

भूमिसूक्त में, पृथ्वी एक सचेत, जीवित प्राणी के साथ प्रकट हुई है। वह अनंत काल तक जीवन का स्रोत रहा है। सर्वशक्तिमान संसार मनुष्य को अपनी गोद में रखता है, पूर्ण करुणा के साथ उसका पोषण करता है, और उसे सुरक्षित आश्रय देता है। एक प्यारी माँ के साथ यह दुनिया उजड़ गई है। वर्तमान सदी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने लोगों को एक बेहतर जीवन दिया है, उन्हें बीमारी और दु:ख से मुक्त किया है, लेकिन दुनिया के सबसे समृद्ध संसाधनों में से एक मिट्टी, वनस्पति ने जानवरों और पक्षियों को लगातार मारकर इंसानों से दूरी बना ली है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानव अस्तित्व खतरे में है। प्रकृति ने संसार में मानवीय नातेदारी का चित्र उकेरा है। पर्यावरण और सौंदर्यशास्त्र का अद्भुत सह-अस्तित्व है।

भूमिसूक्त के संसाधनों में से एक प्रकृति के साथ मानव निकटता का प्रदर्शन है। अनादि काल से यह संसार मानव, अमानव, पशु, पक्षी और हमारे पशुओं के लिए शांति का आश्रय स्थल रहा है। उन्होंने कई घटनाएं देखी हैं। ऋषि कवि ने 63 मंत्रों में नदियों, समुद्रों, ऊँच-नीच, मित्रों, मैदानों, इस संसार की प्राकृतिक समृद्धि के ब्रह्मांड का वर्णन किया है।

इस सूक्त में विश्व का भौगोलिक मानचित्र प्रकट किया गया है। यह दुनिया पहाड़ियों, पहाड़ों, पठारों, रेगिस्तानों, फसलों, हरियाली, मैदानों और विभिन्न पेड़ों, लताओं, फलों और फूलों से भरी हुई है। यह संसार बहुमूल्य रत्नों, हीरों आदि का वास है। ऋषि की वाणी में तो हमें धन की यह प्रार्थना प्राप्त होती है-

वसुनि नो वसुदा रसमाना
देवी दधातु सुमनसामना।

पृथ्वी की भूमि पर खेती करके उत्पादित भोजन हमें जीवन शक्ति और पोषण प्रदान करता है। पृथ्वी की रक्षा के लिए सभी देवता हमेशा पहरे पर रहते हैं, पृथ्वी की रक्षा देवताओं द्वारा की जाती है जैसे कि पृथ्वी हमेशा जागती रहती है। बहुआयामी दुनिया में, विभिन्न रूपों का उत्सव ध्यान देने योग्य है। इस संसार में ऊँचे-ऊँचे पहाड़, गहरे जंगल का मेल, भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग, भिन्न-भिन्न पेशे, भिन्न-भिन्न भाषाएँ निवास करती हैं। कवि की प्रार्थना है कि दुनिया उन्हें ठीक से और ठीक से पूरा करे-

जनं विभ्राति वसुधा विवाचं नाना धर्मानं पृथिवी यथौकसम्।

जैसे दुनिया में आम लोग होते हैं, वैसे ही जंगली जानवर, जानवर, उल्लू, भेड़िये, गंधर्व, अप्सरा, राक्षस और तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े होते हैं। कवि की प्रार्थना है कि दुनिया में हर कोई अपनी जगह पर हो, कि कोई किसी को चोट न पहुंचाए। सभी स्वस्थ, सुंदर, निरोगी रहें। वह दुनिया की कमाने वाली है। सौरमंडल के ग्रहों के बीच जीवन के स्पंदनों का संयोजन इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा है। कमजोर लोगों का दुनिया में कोई अधिकार नहीं है। मजबूत, ऊर्जावान इंद्रियों वाले व्यक्ति के लिए दुनिया को वश में करना संभव है। इंद्र विजय प्राप्त करते हैं और पृथ्वी की रक्षा करते हैं। इस दुनिया में हर जगह चिरस्थायी गतिविधि है। दुनिया हमेशा दीप्तिमान है, हमेशा दीप्तिमान है, एक खूबसूरत महिला की तरह।

आग के साथ पृथ्वी के घनिष्ठ संबंध के बारे में बंधे हैं। अग्नि पृथ्वी की सभी वस्तुओं के परमाणुओं में विभिन्न तरीकों से व्याप्त है। अग्नि मनुष्य के मूल देवता के रूप में प्रसिद्ध है।

सभ्यता की वाहक यह अग्नि सभी प्राणियों के भीतर अग्नि और ऊर्जा के रूप में निवास करती है।

ऋषि ने विभिन्न प्रकार से संसार का वर्णन करने के बाद इसे मातृत्व कहा है। हर कोई इस दुनिया की मां है। जिस प्रकार माता बालक को समस्त साधन प्रदान करती है, उसी प्रकार कवि की प्रार्थना भूमि की माता स्नेही पुत्र को उसके स्नेह के संचार में भिगो देती है। हम इन सूक्तों की सुगंधित सुंदरता से अभिभूत हैं। कवि की प्रार्थना है कि धरती माता पत्नी और ऐश्वर्या के बीच स्थापित हो जाए –

भूमे मातरनि धिही मा, भद्रया सुप्रथिष्टम्।
हाईना दीव कवे श्रंखला मे धेही भूत्यम्।

इस प्रकार अथर्ववेद के भूमिसूक्त या पृथ्वीसूक्त में हम माँ और पुत्र के बीच जो स्नेही बंधन और संबंध पाते हैं, वह मानव जगत में सबसे गहरा और सबसे अंतरंग है। निस्संदेह, मानवता का इतना उच्च मूल्य विश्व के किसी भी प्राचीन साहित्य में दुर्लभ है।

ग्रंथ सूची

1. बंदोपाध्याय, शान्ति, वैदिक पाठसंकलन, कोलकाता।
2. बिश्वास, दीधिति, वैदिक पाठसञ्चयन, कोलकाता, 2013
3. बंदोपाध्याय, कुमार प्रद्युत, वैदिक साहित्येर इतिहास, कोलकाता, 2011
4. बसु, योगीराज, वेदेर परिचय, कोलकाता, 1993
5. भट्टाचार्य, चंद्र नारायण, अथर्ववेद भारतीय संस्कृति, कोलकाता, 1370 (बंगाल)
6. अथर्ववेद संहिता, हरफ प्रकाशनी, कोलकाता।

(पृष्ठ 314 का शेष..........)

सन्दर्भ सूची –

1. शब्दार्थ कौस्लुभ पृष्ठ संख्या– 281.
2. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा. 108 उपनिषद् ज्ञानखण्ड. युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट: गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2016. पृष्ठ सं.– 485.
3. तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय। छान्दोग्य उपनिषद्– 6/ 2/ 3.
4. आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ ऐतरेयोपनिषद्– 1/ 1/ 1.
5. ततोऽन्नमभिजायते। अन्नात्प्राणो मन: सत्यं, लोका: कर्मसु तपसा चीयते ब्रह्म चामृतम्॥ मुण्डकोपनिषद्– 1/ 1/ 8.
6. तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापति: स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजा: करिष्यत इति ॥ प्रश्नोपनिषद्– 4.
7. किं स्विदासीदधिष्ठानं आरम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्। यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षा: ।। ऋ. 10/ 81/2
8. चक्षुष: पितामनसाहिधीरोघृतमेने अजनन्माने। यदेदन्ताअदेदहन्तपूर्व आदिद्यावापृथिवी अपथेताम्।। ऋग्वेद,10/ 81/1
9. सहस्त्रशीर्षा पुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात्। स भूमिं सर्वत: स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्यशाङ्गुलम्।। ऋग्वेद, 10/90/1
10. एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुष:। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।। ऋग्वेद, 10/90/3
11. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत:। ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत्।। ऋग्वेद, 10/90/11
12. चन्द्रमा मनसो जातचक्षो: सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत्।। ऋग्वेद, 10/90/12
13. नासदासीनो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्। किमावरीव: कुह कस्य शर्मन्नम्भ: किमासीद्गहनंगभीरम्।। ऋ 10/129/1
14. न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेत:। आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर: किं चनास।। ऋ 10/ 129/2.
15. तम आसीत्तमसा गूढ़हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।। ऋग्वेद, 10/ 129/3.
16. कामस्तग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषी।। ऋग्वेद, 10/ 129/4.
17. को अद्धावेद क इह प्रवोत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टि:। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव।। ऋग्वेद, 10/ 129/6.
18. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।11 मुण्डकोपनिषद्, 3/1/1.
19. हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। ऋ. 10/ 121/1.